सूर्य-चन्द्र-अग्निको सूर्यत्व, चन्द्रत्व, अग्नित्व देनेवाले भगवान्

जन्म-मरणरूप संसारसे छूटकर भगवान्के परमपदको कौन प्राप्त होता है ?

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ (कठ० १।२।२०)

इस जीवके हृदयरूप गुफामें रहनेवाला आत्मा—परमात्मा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महान्से भी महान् है; परमात्माकी उस महिमाको कामनारहित, वीतशोक विरला पुरुष सर्वाधार परब्रह्म परमेश्वरकी कृपासे ही देख पाता है ।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥ (कठ० १।२।२३)

यह परमात्मा न तो प्रवचनसे, न बुद्धिसे और न बहुत सुननेसे ही प्राप्त हो सकता है; जिसको यह स्वीकार कर लेता है, उसीके द्वारा प्राप्त किया जा सकता है; यह परमात्मा उसके लिये अपने यथार्थ स्वरूपको प्रकट कर देता है ।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ (कठ० १।२।२४)

सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा भी इस परमात्माको न तो वह मनुष्य प्राप्त कर सकता है, जो बुरे आचरणोंसे निवृत्त नहीं हुआ है; न वह प्राप्त कर सकता है, जो अशान्त है; न वह ही, जिसके मन-इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं और न वही जिसका मन चञ्चल है । (सदाचारी, शान्त, समाहित और शान्तचित्त पुरुष ही प्राप्त कर सकता है ।)

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ (कठ० १।३।७)

जो सदा विवेकहीन बुद्धिवाला, असंयतचित्त और अपवित्रजीवन रहता है, वह उस परमपदको नहीं पा सकता; वरं वह तो बार-बार जन्म-मृत्युरूप संसार-चक्रमें ही भटकता रहता है ।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥ (कठ० १।३।८)

परंतु जो सदा विवेकशील बुद्धिसे सम्पन्न, संयतचित्त और पवित्रजीवन होता है, वह उस परमपदको प्राप्त हो जाता है, जहाँसे लौटकर फिर संसारमें जन्म नहीं लेता ।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद् विष्णोः परमं पदम् ॥ (कठ० १।३।९)

जो मनुष्य विज्ञान-विवेकशील बुद्धिरूप सारथिसे सम्पन्न तथा मनरूपी लगामको सदा वशमें रखनेवाला है, वह इस संसारमार्गके उस पार पहुँचकर परब्रह्म परमात्मा विष्णुके उस महान् परम पदको प्राप्त हो जाता है ।

अमृतलोक

(रचयिता—श्रद्धेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, 'राम', साहित्याचार्य)

(१)

ज्योति चिन्मयीका एक व्यापक महान् पुञ्ज
कोटि रवि-शशिसे अमित और न्यारा है।
जिसके प्रतीत एकदेशमें ही सारा यह—
वारिद-सा व्योममें प्रपञ्चका पसारा है॥
यह पर-व्योम है, परम पद पुण्यधाम,
लोक है अमृत, अवलोकनीय प्यारा है।
वन्दन उसे है, अभिनन्दन उसे है, वह
राधा-उर-चंद नन्दनन्दन हमारा है॥

(२)

बाँधा करे बन्धनोंमें विधि या निषेधके जो—
ऐसा नहीं वेद-उपवेद वहाँ कोई है।
स्नेह-सुधा-वृष्टि हर दृष्टि करती है सदा
होता न किसीको कभी खेद वहाँ कोई है॥
श्याम-गौर धाम अतिशय अभिराम राम
दीखता न स्याह या सफेद वहाँ कोई है।
गेह तथा गेहीमें न, नेह तथा नेहीमें न,
देह तथा देहीमें न भेद वहाँ कोई है॥

(३)

संधिनीका, संविदका, ह्लादिनीका लीलालास्य
सत-चित-आनँदका विमल विलास है।
कामके गुलाम वहाँ पाते हैं प्रवेश नहीं,
देश प्रीतिका है, प्रिया-प्रीतमका वास है॥
रीती चातकी है वहाँ नित्य घनश्याम-रस
सतत चकोरीके सुधाकी निधि पास है।
पास है सभीके, किंतु पा सका न कोई भेद,
दूर भी है, पास भी, न दूर है, न पास है॥

(४)

योगियोंको अगम, सुगम प्रेम-योगियोंको
भूतल वहाँका नित्य-नूतन लखाता है।
संतत समस्त ऋतुओंका सुविलास वहाँ
उरमें अमन्द मोदरस उमगाता है॥
जन्म-जरा-मरण शरण वहाँ पाते नहीं,
राज्य रसराजका न किसको लुभाता है।
क्लेश-द्वेष,लेश-आधि-व्याधिका प्रवेश नहीं,
देश राधिकाके सुखसिन्धु लहराता है॥

(५)

वैर या विरोध जड जगके निरुद्ध, उस
चेतन पुरीमें रस-रंगकी खानी है।
इति-अथ-हीन वह अकथ अपथगम्य
सफल कहानीमें न वानीकी भी वानी है॥
प्रणयी असंख्य प्रीतिपात्र सबका है एक
पेड़-लतामें भी जहाँ छेड़ छेड़खानी है।
सानी उसकी क्या छैल गैलमें गलीमें जहाँ
करता यशोदाका सभीकी अगवानी है॥

(अमृतलोककी राधा)

(६)

चंदमुखी मुखसे बिछाती चाँदनीका जाल
धूरि-सी कपूरकी सहाससे उड़ाती है।
'राम' श्याम-घनकी घटा-सी घिर जाती जब,
पाससे असित केशपाश लिये जाती है॥
कौंध उठती है बिजली-सी चकाचौंध लिये,
चपल कटाक्ष पल-पलमें चलाती है।
मन मनमोहनका मोद मनमोहनी यों
कान्तिसे धवल नेह नवल जगाती है॥

(७)

सच्चित्-सुखामृत-सरोवरके कंज मञ्जु
मोहन-मधुव्रतके सेव्य हैं, शरण हैं।
दस नख-चंद, मंद मलिन ख-चंद जहाँ
नीके चाँदनीके नव्य निर्झर-झरण हैं॥
मंद-मंद गतिसे गयंदके विनिन्दक हैं
नन्द-नन्द-तनके रतन-आभरण हैं।
'राम' अभिराम कोटि-कोटि रति-काम जिन्हा—
श्यामके गुलाम देख राधिका-चरण हैं॥

आत्माकी अमरता

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीशृंगेरीमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीअभिनवविद्यातीर्थ स्वामीजी महाराज)

हम संसारमें क्या देखते हैं कि कोई सुखी है, कोई दुखी है; कोई बुद्धिमान् है तो कोई बुद्धिविहीन; कोई धनी है तो कोई कंगाल। कोई भी यह नहीं चाहता कि मैं दुखी, बुद्धिविहीन या कंगाल बनूँ। नहीं चाहते हुए भी क्यों ऐसे बन जाते हैं? कुछ लोग इसका यों समाधान देते हैं कि हमारे लौकिक प्रयत्न और उपाय जैसे होते हैं, वैसे ही हम बनते हैं। जो लोग उपायोंको न अपनायें और प्रयत्न भी न करें, वे कुछ भी नहीं साध सकते, किंतु संसारमें हम यह भी देखते हैं कि उपायोंको अपनाकर सतत प्रयत्न करते रहनेपर भी बहुत-से लोग सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

इसपर हम यह विचार कर सकते हैं कि संसारमें दीखनेवाली यह विभिन्नता क्या निर्हेतुक है? नहीं, कोई भी कार्य बिना कारणके नहीं हो सकता। यदि वैसा हो तो फिर कोई भी किसी भी सफलताके लिये प्रयत्न ही क्यों करे। अतः हमें यह अवश्य मानना पड़ता है कि कोई भी कार्य बिना कारणके नहीं हो सकता। तो इस विचित्रताका कारण क्या है।

> समं कर्षन्ति पृथिवीं समं शास्त्राण्यधीयते।
> उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति दैवस्यैकस्य लीलया॥

'जमीनको समानरूपसे जोतते हैं, शास्त्रोंको समानरूपसे सीखते हैं, किंतु एकमात्र दैवकी लीलासे डूबते और ऊपर उठते हैं।' यह दैव क्या है? सनातन वैदिक शास्त्रमात्र इसका समाधान देते हैं। वे कहते हैं—'हे मानव! तुमने जो कुछ किया है और करते हो, उनसे जो संस्कार बनते हैं, वे ही दैव या पुण्य-पाप कहलाते हैं। तुम्हारे वे काम ही अब नहीं होते हुए भी, दैवके द्वारा अपना-अपना फल उत्पन्न करते हैं। इससे हम यह निश्चय कर सकते हैं कि सुख-दुःख, विवेक-अविवेक और सम्पत्ति-विपत्ति सब कुछ हमारे कियेका फल है।' इसपर यह प्रश्न होता है कि 'कोई नन्हा-सा बच्चा जन्मसे ही स्वस्थ और कोई माताका स्तन्यतक पीनेमें असक्त क्यों होता है? इसने ऐसा कौन-सा काम किया, जिससे यह सीधनर सुख या दुःख भोगे?'

इसका उत्तर यह है कि 'इस समय उसने कुछ भी न किया हो और करनेमें असमर्थ भी हो; किंतु जब करनेमें समर्थ था, तब जो कुछ किया था, अब केवल उसीका फल भोगता है। फिर समर्थ होनेके बाद जो कुछ करेगा, उसका फल भी आगे अवश्य भोगेगा।' हमारे सुख-दुःखोंके कारण इस जन्मके कर्म भी होते हैं, बीते हुए जन्मोंके भी। जन्मका कारण कर्म, कर्मसे जन्म, जन्मसे कर्म।

'तो यह चक्र कबसे आरम्भ हुआ?' यह चक्र अनादि है। आत्मा भी अनादिकालसे सुख-दुःख भोगता आ रहा है।

> पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।
> इह संसारे बहुदुस्तारे कृपयापारे पाहि मुरारे॥
>
> (चर्पटपञ्जरिका

'बार-बार जन्म, बार-बार मरण, बार-बार माताकी कोखमें निवास, हे मुरारे! संसार बड़ा दुस्तर है। कृपा करके इससे हमें उबारिये।'

इस चक्रका आदि मानें तो चक्रके चलानेवालेपर वैषम्य-नैर्घृण्य (पक्षपात तथा कृपाहीनता) दोष मढ़ने पड़ेंगे। और जिसमें पक्षपातादि दोष हों, वह भगवान् ही नहीं। गीतामें भगवान्ने अपने स्वरूपका प्रतिपादन किया—'न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। मैं न किसीसे घृणा करता हूँ, न प्यार।' भगवान् तो कर्मफलदाता हैं, कर्मके अनुरूप फल देंगे। कर्मचक्र ही अनादि हुआ तो फिर जीवके अनादित्वमें तो कहना ही क्या है।

ये कर्म भी स्वरूपाज्ञानसे हुआ करते हैं।—'अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।' अज्ञानसे ज्ञानके आवृत होनेके कारण लोग मोहग्रस्त हो जाते हैं। मोहसे कर्म, कर्मसे जन्म और जन्मसे सुख-दुःख-प्राप्ति। इस [illegible] चक्रको वेदान्तशास्त्रजन्य स्वरूपज्ञानसे हटाकर [illegible] परमानन्द प्रकाशस्वरूप होकर विराजेगा।

> ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
> तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥
>
> (गीता ५ । १६

जीवनका सनातन प्रश्न

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीअभिनवसच्चिदानन्दतीर्थ स्वामीजी महाराज)

प्रायः सभी मनुष्योंके जीवनमें किसी-न-किसी समय ये प्रश्न आये बिना नहीं रहते कि 'मैं कहाँसे आया हूँ?' और 'कहाँ जाऊँगा?'—'कोऽहं कुत आयातः' । यह स्पष्ट है कि अनभिज्ञलोग या अल्पज्ञलोग इन प्रश्नोंको टालनेका प्रयत्न करते हैं । अधिकांश विद्वान्लोग विचार करके थक जाते हैं और उत्तर शायद ही पाते हैं। ये प्रश्न सनातन हैं और खोज भी पुरातन ही है । जगत्सृष्टिके समयसे यह खोज सभी देशोंमें और सभी मतों तथा सभी दर्शनोंमें की जा रही है । विभिन्न मतवाले लोग परलोक तथा पुनर्जन्मके सम्बन्धमें अपने-अपने विचार भी प्रदर्शित करते रहे हैं । इन सब विचारोंपर परामर्श किये बिना अपने-अपने आध्यात्मिक सिद्धान्तका स्थापित करना असम्भव नहीं तो, कठिन अवश्य है ।

कठोपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीताका बीज-प्रश्न भी यही है । अन्यान्य उपनिषदोंमें, पुराणोंमें और दर्शन-ग्रन्थोंमें भी इस विषयपर बड़ी चर्चा आयी है । यह ठीक ही है; क्योंकि पुनर्जन्म-परलोकसम्बन्धी चर्चाके बिना अध्यात्म-विचार हो ही नहीं सकता । कठोपनिषद्में—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
तद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ॥
(१ । १ । २०)

—यह जो प्रश्न अधिकारी शिष्य नचिकेताने गुरु ब्रह्म-विद्याचार्य वैवस्वत यमसे किया, वह प्रश्न सनातन ही है । गीताका द्वितीयाध्याय, जो गीताका हार्द है और जिसमें अर्जुनके मुख्य प्रश्नका उत्तर आया है, वह सम्पूर्णतः कठोपनिषद्पर ही आधारित है । दोनोंमें 'नायं हन्ति न हन्यते' इत्यादि कई सिद्धान्त-वाक्य समान रूपसे उपलब्ध होते हैं, यह बात विद्वानोंको विदित ही है ।

सभी दार्शनिक ग्रन्थोंमें—विशेषरूपसे गीतामें स्पष्ट सिद्ध किया गया है कि आत्मा अजर-अमर तथा अविनाशी है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥
(गीता २ । २३-२४)

और पुनर्जन्मके सम्बन्धमें सर्वश्रुत श्लोकोंमें बताया है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(गीता २ । २२)

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥
(गीता २ । २७)

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
(गीता ९ । २१)

—आदि प्रकरणोंमें तथा 'शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।' (८ । २६) आदि प्रकरणमें भी जीवके बाहर जाने अर्थात् परलोकगमनके सम्बन्धमें स्पष्ट कहा गया है ।

परलोक और पुनर्जन्म भारतीय वैदिकधर्मकी मूलभित्ति होनेसे इन्हीं विषयोंपर यह 'कल्याण'के विशेषाङ्कका प्रकाशन सभीके लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होगा । 'इति शुभम्'

मानव-जीवनका उद्देश्य

(लेखक—पू० अनन्तश्रीविभूषित श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज)

संसारके सभी प्राणी सुख-दुःख भोगते हैं। जन्मसे ही इस भोगका आरम्भ हो जाता है। इसमें भी तारतम्य है। एक व्यक्ति जन्म-समयसे ही सुख-सुविधाओंकी भरमार पाता है। उसके पैदा होते समय 'एयर कंडीशन्ड' कमरा होता है। ५-७ डाक्टर, लेडी डाक्टर, नर्सें जच्चा और बच्चाकी सेवा-शुश्रूषाके लिये तत्पर रहती हैं। क्षण-क्षणमें बन्धु-बान्धवोंके टेलीफोन उनकी व्यवस्थाकी जानकारीके लिये आते रहते हैं। पर इसका दूसरा पहलू भी है। एक माता खेतमें अनाज या घास काट रही है। दोपहरका समय है। नीचेसे पैर जल रहे हैं और ऊपरसे भगवान् भास्करका प्रखर ताप उसके मस्तकको संतप्त कर रहा है। सारा शरीर पसीनेसे सराबोर है। इसी अवस्थामें बालकका जन्म भी हो जाता है। सर्वथा असहाय अवस्थामें वह अपने इस नवजात शिशुको खेतके साग-पत्ते, अन्न अथवा घासकी टोकरीमें रखकर, अपने सिरपर उठाकर घर चली आती है। स्पष्ट है कि उत्पन्न होते ही इन दोनों बालकोंको जो सुख-दुःखकी उपलब्धियाँ हुईं, उनका कुछ कारण होना चाहिये। यह केवल प्रकृतिकी लीला है—ऐसा कहकर पिण्ड छुड़ाना शोभा नहीं देता। अतः मानना पड़ेगा कि दोनोंने ही पहले कुछ ऐसे कर्म किये हैं, जिनके फलस्वरूप जन्मते ही उन्हें ये सुख और दुःख मिले। 'कर्मके फल', 'कर्म' और 'पुनर्जन्म'—तीनोंकी सिद्धि इस एक ऊपरके उदाहरणसे हो जाती है। लोग इसे स्वभाव, प्रकृति या नेचर कहकर संतोष भले ही कर लें, पर वस्तुतः इन समस्याओंका उत्तर तो तभी हो सकता है, जब इनके मूलकारणकी खोज की जाय और वह मूलकारण विभिन्न प्रकारके शुभाशुभ कर्म ही हो सकते हैं, जिनके फलस्वरूप प्राणिमात्रको तारतम्य या वैषम्यसे जन्मसे मृत्युपर्यन्त सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं।

कर्म भी फल देनेमें स्वतन्त्र नहीं हैं; क्योंकि वे जड़ हैं। लोकमें भी सेवा, नौकरी, व्यापार आदि कर्म स्वयं स्वतन्त्ररूपसे फल नहीं देते, अपितु किसी नियामक, स्वामी, व्यवस्थापक आदिके द्वारा फल देते हैं। नौकरी करनेवालेको नौकरीरूप उसका कर्म स्वयं वेतन नहीं देता; किंतु जिसकी वह नौकरी करता है, वह स्वामी नौकरीका फल वेतनके रूपमें देता है। अतः कर्मोंका फल देनेवाले एक 'कर्म-फलदाता'को मानना पड़ेगा। लौकिक कर्मोंके फल वे ही दे सकते हैं, जिन्हें कर्म करनेवाले व्यक्तियोंका, उनके द्वारा किये गये कर्मों और उनके फलों (परिणामों) का ठीक-ठीक ज्ञान हो। किसी स्कूल या कॉलेजके प्रधानाध्यापक, प्रिंसिपल, कारखाने, मिल, फैक्टरी आदिके मैनेजर इसके उदाहरणरूप दिये जा सकते हैं। वे अपने अधिकृत कर्म करनेवाले सभी व्यक्तियोंको जानते हैं, उनके द्वारा किये जानेवाले कार्योंको जानते हैं और उन कार्योंके फलोंको जानकर, प्रत्येक व्यक्तिको उसके कर्मका फल नियमानुसार देते हैं। ठीक, इसी प्रकार अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्ड-स्वरूप इस संसारमें एक-एक ब्रह्माण्डमें अनन्तानन्त जीव हैं। ब्रह्माण्डकी अनेकता और अनन्तता अब वैज्ञानिक भी स्वीकृत कर चुके हैं। चन्द्र, शुक्र और सूर्यलोक तथा पृथ्वीका ओर-छोर लेनेके लिये अन्तरिक्षमें उड़ान करनेवाले वैज्ञानिकोंने अपना यह स्पष्ट मत अभिव्यक्त कर दिया है कि इस दुनिया-जैसी ऐसी ही बहुत सी दुनियाएँ विश्वमें सम्भव हैं। यही हमारे ब्रह्माण्डोंको अनन्त कहनेका तात्पर्य है। अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंमें एक-एक ब्रह्माण्डमें अनन्तानन्त जीव रहते हैं, जिनका ज्ञान संसारके किसी एकको तो क्या, सभी वैज्ञानिकोंको नहीं हो सकता। मनुष्योंकी, पशुओंकी और किसी अंशमें पक्षियोंकी गणना की जा सकती है, किंतु कीट, पतङ्ग आदि योनियोंमें कितने जीव इस संसारमें भटक रहे हैं, इसका पता क्या सारे संसारके वैज्ञानिक 'राउण्ड टेबल कान्फ्रेन्स' करके या जीवनभर खोजबीन करके लगा सकते हैं? बरसातकी एक रात्रिमें एक नगरके एक मुहल्लेकी एक सड़कके एक बिजलीके बल्बके नीचे कितने हजार जीव एक ही रात्रिमें पैदा होकर सबेरा होते-होते समाप्त हो जाते हैं। इन जीवोंकी गणना, भिन्न-भिन्न जातियाँ, खान-पान और इनके सुख-दुःखके प्रकार जानना क्या आजकलके पहुँचे हुए वैज्ञानिकोंके लिये भी सम्भव है? किंतु यह सब कार्य ऐसा नियमित और व्यवस्थित होता है कि जिसके आधारपर एक किसी परम समर्थ सर्वज्ञ नियामक या व्यवस्थापककी कल्पना न चाहते हुए भी करनी पड़ती है; अन्यथा किस व्यक्तिने उन सब जीवोंको एक नियमित

समयमें उत्पन्न किया, नियमित जीवन प्रदान किया और नियमित मृत्यु अथवा कराल कालके गालमें सन्निविष्ट कर दिया—यह प्रश्न सारे संसारके बुद्धिमानोंके सामने खड़ा ही रहता है।

ईश्वरको मान लेनेपर इसका सीधा समाधान हो जाता है। अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंके एक-एक ब्रह्माण्डमें अनन्तानन्त जीव हैं। अनन्तानन्त जीवोंमें एक-एक जीवके अनन्तानन्त जन्म हैं। एक-एक जीवके अनन्तानन्त जन्मोंमें एक-एक जन्मके अनन्तानन्त कर्म हैं। अनन्तानन्त कर्मोंमें एक-एक कर्मके अनन्त फल हैं और अनेक कर्मोंके एक-एक फल भी हैं। इनसे ही जन्म, संस्कार और फल बनते हैं। ऊपर लिखे गये विवरणसे जीवोंके प्राग्जन्म, पुनर्जन्म और बारंबार जन्म न माननेवाले व्यक्तिसे यह पूछा जा सकता है कि मनुष्यका बालक छः महीनेमें प्रयत्न करनेपर बैठना सीखता है; पर गाय, भैंस, गधे, घोड़ेका बच्चा पैदा होनेके कुछ क्षण पश्चात् ही केवल चलने ही नहीं लगता, अपितु उछलने-कूदने, फाँदने और भागने लगता है। पुनर्जन्म न माननेवालेसे हम पूछते हैं कि इन पशुओंके इन बच्चोंको यह ट्रेनिंग किसने दी? इसके लिये कहाँ 'ट्रेनिंग सेण्टर या इन्स्टीट्यूशन' खुले हुए हैं? पक्षियोंके बच्चोंको उड़ना किसने सिखाया? हंसको नीर-क्षीर-विवेककी शिक्षा किसने दी? कागके शावकको उत्तमोत्तम भक्ष्य, भोज्य, लेह्य पदार्थका परित्याग-कर अति बीभत्स और जघन्य विष्ठाकी ओर ही आकृष्ट होनेकी तत्परता किसने सिखलायी? सद्योजात सिंह-शावकको हरिणपर आक्रमण करनेका उपदेश किसने दिया? इन सबके उत्तरमें भी प्रकृति, स्वभाव, नेचर कहकर लोग संतोष भले ही कर लें, किंतु यह इन प्रश्नोंका सत्य समाधान नहीं, जब कि पुनर्जन्म, प्राग्जन्म और एक-एक जीवके बारंबार अनेक जन्म माननेपर इस समस्याका संतोषजनक समाधान सहज और सुलभ हो जाता है। यह स्पष्ट है कि गाय, भैंस, गधे या घोड़ेका बच्चा केवल वर्तमान जन्ममें ही गाय, भैंस, गधे, घोड़ेका शरीर पाकर नहीं आया, किंतु पुनर्जन्मके सिद्धान्तानुसार वह पहले भी अनेक बार ऐसे जन्म पा चुका है और उन जन्मोंमें जन्मते ही उछलने-कूदने, भागनेका अभ्यास उसका बना हुआ है। उसी अभ्यासके कारण वर्तमान जन्ममें भी पूर्व संस्कारोंके उद्बोधसे, बिना किसीके सिखाये वह यह सब करने लगता है।

पूर्वजन्मके संस्कार मनमें रहते हैं। उन संस्कारोंका उद्बोधन करनेवाला देश, काल, अवस्था, परिस्थिति आदि कोई भी पदार्थ जैसे ही सामने आता है, संस्कार उद्भूत हो जाते हैं और प्राणीको पूर्वजन्मके अभ्याससे उस कार्यमें प्रवृत्त कर देते हैं। यही कारण है कि पक्षीका बच्चा बिना शिक्षा या उपदेशके ही उड़ने लगता है। हंस नीर-क्षीर-विवेक कर लेता है और सिंह-शावक हरिणको दबोच बैठता है। कहा जा सकता है कि एक मनमें इतने संस्कार कैसे और कहाँसे आ सकते हैं? इसका उत्तर यही है कि जैसे घी, तेल, अचार अथवा ऐसी ही कोई अन्य वस्तु जिस मिट्टीके पात्रमें कुछ दिन रक्खी जाय, उस मिट्टीके पात्रको तेल, घी आदि निकालकर, सोडा, मिट्टी, गरम पानी आदि स्नेह-निवारक द्रव्योंसे रगड़-रगड़कर खूब अच्छी तरह धो लेनेपर भी क्या उस पात्रमेंसे चिकनाहटके संस्कार मिट सकते हैं? कहना न होगा कि धोनेके बाद तत्काल उसमें चिकनाहट भले ही दिखायी न दे, पर ज्यों-ही उस पात्रको धूप अथवा अग्निका संयोग प्राप्त होगा, चिकनाहट उसमेंसे बाहर आ जायगी। यहाँ चिकनाहटके संस्कार पात्रमें छिपे हुए थे, अग्नि अथवा आतपने संस्कारोंको उद्बुद्ध कर दिया। ठीक इसी प्रकार अनेक बार पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, देवता, दानव, मानव, कूकर, सूकर आदि योनियोंमें जन्म लेनेके कारण उन सबके कामोंके संस्कार प्रत्येक प्राणीके मनमें विद्यमान हैं, किंतु छिपे हुए रहते हैं। जैसे ही धूप या अग्निकी तरह उन संस्कारोंका उद्बोधक पशु-पक्षी आदिका जन्म मिला कि संस्कार उद्बुद्ध होकर, उस प्राणीको उठने-बैठने, दौड़ने-भागने, उड़ने, मारने-काटने आदिमें प्रवृत्त कर देते हैं। अतः एक-एक जीवके अनन्तानन्त जन्म माननेमें ही इन प्रश्नोंका समाधान होता है।

चैतन्यको पञ्चमहाभूतोंका परिणाम माननेपर यह आपत्ति होती है कि इन भूतोंमें अलग-अलग चैतन्य नहीं है। अतः इनके समुदायमें भी चैतन्य नहीं हो सकता। कहा जा सकता है कि 'कत्था, चूना, पान, सुपारी—इनमें अलग-अलग किसीमें लाल रंग नहीं है; किंतु इनके संयोगसे जैसे लाल रंग उत्पन्न हो जाता है और गुड़,

आटा, महुवा आदिमें किसीमें पृथक्-पृथक् मादकता न होनेपर भी उनका योग होनेपर सबमें मादकता उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूतोंके संयोगसे शरीरमें भी स्वतः 'चेतन' उत्पन्न हो जाता है। अतः शरीरसे भिन्न किसी चेतनको माननेकी आवश्यकता नहीं। गुलाबके बीजमें ही जैसे गुलाबके अङ्कुर, नाल, स्कन्ध, शाखा, प्रशाखा, पत्र, पुष्प, काँटे और फलतकमें रहनेवाली सुमधुर गन्धको उत्पन्न करनेकी शक्ति है, ठीक वैसे ही माता-पिताके रज-वीर्यमें ही रहकर चरणादिमान शरीर, ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण और चैतन्यको उत्पन्न करनेकी शक्ति है। अतः पृथक् चैतन्य आत्माके माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है।' किंतु इन सब बातोंका सीधा एक यही उत्तर है कि ऐसा माननेपर 'कृतहानि' और 'अकृताभ्यागम' दोष प्रसक्त होंगे। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक शरीरमें माता-पिताके रज-वीर्यसे ही नवीन चैतन्यकी उत्पत्ति माननेपर, उत्पन्न होनेवाला व्यक्ति जन्मसे ही जो सुख-दुःख भोगता है, उन सुख-दुःखोंका कारण क्या है? क्योंकि आत्मा गुलाबके फूलकी तरह माता-पिताके रज-वीर्यसे नवीन उत्पन्न हुआ। उसने पहले कोई कार्य नहीं किया तो बिना किये कर्मोंके यह किनका फल भोगता है? इसीको 'अकृताभ्यागम' कहते हैं। पहले कर्म कोई किये नहीं और पैदा होते ही सुख-दुःख भोगना अनिवार्य हो गया। ऐसे ही बिना किसी स्थायी चैतन्यकी सत्ता स्वीकार किये जब यह आत्मा शरीरके साथ मर जायगा और इस शरीरके साथ ही आत्मा चल जायगा तो इस शरीररूपी आत्माने जीवनपर्यन्त जो अच्छे-बुरे कर्म किये, उनका फल भोगनेवाला कोई दूसरा रह नहीं जायगा। इसको 'कृतहानि दोष' कहते हैं। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिसे भिन्न एक स्थायी चेतन आत्माके न माननेपर इन दोनों दोषोंका निवारण कभी किसी प्रकार भी नहीं हो सकता। प्रत्येक जीवनके प्रत्येक व्यक्तिके किये हुए सभी कार्य व्यर्थ जायँ और जन्मसे ही बिना किये हुए कर्मोंके फल भोगने पड़ें—इन दोनों दोषोंकी निवृत्ति तभी हो सकती है, जब शरीर, मन, बुद्धि आदिसे भिन्न एक स्थायी आत्मा माना जाय और उसका पुनर्जन्म भी माना जाय। पुनर्जन्म माननेपर पूर्व-पूर्व जन्मोंके कर्मोंका फल उत्तरोत्तर जन्ममें भोग होंगे और बिना किये हुए कर्मोंका फल भोगना नहीं पड़ेगा—इस प्रकार सभी शङ्काओंका समाधान हो जाता है। अतः पृथक् आत्मा, जीवकी सत्ता और पुनर्जन्मका सिद्धान्त स्वीकार करना अनिवार्य है।

पुनर्जन्मका आधार कर्म ही है। उसका फल भोगनेके लिये ही पुनर्जन्म लेना पड़ता है। कुछ मतों तथा महानुभावोंका कथन है कि मनुष्य-योनि प्राप्त होनेके बाद आत्मा अन्य योनियोंमें नहीं जाता। यह कथन वस्तुतः भारतीय दर्शन, धर्मशास्त्र और वेदशास्त्रके विरुद्ध है। कर्मका फल भोगनेके लिये मनुष्य-जन्मके पश्चात् किसी भी योनिमें आत्मा जा सकता है। वस्तुतः इन सब बातोंमें किसी मत या व्यक्तिविशेषकी रायका कोई अर्थ नहीं है। धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्रके सिद्धान्त ही इस सम्बन्धमें मान्य होने चाहिये। जडभरत-जैसे महासिद्ध योगीको भी कर्मवशात् हरिणका जन्म लेना पड़ा। फिर कैसे कहा जा सकता है कि मनुष्य-जन्म प्राप्त होनेके बाद जीव अन्य किसी योनिमें नहीं जाता? शास्त्रोंमें ऐसे हजारों उदाहरण हैं। मनुष्य-योनि तो क्या, साक्षात् इन्द्रका पद प्राप्त होनेपर भी नहुषको सर्प बनना पड़ा। करोड़ों नहीं, अपितु पृथ्वीमें जितने बालूके कण हैं, वर्षाकी जितनी धाराएँ और मानव-शरीरमें जितने रोम हैं, उतनी गायोंका दान करनेवाले राजा नृगको गिरगिट बनना पड़ा।

हमारे रिश्ते-नाते चिरस्थायी तो नहीं, किंतु एक जन्म-तक प्रायः उनका सम्बन्ध रहता है। केवल पतिव्रता स्त्री दूसरे जन्ममें भी अपने पूर्वजन्मके ही पतिको पुनः प्राप्त करती है। शेष सभी सम्बन्ध प्रायः एक जन्मके हैं। भगवान् शंकराचार्यने संसारसे वैराग्यका उपदेश देते हुए कहा है कि इस जन्मके माता, पिता, पुत्र, पौत्र, कलत्र, मित्र आदिकी चिन्तामें व्यस्त मनुष्यको सोचना चाहिये कि इससे पहले न जाने कितनी बार हमने जन्म लिये; उन जन्मोंमें भी माता, पिता, भ्राता, बन्धु-बान्धव, सगे-सम्बन्धी थे ही; किंतु आज वे सब कहाँ हैं और हम कहाँ हैं? संसारके नाते रिश्ते ठीक उसी प्रकारके हैं, जिस प्रकार समुद्रमें तरङ्गोंसे टकराकर आये हुए दो काष्ठ-खण्ड कभी एक-दूसरेसे मिल जाते हैं और पुनः महोदधिकी उत्ताल तरङ्गोंसे ऐसे अलग हो जाते हैं कि फिर उनके स्वप्नमें भी मिलनेकी आशा नहीं रहती। प्रायः सभी शास्त्रों, संत-महात्माओंने सांसारिक सम्बन्धोंके विषयमें ऐसा ही मत अभिव्यक्त किया है। कभी-कभी प्रश्न

प्रारब्धवश एकसे अधिक जन्ममें भी सम्बन्ध स्थिर हो सकते हैं, किंतु उन्हें अपवाद ही मानना पड़ेगा।

युक्ति और तर्कसे कभी भी न तो पाप-पुण्य या अच्छे-बुरेकी पहचान हुई है, न हो रही है और न होगी ही। ये पाप-पुण्य हमारे भावी जीवनको अवश्य ही प्रभावित और प्रमाणित करते हैं। इतना ही नहीं, इन्हींके अनुसार भावी जीवनका निर्माण होता है। इस जन्ममें किये हुए कर्मोंसे ही भविष्यमें जन्म प्राप्त होता है। महात्मा लोग एक कहानी कहा करते हैं—"एक बहुत बड़े धनिक किसी महात्माके भक्त थे। नित्यप्रति उनके दर्शनार्थ *आना-जाना, उनके भिक्षा-वस्त्रादिका प्रबन्ध करना उनका* नित्य-कार्य बन गया था। महात्माजीके ऐसे और भी भक्त थे, जिनसे उनको यदा-कदा भेंट-पूजामें द्रव्यकी प्राप्ति भी होती रहती थी। धीरे-धीरे महात्माजीके पास लगभग एक लाख रुपये इकट्ठे हो गये। अपने प्रति सर्वाधिक श्रद्धा-भक्ति दिखानेवाले उस धनिकपर विश्वास कर महात्माने एक लाख रुपये उसीके पास जमा कर दिये। कुछ समयके पश्चात् उनकी इच्छा आश्रम बनानेकी हुई। सेठजीसे उन्होंने रुपये माँगे। उनकी नीयत बदल गयी। वे कहने लगे—'कैसे रुपये? कब दिये थे? आप-जैसे लंगोटी लगानेवालेके पास एक लाख रुपये?' इन अप्रत्याशित वचनोंको सुनकर [म]हात्माके हृदयकी गति बंद हो गयी और तत्काल उनका [प्र]ाणान्त हो गया। उधर सेठजीके कोई संतान न थी। [से]ठजी इस घटनाको भूल गये; किंतु ठीक दसवें महीने [उ]नके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऐसी धनसमृद्धियुक्त [वृ]द्धावस्थामें पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी कभी आशा नहीं [थ]ी। पैदा होते ही इस खुशीमें पैसा पानीकी तरह बहाया [ज]ाने लगा। लड़केके लालन-पालन, देख-रेख, खिलौने [आ]दिमें भी पैसेकी जगह रुपया खर्च किया जाने लगा। [ऐ]से लाड़-प्यारमें पला लड़का भी बचपनसे ही आवश्य-[क]तासे अधिक खर्चीला होता चला गया। युवावस्थामें [आ]ते-आते उसकी फजूलखर्चीका पारावार न रहा। रात-[दि]न यार-दोस्तोंमें पड़े रहना, खाना-पीना, मौज करना [औ]र गुलछर्रे उड़ाना—यही उसकी वृत्ति बन गयी। प्रारम्भमें [त]ो पिताने अपने इकलौते बेटेकी इस चर्यापर ध्यान नहीं [दि]या, किंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया, पिताकी चिन्ताएँ [ब]ढ़ने लगीं। फिर भी पिताने कभी यह हिसाब लगाकर [न]हीं देखा कि लड़का कितना खर्च कर चुका और [क]ितना कर रहा है। सिलसिला जारी रहा।

एक दिन लड़केने बहुत बड़ा भोज दिया। अपने इष्ट-मित्र, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धवोंको मनचाहा भोजन-वस्त्र आदि देकर उनका सम्मान किया। सारे आयोजनके पश्चात् लड़केने भी स्वयं अपने कुछ चुने हुए इष्ट-मित्रोंके साथ भोजन किया। उन्हें विदा कर सोते समय उसे स्मरण आया कि 'मैंने पान नहीं खाया।'

तत्काल नौकरसे पान मँगवाया गया। लड़का पान खाकर जो सोया तो उठा ही नहीं। बहुत रोने-पीटनेके पश्चात् सेठजी जब शान्त हुए और मुनीम गुमास्तेने जब हिसाब बताया तो पानकी कीमतसे एक लाख रुपयेकी रकम *पूरी हुई।"* इस कहानीसे जो चाहे सो *भाव और शिक्षा* ली जा सकती है।

× × × ×

जीवनमें शान्ति भगवत्-प्राप्तिसे ही हो सकती है और भगवत्प्राप्ति निष्काम कर्मके द्वारा चित्तकी शुद्धि, उपासनाके द्वारा चित्तकी एकाग्रता तथा ज्ञानके द्वारा अज्ञानका नाश होनेपर ही हो सकती है। मनसे भगवान्का साक्षात्कार होता है। मनमें मल, विक्षेप और आवरण—तीन दोष हैं। पहला दोष मनकी 'मलिनता' है, जिसका कारण है—जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरमें किये गये शुभाशुभ कर्मोंकी वासना। मैले कपड़ेको साबुन या क्षारसे धोनेपर जैसे उसमें स्वच्छता आती है, ठीक वैसे ही मनके मलिन संस्कारोंको धोनेके लिये शास्त्रविहित निष्काम कर्मकी आवश्यकता है। मनका दूसरा दोष है—'विक्षेप' अर्थात् चित्तकी चञ्चलता। उसके दूर करनेका एकमात्र उपाय है—भगवान्की भक्ति। दूसरे शब्दोंमें भगवान्में प्रेम। प्रेम उसी वस्तुमें उत्पन्न होता है, जिसके रूप और गुणोंका ज्ञान हो। लौकिक पदार्थोंमें भी उनके रूप और गुणोंका ज्ञान होनेपर ही प्रेम उत्पन्न होता है; इसी प्रकार भगवान्में प्रेम उत्पन्न करनेके लिये भगवान्के रूप और गुणोंका ज्ञान आवश्यक है और भगवद्रूप तथा गुणोंके ज्ञानका साधन है—इतिहास-पुराणद्वारा भगवान्के पवित्र चरित्रका श्रवण अथवा पठन। भगवान्के चरित्रका जितना ही अधिक श्रवण अथवा पठन होगा, उतना ही अधिक भगवान्में प्रेम बढ़ता चला जायगा। जैसे-जैसे प्रेम बढ़ेगा, वैसे-वैसे ही भगवान्में मन भी लगने लगेगा। स्त्री-पुत्रादिमें भी प्रेम बढ़नेसे ही मन लगता है और प्रेम बढ़ानेका उपाय—जिसमें प्रेम हो, उसके रूप और

आटा, महुवा आदिमें किसीमें पृथक्-पृथक् मादकता न होनेपर भी उनका योग होनेपर सबमें मादकता उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूतोंके संयोगसे शरीरमें भी स्वतः 'चेतन' उत्पन्न हो जाता है। अतः शरीरसे भिन्न किसी चेतनको माननेकी आवश्यकता नहीं। गुलाबके बीजमें ही जैसे गुलाबके अङ्कुर, नाल, स्कन्ध, शाखा, प्रशाखा, पत्र, पुष्प, काँटे और फलतकमें रहनेवाली सुमधुर गन्धको उत्पन्न करनेकी शक्ति है, ठीक वैसे ही माता-पिताके रज-वीर्यमें ही रहकर चरणादिमान शरीर, ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण और चैतन्यको उत्पन्न करनेकी शक्ति है। अतः पृथक् चैतन्य आत्माके माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है।' किंतु इन सब बातोंका सीधा एक यही उत्तर है कि ऐसा माननेपर 'कृतहानि' और 'अकृताभ्यागम' दोष प्रसक्त होंगे। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक शरीरमें माता-पिताके रज-वीर्यसे ही नवीन चैतन्यकी उत्पत्ति माननेपर, उत्पन्न होनेवाला व्यक्ति जन्मसे ही जो सुख-दुःख भोगता है, उन सुख-दुःखोंका कारण क्या है। क्योंकि आत्मा गुलाबके फूलकी तरह माता-पिताके रज-वीर्यसे नवीन उत्पन्न हुआ। उसने पहले कोई कार्य नहीं किया तो बिना किये कर्मोंके वह किनका फल भोगता है? इसीको 'अकृताभ्यागम' कहते हैं। पहले कर्म कोई किये नहीं और पैदा होते ही सुख-दुःख भोगना अनिवार्य हो गया। ऐसे ही बिना किसी स्थायी चैतन्यकी सत्ता स्वीकार किये जब यह आत्मा शरीरके साथ मर जायगा और इस शरीरके साथ ही आत्मा जल जायगा तो इस शरीररूपी आत्माने जीवनपर्यन्त जो अच्छे-बुरे कर्म किये, उनका फल भोगनेवाला कोई दूसरा रह नहीं जायगा। इसको 'कृतहानि दोष' कहते हैं। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिसे भिन्न एक स्थायी चेतन आत्माके न माननेपर इन दोनों दोषोंका निवारण कभी किसी प्रकार भी नहीं हो सकता। प्रत्येक जीवनके प्रत्येक व्यक्तिके किये हुए सभी कार्य व्यर्थ जायँ और जन्मसे ही बिना किये हुए कर्मोंके फल भोगने पड़ें—इन दोनों दोषोंकी निवृत्ति तभी हो सकती है, जब शरीर, मन, बुद्धि आदिसे भिन्न एक स्थायी आत्मा माना जाय और उसका पुनर्जन्म भी माना जाय। पुनर्जन्म माननेपर पूर्व-पूर्व जन्मोंके कर्मोंका फल उत्तरोत्तर जन्ममें भोग लेंगे और बिना किये हुए कर्मोंका फल भोगना नहीं पड़ेगा—इस प्रकार सभी शङ्काओंका समाधान हो जाता है। अतः पृथक् आत्मा, जीवकी सत्ता और पुनर्जन्मका सिद्धान्त स्वीकार करना अनिवार्य है।

पुनर्जन्मका आधार कर्म ही है। उसका फल भोगनेके लिये ही पुनर्जन्म लेना पड़ता है। कुछ मतों तथा महानुभावोंका कथन है कि मनुष्य-योनि प्राप्त होनेके बाद आत्मा अन्य योनियोंमें नहीं जाता। यह कथन वस्तुतः भारतीय दर्शन, धर्मशास्त्र और वेद-शास्त्रके विरुद्ध है। कर्मका फल भोगनेके लिये मनुष्य-जन्मके पश्चात् किसी भी योनिमें आत्मा जा सकता है। वस्तुतः इन सब बातोंमें किसी मत या व्यक्तिविशेषकी रायका कोई अर्थ नहीं है। धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्रके सिद्धान्त ही इस सम्बन्धमें मान्य होने चाहिये। जडभरत-जैसे महासिद्ध योगीको भी कर्मवशात् हरिणका जन्म लेना पड़ा। फिर कैसे कहा जा सकता है कि मनुष्य-जन्म प्राप्त होनेके बाद जीव अन्य किसी योनिमें नहीं आता? शास्त्रोंमें ऐसे हजारों उदाहरण हैं। मनुष्य-योनि तो क्या, साक्षात् इन्द्रका पद प्राप्त होनेपर भी नहुषको सर्प बनना पड़ा। करोड़ों नहीं, अपितु पृथ्वीमें जितने बालूके कण हैं, वर्षाकी जितनी धाराएँ और मानव-शरीरमें जितने रोम हैं, उतनी गायोंका दान करनेवाले राजा नृगको गिरगिट बनना पड़ा।

हमारे रिश्ते-नाते चिरस्थायी तो नहीं, किंतु एक जन्मतक प्रायः उनका सम्बन्ध रहता है। केवल पतिव्रता स्त्री दूसरे जन्ममें भी अपने पूर्वजन्मके ही पतिको पुनः प्राप्त करती है। शेष सभी सम्बन्ध प्रायः एक जन्मके हैं। भगवान् शंकराचार्यने संसारसे वैराग्यका उपदेश देते हुए कहा है कि इस जन्मके माता, पिता, पुत्र, पौत्र, कलत्र, मित्र आदिकी चिन्तामें व्यस्त मनुष्यको सोचना चाहिये कि हमने पहले न जाने कितनी बार इसने जन्म लिये; उन जन्मोंमें भी माता, पिता, भ्राता, बन्धु-बान्धव, सगे-सम्बन्धी थे ही; किंतु आज वे सब कहाँ हैं और हम कहाँ हैं? संसारके नाते-रिश्ते ठीक उसी प्रकारके हैं, जिस प्रकार समुद्रमें तरङ्गोंसे टकराकर आये हुए दो काष्ठ-फलक कभी एक-दूसरेसे मिल जाते हैं और पुनः महोदधिकी उत्ताल तरङ्गोंसे ऐसे अलग हो जाते हैं कि फिर उनके स्वप्नमें भी मिलनेकी आशा नहीं रहती। प्रायः सभी शास्त्रों, संत-महात्माओंने सांसारिक सम्बन्धोंके विषयमें ऐसा ही मत अभिव्यक्त किया है। कभी-कभी प्रश्न

प्रारब्धवश एकसे अधिक जन्ममें भी सम्बन्ध स्थिर हो सकते हैं, किंतु उन्हें अपवाद ही मानना पड़ेगा।

युक्ति और तर्कसे कभी भी न तो पाप-पुण्य या अच्छे-बुरेकी पहचान हुई है, न हो रही है और न होगी ही। ये पाप-पुण्य हमारे भावी जीवनको अवश्य ही प्रभावित और प्रमाणित करते हैं। इतना ही नहीं, इन्हींके अनुसार भावी जीवनका निर्माण होता है। इस जन्ममें किये हुए कर्मोंसे ही भविष्यमें जन्म प्राप्त होता है। महात्मा लोग एक कहानी कहा करते हैं—"एक बहुत बड़े धनिक किसी महात्माके भक्त थे। नित्यप्रति उनके दर्शनार्थ आना-जाना, उनके भिक्षा-वस्त्रादिका प्रबन्ध करना उनका नित्य-कार्य बन गया था। महात्माजीके ऐसे और भी भक्त थे, जिनसे उनको यदा-कदा भेंट-पूजामें द्रव्यकी प्राप्ति भी होती रहती थी। धीरे-धीरे महात्माजीके पास लगभग एक लाख रुपये इकट्ठे हो गये। अपने प्रति सर्वाधिक श्रद्धा-भक्ति दिखानेवाले उस धनिकपर विश्वास कर महात्माने एक लाख रुपये उसीके पास जमा कर दिये। कुछ समयके पश्चात् उनकी इच्छा आश्रम बनानेकी हुई। सेठजीसे उन्होंने रुपये माँगे। उनकी नीयत बदल गयी। वे कहने लगे—'कैसे रुपये? कब दिये थे? आप-जैसे लंगोटी लगानेवालेके पास एक लाख रुपये?' इन अप्रत्याशित वचनोंको सुनकर महात्माके हृदयकी गति बंद हो गयी और तत्काल उनका प्राणान्त हो गया। उधर सेठजीके कोई संतान न थी। ठजी इस घटनाको भूल गये; किंतु ठीक दसवें महीने नके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऐसी धनसमृद्धियुक्त द्धावस्थामें पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी कभी आशा नहीं ी। पैदा होते ही इस खुशीमें पैसा पानीकी तरह बहाया ाने लगा। लड़केके लालन-पालन, देख-रेख, खिलौने ादिमें भी पैसेकी जगह रुपया खर्च किया जाने लगा। से लाड़-प्यारमें पला लड़का भी बचपनसे ही आवश्य-तासे अधिक खर्चीला होता चला गया। युवावस्थामें ाते-आते उसकी फजूलखर्चीका पारावार न रहा। रात-दिन यार-दोस्तोंमें पड़े रहना, खाना-पीना, मौज करना ौर गुलछर्रे उड़ाना—यही उसकी वृत्ति बन गयी। प्रारम्भमें ो पिताने अपने इकलौते बेटेकी इस चर्यापर ध्यान नहीं या, किंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया, पिताकी चिन्ताएँ ढ़ने लगीं। फिर भी पिताने कभी यह हिसाब लगाकर हीं देखा कि लड़का कितना खर्च कर चुका और कितना कर रहा है। सिलसिला जारी रहा।

एक दिन लड़केने बहुत बड़ा भोज दिया। अपने इष्ट-मित्र, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धवोंको मनचाहा भोजन-वस्त्र आदि देकर उनका सम्मान किया। सारे आयोजनके पश्चात् लड़केने भी स्वयं अपने कुछ चुने हुए इष्ट-मित्रोंके साथ भोजन किया। उन्हें विदा कर सोते समय उसे स्मरण आया कि 'मैंने पान नहीं खाया।'

तत्काल नौकरसे पान मँगवाया गया। लड़का पान खाकर जो सोया तो उठा ही नहीं। बहुत रोने-पीटनेके पश्चात् सेठजी जब शान्त हुए और मुनीम गुमास्तेने जब हिसाब बताया तो पानकी कीमतसे एक लाख रुपयेकी रकम *पूरी हुई।" इस कहानीसे जो चाहे सो भाव और शिक्षा* ली जा सकती है।

× × × ×

जीवनमें शान्ति भगवत्-प्राप्तिसे ही हो सकती है और भगवत्प्राप्ति निष्काम कर्मके द्वारा चित्तकी शुद्धि, उपासनाके द्वारा चित्तकी एकाग्रता तथा ज्ञानके द्वारा अज्ञानका नाश होनेपर ही हो सकती है। मनसे भगवान्का साक्षात्कार होता है। मनमें मल, विक्षेप और आवरण—तीन दोष हैं। पहला दोष मनकी 'मलिनता' है, जिसका कारण है—जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरमें किये गये शुभाशुभ कर्मोंकी वासना। मैले कपड़ेको साबुन या क्षारसे धोनेपर जैसे उसमें स्वच्छता आती है, ठीक वैसे ही मनके मलिन संस्कारोंको धोनेके लिये शास्त्रविहित निष्काम कर्मकी आवश्यकता है। मनका दूसरा दोष है—'विक्षेप' अर्थात् चित्तकी चञ्चलता। उसके दूर करनेका एकमात्र उपाय है—भगवान्की भक्ति। दूसरे शब्दोंमें भगवान्में प्रेम। प्रेम उसी वस्तुमें उत्पन्न होता है, जिसके रूप और गुणोंका ज्ञान हो। लौकिक पदार्थोंमें भी उनके रूप और गुणोंका ज्ञान होनेपर ही प्रेम उत्पन्न होता है; इसी प्रकार भगवान्में प्रेम उत्पन्न करनेके लिये भगवान्के रूप और गुणोंका ज्ञान आवश्यक है और भगवद्रूप तथा गुणोंके ज्ञानका साधन है—इतिहास-पुराणद्वारा भगवान्के पवित्र चरित्रका श्रवण अथवा पठन। भगवान्के चरित्रका जितना ही अधिक श्रवण अथवा पठन होगा, उतना ही अधिक भगवान्में प्रेम बढ़ता चला जायगा। जैसे-जैसे प्रेम बढ़ेगा, वैसे-वैसे ही भगवान्में मन भी लगने लगेगा। —

पुत्रादिमें भी प्रेम बढ़नेसे ही मन [illegible]

बढ़ानेका उपाय—जिसमें प्रेम हो, [illegible]

जैसे उत्पद्यमान अङ्कुरके प्रति न केवल बीज कारण है, न केवल भूमि और न केवल कृषक—बीज, भूमि, कृषक, जल-वायुसे सभी समुदित होकर अङ्कुरके कारण बनते हैं, ठीक उसी प्रकार अनादि मेघद्वारा, शुक्र-शोणित अन्नद्वारा बननेपर जीव भी उन-उन पदार्थोंके द्वारा उन्हींमें ओतप्रोत हुआ जीवन-मरणके चक्करमें पड़ा रहता है। इस महाचक्रसे छुटकारा पानेके लिये जप, तप, ध्यान और समाधिका विधान शास्त्रोंमें बताया गया है। वह एक देव आत्मा या ब्रह्मपदवाच्य ऊर्णनाभि (मकड़ी) की भाँति अपने द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुओंसे ही अपनेको बाँध लेता है। ठीक उसी प्रकार यह आत्मारूपी दिव्य प्रकाशवाला देव अपने द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुओंसे अपनेको ही बाँध लेता है। यथा—

> यस्तूर्णनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः । देव एकः स्वमावृणोति । स नो दधातु ब्रह्माव्ययम् ।
>
> (श्वेताश्वतर० ६ । १०)

इसी बातको और स्पष्ट करते हुए कौशीतकिब्राह्मणोपनिषद्में लिखा है कि—'लोग इस संसारको छोड़कर परलोकमें जाते समय पहले चन्द्रमामें पहुँचते हैं। यदि उन जीवोंके कर्म दुः[बारा] जन्म देनेके योग्य होते हैं तो वे वर्षाद्वारा भूमिपर आ ज[ाते] हैं और जिस शरीरके उपयोगी उनके कर्म होते हैं, उ[न] शरीरोंमें वे पहुँच जाते हैं। कोई कीड़े, पतंगे, पक्षी, सि[ंह,] कोई मनुष्य, देव, गन्धर्व इत्यादि शरीरोंमें जन्म ग्रहण क[र] लेते हैं।'

इस प्रकार जीवन-मृत्युका शास्त्रोंमें बहुत विवेचन है पर वस्तुस्थिति यह है कि यही एक तत्त्व ब्रह्म या आत्म[ा] सर्वत्र है। कर्मानुसार उसीका देहान्तरमें प्रवेश-निर्गम होत[ा] है। यह सब सत्-असत् कर्म-कलापका परिणाम है। वास्तव[में] यदि आत्म-तत्त्वको ठीक समझ लिया जाय—मनन औ[र] निदिध्यासनद्वारा पूर्ण निष्ठा हो जाय तो जन्म देनेवाले कर्मोंकी समाप्ति हो जाती है। जब जन्म देनेवाले कर्म नहीं, तो मृत्यु कहाँसे। इसलिये वेदान्तियोंका यह डिण्डि[म] घोष है—

> न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
> न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥
>
> (आत्मोपनिषद् ३१)

पुनर्जन्मकी दृष्टिसे मानवका कर्तव्य

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठाधिपति जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीजी महाराज)

संसारमें सब जीव-जन्तु 'प्राणी' कहलाते हैं। जिनमें प्राण हैं, वे प्राणी हैं। सभी प्राणी सदा कुछ-न-कुछ काम करते ही रहते हैं। चींटी सदा इधर-उधर फिरती रहती है। कीड़े-मकोड़े भी कुछ-न-कुछ कार्य करते रहते हैं। पक्षी उड़ते या खाते-पीते रहते हैं। बुद्धिजीवी मानव अपने कार्यालयमें जाता है, वहाँ कुछ काम करता है। श्रमजीवी किसान खेती-बारीका काम करता है। मजदूर मजदूरी करता है। इस प्रकार मनुष्यमात्र विविध कामोंमें लगे रहते हैं। दुनियामें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो बिना कुछ किये सर्वदा चुपचाप बैठा रहे। इसी बातको स्पष्ट करते हुए भगवान्ने गीतामें कहा है—

> न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
>
> (३ । ५)

'कोई भी क्षणभरके लिये भी बिना कुछ कर्म किये नहीं रहता।' इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव सदा कर्मरत रहता है। छोटे गाँवमें रहनेवालोंके काम कम रहते हैं, बड़े शहरोंमें रहनेवालोंको अनगिनत काम रहते हैं। अब सोचना यह है कि 'मानवको किसलिये सदा काम करते रहना पड़ता है?'

मानवको इसीलिये सदा कर्मरत रहना पड़ता है कि जीवनमें अनिष्ट दूर करना और सुखी रहना चाह[ता है] और यह सुनिश्चित है कि मनुष्य तभी सुखी रह सक[ता है] जब वह किसी-न-किसी उपयोगी काममें लगा रहे। [बेकार] रहना उसके लिये बड़ा दुःखदायक है। मनुष्यको [काम] करते रहनेके लिये अंदरसे सदा प्रेरणा मिलती रहती [है।] जैसे प्रत्येक जीवके अंदर 'भूख' नामक एक चीज है। भूख अपनी शान्तिके लिये प्रत्येक मनुष्यको काम क[रनेकी] सदा प्रेरणा देती रहती है। यदि वह कोई काम नहीं [करता] है तो उसका पेट भूखकी ज्वालासे जलने लगता है। इस 'भूख' नामक रोगके शमनके लिये इसलिये मनुष्यको काम करना ही पड़ता है। सिरमें दर्द [होनेपर] यदि हम कोई दवा लगा देते हैं, तो वह वेदना दूर [हो] जाती है। कभी बहुत दिनोंके बाद फिर आरम्भ [होती है] पर यह भूख ऐसा रोग नहीं है। दूसरे रोगोंमें और इस[में] बड़ा अन्तर है। इस रोगके लिये तो प्रतिदिन, [प्रतिपहर] ...

दिखायी दे, तभी दवा लेनी पड़ती है। जबतक इसकी दवा न हो जाय, तबतक दूसरा काम होना कठिन होता है। इसके लिये सभीको प्रयत्न करना पड़ता है। बाघ या सिंह हिरन या बैलको मारता है तो वह इसी रोगको दूर करनेके लिये। मनुष्य भाँति-भाँतिके वेष बनाकर, नाना प्रकारसे सब तरहकी बुद्धि लगाकर पैसे कमाता है, तो इसीके लिये। भूखे-भटकते मानवको यदि ढूँढनेपर कहीं दो मुट्ठी चावल मिल जाते हैं तो वह तुरंत उन्हें सिजाकर खा लेता है और बड़ा तृप्त होता है। यह काम भी उसका इसीलिये होता है। मनुष्यको जीवित रहनेके लिये काम करना ही चाहिये। वह एक क्षण भी निकम्मा नहीं रह सकता।

फिर यह बात भी है कि मनुष्य यदि कुछ भी काम न करे तो उसका शरीर बेकार बन जाता है। अतः दरिद्र-धनी सब काम करते हैं। बल्कि धनीको तो वस्तुतः मन-तनसे अधिक काम करना पड़ता है; क्योंकि उसको यह चिन्ता लगी रहती है कि उसके पैसे सुरक्षित रहने चाहिये। इस चिन्तासे उसका मन सदा काम करता रहता है। यह सत्य है कि एक उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मणकी अपेक्षा लाखों-करोड़ोंवाला धनी बहुत अधिक काम करता है।

मनुष्यके द्वारा किये जानेवाले काम विभिन्न हेतुओंसे विभिन्न प्रकारके होते हैं। मनुष्य कुछ काम अपने शरीरके लिये और अपने सम्बन्धियोंके लिये करता है। उसको अपने बाल-बच्चे, स्त्री, माता-पिता आदि सम्बन्धियोंका संरक्षण तथा भरण-पोषण करना पड़ता है। अतः उनकी देख-भालके लिये उसे काम करना पड़ता है। तदनन्तर अपने बैल, गाय, कुत्ते, बिल्ली, घरके नौकर-चाकर, अपने खेतोंमें काम करनेवाले मजदूर आदिकी भी देख-भाल करनेके लिये कुछ काम करना पड़ता है। फिर मनुष्यके लिये ग्राम-समाजके सम्बन्धमें भी काम रहते हैं। जैसे घरवालेका कर्तव्य अपने घरको साफ-सुथरा तथा सुन्दर रखना है, वैसे ही गाँववालोंका कर्तव्य है कि वे अपने गाँवको साफ, स्वच्छ तथा सुन्दर रखें। जिस प्रकार मनुष्यके लिये अपने कुटुम्बका काम करना आवश्यक है, उसी प्रकार गाँवका काम करना भी प्रयोजनीय है। इसके पश्चात्, देशके तथा राष्ट्रके काम आते हैं। जिम्मेवार मनुष्य उन कामोंका सम्पादन भी करता ही है।

इस प्रकार विभाजित कामोंमें छोटे-बड़े सभी काम— दन्तधावन करना, कपड़े साफ करना, स्नान करना, भोजन करना आदि काम अपने निजके प्रयोजनके लिये किये जाते हैं। घर बनाना, उसको साफ रखना, घरमें आवश्यक चीजोंका संग्रह तथा रक्षण करना इत्यादि परिवार-सम्बन्धी काम हैं। नाले बनाना, कुएँ-तालाबोंका निर्माण तथा उनकी मरम्मत कराना, गाँवमें दवाखाना खोलकर रोगोंको दूर करनेके लिये प्रबन्ध करना और शिक्षालयोंकी स्थापना करना आदि ग्राम-समाजके काम हैं। देशभरकी भलाईके लिये अन्यान्य बहुत-से काम किये जाते हैं, जिनसे आजकलके लोग भलीभाँति परिचित हैं।

जो सशक्त हैं, वे अशक्तकी रक्षा करते हैं। मनुष्य अपने बच्चोंको उनकी छोटी अवस्थामें पाल-पोसकर बड़ा करता तथा योग्य बनाता है और बादमें अपनी वृद्धावस्थामें वह उनके द्वारा पाला-पोसा जाता है। यह सब काम बराबर चलते आ रहे हैं। यह स्वभाव केवल मनुष्य-समाजमें ही नहीं, परंतु पशु-पक्षियोंमें भी न्यूनाधिक रूपमें देखा जाता है।

सारी दुनियामें काम चलते रहते हैं। मनुष्य इन विभिन्न कामोंमें यथायोग्य भाग लेता है। बहुत-से लोग प्रधानतासे समाज-कल्याणके लिये विविध कार्य करते हैं, साथ ही अपना काम भी करते जाते हैं।

मानवके लिये साधारणतः तीन ही चीजें अत्यन्त आवश्यक हैं—(१) भूख मिटानेके लिये आहार, (२) धूप-सर्दी आदिसे अपनेको बचानेके तथा मान-संरक्षणके लिये वस्त्र और (३) विश्राम तथा निवास करनेके लिये घर। इनके अतिरिक्त जो चीजें वह एकत्र करता है, वे उसके बाल-बच्चोंके पालन-पोषण और उनके विवाह आदि तथा अन्यान्य सामाजिक, व्यक्तिगत आवश्यकताकी पूर्ति या संग्रहवृत्तिकी चरितार्थताके लिये करता है।

पहले भूखको रोगके रूपमें और भोजनको उसकी दवाके रूपमें बताया गया है। इसमें एक विशेषता है—

क्षुद्व्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां
स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात् प्राप्तेन संतुष्यताम्।
शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथावाक्यं समुच्चार्यता-
मौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपानैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम्॥

(भगवत्पाद श्रीशंकराचार्य—साधनपञ्चकम्—४)

इस श्लोकमें भगवान् श्रीशंकराचार्यजी, 'क्षुधा नामक व्याधिको अन्नरूपी औषधसे दूर करो' यह आदेश

है। रोगी उतनी ही औषध खाता है, जितनी उसे अपना
रोग दूर करनेके लिये पर्याप्त हो। अपनी रुचिके अनुसार
दवाओंको मनमाने तौरपर लाकर नहीं खाता। वहाँ भी, जो
दवा सस्तेमें मिलती है, उसीको खरीदकर खाता है। इस
श्लोकका तात्पर्य है कि शरीर-धारण करनेके लिये साधारण
भोजन ही पर्याप्त है।

इन आवश्यक चीजोंको उपलब्ध करनेके लिये जो काम
किये जाते हैं, उनके अतिरिक्त मानवको दूसरे काम भी
रहते हैं। कभी-कभी मानव मन्दिर, मस्जिद या गिरजाघर
बनाता है; भस्म-रुद्राक्ष आदि धारण कर पूजा-पाठ करता है;
संध्या-उपासना आदि कर्म करता है; भजन करता है।
इसपर यह प्रश्न होता है कि 'इन कामोंसे क्या उसकी भूख
मिटेगी ? क्या उसे वस्त्र मिल जायगा और क्या रहनेके लिये
घर प्राप्त हो जायगा ?' मोटी दृष्टिसे देखनेपर तिलक धारण
करना, मन्दिर बनाना, पितृ-श्राद्ध करना, पूजा-पाठ करना,
अन्नदान करना आदि कर्म उपर्युक्त अत्यन्त आवश्यक
चीजोंको उपलब्ध करनेके लिये नहीं किये जानेके कारण
अनावश्यक मालूम होते हैं। परंतु मानव अनादिकालसे
ऐसे काम भी करता आ रहा है। अतः हमें विचार करना
चाहिये कि इनसे क्या लाभ होते हैं ? मानव इनको क्यों
करता है ?

मान लीजिये, हम किसी पहाड़ीको इस ओर रहते हैं।
हमारे पास हजार रुपये हैं। यह पूरा धन पैसोंके सिक्केके
रूपमें है। वहाँ चोर आते हैं। ऐसा भय लगा रहता है कि
उनके और हमारे बीचमें झगड़ा होगा। परंतु यदि हम
पहाड़ीके ऊपर चढ़कर उस पार चले जायँ तो यह भय नहीं
रहेगा। उसी समय भाग्यवश कोई मनुष्य आकर पूछता
कि 'क्या उन सिक्कोंके बदलेमें आप एक हजार रुपयेके
नोट लेंगे ?' तो हम क्या करेंगे ? पैसोंको गठरी उसे झट
देकर नोट ले लेंगे और दौड़कर पहाड़ीके उस पार जाकर
सुखी रहेंगे। परंतु, यहाँ एक शर्त है। वह यह है कि हमें
जो नोट मिले हैं, वे पहाड़ीके उस पार भी चलनेवाले होने
चाहिये। प्रत्येक जीवकी भी यही स्थिति है। अपनी शक्तिके
अनुसार भविष्यके लिये जितना भी वह उपयोगी काम कर
सकता है, उतना ही अच्छा है और वह उसीको करना
चाहता है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि 'हमें तो इस लोकमें सुखसे
जीवित रहना है, भविष्यके बारेमें क्यों सोचना है।' इस
सम्बन्धमें एक कहावत है—

'नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हतः।'

आस्तिक कहता है—'अभी अच्छे-अच्छे कर्म करो;
क्योंकि इस जन्मके बाद दूसरा जन्म भी रहेगा।' उस समय

है। जो भी काम हम आज करते हैं, उनका फल इस जन्ममें नहीं मिला तो दूसरे जन्मोंमें अवश्य मिलना चाहिये। यह नियम आत्माके विषयमें अटल है। हमारे पूर्वजोंने न्यूटनके क्रिया-प्रतिक्रिया-नियम (Action-Reaction) को शताब्दियों पूर्व आत्मिक विषयमें भी प्रमाणित कर दिया था। हमारे शास्त्र इस बातकी घोषणा करते हैं कि किसी भी क्रियाकी प्रतिक्रिया अवश्य होती है।

क्रैस्तव (ईसाई) लोग जन्मान्तरको नहीं मानते हैं; परंतु उनकी कुछ बातोंसे पता चलता है कि वे अनजान होकर भी किसी-न-किसी रूपमें पुनर्जन्मको मानते हैं। वे कहते हैं कि 'शरीर-पतनके पश्चात् जीवात्माका न्याय-निर्णय भगवान्के समक्ष होता है और तब वह नरक या स्वर्गको भेजा जाता है। सुख-दुःखका अनुभव करनेवाला शरीर यद्यपि यहाँ पेटीमें पड़ा रहता है, फिर भी जीवको इस शरीरके साधनसे किये गये कर्मोंके कारण सुख या दुःख—स्वर्ग या नरकमें भोगना पड़ता है।' इसीको हम 'पुनर्जन्म' कहते हैं। उस देशमें (स्वर्ग या नरकमें) सुख-दुःख भोगनेके पहले उनके कारण जो कर्म थे, उनके लिये एक जन्म अवश्य था। इसी तर्कके अनुसार हम कह सकते हैं कि इस जन्मके सुख-दुःखके कारण इसके पहले जन्ममें किये गये कर्म हैं। इससे पुनर्जन्मवाद सिद्ध होता है।

पहले कहा गया है कि हमें सदा इस अमर आत्माको सुखी रखनेके लिये अधिक-से-अधिक सत्कर्म—अच्छे काम करने चाहिये। हमारे यहाँका नोट रूसमें नहीं चलता है। लेकिन कोई एक ऐसा राजा है, जो समस्त संसारका अधीश्वर है। उसका नोट कहीं भी चल सकता है। वह चतुर्दश भुवनोंका अधिप एक है और वह है—परमेश्वर। उसके सब राज्योंमें चलनेवाला एक नोट है। वह सदा सभी जगह चलेगा। वही है—'धर्म'।

श्रीरामचन्द्रजी वनगमनके पहले अपनी माताजीसे आज्ञा लेने जाते हैं। अपना प्रिय पुत्र जब यात्रामें दूसरे देशको जाता है, तब माता उसे मिठाइयाँ तथा और खानेकी चीजें बनाकर उसके साथ भेजती है, ताकि उसको मार्गमें कष्ट न हो। कौसल्याजी सोचती हैं कि चौदह वर्षके लिये वन जानेवाले मेरे प्रिय पुत्रके हाथमें क्या देकर भेजूँ! गम्भीर विचारके बाद कौसल्याजी श्रीरामसे कहती हैं—

यं पालयसि धर्मं त्वं धृत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु॥

(वाल्मीकिरामायण, अयोध्याकाण्ड २५। ३)

'राघव! तुम्हारी सुरक्षाके लिये मैं क्या करूँ? केवल धर्म ही निश्चय तुम्हारी रक्षा करेगा। तुम जिस धर्मका धैर्य और नियमके साथ पालन करते आ रहे हो, वही धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा। यही मेरा एकमात्र अनुग्रह है।' यह भी नियम प्रसिद्ध है कि यदि हम धर्मकी रक्षा और पालन करेंगे तो वह धर्म हमारा रक्षण तथा पालन करेगा—'धर्मो रक्षति रक्षितः।'

श्रीकौसल्याजीके कथनानुसार जो धर्म श्रीरामचन्द्रकी रक्षा करनेवाला था, वही धर्म परमेश्वरके अखण्ड चतुर्दश भुवन-राज्यमें चलनेवाला नोट है। अतः हमारे दूसरे कामोंके साथ-साथ हमें ऐसे भी काम अवश्य करने चाहिये, जो 'धर्म' कहलाते हैं और जिनका उल्लेख पहले मन्दिर बनाने, भगवान्‌की भक्ति करने, अन्नदान करने, सेवा-परोपकार करने इत्यादि 'अनावश्यक' कामोंके अन्तर्गत किया जा चुका है।

वास्तवमें जो भी कर्म ईश्वरार्पण-बुद्धिसे किया जाता है, वह धर्मके रूपमें परिणत हो जाता है और निरन्तर आनन्द देनेवाला होता है। अपने स्वार्थके लिये न होकर, दूसरोंकी भलाईके लिये, ईश्वरार्पण-भावनासे जो काम किया जाता है, वही 'धर्म' है। मन, वाणी और शरीर—इन तीनों कारणोंके द्वारा हमें ऐसे ही काम करने चाहिये जो धर्मके रूपमें परिणत हो जायँ। धर्मरूपी नोट किसी भी कालमें और किसी भी देशमें हमारे लिये उपयोगी और सुखदायक रहेगा। श्रीरामचन्द्रजीकी विपत्तियाँ बहुत बड़ी थीं। परंतु उनकी रक्षा इसी धर्मने की। धर्ममार्गमें रहनेवालेके सब (पशु-पक्षी भी) अनुकूल और सहायक बन जायँगे। इसके विपरीत अधर्म-मार्गमें रहनेवालेको सगा भाई भी छोड़ देगा। इस तथ्यको श्रीमद्रामायणमें हम देख सकते हैं—

यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम्।
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति॥

(अनर्घराघवनाटक १। ४)

'धर्ममार्गमें चलनेवाले रामचन्द्रजीका पशु-पक्षियोंने भी साथ दिया। अधर्ममार्गमें चलनेवाले रावणको सगे भाई विभीषणने भी छोड़ दिया।'

मृत्यु-मीमांसा

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित आचार्य श्रीअनिरुद्धाचार्य वेंकटाचार्यजी महाराज तर्कशिरोमणि)

'परलोक' और 'पुनर्जन्म' का माध्यम 'मृत्यु' है। एक लोकके रूपमें संचित विलक्षण शरीर-इन्द्रिय आदिका त्याग और अन्य लोकमें संचित विलक्षण शरीर-इन्द्रिय आदिका ग्रहण 'पुनर्जन्म' है। 'मृत्यु' के बिना ये दोनों अनुपपन्न हैं। अतः परलोक और पुनर्जन्मके जिज्ञासुओंको 'मृत्यु'के स्वरूपका ज्ञान भी परम आवश्यक है। 'मृत्यु'का स्वरूपज्ञान मोक्ष-कारण-सामग्रीमें भी अन्यतम है। अतः इस निबन्धरूप लेखमें 'दैवत-मीमांसा' के आधारपर 'मृत्यु-मीमांसा' की जाती है।

'अथ मृत्युः कस्मात्।'

अर्थात् 'मृत्युमें विद्यमान 'मृत्युत्व'का स्वरूप क्या है?' जिज्ञासाका समाधान कठ, कपिष्ठल, मैत्रायणी एवं तैत्तिरीय आदि संहिताओंमें उपलब्ध 'मृत्यु' शब्दके अर्थतः निर्वचन, शतपथ, गोपथ, जैमिनीय एवं ऐतरेय आदि विज्ञान-ग्रन्थोंमें उपलब्ध 'मृत्यु' शब्दके निर्वचन एवं शतबलाक्ष मौद्गल्य, आग्रायण, शाकपूणि एवं यास्क आदि नैरुक्तोंद्वारा अनुगृहीत 'मृत्यु' शब्दके निर्वचन कर रहे हैं। इनमें अथर्ववेदानुबन्धी 'गोपथब्राह्मणों'में उपलब्ध 'स समुद्रादमुच्यत। स मुच्युरभवत्। मुच्युरेव मृत्युः।' निर्वचन 'विश्लेषण'को मृत्युका 'मृत्युत्व' कह रहा है। नैरुक्त भगवान् यास्ककृत 'मारयति इति मृत्युः।' निर्वचन उच्छेदको 'मृत्युत्व' कह रहा है। नैरुक्त शतबलाक्ष मौद्गल्यकृत 'मृतं च्यावयति इति मृत्युः' निर्वचन मृतभागके निरसनको 'मृत्युत्व' कह रहा है। नैरुक्त आग्रायणकृत 'मुञ्चति इति मृत्युः' निर्वचन मोचनको 'मृत्युत्व' कह रहा है।

तो यह विश्लेषण, अवसान, उच्छेद, मोचन और च्यावन रूप धर्मोंका आश्रय (धर्मी) मृत्यु कौन है? जिज्ञासाके समाधानमें काठक, कपिष्ठल एवं मैत्रायणी आदि वैदिक शाखाएँ शतपथ, गोपथ, जैमिनीय एवं तैत्तिरीय आदि विज्ञान (ब्राह्मण) ग्रन्थ एवं आग्रायण, शतबलाक्ष मौद्गल्य, औदुम्बरायण और भगवान् यास्क आदि नैरुक्त प्रवृत्त हुए हैं। इनमें 'मैत्रायणी' शाखाका विज्ञान है—

(१) अग्निर्वै मृत्युः।

'अग्नि मृत्यु है।'

माध्यन्दिन शाखानुबन्धी 'शतपथ'का विज्ञान है—

(२) संवत्सरो हि मृत्युः। एष हीदमहोरात्राभ्यामायुः क्षिणोति। अथ म्रियन्ते।

'संवत्सर मृत्यु है। यही दिन और रात्रिद्वारा आयुका क्षय करता है। इससे पदार्थोंकी आयु क्षीण होती है। आयुका क्षय मृत्यु है।'

'शतपथ ब्राह्मण'का पुनरपि विज्ञान है—

(३) अवाङ् प्राणो वै मृत्युः।

'अवाङ्प्राण मृत्यु है।'

'जैमिनीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(४) अशनाया वै मृत्युः।

'बुभुक्षा मृत्यु है।'

'तैत्तिरीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(५) अपानान्मृत्युर्निर्भिद्यत।

'अपानसे मृत्युका प्राकट्य हुआ है।'

कण्व-शाखानुबन्धी 'शतपथ'का विज्ञान है—

(६) छायामयः पुरुषो मृत्युः।

'छायामय पुरुष मृत्यु है।'

'शतपथ'का पुनरपि विज्ञान है—

(७) श्रमो वै मृत्युः। आदित्यो मृत्युः।

'श्रम मृत्यु है। आदित्य भी मृत्यु है।'

कण्वशाखानुबन्धी 'शतपथ'का विज्ञान है—

(८) प्राणो वै मृत्युः।

'प्राण मृत्यु है।'

पुनरपि 'शतपथ'का विज्ञान है—

(९) अत्रिरूपात्मना एको मृत्युः। प्राणात्मना बहवो मृत्यवः।

'सूर्यरूप एक मृत्यु है। प्राणरूपसे अनेक मृत्युएँ।'

'मैत्रायणी शाखा'का विज्ञान है—

(१०) एकशतं मृत्यवः।

'एक सौ एक मृत्यु हैं।'

'तैत्तिरीयशाखा'का विज्ञान है—

(११) अमुमन्द्रः परं मृत्युं परमन्तं तु मध्यमन्द् अविरेवायमो मृत्युमन्द्रागाश्रुतन्द्।

'सूर्य पर मृत्यु है। पवमान मध्यम मृत्यु है। अग्नि तृतीय मृत्यु है। चन्द्रमा चतुर्थ मृत्यु है।'

'शाङ्खायन ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(१२) मृत्योर्हं वा एतौ वज्रबाहू यदहोरात्रे।

'मृत्युके ये वज्ररूप हाथ हैं, जो दिन-रात हैं।'

'जैमिनीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(१३) स यो ह स मृत्युरग्निरेव सः।

'वह जो वह मृत्यु है, वह अग्नि ही है।'

पुनरपि 'जैमिनीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(१४) अहोरात्रे मृत्यू।

'दिन और रात्रि मृत्यु हैं।'

'जैमिनीय ब्राह्मण'का स्थलान्तरमें विज्ञान है—

(१५) अग्निवायुसूर्यचन्द्रमसा मृत्यवः।

'अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्रमा—ये मृत्यु हैं।'

पुनरपि 'जैमिनीय ब्राह्मण'का विज्ञान है—

(१६) प्रजापतिर्वै मृत्युः।

'प्रजापति ही मृत्यु है। उसका नाम प्रभूयान् है।'

मीमांसा

'कर्म-मीमांसा'में संदिग्ध वस्तुके निर्णयके लिये आविष्कृत न्याय-कलापोंके आधारपर इन सब निगम-वाक्यों तथा नैरुक्तोंके मतोंका समन्वय करके मृत्युके स्वरूपका 'इदमिदम्, इदमित्थम्, इदमियत्' रूपसे निर्णय किया जाता है।

'गोपथ-ब्राह्मण'में उपलब्ध 'स समुद्रादमुच्यत। स मुच्युरभवत्। मुच्युरेव मृत्युः।' विज्ञानके अनुसार प्रत्येक पदार्थमें विद्यमान जीवनरूप अंशुओंका विशकलन 'मृत्यु' है। वह विशकलन अग्नि, वायु, सूर्य और सोमसे होता है। अतः 'मैत्रायणी संहिता'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'अग्निर्वै मृत्युः।' जैसे अग्नि प्रतिक्षण पदार्थोंको क्षीण करता है, वैसे वायु भी करता है। अतः 'जैमिनीय ब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'वायुर्वै मृत्युः।' वायु दो प्रकारका है—याम्य (उष्ण) और सौम्य (शिव) वायु। इनमें यहाँपर 'वायु' शब्दसे याम्य वायुका ही ग्रहण होता है। कारण कि वही पदार्थोंके सौम्य-अंशुओं (अमृतमय आयुरूप अंशुओं) को प्रतिक्षण क्षीण करता रहता है। सौम्य वायु तो उनका रक्षक है, अतः याम्य वायु 'मृत्यु' है। सूर्य भी प्रतिक्षण पदार्थोंके अमृतमय कणोंको क्षीण करता रहता है। अतः 'जैमिनीय ब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'सूर्यो वै मृत्युः।' चन्द्रमा भी अग्निका मृत्यु है। चन्द्रमा भी सूर्यरश्मियों और आग्नेय किरणोंकी मृत्यु है। अतः 'जैमिनीय ब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'चन्द्रमा वै मृत्युः।' 'चन्द्रमा' शब्दसे यहाँपर जलका भी ग्रहण है। जल अग्निकी मृत्यु है। जैमिनीय ब्राह्मणमें इनके नामान्तर भी उपलब्ध हैं। अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्रमा-रूप मृत्युओंके क्रमशः 'रोहत्', 'अजिर', 'प्रोचत्' और 'अत्यत्'—ये नामान्तर हैं। इनमें उत्तम, मध्यम और अधम विभाग भी विज्ञान (ब्राह्मण) ग्रन्थोंमें उपलब्ध हैं। इस विषयमें 'तैत्तिरीय ब्राह्मण'का विवेचन है—

> अमुमाहुः परं मृत्युं पवमानं तु मध्यमम्।
> अग्निरेवावमो मृत्युश्चन्द्रमाश्चतुरुच्यते॥

सूर्यके दो रूप हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। इनमें बाह्य सूर्य है, आभ्यन्तर प्राणरूपमें प्राणियोंमें स्थित है। प्राणोंकी स्थिति भी सोम-अंशुओंपर ही विश्रान्त है। प्राण भी प्रतिक्षण सोमांशुरूप जीवनखण्डोंके क्षीण करनेसे 'मृत्यु' है, अतः 'शतपथ'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'प्राणो वै मृत्युः।' इनमें सूर्यरूपसे वह शरीरके बाहर व्याप्त है, प्राणरूपसे वह शरीरके भीतर व्याप्त है। इन दो रूपोंसे बाह्य और आभ्यन्तर स्थितिको ही वेदान्तोंमें 'अन्तर्व्याप्ति' और 'बहिर्व्याप्ति' कहा है। इस रहस्यको न जाननेके कारण कतिपय अज्ञजन परमात्माकी जीवात्मामें अन्तर्व्याप्ति है, अथवा बहिर्व्याप्ति है—इसको लेकर महान् कलहमें प्रवृत्त हैं। उनको ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें प्रतिपादित रहस्योंका यथार्थ ज्ञान न होनेसे वे आकल्प अज्ञान-पङ्कमें ही निमग्न रहेंगे। अग्नि, वायु और सूर्यद्वारा पदार्थनिष्ठ सोम-अंशुओंका प्रतिक्षण क्षय संवत्सरकी सहायतासे अहोरात्र-द्वारा ही होता रहता है। अतः 'शतपथब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है 'संवत्सरो हि मृत्युः। एष हीदमहोरात्राभ्यामायुः क्षिणोति। अथ म्रियन्ते।' श्रम भी अग्निरूप है। उससे भी अमृतरूप सोमकलाओंका क्षय होता है। अतः 'शतपथ'-में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'श्रमो वै मृत्युः।' अतएव श्रमसे मनुष्य क्लान्त हो जाता है। वस्तुकी स्वस्वरूपमें स्थिति 'जीवन' है। उससे विच्युति 'मृत्यु' है। अशनाया (बुभुक्षा) से जीव स्वस्थितिसे च्युत हो जाता है। अतः 'शतपथ'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'अशनाया वै मृत्युः।' मृत्यु एक प्रकारका काला आग्नेय प्राण है। अतः 'शतपथब्राह्मण'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'छायामयः

मृत्युः ।' पुरुषका अर्थ वेदोंमें प्राण है। प्राट् प्राण सूर्य है। अवाट् प्राण अग्नि है। अग्नि मृत्यु है। अतः 'शतपथ' में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'अवाङ् प्राणो वै मृत्युः ।' इस अवाङ् प्राणकी प्राणियोंके अपानमें स्थिति है। अतः 'तैत्तिरीय संहिता'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—'अपानो वै मृत्युः ।' पदार्थ दो प्रकारके हैं—अमृत और मृत्यु। इनमें अमृत पदार्थोंका च्यावन नहीं हो सकता, कारण कि वे अमृत-धर्मा हैं। मृत पदार्थोंका ही अवाङ् प्राण च्यावन करता है। अतः नैरुक्त शतबलाक्ष मौद्गल्यने 'मृत्यु' शब्दका 'मृतं च्यावयति इति मृत्युः ।' निर्वचन किया है। यहाँपर 'मृत' शब्दके अर्थमें मतभेद है। कतिपय विद्वान् क्षरणशील पदार्थोंको मृत मानते हैं। उनके मतमें क्षरणशील पदार्थोंके परमाणुओंका च्यावन करनेके कारण अवाङ् (पार्थिव) प्राण मृत्यु है। अन्य विद्वान् 'मृत' शब्दका प्राणहीन वस्तु अर्थ करते हैं। उनके मतमें प्राणहीन पृथिवी, जल और वायुओंका च्यावन मल-मूत्र और अपान-वायुके रूपमें अवाङ् प्राण करता रहता है। अतएव—'मृतं प्राणहीनं वस्तु च्यावयति इति मृत्युः ।' निर्वचनसे 'अपान-प्राण' 'मृत्यु' है। यह 'मृत्यु' सूर्यरूपसे एक है, प्रत्येक पदार्थमें प्राणरूपसे स्थित अनेक। अतः 'शतपथ'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—

'अहोरात्रमयश्च एष मृत्युः, प्राणात्मना बहवो मृत्यवः ।'

मृत्युके दिन और रात्र ग्रसमर बाहु हैं, अतः 'शतपथ'में विज्ञान प्रवृत्त हुआ है—

'अहोरात्रे वा एतौ मृत्योर्बाहू ।'

स्तुति-ऋचा

'निरुक्त'में भगवान् यास्कने 'मृत्यु'की स्तुतिमें 'तस्यैषा भवति' निर्देश करके 'परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम्' ऋचाको उद्धृत किया है। इसकी आनुपूर्वीके शौनक-गुम्फन इस रूपमें उपलब्ध है—

> परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां
> यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
> चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि
> मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥
>
> (ऋग्वेद १० । १८ । १)

अन्वय—

हे मृत्यो परम् पन्थाम् अनुपरेहि, यः ते देवयानात् इतरः स्वः पन्थाः । चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि । नः प्रजाम् मा रीरिषः । उत वीरान् मा रीरिषः । इति प्रार्थयामः ।

भाष्यम्—

(हे मृत्यो) हे मृत्युरूप अग्नियें अभिमानी देव! (त्वम्) आप (परम्) अन्य (पन्थाम्) मार्गमें (अनुपरेहि) पधारें, (यः) जो मार्ग (ते) आपका (देवयानात्) देवयान मार्गसे (इतरः) भिन्न (स्वः) अपना (पन्थाः) मार्ग है। (अहम्) मैं (संश्रुतः) मंश्रुतः-श्रुति (चक्षुष्मते) चक्षुष्मान् और (शृण्वते) कर्णवान् आपके उद्देश्यसे (ब्रवीमि) कहता हूँ कि (नः) हम लोगोंकी (प्रजाः) प्रजाओंको (मा) मत (रीरिषः) क्षीण करें। (उत) और (वीरान्) वीरोंको भी (मा) मत (रीरिषः) क्षीण करें।

विशेष—

ौर 'शृण्वते' 'ब्रवीमि' कहा है । इससे अभिमानीरूप त्यु चेतन और सर्वेन्द्रियसम्पन्न है—यह सिद्ध हो रहा है। ऋचामें 'मृत्यु' शब्दसे 'रोहत्', 'अजिर', 'प्रोचत्' और अस्यत्' आदि सब मृत्युओंका ग्रहण होता है।

आगम और पुराण—

विशुद्ध नैगमवचनोंसे मृत्युके स्वरूपका 'इदमिदम्', इदमित्थम्' और 'इदमियत्' रूपसे निश्चित किया गया है। आगमों और पुराणोंमें भी मृत्युके स्वरूपकी पुष्कल चर्चा है। उसका भी यत्किंचित् उल्लेख मृत्यु-स्वरूपके विशद ज्ञानके लिये किया जाता है।

तन्त्रोंमें 'वैखानस-आगम'का विज्ञान है कि अपानरूप इन्द्र नाभिमें रहकर मल-मूत्र और रेतका विसर्ग करता है। इन्द्रके छः प्रकारके शासनोंमें विक्षेप भी एक प्रकारका शासन है। विक्षेप अवाङ् प्राणका कार्य है। अवाङ् प्राण 'मृत्यु' है। 'ऐतरेय आरण्यक'का विज्ञान है—'मृत्युरपानो भूत्वा शिश्नं प्राविशत्।' 'मृत्यु प्राण, अपान (अवाङ् प्राण होकर शिश्नमें अवस्थित है।' उसका शुक्र और मूत्रका उत्सर्ग कार्य है। 'परशुराम-कल्पसूत्र'का विज्ञान है—मल-विसर्जक इन्द्रिय 'पायु' है। अपान प्राणके दो भाग हैं—'पायु' और 'अपान'। इनमें 'पायु'से मलका उत्सर्ग होता है। मूत्र और शुक्रका उत्सर्ग 'अपान'से होता है, जो शिश्नाश्रित है। ये दोनों अवाङ् प्राणरूप मृत्युके अवान्तर अवतार हैं। 'गर्भोपनिषद्'-का भी यही विज्ञान है—'अपानमुत्सर्गे।' पाञ्चरात्र-तन्त्रका विज्ञान है—'मृत्युका निःश्वास ही कृष्ण-आयस-समानाकार हेतु है।'

पुराण

'विष्णुधर्मोत्तर' पुराणका विज्ञान है—'मृत्यु'की देवियाँ 'भीरव' नामक 'अप्सराएँ' हैं। श्रीमद्भागवतका ज्ञान है—'जीवात्माकी लोकान्तरमें गमनकी इच्छासे द्वार उत्पन्न हुआ। उसकी देवता 'मृत्यु' है।' अपान रूप और उसकी देवता मृत्यु दोनोंसे पृथक्त्व (अलग ा) कार्य उत्पन्न होता है।

दर्शन

'वैशेषिक दर्शन'में भगवान् कणादसे अनुगृहीत—'उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनप्रसारणंगमनमिति कर्माणि।' —सूत्रमें परिगणित अवक्षेपणरूप कर्म अथवा उसका प्रवर्तक यन्त्र वेदमें 'मृत्यु' शब्दसे अभिहित है। कारण कि उत्सर्ग (अवक्षेपण) ही अवाङ् प्राणरूप मृत्युका भी कार्य (कर्म) है।

वेदज्ञोंके मत

वेदज्ञ विद्वानोंने भी मृत्यु-स्वरूपके विषयमें गहन और प्रकृति-सुन्दर विचार किया है। उनके मतोंका भी मृत्यु-स्वरूपविषयक ज्ञानकी विशदताके लिये उल्लेख किया जाता है। मतभेदोंसे आलोकित ज्ञानका स्वरूप दृढ और यथार्थ होता है। इनमें वेदज्ञ श्रीमधुसूदन झा महोदयका विज्ञान है—

> स्थितिस्वभावं त्वमृतं स मृत्यु-
> गतिस्वभावः प्रथितस्ततोऽयम्।
> प्राणः स्वभावेन चलोऽस्ति मृत्यु-
> स्तस्मादसत् प्राण इति ब्रुवन्ति॥

अर्थात् "विश्वमें 'रस' और 'बल' भेदसे दो पदार्थ हैं। स्थितिस्वभाव पदार्थ 'अमृत' है, अर्थात् वह रस अथवा ज्ञान है। गतिस्वभाव पदार्थ 'मृत्यु' है। वह प्राण अथवा बल है। प्राण स्वभावसे चल-स्वभाव है, अतः वह 'मृत्यु' है। इसलिये वेदोंमें प्राणको 'असत्' शब्दसे व्यवहृत किया है। प्राण बल है, वह कर्म है, अतः बल अथवा कर्म 'मृत्यु' हैं।"

'ब्रह्मसंधान' नामक ग्रन्थमें योगियोंका मत है—

> शक्तिर्वसति पाताले ब्रह्माण्डे वसतीश्वरः।
> कालस्त्वन्तरे ज्ञेयो जरा तस्मात् प्रजायते॥

परमात्माकी 'इच्छा', 'ज्ञान' और 'प्राण'रूप—तीन शक्तियाँ हैं। इनमें इच्छा (शक्ति) पाताल (ब्रह्ममूल) में रहती है। ज्ञानरूप परमात्मा ब्रह्माण्ड (सिर)में निवास करते हैं। इन दोनोंके मध्य (हृदय) में काल (प्राण) निवास करता है। इस प्राणरूप कालसे प्राणियोंमें जरा (*क्षीणता*) *आती है। प्रतिक्षण क्षीणता (क्षय) ही 'मृत्यु'* है। अत्यन्त उच्छेद 'यम' है। प्रतिक्षण 'मृत्यु' जरा है।

अग्नि, सूर्य और प्राणरूप मृत्युसे मृत-पदार्थोंका प्रतिक्षण 'क्षय' ही भगवान् बुद्धके 'सर्वं क्षणिकम्' सिद्धान्तका मूल है। भगवान्‌का यह क्षणिक-सिद्धान्त मृत-पदार्थों (जड पदार्थों) की दृष्टिसे सर्वथा परिशुद्ध, यथार्थ और वैदिक है। किंतु मृत पदार्थोंमें एक अमृत पदार्थ भी अनुस्यूत है, जो क्षणिक (क्षण-विनाशी) न होनेसे अमृत है। केवल इसका अस्वीकार अवैदिक है, अर्थात्

प्रकृतिमें विद्यमान तत्त्वोंकी स्थितिसे विरुद्ध होनेसे भ्रान्त है। 'मूर्तं च्यावयति मृति मृत्युः' निर्वचनसे प्रकट महिमा मृत्युका अमृत पदार्थपर प्रभाव नहीं है। वायुरूप प्राण उदरमें मृत अन्न, जल और वायुके मृत भागोंका च्यावन (बहिःक्षेपण) करनेके कारण 'मृत्यु' शब्दसे अभिहित है; परंतु वैदिक विद्वानोंके मतमें चक्षुः, श्रोत्र आदिमें स्थित मल-भागके बहिःक्षेपणके कारण तत्स्थ प्राण भी 'मृत्यु' है।

मृत्युका उपयोग

अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवत-भेदसे तीन प्रकारके विश्वमें 'मृत्यु' प्राणका उपयोग (कार्य) पदार्थोंमें वैविध्य उत्पन्न करना है। यदि एक अमृत पदार्थ ही होता और मृत्यु पदार्थ न होता तो उस अवस्थामें एक ही पदार्थकी सत्ता रहती। पदार्थगत वैविध्य दृष्टिगोचर न होता। अमर समबल अग्नि और सोम अमर एक ही पदार्थ उत्पन्न कर सकते थे। मृत्युसे विषमबल से दोनों नानाविध पदार्थोंको उत्पन्न करते हैं। अमृत और मृत्यु-भागमें प्रजापति (परमात्मा) की इच्छा ही कारण है। पदार्थगत वैविध्य ही इसके पृष्ठमें विद्यमान इच्छाका अनुमापक है। इच्छा मनके बिना अनुपपन्न है, अतः अर्थापत्ति प्रमाणसे वह मनकी अनुमापिका है। 'मन' भी मनस्वीके बिना अनुपपन्न है। वह मनस्वी (प्रजापति) का अनुमापक है। वह प्रजापति त्रिधातुमय है। मनः, प्राण और वाक्—उस मनस्वी प्रजापतिकी तीन धातुएँ हैं। इनमें 'वाक्' धातुमें वैषम्य (वैविध्य) 'प्राण' धातुसे आता है। यह प्राण ही मृत्यु पदार्थ है। प्राणमें वैविध्य 'मन' से आता है। इस प्रकार यह विश्वगत वैविध्य मृत्यु (प्राण) से उत्पन्न हुआ है। इससे विश्वमें 'मृत्यु'की महत्त्वपूर्णता भी सिद्ध होती है।

दो प्रकारका मृत्यु

मृत्यु दो प्रकारका है—एक सोमका मृत्यु, दूसरा अग्निका मृत्यु। इनमें सोमका मृत्यु 'यम' है। अग्निका मृत्यु 'आपः' (जल) है। इनको 'अशनाया' भी कहते हैं। यमरूप मृत्यु रूक्षस्वभाव और उष्ण है। यह स्नेहका भक्षण करके, अर्थात् स्नेहको आत्मसात् करके वस्तुको शिथिल-अवयव करके नष्ट कर देता है। अशनाया (बुभुक्षा)-रूप मृत्यु तो वस्तुओंका संहार करके, वस्तुके सब अवयवोंको उदरमें निमग्न करके परिणामद्वारा उसको नष्ट करती है। एक वस्तुका विनाश ही दूसरी वस्तुका निर्माण है। इस प्रकार ये दोनों मृत्युएँ पदार्थगत वैविध्यके कारण होनेसे महत्त्वपूर्ण हैं।

रसायन-शास्त्र

'रसायन' शास्त्रका उपयोग हमने यहाँ देवताओंके वर्णों (रंगों) के विश्लेषणमें किया है। वेदोंमें वर्णभेदका कारण सौर, आग्नेय, वायव्य और पार्थिव रश्मियोंके भिन्न-भिन्न सम्मिश्रण हैं। 'ऐतरेय ब्राह्मण'में मृत्युका रंग 'कृष्ण' माना गया है। काले रंगमें किसी भी सौर रश्मिकी आहुति नहीं है। कृष्ण वर्ण तो केवल विशुद्ध पार्थिव किरणोंसे दग्ध आग्नेय रश्मियाँ ही हैं।

'मृत्यु'की मूर्ति

वस्तुमात्रमें विद्यमान वस्तुगत अवयवोंके दलित विदारणके कारण आग्नेय प्राणविशेष 'मृत्यु' है। उसकी मूर्तिका निर्माण उसके विशुद्ध ज्ञान और उसकी उपासनाके लिये निदान-शास्त्रके संकेतोंके आधारपर श्रीयुत कृष्णराज ओडयारने 'श्रीतत्त्वनिधि' ग्रन्थमें वैदिक आधारपर इस रूपमें विहित किया है—

> पाशखड्गाङ्कुशगदाभासमानकराम्बुजम्।
> सर्वोमरगणवन्द्याङ्घ्रिं मृत्युं महिषवाहनम्॥

'मृत्यु महिषवाहन है। वह देवसमूहद्वारा पूज्यमान-चरणकमल है। वह चतुर्भुज है। उसके पाश, खड्ग, अंकुश और गदा ये अस्त्र हैं।'

निदान-रहस्य

मृत्युका वाहन 'महिष' मोहका निदान-सूचक है। मोहका यहाँ दूसरा नाम 'मरण' है। देवसमूहके द्वारा चरणोंका वन्दन प्राणोंके अनेक परिवर्तनोंका निदर्शन है, अर्थात् मृत्यु प्राणोंमें अनेक परिवर्तनोंसे उनमें वैविध्य लाता है। उसके चार हाथ चारों दिशाओंमें उसकी व्याप्तिके संकेत हैं। उनमें विद्यमान पाश, खड्ग, अंकुश और गदा मृत्युके द्वारा प्रतिक्षण क्रियमाण प्रदेश और नाश आदि सब विनाशके सूचक हैं।

प्रतिभट

'मृत्यु' का प्रतिभट अमृत (सोम) है। इसे इसका विनाशमें साधर्म्य है। प्रतिक्षण विनाश और उत्पत्ति—यह यम और मृत्युमें वैधर्म्य भी है।

वंश

'मृत्यु'के वंशके विषयमें वेदज्ञोंका मत है कि विश्वके मूलमें परस्पर-विरुद्धस्वभाव 'रस' और 'बल' नामक दो तत्त्व हैं। 'रस' और 'बल' के परिणाम 'अमृत' और 'मृत्यु' हैं। अमृत और मृत्युके परिणाम 'स्थिति' और 'गति' हैं। इस परम्परासे मृत्यु 'बल' तत्त्वका वंशज है।

मृत्युके तीन विवर्त

अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवत-भेदसे 'मृत्यु' के तीन विवर्त हैं। इनमें विष, सर्प और वृश्चिक आदि 'अधिभूत मृत्यु' हैं। प्राण 'अध्यात्म मृत्यु' है। काम, क्रोध, लोभ आदि भी 'अध्यात्म मृत्यु' हैं। अग्नि, सूर्य, वायु और चन्द्रमा आदि 'अधिदैवत मृत्यु' हैं।

मृत्युके तीन रूप

भूतरूप, प्राणरूप और अभिमानीरूप भेदसे मृत्युके तीन रूप हैं। इनमें अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा और प्रतिवस्तुमें विद्यमान प्राण 'भूतविध मृत्यु' है। इनमें विद्यमान 'प्राण' 'प्राणविध मृत्यु' है। इन सब प्राणोंमें विद्यमान 'चेतना धातु' (अहंकार) 'अभिमानीरूप मृत्यु है।' जो 'मैं मृत्यु हूँ'—यह अभिमान करता है, यह 'अभिमानी रूप मृत्यु' है। यह चेतनामय और सर्वेन्द्रिय-शक्तिमय है। इसके उद्देश्यसे ही ऋषि संकुसुक ने **'चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि' कहा है।**

इस प्रकार मृत्युकी यह मीमांसा वेदके आधारपर की गयी है। इसके स्वरूपका ज्ञान 'परलोक और पुनर्जन्म' के जिज्ञासुओंको परम आवश्यक है। श्रीगीताचार्यने इस मृत्युके लिये ही 'तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ।' कहा है। उनकी कृपासे उससे अतितरण हो—यह कामना है।

परलोक और पुनर्जन्मका सत्य सिद्धान्त

(लेखक—परमपूज्य गुरुजी—श्रीमाधव सदाशिव गोळवलकर)

भौतिक जगत्में यह नियम सब लोग जानते हैं कि प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया अनिवार्यतः होती है। मनुष्य-जगत्में प्रत्यक्ष रूपसे यह अनुभव होता है। जो जैसा करेगा, वैसा उसे भोगना पड़ेगा। प्रत्येक कर्मका तदनुरूप फल भोगना ही होता है। प्रत्यक्षमें हम यह देख सकते हैं कि कोई व्यक्ति यदि मद्यपान करे तो वह उन्मत्त होकर, स्मृति-ज्ञान नष्ट होनेके कारण असम्बद्ध बोलता है, लड़खड़ाते चलता है, न करने योग्य कार्य करता है, अनेक बार गंदगीमें लोटता रहता है। कार्यका फलभोग इस प्रकार प्रत्यक्ष देखनेमें आता है।

कई प्रकारके कर्मोंका परिणाम तुरंत हाथोंहाथ मिल जाता है। किंतु अनेक कर्म ऐसे होते हैं कि जिनका फल कालान्तरमें—किन्हीं-किन्हींका बहुत कालके पश्चात् दिखायी देता है। मनुष्य-जीवनमें प्रतिदिन अनेक प्रकारके कर्म होते रहते हैं। शरीरसे, वाणीसे, मनसे कर्मयोनि मनुष्य निरन्तर कर्म करता ही रहता है। कर्मके बिना एक क्षण भी वह रह नहीं सकता—'नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।' यह वचन प्रत्यक्ष अनुभवका है। इन असंख्य कर्मोंमेंसे कुछ सद्यःफलदायी, कुछ विलम्बसे परंतु इसी जीवनमें फल देनेवाले होते हैं। तथापि अनेक कर्मोंका परिणाम फलभोगरूपमें इसी जन्ममें अनुभवमें नहीं आता। जीवनकी समाप्तिके साथ सारे कर्म भी समाप्त हो जाते हैं—यह बात अशास्त्रीय एवं अनुभवविरुद्ध है; क्योंकि कर्म कभी निष्फल नहीं हो सकता। यह सर्वमान्य सत्य सिद्धान्त है। फिर इन अभुक्त कर्मोंका फलभोग जीव कब कर सकता है?

भिन्न-भिन्न धर्मोंमें विभिन्न प्रकारसे इस प्रश्नको समाधान करनेका प्रयत्न किया गया है। ईसाई, इस्लाम आदि मतोंके अनुसार 'जगत्के अन्तमें ईश्वर सब जीवोंके कर्मोंका निर्णय कर शुभकर्मवालोंको स्वर्गमें और अशुभ-कर्मवालोंको नरकमें उन कर्मोंसे प्राप्त भोग भोगनेके लिये भेज देता है।' परंतु यह विचार युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। एक छोटे-से जन्ममें किये हुए कर्मका भोग चिरकालतक करना पड़े—यह तो अन्याय है। फिर, न्याय-दानमें इतना प्रदीर्घ विलम्ब होना भी अयुक्त ही कहा जा सकता है। भूल सुधारकर जीवनको सुयोग्य, सुसंस्कृत तथा उच्च बनानेका अवसर सामान्य जीवनमें भी दिया जाना योग्य माना जाता है। भगवान्के राज्यमें ऐसे अवसरका न

मिलना, यह बात भगवान्‌की न्यायप्रियता तथा उनके कारुण्यसे विसङ्गत है।

अपने सनातनधर्ममें इसका समाधान विचार तथा अनुभवके अनुरूप किया गया है। जिस जीवने जो कर्म किये हों, उनका फल भोगनेके लिये अन्यान्य लोक हैं, जिनमें वह अपने शुभाशुभ कर्मोंके फलोंका भोग करता है तथा कुछ कर्मोंके फलभोगके लिये इसी मर्त्यलोकमें पुनः विभिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहणकर फल भोगता है और मनुष्य बनकर अपनी उन्नति करनेका अवसर बार-बार प्राप्त करता है और क्रमशः अपने सब कर्मोंको भोगकर उनका क्षय करता हुआ, अन्ततोगत्वा पूर्ण सुखशान्तिरूप मुक्ति प्राप्त करता है। अपने शास्त्रोंने इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार परलोक तथा इहलोकमें पुनर्जन्मका विचार केवल तर्क अथवा अनुमानमात्र प्रतीत हो सकता है, किंतु हमारे पूर्वजोंने प्रखर तपस्याके बलपर दिव्य दृष्टि प्राप्तकर इन सत्योंका साक्षात् ज्ञान प्राप्त किया था। केवल तर्क या अनुमानके आधारपर परलोकोंके अस्तित्व तथा पुनर्जन्म-ग्रहणकी वास्तविकताका उन्होंने प्रतिपादन नहीं किया, अपितु प्रत्यक्ष ज्ञानके बलपर इसका उद्घोष किया।

अनेकों व्यक्तियोंका जन्मसे ही अलौकिक प्रतिभासम्पन्न होना, कुछ अबोध बालकोंको पूर्वजन्मके स्थान, परिवारस्थ जन इत्यादिका आश्चर्यचकित करनेवाला ज्ञान सप्रमाण प्रकट करते हुए दिखायी देना ऐसे अनेक उदाहरण प्रमाणभूत होकर उपस्थित होते हैं। अब विगत कुछ कालसे इन बातोंपर विश्वास न रखनेवाले पश्चिमीय देशोंके विद्वानोंमें भी परलोकविद्याका अध्ययन करनेकी प्रवृत्ति बढ़ी है और धीरे-धीरे वे परलोक तथा पुनर्जन्मके सत्यको पहचाननेकी तथा माननेकी ओर झुक रहे हैं। जिन धर्म-मतोंका अवलम्बन उन्होंने किया है, उनका समर्थन न होनेसे अभी उनमें पर्याप्त हिचक है। तथापि सत्यान्वेषणकी अन्तःप्रेरणा उन्हें इस सत्यका साक्षात्कार करनेके मार्गपर अग्रसर करा रही है।

वैसे सूक्ष्मदृष्टिसे अध्ययन करनेपर ईसाई धर्मग्रन्थ 'पवित्र बाइबल'में भगवान् ईसाके ही मुखारविन्दसे प्रकट हुए शब्दोंसे यह जाना जा सकता है कि भगवान् ईसाने स्थानीय परिस्थिति तथा मान्यताओंके होते हुए स्थानीय परिभाषाके ही माध्यमसे भारतीय क्रान्तिदर्शी ऋषियोंके सत्य सिद्धान्तको ही समझानेका प्रयास किया है। किंतु शुद्ध दृष्टिसे इसका अध्ययन करना आवश्यक है।

परलोक तथा पुनर्जन्मके सिद्धान्तके कारण प्रत्येक व्यक्ति यह समझ सकता है कि उसका सुख-दुःख, श्रेष्ठत्व-हीनत्व, सद्गुणोंका अभाव आदि सब उसीके पूर्वजन्मोंमें किये हुए कर्मोंके परिणाम हैं और इस जन्ममें यदि वह अपने कर्मोंमें सुधार कर ले तो इसी जन्ममें वह अधिक श्रेष्ठ एवं सुखी बन सकता है और उसे यह भी विश्वास होता है कि जीवनका चरम लक्ष्य—मोक्ष, इस एक जन्ममें न भी प्राप्त हो तो भी, उसके लिये उचित प्रयत्नोंमें रत रहनेसे आनेवाले जन्मोंमें वह अपनेको मोक्षके लिये अधिकाधिक योग्य बनाकर, अन्तमें जीवन-मरणके सब सुख-दुःखोंसे छूटकर अपनी नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त सच्चिदानन्द-स्थितिमें स्थिर हो सकता है। धन्य हो सकता है।

श्रेष्ठ कर्मप्रेरणा देनेवाले, मनुष्यमात्रके पौरुषके आवाहन करनेवाले इस सत्यको हृदयङ्गम करना मनुष्यके कल्याणके लिये परम आवश्यक है। आज इसके सम्बन्धमें कुछ भ्रम फैले हैं और निष्क्रियताको पनपानेवाला दैववाद लोगोंकी बुद्धिपर चढ़ बैठा है। उससे अपनेको मुक्त दिलाकर, विशुद्ध कर्मसिद्धान्त, तदङ्गभूत परलोक तथा पुनर्जन्मके सत्य सिद्धान्तोंको समझकर सत्कर्मोंमें प्रवृत्त होना, निरन्तर उद्यमशील रहना तथा परिणामस्वरूप इहलोकमें वैयक्तिक एवं सामूहिक उत्कर्षकी प्राप्तिके साथ मुक्तिमार्गपर अग्रसर होकर मनुष्यजीवन सार्थक करना आवश्यक है। यही धर्म है—'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।' (वैशेषिक)

अपने महान् सनातनधर्ममें* उद्घटित इन महान् सत्योंको जीवनमें उतारकर अपने समाजके सब व्यक्ति उत्तरोत्तर श्रेष्ठ शुद्ध जीवनके चलते-बोलते आदर्श बनें और सम्पूर्ण मानवजातिके सन्मार्ग-पथप्रदर्शक बनें। यही समयकी माँग है। इति शम्

* 'सनातनधर्म' शब्दप्रयोगसे यहाँ भारतीय परम्परामें उत्पन्न सभी धर्म-सम्प्रदाय आदि सब [illegible] समझना चाहिये।

ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके परलोक तथा पुनर्जन्म-सम्बन्धी विचार

(पुराने लेखोंसे संकलित)

आत्माकी उन्नति तथा जगत्में धार्मिक भाव, सुख-शान्ति एवं प्रेमके विस्तारके लिये और पाप-तापसे बचनेके लिये परलोक एवं पुनर्जन्मको मानना परम आवश्यक है।

आज संसारमें जो पापोंकी वृद्धि हो रही है—झूठ, कपट, चोरी, हिंसा, व्यभिचार एवं अनाचार बढ़ रहे हैं, व्यक्तियोंकी भाँति राष्ट्रोंमें भी परस्पर द्वेष और कलहकी वृद्धि हो रही है, बलवान् दुर्बलोंको सता रहे हैं, लोग नीति और धर्मके मार्गको छोड़कर अनीति और अधर्मके मार्गपर आरूढ़ हो रहे हैं, लौकिक उन्नति और भौतिक सुखको ही लोगोंने अपना ध्येय बना लिया है और उसीकी प्राप्तिके लिये सब लोग यत्नवान् हैं, विलासिता और इन्द्रियलोलुपता बढ़ती जा रही है, भक्ष्याभक्ष्यका विचार उठता जा रहा है, जीभके स्वाद और शरीरके आरामके लिये दूसरोंके कष्टकी तनिक भी परवा नहीं की जाती, मादक द्रव्योंका प्रचार बढ़ रहा है, बेईमानी और घूसखोरी उन्नतिपर है, एक दूसरेके प्रति लोगोंका विश्वास कम होता जा रहा है, मुकदमेबाजी बढ़ रही है, अपराधोंकी संख्या बढ़ती जा रही है, असंतोष-असहिष्णुता इतनी बढ़ गयी है कि बात-बातपर लोग आत्महत्या करने लगे हैं और आत्महत्याओंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। दम्भ और पाखण्डकी वृद्धि हो रही है—इन सबका कारण यही है कि आत्माकी अमरता तथा परलोकमें विश्वास नहीं है और लोगोंने वर्तमान जीवनको ही अपना जीवन मान लिया है; इसके आगे भी कोई जीवन है, इसका कोई ख्याल ही नहीं है। इसीलिये वे वर्तमान जीवनको ही सुखी बनानेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं। 'जबतक जियो, सुखसे जियो; ऋण लेकर भी अच्छे-अच्छे पदार्थोंका उपभोग करो। मरनेके बाद क्या होगा, किसने देख रक्खा है*।' —इसी सर्वनाशकारी मान्यताकी ओर आज प्रायः संसार जा रहा है। यही कारण है कि वह सुखके बदले अधिकाधिक दुःखमें ही फँसता जा रहा है। परलोक और पुनर्जन्मको न माननेका यह अवश्यम्भावी फल है।

* यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥
(चार्वाक)

इस परलोक और पुनर्जन्मके सिद्धान्तका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपसे हमारे सभी शास्त्रोंने समर्थन किया है। वेदोंसे लेकर आधुनिक दार्शनिक ग्रन्थोंतक सभीने एक स्वरसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि की है। कठोपनिषद्का नाचिकेतोपाख्यान तो इस सिद्धान्तका जीता-जागता प्रमाण है। नचिकेता और यमराजके बीच जो संवाद हुआ है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यमराजने उसे तीन वर देनेको कहा। उनमेंसे तीसरा वर माँगता हुआ नचिकेता यमराजसे यह प्रश्न करता है।

'मरे हुए मनुष्यके विषयमें जो यह शङ्का है कि कोई तो कहते हैं मरनेके अनन्तर 'आत्मा रहता है' और कोई कहते हैं 'नहीं रहता'—इस सम्बन्धमें मैं आपसे उपदेश चाहता हूँ, जिससे मैं इस विषयका ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। मेरे माँगे हुए वरोंमें यह तीसरा वर है।' (१। १। २०)

यमराजने अधिकारी-परीक्षाके लिये इस विषयको टालना चाहा और नचिकेताको मनुष्यलोकके बहुत बड़े-बड़े अति दुर्लभ भोगोंका प्रलोभन दिया, परंतु नचिकेता अपने निश्चयसे नहीं टला। नचिकेताके इस आदर्श निष्कामभाव और दृढ़ निश्चयको देखकर यमराज बहुत प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥
(१। २। ६)

'जो मूर्ख धनके मोहसे अंधे होकर प्रमादमें लगे रहते हैं, उन्हें परलोकका साधन नहीं सूझता। यही लोक है, परलोक नहीं है—ऐसा माननेवाला मनुष्य बारंबार मेरे चंगुलमें फँसता है (जन्मता और मरता है)।'

इसके पश्चात् यमराज उसे आत्माके स्वरूपके सम्बन्धमें उपदेश देते हुए कहते हैं—

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥
(२ । २ । १८)

'यह नित्य चिन्मय आत्मा न जन्मता है, न मरता है; यह न तो किसी वस्तुसे उत्पन्न हुआ है और न स्वयं ही कुछ बना है (अर्थात् न तो यह किसीका कार्य है, न कारण है; न विकार है, न विकारी है) । यह अजन्मा, नित्य (सदा वर्तमान अनादि), शाश्वत (सदा रहनेवाला, अनन्त) और पुरातन है तथा शरीरके विनाश किये जानेपर भी नष्ट नहीं होता ।'

उपर्युक्त वर्णनमें आत्माकी अमरता सिद्ध होती है ।

आगे चलकर यमराज उन मनुष्योंकी गति बतलाते हैं, जो आत्माको बिना जाने हुए ही मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥
(२ । २ । ७)

'अपने कर्म और ज्ञानके अनुसार कितने ही देहधारी तो शरीर धारण करनेके लिये किसी देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि *योनिको प्राप्त होते हैं और कितने ही स्थावर-भाव* (वृक्षादि योनि) को प्राप्त होते हैं ।'

ऊपरके मन्त्रसे भी पुनर्जन्मकी सिद्धि होती है ।

गीतामें भी परलोक और पुनर्जन्मका प्रतिपादन करनेवाले अनेक वचन मिलते हैं । दूसरे अध्यायमें भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥
(२ । १२)

'न तो ऐसा ही है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू नहीं था अथवा ये राजालोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे ।'

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
(२ । १३)

'जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है; उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता ।'

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥
(२ । २०)

'यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता ।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
(२ । २२)

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है ।'

चौथे अध्यायके ५ वें श्लोकमें भगवान् कहते हैं—'परंतप अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं । उन सबको तू नहीं जानता, किंतु मैं जानता हूँ ।' गीतामें स्वर्गादि लोकोंका भी कई जगह उल्लेख आता है । पुनर्जन्म, परलोक, आदि अनावृत्ति, गतागत (गमनागमन) आदि शब्द भी कई जगह आये हैं । छठे अध्यायके ४१-४२ वें श्लोकोंमें योगभ्रष्ट पुरुषके दीर्घकालतक स्वर्गादि लोकोंमें निवास कर शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषोंके घरमें अथवा ज्ञानवान् योगियोंके ही कुलमें जन्म लेनेकी बात आती है तथा ४५ वें श्लोकमें अनेक जन्मोंकी बात भी आती है । इसी प्रकार १३ वें अध्यायके २१ वें श्लोकमें पुरुषके सत्-असत् योनियोंमें जन्म लेनेकी बात कही गयी है । १४ वें अध्यायके १४, १५ तथा १८ वें श्लोकोंमें गुणोंके अनुसार मनुष्यके उच्च, मध्य तथा अधो गतिको प्राप्त होनेकी बात आती है तथा १५ वें अध्यायके ७-८ वें श्लोकोंमें एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें जानेका स्पष्टरूपमें उल्लेख हुआ है । १६ वें अध्यायके १६, १९ और २० वें श्लोकोंमें भगवान्ने आसुरी स्वभाववालोंको बारंबार निम्नयोनियों और नरकोंमें गिरनेकी बात कही है । इन सब प्रसङ्गोंसे भी पुनर्जन्म और परलोककी पुष्टि होती है ।

योगदर्शनमें भी पुनर्जन्मका विषय आया है । पतञ्जलि कहते हैं—

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।
(साधन० १२)

'क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—मृत्युभय) जिनकी जड़ हैं, वे कर्माशय (कर्मोंकी वासनाएँ) वर्तमान अथवा आगेके जन्मोंमें भोगे जा सकते हैं ।'

उन वासनाओंका फल किस रूपमें मिलता है, इसके विषयमें महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।
(साधन० १३)

'क्लेशरूपी कारणके रहते हुए उन वासनाओंका फल जाति (योनि), आयु (जीवनकी अवधि) और भोग (सुख-दुःख) होते हैं ।'

मनुस्मृतिमें भी पुनर्जन्मके प्रतिपादक बहुत-से वचन मिलते हैं । किन-किन कर्मोंसे जीव किन-किन योनियोंको प्राप्त होते हैं, इस विषयमें भगवान् मनु कहते हैं—

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥
(१२ । ४०)

'सत्त्वगुणी लोग देवयोनिको, रजोगुणी मनुष्ययोनिको और तमोगुणी तिर्यग्योनिको प्राप्त होते हैं । जीवोंकी सदा यही तीन प्रकारकी गति होती है ।'

इसके आगे भगवान् मनु ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुपत्नीगमन आदि कुछ महापातकोंका उल्लेख करते हुए कहते हैं कि इन पापोंको करनेवाले अनेक वर्षतक नरक भोगकर फिर नीच योनियोंको प्राप्त होते हैं । उदाहरणतः ब्रह्महत्या करनेवाला कुत्ते, सूअर, गदहे, चाण्डाल आदि योनियोंको प्राप्त होता है; ब्राह्मण होकर मदिरा-पान करनेवाला कृमि, कीट, पतङ्गादि तथा हिंसक योनियोंमें जन्म लेता है; गुरुपत्नीगामी तृण, गुल्म, लता आदि स्थावर योनियोंमें सैकड़ों बार जन्म ग्रहण करता है तथा अभक्ष्यभक्षण करनेवाला कृमि होता है । (देखिये, मनुस्मृति १२ । ५४–५६, ५८, ५९)

इस प्रकार परलोक एवं पुनर्जन्मके प्रतिपादक अनेकों प्रमाण शास्त्रोंमें भरे पड़े हैं । वाल्मीकीय रामायणमें युद्धके बाद दशरथजीका आना तथा श्रीराम और लक्ष्मण आदिसे वार्तालाप करना परलोकका जीता-जागता प्रमाण है । इसके लिये वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड ११९वाँ सर्ग देखिये ।

पितरोंके निमित्त पिण्डदान, श्राद्ध-तर्पण आदिका उल्लेख भी स्थान-स्थानपर आया है । श्रीरामचन्द्रजी महाराजने भी पिताकी मृत्युका संवाद सुनते ही मन्दाकिनीके तीरपर जाकर तर्पण किया एवं स्वयं जैसा भोजन किया करते थे, उसीके पिण्ड बनाकर दशरथजीके निमित्त दिये—

ततो मन्दाकिनीं गत्वा स्नात्वा ते वीतकल्मषाः ॥
राज्ञे ददुर्जलं तत्र सर्वे ते जलकाङ्क्षिणे ।
पिण्डान् निर्वापयामास रामो लक्ष्मणसंयुतः ॥
इङ्गुदीफलपिण्याकरचितान् मधुसम्प्लुतान् ।
वयं यदन्नाः पितरस्तदन्नाः स्मृतिनोदिताः ॥
(अध्यात्म० अयोध्या० ९ । १७–१९)

'फिर सब लोग मन्दाकिनीपर जाकर स्नान करके पवित्र हुए । वहाँ उन सबने जलकाङ्क्षी महाराज दशरथको जलाञ्जलि दी तथा लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचन्द्रजीने पिण्ड दिये । जो हमारा अन्न है, वही हमारे पितरोंको प्रिय होगा—यही स्मृतिकी आज्ञा है—यों कह उन्होंने इंगुदी फलकी पीठीके पिण्ड बना उनपर मधु डालकर उन्हें प्रदान किया ।'

वाल्मीकीय रामायणमें भी इसी भावके द्योतक श्लोक मिलते हैं ।

बहुत-से लोग यह शङ्का करते हैं कि 'मरनेके बाद आत्मा रहता है या नहीं, किये हुए कर्मोंका फल कर्ताको परलोकमें मिलता है या नहीं, मृत व्यक्तिके लिये दिया हुआ पदार्थ उसे मिलता है या नहीं और जो मृत व्यक्ति मुक्त हो गया है, उसके प्रति दिया हुआ पदार्थ किसको मिलता है ?' इन प्रश्नोंका समाधान यह है कि 'मरनेपर आत्मा अवश्य रहता है तथा किये हुए कर्मोंका फल कर्ताको अवश्य मिलता है । वह इस लोकमें भी मिल जाता है और शेष बचा हुआ परलोकमें मिलता है । मृत व्यक्तिके लिये जो कुछ दिया जाता है, वह सब उसे प्राप्त होता है; किंतु जो मृत व्यक्ति मुक्त हो गया है, उसके प्रति दिया हुआ कर्त्ताके संचित कर्मरूप कोषमें जमा होता है ।'

यह बात युक्तिसंगत भी है । जो आदमी जिस व्यक्तिके नामसे बैंकमें रुपये जमा कराता है, उसी व्यक्तिके नाम रुपये जमा हो जाते हैं और जिसके नामसे जमा होते हैं, उसीको मिलते हैं, दूसरेको नहीं । और जैसे यहाँ जमा कराये हुए रुपये विदेशमें वहाँके सिक्केके रूपमें मिल जाते हैं, वैसे ही पितरोंके नामसे किये हुए पिण्ड, तर्पण, ब्राह्मण-भोजन आदि कर्मका जितना मूल्य आँका जाता फल उस प्राणीको वह जिस योनिमें होता वस्तुके रूपमें प्राप्त हो जाता है ।

प्राणी गाय है तो उसे चारेके रूपमें, देवता है तो अमृतके रूपमें, मनुष्य है तो अन्नके रूपमें और बंदर आदि है तो फल आदिके रूपमें उतने ही मूल्यकी वस्तु मिल जाती है।

यदि कहें कि 'जीवित व्यक्तिके लिये भी यदि कोई यज्ञ, दान, अनुष्ठान, व्रत, उपवास आदि कर्म करता है तो क्या वह उसे भी मिलता है?' तो इसका उत्तर यह है कि 'अवश्य उसे मिलता है। नहीं तो, फिर यजमानके लिये जो ब्राह्मण यज्ञ, तप, अनुष्ठान, पूजा, पाठ आदि करता है, वह किसको मिलेगा? न्यायतः वह यजमानको ही मिलेगा; कर्म करनेवाले ब्राह्मणको नहीं।'

यदि कोई प्राणी मुक्त हो गया है तो उसके निमित्त किया हुआ कर्म कर्ताको ही मिलता है। जैसे किसी आदमीको रजिस्ट्री चिट्ठी या बीमा भेजी जाती है और जिसको भेजी जाय, वह आदमी मर गया हो तो फिर वह लौटकर भेजनेवालेको ही वापस मिल जाती है, उसी प्रकार इस विषयमें भी समझना चाहिये।

नीचे लिखे युक्ति-प्रमाणोंसे भी यही सिद्ध होता है कि परलोक अवश्य है और प्राणियोंका पुनर्जन्म होता है—

(१) शरीरकी तरह आत्माका परिवर्तन नहीं होता। शरीरमें तो हम सर्वोके अवस्थानुसार परिवर्तन होता देखा जाता है। आज जो हमारा शरीर है, कुछ वर्ष बाद वह बिल्कुल बदल जायगा। उसके स्थानमें दूसरा ही शरीर बन जायगा—जैसे नख और केश पहलेके कटते जाते हैं और नये आते रहते हैं। बाल्यावस्थामें हमारे सभी अङ्ग कोमल और छोटे होते हैं, कद छोटा होता है, स्वर मीठा होता है, वजन भी कम होता है तथा मुखपर रोएँ नहीं होते। जवान होनेपर हमारे अङ्ग पहलेसे कठोर और बड़े हो जाते हैं, आवाज भारी हो जाती है, कद लंबा हो जाता है, वजन बढ़ जाता है तथा दाढ़ी-मूँछ आ जाती हैं। इसी प्रकार बुढ़ापेमें हमारे अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, शरीरकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है, चमड़ा ढीला पड़ जाता है, बाल पक जाते हैं, दाँत ढीले हो जाते हैं तथा गिर जाते हैं एवं शरीर तथा इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है। यही कारण है कि बाल्यकालमें देखे हुए किसी व्यक्तिको उसके वृद्ध होनेपर हम सहसा नहीं पहचान पाते। परंतु शरीर बदल जानेपर भी हमारा आत्मा नहीं बदलता। दस वर्ष पहले जो हमारा आत्मा था, वही आत्मा इस समय भी है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यदि होता तो आजसे दस वर्ष अथवा बीस वर्ष पहले हमारे जीवनमें घटी हुई घटनाका हमें स्मरण नहीं होता। दूसरेके द्वारा अनुभव किये हुए सुख-दुःखका जिस प्रकार हमें स्मरण नहीं होता। परंतु आजकी घटनाका हमें दस वर्ष बाद अथवा बीस वर्ष बाद भी स्मरण होता है; इससे मालूम होता है कि अनुभव करनेवाला और स्मरण करनेवाला दो व्यक्ति नहीं, बल्कि एक ही व्यक्ति है। यों जिस प्रकार वर्तमान शरीरमें इतना परिवर्तन होनेपर भी आत्मा नहीं बदला, उसी प्रकार मरनेके बाद दूसरा शरीर मिलनेपर भी आत्मा नहीं बदलता। इससे आत्माकी नित्यता सिद्ध होती है।

(२) मनुष्य अपना अभाव कभी नहीं देखता। वह यह कभी नहीं सोचता कि एक दिन मैं नहीं रहूँगा, अथवा मैं पहले नहीं था। अपने अभावके बारेमें आत्माकी ओरसे उसे कभी समर्थन नहीं मिलता। वह यही सोचता है कि मैं सदासे हूँ और सदा रहूँगा। इससे भी आत्माकी नित्यता सिद्ध होती है।

(३) बालक जन्मते ही रोने लगता है और जन्मनेके बाद कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी सोता है। जब माता उसके मुखमें स्तन देती है तो वह उससे दूध खींचने लगता है और धमकाने आदिपर भयसे काँपता हुआ भी देखा जाता है। बालकके ये सब आचरण पूर्वजन्मको सूचित करते हैं; क्योंकि इस जन्ममें तो उसने ये सब बातें सीखी नहीं। पूर्वजन्मके अभ्याससे ही ये सब बातें उसके अंदर स्वाभाविक ही होने लगती हैं। पूर्वजन्ममें अनुभव किये हुए सुख-दुःखका स्मरण करके ही वह हँसता और रोता है, पूर्वमें अनुभव किये हुए भयानुभवके कारण ही वह काँपने लगता है तथा पूर्वजन्ममें किये हुए स्तनपानके अभ्याससे ही वह माताके स्तनका दूध खींचने लगता है। इससे भी पुनर्जन्म सिद्ध होता है। (शेष आगे)

अन्तके भावानुसार गति

जीवनभर जिन भाव-विचारोंमें—कर्मोंमें रहता व्यस्त।
मरण कालमें वही भाव आते हैं मनमें फिर अभ्यस्त॥
अगला लोक-जन्म मिलता है, अन्तिम भावोंके अनुसार।
अतः करो जीवनभर प्रभुका चिन्तन, सेवन, कर्म, विचार॥

वेदमें मृतात्माकी अष्टविध दशा

(लेखक—वेद-दर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर पू० स्वामीजी श्रीगंगेश्वरानन्दजी महाराज)

मरणोत्तर जीवात्माकी प्रथमतः 'गति'-'अगति'—भेदसे दो प्रकारकी दशाएँ होती हैं।

'अगति' शब्दकी परिभाषा लोकान्तरमें गमनाभाव है। अतः अगति चार प्रकारकी बन जाती है। सर्वोत्तम अगति तत्त्वदर्शीकी है, जो तत्त्वदर्शनसे अविद्या और अविद्याके कार्य लिङ्गशरीरका बाध होनेसे कहीं जाता ही नहीं, अपने वास्तविक स्वरूप—ब्रह्मभावमें स्थित हो जाता है। दूसरे शब्दोंमें 'जीवभूमि'से उठकर 'स्वयं ब्रह्म' बन जाता है। तात्पर्य—उपाधि-सम्बन्धसे कल्पित जीवभाव मिटकर विशुद्ध ब्रह्म-स्वरूपमें अवस्थित होता है। जैसे दर्पणके सम्बन्धसे कल्पित सूर्य-प्रतिबिम्ब दर्पण-उपाधिके हट जानेसे शुद्ध अपने बिम्ब-स्वरूप सूर्यमें ही मिल जाता है।

इस अगतिका नाम 'मुक्ति' भी है। वह दो तरहकी है—'क्षिणोदर्क' और 'भूमोदर्क'। 'क्षिणोदर्क मुक्ति' है वह जो शरीर-इन्द्रिय-प्राणादि अनात्म-पदार्थोंमेंसे आत्मव्याप्तिको 'नेति-नेति' प्रक्रियाके द्वारा हटाकर निराकार निर्विशेष विशुद्धात्म-दर्शनसे प्राप्त होती है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।' 'इदं सर्वं यदयमात्मा' 'सर्वं वासुदेवः' आदि प्रक्रियाके द्वारा आत्म-व्याप्तिके विस्तार होनेपर विश्वात्मदर्शनसे जो प्राप्त होती है, वह 'भूमोदर्क मुक्ति' है।

पृथिवीमें ही मरणोत्तर अस्थिहीन कीट-पतङ्ग-वृक्षादि योनि प्राप्त होनेपर 'तृतीय अगति' है और अस्थियुक्त पशु-पक्षी आदि योनि 'चतुर्थ अगति' है; क्योंकि मृतात्माको पृथ्वीको छोड़कर लोकान्तरमें जाना नहीं पड़ता।

इससे आपको अवगत हो गया कि सर्वथा गतिशून्य स्वरूपस्थितिके कारण द्विविध मुक्ति, दो प्रकारकी सर्वश्रेष्ठ अगति हुई और किसी लोकान्तरमें न जाकर इसी लोकमें कीट-पतङ्ग आदि एवं पशु-पक्षी आदि योनिमें प्रविष्ट होकर निकृष्ट दो प्रकारकी अगति हुई। इसे अगति इस-लिये कहा जाता है, इसमें जीवात्माको पृथिवीलोक छोड़कर कहीं अन्यत्र जाना नहीं पड़ता। तत्पश्चात् अब निम्नलिखित चार प्रकारकी गतिका परिचय प्रस्तुत किया जाता है—ब्रह्म-लोक गति, देवलोक गति, पितृलोक गति, निकृष्ट नरक गति। उत्कृष्ट द्विविध तत्त्वदर्शीकी अगतिके साथ उत्क्रान्तिका किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं। कारण, उनके प्राण 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति।' इस श्रुति-वचन (बृह० ४।४।६)के अनुसार उत्क्रमण बिना किये ही 'अत्रैव समवलीयन्ते।' इस वचनके आधारपर यहाँ ही ज्ञानके द्वारा सविलास अविद्याकी निवृत्ति हो जानेसे अपने अधिष्ठान ब्रह्मतत्त्वमें विलीन हो जाते हैं। वेदान्तशास्त्रका उद्घोष है—अधिष्ठानाविशेषो हि बाधः कल्पित-वस्तुनः। अर्थात् 'कल्पित वस्तुकी निवृत्ति अपने अधिष्ठानसे अतिरिक्त नहीं, अपितु तत्स्वरूप ही है।' शिष्ट द्विविध अगति तथा चतुर्विध गतिके साथ उत्क्रान्तिका अविनाभाव है। अर्थात् उनका होना उत्क्रान्तिपूर्वक ही सम्भव है। इसी प्रकार गतिके साथ कहीं-कहीं अगति—पुनरावृत्तिका सम्पर्क अवश्यम्भावी है।

अतएव वेदान्तदर्शन २। ३। १९ में कहा है—

'उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्।'

'जीवात्माकी उत्क्रान्ति, गति तथा अगतिका श्रुतियोंमें स्फुट वर्णन है।' यथा—

'स यदास्माच्छरीरादुत्क्रामति सहैवैतैः सर्वैरुत्क्रामति।'
(कौषीतकी० ३। ४)

'ये वै के चास्माल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति।'
(कौषीतकी० १। २)

'तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मणे।'
(बृ० ४। ४। ६)

अर्थात् 'यह जीवात्मा जब इस शरीरसे उत्क्रमण करता है—निर्गत होता है, तब इन सब प्राणोंके साथ ही उत्क्रमण होता है।' 'जो-जो प्राणी इस लोकसे मरणोत्तर प्रस्थान करते हैं, वे सब चन्द्रलोकको ही प्राप्त होते हैं।' 'उस लोक (चन्द्रलोक)से जीवात्मा इस लोकके लिये भुक्तशेष कर्मके फलभोगनिमित्त 'पुनरेति' फिर वापस आता है।' तात्पर्य यह कि यह स्वर्गसे भुक्तशेष कर्मोंका फल भोगनेके लिये पृथिवीपर लौटता है। इसीको शास्त्रमें 'प्रत्यावृत्ति' या 'आगति' कहा है।

अब यह प्रश्न उपस्थित होगा, क्या बिना मार्गके भी कोई कहीं जा-आ सकता है? इसके उत्तरमें मार्गका वेदमें स्पष्ट किया है।

द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥
(ऋ० १० । ८८ । १५)

वा० य० १९ । ४७; तै० ब्रा० १, ४, २, ३; २, ६, ३, ५; श० ब्रा० १४, ९, १, ४; काण्व० पु० ६, २, २;

'मैंने मनुष्योंके दो मार्गोंका श्रवण किया—एक देवोंका, दूसरा पितरोंका (देवयान तथा पितृयान)। अब समस्त विश्वके प्राणी इन दोनों लोकान्तरको प्रस्थान करते हैं, तब मातरं पितरम् अन्तरा—पृथिवी और स्वर्गके मध्यवर्ती अन्तरिक्षमें उन्हीं दोनों मार्गोंमें होकर समेति—भलीभाँति जाते हैं।'

इस मन्त्रसे पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यु (स्वर्ग)—इस त्रिलोकी तथा पृथिवीलोकसे लोकान्तर-गमनके दोनों मार्गोंका स्पष्ट वर्णन किया है। वेदमें पृथ्वीलोक, अन्तरिक्षलोक तथा द्युलोकका ही नहीं, अपितु उन लोकोंके निवासी मुख्य ११-११ (एकादश-एकादश) देवोंका भी परिचय प्राप्त होता है। स्मरण रहे, जीवात्माकी गतिमें देवोंका सहयोग माना गया है। अतः पृथिवी आदि लोकोंके मुख्य देवोंका उल्लेख अनिवार्य हो जाता है।

देखिये—ऋ० १ । १३९ । ११ मन्त्रमें तीनों लोक, उनके शासक ग्यारह-ग्यारह देवोंका कैसा मनोहर चित्रण हुआ है—

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥

ऋषि देवताओंसे प्रार्थना करता है—'पूजनीय देवगण! आप एकादशकी संख्यामें जो द्युलोकमें रह रहे हैं, पृथिव्यामधि—पृथिवीके ऊपर भी उतनी ही संख्यामें विराजमान हैं, एवं इसी प्रकार अप्सुक्षितः*—अन्तरिक्षमें निवास कर रहे हैं, वे सब आप हमारे इस यज्ञका सेवन करें।'

ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम्।
ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम्।
ये देवा पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम्।
(अथर्व० १९ । २७ । ११, १२, १३)

अथर्ववेदके इन मन्त्रोंसे पृथिव्यादि त्रिलोकी एवं उनके क्रमशः शासक ग्यारह-ग्यारह देवोंके वर्गोंकी पूर्ण पुष्टि हो जाती है।

* 'अप्सु' पदका अर्थ यहाँ अन्तरिक्ष है।

अब हम ग्यारह-ग्यारहकी संख्यामें उन देवगणोंकी नीचे तालिका दे रहे हैं—'निघण्टु'के ५वें अध्यायमें तथा 'निरुक्त'के ७से १२तक ६ अध्यायोंमें पृथिवीस्थानीय ५२ देव, अन्तरिक्षनिवासी ६८ देव एवं दिविस्थित ३१—इस प्रकार १५१ देवोंका उल्लेख है। फिर भी तीनों स्थानोंके क्रमशः मुख्य देव—'अग्नि', 'वायु', 'आदित्य' हैं। इनके दस-दस सहायक देव हैं, जो इनके आदेशानुसार कार्य किया करते हैं। पाठकोंको ज्ञात करानेके लिये उन देवोंके क्रमशः नाम नीचे दिये जाते हैं—

पृथिवीके मुख्य देव—अग्नि और उनके सहकारी देव—(१) जातवेदा, (२) वैश्वानर, (३) द्रविणोदा, (४) तनूनपात्, (५) नाराशंस, (६) त्वष्टा, (
वनस्पति, (८) ग्रावाण, (९) रथ, (१०) आप।

अन्तरिक्षके मुख्य देव—वायु और उनके सहकारी देव—(१) वरुण, (२) रुद्र, (३) इन्द्र, (४) पर्जन्य, (५) बृहस्पति, (६) यम, (७) मित्र, (८)
(९) विश्वकर्मा, (१०) सविता।

द्युलोकके मुख्य देव (आदित्य) सूर्य हैं, उनके सहकारी दस देव—(१) अश्विनौ, (२)
(३) सूर्या, (४) त्वष्टा, (५) सविता, (६)
(७) पूषा, (८) विष्णु, (९) यम, (१०)
एकराट्—यों संकलित ३३ देव बनते हैं।

जीवात्मा पृथिवीसे जब लोकान्तरके लिये प्रस्थान करता होता है, तब अग्नि अपने सहकारी दस देवोंके द्वारा सहायता करता है। इसी तरह वायु अन्तरिक्षमें और द्युलोकमें आदित्य सत्ता जीवात्माको सहायता देते हैं—

तस्मिन् एतस्मिन् अग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति।
(छान्दोग्योपनिषद् ५ । ४

इस श्रुतिवचनसे देवोंका सहयोग स्पष्ट प्रकट है। व्याख्याकारोंने 'देव' शब्दका अर्थ आधिदैविक जो अग्नि-वायु-आदित्य सिद्धान्तके अनुरूप [illegible] आध्यात्मिक भावको प्राप्त हो चुके हैं, ऐसा किया है। [illegible] आध्यात्मिक चक्षु सूर्य, आध्यात्मिक वाक् अग्नि, [illegible] प्राण वायु बनकर द्युलोककी ओरसे सहायता करते हैं, जिससे प्रकाशमान चन्द्रलोकमें

सोमात्मक यजमानका दिव्य शरीर निष्पन्न होता है। अर्थात् उसी शरीरके द्वारा यजमान अपने किये हुए पुण्य-कर्मोंका फलोपभोग स्वर्गमें करता है।

ऋग्वेदके १०वें मण्डलके १४वें सूक्तसे १८वें तक ५ सूक्तोंमें जीवात्माकी लोकान्तर गतिके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण मन्त्र उपलब्ध होते हैं। उनमेंसे कतिपय मन्त्र निम्न निर्दिष्ट हैं—

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा।
आपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः॥

(ऋक्० १० । १६ । ३; । तै० आ० ६ । १ । ४; निरुक्त ७ । ३)

पूर्वार्धमें—'सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः।'

इस प्रकारसे स्वल्प पाठभेदके साथ अथर्ववेदमें यही मन्त्र १८ । २ । ७ उद्धृत है।

छान्दोग्योपनिषद्के पञ्चम अध्यायके ३ से १० तक ८ खण्डोंमें पञ्चाग्निविद्याका निरूपण है। उसका संक्षेप द्वितीय मुण्डक, खण्ड प्रथम, मन्त्र पञ्चम—

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः
सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्।
पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां
बह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः॥

—इस मन्त्रमें हुआ है। उसी पञ्चाग्निविद्याका बीज 'सूर्यं चक्षुर्गच्छतु' इस मन्त्रमें उपलब्ध है। पाठकोंको [illegible]झानेके लिये बीजभूत मन्त्रकी व्याख्यासे पहले पञ्चाग्नि-[illegible]द्याका सार दिया जाता है। पाँच अग्नि हैं—द्युलोक, [illegible]न्य, पृथिवी, पुरुष तथा योषित् (स्त्री)। क्रमशः [illegible] पाँचों अग्नियोंमें जो प्रक्षिप्त की जाती है, वे पाँच [illegible]हुतियाँ हैं—क्रमशः श्रद्धा, सोम, वृष्टि, अन्न, रेतः (शुक्र)। [illegible]नहोत्रादि यज्ञ-प्रक्रियाओंके अनुसार आवहनीय अग्निमें [illegible]दधि घृतादिकी यजमान श्रद्धापूर्वक आहुति डालता [illegible] अग्निसंयोग होते ही वे दध्यादि द्रव्य सूक्ष्म वाष्परूपको [illegible]ण कर लेते हैं*। पहलेकी अपेक्षा कुछ नवीनता आ[illegible]के कारण इन्हें व्याख्याकारोंने 'अपूर्व' शब्दसे भी [illegible] है।

यजमानका जीवात्मा जब मनुष्यशरीरसे निकलता है तो स्थूल शरीर यहीं पड़ा रहता है। उसकी कहीं जानेकी सम्भावना ही नहीं। वैराग्यशास्त्रमें उसकी तीन गतियाँ—दशाएँ वर्णन की गयी हैं। यदि उसका अग्निसंस्कार किया जाय तो वह भस्मकी ढेरी बनेगा। यदि किसी मांसाहारी सिंहादि पशुने उसे अपना आहार बना दिया तो वह घृणित विष्ठाका रूप धारण करेगा। यदि पृथिवीमें गाड़ दिया जाय और यों ही पड़ा रह जाय तो सड़ जानेसे उसमें कीड़े पड़ जायँगे, अर्थात् वह कृमिरूपको प्राप्त हो जायगा। अतः जीवात्माका साथ देनेवाला मरणोत्तर सूक्ष्म शरीर या लिङ्गशरीर ही है, जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन तथा बुद्धि—इन सत्रह तत्त्वोंका संघात है। उसमें मनस्तत्त्वकी प्रधानता होनेके कारण उसमें केवल 'मनः' शब्दका भी प्रयोग किया जाता है। वह केवल शक्तिस्वरूप होनेसे भौतिक शरीरकी सहायता बिना कहीं गमन करनेमें असमर्थ है। अतः जैसे किसी पदार्थको घी, दूध या तैल—किसी स्निग्ध द्रव्यमें डाल दिया जाय और पुनः उसे निकाल ही क्यों न दिया जाय फिर भी, कुछ सूक्ष्म अंश संलग्न अवश्य रह जाते हैं। इसी प्रकार भले ही सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरसे पृथक् हो गया हो, फिर भी स्थूलशरीरके आरम्भिक कुछ भौतिक अंश उस सूक्ष्म-शरीरसे संलग्न रह जाते हैं। इन्हींको शास्त्रने 'भूतसूक्ष्म' कहा है। अतः जब लिङ्गशरीरके साथ जीवात्मा प्रस्थान करेगा तो कतिपय भूतसूक्ष्म उसका साथ अवश्य देंगे। इधर अग्निप्रक्षिप्त वाष्पभावको प्राप्त हुए आहुतिद्रव्य दुग्ध-दध्यादिके सूक्ष्म परमाणु भी साथ मिल जायँगे। जैसे किसी पदार्थको कितना ही सुरक्षित घरमें क्यों न रक्खा जाय, धीरे-धीरे उसपर धूलि पड़नेसे एक मृत्तिकाका परत या स्तर जम जाता है, इसी प्रकार लिङ्गशरीरके ऊपर स्थूलशरीर आरम्भक भूतसूक्ष्म-मिश्रित आहुतिद्रव्यके सूक्ष्मांशोंका एक स्तर-सा बन जाता है; वही इस लिङ्ग-शरीरका गमन करनेमें आश्रयका काम देता है। दूसरे शब्दोंमें उसीके आश्रित हो लिङ्गशरीर परलोकयात्रा आरम्भ करता है। कहना न होगा, उसी लिङ्गशरीरके आधारपर भूतान्तरसहित श्रद्धा-निष्पाद्य आहुतिद्रव्यके सूक्ष्म वाष्पसे ही एक जीवात्माके यातनाशरीरका निर्माण होता है। अन्तर केवल इतना है—पुण्यात्मा अपने गन्तव्य स्वर्गादिमें पहुँचकर नये दिव्य विग्रहको धारण करता है। उसी

* इन्हींका 'श्रद्धा' शब्दसे श्रुतिमें उल्लेख हुआ है। कारण, [illegible] कर्मके मूलमें श्रद्धा ही हेतु है।

आत्मा=प्राण, यातं—समष्टि आधिदैविक वायुमें मिल जाय। पहले कहा जा चुका है कि आध्यात्मिक चक्षुरादि प्राण आधिदैविक सूर्याग्नि आदि देवभावको प्राप्त हो मृतात्माके प्रस्थानमें सहायक होते हैं। उसी अभिप्रायको मन्त्रका प्रथम चरण व्यक्त कर रहा है। अथवा इस मन्त्रांशसे उत्क्रान्तिका वर्णन किया है, जिसके बिना लोकान्तर-गति असम्भव है।

ज्ञातव्य है, उत्क्रान्ति (देहत्याग) के समय जीवात्माको अति दुःसह चतुर्विध भयंकर यातना सहन करनी पड़ती है। अतएव उत्क्रान्ति (मृत्यु) का नाम सुनते ही मानव-हृदय काँप जाता है। वे दुःख निम्नलिखित हैं—'विश्लेषज-दुःख', 'मोहज', 'अनुतापज' और 'आगामी-दृश्यदर्शनज'। गोंदसे चिपकाये हुए दो कागजोंको अलग करना बहुत कठिन है। कभी-कभी अलग करनेके समय अलग न होकर वे फट जाते हैं। ठीक यही स्थिति अहंता-ममताके गोंदद्वारा स्थूलशरीरसे संलग्न सूक्ष्मशरीरकी है। जब सूक्ष्मशरीरसे स्थूलशरीरको पृथक् होना पड़ता है, तो अगाध वेदनाका अनुभव करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जैसे दोका भार एक मनुष्यको उठानेमें अति क्लेश होता है, वैसे ही स्थूल-सूक्ष्म दोनों शरीरोंका भार अब अकेले सूक्ष्मशरीरपर ही आनेके कारण महती पीड़ा होती है। बस, यही 'विश्लेषज-दुःख' है।

मरणोन्मुख प्राणीको चारों ओरसे कुटुम्बीजन घेरे रहते हैं। सामने साश्रुनयना पत्नी या पति है, लाड़ले बेटे कह रहे हैं—'माताजी! पिताजी! आप हमें अनाथ छोड़कर जा रहे हैं।' पुत्रवत्सला मा आर्तनाद कर रही है—'पुत्र! तू क्यों कठोर हो वृद्धा माताको असहाय दशामें छोड़े जा रहा है', तब उसका तीव्र मोह (कुटुम्बासक्ति) उद्बुद्ध हो हृदयको अत्यन्त संतप्त करता है—'हाय! जिनसे मैं पलभर भी पृथक् होना नहीं चाहता था, उन्हें छोड़नेके लिये विवश हूँ।' इसीको 'मोहज-दुःख' कहा गया है।

'मैंने जन्मभर पाप किये। भूलकर भी भगवद्भजन, साधुसेवा, दानादि पुण्य कार्य नहीं किये। अब मैं यमराजके दरबारमें क्या उत्तर दूँगा।' इन विचारोंसे अनुतापकी पराकाष्ठामें असह्य वेदना मुमूर्षुको होती है। इसीका नाम 'अनुतापज-दुःख' है।

मृत्युके समय भावी दृश्य उपस्थित हो जाता है, जिससे पापात्माको बड़ी घबराहट होती है। वह सोचता है—'मुझे रौरवादि भयंकर नरकोंमें ढकेला जायगा। मैं असहाय हो वहाँकी कठोर यातनाएँ भोगूँगा। जिन कुटुम्बियोंके लिये अगणित चोरी, ठगी, डकैती आदि कुकर्म किये, वे मेरा यहाँ साथ न देंगे।' भागवतमें वर्णन है कि पापात्माको निगृहीत करनेके लिये भयंकर आकृति, दण्डपाणि, रक्तनयन यमदूत उपस्थित होते हैं, जिनके देखनेमात्रसे मुमूर्षुका हृदय भयभीत हो जाता है। इतना ही नहीं, अधिक भयके कारण शय्यामें ही मलमूत्रका त्यागतक हो जाता है। इसीको 'आगामीदृश्यदर्शनज-दुःख' कहते हैं। अतएव जन्म, जरा, व्याधि-दुःखोंकी तुलनामें मरण-दुःखको सर्वाधिक भयंकर दुःख माना गया है।

पुण्यात्माके पास इस प्रकारके दुःख कभी फटकते तक नहीं। प्रत्युत वह आगामी स्वर्गीय दृश्यदर्शनसे अत्यन्त प्रसन्न हो हँसते-हँसते प्राणोंका विसर्जन करता है। उत्क्रान्त जीवात्माको पुण्यवश कहाँ, किस प्रकार जाना होगा और वहाँसे प्रत्यावर्तित हो किस स्थितिमें आना होगा—इसका विवरण शिष्ट तीन चरणोंमें दिया गया है।

परलोकगामी जीवात्मासे कहा जा रहा है कि तुम 'धर्मणा'—अपने अर्जित पुण्यके प्रभावसे 'द्यौ'—स्वर्गको 'गच्छ'—प्राप्त करो। फिर स्वर्गप्रापक पुण्यके क्षीण होनेपर अनुतापाग्निसे विलीन सोमद्वारा 'अपो वा गच्छ'—अन्तरिक्षको प्राप्त होओ। तात्पर्य—अन्तरिक्षस्थित मेघके जलमें प्रवेश करो। तत्पश्चात्, वृष्टिके द्वारा 'पृथिवीं गच्छ'—स्वर्गसे प्रत्यावर्तित हो पृथिवीको प्राप्त करो। फिर पृथिवीमें प्रादुर्भूत व्रीहि-यवादि ओषधियोंमें स्थित (संश्लिष्ट) होओ। 'शरीरैः'—शरीर-धारणके निमित्त। यह तृतीया फल उद्देश्य लक्षणहेतु अर्थमें है। यथा 'अध्ययनेन वसति'—अध्ययनके उद्देश्यसे रह रहा है। अर्थात् उसके निवासका फल उद्देश्य और लक्ष्य अध्ययन ही है।' भट्टोजी दीक्षितने सिद्धान्त-कौमुदीमें 'फलमपीह हेतुः' इस उक्तिसे दण्डादि कारणकी तरह क्रियाके फलको भी हेतु मानकर हेतु तृतीयाका समर्थन किया है। निष्कर्ष—ओषधिमें जीवात्माकी स्थिति या संश्लेषका लक्ष्य भावी पुरुषशरीर-धारण ही है। ओषधि-नाम व्रीहि-यवादि अन्न है। वही अन्न पुरुष (पिता) के द्वारा भुक्त हो रसादि परम्परासे सप्तम धातु—शुक्र बनेगा। वह शुक्र स्त्रीमें निषिक्त हो 'गर्भ' बनकर कुछ महीनोंमें पुरुषाकृतिमें परिणत हो, मातृयोनिसे निर्गत होनेपर शिशु, बाल, कुमार आदि शब्दोंसे व्यवहृत

होगा । अतः प्रमाणित हुआ कि ओषधिमें स्वर्गसे प्रत्यावर्तित जीवात्माके अवस्थानका उद्देश्य शरीर-धारण ही है । इस मन्त्रके द्वारा अति संक्षिप्त शब्दोंमें पञ्चाग्नि-विद्याके समस्त सिद्धान्तोंको गागरमें सागरकी तरह भर दिया गया है ।

प्रसन्नताकी बात है, जिस पञ्चाग्निविद्याका गूढ़ वर्णन संहितामें किया, उसीका कुछ विस्तारके साथ मुण्डकमें दिग्दर्शन हुआ । छान्दोग्योपनिषद्के पञ्चमाध्यायके ३ से १० तक आठ खण्डोंमें एवं बृहदारण्यकोपनिषद् षष्ठाध्यायके द्वितीय ब्राह्मणमें अति विस्तारके साथ इसका निरूपण किया गया है ।

विस्तारभयसे लेखनीको विराम ही देना पड़ेगा । फिर भी कतिपय शब्दोंमें पञ्चाग्निविद्याके पाँच प्रश्न और उनके उत्तरोंका दिग्दर्शन अनिवार्य है ।

प्रश्न—पृथिवीलोकसे मरणोत्तर प्राणी ऊपरके किस लोकमें जाता है ?

उत्तर—ज्ञानी, उपासक, कर्मठ, कुकर्मी—चार श्रेणियोंमें प्राणिवर्ग विभक्त हैं । ज्ञानीको कहीं जाना ही नहीं । यह पहले कहा जा चुका है । वह यहीं जीवभावका अन्त होनेसे अपने ब्रह्मस्वरूपमें स्थित हो जाता है । उपासक दो तरहके हैं—जैसे पञ्चाग्नि-उपासक एवं ब्रह्मोपासक । दोनों ही ब्रह्मलोकमें अवश्य जायँगे । अन्तर केवल इतना है कि पञ्चाग्नि-उपासक जिस कल्पमें ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ है उस कल्पमें उसकी पुनरावृत्ति न होगी; क्योंकि श्रुति (छान्दोग्य० ४ । १५ । ६)में लिखा है कि 'एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते ।' इस विशेषणसे उसी कल्पमें, जिस कल्पमें वे ब्रह्मलोक गये हैं, पुनरावृत्तिका निषेध हुआ है । कल्पान्तरमें पुनः प्रतीकोपासककी पुनरावृत्ति अनिवार्य है । ब्रह्मोपासककी पुनरावृत्ति न होकर ब्रह्ममुक्ति ही होगी ।

कल्पके अन्तमें जब ब्रह्मलोकके अध्यक्ष हिरण्यगर्भ मुक्त होंगे तो उनके साथ उनके उपदेशसे सब-के-सब ब्रह्मलोकवासी उपासक मुक्त हो जायँगे । कारण, उस समय हिरण्यगर्भके उपदेशसे सभीके निगूढ़ आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर लेते हैं । इस विषयका निरूपण वेदान्तदर्शन 'कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ।' सूत्रोंसे (४ । ३ । १०-११) में देखना चाहिये ।

कर्मठ देवलोक या पितृलोककी गतिको प्राप्त होते हैं । भेद केवल इतना है कि त्रिलोकीमें, मध्य चन्द्रलोक पृथिवी तथा द्युलोकके मध्यवर्ती अन्तरिक्षमें है । देवलोक प्रायः स्वर्ग, चन्द्रलोक द्युलोक अथवा द्युलोकसे ऊर्ध्वस्थित परमेष्ठि-मण्डल है । वैदिक प्रक्रियामें पाँचों मण्डल हैं । स्व भूमण्डल, परमेष्ठिमण्डल, सूर्यमण्डल, पृथिवीमण्डल एवं पृथिवीके ऊपर अन्तरिक्षके एक देशमें स्थित लघु-चन्द्रमण्डल । 'आकाशाच्चन्द्रमसम् ।' इस श्रुतिवचन (छान्दोग्य० ५ । १० । ४) में इसी लघु-चन्द्रमण्डलका उल्लेख है । 'संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसम्' इस श्रुतिमें (छान्दोग्य० ५ । १० । २) में आदित्यमण्डलसे ऊर्ध्वस्थित परमेष्ठिमण्डलकी ओर संकेत है; क्योंकि परमेष्ठिमण्डलस्थ चन्द्रमण्डलका ही आदित्यमण्डलसे ऊपर होना न्यायसंगत है । इन पाँचों मण्डलोंमें भूरादि सप्तलोकोंका समावेश हो जाता है और एक-एक लोककी दो-दो बार गणना करनेसे तीन त्रिलोकियोंका स्वरूप निष्पन्न होता है । जैसे भूलोक पृथिवी, जिसपर मनुष्य-समाज रह रहा है; द्युलोक, जिसमें सूर्य देदीप्यमान है, जिसे सूर्यमण्डल कहा जायगा । इन पृथिवी-द्युलोकके मध्यवर्ती अवकाशात्मक आकाश अन्तरिक्ष है । इन तीनोंकी एक त्रिलोकी बनी । दो मण्डलोंकी दृष्टिसे इस त्रिलोकीका वैदिक नाम 'रोदसी' है । द्युलोक और 'जनः' या जनलोक इन दोनोंके मध्यवर्ती 'महः' नामक आकाशको मिला लेनेसे स्वः, महः, जनः—इन तीनोंकी दूसरी त्रिलोकी बनी । द्युलोकका अपर नाम स्वः या सूर्यमण्डल है । जनलोकका नामान्तर ही 'परमेष्ठिमण्डल' है ।* इसी और सत्य और उनके मध्यवर्ती तपोलोकको मिला देनेसे इन तीनोंकी तीसरी त्रिलोकी बनेगी । परमेष्ठिमण्डल, स्वयम्भूमण्डल—इन दो मण्डलोंकी दृष्टिसे इस त्रिलोकीका द्विवचनान्त वैदिक नाम 'संयती' है ।

इन सातों लोकोंका अनुसरण वेदानुगामी द्विज प्रतिदिन सन्ध्योपासनके समय करते ही हैं । अनन्त आकाशमें अनन्त ब्रह्माण्ड हैं । उनका आभासमात्र हमारी [illegible] अपरत है । संक्षिप्त विवरण इन त्रिलोकियोंके समष्टि हमारे इस ब्रह्माण्डका ही यत्किंचित् बताया गया है ।

अस्तु, त्रिमूर्त्यात्मक चन्द्रलोकके स्वरूपके लिये प्रसङ्गवश मण्डलादिका उल्लेख किया गया । अब

* इस त्रिलोकीका वेदमें [illegible] नामसे निर्देश [illegible] करनेसे हुआ है ।

शीत कटिबन्ध, उष्ण कटिबन्ध, मध्य कटिबन्ध एवं नागवीथि, अजवीथ्यादि नौ वीथियोंका शास्त्रवर्णित विवरण आवश्यक होनेपर भी स्थानसंकोचके कारण नहीं किया जा सका। उनके लिये पाठक पुराणशास्त्रकी शरण लें। कर्मठोंको कर्मफलभोगके अनन्तर पृथिवीपर अवश्य लौटना ही होगा, जिसका विवरण द्वितीय प्रश्नके उत्तरमें दिया जायगा।

प्रश्न २—स्वर्ग या पितृलोकमें गये हुए प्राणियोंके प्रत्यावर्तनका प्रकार क्या होगा ?

उत्तर—वे स्वर्ग या पितृलोकके प्रापक कर्मसमूहके भोगके अनन्तर वहाँसे वक्ष्यमाण मार्गसे प्रत्यावर्तन करते हैं। पहले वे आकाशको प्राप्त होंगे, पश्चात् वायुको, फिर वायु-सदृश होकर धूम-सदृश होंगे। अनन्तर अभ्र, तदनु मेघ बनकर वृष्टिद्वारा पृथिवीपर पहुँचेंगे। वे साक्षात् धूमादि स्वरूप न बनकर उनके समान स्वभावके होते हैं। पृथिवीपर पहुँचकर जातिस्थावर व्रीहि-यवादि पौधोंके साथ संश्लिष्ट होते हैं। स्वयं स्थावर योनिको प्राप्त नहीं होते। इसको समझनेके लिये वेदान्तदर्शन—

'साभाव्यापत्तिरुपपत्तेः।' 'नातिचिरेण विशेषात्।'
'अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्।'
(३।१।२२, २३, २४)

—सूत्र तथा शांकरभाष्य द्रष्टव्य है।

प्रश्न ३—देवयान-पितृयान, इन दोनों मार्गोंका विभाग अथवा अन्तर क्या है ? तात्पर्य, ये दोनों मार्ग कहाँसे पृथक् होते हैं तथा इन दोनोंके विश्राम, पड़ाव, स्टेशन समान हैं या न्यूनाधिक ?

उत्तर—पितृयानमार्ग (धूमयान) के क्रमशः सात पर्व हैं—धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायनके षण्मास, ये प्रथम चार पर्व हैं। ज्ञातव्य है कि धूमादि शब्दोंका सिद्धार्थ यहाँ विवक्षित नहीं, अपितु तदभिमानी 'आतिवाहिक देवता' अभिप्रेत है। देखिये—वेदान्तदर्शन ४।३।४ 'आतिवाहिकास्तल्लिङ्गात्।'

इस मार्गसे जानेवाले कर्मठ प्राणी संवत्सराभिमानी आतिवाहिक देवताको मिल नहीं पाते। बस, यहाँसे इस पितृयानमार्गका देवयानमार्गसे विभाग हो जाता है। पञ्चम पर्व पितृलोक, षष्ठ आकाश, सप्तम चन्द्रलोक है।

(देखिये छान्दोग्योपनिषद्—५।१०।३, ४)

देवयानमार्गके १४ पर्व हैं—(१) अर्चिः अग्नि ज्वाला, (२) दिवस, (३) शुक्लपक्ष, (४) उत्तरायणके षण्मास, (५) संवत्सर, (६) देवलोक, (७) वायु, (८) आदित्य, (९) चन्द्र (जनः) परमेष्ठिमण्डल, (१०) विद्युत् (तपः), (११) वरुण, (१२) इन्द्र, (१३) प्रजापतिः, (१४) ब्रह्मलोक (सत्यलोक)।

विद्युत्-लोकमें उपासकके पहुँचते ही उसके स्वागतके लिये ब्रह्मलोकसे अमानव (दिव्य पुरुष) भेज दिया जाता है। वह उसे साथ ले वरुणलोकादिद्वारा ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। छान्दोग्य ५।१०।१, २ में यद्यपि देवलोक, वायुलोक, वरुण, इन्द्र, प्रजापति—इन पाँचों पर्वोंका उल्लेख नहीं, तथापि कौषीतकी आदि अन्य श्रुतिवचनोंके आधारपर वे मार्गकी पर्वपूर्तिके लिये अवश्य उपादेय हैं। इसका विवरण वेदान्तदर्शन ४।३।१, २, ३ सूत्रों तथा उनके भाष्यमें द्रष्टव्य है।

प्रश्न ४—क्या आजतक अनन्त पुण्यात्माओंके स्वर्गमें चले जानेसे वह स्वर्ग परिपूर्ण न हो गया होगा, अर्थात् आजकल जिन देशोंमें अधिक जनसंख्या हो जाय, वहाँ नये विदेशियोंके आनेपर प्रतिबन्ध लगाया जाता है। सम्भव है स्वर्गलोकमें अधिक प्राणिवर्गकी उपस्थितिके कारण नये परलोकयात्रियोंके लिये प्रतिबन्ध तो नहीं लगा दिया गया ?

उत्तर—प्रथमतः पुण्यात्माओंकी स्वल्प संख्या होती है, और गये हुओंका प्रत्यावर्तन भी पहले कहा जा चुका है। कुकर्मोंको वहाँ जानेका आदेश ही नहीं। कारण, कुकर्मी वहाँ जाते ही नहीं। उनके लिये जन्म-मरण परम्परारूप तृतीय स्थान निर्धारित है। निष्कर्ष—कुकर्मी लोग क्षुद्र कीट-पतङ्गयोनिमें चले जाते हैं। वे बार-बार जन्मते तथा मरते हैं। इसलिये वे पृथिवीपर ही जन्म-मरणके चक्रमें फँसे रहते हैं। अतएव अनन्त कुकर्मियोंके पृथिवीमण्डलमें ही तिर्यक् योनियोंमें प्रविष्ट होनेके कारण स्वर्गलोकके परिपूर्ण होनेकी सम्भावना ही नहीं। कतिपय स्वर्गमें गये हुए पुण्यात्माओंको भी कुछ सीमित समयतक निवासका आदेश है। भोगसे कर्मक्षय होनेपर उन्हें भी वहाँसे निर्वासित किया जाता है। भला, ऐसी स्थितिमें स्वर्गका भरना तो दूर रहा, वहाँके रिक्त स्थानोंकी पूर्ति होना भी कठिन है; क्योंकि जनसमाजका अधिक झुकाव पापकी ओर है। पुण्यकी ओर अङ्गुलिगण्य विरले व्यक्तियोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है। इसके

अति दुष्कर्मी, जिन्हें रौरवादि नरकोंमें जाकर यातना भुगतनी होगी, उनकी तुलना अपराधी कैदियोंसे करनी होगी। न्यायालयमें दण्डित होकर कैदी कारा (जेल) में भेज दिये जाते हैं। वहाँ कारागारकी कठोर यातनाएँ उन्हें भोगनी पड़ती हैं।

दक्षिणायन नामक मार्गसे परलोक ले जाया जाता है; उसके पश्चात् दक्षिणदिशामें वर्तमान यमालयमें उन्हें जाना पड़ेगा। यहाँ मृत पुरुषोंके अपराधके दण्डका निर्णय वैवस्वत यमदेव करते हैं। इस कार्यके लिये वे प्रभुकी ओरसे नियुक्त हैं। इसीलिये उन्हें पितृलोक नामक यमालयमें पहुँचे हुए प्राणिसंस्थाके शासक होनेके कारण अभिधान कोशमें 'पितृपति' या 'धर्मराज' कहा है। इस विषयका स्पष्टीकरण निम्न लिखित मन्त्रोंके अवलोकनसे होगा—

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये।
तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम्॥
(शु० य० मा० सं० १९।४५)

इस मन्त्रमें पितृपतिकी यमराज्यमें सत्ताका उल्लेख है। भाष्यकार महीधर—

'यमस्य राज्यं यस्मिन् तत्र यमलोके ये पितरो वर्तन्ते धर्मराजः पितृपतिरित्यभिधानात्।'

इस उक्तिद्वारा यमालय (यमलोक) और वहाँ नियुक्त दण्डपाणि धर्मराजके अस्तित्वका स्पष्ट प्रतिपादन कर रहे हैं। केवल दण्डपाणि यमकी नियुक्ति नहीं, उनकी सहायताके लिये पाशपाणि वरुण भी नियुक्त हुए हैं—

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥
(ऋ० १०।१४।७, अथर्व (कुछ पाठान्तरसे) १८।१।५४)

पुत्र अपने मृत पिताको कह रहा है कि 'मेरे पूज्य पिताजी! पूर्वकालसे होनेवाले अनादिकाल-प्रवृत्त मार्गोंसे आप वहाँ अति शीघ्र जायँ। जिस मार्गसे आदरणीय अथवा प्रशंसनीय [illegible] पूर्वपुरुष पितामहादि पहले पहुँच चुके हैं तथा वहाँ पहुँचकर स्वधया—अमृतसे तृप्त यम और वरुणदेव दोनों राजाओंके दर्शन करें।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि यमालयमें मृतात्माओंके [illegible] करनेके लिये दो अधिकारी नियुक्त हैं—यम और वरुण। उनमेंसे [illegible]

शब्द प्रयुक्त हुआ है। कारण ऋग्वेदमें केवल वरुणके लिये 'सम्राट्' शब्दका प्रयोग हुआ है। अतः यमके हाथमें दण्ड और वरुणके हाथमें पाश शासकका चिह्न है—

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः॥
(तै० आ० ६।४। ऋग्वेद १०।१४।८। अथर्व १८।३।५८)

पुत्र अपने मृत पिताको पुनः प्रार्थना करता है—

'हे मृतात्मन् पिताजी! अवद्यम्—पापकी [illegible] परित्याग करके अनुष्ठान किये हुए इष्टापूर्त श्रौतस्मार्त रूप कर्मोंके प्रभावसे आप यमसे मिलें। तदनन्तर उन्हीं शान्त पितरोंसे समागम करें। जो यम और पितृगण परमे व्योमन्—उत्कृष्ट स्थान—उत्तम पितृलोक—स्वर्गमें रहते हैं। 'अस्तं'—भोगमें कर्मक्षयके होनेपर फिर पृथिवीपर पुनः आगमन करें। अथवा कर्मभोगानन्तर, अस्त—गृहं [illegible] गृह—निवासस्थान पृथिवीको प्राप्त हों। इतना ही नहीं, पृथिवीपर आकर सुवर्चाः—सुवर्चस। [illegible] दीप्तियुक्ततन्वा—सुन्दर कान्तिवाले शरीरसे संगत हों। अर्थात् पितृलोकसे पृथिवीमें लौटकर सुन्दर शरीरको धारण करें।'

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः॥
(ऋग्वेद १०।१६।५। अथर्व १८।२।१०। तै० आ० [illegible])

(व्याख्या) हे अग्ने! यः—जो मृत पुरुष हैं, जो आहुतः—चितामें वेदमन्त्रसे समर्पण किया गया है और 'स्वधाभिः' उपासनपूर्वक समर्पित उदकादिसे युक्त चरति—इधर-उधर चक्कर काट रहा है, उसे 'पितृभ्यः'—पितरोंकी प्राप्तिके निमित्त अर्थात् पितृलोककी प्राप्तिके लिये पुनः 'अव सृज'—फिर प्रेरित करें। पितृलोकमें कर्मभोगके अनन्तर पुरुष हे जातवेद! आपकी कृपाद्वारा शरीरसे, 'तन्वा सं गच्छताम्'—संगत हो, अर्थात् पितृलोकसे [illegible] होकर शरीर धारण करे। यहीं नहीं, आपकी कृपासे 'आयुर्वसानः'—आयुको धारण करनेवाला, दीर्घायुः शेष—संतान अपत्य (देखिये निरुक्त ३-२) उपवेतु—उपगच्छतु—उस पुरुषको प्राप्त हो।

तात्पर्य—पृथिवीपर शरीर धारण करके पितृलोकमें गया हुआ पुण्यात्मा पुरुष [illegible] प्राप्त हो। और [illegible] उस पितृलोकसे [illegible] पुरुषको उपगच्छतु—पृथिवीपर [illegible] प्राप्त करके [illegible]

न–आयुयुक्त दीर्घजीवी हो, पृथिव्यां तिष्ठतु इति अध्याहारः–
ीमें रहे।

इन मन्त्रोंसे मृतात्माके लोकान्तरमें पहुँचने और प्रत्या-
होकर पृथिवीमें शरीर धारण करनेका स्पष्ट वर्णन है।
रताकी बात है कि जब हमने वैदिक संहिताओंमें
ोकसम्बन्धी खोज आरम्भ की, तब एक-दो नहीं, असंख्य
अहं-अहमिकासे उपस्थित हुए। तब हमें निःसीम
श्चर्य हुआ। भगवान् वेद विश्वकल्याणके लिये जिन
योंका प्रत्यक्ष अथवा अनुमानसे ज्ञान सम्भव नहीं, उनकी
गति करानेमें सर्वथा सचेष्ट हैं। इसी अभिप्रायकी अभि-
ोक्ति है—

प्रत्यक्षेणानुमानेन यस्तूपायो न बुद्ध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

'प्रत्यक्ष या अनुमानसे जिस अलौकिक साधनका ज्ञान
ाक्य है, उसे वेदके द्वारा ही मनुष्य जानते हैं। यही
का वेदत्व है।'

वेदवर्णित यमालय तथा उसके स्वामी यमराज एवं
उनके द्वारा पापकी जाँच कर नरकगतिके निर्णयका उल्लेख
ान्तदर्शनमें ३। १। १३, १४ तथा १५ सूत्र तथा उनके
ष्यमें द्रष्टव्य है।

'संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात्।'
'स्मरन्ति च।' 'अपि च सप्त।' 'पूषा त्वेतः।'
(ऋग्वेद १०। १७। ३; अथर्व० १८। २। ५४; तै० आ०
१। १; निरुक्त ७। ९)

'द्यौर्मे पिता जनिता।'
(ऋग्वेद १। १६४। ३३; अथर्व० ९। १०। १२; निरुक्त०
२१)

पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनुषिच्यते।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापतिरब्रवीत्॥
(अथर्व० ६। ११। २)

इत्यादि वेद-मन्त्र पञ्चाग्निविद्याके मौलिक तत्त्व तथा
कसम्बन्धी तथ्योंकी जानकारीके लिये विशिष्ट महत्त्व
हैं। विस्तारभयसे उनकी व्याख्या नहीं की गयी।

सुबन्धु-उपाख्यान, ऋग्वेदीय १० वें मण्डलके सूक्त ५७
से ६० तक ४ सूक्तोंसे सम्बद्ध है। उन सूक्तोंकी क्रमशः
ऋचाएँ ६, १२, १० तथा १२—संकलित ४० हैं। उस
उपाख्यानके परिशीलनसे परलोकसम्बन्धी मनोरञ्जक तथ्य
अवगत होते हैं। नीतिमञ्जरी, सामवेदीय शाट्यायण
ब्राह्मण, बृहद्देवता, कात्यायन ऋग्वेदीय सर्वानुक्रमणी तथा
सायण भाष्य उसके आधार हैं।

हमारे प्राचीन महर्षियोंको एक अपूर्व विद्या अवगत
थी, जिसके द्वारा वे मृत व्यक्तिके जीवात्माको जिस शरीरसे
वह उत्क्रान्त हुआ है, उसीमें फिरसे आह्वान कर सकते थे।

अस्माति राजा मानवी असुरोंके मायाजालमें फँस गये
और अपने कुलगुरु पुरोहितोंको छोड़कर कीराताकुली नामक
मायावी असुरोंको उन्होंने अपना पुरोहित बनाया। इससे
क्रुद्ध होकर उसके सुबन्धु, बन्धु, श्रुतबन्धु तथा विप्रबन्धु—
इन चार पुरोहितोंने अभिचार-प्रयोगसे राजाका अनिष्ट करना
चाहा। राजाके द्वारा उसकी सूचना नवनियुक्त असुर
पुरोहितोंको दी गयी। उन्होंने अपनी माया तथा योगशक्तिसे
प्राचीन पुरोहितोंके अभिचार-प्रयोगको निष्फल बना दिया
तथा राजाका बाल बाँका नहीं हो सका। प्राचीन पुरोहितोंके
समक्ष एक नया संकट उपस्थित हुआ। असुर पुरोहितोंने
सुप्त—असावधान उनके सुबन्धु भ्राताके प्राणोंको हरण कर
लिया। वे स्वदृष्ट उक्त सूक्तोंके प्रभावसे सुबन्धुके निर्गत
प्राणोंको वापस बुलानेमें सफल हुए और मृत सुबन्धु चेतनामें
आये और जीवित हो गये। तब उनके बन्धु आदि भ्राताओं-
ने सुबन्धुके लब्धसंज्ञ शरीरको हाथसे सस्नेह स्पर्श करते
हुए मन्त्र पढ़ा—

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥
(ऋग्वेद १०। ६०। १२)

'मेरा हाथ क्या ही सौभाग्यशाली है। यह अत्यन्त
सौभाग्यशाली है, यह सबके लिये भेषज है। इसके स्पर्शसे
कल्याण होता है।'

अथर्ववेदमें भी जब मनुष्यकी आयु क्षय हो रही हो,
मरणोन्मुख दशामें उसका कण्ठ कफावरोधके कारण भयंकर
शब्द कर रहा हो एवं मनुष्य ऊर्ध्व श्वास ले रहा हो या
उसके प्राण शरीरसे विदा हो गये हों, उसे ही जीवित करनेके
लिये मन्त्र है—

भी मार्क्सके सिद्धान्तके अनुसार पुनर्जन्मके सिद्धान्तको व्यर्थ और झूठा बताया गया है। बहुतसे पाश्चात्य विद्वानोंने भी आर्यजातिके मान्य वैदिक ग्रन्थोंमें भी ऐसा सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि "पुनर्जन्मका यह सिद्धान्त प्राचीन समयका नहीं है; क्योंकि वैदिक संहिता-ग्रन्थोंमें इसे नहीं माना गया है। इस सिद्धान्तको बादमें साम्राज्यवादी क्षत्रियोंने स्वीकार करके साम्राज्यवाद एवं कैपिटेलिस्टवादके आश्रयरूपसे प्रवृत्त किया है; क्योंकि छान्दोग्योपनिषद्के अश्वपति-जैविलि-संवादमें एवं श्रीभगवद्गीता (२।२२) में भी उसीका अनुसरण किया गया है। 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' आदि श्लोक श्रीकृष्ण एवं अर्जुनके संवादमें बताये गये हैं। यह भी क्षत्रियोंका सिद्धान्त है, जो कि क्षत्रियोंद्वारा ही समर्थित है।"

परंतु यह आक्षेप सर्वथा निराधार है कि पुनर्जन्मका सिद्धान्त साम्राज्यवादियों एवं कैपिटेलिस्टोंका है। वैदिक संहिता-ग्रन्थोंमें यह सिद्धान्त नहीं है—यह कथन भी प्रमाणरहित है। अथर्ववेदके अठारहवें काण्डमें अनेक मन्त्र पुनर्जन्मके समर्थक आये हैं, जिनका पाठ ऋग्वेद एवं यजुर्वेदमें भी आया है। यहाँपर एक मन्त्र उदाहरणके रूपमें लिखा जा रहा है, जिससे यह सिद्धान्त स्पष्ट ज्ञात होगा। ऋग्वेद एवं यजुर्वेदमें भी इसका पाठ आया है—

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः। जीवं व्रातं सचेमहि। (ऋ० १०। ५७। ५; यजुर्वेद ३। ५५)

'मैं पुनः-पुनः माता-पिताको प्राप्त करूँ, दिव्यजन और जीवके विग्रहको प्राप्त करूँ।' गीता (४।९) में भी दिव्य जन्मकी बात कही गयी है—'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' आदि श्लोकमें नारायणके दिव्य पुनर्जन्मकी कथाएँ अनादिकालसे ही प्रसिद्ध हैं। अन्तर केवल इतना है कि जीव अविद्यामें है और ईश्वर अविद्यासे मुक्त है। बार-बार जन्म दोनोंके होते हैं।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ४। ५)

'हे अर्जुन! हमारे और तुम्हारे बहुत-से जन्म व्यतीत हो चुके हैं, उन सबको मैं जानता हूँ, तुम नहीं जानते; (क्योंकि मैं विद्यास्वरूपसे युक्त हूँ और तुम अविद्यामें हो)।'

यह क्षत्रियोंका ही सिद्धान्त है। यह कथन सर्वथा अयुक्त है। कठोपनिषद्, मुण्डक आदि उपनिषदोंमें क्षत्रियों एवं कैपिटेलिस्टोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनमें पुनर्जन्मके सिद्धान्त स्पष्टरूपसे बताये गये हैं। वास्तवमें यह एक पूर्ण सत्य है, जिसका किसी वर्गविशेषसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

जीवका स्वरूप और पुनर्जन्म

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥
(ऋ० १। १६४। २०; मुण्डक० ३। १। १)

'दो पक्षी एक वृक्षपर बैठे हुए हैं। एक वृक्षके स्वादिष्ट फलोंको खा रहा है, दूसरा केवल साक्षीरूपसे देख रहा है।' इस मन्त्रमें ईश्वर एवं जीवका स्वरूप बताया गया है। राग-द्वेषमय अविद्याके साथ अभ्यास होकर, अहं-ममके अभिमानसे जीव सांसारिक सुख-दुःखोंमें बँधा हुआ है। यह व्यवहार कबसे हुआ, इसके आरम्भका ज्ञान न होनेसे इसे अनादि बताया गया है—

'नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।'

इसे ही भगवद्गीता (१५।३) में स्वीकार किया गया है। सत्त्व, रज, तम—इन त्रिगुणोंके प्रभावसे जीव ऊँच-नीच कर्मोंको करता है और उसीके अनुसार अनेक योनियोंमें घूम रहा है। यही पुनर्जन्मका कारण है। इसीको यमने कहा है—'पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।' (कठ० १। २। ६)

'बार-बार रागद्वेषात्मक कर्मफलोंमें आसक्त रहनेसे जीव जन्म-मरणके चक्रमें पड़े रहकर हमारे वशमें रहते हैं।' जो लोग सात्त्विक कर्म करते हैं, उन्हें ऊर्ध्वगति प्राप्त होती है, राजस लोग मध्यम गतिवाले हैं तथा तामस लोग जघन्य योनियोंको प्राप्त होते हैं। छान्दोग्योपनिषद्में पञ्चाग्नि-विद्यारूपसे यह विषय बताया गया है। यदि पुनर्जन्म नहीं माना जायगा तो सांसारिक व्यवस्था समविषमरूपसे जो चल रही है, उसका कोई ठीक समाधान हो ही नहीं सकता। किसी भी भौतिक उपायसे यह असम्भव है। संसारमें जहाँ-कहीं यह विषय चल रहा है, वहाँ भी स्वाभाविक भेदभाव विद्यमान है; क्योंकि भेद ही सृष्टिका आधार है। भेदके निवृत्त होनेपर सृष्टि नहीं रहेगी। पुनर्जन्म न माननेवालेके सामने—अकृताभ्यागम, कृतप्रणाश—नामक दोष पूर्वके विद्वानोंने रक्खा है, जिसका अर्थ यह है कि यदि पुनर्जन्म न माना जायगा तो जो कुछ मनुष्यको इस जीवनमें

रहा है यह बिना किये हुए ही है। कोई बुद्धिमान्, कोई मूर्ख; कोई धनी, कोई गरीब; कोई महात्मा, कोई दुष्ट आदि भेदोंका समाधान नहीं होगा। वर्तमानमें जो धर्मात्मा शुभ कर्म कर रहे हैं, अथवा पापी जो पाप करते हैं, उनका फल उन्हें नहीं मिलेगा; क्योंकि मरनेके पश्चात् फिर जन्म न होनेसे दोनों एकसे ही होंगे। इस अव्यवस्थाको सुलझानेका उपाय पुनर्जन्म है। यह अभिप्राय उक्त युक्तिका है।

आगमके अनुसार जीवका स्वरूप

'न जायते म्रियते वा कदाचित्'—इस गीतावाक्य (२।२०)से आत्माकी उत्पत्ति एवं मरणका निषेध किया गया है। इसपर यह प्रश्न होता है कि फिर जन्म-मरण किसका है? इसके लिये यह अङ्गीकार किया गया है कि जन्म-मरण शरीरधारीका है। वास्तवमें जीव भी जन्म-मरणसे रहित ही है। कर्मफल भोगनेके लिये शरीरोंका ही जन्म-मरण होता है, तथापि शरीरका सम्बन्ध होनेसे आत्मामें गौण रूपसे जीवन-मरण स्वीकार किया गया है। इसके आविर्भावका सिद्धान्त इस प्रकार बताया गया है। सहस्रारके ऊर्ध्व भागमें निर्वाण शक्तिका ध्यान योगी करते हैं। शिव-शक्ति सामरस्य भावसे आनन्दबिन्दुका आविर्भाव इसी शक्तिसे होता है, जिसे इस प्रकार कहा गया है—

> यथाग्नेर्ज्वलतो देवि स्फुरन्ति विस्फुलिङ्गकाः।
> तस्मादप्युत्थितं परं बिन्दुर्यत्र भुवो यत्नतोऽपि॥
> तद्वैव सहसा देवि अंशरूपो भवत्यपि।

'जैसे प्रज्वलित अग्निसे छोटे-छोटे अग्निकण स्फुलिङ्ग होते हैं, उसी प्रकार उस परमानन्दस्वरूपिणीसे जीवरूप उत्पन्न हुए। अविद्यामें प्रतिबिम्बित होनेसे उसके सारे अंशसे आनन्दांश तिरोहित हो गया है। उसे (आनन्द) प्राप्त करनेके लिये यह जीव सर्वदा लालायित रहता है। वह ज्ञान होनेपर ही उसे प्राप्त कर सकता है। जबतक यह ज्ञान नहीं प्राप्त करता, तबतक पुनर्जन्मका चक्र चलता ही रहता है। मुण्डकोपनिषद्में भी ऐसा ही कहा गया है—

> तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद्
> विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
> तथाक्षराद् विविधाः सौम्य भावाः
> प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति॥
> (मु० २।१।१)

'हे प्रिय! यह केवल परम सत्य अक्षर है। उसीसे अनेक भाव प्रकट होकर पुनः उसीमें लय हो जाते हैं, जैसे प्रज्वलित अग्निसे अनेक चिनगारियाँ प्रकट होकर उसीमें समा जाती हैं।'

उपसंहार

संक्षिप्त रूपमें पुनर्जन्मके उपयोगी सिद्धान्तोंका वर्णन किया गया है। विस्तृत रूपमें पुराण-ग्रन्थोंमें जो अनेक लोकान्तरोंका वर्णन मिलता है, वह भी पुनर्जन्मके सिद्धान्तपर ही आधारित है। शुभकर्म, उपासना, योगसे इस जीवात्मा अपनी योग्यताके अनुसार प्राप्त करता है। दक्षिणायन एवं उत्तरायण गतिका वर्णन भी इसीसे सम्बन्ध रखता है। इन दोनों गतियोंसे भिन्न सद्योमुक्ति और क्रममुक्तिके भी सिद्धान्त हैं, जिन्हें आधार मानकर मनुष्य प्राप्त करके अपने वास्तविक आनन्दरूपको प्राप्त करनेके लिये सांसारिक दुःखोंसे शीघ्र छूट जाता है। यही जीवनका लक्ष्य है। निराकार ब्रह्मकी प्राप्ति और अद्वैत-बोध रूपसे बताया गया है। इसमें किसी लोकान्तरकी अपेक्षा नहीं है।

कौन स्वधर्म-भ्रष्ट कैसे प्रेत होते हैं?

> वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात् स्वकाच्च्युतः। अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः॥
> मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक्। चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात् स्वकाच्च्युतः॥

अपने धर्मसे च्युत ब्राह्मण वान्ताशी (वमन खानेवाला), उल्कामुख (अग्नि-मुँहवाला) प्रेत होता है; (क्षत्रिय) तथा अपवित्र मुर्दोंको खानेवाला कटपूतन नामक प्रेत होता है; अपने धर्मसे च्युत वैश्य पीब खानेवाला मैत्राक्षज्योतिक प्रेत होता है तथा शूद्र चैलाशक (वस्त्रके कीड़े खानेवाला) नामक प्रेत होता है (मनुस्मृति १२। ७१-७२)।

द्वन्द्वमयी सृष्टि

(लेखक—श्रीस्वामीजी श्रीप्रेमानन्दतीर्थजी महाराज)

[प्रेषक—श्रीओंकारनाथजी मुद्गल]

सृष्टि-रचनाके लिये 'एक' को 'बहु' होना होगा, बहुरूपी स्वाँग बनाने होंगे, देवासुररूपमें प्रकट होना होगा, द्वन्द्वभावके माध्यमसे बाहर निकलना होगा और जन्म-मृत्युद्वारा परिणति प्राप्त करनी होगी।। नाटकमें जितनी रामकी आवश्यकता है, रावणकी उससे किंचिन्मात्र भी कम नहीं है; और दोनोंके बीचमें रहेगी—महामाया सीतादेवी एवं इसके भीतर आ जायगा एक, असम्भव स्वर्णमृग-रहस्य। तभी तो रामलीलाका खेल सुचारु रूपसे होगा। नाटक देखकर तुम बाहरका लीलातत्त्व तो कुछ समझ गये; अब एक बार साधनबलसे नेपथ्य (green room) में जाकर स्वरूप-तत्त्वको समझनेकी चेष्टा करो। यदि किसी प्रकार वहाँ पहुँच सको तो देखोगे कि न राम राम हैं, न रावण रावण है और न सीता सीता ही। वहाँ न कोई भेद-भाव है, न झगड़ा-विवाद। जो कुछ गड़बड़ी है वह रंगमंचपर और वह भी सबको आनन्द देनेके लिये, लीलामयकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये। जिसने एक बार वेशस्थानमें जाकर स्वरूपको देख लिया, स्वाँगके भीतरके असली मनुष्यको पहचान लिया, असली मनुष्यके भीतरके उद्देश्यको जान लिया, उसके लिये सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। उसके भाव-कर्म-वचनमें आनन्दके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलेगा।

और जिसने स्वाँगको ही सार मान लिया है, जो लीलाके रहस्यको समझ नहीं सका, स्वरूपको जाननेकी कोई चेष्टा नहीं की; वह घात-प्रतिघातद्वारा कल्पित द्वन्द्वके प्रभावसे, संसारके थपेड़ोंसे, विचलित होता रहेगा—इसमें क्या संदेह हो सकता है। परंतु ज्ञानीजन सुन्दर रूपसे जानते हैं कि संसारके सब सुख-दुःख, हँसने-रोनेके माध्यमसे भगवान् जीवको ज्ञान दानकर, स्वरूप-प्रतिष्ठकर, आनन्दमें विभोर करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। बुरेके बिना अच्छेका, अन्धकारके बिना प्रकाशका मूल्य ठीकसे समझना कठिन है। हिरण्यकशिपुने प्रह्लादके चरित्रको किस प्रकार प्रकाशित—अनुभव-योग्य किया, यह वास्तविक साधकके अतिरिक्त अन्य लोगोंके लिये समझना और सब समय याद रखना सहज नहीं।

साधु शिक्षा देता है—विध्यात्मकरूपसे। यह बता देता है कि किस प्रकार जीवनमें चलनेसे उन्नति, शान्ति, भगवत्-प्राप्ति-लाभ की जा सकती है। और असाधुकी शिक्षा निषेधात्मक होती है। वह अपने चरित्रद्वारा दिखा देता है कि कुपथमें जाने और कुकर्म करनेका कैसा भीषण परिणाम होता है—उन्नति, शान्ति और आनन्दसे किस प्रकार वञ्चित होना पड़ता है। साधु हाथ पकड़कर ले जाता है और असाधु पद-पदपर सावधान करता है। दोनों ही हमारे कल्याणमें सहायक और आवश्यक हैं। सिद्ध महात्मा मौलाना रूमीने पापी-तापी-दुराचारीको गुरुरूपमें ग्रहणकर प्रणाम किया। सभी देशोंके साधकोंने असाधुकी शिक्षाको स्वीकार किया है।

सच्चे साधकको जन्म और मृत्यु दोनों आत्माके क्रम-विकासमें सहायक होनेके कारण समान रूपमें गृहीत हैं; उसकी आनन्द-अनुभूतिमें—भगवत्-लीलारस-आस्वादनमें सहायक हैं। ज्ञानीके ज्ञानद्वारा और अज्ञानीकी अज्ञताद्वारा भगवत्-उद्देश्य किस प्रकार सफल हो रहा है; देवासुर-युद्धके द्वारा उनके स्वर्गकी पवित्रताकी किस प्रकार रक्षा हो रही है; द्वन्द्वभावके द्वारा उनकी महिमा किस प्रकार घोषित हो रही है, उनका लीलारस अनुभववेद्य हो जाता है, यह साधकके अतिरिक्त अन्य लोगोंके लिये समझना वास्तवमें कठिन है।

असंयत स्वार्थचालित विषयलोलुप व्यक्ति यदि जन्म-मृत्युरहस्य और जन्म-जन्मान्तरीय सम्बन्ध जाननेमें समर्थ होता तो उसके लिये संसारमें रहना कठिन ही नहीं, प्रायः असम्भव हो जाता। पूर्वजन्ममें कौन उसका मित्र था कौन शत्रु, किससे क्या सम्बन्ध था, यदि वे सब बातें असाधक-को याद रहतीं तो उनके लिये अपने वर्तमान जन्मके अनुकूल सब कार्योंका ठीकसे निर्वाह करना भयानक कष्टकर और अशान्तिप्रद हो जाता। अनधिकारीके लिये दिव्य शक्तियाँ कैसी विडम्बना और अशान्तिका कारण होंगी, यह हम अनेक समय समझ नहीं पाते। जिन माँका एकमात्र उद्देश्य है अपनी संतानको खिलाना, पहनाना, सर्वदा आनन्दमें

हास्ययुक्त मुखका चिन्तन करे। पश्चात् मनको खींचकर कारणोंके कारण आकाशमें स्थापन करे—

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत्।

(श्रीमद्भागवत ११। १४। ४४)

उसे त्यागकर जो आदमी मुझमें आरूढ होना चाहता है, वह केवल मेरा ही चिन्तन करे। राम-राम सीताराम। ध्यानके समय जो आकाश उपस्थित होता है, उस आकाशको ही परमपद कहते हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—जिस आकाशको हम देखते हैं, इसीका नाम परमपद है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। नहीं, परमपद इन आँखोंसे नहीं देखा जाता। आँखें मूँदकर ज्ञाननेत्रसे उसे देखना पड़ता है। वह परमपद सबका काम्य है। भक्त सगुण मन्त्र जप करता है। सगुण-साक्षात्कारके बाद मन्त्र लय हो जाता है, ॐकारकी प्राप्ति होती है। उसकी सुषुम्णामें नादात्मक ॐकार अबाध गतिसे निरन्तर क्रीड़ा करता है। उस नादको सुनते-सुनते आकाश उपस्थित होता है। कोई उसको विराट् कहता है, कोई महान् कहते हैं, कोई उसको परमपद कहते हैं। राम-राम सीताराम। शास्त्रमें परमपदका अनेक रूपोंमें वर्णन किया गया है। राम-राम सीताराम।

हलधर—बतलाइये न, शास्त्र क्या कहते हैं?

पागल—

अविकारमजं शुद्धं निर्गुणं यन्निरञ्जनम्।
नताः स्म तत् परं ब्रह्म विष्णोर्यत् परमं पदम्॥

(विष्णुपुराण १। १४। ३८)

'जो अविकार, अज, शुद्ध, निर्गुण और निरञ्जन विष्णु-का परमपद है, उस परब्रह्मके प्रति हम नत होते हैं।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—आपने आकाशको परब्रह्म कहा है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। श्रुति कहती है—

यद् वै तद् ब्रह्मेतीदं वाव तद् योऽयं बहिर्धा पुरुषादाकाशो यो वै सः।

(छान्दोग्य० ३। १२। ७)

'पहले जिसको ब्रह्मरूप बतला चुके हैं, वही देहके बाहर विद्यमान आकाश है। देहके बाहर जो आकाश है, वही आकाश शरीरके भीतर है। देहके भीतर जो आकाश है, वही आकाश हृदयकमलके भीतर है; यह हृदयाकाश नामक ब्रह्म पूर्ण और प्रवृत्तिहीन है। जो इस प्रकार ब्रह्मको जानता है, वह पूर्ण और अविनाशी ऐश्वर्य प्राप्त करता है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—आकाशको देखनेसे ब्रह्म देखा जाता है?

पागल—ब्रह्माकाश आँखोंसे नहीं देखा जाता। ब्रह्माकाश भूताकाशको व्याप्त करके स्थित है। राम-राम सीताराम। *'मनो ब्रह्म' अध्यात्म उपासना है। 'आकाशो ब्रह्म' अधिदैवत* उपासना है। मन ब्रह्मके चार पद हैं—वाक्, नासिका, चक्षु और श्रोत्र; तथा आकाश ब्रह्मके चार पद हैं—अग्नि, वायु, सूर्य और दिक्। राम-राम सीताराम। यहाँ ब्रह्मके प्रतीकरूपमें मन और आकाशको ब्रह्म कहकर उपासनाकी बात कहते हैं। राम-राम।

हलधर—श्रुति आकाशको ब्रह्म कहती है?

पागल—ॐ ही आकाश ब्रह्म है, आकाश चिरन्तन है। कौरव्यायनी-पुत्र कहते हैं कि वायुका आधार ही आकाश है। (बृहदारण्यक०) राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

'आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता। ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतं स आत्मा।' (छान्दोग्य० ८। १४। १)

'जो आकाश नामसे प्रसिद्ध है, वही नाम-रूपको अभिव्यक्त करता है। वही ब्रह्म है, वही अमृत है, वही आत्मा है' राम-राम सीताराम।

हलधर—परमपदकी बात कहिये।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। दूसरे स्थानमें श्रुति कहती है—

निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि।
यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम्॥

(ब्रह्मबिन्दु० ४)

'विषयोंके भोगकी अभिलाषा निरस्त हो जानेपर, मनको हृदयमें पूर्णतः निरुद्ध करनेपर जब मन उन्मनीभावको प्राप्त होता है, तब उस अवस्थाको परमपद कहते हैं। राम-राम सीताराम।

हलधर—उन्मनीभाव किसको कहते हैं?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

बीजाक्षरं परं बिन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम् ।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ॥
(ध्यानबिन्दूपनिषद् २)

'बीज ॐकार है, उसके परे बिन्दु है और उसके ऊपर स्थित है—नाद। शब्दके साथ अक्षर नादके क्षीण होनेपर शब्दशून्य अवस्थाका नाम परमपद है।'

यन्मनस्त्रिजगत्सृष्टिस्थितिव्यसनकर्मकृत् ।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
(ध्यानबिन्दूपनिषद् २५)

'जो मन सृष्टि, स्थिति और लय करता है, वह मन जहाँ विलय होता है, वही विष्णुका परमपद है।' राम-राम सीताराम।

हलधर-सब प्रणवका ही व्यापार देखता हूँ।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। ॐकारके अतिरिक्त क्या और कुछ है ? बाह्यजगत्, अन्तर्जगत्, शब्दजगत्—सब ॐकारसे उद्भूत है और ॐकारमें ही लय हो जायगा। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डरूपमें ब्रह्माण्डमें व्याप्त होकर एकमात्र ॐकार ही लीला करता है। जगत्में जो कुछ देखनेमें आता है, सब कुछ उस ॐकार पुरुषोत्तमका लीला-विग्रह है। पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, कीट-पतङ्ग, मनुष्य-देवता, पिशाच-राक्षस सब कुछ ॐकार है। धूलके कण या हिमालय पर्वत सब कुछ उस पुरुषोत्तमके लीला-विग्रह हैं। राम-राम सीताराम।

हलधर-कहिये, परमपदके विषयमें और कुछ कहिये।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

अकारे रेचितं पद्ममुकारेणैव भिद्यते ॥
मकारे लभते नादमर्धमात्रा तु निश्चला।
शुद्धस्फटिकसंकाशं निष्कलं पापनाशनम् ॥
लभते योगयुक्तात्मा पुरुषस्तत् परं पदम्।
(योगतत्त्वोपनिषद् १३८, १३९, १४०)

'अकारमें पद्म रेचित होता—निकलता है, उकारमें भिन्न होता—खिल जाता है, मकारमें नादको प्राप्त करता है और अर्द्धमात्रा निश्चला होती है। वह विशुद्ध स्फटिकके समान तिवर्ण, निष्कल और पापनाशक होता है। योगयुक्त चित्तके पुरुष उस परमपदको प्राप्त होते हैं।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—और भी कहिये।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रिसः संध्यास्त्रयः स्वराः ॥
त्रयोऽग्नयश्च त्रिगुणाः स्थिताः सर्वे त्रयाक्षरे।
त्रयाणामक्षराणां च योऽधीतेऽप्यर्द्धमक्षरम् ॥
तेन सर्वमिदं प्रोतं तत्सत्यं तत्परं पदम्।
(योगतत्त्वोपनिषद् १३४-१३६)

'भूः, भुवः, स्वः—तीन लोक; ऋक्, यजुः, साम—तीन वेद; प्रातः, मध्याह्न, सायं—तीन संध्या; उदात्त, अनुदात्त, स्वरित—तीन स्वर; गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिण—तीन अग्नि; सत्त्व, रजः, तमः—तीन गुण—ये सब-के-सब अकार, उकार, मकार—इन तीन अक्षरोंमें अवस्थित हैं। इन तीनों अक्षरोंके बीच जो अर्द्धमात्रा है, उसके द्वारा ये सब समाच्छन्न हैं। वही सत्य है, वही परमपद है।' राम-राम सीताराम।

हलधर—सब कुछ ॐकारकी लीला है ?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। कन्हैयाके बिना गीत नहीं। सब कुछ प्रणव है।

लयविक्षेपरहितं मनः कृत्वा सुनिश्चलम्।
यदा यात्यमनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥
(मैत्रायणी उपनिषद् ४। ७)

'लय-विक्षेपरहित मनको भलीभाँति स्थिर करके जो अमनीभाव उपस्थित होता है, वह विष्णुका परमपद है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—इस परमपदको कौन प्राप्त कर सकता है ?

पागल—राम राम सीताराम। जय जय राम सीताराम।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥
(कठ० १। ३। ८)

'जो विज्ञानवान्, अनुभवसम्पन्न, मननशील, नित्यशुचि है, वही उस परम पदको प्राप्त करता है; उसको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। बाह्य-विषयका त्याग किये बिना परमपद प्राप्त नहीं होता। राम-राम सीताराम।

हलधर—यह बड़ी कठिन बात है। 'बाह्य विषय स्मरण न करूँगा।' यह कहनेपर भी मन बलात्कारसे किसी बहाने विषयमें कूद पड़ता है। वह कौन-सा साधन—अभ्यास है जिससे मन विषयशून्य होता है ?

वही विष्णुका परमपद है। जो आकाशमें प्रकाशमान सूर्य-रूपी चक्षुके समान सर्वभासक, तन्मयचित्त योगीजनको विवेकज्ञानके द्वारा अपरिच्छिन्नरूपमें परिज्ञात होता है वही विष्णुका परमपद है। यह वर्तमान, भूत और भविष्य चराचर जगत् जहाँ ओतप्रोत रहता है, वही विष्णुका परमपद है—(विष्णुपुराण द्वितीय अंश, अध्याय ८। १००–१०३)

कौपीतकि उपनिषद्में ब्रह्मलोकका वर्णन

अमानव पुरुषके द्वारा ले जाये जानेपर जिसकी प्राप्ति हुई है, जो शास्त्रप्रसिद्ध है तथा ब्रह्मवेत्तागण जिसका स्मरण कर गये हैं; जो आज भी प्रत्यक्षसिद्ध यथार्थरूपमें होनेके कारण उपासकके लिये प्रत्यक्ष सिद्ध है, उस ब्रह्मलोक या हिरण्यगर्भलोकमें प्रविष्ट होनेपर पहले जो ह्रद पड़ता है, उसका नाम है—'आर'। वह 'आर' ह्रद ब्रह्मलोक जानेके मार्गको अवरुद्ध करके स्थित है। वह ह्रद शत समुद्रके समान गहरा है और उसका जल सदा नीला रहता है। काम-क्रोधादि अरिवर्गके द्वारा वह ह्रद विरचित है, अतएव उसका नाम रक्खा गया है 'आर'। उसी आर ह्रदके उस पार मुहूर्त अथवा दण्डद्वय कालके अभिमानी देवता लोग निवास करते हैं। वे देवता किस प्रकारके हैं?

······'जो लोग ब्रह्मलोकप्राप्तिके अनुकूल उपासनाको काम-क्रोधादि प्रवृत्तिके उत्पादनके द्वारा विनष्ट कर देते हैं। उस ब्रह्मलोकमें उसके बाद जो नदी है, उसका नाम है–'विजरा'। जिसका दर्शन करनेसे जरावस्था नष्ट हो जाती है, उसको 'विजरा' कहते हैं। वह उपासना क्रिया है। उस नदीका नाम भी ऐसा ही है। जो वृक्ष है उसका नाम 'इल्य' है। इला शब्द पृथ्वीका वाचक है। तद्रूप ही सारे वृक्ष हैं। इस वृक्षको अन्य उपनिषद्में 'सोमसवन' नामक अश्वत्थ वृक्ष कहा गया है। बहुत-से लोगोंके निवास योग्य पत्तन 'सालज्य' नामक है अर्थात् साल वृक्षके समान है, धनुषके ज्याके सदृश वस्तु जिसके तीरपर है। अतएव उसको सालज्य कहते हैं। अर्थात् देवताओंके द्वारा सेव्यमान आराम, वापी, कूप, तडाग और सरित् आदि विविध जलोंसे परिपूर्ण छोटे-बड़े नगर-नगरी वहाँ विराजमान ब्रह्मके निवासस्थल हैं, जहाँ हिरण्यगर्भका राजमन्दिर है। उसका नाम 'अपराजित' है। वह स्थान अनेक सू[र्य]के समान दीप्तिमान् होनेके कारण किसीके द्वारा पराजित होने योग्य नहीं है, इसी कारण वह 'अपराजित' है। उस अपराजित नामक राजमन्दिरमें जो दो द्वारपाल हैं, उनके नाम हैं—इन्द्र और प्रजापति। स्तनयित्नु (मेघ) और यज्ञको लक्ष्य करके वायु और आकाशको इन्द्र और प्रजापति नामसे कहा गया है। उसके सभास्थलका नाम है 'विभुप्रमित'; अर्थात् अत्यन्त अधिक अहंकारस्वरूप। जो 'अहं' या 'मैं' इस प्रकारके सामान्यरूपमें प्रमित अथवा प्रमाणद्वारा प्रतीत होता है, वह निरवच्छिन्न अत्यन्त अधिक अहंकार भाग ही उसका सामान्यतः सभास्थल है। सभास्थलका नाम है—'विभुप्रमित' और उसकी 'आसन्दी' अर्थात् सभाकी मध्यवेदीका नाम है—'विचक्षणा'। बुद्धितत्त्व या महत्तत्त्व आदि शब्दके द्वारा उस सभाकी मध्यवेदीका परिचय मिलता है। विचक्षणाका अर्थ है–'कुशला'। उस मध्यवेदीमें जो पर्यङ्क है, वह 'अमितौजा' अर्थात् प्राण-संवादादिसे प्रसिद्ध और विज्ञात हो गया है। जिसमें अमित या अपरिमित ओजः, बल है, वह प्राण ही है। वह प्राण ही उसका मञ्चक है। हिरण्यगर्भके आसनरूपमें प्राण पर्यङ्करूप है। उनकी प्रिया 'मानसी' है। वह मनकी कारणभूता प्रकृति और मनोगत आह्लादकारिणी भार्या है। उनकी मानसी भार्याके अलंकार आदि भी मानसी हैं, मनोगत आह्लादकारी हैं। उनकी प्रतिच्छाया चाक्षुषी है अर्थात् चक्षुकी प्रकृतिके स्वरूप तैजसी या तेजोमयी है। जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज—इन चार प्रकारके भूतोंको 'जगत्' कहते हैं। यह जगत् जिनके पुष्प एवं उत्तरीय तथा अधरीय वसन हैं; ये भूत सारे लोक-संस्थानके सहित जिनके कुसुम हैं; जिस प्रकार कुसुम कलिकावस्थासे प्रस्फुटित होकर जनसाधारणको सुगन्ध प्रदान करते हैं, उसी प्रकार भूतवर्ग भी बाल्यावस्थासे क्रमशः यौवनादिको प्राप्त होकर जनसाधारणके मनको आनन्द प्रदान करते हैं; तथा कुसुमके समान ही समय आनेपर कलेवर छोड़ देते हैं। केवल पुष्प ही नहीं, चारों ओर जो तन्तुसंतानके द्वारा निष्पादित पट, आच्छादन तथा परिधानके साधन वसन हैं, वे उसके स्वरूप हैं। जिस प्रकार सब प्राणी सङ्कोच और विकासमें तत्पर हैं, दोनों वस्त्र भी उसी प्रकारके हैं। इसी कारण चतुर्विध भूत उनके पुष्प और वसनका कार्य करते हैं। इसी प्रकार 'अम्बा' और 'अम्बायवी' वहाँकी अप्सराएँ हैं। जगत्की जननी (अम्बा) श्रुतियाँ हैं तथा न्यूनाधिक भावरहित बुद्धियाँ अम्बायवी हैं। ये श्रुतियाँ और बुद्धियाँ वहाँकी अप्सरा या साधारण स्त्री हैं। वहाँकी साधारण स्त्री श्रुतियाँ भी हैं और बुद्धियाँ भी हैं। पुर और पत्तनवासी लोगोंके भोगके लिये जलप्रवाहधारिणी नदियाँ अम्बया हैं। 'अम्ब' शब्दका अर्थ है—लोचन, अर्थात् ब्रह्म-

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

केवल नाम-जप करो, नाम-जप करते रहनेपर मनको सहज ही विषयशून्य किया जा सकता है। राम-राम सीताराम।

परमपदप्रतिमो हि साधुसङ्गः। (योगवासिष्ठ ५। २१। ७८)

'साधुसङ्ग परम पदके तुल्य है।' राम-राम सीताराम, सीताराम। यदि कुछ न हो सके तो केवल साधुसङ्ग करो। उसीके द्वारा कृतार्थ हो जाओगे। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—साधुसङ्गकी प्राप्तिसे तो सहज ही हो जायगा, परंतु यह भी अतिदुर्लभ है। अच्छा परमपदकी बात करें।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। जगन्माता ही परमपद है।

> एषा माहेश्वरी देवी मम शक्तिर्निरञ्जना।
> शान्ता सत्या सदानन्दा परं पदमिति श्रुतिः॥
> अस्याः सर्वमिदं जातमत्रैव लयमेष्यति।
> एषैव सर्वभूतानां गतीनामुत्तमा गतिः॥
> (कूर्मपुराण)

'यह माहेश्वरी देवी मेरी निरञ्जना शक्ति हैं, यह शान्ता, सत्या, सदानन्दा हैं, श्रुति इनको परमपद कहती है। इनसे यह सारा जगत् उत्पन्न होता है और अन्तमें इनमें ही लीन होगा। यही सर्वभूतोंकी गति है। उनमें भी सबसे श्रेष्ठ गति है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—तब तो जगन्माता ही परम पद हैं!

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। सुनो—

> सर्वैकवयवमेकं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा।
> मनो निर्विषयं युक्त्वा ततः किञ्चन न स्मरेत्।
> पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति॥
> (श्रीमद्भागवत २। १। १९)

'स्थिर चित्तसे एक-एक अवयवका ध्यान करे। निर्विषय मनको उसमें युक्त करे। तत्पश्चात् और कुछ स्मरण न करे। यही विष्णुका परमपद है जहाँ मन प्रसन्न होता है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

> स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्वमिदं जगत्।
> जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिन् विलयमेष्यति॥
> तद्ब्रह्म परमं धाम सदसत् परमं पदम्।
> (ब्रह्मपुराण २३। ४१-४२)

राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। 'वह विष्णु परम ब्रह्म हैं। जिससे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है, जो जगत् है, जिसका जगत् है, जिसमें जगत् विलीन हो जायगा, वही ब्रह्म परम धाम है। वह सत्-असत् परमपद है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। अच्छा और सुनो—

> परं गुह्यतमं विद्धि ह्यस्तन्द्रो निराश्रयः।
> सोमरूपकला सूक्ष्मा विष्णोस्तत् परमं पदम्॥
> (तेजोबिन्दूपनिषद् १। ५)

'अतिशय गुह्यतम, अस्तन्द्रा, निराश्रय सोमरूप कला है, वही विष्णुका परमपद है।' राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—शान्त अवस्थाका ही नाम परमपद है। परमपदके और भी नाम हैं?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। वह नित्य विभूति है—आमोद, प्रमोद, सम्मोद, वैकुण्ठ चार प्रकारका। पुनः अनन्ता, त्रिपादविभूति, परमपद, परमव्योम, परमाकाश, अमृत, नाक, अप्राकृतलोक, आनन्दलोक, वैकुण्ठ, अयोध्या आदि भी उसके नाम हैं।

इस विभूतिमें द्वादश आवरणयुक्त गोपुर प्राकारसे द्वारा आवृत वैकुण्ठ नामक नगर है। आनन्द नामक आलय है। उसके भीतर रत्नमय सहस्रों खम्भोंसे युक्त महामणिमण्डप नामक सभा है। उसमें सहस्र फण तेजसे युक्त अनन्त विराजमान हैं। उसपर दिव्य धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्ययुक्त सिंहासन है। उसके ऊपर चामरधारिणी विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञान, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशानीद्वारा सेवित पद्म है। उसके ऊपर शेषनागका प्रकट धाम है और उसके ऊपर अनिर्वचनीय श्रीभगवान् हैं। (यतीन्द्रमतदीपिका)

हलधर—हे हरि! वैकुण्ठ, परम व्योम, अयोध्या, अमृतलोक—सब परमपदके ही नाम हैं!

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम, सीताराम। राम-राम सीताराम। पाप-पुण्य और प्रकारके पीड़ा-दुःखोंके कारणोंसे निर्मुक्त होनेवाले गमन करते हैं और शोक नहीं करते, वही [illegible] है। धर्म और ध्रुव आदि लोकसाक्षीगण इन्द्रियसंयमपूर्वक प्राप्त तेजोबलसे दीप्तिमान् होकर जहाँ धर्माचरण

र मृणालके समान है तथा वे सब दीप्तियुक्त कुण्डल, रीट और माला धारण करके रहते हैं। राम-राम सीताराम। -जय राम सीताराम।

हलधर–सुन्दर, सुन्दर। कहिये, कहिये—वैकुण्ठके यमें और भी कुछ कहिये।

पागल–राम राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। ण्ठमें सुनन्द, नन्द, प्रबल, अर्हन आदि प्रधान-प्रधान दोंके द्वारा श्रीहरि सेवित होते हैं। राम-राम सीताराम। हाँ चण्ड, प्रचण्ड, भद्र, सुभद्र, जय, विजय, धाता, विधाता, द, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वभद्र, सुमुख दि द्वारपालगण बड़ी सावधानीसे पहरा देते हैं। राम-राम ाराम। यहाँ सम्पत्तिरूपिणी श्री मूर्तिमती होकर विविध वोंके द्वारा श्रीभगवान्‌के चरणारविन्द-युगलकी सेवा करती निरन्तर अपने प्रियतम श्रीहरिका गुणगान करती रहती म-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

लधर–बोलिये—वैकुण्ठकी बात और सुनाइये!

ागल–राम-राम सीताराम। मोक्ष, परमपद, दिव्य, विष्णु, मन्दिर, अक्षर, परमधाम, वैकुण्ठ, शाश्वतपद, परम व्योम, सर्वोत्कृष्ट और सनातन—ये सब शब्द धामके पर्यायवाची हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय ीताराम।

त्रैगुणात्मिका प्रकृति और परम व्योमके बीच विरजा द्यमान है। यह विरजा वेदाङ्गसे उत्पन्न है, स्वेदजल-से प्रवाहित है। उसके दूसरे पार महाकाश है। हाकाशमें सनातनी त्रिपादविभूति वर्त्तमान है। वह विभूति अक्षर ब्रह्मपद है। वह अमृत, शाश्वत, नित्य, परम शुद्ध सत्त्वमय और दिव्य है। उसकी अव्यय अनन्त-कोटि सूर्य और अग्निके समान है।

गवत्पादसेवक महात्मा महाभागवतगण ब्रह्मसुख करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुके उस परम धाममें गमन हैं। उस परम धाम—वैकुण्ठमें नाना प्रकारके रत्नोंसे प्राकार और सौध हैं और उसके भीतर एक दिव्य है। वह नगरी मणि और काञ्चनके नाना चित्रोंसे तथा नाना प्रकारके तोरणोंसे समन्वित है। उस बीचमें श्रीहरिका मनोहर मण्डप विद्यमान है। वह मणिमय प्राकारसे युक्त रत्न-तोरणसे सुशोभित है। प्रकारके विमान तथा उत्तम गृह-प्रासादद्वारा समलंकृत है। बड़े ऊँचे मण्डपके समान यह राजस्थान है। यह शुभ स्थान रत्नमय, सहस्रों मणि-माणिक्यमय स्तम्भोंसे युक्त है। दिव्य मुक्तासमाकीर्ण है तथा सामगानसे परम रमणीय है। उसके बीचमें सर्ववेदमय सुरम्य शुभ्र सिंहासन विद्यमान है। वह सिंहासन वेदमयात्मक धर्मादि देवगण, धर्म, ज्ञान, महैश्वर्य, वैराग्य, पाद, विग्रह, ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—इन सबके द्वारा यथाक्रम नित्य परिवृत है। शक्ति, चिच्छक्ति, सदाशिवा तथा धर्मादि देवगणोंकी शक्तियाँ उसकी आधार-शक्ति हैं। उसके भीतर वह्नि, चन्द्र और सूर्य वास करते हैं तथा कूर्म, नागराज, वैनतेय, वेदाधिप मन्त्रोंके छन्द—ये सब उस सिंहासनके पीठतलको प्राप्त हो रहे हैं। यह पीठ 'सर्वाक्षरमय योगपीठ'के नामसे अभिहित है। सिंहासनके बीचमें नवोदित आदित्यकी प्रभाके समान अष्टदल पद्म विराजमान है। उसमें सावित्री नामकी कर्णिकामें ईश्वरीके साथ परमपुरुष देवेश भगवान् श्रीहरि समासीन हैं। वे इन्दीवरदलके समान श्यामवर्ण और कोटि-सूर्यके समान दीप्तिमन्त हैं। उनकी युवा, कुमार स्निग्ध दिव्य कोमल काया है। उनके प्रस्फुटित रक्तपद्मप्रभ कमलके समान कोमल चरण-युगल हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

—(सुगम साधन-पन्था)

हलधर–सुन्दर! सुन्दर! कैसे सुन्दर भगवान् श्रीहरि हैं। कहिये, कहिये पागल बाबा और भी कहिये।

पागल–राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। श्रीभगवान् रामानुजाचार्य कहते हैं* कि "निरन्तर आध्यात्मिक जीवनमें उन्नति प्राप्त करनेके लिये बार-बार इस प्रकार चिन्तन करे—यह जो चौदह भुवनोंमें विभाजित ब्रह्माण्ड है, उसके जो उत्तरोत्तर दसगुने सात आवरण हैं तथा जो समस्त कार्य-कारण-समुदाय है, उन सबसे परे दिव्य शोभासे सम्पन्न अलौकिक वैकुण्ठधाम विराजमान है। उसका दूसरा नाम है—'परम व्योम'। ब्रह्मा आदि देवताओंके मन-वाणी भी वहाँतक नहीं पहुँच सकते। वह नित्यधाम वैकुण्ठ असंख्य दिव्य महात्मा पुरुषोंसे भरा हुआ है। वे महात्मा नित्य-सिद्ध हैं। भगवान्‌की अनुकूलता ही उनका एकमात्र भोग (सुख-साधन) है। उनका स्वभाव और ऐश्वर्य कैसा है, इसका वर्णन करना तो दूर रहा—सनकादि महात्मा, ब्रह्मा और शिव आदि भी इसको मनसे चिन्तन नहीं

* 'श्रीवैकुण्ठगद्यम्'का अंश। 'कल्याण' 'संतवाणी-अंक' द्वितीय खण्डसे उद्धृत।

ज्ञान। उसको जिसके द्वारा प्राप्त किया जाय, उसे 'अम्बया' कहते हैं। अम्बया शब्दका अर्थ है—उपासना। सब नदियोंका प्रवाह है—उपासनाकी धारा।

श्रीमद्भागवत (३ । १५)में वर्णित वैकुण्ठ

"उस वैकुण्ठधाममें सभी लोग विष्णुरूप होकर रहते हैं और वह प्राप्त भी उन्हींको होता है, जो अन्य सब प्रकारकी कामनाएँ छोड़कर केवल भगवच्चरण-शरणकी प्राप्तिके लिये ही अपने धर्मद्वारा उनकी आराधना करते हैं। वहाँ वेदान्त-प्रतिपाद्य धर्ममूर्ति श्रीआदिनारायण हम अपने भक्तोंको सुख देनेके लिये शुद्धसत्त्वमय स्वरूप धारणकर हर समय विराजमान रहते हैं। उस लोकमें 'नैःश्रेयस' नामका एक वन है, जो मूर्तिमान् कैवल्य-सा ही जान पड़ता है। वह सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वृक्षोंसे सुशोभित है, जो स्वयं हर समय छहों ऋतुओंकी शोभासे सम्पन्न रहते हैं।

"वहाँ विमानचारी गन्धर्वगण अपनी प्रियाओंके सहित अपने प्रभुकी पवित्र लीलाओंका गान करते रहते हैं, जो लोगोंकी सम्पूर्ण पापराशिको भस्म कर देनेवाली हैं। उस समय सरोवरोंमें खिली हुई मकरन्दपूर्ण वासन्तिक माधवी लताकी सुमधुर गन्ध उनके चित्तको अपनी ओर खींचना चाहती है, परंतु वे उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते, वरं उस गन्धको उड़ाकर लानेवाले वायुको ही बुरा-भला कहते हैं। जिस समय भ्रमरराज ऊँचे स्वरसे गुंजार करते हुए मानो हरि-कथाका गान करते हैं, उस समय थोड़ी देरके लिये कबूतर, कोयल, सारस, चकवे, पपीहे, हंस, तोते, तीतर और मोरोंका कोलाहल बंद हो जाता है—मानो वे भी उस कीर्तनानन्दमें बेसुध हो जाते हैं। श्रीहरि तुलसीसे अपने श्रीविग्रहको सजाते हैं और तुलसीकी गन्धका ही अधिक आदर करते हैं—यह देखकर वहाँके मन्दार, कुन्द, कुरवक (बिल्वकपुष्प), उत्पल (रात्रिमें खिलनेवाले कमल), चम्पक, अर्ण, पुन्नाग, नागकेसर, बकुल (मौलसिरी), अम्बुज (दिनमें खिलनेवाले कमल) और पारिजात आदि पुष्प सुगन्धयुक्त होनेपर भी तुलसीका ही तप अधिक मानते हैं। यह लोक वैदूर्य, मरकतमणि (पन्ने) और सुवर्णके विमानोंसे भरा हुआ है। ये सब किसी कर्मफलसे नहीं, बल्कि एकमात्र श्रीहरिके पादपद्मोंकी वन्दना करनेसे ही प्राप्त होते हैं। उन विमानोंपर चढ़े हुए कृष्णप्राण भगवद्-भक्तोंके चित्तोंमें बड़े-बड़े नितम्बोंवाली सुमुखी सुन्दरियाँ भी अपनी मन्द मुसकान एवं मनोहर हास-परिहाससे विकार नहीं उत्पन्न कर सकतीं।

"परम सौन्दर्यशालिनी लक्ष्मीजी, जिनकी कृपा... करनेके लिये देवगण भी यत्नशील रहते हैं, श्रीहरिके म... चञ्चलतारूप दोषको त्यागकर रहती हैं। जिस समय ... चरण-कमलोंके नूपुरोंकी झनकार करती हुई वे अपना ... कमल घुमाती हैं, उस समय उस कनक-भवनकी स्फटि... दीवारोंमें उनका प्रतिबिम्ब पड़नेसे ऐसा जान पड़... मानो वे उन्हें बुहार रही हों। प्यारे देवताओ! जिस ... दासियोंको साथ लिये वे अपने क्रीडावनमें तुलसीदल... भगवान्‌का पूजन करती हैं, तब वहाँके निर्मल जलसे भरे ... सरोवरोंमें, जिनमें मूँगेके घाट बने हुए हैं, अपना मु... अलकावली और उन्नत नासिकासे सुशोभित मुखार... देखकर 'यह भगवान्‌का चुम्बन किया हुआ है' यों ... उसे बड़ा सौभाग्यशाली समझती हैं।" (श्रीमद्भागवत ३ । १५ । १४–२२)।

राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। अ... और सुनो।

"प्रकृति और परव्योमके बीच पवित्र विरजा नदी ... है, वह वेदाङ्गरूपी घर्मवारि (स्वेद-जल) के द्वारा प्र... हो रही है। इस विरजाके उस पार त्रिपाद्विभूति... सनातन, अमृत, शाश्वत, नित्य और अनन्त, ... परिमाणरहित परम व्योम नामक स्थान है। ... सीताराम। जय-जय राम सीताराम। यह शुद्ध ... अलौकिक, अविनाशी एवं ब्रह्मका आश्रय है। दूसरा ... अनेक कोटि सूर्य और अग्निके समान तेजोमय है, ... सर्ववेदस्वरूप, शुभ्रवर्ण, सब प्रकारके प्रलयसे वर्जित, ... शून्य, अजर, सत्य, जाग्रत्-स्वप्नादि तीनों अवस्थाओंसे र... स्वर्णमय, मोक्षप्रद, ब्रह्मानन्द सुखस्वरूप तथा जिसके ... या अधिक कुछ नहीं है; जो आदि-अन्तरहित, ... स्वरूप, अतिशय अद्भुत, रमणीय, नित्य और आनन्द... इत्यादि गुणयुक्त है, वही विष्णुका परमपद है। ... सीताराम। जय-जय राम सीताराम।" (संक्षेप भागवता... उद्धृत पद्मपुराण, उत्तरखण्ड)

राम-राम सीताराम। वैकुण्ठमें सभी ... पार्षदोंके उज्ज्वल श्यामवर्ण, पद्मलोचन, पीताम्बर ... अति कमनीय सुकुमार आकृति है। सभी चतुर्भुज हैं, ... वक्षःस्थलपर अतिशय प्रभावशाली मणिजटित पदक ... है तथा सभी अति तेजस्वी हैं। उनकी कान्ति प्रत्य...

र मृणालके समान है तथा वे सब दीप्तियुक्त कुण्डल, रीट और माला धारण करके रहते हैं। राम-राम सीताराम। -जय राम सीताराम।

हलधर—सुन्दर, सुन्दर! कहिये, कहिये—वैकुण्ठके यमें और भी कुछ कहिये।

पागल—राम राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। ण्ठमें सुनन्द, नन्द, प्रबल, अर्हन आदि प्रधान-प्रधान र्दोंके द्वारा श्रीहरि सेवित होते हैं। राम-राम सीताराम। चण्ड, प्रचण्ड, भद्र, सुभद्र, जय, विजय, धाता, विधाता, द, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वभद्र, सुमुख दि द्वारपालगण बड़ी सावधानीसे पहरा देते हैं। राम-राम ताराम। यहाँ सम्पत्तिरूपिणी श्री मूर्तिमती होकर विविध वोंके द्वारा श्रीभगवान्‌के चरणारविन्द-युगलकी सेवा करती और निरन्तर अपने प्रियतम श्रीहरिका गुणगान करती रहती। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—बोलिये—वैकुण्ठकी बात और सुनाइये!

पागल—राम-राम सीताराम। मोक्ष, परमपद, दिव्य, मृत, विष्णु, मन्दिर, अक्षर, परमधाम, वैकुण्ठ, शाश्वतपद, म, परम व्योम, सर्वोत्कृष्ट और सनातन—ये सब शब्द म व्योमके पर्यायवाची हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय सीताराम।

गुणात्मिका प्रकृति और परम व्योमके बीच विरजा यमान है। यह विरजा वेदाङ्गसे उत्पन्न है, स्वेदजल- प्रवाहित है। उसके दूसरे पार महाकाश है। ाकाशमें सनातनी त्रिपादविभूति वर्त्तमान है। वह वेभूति अक्षर ब्रह्मपद है। वह अमृत, शाश्वत, नित्य, परम शुद्ध सत्त्वमय और दिव्य है। उसकी अव्यय अनन्त-कोटि सूर्य और अग्निके समान है।

गवत्पादसेवक महात्मा महाभागवतगण ब्रह्मसुख करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुके उस परम धाममें गमन। उस परम धाम—वैकुण्ठमें नाना प्रकारके रत्नोंसे प्राकार और सौध हैं और उसके भीतर एक दिव्य है। वह नगरी मणि और काञ्चनके नाना चित्रोंसे तथा नाना प्रकारके तोरणोंसे समन्वित है। उस बीचमें श्रीहरिका मनोहर मण्डप विद्यमान है। वह मणिमय प्राकारसे युक्त रत्न-तोरणसे सुशोभित है। प्रकारके विमान तथा उत्तम गृह-प्रासादद्वारा समलंकृत है। बड़े ऊँचे मण्डपके समान यह राजस्थान है। यह शुभ स्थान रत्नमय, सहस्रों मणि-माणिक्यमय स्तम्भोंसे युक्त है। दिव्य मुक्तासमाकीर्ण है तथा सामगानसे परम रमणीय है। उसके बीचमें सर्ववेदमय सुरम्य शुभ्र सिंहासन विद्यमान है। वह सिंहासन वेदमयात्मक धर्मादि देवगण, धर्म, ज्ञान, महैश्वर्य, वैराग्य, पाद, विग्रह, ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—इन सबके द्वारा यथाक्रम नित्य परिवृत है। शक्ति, चिच्छक्ति, सदाशिवा तथा धर्मादि देवगणोंकी शक्तियाँ उसकी आधार-शक्ति हैं। उसके भीतर वह्नि, चन्द्र और सूर्य वास करते हैं तथा कूर्म, नागराज, वैनतेय, वेदाधिप मन्त्रोंके छन्द—ये सब उस सिंहासनके पीठत्वको प्राप्त हो रहे हैं। यह पीठ 'सर्वाक्षरमय योगपीठ'के नामसे अभिहित है। सिंहासनके बीचमें नवोदित आदित्यकी प्रभाके समान अष्टदल पद्म विराजमान है। उसमें सावित्री नामकी कर्णिकामें ईश्वरीके साथ परमपुरुष देवेश भगवान् श्रीहरि समासीन हैं। वे इन्दीवरदलके समान श्यामवर्ण और कोटि-सूर्यके समान दीप्तिमन्त हैं। उनकी युवा, कुमार स्निग्ध दिव्य कोमल काया है। उनके प्रस्फुटित रक्तपद्मप्रभ कमलके समान कोमल चरण-युगल हैं। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

—(सुगम साधन-पन्था)

हलधर—सुन्दर! सुन्दर! कैसे सुन्दर भगवान् श्रीहरि हैं। कहिये, कहिये पागल बाबा और भी कहिये।

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। श्रीभगवान् रामानुजाचार्य कहते हैं* कि "निरन्तर आध्यात्मिक जीवनमें उन्नति प्राप्त करनेके लिये बार-बार इस प्रकार चिन्तन करे—यह जो चौदह भुवनोंमें विभाजित ब्रह्माण्ड है, उसके जो उत्तरोत्तर दसगुने सात आवरण हैं तथा जो समस्त कार्य-कारण-समुदाय है, उन सबसे परे दिव्य शोभासे सम्पन्न अलौकिक वैकुण्ठधाम विराजमान है। उसका दूसरा नाम है—'परम व्योम'। ब्रह्मा आदि देवताओंके मन-वाणी भी वहाँतक नहीं पहुँच सकते। वह नित्यधाम वैकुण्ठ असंख्य दिव्य महात्मा पुरुषोंसे भरा हुआ है। वे महात्मा नित्य-सिद्ध हैं। भगवान्‌की अनुकूलता ही उनका एकमात्र भोग (सुख-साधन) है। उनका स्वभाव और ऐश्वर्य कैसा है, इसका वर्णन करना तो दूर रहा—सनकादि महात्मा, ब्रह्मा और शिव आदि भी इसको मनसे सोचतक नहीं

* 'श्रीवैकुण्ठगद्यम्'का अंश। 'कल्याण' 'संतवाणी-अंक' द्वितीय खण्डसे उद्धृत।

सकते। उन महात्माओंका ऐश्वर्य इतना ही है, उसकी इतनी ही मात्रा है अथवा उसका ऐसा ही स्वभाव है— इत्यादि बातोंका परिच्छेद (निर्धारण या निश्चय) करना भी वहाँके लिये नितान्त अनुचित है। वह दिव्य धाम एक लाख दिव्य आवरणोंसे आवृत है। दिव्य कल्पवृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। वह वैकुण्ठलोक शतसहस्र कोटि दिव्य उद्यानोंसे घिरा हुआ है। उसका दीर्घ विस्तार नापा नहीं जा सकता। वहाँके निवासस्थान भी अलौकिक हैं। वहाँ एक दिव्य सभाभवन है, जो विचित्र एवं दिव्य रत्नोंसे निर्मित है। उसमें शतसहस्रकोटि दिव्य रत्नमय खंभे लगे हैं, जो उस भवनकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। उसका फर्श नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंसे निर्मित होनेके कारण अपनी विचित्र छटा दिखाता है। वह सभा-भवन दिव्य अलंकारोंसे सजा हुआ है। कितने ही दिव्य उपवन सब ओरसे उस सभा-भवनकी श्रीवृद्धि करते हैं। उनमें भाँति-भाँतिकी सुगन्धसे भरे हुए रंग-बिरंगे दिव्य पुष्प सुशोभित हैं, जिनमेंसे कुछ नीचे गिरे रहते हैं, कुछ वृक्षोंसे झड़ते रहते हैं और कुछ उन वृक्षोंकी डालियोंपर ही खिले रहते हैं। घनी श्रेणियोंमें लगे हुए पारिजात आदि कल्पवृक्षोंसे शोभायमान लक्षकोटि दिव्योद्यान भी उक्त सभा-भवनको पृथक्-पृथक् घेरे हुए हैं। उन उद्यानोंके भीतर पुष्पों तथा रत्न आदिसे निर्मित लाखों दिव्य लीलामण्डप उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे सर्वदा उपभोगमें आते रहनेपर भी अपूर्वकी भाँति वैकुण्ठवासियोंके लिये अत्यन्त आश्चर्यजनक जान पड़ते हैं। लाखों क्रीडापर्वत भी उक्त उद्यानोंको अलंकृत कर रहे हैं। उनमेंसे कुछ उद्यान तो केवल भगवान् नारायणकी दिव्य लीलाओंके असाधारण स्थल हैं और कुछ पद्मभवनमें निवास करनेवाली भगवती लक्ष्मीकी दिव्य लीलाओंके विशेष रङ्गस्थल हैं। कुछ उद्यान शुक, सारिका, मयूर और कोकिल आदि दिव्य विहंगमोंके कोमल कलरवसे व्याप्त रहते हैं। उक्त सभा-भवनको सब ओरसे घेरकर दिव्य सौगन्धिक कमल-पुष्पोंसे भरी लाखों बावलियाँ शोभा पा रही हैं। दिव्य राजहंसोंकी श्रेणियाँ उन बावलियोंकी श्रीवृद्धि करती हैं। उनमें उतरनेके लिये मणि, मुक्ता और मूँगोंकी सीढ़ियाँ बनी हैं। दिव्य निर्मल अमृतरस ही उनका जल है। अत्यन्त रमणीय दिव्य विहंगमवृन्द, जिनके मधुर कलरव बड़े ही मनोहर हैं, उन बावलियोंमें भरे रहते हैं। उनके भीतर बने हुए मोतियोंके दिव्य क्रीडास्थान शोभा देते हैं। सभाभवनके भीतर भी कितने ही क्रीडा-प्रदेश उसकी शोभा बढ़ाते हैं, जो सर्वाधिक आनन्दैकरस स्वभाव एवं अनन्त होनेके कारण अपने भीतर प्रवेश करनेवाले वैकुण्ठवासियोंको आनन्दोन्मादसे उन्मत्त किये देते हैं। उस भवनके विभिन्न भागोंमें दिव्य पुष्पशय्याएँ [illegible] रहती हैं।

''नाना प्रकारके पुष्पोंका मधु पीकर उन्मत्त [illegible] भ्रमरावलियाँ अपने गाये हुए दिव्य संगीतकी मधुर [illegible] उक्त सभामण्डपको मुखरित किये रहती हैं। चन्दन, [illegible] कपूँर और दिव्य पुष्पोंकी सुगन्धमें डूबी हुई मन्द-मन्द [illegible] प्रवाहित होकर उक्त सभाके सदस्योंकी सेवा करती रहती है।

''उस सभामण्डपके मध्यभागमें महान् दिव्य [illegible] सुशोभित है, जो दिव्य पुष्पराशिके संचयसे [illegible] सुषमा धारण किये हुए है। उसपर भगवान् अनन्त (शेषनाग) का दिव्य शरीर शोभा पाता है। उन [illegible] अनुरूप शील, रूप और गुण-विलास आदिसे [illegible] भगवती श्रीदेवीके साथ भगवान् श्रीहरि विराजमान [illegible] हैं। वे श्रीदेवी अनुपम शोभाशाली वैकुण्ठके ऐश्वर्य [illegible] सम्पन्न सम्पूर्ण दिव्य लोकको अपनी अनुपम [illegible] आप्यायित (परिपुष्ट) करती रहती है। शेष और [illegible] आदि समस्त पार्षदोंको विभिन्न अवस्थाओंमें [illegible] आवश्यक सेवाके लिये आदेश देती रहती है।

''भगवान्‌के दोनों नेत्र तुरंतके खिले हुए कमलोंको [illegible] तिरस्कृत करते हैं। उनके श्रीअङ्गोंका सुन्दर [illegible] *श्याम मेघसे भी अधिक मनोहर है।* [illegible] प्रकाशमान वस्त्र सुशोभित रहता है। भगवान् [illegible] निर्मल और अतिशय शीतल, कोमल, स्वच्छ [illegible] प्रभासे सम्पूर्ण जगत्‌को प्रभासित करते हैं। [illegible] दिव्य, अद्भुत, नित्य-यौवन, स्वभाव और [illegible] अमृतके समुद्र हैं। अत्यन्त सुकुमारताके कारण [illegible] ललाट कुछ पसीनेकी बूँदोंसे विभूषित दिखायी देता [illegible] वहाँतक फैली हुई उनकी दिव्य अलकें [illegible] हैं। भगवान्‌के मनोहर नेत्र विकसित कोमल कमलसे [illegible] मनोहर हैं। उनकी भ्रूलताकी भङ्गिमासे अद्भुत विलासकी सृष्टि होती रहती है। उनके अधर [illegible] उज्ज्वल हासकी छटा बिखरी रहती है। [illegible] मुखकमल अत्यन्त पवित्र है। उनके [illegible] नासिका ऊँची है। ऊँचे और मांसल कपोल [illegible]

और कुण्डलोंके कारण भगवान्‌की शङ्ख-सदृश ग्रीवा सुन्दर दिखायी देती है। प्रियतमा लक्ष्मीके कानोंकी बढ़ानेवाले कमल, कुण्डल और शिथिल केशपाशोंके न्धनके विमर्दनको सूचित करनेवाली घुटनोंतक लंबी भुजाओंसे भगवान्‌के श्रीविग्रहकी अद्भुत शोभा है। ी हथेलियाँ अत्यन्त कोमल दिव्य रेखाओंसे अलंकृत कुछ-कुछ लाल रंगकी हैं। अंगुलियोंमें दिव्य मुद्रिका देती है। अत्यन्त कोमल दिव्य नखावलीसे प्रकाशित लाल अंगुलियाँ उनके करकमलोंको अलंकृत करती हैं। दोनों चरण तुरंतके खिले हुए कमलोंके सौन्दर्यको लेते हैं।

"अत्यन्त मनोहर किरीट, मुकुट, चूडामणि, मकराकृत ल, कण्ठहार, केयूर, कंगन, श्रीवत्स-चिह्न, कौस्तुभ- मुक्ताहार, कटिबन्ध, पीताम्बर, काञ्चीसूत्र और आदि अत्यन्त सुखद स्पर्शवाले दिव्य गन्धयुक्त ण भगवान्‌के श्रीअङ्गोंको विभूषित करते हैं। शालिनी वैजयन्ती वनमाला उनकी शोभा बढ़ाती है। चक्र, गदा, खड्ग और शार्ङ्ग धनुष आदि दिव्य ष उनकी सेवा करते हैं।

"अपने संकल्पमात्रसे सम्पन्न होनेवाले संसारकी सृष्टि, न और संहार आदिके लिये भगवान्‌ने अपना समस्त ं श्रीमान् विष्वक्सेनको अर्पित कर रखा है। जिनमें वसे ही समस्त सांसारिक भावोंका अभाव है, जो ान्‌की परिचर्या करनेके सर्वथा योग्य हैं तथा भगवान्‌की ही जिनका एकमात्र भोग है, वे गरुड आदि नित्य- असंख्य पार्षद यथावसर श्रीभगवान्‌की सेवामें संलग्न हैं। उनके द्वारा होनेवाले आत्मानन्दके अनुभवसे ही परार्द्ध आदि कालका अनुसंधान होता रहता है।

"वे भगवान् अपनी दिव्य निर्मल और कोमल दृष्टिसे र्ण विश्वको आह्लादित करते रहते हैं। भगवान् लीला-सम्बन्धी अमृतमय वार्तालापसे सब लोगोंके हृदयको न्दसे परिपूर्ण करते रहते हैं। उस दिव्य लीलालापमें न्त मनोहर दिव्य भाव छिपा रहता है। उनके किंचित् हुए मुखारविन्दके भीतरसे निकला हुआ वह अमृतमय न उनके दिव्य मुखकमलकी शोभा बढ़ाता है। उस लापको दिव्य गाम्भीर्य, औदार्य, सौन्दर्य और माधुर्य दि अनन्त गुणसमुदाय विभूषित करते हैं। राम-राम ताराम। जय-जय राम सीताराम।

"इस प्रकार ध्यानयोगके द्वारा भगवान् नारायणका दर्शन करके इस यथार्थ सम्बन्धका मन-ही-मन चिन्तन करे कि भगवान् मेरे नित्य स्वामी हैं और मैं उनका नित्य दास हूँ।

"मैं कब अपने कुलके स्वामी, देवता और सर्वस्व भगवान् नारायणका, जो मेरे भोग्य, मेरे माता, मेरे पिता और मेरे सब कुछ हैं, इन नेत्रोंद्वारा दर्शन करूँगा। मैं कब भगवान्‌के युगल चरणारविन्दोंको अपने मस्तकपर धारण करूँगा!

'कब वह समय आयेगा जब कि मैं भगवान्‌के दोनों चरणारविन्दोंकी सेवाकी आशासे अन्य सभी भोगोंकी आशा-अभिलाषा छोड़कर समस्त सांसारिक भावनाओंसे दूर हो भगवान्‌के युगल चरणारविन्दोंमें प्रवेश कर जाऊँगा। कब ऐसा सुयोग प्राप्त होगा जब मैं भगवान्‌के युगल चरणकमलोंकी सेवाके योग्य होकर उन चरणोंकी आराधनामें ही लगा रहूँगा। कब भगवान् नारायण अपनी अत्यन्त शीतल दृष्टिसे मेरी ओर देखकर स्नेहयुक्त, गम्भीर एवं मधुर वाणीद्वारा मुझे अपनी सेवामें लगनेका आदेश देंगे!

"इस प्रकार भगवान्‌की परिचर्याकी आशा-अभिलाषाको बढ़ाते हुए उसी आशासे, जो उन्हींके कृपा-प्रसादसे निरन्तर बढ़ रही हो, भावनाद्वारा भगवान्‌के निकट पहुँचकर दूरसे ही भगवती लक्ष्मीके साथ शेषशय्यापर बैठे हुए और गरुड आदि पार्षदोंकी सेवा स्वीकार करते हुए भगवान्‌को 'समस्त परिवारसहित भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है'—यों कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। फिर बार-बार उठने और प्रणाम करनेके पश्चात् अत्यन्त भय और विनयसे नतमस्तक होकर खड़ा रहे।

"जब भगवान्‌के पार्षदगणोंके नायक द्वारपाल कृपा और स्नेहपूर्ण दृष्टिसे साधककी ओर देखें तो उन्हें भी विधिपूर्वक प्रणाम करे। फिर उन सबकी आज्ञा लेकर श्रीमूलमन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) का जप करते हुए भगवान्‌के पास पहुँचे और यह याचना करे कि 'प्रभो! मुझे अपनी अनन्य नित्य सेवाके लिये स्वीकार कीजिये।' तदनन्तर पुनः प्रणाम करके भगवान्‌को आत्मसमर्पण कर दे।

"इसके बाद भगवान् स्वयं ही जब अपनेको जीवनदान देनेवाली मर्यादा और शीलसे युक्त अत्यन्त प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखकर सब देश, सब काल और सब अवस्थाओंमें

सकते। उन महात्माओंका ऐश्वर्य इतना ही है, उसकी इतनी ही मात्रा है अथवा उसका ऐसा ही स्वभाव है—इत्यादि बातोंका परिच्छेद (निर्धारण या निश्चय) करना भी वहाँके लिये नितान्त अनुचित है। वह दिव्य धाम एक लाख दिव्य आवरणोंसे आवृत है। दिव्य कल्पवृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। वह वैकुण्ठलोक शतसहस्र कोटि दिव्य उद्यानोंसे घिरा हुआ है। उसका दीर्घ विस्तार नापा नहीं जा सकता। वहाँके निवासस्थान भी अलौकिक हैं। वहाँ एक दिव्य सभाभवन है, जो विचित्र एवं दिव्य रत्नोंसे निर्मित है। उसमें शतसहस्रकोटि दिव्य रत्नमय खंभे लगे हैं, जो उस भवनकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। उसका फर्श नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंसे निर्मित होनेके कारण अपनी विचित्र छटा दिखाता है। वह सभा-भवन दिव्य अलंकारोंसे सजा हुआ है। कितने ही दिव्य उपवन सब ओरसे उस सभा-भवनकी श्रीवृद्धि करते हैं। उनमें भाँति-भाँतिकी सुगन्धसे भरे हुए रंग-बिरंगे दिव्य पुष्प सुशोभित हैं, जिनमेंसे कुछ नीचे गिरे रहते हैं, कुछ वृक्षोंसे झड़ते रहते हैं और कुछ उन वृक्षोंकी डालियोंपर ही खिले रहते हैं। घनी श्रेणियोंमें लगे हुए पारिजात आदि कल्पवृक्षोंसे शोभायमान लक्षकोटि दिव्योद्यान भी उक्त सभा-भवनको पृथक्-पृथक् घेरे हुए हैं। उन उद्यानोंके भीतर पुष्पों तथा रत्न आदिसे निर्मित लाखों दिव्य लीलामण्डप उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे सर्वदा उपभोगमें आते रहनेपर भी अपूर्वकी भाँति वैकुण्ठवासियोंके लिये अत्यन्त आश्चर्यजनक जान पड़ते हैं। लाखों क्रीडापर्वत भी उक्त उद्यानोंको अलंकृत कर रहे हैं। उनमेंसे कुछ उद्यान तो केवल भगवान् नारायणकी दिव्य लीलाओंके असाधारण स्थल हैं और कुछ पद्मभवनमें निवास करनेवाली भगवती लक्ष्मीकी दिव्य लीलाओंके विशेष रङ्गस्थल हैं। कुछ उद्यान शुक, सारिका, मयूर और कोकिल आदि दिव्य विहंगमोंके कोमल कलरवसे व्याप्त रहते हैं। उक्त सभा-भवनको सब ओरसे घेरकर दिव्य सौगन्धिक कमल-पुष्पोंसे भरी लाखों बावलियाँ शोभा पा रही हैं। दिव्य राजहंसोंकी श्रेणियाँ उन बावलियोंकी श्रीवृद्धि करती हैं। उनमें उतरनेके लिये मणि, मुक्ता और मूँगोंकी सीढ़ियाँ बनी हैं। दिव्य निर्मल अमृतरस ही उनका जल है। अत्यन्त रमणीय दिव्य विहंगमवृन्द, जिनके मधुर कलरव बड़े ही मनोहर हैं, उन बावलियोंमें भरे रहते हैं। उनके भीतर बने हुए मोतियोंके दिव्य क्रीडास्थान शोभा देते हैं। सभाभवनके भीतर भी कितने ही क्रीडा-प्रदेश उसकी शोभा बढ़ाते हैं, जो सर्वाधिक मनोहर स्वभाव एवं अनन्त होनेके कारण अपने भीतर प्रवेश करनेवाले वैकुण्ठवासियोंको आनन्दोन्मादसे उन्मत्त किये देते हैं। उस भवनके विभिन्न भागोंमें दिव्य पुष्पशय्याएँ बिछी रहती हैं।

"नाना प्रकारके पुष्पोंका मधु पीकर उन्मत्त भ्रमरावलियाँ अपने गाये हुए दिव्य संगीतसे मधुर उक्त सभामण्डपको मुखरित किये रहती हैं। चन्दन, कर्पूर और दिव्य पुष्पोंकी सुगन्धमें डूबी हुई मन्द-मन्द प्रवाहित होकर उक्त सभाके सदस्योंकी सेवा करती [illegible]

"उस सभामण्डपके मध्यभागमें महान् दिव्य [illegible] सुशोभित है, जो दिव्य पुष्पराशिके [illegible] सुषमा धारण किये हुए है। उसपर भगवान् [illegible] (शेषनाग) का दिव्य शरीर शोभा पाता है। [illegible] अनुरूप शील, रूप और गुण-विलास आदिसे [illegible] भगवती श्रीदेवीके साथ भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं। वे श्रीदेवी अनुपम शोभाशाली वैकुण्ठके [illegible] सम्पन्न सम्पूर्ण दिव्य लोकको अपनी अनुपम [illegible] आप्यायित (परिपुष्ट) करती रहती हैं। [illegible] आदि समस्त पार्षदोंको विभिन्न अवसरोंमें [illegible] आवश्यक सेवाके लिये आदेश देती रहती हैं।

"भगवान्‌के दोनों नेत्र तुरंतके खिले हुए कमलोंको तिरस्कृत करते हैं। उनके श्रीअङ्गोंका सुन्दर [illegible] श्याम मेघसे भी अधिक मनोहर है। [illegible] प्रकाशमान वस्त्र सुशोभित रहता है। भगवान् [illegible] निर्मल और अतिशय शीतल, कोमल, स्वच्छ [illegible] प्रभासे सम्पूर्ण जगत्‌को प्रभासित करते हैं। [illegible] दिव्य, अद्भुत, नित्य-यौवन, स्वभाव और [illegible] अमृतके समुद्र हैं। अत्यन्त सुकुमारताके [illegible] ललाट कुछ पसीनेकी बूँदोंसे विभूषित दिखाई देता है। [illegible] गर्दनतक फैली हुई उनकी दिव्य अलकें [illegible] हैं। भगवान्‌के मनोहर नेत्र विकसित कमलके [illegible] मनोहर हैं। उनकी भ्रूलताकी भङ्गिमासे [illegible] विलासकी सृष्टि होती रहती है। उनके [illegible] उज्ज्वल हासकी छटा बिखरी रहती है। [illegible] मुसकान अत्यन्त पवित्र है। उनके [illegible] नासिका ऊँची है। कंधे और [illegible]

और कुण्डलोंके कारण भगवान्की शङ्ख-सदृश ग्रीवा
सुन्दर दिखायी देती है। प्रियतमा लक्ष्मीके कानोंकी
बढ़ानेवाले कमल, कुण्डल और शिथिल केशपाशोंके
न्धनके विमर्दनको सूचित करनेवाली घुटनोंतक लंबी
भुजाओंसे भगवान्के श्रीविग्रहकी अद्भुत शोभा है।
ी हथेलियाँ अत्यन्त कोमल दिव्य रेखाओंसे अलंकृत
कुछ-कुछ लाल रंगकी हैं। अंगुलियोंमें दिव्य मुद्रिका
देती है। अत्यन्त कोमल दिव्य नखावलीसे प्रकाशित
लाल अंगुलियाँ उनके करकमलोंको अलंकृत करती हैं।
दोनों चरण तुरंतके खिले हुए कमलोंके सौन्दर्यको
लेते हैं।

"अत्यन्त मनोहर किरीट, मुकुट, चूडामणि, मकराकृत
ल, कण्ठहार, केयूर, कंगन, श्रीवत्स-चिह्न, कौस्तुभ-
मुक्ताहार, कटिबन्ध, पीताम्बर, काञ्चीसूत्र और
आदि अत्यन्त सुखद स्पर्शवाले दिव्य गन्धयुक्त
ण भगवान्के श्रीअङ्गोंको विभूषित करते हैं।
मालिनी वैजयन्ती वनमाला उनकी शोभा बढ़ाती है।
चक्र, गदा, खड्ग और शार्ङ्ग धनुष आदि दिव्य
व उनकी सेवा करते हैं।

"अपने संकल्पमात्रसे सम्पन्न होनेवाले संसारकी सृष्टि,
और संहार आदिके लिये भगवान्ने अपना समस्त
श्रीमान् विष्वक्सेनको अर्पित कर रक्खा है। जिनमें
वसे ही समस्त सांसारिक भावोंका अभाव है, जो
ान्की परिचर्या करनेके सर्वथा योग्य हैं तथा भगवान्की
ही जिनका एकमात्र भोग है, वे गरुड आदि नित्य-
असंख्य पार्षद यथावसर श्रीभगवान्की सेवामें संलग्न
हैं। उनके द्वारा होनेवाले आत्मानन्दके अनुभवसे ही
परार्द्ध आदि कालका अनुसंधान होता रहता है।

"वे भगवान् अपनी दिव्य निर्मल और कोमल दृष्टिसे
र्ण विश्वको आह्लादित करते रहते हैं। भगवान्
लीला-सम्बन्धी अमृतमय वार्तालापसे सब लोगोंके हृदयको
न्दसे परिपूर्ण करते रहते हैं। उस दिव्य लीलालापमें
न्त मनोहर दिव्य भाव छिपा रहता है। उनके किंचित्
हुए मुखारविन्दके भीतरसे निकला हुआ वह अमृतमय
न उनके दिव्य मुखकमलकी शोभा बढ़ाता है। उस
लासको दिव्य गाम्भीर्य, औदार्य, सौन्दर्य और माधुर्य
दि अनन्त गुणसमुदाय विभूषित करते हैं। राम-राम
ाराम। जय-जय राम सीताराम।

"इस प्रकार ध्यानयोगके द्वारा भगवान् नारायणका दर्शन करके इस यथार्थ सम्बन्धका मन-ही-मन चिन्तन करे कि भगवान् मेरे नित्य स्वामी हैं और मैं उनका नित्य दास हूँ।

"मैं कब अपने कुलके स्वामी, देवता और सर्वस्व भगवान् नारायणका, जो मेरे भोग्य, मेरे माता, मेरे पिता और मेरे सब कुछ हैं, इन नेत्रोंद्वारा दर्शन करूँगा। मैं कब भगवान्के युगल चरणारविन्दोंको अपने मस्तकपर धारण करूँगा।

"कब वह समय आयेगा जब कि मैं भगवान्के दोनों चरणारविन्दोंकी सेवाकी आशासे अन्य सभी भोगोंकी आशा-अभिलाषा छोड़कर समस्त सांसारिक भावनाओंसे दूर हो भगवान्के युगल चरणारविन्दोंमें प्रवेश कर जाऊँगा। कब ऐसा सुयोग प्राप्त होगा जब मैं भगवान्के युगल चरणकमलोंकी सेवाके योग्य होकर उन चरणोंकी आराधनामें ही लगा रहूँगा। कब भगवान् नारायण अपनी अत्यन्त शीतल दृष्टिसे मेरी ओर देखकर स्नेहयुक्त, गम्भीर एवं मधुर वाणीद्वारा मुझे अपनी सेवामें लगनेका आदेश देंगे।

"इस प्रकार भगवान्की परिचर्याकी आशा-अभिलाषाको बढ़ाते हुए उसी आशासे, जो उन्हींके कृपा-प्रसादसे निरन्तर बढ़ रही हो, भावनाद्वारा भगवान्के निकट पहुँचकर दूरसे ही भगवती लक्ष्मीके साथ शेषशय्यापर बैठे हुए और गरुड आदि पार्षदोंकी सेवा स्वीकार करते हुए भगवान्को 'समस्त परिवारसहित भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है'—यों कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। फिर बार-बार उठने और प्रणाम करनेके पश्चात् अत्यन्त भय और विनयसे नतमस्तक होकर खड़ा रहे।

"जब भगवान्के पार्षदगणोंके नायक द्वारपाल कृपा और स्नेहपूर्ण दृष्टिसे साधककी ओर देखें तो उन्हें भी विधिपूर्वक प्रणाम करे। फिर उन सबकी आज्ञा लेकर श्रीमूलमन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) का जप करते हुए भगवान्के पास पहुँचे और यह याचना करे कि 'प्रभो! मुझे अपनी अनन्य नित्य सेवाके लिये स्वीकार कीजिये।' तदनन्तर पुनः प्रणाम करके भगवान्को आत्मसमर्पण कर दे।

"इसके बाद भगवान् स्वयं ही जब अपनेको जीवनदान देनेवाली मर्यादा और शीलसे युक्त अत्यन्त प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखकर सब देश, सब काल और सब अवस्थाओंमें उचित-

दासभावके लिये साधकको सदाके लिये स्वीकार कर लें और सेवाके लिये आज्ञा दे दें, तब वह अत्यन्त भय और विनयसे विनम्र होकर उनके कार्यमें संलग्न रहकर हाथ जोड़े हुए सदा भगवान्की उपासना करता रहे।

"तदनन्तर भावविशेषका अनुभव होनेपर सर्वाधिक प्रीति प्राप्त होती है, जिससे साधक दूसरा कुछ भी करने, देखने या चिन्तन करनेमें असमर्थ हो जाता है। ऐसी दशामें वह पुनः दासभावकी ही याचना करते हुए निरन्तर अविच्छिन्न प्रवाहरूपसे भगवान्की ही ओर देखता रहे।"

राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—पागल बाबा! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपने मुझको एक बार वैकुण्ठमें श्रीभगवान्के पास लाकर उपस्थित कर दिया। आपकी कृपारूपी ऋणका शोधन करनेके लिये मेरे पास कुछ नहीं है। मैं आपको पुनः प्रणाम करता हूँ। बतलाइये, पागल बाबा, मैं किस प्रकार वैकुण्ठनाथके चरणोंमें आश्रय पा सकूँगा।

पागल—(बदलेमें प्रणाम करते हुए) राम-राम सीताराम-जय-जय राम सीताराम। इस युगमें भगवत्प्राप्तिकी कोई चिन्ता नहीं है। अति सहज ही श्रीभगवान् प्राप्त हो सकते हैं। उठते-बैठते, सोते-जागते नाम-स्मरण करो। नियमित रूपसे रोज चार घंटा नाम-कीर्तन करो। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। कुछ दिन नाम-जप करनेपर भगवान् स्थिर न रह सकेंगे; नादरूपसे तुमको आश्रयमें ले लेंगे। रात-दिन अनेक राग-रागिनी, अनेक गीत सुनाते हुए वे तुमको प्रकाश (ज्योति) के राज्यमें ले जायँगे। असंख्य प्रकाश, अनन्त आकाशके बीचसे तुमको हृदयसे लगाकर वैकुण्ठमें ले जायँगे। राम-राम सीता-राम। जय-जय राम सीताराम। तुम नित्य तीनों संध्याओंमें अर्चि आदि मार्गका [illegible] करो। पश्चात् वैकुण्ठमें नारायणका चिन्तन करो। [illegible] सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—अर्चि आदि मार्ग किस प्रकारका है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम [illegible] हृदयमें मृणाल-तन्तुके समान अति सूक्ष्म [illegible] नाड़ी है। उसी नाड़ीके सहारे तुम बाहर [illegible] पहले अर्चि (तेजःज्योति) को प्राप्त होओगे। वहाँ [illegible] द्वारा पूजित होनेके बाद दिवसाभिमानी देवता [illegible] पूजा करके शुक्लपक्षाभिमानी देवताके पास पहुँचा [illegible] वे उत्तरायण अभिमानी देवताके पास पहुँचावेंगे। [illegible] संवत्सर अभिमानी देवताके पास पहुँचावेंगे। [illegible] सूर्यलोक, वहाँसे चन्द्रलोक, पश्चात् विद्युल्लोकमें [illegible] उस लोकवासी देवताके द्वारा पूजित होकर विरजा [illegible] स्नान करके तुम आगे जाओगे। तब गरुड़ [illegible] गण तथा दिव्य स्त्रीगण आकर तुमको श्रीभगवान्के [illegible] ले जायँगे। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। जो तीनों संध्याओंमें इस अर्चिमार्गका चिन्तन करते [illegible] और कुछ जानना शेष नहीं रहता। वे श्रीनारायणके [illegible] देहान्त होनेपर वैकुण्ठमें उनका दासत्व प्राप्त करते [illegible] उनको मृत्युलोकमें नहीं आना पड़ता। राम-राम सीता- राम। जय-जय राम सीताराम। यदि वैकुण्ठ जाना [illegible] हो, परमपदरूप श्रीभगवान्को प्राप्त करना चाहते [illegible] मेरे साथ ताली बजाकर नाचते हुए गाओ—

श्रीराम जय राम जय जय राम
श्रीराम जय राम जय जय राम
श्रीराम जय राम जय जय राम

दोनों नाच-नाचकर नाम-कीर्तन करने लगे।

वैकुण्ठ प्राप्त करो

दुःखालय अनित्य दारुण इस मर्त्यलोकके सब सुख भोग।
लगते मधुर, भरे विष भारी, नरक-दुःख-परिणामी रोग॥
मनसे तुरत निकालो इनको, भजो हृदयसे श्रीभगवान्।
विश्व-चराचरमें नित देखो मधुर सर्वात्म रूप महान्॥
सेवाकर्म करो केवल तन-मनसे सब उनके ही काम।
प्राप्त करो वैकुण्ठ परम दुर्लभ हरिका मंगलमय धाम॥

मृत्युके समय भगवन्नाम और उसका फल

(लेखक—महामण्डलेश्वर अनन्तश्री स्वामी भजनानन्दजी महाराज)

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥
(गीता २। ४०)

'इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उल्टा फलरूप दोष भी नहीं है। बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है। (भय मसे बड़ा जन्म-मृत्युका)।' भगवान् शंकर माता पार्वतीसे कहते हैं—

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥

'हे पार्वती! जगत्पिता भगवान्के स्वभावको जो जान जायगा, उसको भजनके सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगेगा। तो फिर यहाँ निश्चय होता है कि यह दुर्लभ मनुष्य-शरीर भगवान्का भजन करनेके ही लिये मिला है। क्योंकि कहा है—

यह घरे कर यह फल भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥

भगवान्की प्राप्ति भजन करनेसे जितनी सुगमतासे प्राप्त होती है, उतनी दूसरे साधनोंसे नहीं। भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(८। १४)

'हे अर्जुन! जो पुरुष मेरेमें अनन्य चित्तसे स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मेरेको स्मरण करता है, उस निरन्तर मेरेमें युक्त हुए योगीके (लिये) मैं सुलभ हूँ।'

यह जो 'सुलभ' शब्द है, श्रीमद्भगवद्गीतामें सात सौ श्लोकोंमें एक ही बार आया है। संसार बहुत लेता और थोड़ा देता है। भगवान् और संत थोड़ा लेते हैं, और बहुत देते हैं। संसारमें कोई भी ऐसा धनी नहीं है जो बहुत रकम देकर थोड़ेमें ही उद्धार कर दे। वह बहुत बड़ी रकम क्या है, सो नीचे लिखते हैं—

कहा कहूँ कहि जात हूँ कहा बजाऊँ ढोल।
स्वाँसा खाली जात है तीन लोकका मोल॥

मनुष्य पूरे जीवनमें यानी सौ वर्षतक जीवित रहे और सौ वर्षके जीवनमें एक करोड़ रुपया पैदा कर ले, जब मृत्युका समय आवे तब वह प्राणी एक करोड़ रुपयोंसे चाहे कि इन रुपयोंको दे करके मैं एक मिनट जीवित बना रहूँ तो जीवित नहीं रह सकता। मृत्यु होनेपर जो एक करोड़ रुपया जीवनमें पैदा किया है, उसमें एक कौड़ी भी साथ नहीं जाती—सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति'। लेकिन भगवान् कहते हैं—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥
(गीता ८। ५)

'जो पुरुष अन्तकालमें मेरेको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है वह मेरे (साक्षात्) स्वरूपको प्राप्त होता है, इसमें (कुछ भी) संशय नहीं है।'

ऐसा किसीको हुआ है कि जिसने पूरा जीवन आहार, निद्रा, भय तथा मैथुनमें ही दिया हो और अन्तिम समयमें भगवान्का स्मरण करते हुए शरीरको त्याग करके, भगवत्-प्राप्ति की हो या भगवद्धामको प्राप्त किया हो? ऐसे अनेक भक्त हो गये हैं। नीचे एक भक्तका नाम देते हैं—

अजामिल थोड़ेसे कुसङ्गको पाकर महान् पापी हो गया। जब उसका अन्तिम समय आया तब उसने अपने पुत्र 'नारायण'का नाम लिया। नारायण नाम लेनेसे ही उसको यमपुरी नहीं जाना पड़ा। नारायण नामकी महिमा ही इतनी है। एक हिंदीके कविने लिखा है—

जबहिं नाम हिरदे धर्यो, भयो पाप को नास।
जैसे चिनगी आग की पड़ी पुराने घास॥

राजा परीक्षित्ने पहला प्रश्न शुकदेवजीसे किया—'हे गुरुदेव—

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम्।
पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा॥
(श्रीमद्भा० १। १९। ३७)

दासभावके लिये साधकको सदाके लिये स्वीकार कर लें और सेवाके लिये आज्ञा दे दें, तब वह अत्यन्त भय और विनयसे विनम्र होकर उनके कार्यमें संलग्न रहकर हाथ जोड़े हुए सदा भगवान्‌की उपासना करता रहे।

'तदनन्तर भावविशेषका अनुभव होनेपर सर्वाधिक प्रीति प्राप्त होती है, जिससे साधक दूसरा कुछ भी करने, देखने या चिन्तन करनेमें असमर्थ हो जाता है। ऐसी दशामें वह पुनः दासभावकी ही याचना करते हुए निरन्तर अविच्छिन्न प्रवाहरूपसे भगवान्‌की ही ओर देखता रहे।'

राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—पागल बाबा! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपने मुझको एक बार वैकुण्ठमें श्रीभगवान्‌के पास लाकर उपस्थित कर दिया। आपकी कृपारूपी ऋणका शोधन करनेके लिये मेरे पास कुछ नहीं है। मैं आपको पुनः प्रणाम करता हूँ। बतलाइये, पागल बाबा, मैं किस प्रकार वैकुण्ठनाथके चरणोंमें आश्रय पा सकूँगा?

पागल—(गद्गदभावसे प्रणाम करते हुए) राम-राम सीताराम-जय-जय राम सीताराम। इस युगमें भगवत्प्राप्तिकी कोई चिन्ता नहीं है। अति सहज ही श्रीभगवान् प्राप्त हो सकते हैं। उठते-बैठते, सोते-जागते नाम-स्मरण करो। नियमित रूपसे रोज चार घंटा नाम-कीर्तन करो। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। कुछ दिन नाम-जप करनेपर भगवान् स्थिर न रह सकेंगे; नादरूपसे तुमको आश्रयमें ले लेंगे। रात-दिन अनेक राग-रागिनी, अनेक गीत सुनाते हुए वे तुमको प्रकाश (ज्योति) के राज्यमें ले जायँगे। असंख्य प्रकाश, अनन्त आकाशके बीचसे तुमको हृदयसे लगाकर वैकुण्ठमें ले जायँगे। राम-राम सीता-राम। जय-जय राम सीताराम। तुम नित्य तीनों संध्याओंमें अर्चि आदि मार्गका चिन्तन करो। पश्चात् वैकुण्ठमें नारायणका चिन्तन करो। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम।

हलधर—अर्चि आदि मार्ग किस प्रकारका है?

पागल—राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। हृदयमें मृणाल-तन्तुके समान अति सूक्ष्म [illegible] नाड़ी है। उसी नाड़ीके सहारे तुम [illegible] पहले अर्चि (तेजःज्योति) को प्राप्त होओगे। वहाँ [illegible] द्वारा पूजित होनेके बाद दिवसाभिमानी देवता [illegible] पूजा करके शुक्लपक्षाभिमानी देवताके पास पहुँचा देंगे। वे उत्तरायण अभिमानी देवताके पास पहुँचावेंगे। [illegible] संवत्सर अभिमानी देवताके पास पहुँचायेंगे। [illegible] सूर्यलोक, वहाँसे चन्द्रलोक, पश्चात् विद्युल्लोकमें [illegible] उस लोकवासी देवताके द्वारा पूजित होकर [illegible] स्नान करके तुम आगे जाओगे। तब गरुड़ आदि [illegible] गण तथा दिव्य सूरीगण आकर तुमको श्रीभगवान्‌के [illegible] ले जायँगे। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। जो तीनों संध्याओंमें इस अर्चिमार्गका चिन्तन करते हैं [illegible] और कुछ जानना शेष नहीं रहता। वे श्रीनारायणके [illegible] देहान्त होनेपर वैकुण्ठमें उनका दासत्व प्राप्त करते हैं। उनको मृत्युलोकमें नहीं आना पड़ता। राम-राम सीताराम। जय-जय राम सीताराम। यदि वैकुण्ठ [illegible] हो, परमपदरूप श्रीभगवान्‌को प्राप्त करना चाहते हो, मेरे साथ ताली बजाकर नाचते हुए गाओ—

श्रीराम जय राम जय जय राम
श्रीराम जय राम जय जय राम
श्रीराम जय राम जय जय राम

दोनों नाच-नाचकर नाम-कीर्तन करने लगे।

वैकुण्ठ प्राप्त करो

दुःखालय अनित्य दारुण इस मर्त्यलोकके सब सुख भोग।
लगते मधुर, भरे फिर भारी, नरक-दुःख-परिणामी रोग॥
मनसे तुरत निकालो इनको, भजो हृदयसे श्रीभगवान्।
विश्व-चराचरमें नित देखो मधुर उन्हींका रूप महान्॥
सेवाकर करो केवल तन-मनसे सब उनके ही काम।
प्राप्त करो वैकुण्ठ परम दुर्लभ ललित मंगलमय धाम॥

यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां न संस्मरेत्।
अहं स्मरामि सततं नयामि परमां गतिम्॥

इसका भाव ऊपर लिख चुके हैं। आजकलके कुछ लोग यह कहेंगे, 'यह कैसे हो सकता है कि नाम लेनेवाला वात, पित्त, कफके कारण नाम न ले तो भगवान् उसके हितके लिये नाम लेंगे।' उसका उदाहरण नीचे लिखकर लेखको विश्राम देते हैं।

जिस प्रकारसे एक सज्जन भोजन करनेके लिये अपनी धर्मपत्नीसे भोजनकी थाली मँगाता है और भोजन करनेको तैयार होता है। इतनेमें उस पिताका छोटा-सा लड़का, जो कि अभी डेढ़-दो वर्षका ही है, जिसके मुँहसे शुद्ध शब्द भी नहीं निकलते हैं, वह पिताकी थालीके पास जाता है और यह कहता है कि 'पिताजी हमको अट्टी (रोटी) देओ।' ऐसा कई बार कहता है। इतनेमें पिता अपनी थालीसे रोटीका टुकड़ा तोड़कर साग और दालमें मिलाकर लड़केके मुखमें देने लगता है, लड़का तबतक अट्टी-अट्टी कहता रहता है। जब रोटीका टुकड़ा मुँहमें जाता है तो लड़केका अट्टी कहना बंद हो जाता है और पिता फिर कहता है—'लेओ अट्टी'। इसी प्रकारसे वात, पित्त, कफके कारण भक्तको भगवान्‌का नाम विस्मृत हो जाय तो उतनी देरतक भगवान् भक्तके लिये नाम लेंगे। इसलिये हर समय भगवन्नामका अभ्यास करना चाहिये। एक भक्तने भगवान्‌से प्रार्थना की है—

गत दिवसका रोवना, पहर पलनका नाहिं।
रोवत रोवत मिल गया, अपने साहिब माँहि॥

मोक्ष-सोपान

(लेखक—अनन्तश्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम्॥*
(श्रीभद्रा० ७।९।४६)

छप्पय

का सुख मैथुन माहिं खाजकी खुजली जैसे।
सुख-सो पहिले लगे दुःख हो दुख पुनि जैसे॥
मौन, धरम, अध्येन, वेद, व्रत, श्रवन, समाधी।
जप, तप, व्याख्या, वास, मोक्ष दें संयम साधी॥
इन्द्रिय लोलुप जीविका, साधन इनहीं कूँ करें।
पाखंडी करि दम्भ तैं, करें जीविका कहुँ गिरें॥

वस्तु एक होनेपर भी पात्रभेदसे उसके फलमें भेद हो जाता है। सुनते हैं, सिंहनीका दूध सुवर्णपात्रमें ही टिकता है; अन्य पात्रोंमें रक्खा जाय तो वे पात्र फूट जाते हैं। गौका दूध चाँदी या मिट्टीके पात्रमें रक्खा जाय तो वह अमृतोपम गुणवाला होता है; उसी गौ-दुग्धको ताम्रपात्रमें रख दो तो वह विष बन जाता है। वर्षाका जल है। वह नदियोंमें, मीठे जलके कूपोंमें गिरता है, तो परम पेय बन जाता है। वही वर्षा-जल यदि समुद्रमें गिरता है, तो खारी अपेय बन जाता है। गङ्गाजल परम पवित्र है। उसे किसी पात्रमें भर लो और फिर उस पात्रसे उँड़ेलकर पीओ तो परम पवित्र पापनाशक होता है। उसीको मनुष्यके पेटमें भरकर निकालो तो अपेय नरकका द्वार हो जाता है। पवित्र वस्तु भी कुपात्रके संसर्गसे अन्य फल देनेवाली हो जाती है। यही बात मोक्षके साधनोंके सम्बन्धमें है। शास्त्रकारोंने मोक्षके दस साधन बताये हैं।

१—इन्द्रियजित् होकर वाणीका संयम कर ले, वाणीका प्रयोग कभी सांसारिक कार्योंमें न करे। वाणीका संयम होनेसे मनका संयम सहज हो जाता है। मौनसे बढ़कर संसारमें कोई तप नहीं।

२—ब्रह्मचर्यका विधिवत् पालन हो जानेपर भी मुक्ति मिल जाती है; क्योंकि मन, प्राण और वीर्य—इन तीनोंका परस्परमें अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एकका निरोध होनेपर

---

* मौन, ब्रह्मचर्यव्रत, शास्त्रश्रवण, तप, अध्ययन, स्वधर्म-पालन, शास्त्रोंकी व्याख्या, एकान्तवास, जप और समाधि—ये दस मोक्षके साधन हैं। इन्हीं दसोंको यदि अजितेन्द्रिय पुरुष करें तो ये उनकी जीविकाका साधन बन जाते हैं। किन्तु जो केवल दम्भसे इनका आश्रय लेते हैं, उनकी कभी तो इनसे जीविका चल जाती है और कभी पोल खुलनेपर जीविका भी नहीं चलती।

यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां न संस्मरेत्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्॥

इसका भाव ऊपर लिख चुके हैं। आजकलके कुछ लोग यह कहेंगे, 'यह कैसे हो सकता है कि नाम लेनेवाला वात, पित्त, कफके कारण नाम न ले तो भगवान् उसके हितके लिये नाम लेंगे।' उसका उदाहरण नीचे लिखकर लेखको विश्राम देते हैं।

जिस प्रकारसे एक सज्जन भोजन करनेके लिये अपनी धर्मपत्नीसे भोजनकी थाली मँगाता है और भोजन करनेको तैयार होता है। इतनेमें उस पिताका छोटा-सा लड़का, जो कि अभी डेढ़-दो वर्षका ही है, जिसके मुँहसे शुद्ध शब्द भी नहीं निकलते हैं, वह पिताकी थालीके पास जाता है और यह कहता है कि 'पिताजी हमको अट्टी (रोटी) देओ।' ऐसा कई बार कहता है। इतनेमें पिता अपनी थालीसे रोटीका टुकड़ा तोड़कर साग और दालमें मिलाकर लड़केके मुखमें देने लगता है, लड़का तबतक अट्टी-अट्टी कहता रहता है। जब रोटीका टुकड़ा मुँहमें जाता है तो लड़केका अट्टी कहना बंद हो जाता है और पिता फिर कहता है—'लेओ अट्टी'। इसी प्रकारसे वात, पित्त, कफके कारण भक्तको भगवान्का नाम विस्मृत हो जाय तो उतनी देरतक भगवान् भक्तके लिये नाम लेंगे। इसलिये हर समय भगवन्नामका अभ्यास करना चाहिये। एक भक्तने भगवान्से प्रार्थना की है—

गत दिवसका रोवना, पहर पलकका नाहिं।
रोवत रोवत मिल गया, अपने साहिब माँहि॥

मोक्ष-सोपान

(लेखक—अनन्तश्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम्॥*
(श्रीमद्भा० ७।९।४६)

छप्पय

का सुख मैथुन माहिं खाजकी खुजली जैसे।
सुख-सो पहिले लगे दुःख ही दुख पुनि जैसे॥
मौन, धरम, अध्ययन, वेद, व्रत, श्रवन, समाधी।
जप, तप, व्याख्या, वास, मोक्ष दें संयम साधी॥
इन्द्रिय लोलुप जीविका, साधन इनहीं कूँ करें।
पाखंडी करि दम्भ तैं, करें जीविका कहुँ गिरें॥

वस्तु एक होनेपर भी पात्रभेदसे उसके फलमें भेद हो जाता है। सुनते हैं, सिंहनीका दूध सुवर्णपात्रमें ही टिकता है; अन्य पात्रोंमें रक्खा जाय तो वे पात्र फूट जाते हैं। गौका दूध चाँदी या मिट्टीके पात्रमें रक्खा जाय तो वह अमृतोपम गुणवाला होता है, उसी गौ-दुग्धको ताम्रपात्रमें रख दो तो वह विष बन जाता है। वर्षाका जल है। वह नदियोंमें, मीठे जलके कूपोंमें गिरता है, तो परम पेय बन जाता है। वही वर्षा-जल यदि समुद्रमें गिरता है, तो खारी अपेय बन जाता है। गङ्गाजल परम पवित्र है। उसे किसी पात्रमें भर लो और फिर उस पात्रसे उँडेलकर पीओ तो परम पवित्र पापनाशक होता है। उसीको मनुष्यके पेटमें भरकर निकालो तो अपेय नरकका द्वार हो जाता है। पवित्र वस्तु भी कुपात्रके संसर्गसे अन्य फल देनेवाली हो जाती है। यही बात मोक्षके साधनोंके सम्बन्धमें है। शास्त्रकारोंने मोक्षके दस साधन बताये हैं।

१–इन्द्रियजित् होकर वाणीका संयम कर ले, वाणीका प्रयोग कभी सांसारिक कार्योंमें न करे। वाणीका संयम होनेसे मनका संयम सहज हो जाता है। मौनसे बढ़कर संसारमें कोई तप नहीं।

२–ब्रह्मचर्यका विधिवत् पालन हो जानेपर भी मुक्ति मिल जाती है; क्योंकि मन, प्राण और वीर्य—इन तीनोंका परस्परमें अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एकका निरोध होने

* मौन, ब्रह्मचर्यव्रत, शास्त्रश्रवण, तप, अध्ययन, स्वधर्म-पालन, शास्त्रोंकी व्याख्या, एकान्तवास, जप और समाधि—ये दस मोक्षके साधन हैं। इन्हीं दसोंको यदि अजितेन्द्रिय पुरुष करें तो ये उनकी जीविकाका साधन बन जाते हैं। किंतु जो केवल दम्भसे इनका आश्रय लेते हैं, उनकी कभी तो इनसे जीविका चल जाती है और कभी पोल खुलनेपर जीविका भी नहीं चलती।

तीनोंका निरोध हो जाता है। कामकी उत्पत्ति मनसे ही होती है, इसीलिये इसे 'मनोज' कहा है। मनको मथ देनेके ही कारण इसे 'मन्मथ' भी कहते हैं। मनका निरोध हो जानेपर प्राणोंका और ब्रह्मचर्यका भी निरोध हो जाता है। अथवा प्राणोंका ही प्राणायामादिसे निरोध होनेपर मन और वीर्यका निरोध हो जाता है। केवल वीर्यके ऊर्ध्वगामी हो जानेपर मन और प्राण अपने-आप निरुद्ध हो जाते हैं। इसलिये केवल ब्रह्मचर्य-व्रतसे भी मुक्ति हो जाती है। श्रुति कहती है—'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।' (कठ० १।२।१५)

३–निरन्तर सत्-शास्त्रोंका स्वस्थचित्तसे श्रवण करते रहें और श्रवणके पश्चात् मनन और निदिध्यासन चलता रहे तो शास्त्रश्रवणसे भी मुक्ति हो जाती है।

४–तपस्यासे देहाध्यास मिटता है। ज्ञानकी जो सात भूमिकाएँ बतायी हैं, उनमें तीनके पश्चात् आगे ज्यों-ज्यों तितिक्षा बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों उत्तरोत्तर भूमिकाओंकी उपलब्धि होती जायगी। जडभरतजीकी पाँचवीं भूमिका मानी गयी है; क्योंकि यद्यपि वे मग्न रहते थे, सुख-दुःखमें सम थे; देवीके सम्मुख उनका बलिदान किया जाने लगा फिर भी वे विचलित नहीं हुए। नौकरोंने कहारोंके साथ लगा दिया, वहाँ भी बिना किसी आपत्तिके लग गये; फिर भी उन्हें देहानुसंधान तो था ही। राजाको कैसा दिव्य उपदेश किया। यह उपदेश आदि तीसरी भूमिकाकी बातें हैं। भगवान् वेदव्यास आदि अधिकाराप्राप्त महापुरुषोंकी यही भूमिका मानी जाती है। जड-भरतजीने आजतक किसीको उपदेश नहीं दिया था। आत्मानन्दमें निमग्न भ्रमण करते रहते थे; किन्तु सौभाग्यशाली राजा रहूगणके भाग्य खुल गये। उनके द्वारा लोक-कल्याण होना था। लोककल्याणकी भावना तो पहिली भूमिका बताती है। जडभरतजीसे बढ़ी हुई तितिक्षा भगवान् ऋषभदेवकी कही जाती है। उनकी छठी भूमिकामें मानी है। सातवीं भूमिकामें स्थित तो भगवान् कपिलदेवजीकी माता देवहूति ही हैं। भागवतके अतिरिक्त ऐसी स्थिति [illegible] कहीं नहीं मिलता। तपस्याकी उत्तरोत्तर वृद्धिसे ही यह 'ज्ञानी स्थिति' प्राप्त होती है।

५–सतत शास्त्रावलोकन करता रहे। शास्त्रके चिन्तन रहनेसे भी मुक्ति होती है। वैसे शास्त्रका अर्थ [illegible] है; किन्तु यहाँ इसको [illegible] लिया गया है। अतः निरन्तर शास्त्रावलोकन ही यहाँ लेना चाहिये। यह बुद्धिका कार्य है। बुद्धिको निरन्तर शास्त्र-चिन्तनमें निमग्न रखनेसे वह ब्रह्माकारगामिनी बन जायगी; क्योंकि बुद्धिके परे तो ब्रह्म है—'यो बुद्धेः परतस्तु सः।' (भगवद्गीता ३।४२)

६–स्वधर्मपालनसे भी मुक्ति मिलती है। अपने वर्णके हों, जिस आश्रममें हों, अपने वर्ण-आश्रमके धर्मका पालन करते रहें। शूद्रको एक—गृहस्थ-आश्रमका अधिकार है। शूद्र स्वधर्मका पालन करता रहे तो स्वर्गके सुख भोगनेके अनन्तर वैश्य होगा। वैश्यको ब्रह्मचर्य-गृहस्थ दो आश्रमोंका अधिकार है। स्वधर्मपालनरूप धर्मसे स्वर्ग भोगकर वह क्षत्रिय होगा। क्षत्रियको ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ—तीन आश्रमोंका अधिकार है। धर्मपालनरूप पुण्यसे स्वर्गोपभोग करके वह ब्राह्मण होगा। ब्राह्मणको ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—चारों आश्रमोंका अधिकार है। संन्यास लेकर वह ज्ञानी सिद्ध हो जायगा। यदि उसके ज्ञानमें कहीं कुछ कोर-कसर रह गयी और पहले ही मृत्यु हो गयी, तो वह ब्रह्मलोक जायगा। वहाँ ब्रह्माजी उसके ज्ञानकी पूर्ति कर देंगे। ब्रह्माजीके साथ ही वह निर्मुक्त बन जायगा। इस धर्मपालनरूप साधनको 'क्रममुक्ति साधन' भी कहते हैं।

७–शास्त्रोंकी प्रबल युक्तियोंद्वारा युक्तियुक्त मनन करनेसे भी मुक्ति होती है; क्योंकि [illegible] करते बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है। भगवान् तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। स्थूल बुद्धिवाले स्थूल संसारको ही पा सकते हैं। उन अणोरणीयान्को तो परम सूक्ष्म बुद्धिवाले ही देख सकते हैं। इसीलिये उपनिषत्कारोंने कहा है—

'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।'

(कठ० १।३।१२)

८–एकान्तसेवन ही करे; किन्तु इन्द्रियोंको अपने वशमें रखकर नहीं, स्ववश होकर। संसारी लोगोंसे दूर रहकर, संसारी लोगोंसे बिना संसर्ग रखे। एकान्तमें अपने-आपमें ही संतुष्ट रहे तो उसे 'आत्मसंतुष्टि' [illegible] होगा।' ये संसारी लोग [illegible] तो संसारकूपमें पड़ते रहते हैं। इसीलिये तो [illegible] होकर गुरुओंकी [illegible] [illegible] ऐसे है—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मुमुक्षु ही [illegible] तो मनुष्य

अर्थात् कुत्तेकी भाँति बना हुआ है । इसीलिये कहा है—

न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः ।
यत् सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तवासिनः ॥

'जो सुख एकान्तवासी मुनिको होता है वह सुख न तो चक्रवर्ती राजाको होता है और न देवताओंके राजा इन्द्रको ही होता है ।'

९—निरन्तर मन्त्र-जपसे भी मोक्ष प्राप्त होता है । मन्त्रमें देवता, ऋषि और छन्द—तीन होते हैं । ऋषिको सिरपर धारण करते हैं, छन्दको मुखमें और इष्ट देवताको हृदयमें । जैसे मन्त्रका जप करते हैं, उसके अर्थकी भावना भी पीछेसे करते हैं । अर्थ-भावना करते-करते इष्टकी प्राप्ति होती है । इसीलिये शिवजीने पार्वतीजीसे कहा है—

'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्वरानने ।'

'हे वरानने पार्वती ! मैं तीन बार प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि केवल जपमात्रसे ही सिद्धि हो जाती है ।'

१०—समाधिसे भी मुक्ति होती है । यम और नियम तो योगके ही अङ्ग नहीं, सभी साधनोंमें इनकी आवश्यकता होती है । यम-नियमके विना तो कोई भी साधक साधन-सम्पन्न नहीं बन सकता । अतः आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—इन छःको ही 'षडङ्ग-योग' कहते हैं । आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार—ये बाह्य साधन कहलाते हैं । धारणा, ध्यान और समाधि—ये तीन आन्तरिक साधन हैं । धारणाकी परिपक्वावस्थाका ही नाम 'ध्यान' है और ध्यानकी परिपक्वावस्थाको ही 'समाधि' कहते हैं । समाधिसे चित्त एकाग्र होता है । यदि शरीरमें मल न रहकर निर्मल बन जाय, मनमें विक्षेप न होकर विना विक्षेपके बन जाय और बुद्धिका आवरण हटकर निरावरण बन जाय तो समाधिसे मोक्ष हो ही जाता है ।

इस प्रकार ये १० मोक्षके साधन हैं । ये कब साधन हैं ? जब साधक जितेन्द्रिय हो । उसने इन्द्रियोंको भलीभाँति जीत लिया हो और तब उसने इन साधनोंका आश्रय लिया हो, तो वह विमुक्त बन सकता है । यदि बिना इन्द्रियोंके जीते अजितेन्द्रिय पुरुष इन साधनोंका आश्रय लेता है तो उसके लिये ये साधन खाने-पीनेका व्यवसाय—जीवन-निर्वाहका साधनमात्र बन जाते हैं । साधन विधिवत् करनेपर भी ऐसे साधक इन्द्रियाँ वशमें न होनेके कारण उसके यथार्थ फलसे वञ्चित हो जाते हैं । उनका वह शुद्ध साधन-व्यवसाय जीवन-निर्वाहका या कामनापूर्तिका कारण बन जाता है । पर जितेन्द्रिय साधकों-को वही मोक्ष देनेवाला होता है; किंतु जो न तो जितेन्द्रिय साधक हैं और न अजितेन्द्रिय साधक ही, केवल दम्भी—ढोंगी हैं, केवल अपनी आजीविका-अर्जनके ही निमित्त, साधन-रूपमें नहीं, ढोंगरूपमें इसे अपनाते हैं, वे तो साधकका नाम ही बदनाम करते हैं । हैं तो वे सर्वथा साधनविरोधी नीच भोगपरायण । ऐसे लोगोंका कभी-कभी तो उससे निर्वाह चल जाता है, कभी उनकी पोल खुल जाती है । उनकी बनावटका भंडाफोड़ हो जाता है । फिर इन बातोंसे उनका जीवन-निर्वाह भी नहीं होता ।

जैसे कालनेमि जितेन्द्रिय-अजितेन्द्रिय कैसा भी साधु नहीं था । उसने साधुका केवल वेष बना लिया था । साधुओं-जैसे जटाजूट बना लिये थे । महात्माओंके-से कपड़े पहिन लिये थे । हनुमान्‌जी पहिले तो उसके चक्करमें आ गये । जब अप्सराके कहनेसे उसके यथार्थ रूपको जान गये तब उसका वहीं काम तमाम कर दिया ।

रावण कैसा भी साधु नहीं था । उसने साधुका ढोंग बनाया था । साधु-जैसा वेष बना लिया था । उसके वेषको देखकर सीताजी उसे भिक्षा देने निकलीं तो उसने नकली वेष फेंक दिया; यथार्थ रूपमें आ गया । ऐसे लोगोंकी कभी टिप्पस लग जाती है, कभी नहीं भी लगती ।

उघरें अंत न होहि निबाहू । कालनेमि जिमि रावन राहू ॥

एक सज्जनने दरभंगाकी ओर कहीं प्रसिद्ध कर रक्खा था कि 'मेरा नाम प्रभुदत्त ब्रह्मचारी है ।' वह कथा करने लगा । रुपया पैदा करने लगा । थानेमें जाकर अपराधियोंको छुड़ाने लगा । उसकी बड़ी प्रसिद्धि हो गयी । हमारे एक पुलिसमें भक्त हैं—पं० परमानन्दजी पाण्डेय । एक पुलिस इन्स्पेक्टरने उनसे कहा—'पाण्डेयजी ! आप तो ब्रह्मचारीजीकी बड़ी भारी प्रशंसा किया करते थे । वे तो हमें बहुत ही हलके अनपढ़ प्रतीत हुए ।'

उन्होंने पूछा—'तुमने उन्हें कहाँ देखा ?' वे बोले—'वे तो अब भी हमारे यहाँ कथा कर रहे हैं । सोनेका कंठा पहिनते हैं । बड़े ठाट-बाटसे रहते हैं ।'

उन्होंने कहा—'वे ब्रह्मचारीजी नहीं हैं । उन्हें पकड़ो ।' पुलिसने उन्हें पकड़ा । एक थानेदार बिहारसे मेरे पास

दुःखी आया। उसने सब बातें बतायीं। मैंने कहा—'मैंने कोई नाम रजिस्टर्ड तो कराया नहीं है। एक नामके बहुतसे आदमी हो सकते हैं, उसे छोड़ दो।' उसने बताया—'वह कहता है मैं दुःखी रहता हूँ संकीर्तन-भवनमें। मैं ही नेहरूजीके विरुद्ध चुनावमें खड़ा हुआ था।' पीछे सुनते हैं उसे सजा हो गयी। इसीका नाम दम्भ है, बनावट है।

आज हम अजितेन्द्रिय साधक भी नहीं, दम्भी बन गये हैं। हमारा वेषभूषा, उपाधि-आश्रम, व्याख्यान-प्रवचन सब दम्भके लिये होते हैं। हम मोक्षमार्गसे कोसों दूर चले गये हैं। साधनोंकी नकल भले ही कर लें, जबतक हम अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त नहीं करते, सदाचारका पालन नहीं करते, सद्गुणोंको अपने जीवनमें एकीभूत नहीं करते, तबतक हम मुमुक्षु नहीं। मोक्षप्राप्तिके अधिकारी नहीं। सच्चे साधक नहीं।

परंतु इन्द्रियोंको जीतना क्या कोई सरल काम है? क्या इन्द्रियजित् होना गुड़का पूआ है जिसे उठाया कि गप्प कर गये। जितेन्द्रिय होना टेढ़ी खीर है। हम चाहते हुए भी इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे रोक नहीं सकते। विश्वामित्र आदि ऋषियोंने कितनी तपस्या की। वर्षों अलौकिक घोर तप करते रहे। कहीं कामने विघ्न डाला, कहीं क्रोधने आ दबाया। क्या वे चाहते थे कि हमें काम क्रोध सतावें? महर्षि सौभरि जनसंसर्गसे दूर रहकर यमुनाजीके जलमें, जलमें आसन करके हजारों वर्ष पर्यन्त तप करते रहे; फिर भी मीनके संगको देखकर विवाह करनेकी इच्छा हो गयी और एकसे पचास और पचाससे पाँच सहस्र बन गये।

बात यह है कि उनके साधनोंमें तो कोई कमी थी नहीं, संगदोषसे फिसल गये। उन विषयोंकी कुछ भी परवा न करते वे साधनमें जुटे रहे। सौभरि मुनिको अन्तमें अपने कृत्यपर पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने कहा—'जिसे मोक्षकी इच्छा हो, उस पुरुषको चाहिये कि वह संसारी मिथुन-व्रतियोंका संग सर्वथा त्याग दे। एक क्षणको भी अपनी इन्द्रियोंको बहिर्मुख न होने दे। अकेला ही एकान्तमें रहे। एकान्तमें रहकर अपने चित्तको सर्वशक्तिमान् ईश्वरमें लगावे। यदि संग करनेकी आवश्यकता ही हो, तो भगवान्‌के भक्तों, अनन्यप्रेमी साधकों, प्रवृत्तिरहितों और निष्ठावान् महात्माओंमें ही रहे, उन्हींका संग करे।'*

इसलिये इन्द्रियसंयमको मोक्षके साधनोंमें प्रधानता दी गयी है। साधनकी इन्द्रियसंयम नींव है। अजितेन्द्रिय पुरुष धन-दौलत, मान-प्रतिष्ठा, पदवी-[illegible] भले ही प्राप्त कर ले, किंतु वह मोक्षपदका अधिकारी नहीं बन सकता। जितेन्द्रिय होनेपर भी, जिसमें [illegible] भगवद्भक्ति नहीं, सरलता नहीं, भगवान्‌के चरणोंपर भरोसा नहीं, उनके प्रति अनुराग नहीं, उनकी [illegible] कृपापर भरोसा नहीं, उसका जितेन्द्रिय होना भी एक दम्भ मात्र ही है। अतः भागवतकारने मोक्ष-प्राप्तिके तीन मुख्य साधन बताये हैं।

१—एक तो निरन्तर प्रभुकी अनुकम्पाकी [illegible] अर्थात् प्रतिक्षण भगवान्‌को स्मरण करके ऐसा कुछ यही प्रार्थना करता रहे—'हे प्रभो! मेरे ऊपर कब कृपा करोगे? कब दीनबन्धो! मेरी बारी आवेगी! कब मेरे ऊपर करुणाकी कोर करोगे, कब दीनपर कृपाकी वृष्टि होगी?' जैसे चातक सर्वदा स्वातीकी बूँदके लिये बादलकी ही ओर देखता रहता है, उसी प्रकार मनुष्य प्रभुकी कृपाकी बाट जोहता रहे।

२—अपने प्रारब्धवश जो भी सुख या दुःख आ जाय उसे बिना विरोधके निर्वैर भावसे भोगता रहे।

३—हृदयसे, वाणीसे तथा शरीरसे भगवान्‌को नमस्कार करता रहे। हृदयसे नमस्कारका भाव भगवान्‌की मूर्तिको हृदयमें बिठाकर उसका ध्यान करे, सोचे—यह जो कुछ है सब तेरा ही है।

वाणीसे मन्त्र जपा करे। मन्त्र उसे कहते हैं जिसके आदिमें ओंकार हो, चतुर्थी लगी हो और अन्तमें नमः या स्वाहा हो। जैसे 'ॐ रामाय नमः।' 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।' अथवा सम्बोधन और भगवान्‌का नाम हो—हे राम! हे कृष्ण! हे नाथ! हे दीनबन्धो! यह भी वाणीका नमस्कार है।

* सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः
सर्वात्मना न विसृजेद् बहिरिन्द्रियाणि।
एकश्चरन् रहसि चित्तमनन्त ईशे
युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत् प्रसङ्गः॥
(श्रीमद्भा० ९।६।५१)

शरीरसे भगवान्‌की चल अथवा अचल मूर्तिको
ाङ्ग प्रणाम करे। भगवान्‌की चल मूर्ति तो साधु, संत,
त्मा, विद्वान्, ब्राह्मण, भक्त आदि हैं; अचल भगवत्-
ं भगवान्‌के विग्रह हैं। उनको साष्टाङ्ग प्रणाम
ता रहे।

इस प्रकार जो इन तीन साधनोंको सावधानीके साथ,
ा आलस्यके निरन्तर करता रहता है, वह भगवान्‌का
मुक्तिरूप परम धन है, उसका उसी प्रकार उत्तराधिकारी
जाता है जैसे पुत्र बिना किसी प्रयत्नके पिताकी
त्तिका उत्तराधिकारी बन जाता है। यही यथार्थमें
रूपी परमपदका सुन्दर सोपान है। यही निर्वाण
की सुन्दर सीढ़ी है। इसी बातको नन्दनन्दन भगवान्
कृष्णचन्द्रजीकी स्तुति करते हुए श्रीब्रह्माजीने कहा है—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥
(श्रीमद्भा० १० । १४ । ८)

छप्पय—

कृष्ण कृपा कब करें लगन जिनकी चातकवत।
भोगें सुख दुख सहज भाग्यवश जो कछु आवत॥
मनतें वचतें और देहतें तुमकूँ विनवें।
हरिमय जग कूँ जानि विनय तें सबकूँ प्रनवें॥
यों जो जीवन धारि प्रभु, शरनागत बनिकें रहें।
पावें पितु धन पुत्र ज्यों, मुक्ति भरन तब त्यों कहें॥
(भागवतदर्शनसे)

तीर्थंकर और सिद्ध

(लेखक—आचार्य श्रीतुलसीजी)

ैन दर्शनके चार ध्रुव सिद्धान्त हैं—

१—आत्मवाद
२—लोकवाद
३—कर्मवाद
४—क्रियावाद

आत्माके अस्तित्वके लिये छः बातें ज्ञातव्य हैं—

१—आत्मा है, २—पुनर्भव है, ३—बन्ध है, ४—बन्धके
५—मोक्ष है, ६—मोक्षके हेतु हैं।

त्येक शरीरमें आत्मा है; किंतु किसी भी आत्माका
पृथक् अस्तित्व ज्ञात नहीं होता, इसलिये आत्माका
व सदा संदेहका विषय बना रहता है। हमारे शरीरमें
वाली सत्ता आत्मा है। वह चिन्मय है। उसमें द्रव्य
ोंको जाननेकी क्षमता है। किंतु वह स्वयं पुनर्भवी है
ीं है, यह जाननेकी क्षमता उसमें विकसित नहीं है।
, प्रत्यभिज्ञा, तर्क और अनुमानके आधारपर कुछ
ोंने यह प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है
आत्मा पुनर्भवी नहीं है, तो अनेक विद्वानोंने
प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है कि वह पुनर्भवी है।
के आधारपर दोनों धाराएँ चल रही हैं। प्रत्यक्षका
य किसीके पास नहीं है। यह विषय सूक्ष्म और
दूरगामी है, इसलिये इसे केवल तार्किक स्तरपर सुलझाना
सम्भव नहीं है। इसके समाधानके लिये तीव्र वैज्ञानिक प्रयत्न
या तीव्र साधना निमित्त बन सकती है। जिन व्यक्तियोंके
मनमें आत्माकी उत्कट जिज्ञासा जाग उठती है, वे आत्म-
दर्शनकी साधनाके पथपर चल पड़ते हैं। यह साधु-जीवनकी
भूमिका है।

ध्यानकी उच्चतम भूमिकापर आरोहण करते-करते साधु
प्रत्यक्ष-दर्शनको उपलब्ध कर लेते हैं। वे प्रत्यक्षदर्शी
(केवलज्ञानी) साधु 'जिन' कहलाते हैं। तीर्थंकरमें कुछ जिन
होते हैं, पर सभी जिन तीर्थंकर नहीं होते। तीर्थंकरमें कुछ
अतिशायी विशेषताएँ होती हैं। वे धर्म-शासनके शास्ता और
पथदर्शक होते हैं। भगवान् महावीर तीर्थंकर थे। उनके
शासनमें सैकड़ों जिन थे। जीवनकालमें जिन और तीर्थंकर
दो भूमिकाओंमें रहते हैं। निर्वाण होनेपर वे सब सिद्ध बन
जाते हैं—समान भूमिकाको प्राप्त हो जाते हैं। सिद्ध अवस्था
बन्धन-मुक्तिकी अवस्था है। इस अवस्थामें केवल आत्माका
अस्तित्व रहता है। इसलिये सिद्धत्व सबकी सामान्य भूमिका
है। जैन आगमसूत्रोंमें सिद्धोंके पंद्रह प्रकार बतलाये गये
हैं। किंतु वर्तमान अवस्थामें उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।
उनका आधार पूर्वजन्मकी स्थिति है। सिद्धोंके पंद्रह प्रकार
ये हैं—

वे आलोकसे प्रतिहत होते हैं, लोकके अग्रभागमें स्थित होते हैं, मनुष्यलोकमें शरीरको छोड़ते हैं और लोकके अग्रभागमें जाकर सिद्ध होते हैं। वे अरूप-साधन (एक दूसरेसे सटे हुए) और ज्ञान-दर्शनमें सतत उपयुक्त होते हैं। उन्हें वैसा सुख प्राप्त होता है, जिसके लिये इस जगत्‌में कोई उपमा नहीं है।

एक राजा अश्वारूढ़ होकर यात्राके लिये गया। उसका घोड़ा वक्र गतिवाला था। वह राजाको घने जंगलमें ले गया। वहाँ एक जंगली आदमी रहता था। उसने राजाका आतिथ्य किया और उसे मार्ग बता दिया। राजा उसे अपने साथ ले गया। उसने संकटमें सहायता की, उसे यादकर राजाने भी उसका बहुत सम्मान किया। उसे बड़े प्रासादमें ठहराया। बड़े-बड़े राजभवन दिखलाये। बढ़िया भोजन कराया। कुछ दिन रहकर वह जंगलमें चला गया। घरवालोंने पूछा तो उसने कहा, 'मैं नगरमें गया था।' 'नगर कैसा होता है?' 'उसमें बहुत बड़े-बड़े घर होते हैं।' उसने बहुत बताया पर उन्हें नहीं समझा सका। इसी प्रकार सिद्धके सुख भी अनुभूतिगम्य हैं, वाणीगम्य नहीं हैं। सिद्धका सुख शाश्वत और निर्विघ्न है, अतृप्त और क्षोभसे मुक्त है।

जीव सिद्धकी अविकसित दशा है और सिद्ध जीवकी विकसित दशा है। इन दोनोंमें दशा-भेद है, अस्तित्व-भेद नहीं है। प्रत्येक पदार्थका अस्तित्व त्रैकालिक है, तब कोई कारण दिखायी नहीं देता कि जीवका अस्तित्व त्रैकालिक न माना जाय। (प्रेषक—श्रीकमलेश चतुर्वेदी)

पूर्वजन्म और भावसिद्धि

(लेखक—आचार्य श्रीप्राणकिशोर गोस्वामी महाराज)

परलोकके विषयमें कुछ बोलते समय आत्मनिष्ठाकी आवश्यकता है। यह आत्मनिष्ठा सुलभ नहीं है। जड़देहके अतिरिक्त आत्माको स्वीकार किये बिना परलोकके विषयमें कोई प्रश्न ही नहीं उठता। विभिन्न शरीरोंमें एक आत्माके परिभ्रमणकी सम्भावना माननेपर ही परलोकका विषय विचारणीय होता है। तभी एक विशेष क्रमिक पथ-परिक्रमणके अनुगमनमें विश्वास उत्पन्न होता है। जिसकी बातपर विश्वास हो सके, ऐसे साधक या गुरुका अनुवर्तन किये बिना हृदयमें श्रद्धा या विश्वास नहीं जमता। अन्धविश्वाससे किसी सत्यकी स्थापना नहीं हो सकती। अन्धेके द्वारा प्रदर्शित पथमें बहुत दूरतक रास्ता तय कर लेनेके बाद भी चित्तमें भ्रम उत्पन्न होते ही किसी दूसरे पथ या उपायका अवलम्बन करना पड़ता है। शास्त्र, सदाचारका अनुसरण न कर स्वतन्त्र युक्तिके बलसे वस्तुका निरूपण करनेपर विफलमनोरथ होनेकी ही अधिक सम्भावना रहती है। युक्तिहीन विचार भी नीतिविरुद्ध होता है और सर्वजनग्राह्य नहीं होता। उपधर्म, स्थूलधर्म या धर्मके आभासका अवलम्बन न करना ही युक्तियुक्त है। परलोकतत्त्वका विचार करनेपर भ्रान्त मतके अनुसरणमें पूर्वपरिकल्पित सब प्रकारके लाभ, सुख-प्राप्तिके विचार पूर्णतया परित्यक्त हो जाते हैं। साधनाकी निम्न पथभ्रान्त मनुष्यके किसी भी काम नहीं आती। सत्य और शाश्वतका अवलम्बन किये बिना कोई भी सिद्धान्त जीवका कल्याण-साधन नहीं कर सकता।

काल सदासे है। काल नहीं था, इस प्रकारकी काल-सम्बन्धी कल्पना हम नहीं करते। इस अखण्ड कालकी किसी समय सीमारेखा नहीं खींची जा सकती। इस कारण कालको नित्य कहा जाता है। इसी कालमें समय-समयपर विश्वरचनाका वैचित्र्य, अनन्त भेद, प्रलयकी विभीषिका, बन्धन और मुक्ति तथा जन्म और मृत्युकी छायाके दर्शन होते हैं। कालकी सृष्टि मायारचित है। इस कारण वह अमूलक छायादर्शन है। कालातीत वस्तु ही स्वतन्त्र, सत्य अथवा अन्यनिरपेक्ष है। काल, कर्म, प्रकृति, जीव—सभी परमेश्वरके अधीन हैं, निरपेक्ष नहीं हैं। मेघाच्छन्न अमावस्याकी रात्रिका घना अन्धकार हमारी दृष्टिको अभिभूत कर लेता है। हम निकटस्थ स्थायी स्तम्भको भी नहीं देख पाते हैं, दूसरी वस्तुओंकी बात तो दूर रही। प्रलयकालीन तमोगुणके प्रभावमें चिरन्तन जीवसत्ता, जगत्‌का अस्तित्व अथवा परमात्माकी सत्ता—किसीकी भी उपलब्धि नहीं होती है। केवल शून्य, अज्ञान, मायाका अधिकार रहता है। उसमें किसी जीव-जगत्, स्थावर-जङ्गम किसीका भी परिचय प्राप्त नहीं होता। परमात्माके आलोकमें, सत्य-ज्ञान-आनन्दके पुञ्जमें, सृष्टिका बीज अङ्कुरित होनेपर विचित्र रूप, रस,

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥
(६ । १४ । ५)

मुक्तिमें जीवसत्ता जब ब्रह्ममें लय हो जाती है तो फिर लीलामें विग्रह धारण करेगा कौन ? अथवा कौन सिद्ध होकर मुक्तिके पश्चात् भी फिर नारायण-परायण होगा ? पद्मपुराणमें भगवान्में महामुनिका मनुष्य-शरीर लय हो जानेके पश्चात् भी पुनः नारायण मुनिके रूपमें आविर्भाव होनेकी कथा आती है । बृहत् नरसिंहपुराणमें नृसिंहचतुर्दशी-व्रतके प्रसङ्गमें वेश्याके सहित ब्राह्मणके भगवान्में लीन हो जानेके बाद भी पुनः भार्याके सहित प्रह्लादके रूपमें आविर्भावका वर्णन है । परंतु यदि भगवदिच्छा हो तो वे किसीको सायुज्य नामक निर्वाण भी दे सकते हैं । इसीलिये मूल श्लोकमें 'प्रायः' शब्दका व्यवहार किया गया है । सत् या असत्के साथ जीवका उत्थान या पतन होता है । कभी स्वर्ग, कभी नरक भोग मिलता है । शास्त्र अनुशासन करते हुए जीवके उत्कर्षके मार्गका निर्देश करते हैं । देवर्षि नारद अपने पूर्वजन्मका स्मरण करके वेदव्याससे कहते हैं कि 'मैं पूर्व-जन्ममें एक दासीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । मेरी माता थी वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी सेविका । वर्षाकालमें चार मास एक स्थानपर अवस्थान करनेवाले साधु-संतोंकी सेवामें मैं नियुक्त था । साधुजन मुझपर अनुग्रह करते थे । उनके उच्छिष्ट पात्रका अवशिष्ट भोजन करनेसे मेरा हृदय भगवद्भावसे भावित हो गया । प्रतिदिन साधु-संतोंके मुखसे श्रीकृष्ण-कथा, श्रीकृष्ण-गुणगान सुनते-सुनते मेरी श्रीकृष्णमें रति हो गयी । तब मैंने समझा कि परमात्मा परब्रह्मकी मायाके द्वारा स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चात्मक देहकी सृष्टि हुई है । इस प्रकार विश्वके रहस्यका ज्ञान मुझको हुआ—'

तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने
प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ।
ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया
पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥
(श्रीमद्भा० १ । ५ । २७)

जन्म-जरा और मृत्यु, सब कुछ मायिक है, तथापि इनसे भय-विभीषिका कम नहीं होती । भगवान् कपिलमुनि माता देवहूतिसे जन्म-मृत्युका रहस्य कहते हैं—

जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः ।
तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः ॥
(श्रीमद्भा० ३ । ३१ । ४४)

जीव एक लोकसे दूसरे लोकमें जाता है, यह असम्भव नहीं है । वह अपने उपाधिमय लिङ्गशरीरको धारण करके परलोक-गमन करता है । नवीन देहमें नवीन कर्मोंमें प्रवृत्त होता है । कर्मानुसार फलभोग करता है । उपाधिमय लिङ्ग-शरीर तथा पाञ्चभौतिक इन्द्रियोंसे युक्त स्थूलशरीर—इन दोनोंके जब एक साथ मिलकर कर्म करनेकी क्षमता नहीं रहती है, तब कहते हैं कि 'मृत्यु' हो गयी । लिङ्गशरीर और भोगायतन मन-इन्द्रियसे युक्त स्थूलशरीरका एक साथ मिलकर प्रकट होना ही 'जन्म' कहलाता है । इस जन्मके साथ एक अभिमान—अर्थात् मैं हूँ और मेरा शरीर है—इस प्रकारकी एक अवस्था रहती ही है । इसी 'मैं और मेरा'की भावनाका जब पूर्णतया विस्मरण हो जाता है, तो कहा जाता है कि 'मृत्यु' हो गयी । एकादश इन्द्रिय और पञ्च तन्मात्राएँ, इन सोलह पदार्थोंके साथ सत्रहवाँ जीवचैतन्य मिलकर स्थूलशरीरमें हर्ष-शोक, भय, दुःख और सुख आदि विभिन्न भावोंसे आक्रान्त होता है'—

अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति ।
हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति ॥
(श्रीमद्भा० ४ । २९ । ७५)

पञ्च प्राण, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि—वेदान्तमें सूक्ष्मशरीरके ये ही सत्रह अवयव हैं । ऐसा भी कहा जाता है, सूक्ष्मशरीरको लेकर जीवचैतन्यका स्थूलदेहमें प्रवेश ही 'जन्म' है । सूक्ष्मशरीर स्वरूप और परिमाणमें भी सूक्ष्म होता है, अतएव अदृश्य तथा सर्वत्र निर्बाध विचरणमें समर्थ होता है । मृत्युके समय यह सूक्ष्म-देह ही जीवको स्थूल देहसे वहन करके ले जाता है । उस समय इसका नाम 'आतिवाहिक' देह होता है तथा यही प्रेतशरीरके नामसे परिचित होता है । इसके बाद यथा नियम स्थूलदेह या भोगदेह प्राप्त होता है । वेदानुगत शास्त्रोंके अनुशासनमें अवस्थित वेदोक्त दस संस्कारोंमें विश्वास रखनेवाले मनुष्यका ही श्राद्ध आदि अनुष्ठान होता है । शास्त्रोक्त पारलौकिक अनुष्ठान यथोचित रूपमें अनुष्ठित होनेपर मृत व्यक्तिकी प्रेतत्वसे मुक्ति होती है और कर्मफलके भोगके उपयुक्त देह प्राप्त होती है । जीवनकालमें जिन प्रकारके कर्म किये जाते हैं, मनुष्यकी तदनुसार ही शुक्ल या कृष्ण मार्गसे गति होती है । एक परावर्तनका मार्ग है और दूसरा अनन्तका । उस मार्गसे जानेपर फिर लौटना नहीं होता । कर्मविपाक किस आदमीको कहाँ ले जायगा,

गोलोकधामके दर्शन और अनुभवके सम्बन्धमें हम यहाँ कुछ चर्चा करेंगे।

एक ब्राह्मण धनकी आशासे कामाख्या देवीकी उपासना करते थे। देवीने उनकी श्रद्धासे संतुष्ट होकर उनको स्वप्नमें दस अक्षरका श्रीमदनगोपाल मन्त्र प्रदान किया। साध्य-साधनके विषयमें जानकारी न होनेपर भी उस जपके फलसे ब्राह्मणका हृदय कामनारहित हो गया। वे मन्त्र-जप पूरा करके तीर्थभ्रमणके लिये निकले। वैष्णव लोगोंके उपदेशसे, सत्सङ्गके फलस्वरूप एकान्तमें मन्त्र-जपके प्रभावसे उन ब्राह्मणको आनन्दमूर्च्छा हुई। उसको भी उन्होंने जपके मार्गमें विघ्नरूप माना। एक दिन उनको श्रीभगवान्‌का आदेश हुआ कि 'वृन्दावन जाओ, वहाँ परम आनन्द प्राप्त करोगे। रास्तेमें देर न करना।' वृन्दावन जानेपर उनको गोपकुमारके रूपमें श्रीगुरुदेव प्राप्त हुए। गोपकुमारने कृपापूर्वक अपने जीवनकी कहानी उनको सुनायी। साधनाकी प्रथम अवस्था देहान्तरकी भावना या जन्मान्तरकी विभीषिका नहीं है। शुद्ध भावके सम्बन्धसे ही साधककी देह सिद्धदेह हो जाती है। दीक्षाके प्रभावसे सत्सङ्गके द्वारा भगवद्धाममें अवस्थितिका अनुभव करके उनको नवजन्म प्राप्त होता है।

नूतन मनुष्य बननेके लिये पहले महान् पुरुषकी कृपा चाहिये। दीक्षा ग्रहण करना परम आवश्यक है। नियमित मन्त्रजपसे एकके बाद एक भगवद्विग्रहके प्रति श्रद्धा होती है। शालग्रामचक्र, चतुर्भुज श्रीनारायण, श्रीजगन्नाथ, श्रीवामन भगवान्, यज्ञेश्वर भगवान् और तपोलोकमें परमात्माका अनुसंधान तथा सत्यलोकमें सहस्रशीर्षा पुरुषकी महिमाका पता लगता है।

मायाके प्रभावसे मुक्त साधक चिरदीप्त पराकाश, परव्योम या चिदाकाशका दर्शन करता है। इस अनुभवके राज्यमें प्रवेश करनेके लिये भगवद्भक्तिके सिवा और कोई उपाय शास्त्रोंमें प्रदर्शित नहीं हुआ है। मर्त्यलोकमें हमलोग देवीधाम, शिवधाम, श्रीक्षेत्र, अयोध्या, द्वारका, मथुरा, गोकुल, वृन्दावन आदिका दर्शन करते हैं; परंतु इन सब तीर्थस्थानोंकी महिमा ग्रहण करनेका सौभाग्य सबको नहीं होता। इसका कारण है हमारे अंदर साधनाका अभाव।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें प्रकृतिके पार विभु परव्योम धामके विषयमें कहा गया है कि—

> सर्वग अनन्त ब्रह्म वैकुण्ठादि धाम।
> कृष्ण कृष्ण अवतारेर ताहाई विश्राम॥
> ताहार उपरि भाग कृष्णलोक ख्याति।
> द्वारका, मथुरा, गोकुल त्रिविधत्वे स्थिति॥
> सर्वोपरि श्रीगोकुल व्रजलोक धाम।
> श्रीगोलोक श्वेतद्वीप वृन्दावन नाम॥

श्रीभगवान्‌के पूर्णतम प्रेम, माधुर्य-विलासका धाम श्रीगोलोक है। श्रीकृष्ण एक स्थानमें रहते हुए ही सभी भक्तोंके स्थानोंमें साक्षात् अनुभूत होते हैं। भगवान् अपने धाम अप्राकृत चिन्मय परव्योममें रहते हुए ही प्राकृत संसारमें प्रकट होकर प्रत्यक्ष अनुभवका विषय बनते हैं। साधारण मनुष्य उनकी विवेचना करते हुए देशविशेषका विचार करके ही उनके धामके सम्बन्धमें सिद्धान्त बनाते हैं। यह धामतत्त्व अप्राकृत मनसे प्रत्यक्ष होता है, कृपासे जाना जाता है तथा प्रेम-सेवाकी लालसासे प्राप्त होता है। यह बात साधक लोग हमको स्मरण कराते हैं—

> सर्वग अनन्त विभु कृष्ण तनु सम।
> उपर्यधो व्यापियाछे नाहिक नियम॥

भक्तके प्रति अनुग्रह करनेके लिये रसिकेन्द्रचूडामणि परम करुणामय श्रीकृष्णकी इच्छासे प्राकृत ब्रह्माण्डमें भी प्रेमप्रोज्ज्वल चिन्मय धाम प्रकाशित होता है। यही क्यों, उनकी चिर आनन्दमयी लीला भी उसके साथ प्रकाशित होती है। वह लीला, वह धाम-माधुर्य, काम-कामना-दूषित मन-प्राणमें अनुभूत नहीं होता। इसके लिये चाहिये—शुचि शुभ्र जीवनशोभा। श्रीकृष्णविलास-भूमिके यथार्थ दर्शनके लिये आवश्यक है—अक्लान्त उत्कण्ठा, निराविल दैन्य, निरन्तर नामाश्रय तथा ऐकान्तिक प्रेमप्रकर्ष।

> चिन्तामणि भूमि कल्पवृक्षमय वन।
> चर्मचक्षे देखे तारे प्रपञ्चेर सम॥
> प्रेमनेत्रे देखे तार स्वरूप प्रकाश।
> गोपगोपी सङ्गे जाहाँ कृष्णेर विलास॥

समाधि-दर्शन और प्रेमदर्शनकी, अन्तरानुभव और बाह्यदर्शनकी विचित्रताकी बात भूल जानेसे काम नहीं चलेगा। समाहित होनेपर अंतरतर स्पष्ट हो जाता है। उसके साथ ही बहिरिन्द्रिय और अन्तरिन्द्रियोंकी—

बीज और जीव

(लेखक—अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

इस विश्व-प्रपञ्चमें ऐसा कोई प्राणी नहीं है, ब्रह्मासे लेकर कीट-पतङ्गपर्यन्त, जो दुःखसे परहेज (परिजिहीर्षा ?) न करता हो और उससे बचनेका यत्न न करता हो। विवेकदृष्टिसे देखनेपर स्पष्ट हो जाता है कि दुःख अपने स्वरूपके अनुरूप नहीं, प्रतिरूप है। इसीसे बिना माता-पिता, गुरु और शास्त्रकी किसी प्रकारकी शिक्षा प्राप्त किये, बिना सिखाये, बिना संस्कार डाले स्वाभाविक ही मृत्यु, अज्ञान, भय आदिसे अरुचि होती है। विचार करके देखें तो जो दुःख बीत गया, उससे छूटनेका कोई प्रश्न नहीं। जो प्रतीत हो रहा है, वह बीतता जा रहा है। जो आनेवाला है, वह ज्ञात नहीं है। फिर दुःखसे छूटनेकी इच्छाका क्या अर्थ हुआ ? जिन कारणोंसे दुःख होते हैं उन कारणोंसे छुटकारा—सदाके लिये छुटकारा, सर्वत्रके लिये छुटकारा, सर्वरूपसे छुटकारा, अर्थात् आत्यन्तिक दुःखमुक्ति। ऐसी स्थितिमें स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि दुःखका कारण क्या है ? और उसके निवारणका उपाय क्या है ?

देहके साथ ही दुःखका उदय होता है। जन्म-मरण—दोनोंमें ही दुःखका अनुभव होता है। रोग, वियोग, भोग, संयोग, अनुकूल-प्रतिकूल—सब देहके सम्बन्धसे ही होता है। स्वाधीनता-पराधीनता भी इसीके साथ लगी हुई है। धर्म-कर्म-अवस्था-स्थिति—सब देहके ही कच्चे-बच्चे हैं। इस देहका सम्बन्ध ही दुःखका हेतु है। सम्बन्ध क्या है,—'मैं' और 'मेरे'के रूपमें इसे स्वीकार करना। अपने स्वरूपका विवेक करें और अपनेको देहसे अलग समझ लें—'नाहं न मे'—'न मैं, न मेरा'। बस, देहके बारेमें जो कुछ कहा जाय, वह कहा जाने दो। जो कुछ हो, सो हो। जैसे रहे, वैसे रहे। यह न 'मैं', न 'मेरा'। मैं द्रष्टा, साक्षी, असङ्ग, उदासीन। देहके दुःखसे मैं दुखी नहीं, देहके सुखसे सुखी नहीं। देहकी मृत्यु और जड़ता मेरा स्पर्श नहीं करती। इसके रोग और भोग मुझे छूते नहीं। इसके निरोध और विरोधका मुझे कोई अनुरोध नहीं है। इसकी भ्रान्ति और भ्रान्तिसे मेरी शान्तिमें कोई विघ्न नहीं पड़ता। 'अहं' और 'मम'के रूपमें देहको ग्रहण करना ही दुःखका उपादान है। 'महस्मानादुर्व्याधिर्व्यदर्शनम् ।' इसका अर्थ हुआ कि देह दुःख है और इसको आत्मा अथवा आत्मीयरूपसे ग्रहण करना उपादान है। जब उपादान कारण ही नहीं रहेगा तो कार्य कहाँ ?

अब सुनिये। यह देह कहाँसे आ गया ? 'मैं-मेरा' छोड़ देनेपर यह कहाँ चला जायगा ? इस देहसे फिर वैसा ही सम्बन्ध नहीं हो जायगा, इसका क्या आश्वासन है ? देह चाहे एक तत्त्वसे बना हो, चाहे अनेकसे, जड़ धातुमें इसका घटन या गठन बिना धर्माधर्मके तो हो नहीं सकता। धर्माधर्म बनता है कर्मसे। कर्म होता है शरीरसे। फिर तो देहकी सन्तानपरम्पराका कभी उच्छेद नहीं होगा; क्योंकि जैसे पहलेसे विहित और निषिद्ध कर्म होते आये हैं, होते हैं, वैसे ही होते रहेंगे। देहसे कर्म और कर्मसे देह। ये दोनों बीज-वृक्षके समान अनादि परम्परासे चले आ रहे हैं। तब क्या जीवका जीवन एक बीजका जीवन है ? नहीं, नहीं; बीजके जीवनमें और जीवके जीवनमें आकाश-पातालका अन्तर है। जीव अविनाशी चेतन है और बीज विनाशी जड़। आइये, एक बार दोनोंकी तुलना कर लें।

आपके हाथमें एक बीज है। क्या आप पहचानते हैं कि यह किस वृक्ष या फलका बीज है ? यदि हाँ, तो इसे देखते ही आप इसके पूर्व रूप और उत्तर रूपकी कल्पना कर सकते हैं। यह बीज कैसे मूल, तनों, डालियों, पल्लव एवं पुष्पोंको पार करता हुआ आया है। अब यह बोनेपर फिर उसीसे मिलता-जुलता रूप ग्रहण करेगा। क्या यह सब बीजमें दीखता है ? नहीं, परंतु है सब बीजमें समाया हुआ। बीजको पृथ्वी, जल, गर्मी, प्रकाश, वायु और अवकाश—सब कुछ चाहिये। खेत, खाद, सिंचाई। यह आर्द्र होगा, फूलेगा, अङ्कुरित होगा, बढ़ेगा। उसे देश चाहिये, काल चाहिये। यह सब कुछ होनेपर भी वह अपने स्वभावके अनुसार ही आकृति, रूप, स्वाद प्रकट करेगा। बीज अनादि परम्परासे चला आ रहा है, अनादि[illegible] ऊर्ध्वाधः गति प्राप्त करता रहा है और यह तबतक [illegible] रहेगा, जबतक इसका बीजत्व अग्नि आदिसे [illegible] न हो जाय।

अब आप एक जीवको [illegible] [illegible] है। [illegible] लीजिये। उसमें एक विशेष [illegible] [illegible] [illegible] भी आविर्भाव-तिरोभावके लिये [illegible] [illegible]

हो सकता। जीव चेतन है, उसकी जीवनसत्ता अनादि और अनन्त है। वह देश, काल और द्रव्यकी कल्पनाको अपनी दृष्टिमें धारण करता है। देश, काल, द्रव्यकी भासमानता बाधित है और चेतनका स्वरूप सर्वथा अबाधित। अनुभवकी प्रणालीमें अपना नास्तित्व नहीं है। कोई भी यह अनुभव नहीं कर सकता कि मैं नहीं हूँ। इसलिये जीवका वास्तविक जीवन अनन्त और अद्वय है। वह अपनी कल्पनामें ही भासमान कालके साथ तादात्म्यापन्न होकर अपनेको नित्य, देशके साथ तादात्म्यापन्न होकर व्यापक और द्रव्यके साथ तादात्म्यापन्न होकर सर्वात्मक समझता है। वस्तुतः ये नित्यता, व्यापकता और सर्वात्मकता भी उसके यथार्थ स्वरूप नहीं हैं, कल्पित दृश्यमें तादात्म्यके कारण ही हैं। अधिष्ठान् चेतन ही वस्तुतः जीवका यथार्थ स्वरूप है और उसमें द्वैतका किंचित् भी भेद नहीं है। बाधित भासमानताका कोई मूल्य नहीं है। वस्तुतः बीजत्व और जीवत्व आविद्यक हैं। बीजसत्ता और जीवसत्ता दोनों ही अखण्ड चिन्मात्र सत्तासे अभिन्न हैं।

अब फिर एक बार पहली बातपर लौट चलें। किसी भी एक वस्तुमें अनेकाकारताका कारण क्या है? विक्रिया अथवा क्रिया। विक्रिया प्राकृत अथवा स्वाभाविक है; परंतु क्रिया कर्ताके द्वारा अनुष्ठित है। क्रिया धर्म अथवा अधर्मसे अनुविद्ध होती है; क्योंकि उसके मूलमें प्राप्ति अथवा परिहारकी इच्छा रहती है। प्राप्तिकी इच्छा शोभनाध्यासमूलक है और परिहारकी इच्छा अशोभनाध्यासमूलक है। इसी इच्छाकी दृढ़ता-अदृढ़तासे विहित-प्रतिषिद्ध क्रियाका आचरण होता है। अध्यास अज्ञानमूलक है। इसलिये जबतक अज्ञान रहेगा, तबतक अध्यास रहेगा और जबतक यह रहेगा, तबतक वासनाकी निवृत्ति न होनेके कारण जन्म-मृत्युका चक्र भी निवृत्त नहीं हो सकता। इस चक्रकी निवृत्तिके लिये वेदान्तज्ञानकी अपेक्षा है। यदि यह कालकी प्रधानतासे जन्म-मरण, देशकी प्रधानतासे गमनागमन, द्रव्यकी प्रधानतासे योनिपरिवर्तन, ईश्वरके द्वारा नियन्त्रित कर्मफल न होता और अज्ञानी जीव इस फलको भोगनेके लिये बाध्य न होता, तो तत्त्वमस्यादि महावाक्यजन्य ज्ञानकी आवश्यकता ही न होती और सम्पूर्ण वेदान्तका श्रवण, मनन, निदिध्यासन व्यर्थ हो जाता। ब्रह्मात्मैक्यज्ञानकी आवश्यकता ही इनकी निवृत्तिके लिये है।

श्रीगौडपादाचार्यजी महाराजने, जिन्हें श्रीशंकराचार्यने ब्रह्मसूत्रके शारीरक भाष्यमें 'सम्प्रदायविद्'के नामसे स्मरण किया है और श्रीसुरेश्वराचार्यने 'वेदान्तमर्मज्ञवृद्ध'के रूपमें अपनी कृतियोंमें स्थान-स्थानपर समादृत किया है; कहा है—

> यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः ।
> क्षीणे हेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते ॥

आत्माको ब्रह्म अर्थात् देश, काल, वस्तुपरिच्छेदसे रहित सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदशून्य न जानकर यह बात मानी जाती है कि मैं धर्म-अधर्मका कर्ता और उसके फल सुख-दुःखादिका भोक्ता हूँ, तब जन्म-मरणरूप संसारकी वृद्धि होती है। जब ब्रह्मात्मैक्यज्ञानसे अज्ञानमूलक कर्तृत्व, भोक्तृत्व, संसारित्व, परिच्छिन्नत्व आदि बाधित हो जाते हैं, तब जन्म-मरण, गमनागमन आदि अनर्थमय संसारकी निवृत्ति हो जाती है। इसलिये तत्त्वज्ञानके पूर्व पुनर्जन्म और परलोकको न मानना वेदान्तविचारसे विमुख करनेवाला है और घोर अनर्थमें फँसानेवाला है।

यह बात सर्वथा वेदान्तसम्मत और युक्तियुक्त है कि जीवका जीवन अखण्ड चिन्मात्र सत्ता ही है। अज्ञानके कारण ही भेदभ्रम होता है। भेदमात्र ही प्रातिभासिक है। भेदवस्तु सत्य नहीं है। तत्त्वतः अपने स्वयंप्रकाश अधिष्ठानसे भिन्न भी नहीं है। अपना आत्मा ही यह अधिष्ठान है। अन्ततः हम आपके अनुसंधानके लिये एक वेदमन्त्र उद्धृत करते हैं—

> यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वान्
> अपो भिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छन् ।
> उपाधिना क्रियते भिन्नरूपो
> देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा ॥

लिये देशकी अपेक्षा है। नाना प्रकारके रूप ग्रहण करनेके लिये द्रव्यकी आवश्यकता है। यह गमनागमन जन्म-मरण और रूप-परिवर्तन कर्मके सम्बन्धसे होते हैं। बिना कर्मके उठना-गिरना, जीना-मरना अथवा जाना-आना नहीं हो सकता। एक ही वस्तु कर्मके बिना अनेक आकारोंमें परिवर्तित नहीं हो सकती। यही कर्म प्राकृत जगत्में विकार या विक्रियाके नामसे कहे जाते हैं, जो एक विशिष्ट प्रक्रियासे आकृतियोंकी धाराका निर्माण करते हैं और यही कर्म जीव जगत्में कर्तृत्वपूर्वक किये जानेके कारण एक विशिष्ट वासनाजन्य संस्कारका रूप ग्रहण करते हैं, जिससे उनकी संज्ञा धर्म अथवा अधर्म हो जाती है। चैतन्यकी प्रधानतासे जीव होता है और जडत्वकी प्रधानतासे बीज। जीवका 'ज'कार उसकी अन्तःस्थताका सूचक है और बीजका 'ब'कार बहिष्ठताका। बीज केवल निर्माणका हेतु है; परंतु जीव निर्माण और प्रमाण दोनोंका। बीजकी शक्तियाँ केवल भौतिक द्रव्यमें रहती हैं और जीवकी भौतिक-अभौतिक दोनोंमें। जीवके बहिःकरण और अन्तःकरण दोनों जाग्रत् रहते हैं; परंतु बीजके करण मूर्छित होते हैं। बीजमें धर्माधर्मकी उत्पत्ति नहीं होती; परंतु जीव प्रमाणवृत्तिका आधार होने एवं कर्ममें स्वतन्त्र होनेके कारण धर्माधर्मका आधार बनता है। बीज भोग्यांश-प्रधान है और जीव भोक्ता-अंश-प्रधान; इसलिये जीवका सुख-दुःख जाग्रत् है और बीजका सुषुप्त। जीव अपने धर्माधर्मके द्वारा ऊर्ध्वगति और अधोगति प्राप्त करता है; बीज प्रकृतिकी स्वाभाविक धारामें स्थित होकर।

जीव भी प्रकृतिके राज्यमें ऊर्ध्वस्रोत, तिर्यक्स्रोत और अधःस्रोत—तीन प्रकारके होते हैं। प्रायः पहले दोनोंमें जडत्वकी प्रधानता रहती है; परंतु अधःस्रोतमें प्राकृत उन्नतिकी पूर्णता हो जाती है। वह ऊपरसे मोड़ लेकर नीचेकी ओर बढ़ता है। यह मनुष्ययोनि ऐसी ही है। इसमें कर्म, ज्ञान और प्रेमके प्रकट होनेकी पूर्ण योग्यता है; क्योंकि नवीन-नवीन कर्म करनेके लिये हस्त आदि इन्द्रियोंका, नित्य नूतन आविष्कार करनेके लिये बुद्धिका और आनन्दानुभूतिके लिये प्रेमका विकास स्पष्ट देखनेमें आता है। इस योनिमें सद्भाव, चिद्भाव एवं आनन्दभावके अनुभवकी पूर्ण योग्यता है। यह अपने अन्तःकरणमें विद्या एवं कर्मका संस्कार प्राप्त करता है और पूर्व प्रज्ञाका उदय भी देखनेमें आता है। इसलिये धर्माधर्मका सम्पूर्ण दायित्व मनुष्योंमें ही प्रकट होता है।

अधर्माचरण करनेसे देह, इन्द्रिय और मनपर होनेवाला नियन्त्रण शिथिल हो जाता है; इसलिये उन्हें पुनः प्रकृतिके नियन्त्रणमें जाकर उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज या द्विपादसे इतर जरायुज होना पड़ता है। धर्माचरणसे देह, इन्द्रिय और मनकी शुद्धि और नियन्त्रण सिद्ध होनेपर दैवी राज्यमें प्रवेशकी योग्यता मिलती है। दैवी राज्यमें भी प्रथमतः ऐन्द्रियक सुखका ही उत्कर्ष प्राप्त होता है; परंतु एक इष्टकी अनन्यभावसे उपासना करनेसे ऐन्द्रियक सुखसे विलक्षण इष्टदेवसम्बन्धी दैवी सुखका आविर्भाव होता है। धर्मकुलमें अनेक देवता, मन्त्र और विधि-विधानके कारण फलमें भी अनेकता होती है और उपासनामें एक इष्ट मन्त्र, पद्धति और निष्ठा होनेके कारण भाव-प्रधान, एकाग्रवृत्तिमें भागवतसुखका आविर्भाव होता है। अन्तःकरणके साक्षी स्वयंप्रकाश चेतनका देश, काल और द्रव्यके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वृत्तिके निरोधसे यही द्रष्टा आत्मा स्वरूपमें स्थित हो जाता है। तब यह देशकृत गमनागमन, कालकृत जन्म-मरण और द्रव्यकृत योनिपरिवर्तनसे मुक्त हो जाता है। उपाधिके असंग हो जानेके कारण उस समय यह द्रष्टा अपने स्वरूपमें अवस्थित होता है; परंतु समाधि टूट जानेपर इसका फिर वृत्तिसारूप्य हो जाता है, इसलिये वृत्तिके निरोधद्वारा इसका भी नियन्त्रण और जन्म-मरण आदि शक्य हो जाता है। परंतु वेदान्तोक्त ब्रह्मात्मैक्यज्ञान होनेपर देश-कालादिका बाध अर्थात् मिथ्यात्व-निश्चय हो जाता है, तब जन्म-मरणादिकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। जबतक वृत्तियोंसे सत्यता और उनके साथ तादात्म्य रहेगा, तबतक भेदकी सत्यता, ब्रह्मकी अनेकता और ईश्वरकी पृथक्ताको कोई मिटा नहीं सकता। इसलिये जन्म-मरणका प्रवाह बना ही रहेगा। बीजत्व भौतिक होनेसे अनादि होनेपर भी भौतिकाग्नि-नाश्य है; परंतु जीव चेतन होनेके कारण भौतिकाग्नि-नाश्य नहीं है। इसका वृत्तियोंके मूलभूत वासनात्मक संस्कारोंके साथ अविद्यामूलक तादात्म्य है, इसलिये ज्ञानाग्निके द्वारा अविद्याका दाह हुए बिना जीवका जीवत्व निवृत्त नहीं

हो सकता। जीव चेतन है, उसकी जीवनसत्ता अनादि और अनन्त है। वह देश, काल और द्रव्यकी कल्पनाको अपनी दृष्टिमें धारण करता है। देश, काल, द्रव्यकी भासमानता बाधित है और चेतनका स्वरूप सर्वथा अबाधित। अनुभवकी प्रणालीमें अपना नास्तित्व नहीं है। कोई भी यह अनुभव नहीं कर सकता कि मैं नहीं हूँ। इसलिये जीवका वास्तविक जीवन अनन्त और अद्वय है। वह अपनी कल्पनामें ही भासमान कालके साथ तादात्म्यापन्न होकर अपनेको नित्य, देशके साथ तादात्म्यापन्न होकर व्यापक और द्रव्यके साथ तादात्म्यापन्न होकर सर्वात्मक समझता है। वस्तुतः ये नित्यता, व्यापकता और सर्वात्मकता भी उसके यथार्थ स्वरूप नहीं हैं, कल्पित दृश्यमें तादात्म्यके कारण ही हैं। अधिष्ठान चेतन ही वस्तुतः जीवका यथार्थ स्वरूप है और उसमें द्वैतका किंचित् भी भेद नहीं है। बाधित भासमानताका कोई मूल्य नहीं है। वस्तुतः बीजत्व और जीवत्व आविद्यक हैं। बीजसत्ता और जीवसत्ता दोनों ही अखण्ड चिन्मात्र सत्तासे अभिन्न हैं।

अब फिर एक बार पहली बातपर लौट चलें। किसी भी एक वस्तुमें अनेकाकारताका कारण क्या है? विक्रिया अथवा क्रिया। विक्रिया प्राकृत अथवा स्वाभाविक है; परंतु क्रिया कर्ताके द्वारा अनुष्ठित है। क्रिया धर्म अथवा अधर्मसे अनुविद्ध होती है; क्योंकि उसके मूलमें प्राप्ति अथवा परिहारकी इच्छा रहती है। प्राप्तिकी इच्छा शोभनाध्यासमूलक है और परिहारकी इच्छा अशोभनाध्यास-मूलक है। इसी इच्छाकी दृढ़ता-अदृढ़तासे विहित-प्रतिषिद्ध क्रियाका आचरण होता है। अध्यास अज्ञानमूलक है। इसलिये जबतक अज्ञान रहेगा, तबतक अध्यास रहेगा और जबतक वह रहेगा, तबतक वासनाकी निवृत्ति न होनेके कारण जन्म-मृत्युका चक्र भी निवृत्त नहीं हो सकता। इस चक्रकी निवृत्तिके लिये वेदान्तज्ञानकी अपेक्षा है। यदि यह कालकी प्रधानतासे जन्म-मरण, देशकी प्रधानतासे गमनागमन, द्रव्यकी प्रधानतासे योनिपरिवर्तन, ईश्वरके द्वारा नियन्त्रित कर्मफल न होता और अज्ञानी जीव इस फलको भोगनेके लिये बाध्य न होता, तो तत्त्वमस्यादि महावाक्यजन्य ज्ञानकी आवश्यकता ही न होती और सम्पूर्ण वेदान्तका श्रवण, मनन, निदिध्यासन व्यर्थ हो जाता। ब्रह्मात्मैक्यज्ञानकी आवश्यकता ही इनकी निवृत्तिके लिये है।

श्रीगौडपादाचार्यजी महाराजने, जिन्हें श्रीशंकराचार्यने ब्रह्मसूत्रके शारीरक भाष्यमें 'सम्प्रदायविद्'के नामसे स्मरण किया है और श्रीसुरेश्वराचार्यने 'वेदान्तमर्मशवृद्ध'के रूपमें अपनी कृतियोंमें स्थान-स्थानपर समादृत किया है; कहा है—

> यावद्धेतुफलावेशः　संसारस्तावदायतः ।
> क्षीणे हेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते ॥

आत्माको ब्रह्म अर्थात् देश, काल, वस्तुपरिच्छेदसे रहित सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदशून्य न जानकर यह बात मानी जाती है कि मैं धर्म-अधर्मका कर्ता और उसके फल सुख-दुःखादिका भोक्ता हूँ, तब जन्म-मरणरूप संसारकी वृद्धि होती है। जब ब्रह्मात्मैक्यज्ञानसे अज्ञानमूलक कर्तृत्व, भोक्तृत्व, संसारित्व, परिच्छिन्नत्व आदि बाधित हो जाते हैं, तब जन्म-मरण, गमनागमन आदि अनर्थमय संसारकी निवृत्ति हो जाती है। इसलिये तत्त्वज्ञानके पूर्व पुनर्जन्म और परलोकको न मानना वेदान्तविद्यासे विमुख करनेवाला है और घोर अनर्थमें फँसानेवाला है।

यह बात सर्वथा वेदान्तसम्मत और युक्तियुक्त है कि जीवका जीवन अखण्ड चिन्मात्र सत्ता ही है। अज्ञानके कारण ही भेदभ्रम होता है। भेदमात्र ही प्रातिभासिक है। भेदवस्तु सत्य नहीं है। तत्त्वतः अपने स्वयंप्रकाश अधिष्ठानसे भिन्न भी नहीं है। अपना आत्मा ही यह अधिष्ठान है। अन्ततः हम आपके अनुसंधानके लिये एक वेदमन्त्र उपस्थित करते हैं—

> यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वान्
> 　　अपो भिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छन् ।
> उपाधिना क्रियते भिन्नरूपो
> 　　देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा ॥

पुनर्जन्मका मौलिक आधार

(लेखक—स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

मानव-मस्तिष्ककी जहाँतक पहुँच है उन सम्पूर्ण पदार्थों-का विभाजन दो प्रधान विभागोंमें हो सकता है । एक तो वे पदार्थ जो हमारे अनुभवके विषय हैं और दूसरा वह जो उन सबको जाननेवाला है । दार्शनिक भाषामें इन्होंको क्रमशः दृश्य और द्रष्टा अथवा जड और चेतन कहते हैं । इनमें सम्पूर्ण दृश्यवर्गका जो मूलकारण है, उसीको प्रकृति, प्रधान या माया कहते हैं । द्रष्टा कभी किसीका भी दृश्य या विषय नहीं होता, अतः इस समय उसके विषयमें कोई विचार नहीं करना है । किंतु इतना तो स्पष्ट है कि दृश्य सर्वदा परिवर्तित होता रहता है और द्रष्टा अपरिवर्तनशील है । प्रकृति या माया स्वभावसे ही परिवर्तनशील है । यदि सच पूछा जाय तो परिवर्तनके कारण ही उसकी प्रतीति होती है । अपने मूलरूपमें तो वह भी अव्यक्त और अचिन्त्य ही है । उसमें क्षोभ होनेपर जब वह व्यक्त रूपमें आती है, तभी उसकी प्रतीति होती है । उसका यह व्यक्त रूप ही प्रपञ्च है और यह निरन्तर परिवर्तनशील है ।

परिवर्तनमें स्थिति तो क्षणिक ही होती है । वास्तवमें तो उत्पत्ति और प्रलयके क्रमका नाम ही परिवर्तन है । यह क्रम स्थूल-सूक्ष्म तथा समष्टि-व्यष्टि सभी पदार्थोंमें पाया जाता है । जिस प्रकार हमारे स्थूलशरीरमें परिवर्तन होता है वैसे ही सूक्ष्मशरीरमें भी होता रहता है । इस दृष्टिसे यद्यपि सभी पदार्थ क्षणिक हैं, तथापि व्यवहारमें हमें उनमें स्थितिका भान भी होता है । किंतु यह भान है केवल प्रतीतिमात्र ही । वास्तवमें सहसा परिवर्तन ही हमें स्थिति जान पड़ता है । जैसे दीपशिखा और जलतरङ्ग प्रतिक्षण नयी-नयी होनेपर भी हमें स्थिर-सी जान पड़ती है, उसी प्रकार पदार्थ भी वास्तवमें क्षणपरिणामी होनेपर भी हमें स्थिर-से जान पड़ते हैं । सच पूछा जाय तो इस सहसा परिवर्तन का प्रतीयमान स्थितिका नाम ही 'पदार्थ' है, तात्त्विक दृष्टिसे तो केवल सतत परिवर्तन या गतिका ही भान होता है, पदार्थकी कोई सत्ता नहीं है ।

इस प्रकार क्षणिक या स्थायी जितने भी पदार्थ हैं, उन सभीका आरम्भ और अन्त होता है । आरम्भका नाम 'उत्पत्ति' है और अन्तका नाम 'नाश' है । अतः सभी पदार्थ उत्पत्ति-नाशशील हैं और यह उत्पत्ति-नाशका क्रम निरन्तर चलता रहता है । इस क्रमके द्वारा पदार्थका केवल परिवर्तन होता है, तात्त्विक नाश नहीं होता । जिस प्रकार घट फूटकर कपाल हो जाता है, कपाल टूटकर कपालिकाएँ हो जाती हैं, कपालिकाएँ पिसकर चूर्ण हो जाती हैं, चूर्ण खादके साथ मिलकर पेड़ और पौधोंका आहार हो जाता है और फिर उनके फल-फूलका रूप भी धारण कर लेता है, इसी प्रकार विश्वके सम्पूर्ण पदार्थ बिगड़-बिगड़कर नये-नये रूप धारण करते रहते हैं । ये रूपान्तर ही इन पदार्थोंके जन्मान्तर हैं । अतः संसारका प्रत्येक पदार्थ स्वभावसे ही *नये-नये जन्म धारण करता रहता है ।* उसका आत्यन्तिक उच्छेद कभी नहीं होता ।

यह तो हुई जड तत्त्वकी बात । अब हमें जीवके जन्मान्तरके विषयमें विचार करना है । ऊपर हमने जिन द्रष्टा और दृश्य दो तत्त्वोंका उल्लेख किया है उनमें परिवर्तन केवल दृश्यका ही स्वभाव है, द्रष्टामें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता । किंतु जीव एक ऐसा तत्त्व है, जिसे न केवल दृश्य कह सकते हैं और न द्रष्टा ही । परंतु यह इन दोनोंसे विलक्षण कोई तीसरा तत्त्व भी नहीं है । द्रष्टा सम्पूर्ण दृश्यका प्रकाशक है । उसका दृश्यके धर्मोंसे कभी कोई सम्बन्ध नहीं है, तथापि अविवेकवश उसमें उन धर्मोंके सम्बन्धकी भ्रान्ति होने लगी है । जिस प्रकार सिनेमाके पर्देपर प्रतीत होनेवाले दृश्योंसे यद्यपि उस पर्देका कोई सम्बन्ध नहीं होता, तथापि उसके बिना उनकी प्रतीति भी नहीं होती; इसलिये वह उनसे सम्बद्ध-सा जान पड़ता है । इसी प्रकार दृश्यका आधार होनेके कारण द्रष्टा दृश्यके धर्मोंसे उपरक्त-सा जान पड़ता है । इस अविवेकजनित उपरक्तिके कारण ही यह अपनेको स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरके धर्मोंसे सम्बद्ध ही नहीं, सम्पन्न समझने लगता है । इस देहाभिमानके कारण ही यह विशुद्ध द्रष्टा न रहकर कर्मोंका कर्ता तथा कर्मफलोंका भोक्ता बन जाता है और देहके सुख-दुःखके कारण अपनेको सुखी-दुःखी मानने लगता है । इसीसे उसकी संज्ञा 'जीव' हो जाती है । इस प्रकार शुद्ध साक्षी ही अविवेकवश कर्ता-भोक्ता और बन-

जाता है और शरीरके साथ अपना तादात्म्य मानने लगता है ।

परिवर्तनके क्रममें स्थूलशरीर तो यहीं सड़ जानेपर कृमि, किसीके द्वारा खा लिये जानेपर विष्ठा और जला दिया जानेपर भस्म हो जाता है । परंतु सूक्ष्मशरीर तो संस्कारोंका पुतला है । उसपर इस स्थूल जगत्के किसी घातक कारणका कोई प्रभाव नहीं होता । वह अपने संस्कारोंके अनुसार परिवर्तित होता है । जीवका उससे तादात्म्य है ही, अतः वह उसके परिवर्तनको अपना ही परिवर्तन या पुनर्जन्म मान बैठता है । इस प्रकार यद्यपि पुनर्जन्म सूक्ष्मशरीरका होता है, तथापि वह कहा जाता है जीवका ।

यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि पुनर्जन्म तो नवीन स्थूलशरीर धारण करना है, सूक्ष्मशरीरमें परिवर्तन होना तो पुनर्जन्म नहीं है । फिर ऐसा क्यों कहा गया ?

यह शङ्का ठीक है । परंतु सोचिये तो सही कि सूक्ष्मशरीर कहते किसे हैं ? अन्तःकरण, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राण—इनके समुच्चयका नाम सूक्ष्मशरीर है । इनमें अन्तःकरण और ज्ञानेन्द्रिय तो ज्ञानशक्ति हैं और कर्मेन्द्रिय तथा प्राण क्रियाशक्ति हैं । इस प्रकार ज्ञानशक्ति और *क्रियाशक्तिके समूहका नाम ही सूक्ष्मशरीर है । ये दोनों* शक्तियाँ निराधार नहीं रह सकतीं । किसी-न-किसी प्रकारका स्थूलशरीर स्वीकार करनेपर ही ये अपने व्यापारमें समर्थ हो सकती हैं । अतः अपने व्यापारके लिये सूक्ष्मशरीर सर्वदा किसी-न-किसी स्थूल आधारकी कल्पना कर लेता है । इसीसे शरीर-त्यागके समय भी पहले आतिवाहिक शरीरकी कल्पना करके पूर्वदेहको त्यागता है और उसीके द्वारा लोकान्तरोंमें जाकर अपने पाप-पुण्यके अनुसार दुःख-सुख भोगकर जन्मान्तर ग्रहण करता है ।

इसी संदर्भमें हम आधुनिक भौतिकवादियोंके एक प्रमुख सिद्धान्तकी समीक्षा भी कर लें । उनका मत है कि आत्मा या चेतन कोई स्वतन्त्र तत्त्व नहीं है । यह जड प्रकृतिका ही परिणाम है । अतः रोगादिके कारण जब स्थूलशरीर कार्यक्षम नहीं रहता तो उसकी चेतना नष्ट हो जाती है और फिर उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता । ये लोग प्रकृति या जड तत्त्वको ही एकमात्र परमार्थ तत्त्व मानते हैं । इन्हें 'जडाद्वैतवादी' कहा जा सकता है । इस प्रकार दार्शनिक दृष्टिकी चरम परिणति दो छोरोंपर ही होती है । एक ओर जडाद्वैत है और दूसरी ओर ब्रह्माद्वैत । एक पक्षकी दृष्टिमें केवल जड तत्त्वकी ही सत्ता है, चेतन उसका विकार है और दूसरे पक्षकी दृष्टिमें केवल चिन्मात्र परब्रह्मकी ही सत्ता है, जड उसमें अध्यस्त है । यदि प्रथम पक्ष स्वीकार किया जाय तो प्रश्न होता है कि जबतक चेतनका विकास नहीं हुआ था, तबतक जडकी सत्ता प्रकाशित किससे होती थी ? जड प्रकाश्य है, अतः किसी प्रकाशकके बिना उसकी सत्ता सिद्ध ही नहीं हो सकती । चेतन तो स्वयंप्रकाश है, उसकी सिद्धिके लिये किसी अन्य प्रकाशककी सत्ता अपेक्षित नहीं होती । उसमें बिना किसी अन्य साधन-सामग्रीके स्वतः ही प्रपञ्चकी प्रतीति हो जाती है—यह स्वप्न-प्रपञ्चके रूपमें हमें नित्य ही अनुभव होता रहता है । अतः जडाद्वैतवादियोंका विचार युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता । ये लोग जिस चेतनका विकास जड तत्त्वसे कहते हैं, वह तो अन्तःकरण तथा इन्द्रियवर्ग हैं । ये अवश्य जडके परिणाम हैं; परंतु ये कर्ता-भोक्ता जीव नहीं हैं । ये तो उसके कर्म और भोगके साधन हैं । ये कर्ता नहीं, करण हैं ।

जन्मान्तर स्वीकार करनेवालोंमें भी कुछ लोगोंका मत है कि मनुष्य दूसरे जन्ममें मनुष्य ही होता है । वह पशु-पक्षी या किसी अन्य योनिमें नहीं जा सकता; क्योंकि उसमें मानवोचित संस्कार बद्धमूल हो जाते हैं । परंतु शास्त्र और विचारदृष्टिसे यह बात भी युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती । जीवका स्वभाव है कि वह जिस परिस्थिति, अवस्था या शरीरमें होता है, उसीसे उसका तादात्म्य हो जाता है । जब आप विद्यालयमें अध्ययन करते हैं तब अपनेको विद्यार्थी मानते हैं । जब अध्ययन समाप्त करके पढ़ाना आरम्भ कर देते हैं तो अपनेको अध्यापक मानने लगते हैं । इस प्रकार परिस्थिति परिवर्तित होते ही आपकी अहंता बदल जाती है । जाग्रत् अवस्थामें अपनेको वयोवृद्ध अध्यापकके रूपमें देखते हैं और स्वप्नमें युवक विद्यार्थीके रूपमें देखते हैं तो उस अवस्थामें भी आपको कोई संदेह नहीं होता । अतः अवस्थाके परिवर्तनसे भी आपकी अहंता बदल जाती है । इसी प्रकार जब सम्बन्ध, पद, प्रान्त और धर्मके परिवर्तनसे भी आपकी अहंताका परिवर्तन होता देखा गया है तो मृत्युके द्वारा देहान्तरकी प्राप्ति होनेपर अहंताके परिवर्तनमें कोई बाधा कैसे आ सकती है ? अतः उपर्युक्त मतोंभागके आधारपर शास्त्रीय सिद्धान्तको स्वीकार न करना युक्तियुक्त नहीं है ।

इस प्रकार निश्चय हुआ कि जिस प्रकार प्रत्येक प्रतीयमान पदार्थ परिवर्तित होता रहता है, उसी प्रकार जीव भी अपने संस्कारोंके अनुसार नये-नये शरीर धारण करता रहता है। संसारमें ऐसा तो कोई पदार्थ नहीं है, जिसमें परिवर्तन न होता हो अथवा जिसका सर्वथा उच्छेद हो जाता हो। जो कुछ प्रतीत होता है, वह न तो शाश्वत है और न अलीक है। यद्यपि जीव वास्तवमें तो शुद्ध चिन्मात्र, एकरस और शाश्वत तत्त्व है; किंतु परिवर्तनशील शरीरसे तादात्म्य स्वीकार करके वह कर्ता, भोक्ता तथा जन्म-मरणशील जान पड़ता है, यही उसका बन्धन है। जबतक यह अविवेक बना हुआ है, तबतक जन्म-मरणके चक्रसे उसका छुटकारा नहीं हो सकता। जब तत्त्वज्ञानके द्वारा उसे अपने वास्तविक स्वरूपका बोध प्राप्त हो जाता है, तब तो संसारकी सत्ता ही नहीं रहती। यही उसकी मुक्ति है। फिर शरीर या शरीरके धर्मोंसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता और वह अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है। किंतु जबतक प्रतीतिकी सत्ता है, तबतक परिवर्तन भी अनिवार्य है और इस परिवर्तनकी ही एक संज्ञा जन्म-मरण भी है। यह जन्म-मरणकी परम्परा ही जन्मान्तर या पुनर्जन्म है। अतः परिवर्तनकी प्रतीति ही पुनर्जन्मका मौलिक आधार है।

पुनर्जन्म—अनुमान, अनुभव और शास्त्रसिद्ध

(लेखक—आचार्य श्रीविनोबा)

पुनर्जन्म होता है, इसके अनेक प्रमाण हैं। यानी मेरे लिये यह जन्म जितना सिद्ध है, उतना ही पहलेका और आगेका भी। इसमें किसी प्रकारके संदेहकी गुंजाइश नहीं।

सृष्टि—अनादि और अनन्त

मेरा निश्चित मानना है कि इस सृष्टिमें कहीं भी यह नहीं कह सकते कि यहाँ उसका अन्त और यहाँ आदि है। यह अनादि और अनन्त है। सृष्टिका स्वरूप ही यह है। आसमानमें कितने तारे हैं, इसकी अब भी गिनती हो रही है। परार्धका आँकड़ा तो खतम हो होगा। 'रेडियो एस्ट्रानामी' बता रही है कि वहाँसे यहाँ प्रकाश पहुँचनेमें दस लाख वर्ष लगते हैं। इसकी अन्तिम हद कहाँ है, कह नहीं सकते। हिंदुस्तानकी हद तो कश्मीरतक है, लेकिन दुनियाकी हद कहाँ समाप्त होती है, उसकी सीमा कहाँतक है, उसके 'बाउंड्री' के बाद क्या है, मालूम नहीं। यदि उसका अन्त हो, तो उसके बाद वहाँ क्या कोई ठोस चीज है? तरल (लिक्विड) है या गैस, वह है? कुछ है—यदि गैस या तरल है या कोई ठोस चीज है, तो दुनियाका वह अन्त नहीं। यानी कुछ अस्तित्व है। गैस हो तो भी अस्तित्व है। सारांश, दुनिया कहीं समाप्त नहीं है। दुनियाका अन्त है ही नहीं।

हमारा स्वरूप भी अनादि-अनन्त

सत्तर साल हुए मेरा जन्म। ७० सालसे पहले नहीं था। ८० सालमें मर गया। तो मरनेके बाद उसका स्वरूप कुछ नहीं है और जन्मसे पहले भी कुछ नहीं था, यह हो नहीं सकता। जीवका इस सृष्टिमें कब प्रवेश हुआ, मालूम नहीं। वह कबतक इस सृष्टिमें रहेगा, यह भी मालूम नहीं। यदि हम यह मानें कि हम पहले नहीं थे और मरनेके बाद नहीं रहेंगे, तो कई समस्याएँ खड़ी होंगी। लेकिन इन समस्याओंका उत्तर मिलेगा, यदि हम यह जान जायँ कि हमारा स्वरूप अनादि-अनन्त है।

कर्म-विपाक—प्रबल प्रमाण

यदि हम यह मानें कि हमारा स्वरूप अनादि-अनन्त नहीं, तो फिर कर्म-विपाक भी कुण्ठित हो जायगा। हमें जन्म मिला तो बचपनसे ही हमारे किये कर्मोंका फल होने लगा। हमने सुहृद् माता-पिताके पेटमें जन्म पाया। और जीने लगे, कुछ दुःख हुआ तो कुछ सुख। लेकिन यदि हम पहले नहीं थे तो सुख-दुःखके लिये जिम्मेवार भी नहीं होंगे। तब सुख या दुःखकी जिम्मेवारी हमपर नहीं आयेगी। यदि हमने आज बुरा काम किया तो दुःख हो, यह ठीक है। लेकिन 'हमने पहले जन्ममें कुछ किया होगा, इसलिये अब दुःख भुगत रहे हैं' ऐसा हम मानते हैं तो वह बात 'पहले नहीं थे और मरनेके बाद भी कुछ नहीं रहेंगे', इससे मेल नहीं खाती। सारांश, 'पहले और आगे' यदि नहीं मानते तो कर्म और कर्मफलका नियम टूट जाता है। यह दूसरा प्रमाण है।

स्वात्मानुभव—तीसरा प्रमाण

तीसरा प्रमाण है साक्षात् स्वानुभव। जैसे-जैसे कार्य-कारण-परम्परा खुलती जाती है, वैसे-वैसे चित्त निर्मल होता जाता है। पुरानी चीजें याद आती हैं। यदि हम प्रयत्न करें तो कुछ चीजें और याद आ सकती हैं। कुछ लोग ऐसे मिलते हैं, जो अपने पुराने जन्मकी बातें कहते हैं। बुद्धि जितनी संस्कारोंसे मुक्त रहेगी, साफ रहेगी, उतना वह पुराने जन्मका स्मरण कर सकेगी। ब्यौरेमें नहीं, लेकिन कुछ धुँधला या मोटा-मोटा स्मरण हो ही सकता है। पुराने जमानेमें जो विशेष काम या प्रयोग किया होगा, वह याद आ सकता है। कहते हैं कि ज्ञानदेवने लिखा है कि 'मैं पुराने जमानेमें राजा था।' डाक्टर एनी बेसेन्टने भी अपनी कुछ कहानियाँ लिख रखी हैं। गौतमबुद्धके बारेमें भी ऐसी ही कहानियाँ कही जाती हैं।

बचपनमें मैं अपनी माँके पास था। पूनाकी बात है। माँ मुझे कहीं ले जानेवाली थी। मैं तीन-चार सालका बच्चा था। जहाँ वह मुझे ले जानेवाली थी, उस स्थानका, उस घरका वर्णन मैंने किया कि 'वहाँ ऐसा आँगन होगा, ऐसा कुँआ होगा' आदि। ठीक वैसा ही घर निकला। सम्भव है, यह 'काकतालीय' न्याय हो। उससे पूर्वजन्म होता ही है, ऐसा नहीं। शायद माँने मुझसे कहा हो—'तुम्हारा इस घरके साथ पूर्वजन्ममें सम्बन्ध रहा होगा। इसीलिये यह एक-एक बात ध्यानमें रह गयी।'

दूसरा, मुझे यह भास होता है कि 'पूर्व-जन्ममें मैं बंगाली था।' कारण, घुमक्कड़ हूँ ही, घूमते-घूमते बंगाल पहुँच गया तो देखा, जितना समय और श्रम दूसरी भाषाएँ सीखनेमें लगा, उससे बहुत आसानीसे बंगला मैंने सीख ली। यह मेरा अंदाज ही है।

तीसरा अनुमान यह कि मुझे बचपनमें कई प्रकारके आकर्षण नहीं हुए। बड़ौदामें कई आकर्षक चीजें थीं, लेकिन मुझपर उनका कोई परिणाम नहीं हुआ। एक बार मेरे मित्र बहुत आग्रह कर मुझे सिनेमा ले गये। मैं अपने साथ दरी लेता गया। वहाँ चादर लंबी तानकर सो गया। इस परसे लगता है कि पूर्वजन्ममें मैं इन बुराइयोंका अनुभव ले चुका हूँ, इसलिये मुझे इनका आकर्षण ही नहीं होता।

हाँ, शतरंजका खेल मुझे अच्छा लगता था, तो खेलता था। एक बार सपनेमें शतरंज देखा, तो लगा कि यह खेल ही मुझपर हावी हो रहा है। दूसरे दिनसे मैंने शतरंजका खेल बंद कर दिया। वह मैंने खुद तोड़ा। इसलिये वह समझता हूँ कि वह मेरी इस जन्मकी कमाई है। लेकिन बाकी चीजोंका मुझे आकर्षण नहीं हुआ। वह मेरी इस जन्मकी कमाई नहीं है। यदि इच्छा होती और उसे मैं रोकता तो वह इस जन्मकी कमाई मानी जाती। इसलिये पुनर्जन्मपर विश्वास होता है। अनुमान, अनुभव और शास्त्रवचनसे यह निश्चित है कि पुनर्जन्म है। ब्यौरेमें जायँगे तो मतभेद हो सकता है।

इस्लाम भी सहमत

मुहम्मदसे कहा गया था कि 'गैब' यानी 'अज्ञात' की बात बताओ। उसने कहा 'अगर मैं जानता तो सारी सृष्टिपर मेरी सत्ता चलती। मृत्युके बाद जीवन कायम रहता है। वह नया शरीर धारण नहीं करता, लेकिन सूक्ष्म लिङ्गदेहमें पड़ा रहता है। नया शरीर, स्थूलशरीर धारण करता है या नहीं, स्पष्ट नहीं कह सकते। इसलिये कब्रि-स्तानमें पड़े रहते हैं।' इस तरह मुसलमान लोग भी मानते हैं कि मृत्युके बाद जीवन है। सवाल यही है कि वह सूक्ष्म रूपमें है या स्थूल रूपमें?

एक दफा एक मुसलमान भाईसे चर्चा चल रही थी। मैंने उनसे कहा कि 'एक लड़का पैदा होता है और दो मिनटोंमें ही मर जाता है, तो क्या आखिरी दिन न्याय करते समय अल्ला उसके दो मिनटोंके पाप-पुण्यको देखकर न्याय करेगा? एक जीव अनन्त कालतक अव्यक्त रहता है। फिर दो मिनटोंके लिये व्यक्त हो जाता है और अनन्त काल-तक अव्यक्त रहता है, यह बात तर्कसंगत नहीं मालूम होती।'

मैंने सुना है कि आजकल कुछ ईसाई भी पुनर्जन्म मानने लगे हैं। इसलिये हम यह नहीं कह सकते कि जबतक विज्ञानके जरिये पुनर्जन्मका सिद्धान्त यथार्थ सिद्ध नहीं होता तबतक उसे स्वीकार नहीं करना चाहिये।

पुनर्जन्मके बिना जीवन नीरस

हम यदि पुनर्जन्मको नहीं मानेंगे तो जीवनमें कोई स्वाद ही नहीं रहेगा। मान लें, इस जन्ममें कोई गौण मुझे

काटता है और मैं मर जाता हूँ तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि मैंने आजतक जो सारा ज्ञान प्राप्त किया, वह बेकार गया? साँप-जैसे बुद्धिशून्य और क्षुद्र प्राणीके काटनेसे मेरा सारा ज्ञान एक क्षणमें नष्ट हो सके तो फिर मेरी सारी ज्ञान-लालसा ही खतम हो जायगी। लेकिन मुझे और भी ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा होती है; क्योंकि मैं पुनर्जन्ममें विश्वास करता हूँ। मैंने देखा है कि कइयोंको सिगरेट-बीड़ी पीनेकी इच्छा होती है। कई बड़े-बड़े लोगोंको उसमें आनन्द महसूस होता है। लेकिन मुझे कभी ऐसा नहीं लगा कि जरा इन चीजोंका मजा चख लूँ! मेरा मन कभी उस ओर मुड़ता ही नहीं। इसका कारण यह हो सकता है कि अपने पूर्वजन्मोंमें इन सबकी व्यर्थता मुझे महसूस हो गयी हो। यह सारा सम्भव है।

इससे स्पष्ट है कि हर कोई अपने पुराने जन्मके अनुभवोंकी पूँजी लेकर नया जन्म लेता है। जबतक विज्ञान इसे साबित नहीं करता, तबतक उसे नहीं मानेंगे, यह ठीक नहीं। विज्ञानको तो बिल्कुल पूरा प्रमाण (फुल प्रूफ) चाहिये। 'फुल' कहो या 'फूल', सयानोंके लिये तो थोड़ा-सा भी प्रमाण (प्रूफ) काफी है। लेकिन वैज्ञानिकों और सामान्य जनोंके लिये तो बिल्कुल 'फूल प्रूफ' चाहिये।

परलोक और पुनर्जन्म

(लेखक—जगद्गुरु अनन्तश्रीरामानुजाचार्य पुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी महाराज, पंढरपुर)

इस अल्पकाय निबन्धमें परलोक और पुनर्जन्मके विषयमें वेदके आधारसे किंचित् चर्चाका चित्रण किया गया है। 'परलोक' शब्दमें 'पर' और 'लोक' दो शब्द हैं। इनमें 'लोक' शब्द 'लोकस्तु भुवने जने' कोशके आधारसे भुवन और जन—इन दोनों अर्थोंका बोधक है। अर्थात् वेद 'लोक' और 'लोक-निवासी' दोनों अर्थोंमें 'लोक' शब्दका प्रयोग करता है। यहाँपर 'पर' शब्दका अर्थ अन्य है। दोनोंके अर्थोंको मिलानेसे 'परलोक' शब्दका अर्थ लोकान्तरमें अन्य लोक और अन्य योनि, दोनों विवक्षित हैं। अर्थात् 'परलोक' शब्दसे 'दूसरा लोक' और 'दूसरी योनि' दोनों विवक्षित हैं।

अनेक लोक

वेदोंमें अनेक लोकोंका निर्देश है। उनके मतमें आत्मा एक लोक है। पृथिवी और द्युलोक—ये दो लोक हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष और दिव्यलोक (द्युलोक)—ये तीन लोक हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यु और अप्—ये चार लोक हैं। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्—ये सात ऊर्ध्व लोक हैं। अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल—ये सात अधोभुवन हैं।

तीन लोक

इन सब लोकोंका देवलोक, पितृलोक और जीवलोक—इन तीन लोकोंमें समावेश हो जाता है। इनमें स्वः देवलोक है। यम पितृलोक है। मनुष्यलोक जीवलोक है। इसकी व्याप्ति पृथिवीसे लेकर चन्द्रमण्डलतक है। बृहदारण्यकमें विधान है कि 'इस लोकका जय पुत्रके द्वारा, पितृलोकका जय इष्टापूर्तद्वारा तथा देवलोकका जय विद्या-सहकृत कर्मके द्वारा है। परमात्माकी प्राप्ति विद्याके द्वारा होती है।' अथवा विद्योत्तर कर्मसे भी भगवत्प्राप्ति होती है।

देवलोक

कौषीतकी शाखामें अग्निलोक, वायुलोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक, प्रजापतिलोक और ब्रह्मलोक—ये देवयान या देवलोक हैं। देव स्वर्ग है अर्थात् प्रकाशमय लोक है।

वाजसनेयि शाखामें अग्निलोक, वायुलोक, आदित्यलोक, चन्द्रलोक और अशोकमहिमलोक—ये पाँच लोक देवलोक माने गये हैं। अन्य मतोंमें अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, चन्द्र, प्रजापति और ब्रह्म—ये सात देवलोक माने गये हैं। देवलोक, देवस्वर्गलोक और स्वर्गलोक—इनका अर्थ समान है। अर्थात् इन सब शब्दोंका अर्थ एक ही है।

नामान्तर

वेदोंमें अग्निलोक, वायुलोक और आदित्यलोक आदिके नामान्तर भी मिलते हैं। इनमें अग्निलोकका नाम '[illegible]' है। वायुलोकको 'ऋतधामा' कहते हैं। इन्द्रलोकका नाम 'अपराजित' है। सूर्यलोकका नाम 'नाक' है। वेदोंमें दो प्रकारके नाकलोकोंका निर्देश है। एक सूर्यलोकरूप नाक लोक है, दूसरा प्रजापतिरूप नाक लोक है। प्रजापतिरूप

नाक-लोक देवयानमार्गका अन्तिम-लोक है। इसके ऊपर 'ब्रह्मपथ' है। वरुणलोक 'अचिपी' है। मृत्युलोक 'प्रद्यौ' है। ब्रह्मलोकका नाम 'रोचन' है। श्रुति-तित्तिरीने प्रजापतिलोकको 'वियात' भी कहा है। यही नाक-लोक है। 'ताण्ड्य महाब्राह्मण'में उपलब्ध 'नाक' शब्दके अनुसार प्रजापति किसीके भी लिये 'अक' (दुःख) नहीं है; अतः यह 'नाक' है अर्थात् नाक-शब्दका अर्थ 'प्रजापति' है।

पितृलोक

उदन्वती, पीलुमती और प्रद्यौ भेदसे पितृलोक तीन प्रकारके हैं। इनमें नीचेका द्युलोक 'उदन्वती' है, यह जल-प्राय है, अतः उदन्वती है। मध्यम द्युलोक 'पीलुमती' है। पीलु नाम वृक्षविशेषका है। उसकी अटवीके कारण वह पीलुमती है; वह वृक्ष और जल आदि सब सूक्ष्म प्राणमय ही हैं। तृतीय पितृ-लोकको प्रद्यौ कहते हैं। वहाँकी भूमि ज्योतिष्मती होनेके कारण 'प्रद्यौ' है। इनमें प्राणरूप पितर निवास करते हैं। ये पितर सांख्यदर्शनमें भौतिक सर्गमें परिगणित प्राणी पितरोंकी अपेक्षा भिन्न हैं। पितृ-स्वर्गोंको 'सौम्यस्वर्ग' भी कहते हैं। देवस्वर्ग आग्नेय है।

यमलोक

सत्त्वगुणमें तमोगुणके अल्प और अधिक मात्राओंके सम्मिश्रणके कारण सत्त्वगुणके सात भेद हो जाते हैं। ये ही सत्त्वके सात भेद सात प्रकारके देवस्वर्ग हैं। तमोगुणमें भी सत्त्वगुणके अल्प और अधिक मात्राओंके सम्भेदके कारण तमोगुण भी सात प्रकारका हो जाता है। ये ही सात नरक हैं। वेदान्तदर्शनमें 'अपि च' सप्तसूत्रमें इनका ही निर्देश है। इनके नामोंका निर्देश शास्त्रोंमें इस प्रकार हुआ है—

१-रौरव, २-महारौरव, ३-कुम्भीपाक, ४-कालसूत्र, ५-तापन, ६-अवीचि और ७-संघात।

इनमें भी प्रत्येकके चार-चार भेद हो जाते हैं। अतः अट्ठाईस प्रकारके नरक हैं। ये भी प्रत्येक तीन-तीन शाखाओंमें विभक्त हैं, अतः सब मिलाकर चौरासी प्रकारके नरक हो जाते हैं। पुराणोंमें प्रसिद्ध चौरासी नरक ये ही हैं। सात प्रकारके देवस्वर्ग, तीन प्रकारके पितृस्वर्ग और सात प्रकारके नरकोंमें जीवात्माकी गति कर्मोंसे होती है।

जीवलोक

सांख्यदर्शनमें १४ प्रकारका भौतिक सर्ग सीमांकित है। इनमें ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र्य, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस और पैशाच भेदसे आठ प्रकारका दैव सर्ग है। यह सत्त्वविशाल है। मानुष सर्गको अवधि मानकर इसको ऊर्ध्व सर्ग भी कहते हैं। एक प्रकारका मानुष सर्ग है। यह मध्यम है। रजोविशाल है। स्थावर, स्तम्ब, कीट, पशु और पक्षी भेदसे पाँच प्रकारका तिर्यक् सर्ग है। यह तमोविशाल है। प्रकृतिमें तमोगुणको मूल माना गया है। अतः मूल सर्गके नामसे भी यह प्रसिद्ध है। ये चौदह प्रकारकी योनियाँ ही जीवलोक हैं। इन सर्गोंका वर्णन सांख्यदर्शनकी इन दो कारिकाओंमें भगवान् कृष्णने इस प्रकार किया है—

> अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्यौनश्च पञ्चधा भवति ।
> *मानुषकश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः ॥*
> ऊर्ध्वं सत्त्वविशालः ।
> तमोविशालश्च मूलतः सर्गः ।
> मध्ये रजोविशालः ।
> ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तः ।

ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त जो चौदह प्रकारकी योनियाँ हैं, उनको चतुर्दश लोक भी कहते हैं। इनमें सात देवस्वर्गों, तीन पितृस्वर्गों और सात प्रकारके नरकोंमें यह जीवात्मा विचरता है। इसका एक लोकसे दूसरे लोकमें जाना और तदनु गुण-शरीरका ग्रहण करना ही पुनर्जन्म है। केवल सांख्यदर्शनके आधारसे सत्त्वविशाल, रजोविशाल और तमोविशाल सर्गोंका निर्देश ऊपर किया गया है। वेदके सहयोगसे इनका वर्णन इस प्रकार होगा। सांख्य और वैशेषिक दर्शनोंके परम वैदिक होनेसे वेदके सहयोगसे इन सर्गोंका विश्लेषण एवं तदनुकूल इन कारिकाओंका अर्थ परम विशुद्ध होगा।

सत्त्वविशाल सर्ग

१-ब्रह्मा, २-प्रजापति, ३-इन्द्र, ४-पितर, ५-गन्धर्व, ६-यक्ष, ७-राक्षस, ८-पैशाच, ९-मनुष्य, १०-पशु, ११-पक्षी, १२-कृमि और १३-कीट।

यह सर्ग सत्त्वविशाल है। चेतन है।

रजोविशाल सर्ग

१-स्तम्ब, २-गुल्म, ३-काष्ठ, ४-वल्ली, ५-तृण, ६-उलुप, ७-क्षुपक और ८-वृक्ष आदि।

समस्थ है। मृगशिरासे दक्षिण नागवीथीसे उत्तरमें आकाशका ४२वाँ अंश देवयान मार्ग है। इसके ऊर्ध्वमें ब्रह्मपथ है। आजकल प्रचलित ज्योतिषकी परिभाषामें पितृपथको 'मकरवृत्त पथ' और देवपथको 'कर्क मार्ग' कह सकते हैं।

कर्कवृत्त और विषुवद्वृत्तसे मकरवृत्तके दक्षिणमें होनेसे यह मार्ग 'दक्षिणायन' मार्ग कहलाता है।

छन्द

'तैत्तिरीय संहिता'में छन्दोंको भी पितृयाण और देवयान मार्ग माना है। वाक्-छन्द और प्राण-छन्द भेदसे छन्द दो प्रकारके हैं। इनमें वाक्-छन्द पितृयाण मार्ग है। प्राण-छन्द देवयान मार्ग है।

देव

'मैत्रायणी संहिता'में देवोंको भी पितृयाण और देवयान मार्ग माना है। इनमें अग्नि देवयान मार्ग है। सोम पितृयाण मार्ग है।

अतिवाहिकगण

तत्तत् मार्गोंसे गतिके सहकारियोंको 'अतिवाहिक' कहते हैं। ये जीवात्माका तत्तल्लोकोंमें अतिवहन करते हैं; अतः अतिवाहिक हैं।

पितृयाणके अतिवाहिक

धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायनके छः मास, सौम्य संवत्सर (पितृलोक), आकाश और चन्द्र—ये पितृयाणके अतिवाहिक हैं। ये जीवात्माको तीन प्रकारके पितृलोकों तथा सात प्रकारके नरकोंमें पहुँचाते हैं।

देवयानके अतिवाहिक

अर्चि, अहः, शुक्लपक्ष, उत्तरायणके छः मास, सौर संवत्सर (देवलोक) पर्यन्त अग्निलोक है। उसके अनन्तर वायुलोक है, तदनन्तर आदित्यलोक है, तदनन्तर चन्द्रलोक है, तदनन्तर वैद्युतलोक है और तदनन्तर ब्रह्मलोक है। यहाँ-तक देवपथ है। इसके अनन्तर ब्रह्मपथ है। ब्रह्मपथमें संचार करनेके अनन्तर जीवात्माका पुनर्जन्म नहीं होता है; परंतु देवलोकों, पितृलोकों और नरकोंसे जीवात्माका अवरोहण होता है।

अवरोहण

जीवात्माका देवलोकों, पितृलोकों और नरकोंसे भोगके अनन्तर पुनरपि भूमि (मानुषलोक) में आना 'अवरोहण' है। इस अवरोहणके ये अतिवाहिक हैं—चन्द्रमा, आकाश, वायु, धूम, अभ्र, मेघ, वृष्टि, पृथिवी, अन्न, रेत, पुरुष और स्त्री—इनके द्वारा जल पुरुषरूपमें परिणत हो जाते हैं—ये जल जीवमय रहते हैं।

दंश-मशक-ओषधि-वनस्पति आदि अनस्थि जीवोंकी कर्मगति नहीं होती है। अतः ये 'अगति' हैं। सुगति अथवा दुर्गति—इन दोनोंमेंसे एक भी गति इनकी नहीं होती है। गतिकी विशद विवेचना अनुपदमें ही होगी।

गतिभेद

देहत्यागके अनन्तर लोकान्तरमें जाना ही गति है। भिन्न-भिन्न लोकोंमें भिन्न-भिन्न देहोंको धारण करना ही 'पुनर्जन्म' है। आत्माकी सब मिलाकर दस प्रकारकी गतियाँ होती हैं। उनके नामोंका निर्देश उपनिषदोंमें इस प्रकार है—

१–संसारगति, २–अतिमुक्ति, ३–अतिमृत्यु, ४–पशुत्व, ५–ब्राह्मी गति, ६–दैवी गति, ७–पैत्री गति, ८–नारकी गति, ९–अगति और १०–समप्रलय।

इन दस गतियोंमेंसे कोई-न-कोई गति भूतात्माकी अवश्य होती है। तीनों लोकोंमेंसे किसी-न-किसी लोकमें वह अवश्य रहता है।

दो गतियाँ

इन सब गतियोंका संसारगति और साम्परायगतिका दो गतियोंमें ही अन्तर्भाव है।

संसारगति

इनमें शास्त्रोक्त भूतसर्गोंमें—[illegible] चौदह योनियाँ हैं। इनके भेद ही ८४ लाख योनियाँ हैं। इनमें यह जीवात्मा जन्मकर और मरकर एक योनिसे दूसरी योनिमें भ्रमण करता रहता है। यही योनि-चक्रमें मनुष्यलोकमें जीवात्माकी 'संसारगति' है। इस मनुष्यलोककी सीमा पृथिवीसे लेकर चान्द्र मण्डलतक है। जिन-जिन कर्मोंके द्वारा जिन-जिन योनियोंमें जिस-जिस प्रकार इस भूतात्माको संसारगति मिलती है, उस संसारगतिकी कर्मगतिका मनु[illegible] इसमें आपको विशद वर्णन [illegible] इस संसार[illegible] आत्माकी जितनी गतियाँ [illegible] है।

साम्परायिक गतियाँ

साम्परायिक सब गतियोंका भी नित्यगति और कालगति भेदसे दो भागोंमें विभाजन है। इनमें नित्यगति भी दो प्रकारकी है—'भूतगति' और 'कालगति'। इन दोनोंका उपनिषदोंमें क्रमशः 'अतिमुक्ति' और 'अतिमृत्यु' अभिधान है। इनमें अतिमुक्तिकी व्याख्या इस प्रकार है—

अतिमुक्ति

प्रत्येक प्राणी पाँच भूतों और पाँच देवताओं (प्राणों) की समष्टि है। इनमें पाँच भूतोंसे शरीरका निर्माण हुआ है, पाँच देवताओंसे आत्माका निर्माण हुआ है। इस आत्मा और शरीरका जबतक परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, तबतक ही जीवन है। इन दोनोंमें प्रतिदिन नित्यगति हुआ करती है, जिसके कारण शरीरसे पञ्चभूत आत्माके देवताओंसे पृथक् होकर निकलते रहते हैं। निकले हुए पञ्चभूत पृथिवीके पाँच भूतोंमें सम्मिलित होते रहते हैं। इस प्रकार शारीरिक धातुओंका देवताओंसे सम्बन्ध छूटकर भूतोंके स्वरूपमें आ जाना 'अतिमुक्ति' है।

अतिमृत्यु

अतिमृत्युकी व्याख्या भी उपनिषदोंमें इस प्रकारसे उपलब्ध है। जैसे शारीरिक धातुओंका देवताओंसे सम्बन्ध छूटकर भूतोंमें आ जाना अतिमुक्ति है, वैसे ही शारीरिक देवताओं (वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन) का मृत्युरूप भूतोंके बन्धनसे छूटकर आकाशके पाँच देवताओंके रूपमें परिणत हो जाना 'अतिमृत्यु' है। भूतोंके सदृश ये देवता भी प्रतिक्षण शारीरिक पाँच भूतोंसे पृथक् होकर निकलते ही रहते हैं; अतः ये दोनों गतियाँ नित्यगति हैं।

कालगति

जैसे साम्पराय गतिके नित्यगति और कालगति दो भेद हैं, वैसे ही कालगतिमें भी भूतगति और प्राणगति रूप दो भेद हैं। इनमें भूतगति पञ्चत्वगति है। पञ्चभूतोंसे बने हुए इस शरीर और पञ्चप्राणोंसे बने हुए आत्मा—इन दोनोंका परस्पर जो भूतात्माके द्वारा सम्बन्ध है, उसके शिथिल होनेपर जब विच्छिन्न होकर दोनों पृथक्-पृथक् हो जाते हैं, तब उस शरीरके पाँचों भूत पृथिवीके पाँचों भूतोंमें लीन हो जाते हैं। यही 'पञ्चत्व गति' है। इसको 'देहान्त' भी कहते हैं।

प्राणगति

प्राणगतिको उपनिषदोंने 'उत्क्रान्ति' कहा है। इसमें कर्मात्मा पृथिवीको छोड़कर ऊपर देवलोक अथवा पितृलोकमें उत्क्रमण करता है, अतः यह उत्क्रान्ति है। इसके चार भेद हैं—ब्रह्मगति, दैवी गति, पैत्री गति और नारकी गति। इनका वर्णन विस्तृतरूपमें ऊपर आ गया है। आत्मा नित्य है। कहीं-न-कहीं परिभ्रमण करना इसका स्वभाव है, ऊर्ध्वलोकोंमें जाना ही इसकी उत्क्रान्ति है। आत्माके स्वरूप तथा उसके नित्यत्वका विवेचन अनुपदमें ही होगा।

अगति

कई आत्माओंकी ऊर्ध्व अथवा अधः—दोनों गतियाँ नहीं होती हैं। इसका कारण विद्याका अतिशय और कर्मका प्राबल्य है। क्षीणविद्य आत्मा यहीं—जिनमें अस्थि नहीं होती, ऐसे दंश, मशक, यूका, लिक्षा और मत्कुण आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं। जिनमें विद्याका अत्यन्त अभाव हो गया है, उन जीवात्माओंका जन्म ओषधि, यव, व्रीहि, चणक आदिमें होता है। इन दो प्रकारके जीवात्माओंकी अगति होती है। अर्थात् वे 'जायस्व' और 'म्रियस्व'के अनुसार जनमते-मरते रहते हैं। अतः यह 'अगतिरूपा' गति है।

समवलय गति

विद्या और कर्म आत्माके नित्य धर्म हैं। ये दोनों आत्मामें तारतम्यसे रहते हैं। ये दोनों ही आत्माकी गतिके कारण होते हैं। कभी कर्मोत्तर विद्या रहती है, तो कभी विद्योत्तर कर्म रहता है। अर्थात् कभी आत्मामें विद्याकी वृद्धि और कर्मकी क्षीणता रहती है, तो कभी कर्मकी वृद्धि और विद्याकी क्षीणता रह जाती है और कभी केवल विद्या ही रह जाती है। कभी केवल कर्म ही रह जाते हैं, विद्या निःशेष विलुप्त हो जाती है। केवल कर्मावस्था और केवल विद्यावस्था—इन दोनोंमें उत्क्रान्ति अथवा गति नहीं होती है। जब केवल विद्या ही रह जाती है और कर्म विलुप्त हो जाते हैं, तब उस व्यापक आत्माको परिच्छिन्नकर सीमाबद्ध करनेवाले कर्मोंके नष्ट हो जानेपर आत्मा स्व-स्वरूपमें व्यापक हो जाता है, अर्थात् उसके प्राणोंकी उत्क्रान्ति न होकर यहीं ही वे प्राण नष्ट हो जाते हैं। इसमें बृहदारण्यक उपनिषद् (४।४।६) में उपलब्ध—'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैव समवलीयन्ते।

संश होनेसे 'अर्धचेतन जीव' हैं। इनको ही 'माण्डूक्य-उपनिषद्'में 'तैजस जीवात्मा' कहा गया है। वैश्वानर जीवोंमें केवल अर्थशक्तिका ही विकास है, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति उनमें मूर्छित हैं; परन्तु तैजस जीवोंमें क्रिया-शक्तिका भी विकास है; परंतु अल्पमात्रामें। अतः ये जीव 'अर्धचेतन' हैं। इनमें केवल त्वक्-इन्द्रियका ही विशेष विकास है। इतर इन्द्रियोंका कार्य केवल त्वक्-इन्द्रियके सहयोगसे अन्तःमें विद्यमान आत्मा ही करता रहता है, अतः 'अन्तःसंज्ञक' हैं।

पशु, पक्षि, कृमि और मानवोंमें सब-सब इन्द्रियोंका विकास है। अतः ये 'चेतन जीव' हैं। 'माण्डूक्योपनिषद्'में इनको 'प्राज्ञ जीव' कहा गया है। इनमें अर्थ और क्रियाशक्तिके साथ-साथ प्रज्ञा (मन) शक्तिका भी विशेष विकास है। अतः ये प्राज्ञ जीव हैं। प्रज्ञा ही चेतना है, अतः ये चेतन हैं।

पाप-पुण्यका संश्लेष और आवागमन

इनमें पूर्वजन्मानुभूति, आवागमन, पाप-पुण्य आदिका विपर्यय—ये सब भाव उन जीवोंके साथ ही युक्त रहते हैं, जिनमें आत्माकी अभिव्यक्ति अधिक है। जिन जीवोंमें आत्माकी अभिव्यक्ति नहीं रहती है, उनको पाप-पुण्य नहीं लगते हैं। उनका कर्मनिबन्धन आवागमन भी नहीं होता है। केवल उनकी योनिगति ही होती रहती है। यही मनुष्य और पशु-पक्षी आदि जीवोंमें भेद है।

पाँच पुनर्जन्म

जीवात्माके अनन्तानन्त पुनर्जन्मोंका अन्तर्भाव पाँच पुनर्जन्मोंमें हो जाता है। उनके नामों और स्वरूपोंका निर्देश इस प्रकार है—

१–शुक्रमें जन्म।
२–शोणितमें जन्म।
३–भूमिमें जन्म।
४–संस्कारोंसे जन्म।
५–परलोकमें जन्म।

कर्मात्माकी अन्नके द्वारा शुक्रमें प्रतिष्ठा प्रथम जन्म है। शुक्रके द्वारा शोणित (रज) में प्रतिष्ठा द्वितीय जन्म है। गर्भाशयसे भूमिमें प्रतिष्ठा तृतीय जन्म है। संस्कारोंसे दिव्य-भावमें प्रतिष्ठा चतुर्थ जन्म है। अग्निके द्वारा परलोकमें प्रतिष्ठा पञ्चम जन्म है।

तीन जन्म

'ऐतरेय ब्राह्मण'में भगवान् ऐतरेयने इन सब जन्मोंका अन्तर्भाव तीन जन्मोंमें ही मान लिया है। उनके मतमें शोणितमें जन्म प्रथम जन्म है। शुक्र-जन्मका इसीमें अन्त-र्भाव है। नौ मासके अनन्तर गर्भाशयसे भूमिष्ठ होना द्वितीय जन्म है। अग्निके द्वारा परलोकमें प्रतिष्ठा तृतीय जन्म है।

संस्कारोंके द्वारा जायमान जन्मका तृतीय जन्ममें ही अन्तर्भाव है। कारण कि पाँच जन्मोंमें प्रथम शुक्र-जन्म द्वितीय जन्मका साधन है। संस्कार-जन्म भी पञ्चम (परलोक) जन्मका साधन है; अतः तीन ही जन्म हैं।

परमागतिकी प्राप्ति आवश्यकतम

कोई माने अथवा न माने, जाने अथवा न जाने—संसार, परलोक, नित्य आत्मा, कर्मतत्त्व और कर्मोंके द्वारा गतियाँ एवं तत्तत् लोकमें जीवात्माका निवास अवश्य है। किसीके न मानने मात्रसे कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता। अतः मनुष्यके लिये सतत जागरूक रहकर विहित कर्मोंके आचरण, निषिद्ध कर्मोंके त्याग, इन्द्रियनिग्रह और निष्कामभावसे ईश्वर-उपासनाके द्वारा परमागति (मुक्ति) को प्राप्त करना परम आवश्यक है। इसके अभावमें देवत्वर्गोंको प्राप्त करना भी उत्तम है, पितृस्वर्गोंकी प्राप्ति मध्यम है। दुर्गति (नारकी गति) प्राप्त करना अधम है। केवल योनि-गतिमें परिभ्रमण करना पशु-पक्षियोंके सदृश ही है। मानवके लिये यह गति अनुचित है। मानवकी विशेषता परमागति प्राप्त करनेमें ही है।

मानव-जीवनका लक्ष्य—भगवत्प्राप्ति

(लेखक—आचार्य श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

मानव-जीवनकी उपादेयता

इस विषय-विषसे परिपूरित, सुख-दुःख, राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि द्वन्द्वोंसे दूषित अति भयानक, जन्म-मरणरूपी गम्भीर संसारसागरमें कर्मवश निमग्न प्राणियोंको भवसागरसे उद्धार करनेके हेतु परम दयालु श्रद्धेय जगत्पिता परमात्मा भगवान् श्रीवासुदेवजीने मानुष-कलेवररूपी नौका निर्मित करके ही संतोष व्यक्त किया है—

‘कामो मे पौरुषी प्रिया’ (भा० रा०)

प्रभुने जितने चतुष्पदादि शरीर रचे हैं, उनमेंसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका साधक मनुष्य-देह ही सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि चौरासी लाख योनियोंमें भटकता हुआ जीव कदाचित् पूर्वजन्ममें संचित पुण्योंके प्रतापसे भगवत्कृपाद्वारा मनुष्य-जन्म पाता है और यही मनुष्य-योनि शुभ-अशुभ कर्मोंद्वारा स्वर्ग-नरक एवं अपवर्ग देनेवाली है। इतना ही नहीं, अपि तु निष्काम कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे चित्त-शुद्धिद्वारा भगवत्प्रेमरूपा भक्तिके अङ्कुरित होनेपर भगवत्साक्षात्कार करानेवाली है। अतः इस दुर्लभ मानुषी गतिको पाकर ही मनुष्य भगवत्प्राप्तिके साधनोंको भलीभाँति कर पाता है; इसीलिये मनुष्य-जन्म भगवत्प्रिय है। पर मनुष्य यदि प्रेमसे भगवान्‌का सेवन करे तो भगवत्प्रिय होता है, अन्यथा नहीं। ‘ऐसी श्रीमन्मुकुन्द-सेवोपयोगी देह पाकर भी जो भगवच्चरणोंका सेवन नहीं करता, उसे तृणके लोभी पशुके समान गृहरूपी अन्धकूपमें पड़ा हुआ जानो’—

> लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं
> कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ।
> पादारविन्दं न भजत्यसन्मति-
> र्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः॥
> (श्रीमद्भागवत १०।५१।४७)

भगवत्साक्षात्कारमें मानव-देहका महत्त्व

अमोलक रत्न पाकर यदि उसको मिट्टीमें गाड़ दिया जाय तो कुछ शोभा नहीं देता है। यदि उसीको किसी आभूषणमें जड़ दिया जाय तो वह सुशोभित होता है। इसी प्रकार इस मनुष्यशरीरको क्षुद्र कर्मोंमें लगानेमें कुछ शोभा नहीं। यदि भगवत्सेवनमें लगा दिया जाय तो शोभाकी सीमा नहीं। भगवान् ऋषभदेवजीने अपने पुत्रोंसे कहा है—

> नायं देहो देहभाजां नृलोके
> कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।
> तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
> शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्॥
> (श्रीमद्भागवत ५।५।१)

अर्थात् यह देह क्षुद्र कर्मोंके लिये नहीं है, किंतु तपद्वारा अन्तःकरणकी शुद्धिसे अनन्त ब्रह्मसुख अनुभव करनेके लिये है। विषय-सुख तो कूकर-सूकर, गर्दभादि योनियोंमें भी उपलब्ध हो सकते हैं।

यह मानवीय शरीर परमेश्वरकी देन है कि जिससे नित्यनिरतिशय आनन्दका अनुभव होता है तथा जो भगवान्से भेट करनेके लिये उपयुक्त है। जैसे कि पूर्वकालमें बहुत-से भक्तोंको भगवान्‌के साक्षात् दर्शन हुए हैं। ऐसी सोपानभूत मानव-योनिको पाकर जो प्राणी अपना कल्याण नहीं कर पाता, उससे बढ़कर महापापी एवं आत्मघाती कौन हो सकता है!

> योनेः सहस्राणि बहूनि गत्वा
> दुःखेन लभ्यन्ति हि मानुषत्वम्।
> सुखावहं ये न भजन्ति विष्णुं
> ते वै मनुष्यात्मनि घातुकाः॥
> सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
> यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः॥
> (पुराणे)

यद्यपि यह मानुष-कलेवर सुदुर्लभ है, तथापि क्षण-भङ्गुर है। इसका विनाश कभी भी हो सकता है। अतः अचिरात् इससे नित्य वस्तुको प्राप्त करना ही परम लाभ है। मनुष्य-शरीर वह साधन है कि जिसकी सहायता लेकर मनुष्य अपने इष्टका साक्षात्कार कर सकता है।

मनुष्य-देह कर्मयोनि है और मनुष्यलोक कर्म-क्षेत्र है। शेष देवयोनि, पशु-तिर्यग्योनियाँ भोगयोनि हैं। भोगयोनिमें देव, पशु आदि पुण्य-पापका फल भोगते हैं। अहं-ममाभिमानयुक्त कर्मोंसे ही जीव पुनर्जन्म पाता है। जन्म-मरण देहके धर्म, भूख-प्यास प्राणके धर्म और सुख-दुःख मनके धर्म हैं, आत्माके नहीं; क्योंकि आत्मा गुणातीत है। वह अहंकारसे ही बन्धन पाता है और साहंकार किये हुए पुण्य-पापोंद्वारा ही स्वर्गीय-नारकीय योनियोंको प्राप्त होता है।

स्वर्गीय एवं नारकीय कलेवरसे भागवत-धर्मका सम्पादन असम्भव है। श्रीमन्मुकुन्द भगवान्की सेवाके उपयोगी मानवशरीरसे ही तथा श्रवण-कीर्तनादि भागवत-धर्मोंके सेवनसे ही भगवद्दर्शन सम्भव है। ऐसे शरीरको पाकर सर्वहितैषी परमोपकारी हरिसे विमुख होना ही जन्म-मृत्युरूपी संसारका कारण है। अतः जबतक शरीर हृष्ट-पुष्ट है और इन्द्रियाँ भी अपने-अपने व्यापारोंमें समर्थ हैं, तबतक भागवत-धर्मके सेवनमें प्रयत्न करे।

इन्हीं बातोंको ध्यानमें रखकर भक्तप्रवर महात्मा प्रह्लादजीने असुर-बालकोंको सम्बोधित करके कहा था कि 'कुमार-अवस्थासे ही भगवद्-भजन करना चाहिये; क्योंकि मानव-जीवन चिरस्थायी नहीं है'—

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥
(श्रीमद्भा० ७।६।१)

अहं-मम अभिमानसे युक्त मनसे किये हुए कर्मोंसे ही वासनाश्रयी जीव पुनर्जन्म पाता है और अन्तकालमें जैसी मति वैसी ही गति होती है—

'अन्ते या मतिः सा गतिः।'

जैसे कि भरत राजाने मरते समय मृगशावकपर आसक्त होनेसे मृगशरीरको पाया तथा आखेट-रत राजकुमारपर आसक्त हुए मुनिको ध्रुव राजकुमारका जन्म मिला। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। अतः मन ही पुनर्जन्मका कारण है—

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।'

जन्मान्तर-निरोधके उपाय

इस जन्म-मरण-परम्पराके निवारणके लिये मनःराज देवर्षि नारदमुनिने हरिभजनका ही उपदेश दिया है—

'अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम्।'
(श्रीमद्भागवत ४।२९।७९)

'अतः कर्मबन्धनसे छूटनेके लिये सर्वात्मना हरिका भजन करो।'

भगवान्ने भी गीताजीमें अर्जुनसे कहा है—

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥'
(९।३३)

'इस अनित्य और सुखरहित लोकको पाकर मुझको भजो।'

इन वाक्योंसे सिद्ध है कि 'सभी अनर्थोंको दूर कर परम पुरुषार्थ देनेवाली भगवद्भक्ति ही सर्वोपरि उपादेय उपाय है'—

'अनर्थोपशमं साक्षाद् भक्तियोगमधोक्षजे।'
(श्रीमद्भागवत १।७।६)

वह भक्ति भी भगवद्भक्तोंके समागमरूपी मेघोंकी वर्षासे अङ्कुरित होकर फलती-फूलती है और कुसङ्गरूपी घामसे शुष्कताको प्राप्त हो जाती है।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥
(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड ६१)

इस कर्मभूमिमें मनुष्य कर्मयोनिवश विविध कर्मोंकी रचना कर कर्मशृङ्खलासे बँध जाता है। फिर उससे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। यदि किये हुए कर्म भगवान्के चरणकमलोंमें समर्पित कर दिये जायँ तो उनकी कर्मसंज्ञा समाप्त होकर भागवत-धर्म-संज्ञा हो जाती है। वे भागवत-धर्म बन्धनकारक न होकर मुक्तिदायक हो जाते हैं और उनका फल भगवत्प्रेममें परिवर्तित हो जाता है।

परम दयालु भगवान्ने जीवोंके दुःखोंको दूर करनेके लिये उन्हें सब कर्म अपने समर्पण करनेकी आज्ञा देकर शुभाशुभ कर्मोंसे मुक्त करनेका वचन दिया है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ९।२७-२८)

भगवान्‌का अनन्य चिन्तन करनेपर भगवान् उसके योगक्षेमका भार स्वयं वहन करते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ९ । २२)

भगवत्स्मरणके अभ्याससे चित्तके स्वभावपर विजय होती है । स्मरणाभ्यासी पुरुषको अन्त-कालमें स्वतः ही भगवत्स्मरण हो जाता है ।

भगवान्‌की स्मृति सारी विपत्तियोंका नाश कर देती है—

'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ।'
(श्रीमद्भागवत ८ । १० । ५५)

सम्पत्तिमें या विपत्तिमें हरिका स्मरण करनेसे ही आध्यात्मिकादि तापत्रयोंसे छुटकारा मिल जाता है । भगवान्‌को भूल जाना ही पुनर्जन्मका कारण है । भगवद्वन्दन, भगवच्चरणोदकपानादि अनेक साधनोंसे पुनर्जन्म नहीं प्राप्त होता ।

'कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ।'
'विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥'
'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥'

इत्यादि वाक्योंसे भगवद्भक्तिद्वारा प्राप्त भगवद्धाम प्राप्त हुए प्राणियोंकी संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होती, यह सिद्ध है ।

'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।'

—इस गीता-वाक्यने भी इसकी सम्पुष्टि कर दी है । अतः अनित्य सुखोंसे मनको हटाकर उसे नित्य निरतिशय सुखस्वरूप श्रीगोपालजीके चरण-कमलोंमें लगानेके लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे ।
सुनु मन कहौं पुकारि तोसौं हौं, भजु गोपालहिं मेरे ॥
या संसार विषय-विष-सागर रहत सदा सब घेरे ।
सूर स्याम बिनु अंतकाल में कोउ न आवत नेरे ॥

जीवन्मुक्ति, विदेहमुक्ति, कैवल्य और पूर्णत्व

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्० ए०, डी० लिट्)

(१)

जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति

मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य यदि देहावस्थामें ही उपलब्ध होता है और वह उपलब्धि यदि आभासमात्र नहीं होती तो उस अवस्थाको 'जीवन्मुक्ति' कहा जाता है। विदेह-मुक्ति देहपातके बाद प्राप्त हो सकती है, किंतु जीवन्मुक्ति इस देहमें अवस्थान करते समय ही किसी भाग्यवान्‌के भाग्यमें पड़ती है। प्रचलित ज्ञानमार्गकी दृष्टिके अनुसार सात ज्ञानभूमियोंमें पञ्चम, षष्ठ और सप्तम—ये तीन जीवन्मुक्तिकी भूमि कहलाती हैं। पञ्चम भूमिके ज्ञानीको 'ब्रह्मविद्' कहते हैं, षष्ठ भूमिके ज्ञानीका नाम 'ब्रह्मविद्वरीयान्' तथा सप्तम भूमिके ज्ञानीका नाम 'ब्रह्मविद्वरिष्ठ' है। इन ज्ञानियोंमें परस्पर भेद है। चतुर्थ भूमिमें अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानका उदय होता है, परंतु अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान होते ही जीवन्मुक्ति हो ही जायगी, यह निश्चय नहीं है। अपरोक्ष ज्ञान सत्त्वमें ब्रह्मसाक्षात्कार होता है। परंतु साक्षात्कार होनेपर भी जबतक बुद्धि और देहके क्षेत्रमें उसका प्रभाव नहीं पड़ता, तबतक जीवन्मुक्ति सम्भव नहीं होती। बुद्धि-क्षेत्रमें इस ज्ञानका प्रभाव पड़नेके लिये 'चित्तशुद्धि' आवश्यक है तथा भौतिक देहके क्षेत्रमें इस ज्ञानके प्रतिबिम्बित होनेके लिये 'भूतशुद्धि' और 'देहशुद्धि' आवश्यक हैं। भूतशुद्धि और देहशुद्धि हुए बिना देहावस्थामें और मनोमय स्थितिमें ब्रह्मज्ञानका अपरोक्ष अनुभवात्मक विकास नहीं होता। जो साक्षात्कार चतुर्थ भूमिमें होता है वह स्वरूपसिद्ध ब्रह्मज्ञान है। जबतक वह प्रतिफलित नहीं होता, तबतक जीवन्मुक्ति अवस्थाका उदय कैसे होगा? आकाशमें सूर्यका उदय होनेपर भी जबतक बादल आदि हट नहीं जाते, तबतक हम स्पष्ट रूपमें सूर्यको नहीं देख सकते। इसी प्रकार जीवन्मुक्त अवस्थामें देहमय और मनोमय अनुभवमें ब्रह्मानुभव प्रस्फुटित होना चाहिये। इसके लिये देह और मनकी शुद्धि आवश्यक है। योगमार्गोंकी साधनामें साधारणतः दो मार्गोंका अनुसरण किया जाता है—एक है उत्थान-मार्ग और दूसरा है विकास-मार्ग। उत्थान-मार्गमें उत्थानके द्वारा भूतशुद्धि और चित्तशुद्धि सम्पन्न होनेपर

अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानके उदयके साथ-साथ ही चतुर्थ भूमिसे पञ्चम भूमिमें प्रवेश होता है, अर्थात् अपरोक्ष ज्ञानके उदयके साथ-साथ जीवन्मुक्तिका आविर्भाव होता है। जीवन्मुक्तिके आविर्भावके बाद वह क्रमशः दृढ़ता प्राप्त करता है और पञ्चमसे षष्ठ और सप्तमतक प्रगति होती है। वेदान्तकी दृष्टिमें अपरोक्ष ज्ञानके साथ-साथ जीव और जगत्‌की सत्ता बाधित हो जाती है, परंतु बाधित होनेपर भी वह अनुवृत्त रहती है तथा इसी कारण व्यवहार चलता है; किंतु जगत्‌के स्वरूप-बोधमें क्रमशः तारतम्य हो जाता है। पञ्चम भूमिमें जगत् स्वप्नवत् जान पड़ता है। अज्ञानी जैसे जगत्‌को सत्य-रूपमें अनुभव करता है, यहाँ वह भाव नहीं रहता। परंतु न रहनेपर भी व्यवहार चल सकता है। षष्ठ भूमिमें यह अत्यन्त प्रगाढ़ हो जाता है, जगत् आभासमात्र रह जाता है। इस क्षेत्रमें ज्ञान और भी तीव्र होता है। सप्तम भूमिमें जगत् एक प्रकारसे अनुभवमें ही नहीं आता। उस समय व्यवहार अत्यन्त असम्भव होता है। उसके बाद ही देहान्त होता है। तब ब्रह्मके साथ तादात्म्य प्राप्त होता है। पञ्चम और षष्ठ भूमिको तुरीय अवस्था कह सकते हैं। सप्तम भूमिको तुरीयातीत कहना सुसङ्गत है। पञ्चम और षष्ठ भूमिमें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति विद्यमान रहते हैं। परंतु वे तुरीयद्वारा अनुविद्ध होते हैं। सप्तम भूमिमें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिको पृथक् रूपमें पकड़ना कठिन होता है। इसी कारण उसका तुरीयातीत कहकर वर्णन किया जाता है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिके रहते तुरीय कहनेमें कोई सार्थकता नहीं। अब प्रश्न यह होता है कि चतुर्थ भूमिमें ब्रह्म-साक्षात्कार अपरोक्ष रूपमें होनेपर भी जीवन्मुक्ति अवश्यम्भावी क्यों नहीं होती? इस सम्बन्धमें यही कहना है कि अपरोक्ष रूपमें ब्रह्मदर्शन होते ही जीवन्मुक्ति हो ही जायगी, यह नहीं कहा जा सकता। प्रकृत विदेहमुक्ति तभी हो जाती है। मृत्युके बाद जो विदेहमुक्ति होती है, वह कैवल्यका ही दूसरा नाम है। चतुर्थके बाद जो विदेहमुक्ति होती है, यह अपरोक्ष ज्ञानके साथ-साथ ही होती है; परंतु देहाभिमान बने रहनेके कारण देहाभिमानी पुरुष उसे पकड़ नहीं पाता। इस कारण देहाभिमान रहनेकी दशामें अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानकी सत्ताका होना आवश्यक है। इसी कारण तान्त्रिक आचार्य कहते हैं कि सद्गुरुकी कृपासे पौरुष अज्ञानके निवृत्त होनेपर अपरोक्ष आत्मसाक्षात्कार होता है; किंतु बुद्धि निर्मल हुए बिना यह अपरोक्ष ज्ञानका प्रतिभास बुद्धिमें आरूढ़ नहीं होता। बुद्धिमें आरूढ़ न होनेतक जीवन्मुक्ति कैसे हो सकेगी? इसके लिये उपासना, योग, तपस्या आदिकी आवश्यकता है। उपासना आदिके द्वारा बुद्धि निर्मल होनेपर गुरुकृपासे प्राप्त अपरोक्ष ज्ञान उसमें झलकता है। तब 'शिवोऽहम्' के रूपमें अपनेको अनुभव कर सकते हैं। यहाँसे ही जीवन्मुक्तिका आरम्भ होता है। प्रारब्ध कर्मके अन्तमें देहान्त होनेपर पौरुष ज्ञानका आविर्भाव होता है और साक्षात् शिवत्वकी प्राप्ति होती है।

जीवन्मुक्त अवस्थामें केवल प्रारब्ध कर्म रहता है। वह प्रारब्ध जब भोगके द्वारा समाप्त हो जाता है, तब कर्मके *अतीत परामुक्तिकी प्राप्ति होती है। परंतु इससे यह नहीं* समझना चाहिये कि नरदेहसे मुक्त होनेके साथ-साथ ही पूर्णत्वमें प्रतिष्ठा हो जाती है। यदि किसीके ऊर्ध्वलोकमें भोगके लिये उपयोगी कर्म अवशिष्ट रहते हैं तो मृत्युके बाद ऊर्ध्वलोकमें जाकर भोगके द्वारा उन अवशिष्ट कर्मोंका क्षय करना पड़ता है। इन सब लोगोंके नरलोकमें पुनः आनेकी सम्भावना नहीं होती। परंतु नरदेहका त्याग करनेके साथ-साथ ही पूर्णत्वमें प्रवेश हो जायगा, यह कहा नहीं जा सकता; क्योंकि अभुक्त अथ च भोग्य भोगको समाप्त करनेपर ही पराशान्ति प्राप्त होती है।

ऊर्ध्वसंसारमें सभी प्रभुभाव लेकर जीवन्मुक्त होंगे, यह कहा नहीं जाता। प्रकृतिके अनुसार कोई-कोई दास्यभावमें भी रह सकते हैं। जो भक्तिप्रधान हैं, उनको दास्यभाव और जो ज्ञानप्रधान हैं, उनको प्रभुभाव प्राप्त होता है। परंतु *गुरुप्रदत्त दीक्षाकी प्रकृतिके ऊपर यह विचित्रता निर्भर करती* है। इस कारण दास्य और प्रभुभावके अतिरिक्त प्रकृतिके अनुसार कोई-कोई महाज्योतिमें भी प्रविष्ट हो सकते हैं। ये सब भोगके अन्तर्गत हैं। भोगके समाप्त होनेपर ही मोक्ष होता है।

हमने जो जीवन्मुक्तकी अवस्थाकी बात कही है, यह एक दृष्टिकोण है। आगमकी दृष्टिसे जीवन्मुक्तिका अनुभव ठीक इस प्रकार नहीं होता। इस दृष्टिके अनुसार जीवन्मुक्त अवस्थामें समस्त विश्वको अपने विभवके रूपमें अनुभव किया जाता है। यह आत्मशक्तिका स्फुरण है। जीवन्मुक्त अवस्थामें आत्मा शिवरूपमें प्रकाशित होता है; क्योंकि विश्व शिव-शक्तिका प्रकाशरूप है तथा जीवन्मुक्त पुरुष शिवस्वरूप है, इसलिये यह विश्व उसके सामने अपनी शक्तिके खेलके रूपमें अनुभूत होता है। यह मिथ्या नहीं है और अनिर्वचनीय

कृपासे जो महामायासे उद्भूत 'बैन्दव देह' प्राप्त होता है, वह बैन्दव देह ही सिद्धदेह है। भौतिक-देहके कालग्रस्त हो जानेपर भी बैन्दव देह कालपर विजय प्राप्त करता है। किसी-किसी मतसे सिद्धदेह प्राप्त हो जानेके बाद, अर्थात् मृत्युञ्जयके बाद 'प्रणवदेह' प्राप्त करना ही 'परामुक्ति' है। सिद्धदेह जीवन्मुक्तका होता है। सिद्धदेह कालके अधीन नहीं होता; परंतु सिद्धदेहके ऊपर भी देह है—वही 'प्रणव-देह' है। इस दृष्टिसे जीवन्मुक्तके प्रारब्ध कर्म रहनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

जीवन्मुक्तिके सम्बन्धमें प्राचीन कालमें मनीषीगणने विभिन्न दृष्टिकोणसे विचार किया था। वैष्णवमतसे जीवन्मुक्तिको स्वीकार ही नहीं किया जाता। किसी-किसी सिद्धके मतसे विदेहमुक्तिको माना ही नहीं जाता। साधारणतः जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति दोनों ही अनेक सम्प्रदायोंके द्वारा स्वीकृत है। बौद्ध अर्थात् प्राचीन बौद्ध लोग 'अर्हत' शब्दके द्वारा इसी जीवन्मुक्तिका ही अस्तित्व स्वीकार करते हैं। कोई-कोई इसको 'सदेह निर्वाण' भी कहा करते हैं। इस विषयमें और अधिक कहना यहाँ आवश्यक नहीं है।

(२)

कैवल्यके विभिन्न अर्थ

'कैवल्य' शब्दका अर्थ यह है कि आत्मा अनात्माके संसर्गसे मुक्त होकर केवल अपने-आपमें अवस्थित हो जाय। सांख्य तथा पातञ्जल योगदर्शनमें 'कैवल्य' शब्दका प्रयोग हुआ है। पाशुपत योगीगण 'महैश्वर्य'के प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें 'कैवल्य' शब्दकी व्याख्या करते हैं। श्रीरामानुजादि भक्ति-सम्प्रदायवाले 'भगवत्कैङ्कर्य' आदिके प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें कैवल्य शब्दकी व्याख्या करते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य स्थलोंमें भी समझना चाहिये। सांख्य और पातञ्जलके मतसे कैवल्य शब्दका अर्थ यह है कि आत्मा त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे अपनेको पृथक् करके अपने चित्-स्वरूपमें प्रवेश करता है। कैवल्य प्राप्तिका उपाय विवेकज्ञान है। पातञ्जल-सिद्धान्त यह है कि आत्मा एकाग्रभूमिका आश्रय कर प्रज्ञा लाभ करके, प्रज्ञाकी चरम अवस्थामें अविवेकको दूर करनेके लिये अचिदात्मक सत्त्वगुणसे चिदात्मक पुरुषको क्रमशः पृथक् करके अपने स्वरूपमें स्थित होता है। सम्प्रज्ञात समाधिकी अवस्थामें प्रज्ञाका उदय होता है तथा क्रम-विकास होता है। इस क्रम-विकासके फलमें समाधिका आलम्बन क्रमशः स्थूलसे सूक्ष्ममें, अवयवीसे अवयवमें स्थित होता है। पश्चात् ग्राह्य विषयसे अतिक्रान्त होनेपर वितर्क और विचारभूमिसे पार होकर ग्रहणात्मक करणको अवलम्बन करके आनन्दसमाधिमें स्थित होता है। इसके बाद ग्रहण-भूमिसे अर्थात् करणभूमिसे ग्रहीतृभूमिमें प्रवेश होता है। इसका नाम 'अस्मिता-समाधि' है। इस समाधिमें ग्राह्य, ग्रहण और ग्रहीता—तीनों ही आपच हो जाते हैं; परंतु उस समय भी विशुद्ध आत्मसाक्षात्कार नहीं होता। विशुद्ध आत्मा ग्रहीता नहीं है। अतएव अस्मिता प्रज्ञाभूमिमें उपलब्ध ज्ञान ऐश्वर्य-व्यञ्जक होनेपर भी विशुद्ध आत्मज्ञान नहीं होता; क्योंकि अनात्मसे आत्मभावको पृथक् किये बिना विशुद्ध आत्मसत्ताका साक्षात्कार नहीं होता। इसी कारण आत्मसाक्षात्कारके लिये योगक्रिया आवश्यक है। पूर्ण 'विवेकख्याति' हुए बिना यह सम्भव नहीं है। विवेक-ख्यातिके फलस्वरूप पुरुषका स्वरूपदर्शन होता है। तब उस चिदालोकमें अपरिणामी पुरुष और परिणामी गुण देखनेमें आते हैं। तभी 'गुणवितृष्णा' रूप 'परवैराग्य'का उदय होता है। उसके बाद विवेक पूर्ण होनेपर आत्मा अनात्मसे पृथक् अपने चित्स्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है। वस्तुतः अस्मिता-समाधिके बाद एकाग्रभूमिसे अतीत निरुद्ध-भावका आविर्भाव होता है। उसके बाद निरोध भी नहीं रहता। एकाग्रताके बाद निरोध चित्तका ही प्रगतिरूप है। उसके बाद निरोधका संस्कार मात्र रह जाता है तथा उसके साथ ही चित्त निवृत्त हो जाता है। निरोधके बाद निरोधका भी निरोध हो जानेपर कह सकते हैं कि चित्स्वरूप पुरुषकी अपने स्वरूपमें स्थिति हो गयी। यही 'कैवल्य' है। सांख्यके मतसे या पातञ्जलके मतसे पुरुष त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे पृथक् होकर अपने स्वरूपमें स्थित होता है। पुरुष द्रष्टा और अपरिणामी है, प्रकृति परिणामशीला है।

इस कैवल्यके अनेक प्रकार हैं। उनमें तीन प्रकारके कैवल्यका विवरण मिलता है। इसका कारण अचित्की तीन अवस्थाएँ हैं। प्रत्येक अवस्थासे मुक्त होकर पुरुषको कैवल्य प्राप्त करना पड़ता है। इसी कारण कैवल्य तीन प्रकारका होता है। अचित्की स्थूलतम अवस्था त्रिगुणात्मिका प्रकृति है। अचित्की मध्यावस्था माया है। यह निर्गुण है।

अन्तरङ्ग है और न बहिरङ्ग—बल्कि उसे दोनों अङ्गोंका अङ्गी कह सकते हैं। यहाँतक धारणा कर लेनेपर ब्रह्मके निगूढ़ स्वरूपके सम्बन्धमें स्पष्ट बोध हो सकता है।

इसके बाद कला, तत्त्व और भुवनरूपमें तीन क्रमिक अवस्थाएँ ब्रह्मके साथ संश्लिष्ट हैं। इसके पश्चात् विश्वकी सृष्टिका आदिस्फुरण महासृष्टिके रूपमें प्रकाशमान होता है। उसके बाद खण्ड-खण्ड पृथक् सृष्टि होती है और उसमें खण्ड कालका प्रभाव होता है। इसी प्रकार स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण आदिको लेकर समस्त विश्वकी तथा विश्वातीत निष्कल ब्रह्मकी सत्ता है। इन सबको लेकर ही परिपूर्ण ब्रह्म-सत्ता समझनी चाहिये। इसीका नाम 'पूर्णत्व' है। आगममें इसका 'परम शिव' अथवा 'परासंवित्'के नामसे वर्णन किया गया है। प्रत्येक आत्माकी प्रकृत—वास्तविक सत्ता यही है। इस स्थितिमें प्रतिष्ठित हुए बिना यह नहीं कहा जा सकता कि 'पूर्णत्व'की प्राप्ति हो गयी। इस अवस्थाकी प्राप्ति परमेश्वरके शक्तिपात या सद्गुरुकी कृपाके बिना असम्भव है। विवेकज्ञानके द्वारा एक अवस्था प्राप्त होती है। उसका 'कैवल्य'के नामसे वर्णन करते हैं। इस स्थितिमें अचित्से चित् व्यावृत्त होकर निज स्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है। योगके द्वारा एक और अवस्था प्राप्त होती है, उसे 'प्रकृत ऐश्वर्य'के नामसे वर्णन कर सकते हैं। विवेकके द्वारा प्रकृति और पुरुष पृथक् हो जाते हैं तथा पुरुष अपनेको प्रकृतिसे पृथक् समझता है। योगके द्वारा प्रकृति और पुरुष एक हो जाते हैं। यही अवस्था ईश्वरका स्वरूप है। एक मार्गसे कैवल्य और दूसरे मार्गसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है, यही नियम है। विवेकके मार्गमें प्रकृतिको क्रमशः त्याग करना पड़ता है; परंतु योगके मार्गमें प्रकृतिको अपना बनाना पड़ता है। यह अपना बना लेना तभी सम्भव है, जब प्राकृत शरीरसे अर्थात् भूत और चित्तसे मलिनता दूर हो जाय। सङ्ग और स्मय, अर्थात् आसक्ति और अहंकारके रूपमें यह मलिनता अस्मिता-समाधिके बाद भी वर्तमान रहती है। इसको दूर किये बिना प्रकृतिको अपना बना लेना सम्भव नहीं है। योगके मार्गसे ऐश्वर्य ही चरम प्राप्ति है। इसीका नाम 'इच्छाशक्तिका पूर्णत्व' है। इसके बाद इच्छाशक्तिको भी समर्पण करना पड़ता है। तब 'महा-इच्छा' जागरूक रहती है। अपनी कोई इच्छा पृथक्रूपमें नहीं रह जाती। यह इच्छा शून्य अवस्था नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत इच्छाके महा-इच्छामें समर्पित होनेकी अवस्था है। इस अवस्थामें बहिर्मुख दशामें महाकरुणा रहती है, इस कारण विश्वकल्याण सम्भव होता है तथा अन्तर्मुख दशामें अपने ही साथ अपनी अनन्त वैचित्र्यमयी प्रेमलीलाका अभिनय होता रहता है। ये अभिनय नित्य हैं। कैवल्य भी नित्य है, लीला भी नित्य है। दोनोंके ऊर्ध्वमें निष्कल पूर्णस्वरूप विराजमान रहता है।

आगमके पूर्णत्वसे इस अनन्त सत्तामें सत्तावान् होना तथा अनन्त लीलाका अभिनय करना अभिप्रेत है। केवल अभिनय करना ही नहीं, बल्कि अभिनय देखना भी। सो भी, केवल तटस्थरूपमें नहीं, सामाजिकके समान भावरञ्जित दृष्टिसे। इसके अतिरिक्त अभिनयके ऊर्ध्वमें लीलातीत सच्चिदानन्द तो हैं ही। लीलातीतमें अखण्ड आनन्द है और लीलामें भीतर अनन्त लीलाका अनन्त वैचित्र्य है। पूर्णत्व कहनेसे इन सबका बोध होता है। यह एक साथ विश्व और विश्वातीत है। पृथक् आस्वाद भी है, अखण्ड आस्वाद भी है और साथ-साथ आस्वादनके ऊर्ध्वमें तदग्र प्रकाशन तो है ही।

प्रभुका दिव्य मधुर अनुराग प्राप्त करो

प्राकृत जगत्, प्रकृति, मायाके खोलो, छिन्न करो सब बन्ध।
अनुभव करो नित्य केवल परमात्मासे अभिन्न सम्बन्ध॥
पुनर्जन्म-परलोकगमन, सद्गति-दुर्गतिका कर दो त्याग।
प्राप्त करो सच्चिदानन्दमय प्रभुका दिव्य मधुर अनुराग॥

अन्तरात्मा सीधे अन्तरात्माके लोकमें भी जा सकती है, किंतु यह निर्भर करता है शरीर छोड़नेके समयकी उसकी चेतनापर। यदि उस समय चैत्य पुरुष सामने हो तो तत्काल संक्रमण बिलकुल सम्भव है। यह मानसिक, प्राणिक तथा आन्तरात्मिक अमरत्वकी प्राप्तिपर निर्भर नहीं करता। जिन्हें इनकी प्राप्ति हो गयी है, उन्हें तो नाना लोकोंमें विचरनेकी तथा बिना बन्धनमें बँधे भौतिक जगत्‌पर क्रिया करनेकी शक्ति होगी। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इन वस्तुओंके विषयमें कोई रूढ़ नियम नहीं है। चेतनामें उसकी ऊर्जाओं, प्रवृत्तियों तथा रूपाकृतियोंके अनुसार बहुत-सी विविधताएँ सम्भव हैं, यद्यपि एक व्यापक चौकठा तथा खाका है, जिसके भीतर ये सभी आ जाते हैं और अपने स्थान ग्रहण करते हैं।

× × ×

जो अन्तरात्माएँ अन्तरात्माके लोकमें विश्रामके लिये जाती हैं, उनकी अवस्था बिलकुल अचल होती है; प्रत्येक अपने भीतर समाहित हो जाती है तथा एक दूसरेपर क्रिया नहीं करती। जब वे अपनी समाधिसे बाहर निकलती हैं तब वे नये जीवनमें प्रवेश करनेके लिये उतरनेको तैयार होती हैं; किंतु इस बीचमें क्रिया नहीं करतीं।······

अन्तरात्माके लोकका कोई जीव पृथ्वीपरकी किसी अन्तरात्मामें घुल नहीं जाता। किसी-किसी अवस्थामें जो होता है वह यह कि कोई बहुत ही विकसित अन्तरात्मा कभी-कभी अपना एक अंश नीचे भेजती है, जो एक मानव-प्राणीमें रहकर उसे तैयार करता है, जबतक कि स्वयं अन्तरात्माके उस जीवनमें प्रवेश करने योग्य वह तैयार न हो जाय। यह तब होता है जब कोई विशेष काम करना होता है तथा मानव-वाहनको तैयार करनेकी आवश्यकता होती है। इस प्रकारका अवतरण व्यक्तित्व तथा स्वभावमें आकस्मिक प्रकारका विलक्षण परिवर्तन लाता है।

सामान्यतः अन्तरात्मा एक ही लिङ्गका अनुसरण करती है। यदि कभी लिङ्ग-परिवर्तन होता है, तो नियमतः ऐसा व्यक्तित्वके कुछ अंशोंके साथ होता है जो केन्द्रीय नहीं होते।

ये अन्तरात्माएँ, जो पुनर्जन्मके लिये लौटती हैं, कब नये शरीरमें प्रवेश करती हैं, इसका कोई नियम नहीं बनाया जा सकता; क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिके साथ विभिन्न परिस्थितियाँ होती हैं। कुछ अन्तरात्माएँ जन्मके पास-पड़ोसके वातावरण तथा माता-पिताके साथ गर्भाधानके समयसे सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं तथा अपने व्यक्तित्व और भविष्यको गर्भमें ही निश्चित करती हैं, कुछ दूसरी जन्मके बाद भी; तथा इन अवस्थाओंमें अन्तरात्माका एक अंश जीवनको अस्तित्वमें रखे रहता है। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि आगामी जन्मकी अवस्थाएँ मूलतः अन्तरात्माके लोकमें वासके समय नहीं, वरं मृत्युके समय निश्चित की जाती हैं। उस समय अन्तरात्मा यह चुनाव करती है कि उसके दूसरी बार पृथ्वीपर आनेपर उसे कौन-सी गुत्थी सुलझानी होगी और परिस्थितियाँ उसीके अनुसार सज जाती हैं।

अन्तरात्मा कब ऊपर जाती और कब नीचे लौटती है ?

वह (जीवन्मुक्त) जहाँपर भी उसने अपना लक्ष्य स्थिर किया था वहाँ जा सकता है—निर्वाणकी अवस्थामें या किसी दिव्य लोकमें और वहाँ रह सकता है। अथवा जहाँ कहीं भी वह जाय, पृथ्वीकी गति-विधिसे सम्बन्ध बनाये रख सकता है और यदि पृथ्वीकी गति-विधिमें सहायता करनेकी उसकी इच्छा हो तो फिर लौट सकता है।

यह (अन्तरात्माकी वर्तमान उच्चतम उपलब्धिसे किसी और भी उच्चतर लोकमें जानेकी बात) संदिग्ध है। यदि मूल रूपमें वह विकास-क्रमका जीव नहीं, बल्कि किसी उच्चतर लोकका जीव है, तो वह उस लोकको लौट जायगा। यदि वह और भी ऊपर जाना चाहता है तो यह सर्वथा युक्तिपूर्ण है कि जबतक वह उस उच्चतर लोककी चेतना विकसित न कर ले, तबतक विकासके क्षेत्रमें वापस आये। प्राचीन विचार कि यदि देवता लोग भी चाहें तो उन्हें पृथ्वीपर आना होगा, इस ऊर्ध्वारोहणके सम्बन्धमें लागू किया जा सकता है। यदि वह मूलतः विकास-क्रमका जीव है तो उसे विकास-क्रमके पथसे ही, चाहे निर्वाणद्वारा, यहाँसे नकारात्मक रूपमें निकल जाना होगा अथवा सच्चिदानन्दकी वर्तमान अभिव्यक्तिमें कोई दिव्यभावात्मक चरितार्थता प्राप्त करनी होगी।

वापस लौटनेकी असम्भाव्यता सदा गुर्थदार प्रश्न है। कोई दिव्य जीव सदा ही लौट सकता है—जैसा रामकृष्णने कहा था कि ईश्वरकोटि अपनी इच्छानुसार जब चाहे तब अमृतत्व तथा पुनर्जन्मकी सीढ़ीके बीच ऊपर और

(६) प्राणिक सत्ताओंद्वारा कुछ कालके लिये किसी व्यक्तिपर अधिकार, जो कभी-कभी दिवंगत-सम्बन्धी होनेका बहाना करती हैं, आदि ।

(७) मरनेके समय व्यक्तियोंद्वारा प्रायः प्रक्षिप्त स्वयं उनकी विचारमूर्तियाँ, जो मृत्युके समय या उसके कुछ घंटों बाद उनके मित्रों या सम्बन्धियोंके सामने प्रकट होती हैं ।

देखो, कि इनमेंसे केवल एक अवस्थामें ही, पहलीमें अन्तरात्माको तथ्यरूपमें माना जा सकता है और वहाँ कोई कठिनाई नहीं उठती ।

× × ×

मृत आत्माका बुलाया जाना

मृत आत्माओंको बुलाये जानेवाली गोष्ठीमें जो प्रेत या आत्मा आती है, वह अन्तरात्मा नहीं होती । माध्यमके द्वारा जो कुछ आता है, वह माध्यमकी तथा बैठनेवालोंकी अवचेतना (अवचेतना शब्दको यहाँ सामान्य अर्थमें प्रयुक्त कर रहा हूँ, यौगिक अर्थमें नहीं) का मिश्रण होता है; दिवंगत व्यक्तिद्वारा छोड़े हुए अथवा शायद किसी प्रेत या किसी प्राणिक सत्ताद्वारा अधिकृत किये हुए या प्रयुक्त प्राणमय कोष, दिवंगत व्यक्ति स्वयं अपने प्राणमय कोशमें या उस अवसरपर ग्रहण किये किसी अन्य वस्तुके भीतर (किंतु यह प्राणिक अंश होता है जो बातचीत करता है), प्राकृतिक तत्त्वों या वस्तुओंकी आत्माएँ, पृथ्वीके निकटके निम्नतम प्राणिक भौतिक लोकके प्रेत आदि । अधिकांशमें एक भयंकर तरहका गड़बड़-सड़बड़—प्रेतलोकके धूमिल प्रकाश और छायाके माध्यमसे आती हुई सभी प्रकारकी वस्तुओंकी खिचड़ी । अनेक माध्यम ऐसे व्यक्ति लगते हैं जो सूक्ष्म जगत्में मात्र गये हुए होते हैं, जहाँ वे पार्थिव जीवनके एक अधिक सुथरे हुए संस्करणद्वारा अपनेको घिरा पाते हैं और समझते हैं कि मृत्युके बादका सच्चा और निश्चित जगत् यही है; किंतु यह मात्र मानव-लोकके विचारों, चित्रों और सम्बन्धोंका आशावादी विस्तार है । यही है परलोक जिसकी वर्णना मृत आत्माओंको बुलानेवाले 'निदर्शक' और दूसरे माध्यम करते हैं ।

× × ×

स्वचालित लिखन तथा प्रेतात्माओंको बुलानेवाली गोष्ठियाँ—बड़ा मिश्रित व्यापार हैं । कुछ अंश माध्यमके अवचेतन मनसे आता है और कुछ बैठनेवालोंके अवचेतन मनसे । किंतु यह सच नहीं कि सब कुछ नाटकीयता लानेवाली कल्पना और स्मृतिके ही परिणाम होते हैं । कभी-कभी ऐसी वस्तुएँ भी होती हैं जो उपस्थित लोगोंमेंसे किसीको ज्ञात नहीं हो सकतीं और न याद आ सकती हैं; कभी-कभी, यद्यपि यह विरले होता है, भविष्यकी झाँकियाँ । किंतु सामान्यतः ये गोष्ठियाँ आदि व्यक्तिको एक बड़े निम्न लोककी प्राणिक सत्ताओं और शक्तियोंके सम्पर्कमें ले आती हैं, जो स्वयं अन्ध, असंगत और धोखेबाज होती हैं और उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करना या किसी प्रकारके प्रभावका ग्रहण करना खतरनाक होता है ।

—(भाषान्तरकारक—व्रजनन्दन, श्रीअरविन्द-आश्रम, पाँडिचेरी)

भक्ति न करनेपर दूसरे जन्ममें पराये बैल बनोगे

भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ।
पाउँ चारि, सिर सृंग, गुंग मुख, तब कैसें गुन गैहौ ॥
चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ।
टूटे कंधर, फूटी नाकनि, को लौं धौं भुस खैहौ ॥
लादत-जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूँड़ दुरैहौ ?
सीत, घाम, घन, बिपति बहुत बिधि, भार तरें मरि जैहौ ॥
हरि-संतनि को कह्यौ न मानत, कियौ आपुनौ पैहौ ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मिथ्या जनम गँवैहौ ॥

—सूरदासजी

(अधः) सत्यसे उच्च (ऊर्ध्व) सत्यकी ओर गतिमान् है और उसके व्यक्तिगत कर्म तथा ज्ञान ही उसकी प्रगतिके निर्णायक तत्त्व हैं—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥
(कठोपनिषद् २ । २ । ७)

'अपने कर्म और ज्ञानके अनुसार कितने ही देहधारी तो शरीर धारण करनेके लिये योनिको प्राप्त होते हैं और कितने ही स्थावरभावको प्राप्त हो जाते हैं ।'

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥
(कठोपनिषद् २ । ३ । ४)

'यदि इस देहमें इसके पतनसे पूर्व ही (ब्रह्मको) जान सका, तब तो यह बन्धनसे मुक्त हो जाता है । यदि नहीं जान पाया, तो इन जन्म-मरणशील लोकोंमें यह शरीर-भावको प्राप्त होनेमें विवश होता है ।'

हिंदुओंकी पुण्यस्थली भारतवर्षमें कुछ विचारकों तथा दार्शनिकोंका मत है कि जहाँतक आध्यात्मिक जीवनका सम्बन्ध है, हम आध्यात्मिकता तथा आचारनिष्ठताको स्पष्टतया भिन्न-भिन्न नहीं मान सकते । हमारे प्राचीन विधि-निर्माताओंने बार-बार शुद्ध (नैतिक) जीवनकी आवश्यकतापर बल दिया है तथा नैतिक सिद्धान्तोंके पालनका आग्रह किया है । केवल उसी स्थितिमें ही आध्यात्मिक उन्नतिकी गति बढ़ सकती है और तभी भगवद्दर्शन तथा आत्माकी मुक्ति सम्भव है—

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥
(कठोपनिषद् १ । ३ । ७-८)

'किंतु जो अविज्ञानवान्, अनिगृहीत-चित्त और सदा अपवित्र रहनेवाला होता है, वह उस पदको प्राप्त नहीं कर सकता; प्रत्युत संसारको ही प्राप्त होता है । किंतु जो विज्ञानवान्, संयतचित्त और सदा पवित्र रहनेवाला होता है, वह उस पदको प्राप्त कर लेता है, जहाँसे वह फिर उत्पन्न नहीं होता ।'

यहाँ भारतवर्षमें शुद्धताके बिना आध्यात्मिकताके विषयमें सोचा ही नहीं जा सकता । आध्यात्मिक विकासका आचार-निष्ठताके साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है । इसीलिये मोक्ष अथवा आध्यात्मिक शुद्धताके इच्छुक व्यक्तियोंको एक कठोर आध्यात्मिक अनुशासनका पालन अनिवार्यतः करना चाहिये । यह बात धार्मिक जीवन तथा भगवद्दर्शनकी संजीवनी है । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि हमारा वर्तमान जन्म हमारे पिछले जन्मोंके कर्मों तथा ज्ञानका परिणाम है । उसी प्रकार हमारे भावी जन्मका निर्धारण हमारे वर्तमान कर्मों, सचेत प्रयत्नों, विचारों तथा ज्ञानके आधारपर होगा । इसलिये हमें ऐसा ही आचरण करना चाहिये, हमारे विचार और कर्म ऐसे ही होने चाहिये कि हमारे भविष्यकी जीवन-धारा तथा चरित्रपर कोई धब्बा न लगने पाये और अभी तथा इसी जन्ममें भगवद्दर्शन हो जाय तथा आत्माको मुक्ति मिल जाय; भले ही विशुद्धताके इस मार्गपर बढ़ते समय हमें कितनी ही अड़चनों तथा कठिनाइयोंका सामना क्यों न करना पड़े । इसलिये हमें कर्मके लिये ही कर्म करना चाहिये और सभी कर्म तथा भावनाएँ भगवान्‌के चरणोंपर अर्पित कर देनी चाहिये । हमारे हृदयमें किसीके भी प्रति ईर्ष्या-द्वेषकी भावनाएँ न हों । जीवनमें हर क्षण भगवान्‌में प्रेम तथा भक्ति बनी रहे; प्रार्थना भी होती रहे । इस प्रकार करनेसे हमारे ऊपर भगवान्‌की कृपाकी वर्षा होगी और इसके बलपर हम संसार-सागरसे तर जायँगे और जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति पा जायँगे ।

यहूदियोंकी, ईसाइयों तथा इस्लामकी धार्मिक विचार-धाराको माननेवाले लोग पुनर्जन्मके सिद्धान्तपर विश्वास नहीं करते । परंतु कुछ प्राचीन तथा आधुनिक व्यक्ति आत्माके देहान्तर प्रवेश तथा पुनर्जन्मके सिद्धान्तपर विश्वास करते हैं । इनमें आर्फिक (Orphic), पाइथागोरस (Pythagoras), प्लेटो (Plato), नास्टिक (Gnostic) मनीचियन्स (Manichaeans), ब्रूनो (Bruno) और कुछ अन्य विचारक मुख्य हैं । प्लेटो प्राक्-अस्तित्वपर विश्वास करते थे । उनका कथन है कि 'आत्मा शरीरसे पुरातन है । आत्माएँ निरन्तर इस जीवनमें जन्म लेती रहती हैं ।' ईसामसीहने कहा—'अब्राहमसे पहले मैं हूँ ।' उन्होंने सैमेरिटन महिलाके समक्ष अपना भेद बताते हुए कहा—'ऐसा कहा जाता है कि वह इलियस (Elias) है, जो सैमेरिटन महिलाके पास आया है ।' ओरिजन

गीतामें अपने पूर्वजन्मोंके सम्बन्धमें अर्जुनके प्रश्न करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥
(४।५)

'हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुतसे जन्म हो चुके हैं; परंतु हे परंतप! उन सबको तू नहीं जानता है, मैं जानता हूँ।'

दिव्यताकी सर्वोत्तम अभिव्यक्तिके साकार रूप, पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णको अपना तथा अन्य उन सब लोगोंके पूर्वजीवनका पूरा-पूरा ज्ञान था, जो महाभारतकालमें उपस्थित थे। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस पुण्य-भूमि भारतवर्षमें अनेक ऐसे प्रज्ञाश महापुरुष हुए हैं, जिन्हें अपने पूर्वजीवनका सम्यक् ज्ञान था और उनके निकट-सम्पर्कमें आनेवाले भाग्यशाली लोगोंको भी उन्होंने यह ज्ञान देनेमें सहायता दी। इस घोर भौतिकवादी समयमें भी घटनाओं-की पूर्व जानकारी प्राप्त कर सकनेवाले तथा अपने बीते जीवनोंकी जानकारी रखनेवाले लोगोंकी भी कुछ घटनाएँ प्रकाशमें आयी हैं और उनके पूर्वजन्मके सम्बन्धमें बताये गये विवरण अक्षरशः सत्य सिद्ध हुए हैं।

वस्तुतः यह संतोषकी बात है कि पश्चिमके काफी लोगोंका ध्यान पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी ओर गया है और वे इसे अपने जीवनमें उतारनेकी चेष्टा कर रहे हैं। हिंदू-समाजपर कुछ बाहरी विचारों तथा आदर्शोंका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है; फिर भी लोग अभीतक कर्मसिद्धान्त, पुनर्जन्म, आत्मा तथा मुक्ति आदि सिद्धान्तोंकी भली प्रकार रक्षा कर रहे हैं और इस प्रकार उन्होंने इन सिद्धान्तोंको इस धरतीपर अक्षुण्ण बनाये रखा है। निश्चय ही उन्होंने अपने कार्यों, निष्ठा, बलिदान, रुचि तथा लगनसे इस देशके गौरवकी रक्षा की है। पुनर्जन्मके सिद्धान्तको एक कल्पनामात्र कहकर उसे अलग नहीं फेंका जा सकता। यह सत्य है कि यह अभीतक भीषण आघातों तथा परिवर्तनोंके उथल-पुथलमें भी हिंदू-जातिकी रक्षा कर रहा है।

नर नारायण है और समय पूरा होनेपर वह दिव्यताको प्राप्त होता है। परंतु उसकी सीमाएँ हैं, जिसके कारण वह यदा-कदा भूल भी कर सकता है। उसकी ऐसी भूलोंके कारण भगवद्-दर्शन तथा मुक्तिके देवमन्दिरकी ओर बढ़नेमें उसकी गति अवरुद्ध हो सकती है और इस प्रकार उसके जीवनका लक्ष्य पूरा नहीं हो पाता। इसीलिये पुनर्जन्मका सिद्धान्त उसको भविष्यमें अपने कार्योंको ठीकसे सम्पादन कर सकनेका अवसर देकर आत्यन्तिक आशा तथा सान्त्वना प्रदान करता है, ताकि उसके जीवनकी वह महत्त्वाकाङ्क्षा पूरी हो सके, जिसके लिये मानव इस संसारमें आया है।

जन्मान्तर-रहस्य

जब मनुष्य एक बार कर्मबन्धनमें पड़ चुका, तब फिर आगे चलकर उसकी एक नाम-रूपात्मक देहका नाश होनेपर कर्मके परिणामस्वरूप उसे इस सृष्टिमें भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंका मिलना कभी नहीं छूटता। आधुनिक आधिभौतिक शास्त्रकार (कट्टर निरीश्वरवादी जर्मन पण्डित नीट्शे) ने स्वीकार किया है कि कर्मशक्तिका कभी भी नाश नहीं होता, किंतु जो शक्ति आज किसी एक नाम-रूपसे दीख पड़ती है, वही शक्ति उस नाम-रूपके नाश होनेपर दूसरे नाम-रूपसे प्रकट हो जाती है। ×××××

अध्यात्मदृष्टिसे इस नाम-रूपात्मक परम्पराको ही 'जन्म-मरणका चक्र' या 'संसार' कहते हैं और इन नाम-रूपोंकी आधारभूत शक्तिको समष्टिरूपसे 'ब्रह्म' और व्यष्टिरूपसे 'जीवात्मा' कहा करते हैं। वस्तुतः देखनेसे यह विदित होगा कि यह आत्मा न तो जन्म धारण करता है और न मरता ही है। यह नित्य और स्थायी है। पर कर्मबन्धनमें पड़ जानेके कारण एक नाम-रूपके नाश हो जानेपर उसीको दूसरे नाम-रूपोंका प्राप्त होना टल नहीं सकता। आजका कर्म कल भोगना पड़ता है और कलका परसों; इतना ही नहीं, इस जन्ममें जो कुछ किया जाय उसे अगले जन्मोंमें भोगना पड़ता है—इस तरह यह भवचक्र सदैव चलता रहता है।—लोकमान्य तिलक

आयु और कर्मशक्तिके रहते हुए भी विरुद्ध शक्तिके प्रभावसे देहपात होता है तो उसे उपच्छेदक कर्मका फल कहा जाता है। इसीको साधारणतः 'अकालमृत्यु' कहते हैं। प्राचीन आचार्यगण इसको 'उपच्छेद मृत्यु' कहते थे।

उपच्छेद मृत्यु अनेक प्रकारकी होती है। वात-पित्त आदि दोष तथा उनके सन्निपातको छोड़ देनेपर भी बाह्य कारणवश उपच्छेद मृत्यु होती है। बाह्य प्रकृतिका क्षोभ एक प्रधान कारण है। भूकम्प, वज्रपात, वर्षा, आँधी, बाढ़ तथा सवारी या अन्य गाड़ियोंसे हुई दुर्घटनाके कारण उपच्छेद मृत्यु होती है। इत्यादिके अनुचित व्यवहार तथा आकस्मिक आक्रमण भी उपच्छेद मृत्युके कारण बनते हैं। उत्पीड़क तथा उपघातक कर्मके द्वारा उत्पन्न व्याधि (Epidemic) आदि भी इनके कारण हैं। केवल कर्म ही जीवके दुःख और मृत्युका कारण बने, ऐसी बात नहीं है। विश्वकी रचनाप्रणालीमें ही दुःखके कारण निहित हैं।

(२)
मृत्युकालीन सत्-चिन्तन

प्रसिद्धि है कि 'अन्ते मतिः सा गतिः' अर्थात् मृत्युकालमें जीवका जिस प्रकारका मनका भाव रहता है, तदनुसार मरणोत्तर गतिका निरूपण होता है। प्राचीन कालसे ही हिंदूसमाजमें नियम है कि मृत्युकालमें मुमूर्षुके समीप सांसारिक आलोचना करना अनुचित है। मुमूर्षुके लिये भी उचित है कि उसका अन्तिम चिन्तन संसारविषयक न होकर भगवत्-विषयक हो। महर्षि गौतमके पितृमेधसूत्र (१ । १ । ८)में लिखा है कि 'माता-पिता आदि गुरुजनोंके मृत्युकालमें मरणासन्न व्यक्तिको वेदका आदि और अन्तिम मन्त्र उच्चारण करके सुनाना चाहिये।' मुमूर्षुके दक्षिण कर्णमें एक साम-मन्त्रका उच्चारण करके सुनानेका विधान शास्त्रमें है। ऋग्विधानमें है कि 'मृत्युकालमें मुमूर्षुके पास (आतारं०)—इस सूक्तका पाठ करना चाहिये।' हिरण्यकेशीसूत्र (१ । १)में लिखा है कि 'अग्निहोत्री पुरुषके मृत्युकालमें उसको वेदमन्त्र सुनावे।' वह ब्रह्मवेत्ता हो तो तैत्तिरीय उपनिषद्की 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्।' (२ । १) और 'भृगुर्वै वारुणिः।' (३ । १)—इन मन्त्रोंका उच्चारण करे। 'अन्त्यकर्मदीपक' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि मुमूर्षु व्यक्ति जपमें असमर्थ होनेपर मन-ही-मन विष्णु या शिवकी मूर्तिका चिन्तन करते-करते विष्णु या शिवके सहस्रनामका श्रवण करे। अथवा किसीसे श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारत, श्रीमद्भागवत, रामायण, उपनिषद् आदि अथवा पावमान-सूक्त श्रवण करे। या भगवन्नाम-कीर्तनका श्रवण करे।' छान्दोग्य उपनिषद्में शाण्डिल्यविद्याके प्रकरण (३ । १४ । ४)में है कि 'मनुष्यमात्र क्रतुमय है। इस लोकमें जिस मनुष्यका जिस प्रकारका क्रतु अर्थात् भाव या संकल्प रहता है, मरनेके बाद तदनुरूप ही उसकी गति होती है।' श्रीमद्भगवद्गीतामें भी (८ । ५-६) अन्तिम समयमें भगवत्स्मरणकी व्यवस्था है।

(३)
कालभेदसे मृत्युकी प्रशंसा

महाभारत शान्तिपर्वमें उत्तरायणमें देहत्यागकी भूयसी प्रशंसा देखनेमें आती है। उपनिषद्में भी इसका समर्थन प्राप्त होता है।

आपन्ने मूलतो काले सूर्ये यो निधनं व्रजेत्।
नक्षत्रे च मुहूर्ते च पुण्ये राजन् स पुण्यकृत्॥

छान्दोग्य उपनिषद् (४ । १५ । ५-६)में देवयान पथका प्रसंग है। यह शुक्ला गति है। इसमें ऊर्ध्वगति प्राप्त होती है और पुनः प्रत्यावर्तन नहीं होता है। छान्दोग्य (५ । १० । १२) में आया है कि 'जो गृहस्थ पञ्चाग्नि-विद्यामें निष्णात है तथा जो वानप्रस्थ या परिव्राजक हैं, अर्थात् जो श्रद्धा और तपोयुक्त हैं, तथापि अभी ब्रह्मज्ञानको प्राप्त नहीं हैं, वे देवयान गतिको प्राप्त होते हैं।' और जो लोग ग्राममें वास करते हैं, यज्ञानुष्ठान करते हैं तथा विधिपूर्वक इष्टापूर्तका सम्पादन करते हैं, वे मृत्युके बाद धूममार्गसे गमन करते हैं। (५ । १० । ३–७) उनको संसारमें पुनरावर्तन करना पड़ता है। इन दोके सिवा एक तीसरा लोक है, जहाँ कीट-पतङ्ग आदिकी गति होती है। यहाँ केवल जाना और आना होता है। बृहदारण्यक उपनिषद्में (६ । २ । १५-१६) देवलोक और पितृलोकके समान कीटादि लोकका भी उल्लेख है। गीता अष्टम अध्याय (२३–२५)में दोनों मार्गोंकी बात उल्लिखित है। वेदान्तसूत्रमें भी (४ । २ पादमें) इस विषयमें कुछ आलोचना की गयी है। महाभारतमें भीष्मके उत्तरायणके लिये प्रतीक्षा करनेकी बात सभी जानते हैं। यह शुक्लमार्गकी

में आकुञ्चन और प्रसारणके कार्य होते हैं । समस्त मायातीत शाक्त जगत्में ऐसा ही होता रहता है । यह दीर्घकालतक होता रहता है । इसके बाद वह भी नहीं रहता । यही कालसाम्यकी अवस्था है । इसके बाद परम ज्ञानका उदय होता है । उस समय सृष्टि और संहारका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता ।

गति-विज्ञान और समुच्चय-रहस्य

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्० ए०, डी० लिट्)

मरणोत्तर जीव-सत्ताकी गतिके रहस्यका ही इस लेखमें 'गति-विज्ञान'के नामसे वर्णन किया गया है । कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हम मनुष्यदेहकी मृत्युके विषयमें आलोचना कर रहे हैं । मानवके अतिरिक्त पशु-पक्षीके विषयमें नहीं । मनुष्यसे निम्न स्थितिके सब जीवोंमें कर्म-सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि उन जीवोंमें अहंकारका विकास न होनेके कारण उनमें कर्मकी सम्भावना नहीं होती । इस प्रसङ्गमें हम मानवदेहसे अवरोहक्रममें अधःपतित पशु-पक्षी आदि देहधारी जीवकी बात नहीं कह रहे हैं । चौरासी लाख योनिके स्वाभाविक क्रमविकासके अनुसार क्रमशः पशु-पक्षीकी देह प्राप्त होती है, उसीको लक्ष्य करके यह कहा जा रहा है । अन्यथा, कोई योगी या भक्त पशु-पक्षीकी देहमें स्वेच्छापूर्वक अवस्थान करके जिस अवस्थाको प्राप्त होता है, उसको लक्ष्य करके यहाँ कुछ भी नहीं कहा जा रहा है । वस्तुतः कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी आदिकी कोई गति नहीं होती । शास्त्रोंमें उनके लिये किसी लोकका निर्देश नहीं है । उपनिषद्में 'जायस्व, म्रियस्व'—ये दो बातें उनको लक्ष्य करके कही गयी हैं । अतः वर्तमान गतिकी आलोचना उनके सम्बन्धमें प्रयोज्य नहीं है ।

दूसरी बात यह है कि जो महापुरुष इस देहमें ही देह-पातके साथ-साथ परामुक्ति प्राप्त करते हैं, उनकी कोई गति नहीं होती । उनके शुभाशुभ कर्म पूर्णतया दग्ध हो जाते हैं । अतएव उनकी मरणोत्तर गतिका कोई प्रश्न ही नहीं । वे लोग यथास्थित भावमें ही ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करते हैं । प्रारब्ध कर्मकी समाप्तिके साथ-साथ देहपात हो जाता है । देहपातके बाद उनका कोई ऐसा कर्म नहीं रह जाता, जिसके कारण उनकी कोई गति सम्भव हो । 'अत्रैव प्रलीयन्ते' 'समवलीयन्ते'—ये सारी बातें उन्हींके सम्बन्धमें प्रयुक्त हुई हैं ।

जिन साधक या योगियोंने कर्मकाण्डके अनुष्ठानके वैध-मार्गमें सकाम भावसे जीवन व्यतीत किया है, जिनके चित्तमें अभी ज्ञानका उदय नहीं हुआ, पर जो निषिद्ध कर्म छोड़-कर केवल वैध कर्मका अनुष्ठान करते रहते हैं, मृत्युके बाद उनकी गति हुआ करती है । इसको 'पितृयाण गति' कहते हैं । इस गतिके फलस्वरूप वे धूममार्गके द्वारा पुण्य-कर्मके अनुरूप स्वर्गादि लोककी उपलब्धि और भोग प्राप्त करते हैं । यह सब उनके अनुष्ठित शुभकर्मके फलसे प्राप्त होता है । परंतु यह अनित्य है । इसी कारण पुण्यकी मात्राके अनुसार स्वर्गादि लोकोंमें उनको भोग प्राप्त होता है । पुण्यक्षय हो जानेपर वे स्वर्गसे च्युत हो जाते हैं । किं बहुना, यह स्वर्ग-वास एकाधिक स्वर्गोंमें भी हो सकता है । परंतु स्वर्ग सभी अनित्य हैं । इसी कारण भोगके समाप्त होनेपर, अर्थात् पुण्यक्षयके साथ-साथ उनको मर्त्यलोकमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है । किं बहुना, स्वर्गसे च्युत जीव साधारणतः सद्-वंशमें जन्म ग्रहण करता है । यह जन्म-ग्रहण उन सब जीवोंके शेष कर्म या अवशिष्ट कर्मके द्वारा हुआ करता है । जैसे जल-भरे बोतलसे जल गिरा देनेपर भी उस खाली बोतलमें कुछ अवशिष्ट जलका अंश रह जाता है, उसी प्रकार स्वर्गभोगके द्वारा क्षीण हो जानेपर भी जो कुछ पुण्यकर्म अवशिष्ट रह जाता है, उसीके फलसे पुनरावर्त्तन होता है और मनुष्यदेहमें जन्म होता है

पापीके सम्बन्धमें भी यही बात है । पापी धूममार्गका आश्रय करके बहुत कष्ट भोगते हुए नरकमें जाता है । नरकमें उसको नाना प्रकारकी भीषण कष्टप्रद नरकयन्त्रणा भोगनी पड़ती है । स्वाभाविक देहसे इस प्रकारकी कठिन यन्त्रणाओंका भोग सम्भव नहीं । इसी कारण उसको 'यातनादेह' नामक एक प्रकारकी देहका अवलम्बन करके नरकमें प्रवेश करना पड़ता है । और दीर्घकालतक नाना प्रकारकी यन्त्रणा भोग करनेके बाद वे नरकसे छूटकर लौटते हैं । उनमें बहुतेरे पशु-पक्षीकी देह धारण करते हैं और बादमें मनुष्यदेह धारण करते हैं । क्योंकि शास्त्रमें नरकभोगके बाद

मृत्युविज्ञान

(लेखक—वेदतत्त्वान्वेषक श्रीरणछोड़दासजी 'उद्धव')

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥

'प्रत्यक्ष और अनुमानसे जो तत्त्व न जाना जा सके, वह वेदसे जाना जाता है—यही वेदका वेदपन है।'

मृत्युके बाद अज्ञात परलोकमें जानेवाले जीवात्माके लिये वैदिक वैज्ञानिकोंका कहना है कि 'आत्मा' पंद्रह आत्माओंका समूह है। ईश्वरके शरीरमें (१) स्वयम्भू, (२) परमेष्ठी, (३) सूर्य, (४) चन्द्रमा और (५) पृथिवी—ये पाँच मुख्य प्रकृतिके आत्मा हैं। (१) 'प्राण' प्रकृतिवाले 'स्वयम्भू'की—अन्तर्यामी, सूत्र और वेद—ये तीन कलाएँ हैं, (२) 'अप्' प्रकृतिवाले 'परमेष्ठी'की—चित् और यज्ञ—ये दो कलाएँ हैं, (३) 'वाक्' प्रकृतिवाले 'सूर्य'की—विज्ञान और प्राणदेवता—ये दो कलाएँ हैं, (४) 'अन्न' प्रकृतिवाले 'चन्द्रमा'में—आकृति, प्रकृति और अहंकृति—इन तीन कलाओंमें महत्‌संज्ञकका साम्राज्य है और (५) 'अन्नाद' प्रकृतिवाली 'पृथिवी'में—चित्याग्नि, वायु, वैश्वानर, हिरण्यगर्भ और सर्वज्ञ—इन पाँच कलाओंकी प्रतिष्ठा है। इस प्रकार कुल पाँच विस्तारोंके पंद्रह विस्तार हो जाते हैं। प्रकृतमें प्रधान पाँच आत्माओंके विषयमें कहा जाता है, जिससे मुख्य नित्य विभु-आत्मा और खण्डात्माओंका विज्ञान होगा।

पञ्च आत्मविज्ञान

ईश्वर-संस्थाकी स्वयम्भू आदि पाँच प्रधान कलाएँ अध्यात्मसंस्थामें क्रमसे—(१) अव्यक्तात्मा, (२) यज्ञात्मा, (३) विज्ञानात्मा, (४) महानात्मा एवं (५) शरीरका आत्मा (प्राणात्मा)—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं। अन्तर्यामी, सूत्रात्मा और वेदात्मा—इन तीनों खण्डात्माओंका समूह प्राण-प्रकृतिवाले स्वयम्भूका 'अव्यक्तात्मा' है; चिदात्मा और यज्ञात्माका समूह अप्-प्रकृतिवाले परमेष्ठीका 'यज्ञात्मा' है; विज्ञानात्मा और देवात्माका समूह वाक्-प्रकृतिवाले सूर्यका विज्ञानात्मा है; आकृति, प्रकृति और अहंकृतिका समूह अन्न-प्रकृतिवाले चन्द्रमाका 'महानात्मा' है; तथा वायात्मा, हंसात्मा, वैश्वानरात्मा, तैजसात्मा और प्राज्ञात्मा—इन पाँचोंका समूह अन्नाद-प्रकृतिवाली पृथिवीका 'शारीरात्मा' है। इन सब खण्डात्माओंका आधार (इनकी अपेक्षासे अखण्ड) सोलहवाँ षोडशीपुरुष ही 'अमृतात्मा' नामसे प्रसिद्ध है।

(१) अव्यक्तात्मा—

'अमृतात्मा' नामसे प्रसिद्ध षोडशीपुरुषके मन, प्राण और वाङ्मय सृष्टिसाक्षी कर्मात्माभागकी बलप्रधान सृष्टिकी इच्छासे सम्बन्ध रखनेवाले मनोमय काम, प्राणमय तप तथा वाङ्मय श्रम—इन सृष्टिकर्मोंके सामान्य तीन साधनोंके व्यापारसे सबसे पहले वही प्राकृतात्मा 'अव्यक्तात्मा' कहलाया है। यह 'शान्तात्मा' नामसे भी प्रसिद्ध है। षोडशीपुरुष विश्वात्मासे सबसे पहले आकाशात्मा इसी अव्यक्त स्वयम्भूका प्रकटीकरण हुआ है। इसी अभिप्रायसे कहा गया है—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः ।
(तैत्तिरीय उ० २ । १ । १)

शरीरसे आत्माके निकल जानेके बाद यह अव्यक्तात्मा सर्वव्यापक प्राणमूर्ति आकाशात्मामें यहाँका यहीं विलीन हो जाता है। असङ्ग होनेसे कर्मबन्धनसे सर्वथा अलग रहता हुआ यह अव्यक्त आत्मा अन्य लोकोंमें नहीं जाता है। घटके फूटते ही घटका आकाश जैसे अन्य लोकोंमें न जाकर वहीं परमाकाशमें लीन हो जाता है। अन्य लोकोंमें जानेवाले कर्मात्माके साथ विन्दु-विन्दुपर नवीन-नवीन अव्यक्त (आकाश) का सम्बन्ध होता रहता है। इसी अव्यक्तके लयको लक्ष्यमें रखकर कहा है—

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति इहैव समवलीयन्ते ।

(२) यज्ञात्मा—

हमारी अध्यात्मसंस्थामें शरीर, प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा, विज्ञानात्मा, महानात्मा और अव्यक्तात्मा—ये ६ विभाग माने गये हैं। शरीरके आधारपर १–इन्द्रियप्राण, २–वाक्, ३–इन्द्रियमनका अधिष्ठाता, ४–भूतात्मा (कर्मात्मा या भोक्तात्मा) स्थित है। इन

मृत्युविज्ञान

(लेखक—वेदतत्त्वान्वेषक श्रीरणछोड़दासजी 'उद्धव')

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥

'प्रत्यक्ष और अनुमानसे जो तत्त्व न जाना जा सके, वह वेदसे जाना जाता है—यही वेदका वेदपन है ।'

मृत्युके बाद अज्ञात परलोकमें जानेवाले जीवात्माके लिये वैदिक वैज्ञानिकोंका कहना है कि 'आत्मा' पंद्रह आत्माओंका समूह है । ईश्वरके शरीरमें (१) स्वयम्भू, (२) परमेष्ठी, (३) सूर्य, (४) चन्द्रमा और (५) पृथिवी—ये पाँच मुख्य प्रकृतिके आत्मा हैं । (१) 'प्राण' प्रकृतिवाले 'स्वयम्भू'की—अन्तर्यामी, सूत्र और वेद—ये तीन कलाएँ हैं, (२) 'अप्' प्रकृतिवाले 'परमेष्ठी'की—चित् और यज्ञ—ये दो कलाएँ हैं, (३) 'वाक्' प्रकृतिवाले 'सूर्य'की—विज्ञान और प्राणदेवता—ये दो कलाएँ हैं, (४) 'अन्न' प्रकृतिवाले 'चन्द्रमा'में—आकृति, प्रकृति और अहंकृति—इन तीन कलाओंमें महत्तत्त्वका साम्राज्य है और (५) 'अन्नाद' प्रकृतिवाली 'पृथिवी'में—चित्याग्नि, वायु, वैश्वानर, हिरण्यगर्भ और सर्वज्ञ—इन पाँच कलाओंकी प्रतिष्ठा है । इस प्रकार कुल पाँच विस्तारोंके पंद्रह विस्तार हो जाते हैं । प्रकृतमें प्रधान पाँच आत्माओंके विषयमें कहा जाता है, जिससे मुख्य नित्य विभु-आत्मा और खण्डात्माओंका विज्ञान होगा ।

पञ्च आत्मविज्ञान

ईश्वर-संस्थाकी स्वयम्भू आदि पाँच प्रधान कलाएँ अध्यात्मसंस्थामें क्रमसे—(१) अव्यक्तात्मा, (२) यज्ञात्मा, (३) विज्ञानात्मा, (४) महानात्मा एवं (५) शरीरका आत्मा (प्राणात्मा)—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं । अन्तर्यामी, सूत्रात्मा और वेदात्मा—इन तीनों खण्डात्माओंका समूह प्राणप्रकृतिवाले स्वयम्भूका 'अव्यक्तात्मा' है; चिदात्मा और यज्ञात्माका समूह अप्-प्रकृतिवाले परमेष्ठीका 'यज्ञात्मा' है; विज्ञानात्मा और देवात्माका समूह वाक्प्रकृतिवाले सूर्यका विज्ञानात्मा है; आकृति, प्रकृति और अहंकृतिका समूह अन्न-प्रकृतिवाले चन्द्रमाका 'महानात्मा' है; तथा चित्यात्मा, हंसात्मा, वैश्वानरात्मा, तैजसात्मा और प्राज्ञात्मा—इन पाँचोंका समूह अन्नाद-प्रकृतिवाली पृथिवीका 'शारीरात्मा' है । इन सब खण्डात्माओंका आधार (इनकी अपेक्षासे अखण्ड) सोलहवाँ षोडशीपुरुष ही 'अमृतात्मा' नामसे प्रसिद्ध है ।

(१) अव्यक्तात्मा—

'अमृतात्मा' नामसे प्रसिद्ध षोडशीपुरुषके मन, प्राण और वाङ्मय सृष्टिसाक्षी कर्मात्माभागकी बलप्रधान सृष्टिकी इच्छासे सम्बन्ध रखनेवाले मनोमय काम, प्राणमय तप तथा वाङ्मय श्रम—इन सृष्टिकर्मोंके सामान्य तीन साधनोंके व्यापारसे सबसे पहले वही प्राकृतात्मा 'अव्यक्तात्मा' कहलाया है । यह 'शान्तात्मा' नामसे भी प्रसिद्ध है । षोडशीपुरुष विश्वात्मासे सबसे पहले आकाशात्मा इसी अव्यक्त स्वयम्भूका प्रकटीकरण हुआ है । इसी अभिप्रायसे कहा गया है—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः ।
(तैत्तिरीय उ० २ । १ । १)

शरीरसे आत्माके निकल जानेके बाद यह अव्यक्तात्मा सर्वव्यापक प्राणमूर्ति आकाशात्मामें वहाँका वहीं विलीन हो जाता है । असङ्ग होनेसे कर्मबन्धनसे सर्वथा अलग रहता हुआ यह अव्यक्त-आत्मा अन्य लोकोंमें नहीं जाता है । घटके फूटने ही घटका आकाश जैसे अन्य लोकोंमें न जाकर वहीं परमाकाशमें लीन हो जाता है । अन्य लोकोंमें जानेवाले कर्मात्माके साथ बिन्दु-बिन्दुरूप नवीन-नवीन अव्यक्त (आकाश) का सम्बन्ध होता रहता है । इसी अव्यक्तके लयको लक्ष्यमें रखकर कहा है—

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति इहैव समवलीयन्ते ।

(२) यज्ञात्मा—

हमारी अध्यात्मसंस्थामें शरीर, प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा, विज्ञानात्मा, महानात्मा और अव्यक्तात्मा—ये ६ विभाग माने गये हैं । शरीरके भीतर १–इन्द्रियप्राण, २–वायु, ३–इन्द्रियमनका अधिष्ठाता, ४–प्रज्ञात्मा (कर्मात्मा या भोक्तात्मा) स्थित हैं । इन

भूतलपर एक बड़ा पर्वत है, पर्वतपर एक किला है, किलेपर आकाशसे वृष्टि होती है। मेघका शुद्ध जल किलेपर आते ही पर्वतकी कन्दराओंमें आता हुआ खण्ड-खण्डरूपमें परिणत होता हुआ किलेकी और पर्वतकी मलिनतासे मलिन हो जाता है। यही अवस्था यहाँ है। वे ही ईश्वरीय गुण शरीररूप भूपिण्डपर स्थित प्रज्ञानरूप किलेमें आकर, पर्वतके अवयवस्थानीय जीव-संस्थामें आकर, प्रज्ञाके अपराधरूप मलसे मिले हुए पापरूपमें परिणत हो जाते हैं। ईश्वरके समान जीव भी बिल्कुल विशुद्ध है; ईश्वरीय जो गुण जीवमें आते हैं, वे भी विभूतिरूप ही हैं; परंतु प्रज्ञा (मन) के अपराधसे वे ही गुण दोषरूपमें परिणत हो जाते हैं। दो स्वतन्त्र पदार्थोंमें जो गुण या दोष नहीं देखे जाते, इन दोनोंके मिलनेकी विचित्रतासे वहाँ गुण और दोषका उदय हो जाता है। जबतक अहंकार है, तभीतक जीव जीव है। जिस दिन इसका अहंकार नष्ट हो जाता है, उसी दिन पूर्वपदभावको प्राप्त होता हुआ यह पूर्णेश्वरमें विलीन हो जाता है। महर्षि कहते हैं—

> यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
> एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम॥
> (कठ० २।१।१५)

मृत्युके अनन्तरकी दशा

मृत्युके अनन्तर इस लोकसे पितृलोकमें मनुष्य किस प्रकार जाते हैं—फिर वहाँसे कैसे लौटते हैं, इस आवागमनकी शैलीका पूर्ण विवरण सामवेदके ताण्ड्यमहाब्राह्मणके छान्दोग्य-उपनिषद्-भागमें (५।३।१०) किया गया है। वहाँ मृत्युके अनन्तर तीन प्रकारकी गति बतलायी गयी है—अर्चिमार्ग, धूममार्ग और दोनोंसे अतिरिक्त तीसरा उत्पत्ति-विनाशमार्ग। पूर्वके दो मार्गोंको ही देवयान और पितृयाणमार्ग कहा जाता है। शरीरसे निकलकर जानेवाली देवचितिरूप धरपुरुषरी कहा है, जिसमें प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा, विज्ञानात्मा और महानात्मा सम्मिलित रहते हैं। दार्शनिक भाषामें इस देवचितिका 'सूक्ष्मशरीर' नामसे निर्देश किया जाता है। मुख्य नित्यविभु-आत्मा जिसे कहते हैं, वह तो व्यापक है। वह कहीं आ-जा नहीं सकता और स्थूलशरीरकी यही प्रत्यक्ष तीन गतियाँ देखी जाती हैं, जिसे कृमि-विट्-भस्म नामसे वैराग्यशास्त्रोंमें कहा करते हैं—अर्थात् यदि अग्निमें स्थूलशरीर जला दिया गया, तो भस्मरूप हो जाता है, यदि कोई मांस खानेवाला जन्तु उसे खा गया, तो विष्ठारूप होकर उसके उदरसे निकलेगा और यदि कोई स्थूलशरीर पड़ा ही रह गया, या भूमिमें गाड़ दिया गया, तो वह कृमि (कीड़ों) के रूपमें परिणत हो जाता है, अर्थात् उसमें हजारों कीड़े ही-कीड़े पड़ जाते हैं।

कहना यही है कि न स्थूलशरीर कहीं जाता-आता है, न मुख्य विभु-आत्मा; क्योंकि व्यापकमें गति हो ही नहीं सकती। तब शरीरसे निकलकर लोकान्तर या जन्मान्तरमें जानेवाला सूक्ष्मशरीर ही है, जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि—ये १७ तत्त्व सम्मिलित हैं। इन्हींमें रहनेवाले चैतन्यका प्राणात्मा, प्रज्ञानात्मा आदि नामोंसे पूर्वमें निरूपण किया है।

अब वैज्ञानिक-प्रक्रियासे विचारना चाहिये कि यह सूक्ष्मशरीर कहाँ जायगा? विज्ञानमें सजातीय-आकर्षणका सिद्धान्त मुख्य माना जाता है। प्रत्येक वस्तु अपने सजातीय घनकी ओर स्वभावतः जाती है। व्यष्टि समष्टिकी ओर जाया करती है। जैसे—मिट्टीका ढेला पृथ्वीकी ओर आता है। उक्त १७ तत्त्वोंमें मन प्रधान है और वह चन्द्रमाका अंश है। इसलिये चन्द्रमाके आकर्षणमें बँधकर वह चन्द्रलोकमें ही पहुँचेगा। यही दिव्य पितरोंका निवास है। यही मुख्य पितृलोक है। इसलिये स्वभावतः मृत पुरुषोंकी पितृलोकगति सिद्ध हुई।

यदि मनकी प्रधानता न रहे और सूक्ष्मशरीरका कोई और ही भाग प्रधान बन जाय, तो फिर उसके अनुसार गति होगी। मनके अनुसार चन्द्रलोककी गति नहीं बनेगी। मनकी प्रधानता दो प्रकारसे हटती है। जो तपस्वी, योगी या प्रबल उपासक होते हैं, वे विज्ञानात्मा या बुद्धिशक्तिको प्रबल कर मनको दबा देते हैं। विज्ञानात्मा या बुद्धितत्त्व सूर्यका अंश है, इसलिये वैज्ञानिक शैलीके अनुसार बुद्धिप्रधान होनेके कारण उनपर सूर्यका आकर्षण हो जाता है और वे सूर्यमण्डलकी ओर चले जाते हैं। सूर्यमण्डलमें देवप्राणोंकी समष्टि है और स्वयं प्रकाशमान है। इसलिये इस मार्गको देवयानमार्ग कहा गया है।

तीसरी गति अधम है। पृथ्वीके पदार्थ धन, पशु, गृह आदिमें ही जिनका मन अधिक फँस गया है, वहाँ पृथ्वीका आवरण मनपर चढ़ जाता है और वैसे पुरुषोंके—

कोई व्यक्ति धन लिये हुए न उत्पन्न होता है और न मरता है। अतः यह मानना चाहिये कि मैं धन-सम्पत्तिसे पृथक् हूँ। इनपर अपना अधिकार मानना मूर्खता है। इनके साथ ममत्व करना भयंकर भूल है।

जिस वस्तुका आदि है, उसका अन्त अवश्य होता है। जहाँ प्रारम्भ है, वहाँ समाप्ति है। भूतलपर शरीर-यात्राका प्रारम्भ जन्मसे होता है और समाप्ति मरणसे होती है। जन्म और मरण देहका होता है। आत्मा तो अनादि और अनन्त है। देह ही शैशव, यौवन और वृद्धता एवं क्षीणता, कृशता, पीनताका अनुभव करता है। जन्म होनेपर जब माता बच्चेकी आयुके विषयमें ज्योतिषीसे प्रश्न करती है, तब वह वस्तुतः उससे मृत्युकी तिथि पूछना चाहती है। जन्मके पश्चात् मरण ध्रुव सत्य है। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।' जिस प्रकार भरे हुए घड़ेमें छिद्र होनेपर धीरे-धीरे वह रिक्त होता जाता है, उसी प्रकारसे शरीर भी मृत्यु-छिद्र होनेके कारण धीरे-धीरे समाप्तिकी ओर प्रवृत्त होता रहता है। धन, परिवार और प्रतिष्ठा आदि तो बढ़ रहे हैं; किंतु आयु समाप्त होती जा रही है। जन्म होते ही मनुष्य मृत्युकी ओर अग्रसर होने लगता है, यद्यपि आयु बढ़नेपर बड़ा होना मानकर प्रतिवर्ष वर्षगाँठपर उत्सव मनाते हैं!

मृत्यु एक प्राकृतिक घटना है, जो प्रत्येक शरीरधारीके साथ घटित होती है; किंतु फिर भी मनुष्य मृत्युसे ऐसे डरते हैं, जैसे बालक अन्धकारमें प्रवेश करनेसे डरते हैं। जैसे बाहरसे उड़ती हुई चिड़िया प्रकाशपूर्ण कमरेमें प्रवेश करके उसमें थोड़ी देर उड़ती हुई वहाँसे निकलकर फिर बाहर अन्धकारमें विलीन हो जाती है। ऐसा ही प्रतीत होता है—ऐहिक जीवन। मनुष्य मृत्युमें विलीन होनेके भयसे भयभीत रहता है। प्रायः संसारमें कोई किसी प्रकारका भी भय मृत्यु-भयसे बढ़कर नहीं होता है। इसीलिये मृत्यु भयको 'भयराज' (Master fear) कहते हैं। जिसने मृत्युके भयको जीत लिया, उसने समस्त भयोंपर विजय पा ली। जिसने मृत्युको मित्र समझ लिया, उसने जीवनको मित्र बना लिया। मृत्युके भावसे भय उत्पन्न होनेपर जीवन दूभर बोझ बन जाता है।

मृत्युका सम्यक् स्मरण विवेकशील मनुष्यको पुण्यकी ओर प्रवृत्त करता है, भयभीत नहीं करता है। मृत्युका भय समाप्त होनेपर मृत्यु एक महोत्सव बन जाती है। यदि स्वस्थ, सुखी जीवन-यापन करना एक कला है तो मृत्युका सुखद आलिङ्गन भी एक कला है। श्रेष्ठ सिद्धान्तों, आदर्शोंपर चलते हुए जीवनको सुखमय बनानेवाला व्यक्ति ही आदर्शोंके लिये मरना जानता है, ताकि मृत्यु एक सुखपूर्ण जीवनावसान बन जाय। आदर्शोंके लिये जीनेवाले और आदर्शोंके लिये ही मरनेवाले मनुष्य धन्य होते हैं और उनके लिये मृत्यु एक महोत्सव होता है।

विवेकशील व्यक्तिके लिये मृत्यु कोई समस्या नहीं है। यह देहान्तर-प्राप्तिका एक साधन है। मैं देह नहीं हूँ। मैं चैतन्य हूँ, मैं चिरन्तन हूँ। मेरी मृत्यु होनेका प्रश्न ही नहीं उठता है। आत्माका वाहन शरीर क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर—पञ्चतत्त्वोंसे विनिर्मित है और विनाशशील है। यही विवेक है, ज्ञान है।

मनुष्य धन-सम्पत्ति इकट्ठा करके संसारमें ही छोड़कर ऐसे चला जाता है, जैसे बटोही सरायमें कुछ समय रहकर अकस्मात् चला जाता है। संसारकी वस्तुएँ मेरी हैं ही नहीं और मेरी हो भी नहीं सकती हैं। उनके संग्रहके लिये पाप करना और उनके साथ मोह जोड़ना, अथवा उनपर अपना स्वत्व मानना, अधिकार समझना एक दुःखदायक भूल है।

मित्र और कुटुम्बी तो श्मशानतक साथ देते हैं और मृतक व्यक्तिकी देहको भस्मीभूत करके अपने-अपने कार्यमें संलग्न हो जाते हैं। इस जीवनकालमें किये हुए सत्कर्म अथवा दुष्कर्म संस्कार बनकर जीवात्माके आगामी जीवनमें प्रारब्ध बनकर साथ रहते हैं। वायु जिस प्रकार गन्धस्थानसे सुगन्ध अथवा दुर्गन्धको ग्रहण करके ले जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा भी त्याग दिये गये हुए पहिले शरीरसे मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर दूसरे शरीरमें ले जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

> शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
> गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥
>
> (गीता १५।८)

मनुष्यकी सच्ची कमाई वह है जो उसके साथ जाय और आगामी जीवनयात्रामें सहायक हो। क्योंकि तिजोरी और बैंकमें रखा हुआ धन, जिसे हमने प्राणपणसे कमाया और परिश्रमसे सुरक्षित रखा, नहीं साथ जायगा। दिया हुआ दान, किया हुआ परोपकार और सत्कर्म साथ जायगा। केवल आत्माराम ही सदा है, अन्य सब पदार्थ मिथ्या हैं—नहीं सत् भगवान् सत्य है, नित्य है। हम अमृत ५

पाप करनेवालोंको आसुरी योनि तथा अधम गतिकी प्राप्ति (गीता १६ । २०)

अनन्य भजनसे महात्मा भक्त बन जाता है (गीता ९ । ३०-३१)

आदेश दिया और अपने प्रशंसकोंको भी न रोनेका आदेश दिया था। कभी-कभी अल्प आयुमें मृत्यु हो जाती है, जिसके कारण माता-पिता, कुटुम्बीजन तथा मित्रगण रोने लगते हैं; किंतु प्रभुका विधान सदैव प्रसन्नतापूर्वक मान्य होना चाहिये। मालीने हरे-हरे पौधोंको भी क्यों काट दिया, माली ही समझता है। कभी-कभी सड़क बनानेके लिये नये-नये मकान भी उखाड़ दिये जाते हैं। इनके अतिरिक्त सभी अपने-अपने कर्मानुसार अल्पायु अथवा दीर्घायुमें मृत्युको प्राप्त होते हैं। ईश्वरका विधान निर्दोष है। मोहवश रोकर दुःखवृद्धि करना अविवेक है। स्वयं रोना, दूसरोंको रुलाना अविवेक है। अनेक बार सहानुभूति प्रकट करनेवाले व्यक्ति स्वयं अश्रुपात करके दूसरेको शोकनिमग्न कर देते हैं; शोक दूर करनेका प्रयत्न ही नहीं करते हैं।

सत्य तो यह है कि संसारमें मिलना और बिछुड़ना सभी कर्मवश होते हैं। कुछ पक्षी एक वृक्षपर संयोगवश बैठे हैं। फिर वे उड़कर विभिन्न वृक्षोंपर बैठ जाते हैं और पुराने सम्बन्ध भूल जाते हैं। रेलके डिब्बेमें जब तक बैठना है, हँस-खेलकर प्रेमपूर्वक बैठना चाहिये। फिर विभिन्न स्टेशनोंपर सबको एक एक करके उतरना पड़ेगा। यदि न उतरेंगे तो डिब्बेमें स्थान ही न रहेगा। संसारका खेल विचित्र है। एक व्यक्तिकी मृत्युपर एक स्थानपर रोना मच रहा है और उसके अन्यत्र जन्म लेनेपर किसी माताकी गोदमें पुत्ररत्न आ जाता है और शहनाई बजती है। मृत्यु होनेपर पुराने नाते टूट जाते हैं, जिससे उनका मिथ्यापन सिद्ध हो जाता है।

मृत्यु महोत्सवके समुपस्थित होनेपर उल्लासका अनुभव करें। रामको हृदयमें आसीन करके, रामके ध्यान स्मरणमें *निमग्न होकर राममें विलीन होना ही जीवन-यात्राकी परम* सफलता है।

किञ्चिन्मात्र तो विचार करें कि सच बात क्या है? युधिष्ठिर कहते हैं—

अस्मिन् महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्ता॥
(महाभारत, वनपर्व ३१३। ११८)

अर्थात् 'यह संसार एक महामोहरूपी कड़ाह है; सूर्यरूपी अग्नि उसे गरम कर रही है, रात्रि और दिन ईंधन-की भाँति उसे परितप्त कर रहे हैं, मास और ऋतु (समय) एक दर्वी (घोटनेवाला डंडा) है, जिसके द्वारा घोटनेसे काल प्राणियोंको (कड़ाहमें) पका रहा है।' वास्तविक (सत्य) बात यह है, शेष सब बातें व्यर्थ हैं।' राममय होकर पवित्रहृदयसे पुण्यकर्म करना ही एकमात्र सुरक्षा है, वास्तविक सुख है।

अवसर बीतनेपर पछतानेसे क्या लाभ ?

लाभ कहा मानुष-तनु पाये।
काय-बचन-मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पराये॥
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहिं बुलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन समुझत नहिं समुझाये॥
पर-दारा, पर-द्रोह, मोह-बस किये मूढ़ मन भाये।
गरभबास दुखरासि जातना तीब्र बिपति बिसराये॥
भय, निद्रा, मैथुन, अहार सबके समान जग जाये।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि मद अभिमान गवाँये॥
गई न निज-पर-बुद्धि सुद्ध ह्वै रहे न राम-लय लाये।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनि के पछिताये॥

—तुलसीदासजी

'गो-हत्या-निरोध'के प्रश्नको लेकर पिछले समय कुछ महाप्राण महात्माओं तथा अन्य लोगोंने अनशन किया था। कुछ विद्वन्मन्य व्यक्तियोंने उस त्यागके महत् प्रयासको 'आत्महत्याका प्रयत्न' कहनेकी धृष्टता की थी। यदि मनुष्यकी बुद्धिमें भ्रम हो जाय तो वह उलटा समझने लगता है। तामसी बुद्धि पुण्यको पाप और पापको पुण्य बतलाती है। अतः आवश्यक है कि हम यहाँ आत्मत्याग, आत्महत्या और स्वेच्छामृत्युके भेदोंको ठीक-ठीक समझ लें।

आत्मत्याग

अनशन ही आत्मत्याग नहीं है। पिछले वर्षों वियत-*नाममें कुछ बौद्ध भिक्षुओंने वहाँके शासकके विरोधमें* अपनेको सार्वजनिक स्थानोंमें भस्म कर दिया। यह प्रयत्न आत्महत्या माने जायँ, ऐसा कहना धृष्टता होगी।

अनशन और आत्मदाह—ये दोनों आत्महत्या भी हो सकते हैं और आत्मत्याग भी। इनमें उद्देश्यको देखना पड़ेगा। वैयक्तिकरूपसे भी जब अन्यायके प्रतिकारका दूसरा कोई उपाय न रह जाय, तब निर्बलके लिये अनशनका मार्ग अपनाना आत्महत्या नहीं है।

जब कोई धर्म, जाति, समाज या राष्ट्रके लिये अपने जीवनको समर्पित कर देता है, तब उसके प्राणान्तकी रीति क्या रही, इसका कोई अधिक महत्त्व नहीं रह जाता। यतीन्द्रनाथ दास और उत्तम विजयपुंगीने अनशन करके प्राणत्याग किया था। उनका अनशन कारागारमें बंदी देशभक्तोंके कष्टको कम करनेके लिये था। सैकड़ों क्रान्तिकारी फाँसीपर चढ़े अथवा गोलीसे मारे गये। श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी अपने नगरमें होनेवाले साम्प्रदायिक दंगोंको शान्त करनेका प्रयत्न करते समय आततायीद्वारा मार दिये गये। ये सब समानरूपसे महान् एवं आत्मत्याग करनेवाले पुण्यात्मा होने चाहिये।

जब व्यक्तिगत स्वार्थ और सर्वथा अनुचित दुराग्रह किसीके अनशन, आत्मदाह या मृत्युका कारण हो—तभी उसे 'आत्महत्या' कहा जा सकता है। जैसे कोई किसीके विरुद्ध अनशन करे—'मुझे इतने रुपये दो या मैं तुम्हारे द्वारपर प्राण दे दूँगा।' अथवा कोई हठ करे—'अमुक वर्ग या परिवार मेरा धर्म, मेरी आराधना-पद्धति अपनावे, नहीं तो मैं आत्मदाह कर लूँगा।' यह सर्वथा आत्महत्याकी बात है। इसे साधनको दण्डनीय मानना चाहिये और सामान्य व्यक्तियोंको ऐसे दुराग्रहोंकी—ऐसी मृत्युकी भी उपेक्षा करनी चाहिये।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजीने भी कई बार अनशन किया। उनके अनशनको कोई आत्महत्याका प्रयत्न कहे तो वह मूर्ख ही होगा। इसी प्रकार किसी भी महत् प्रयत्नके लिये होनेवाला अनशन अथवा अन्य किसी प्रकारसे मृत्युका वरण 'आत्मत्याग' है, पुण्य है।

जिन कार्योंमें मृत्यु होनेकी सम्भावना अधिक रहती है, उनमें किसी महान् उद्देश्यको लेकर जो सम्मिलित होते हैं—वे भी 'आत्मत्यागी' हैं। उनकी मृत्यु न हो या हो; किंतु *उन्होंने अपनी ओरसे तो अपनेको उसके लिये प्रस्तुत कर* ही दिया था। जैसे, जो लोग स्वाधीनताके क्रान्तिकारी आन्दोलनमें सम्मिलित हुए, जो लोग सत्याग्रह आन्दोलनमें गोली चलनेकी सम्भावना होनेपर भी जुलूसों और सभाओंमें डटे रहे, जो सैनिक देशकी रक्षाके लिये युद्धमें लड़ते रहे अथवा जिन पुण्यपुरुषोंने गोरक्षार्थ आमरण अनशनका व्रत लिया था, ये सब आत्मत्यागी हैं।

आत्मत्याग महान् पुण्य है; क्योंकि प्राणीको सबसे अधिक मोह शरीरसे—जीवनसे है। किसी महान् उद्देश्यके लिये अपने जीवनके त्यागका संकल्प महत्संकल्प है और उसका पुण्यफल भी महान् है।

आत्महत्या

जहाँ आत्मत्याग महापुण्य है, वहाँ आत्महत्या महापाप है। किसी दुराग्रहके वश, किसी रोग-शोक-अर्थहानि-अपमान या इनके भयसे, किसी असफलता-अपयश आदिसे घबराकर, किसी लड़ाई-झगड़ेके कारण जब मनुष्य बलात् मरता है, तो उसे 'आत्महत्या' कहा जाता है।

सिर फोड़कर, गोली मारकर, जलमें डूबकर, आगसे जलकर, फाँसी लगाकर, ऊँचेसे कूदकर, रेल या किसी भारी यानके नीचे आकर, बिजलीसे या अन्य किसी भी प्रकारसे मृत्युको चुना जाय, मृत्युकी पद्धतिसे कोई अन्तर नहीं पड़ता। इससे आत्महत्याका पाप कम नहीं होगा।

आत्मत्याग और आत्महत्यामें एक बड़ा अन्तर है। आत्मत्याग विचारपूर्वक होता है। उसमें आवेश आदि नहीं है। आत्महत्या आवेशमें होती है।

आत्महत्याकी इच्छा एक मनोरोग है और

हृदयमें ले आकर कुछ देर (कुछ पल) स्थिर रखे। फिर प्राणवायुके साथ उसे कण्ठमें होते भ्रूमध्यमें ले आवे। यहाँ हृदयकी अपेक्षा कुछ अधिक देर वायुको रोके रहे। यहाँसे ऊपर मस्तकमें (ब्रह्मरन्ध्रमें) वायुको ले जाय और आधे मुहूर्त वहाँ रोककर, प्रणवका मानसिक उच्चारण करता हुआ, अपने इष्टदेवका स्मरण करता हुआ अथवा लय-पद्धतिसे तत्त्वों-के लयका चिन्तन करके, एक परमात्मामें स्थित हो, वायुको मूर्धाद्वारका स्फोट करके निकल जाने दे।

यह सर्वश्रेष्ठ इच्छामृत्यु है। इतना कर पानेमें जो समर्थ नहीं हैं, वे मृत्युकाल उपस्थित जानकर अपनी भावनाके अनुसार जप करते, पाठ करते या सुनते हुए देह-त्याग करते हैं।

२—मृत्युकाल उपस्थित हो जानेपर भी उसे थोड़े समयके लिये टाल देनेमें कुछ महापुरुष समर्थ होते हैं। महाभारतके युद्धमें पितामह भीष्म रथसे गिर पड़े। उनके अङ्गोंमें इतने बाण लगे थे कि शरीर भूमिपर न गिरकर उन बाणोंपर ही रुका रहा। इस शरशय्यापर पड़े-पड़े भी उन्होंने दक्षिणायनमें प्राण-त्याग करना ठीक नहीं समझा और सूर्यके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षा करते रहे।

महाभारतका युद्ध मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशीको प्रारम्भ हुआ। इसी तिथिको गीता-जयन्ती मनायी जाती है। युद्धके दसवें दिन अर्थात् पौष कृष्ण पञ्चमीको पितामह भीष्म शरशय्यापर गिरे। माघ शुक्ल अष्टमी (भीष्माष्टमी) को उन्होंने सूर्यके उत्तरायण होनेपर देह-त्याग किया। इस प्रकार डेढ़ महीने उन्होंने मृत्युकाल टाल दिया।

३—शास्त्रोंमें अमुक स्थितिमें देह त्याग देनेका निर्देश है। जैसे वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करते समय अपनी शारीरिक क्षमता देखकर एक, दो, तीन, पाँच, सात, नौ या बारह वर्ष इस आश्रममें रहनेका संकल्प ग्रहण किया जाय—ऐसा निर्देश है। अब यदि उस संकल्पका समय तो पूरा हुआ नहीं और रोग या दुर्बलताके कारण वानप्रस्थाश्रमके कठोर नियम-तपादिका पालन सम्भव नहीं रह गया, तो क्या किया जाय? असमर्थ होनेपर नियम-पालन छोड़ने या ढीला करनेकी छुट्टी दूसरे आश्रमोंमें तो है; किंतु वानप्रस्थाश्रममें नहीं है। वान-प्रस्थके लिये विधि है कि नियम-पालन सम्भव न हो तो अनशन करके, अथवा अग्नि प्रज्वलित करके उसमें प्रवेश करके देह-त्याग कर दे।

कई प्रकारके पापोंका मरणान्त प्रायश्चित्त शास्त्रोंने बतलाया है। कौन-से पापके प्रायश्चित्तमें किस प्रकार देह-त्याग किया जाय, यह वर्णन भी है। जैसे आचार्य श्रीकुमारिल भट्टने त्रिवेणीतटपर तुष (भूसी) की अग्निमें बैठकर (धीरे-धीरे जलते हुए) देह-त्याग किया था।

कुछ विशेष स्थलोंपर परिस्थितिविशेषमें विशेष रीतिसे देह त्यागकी अनुमति थी। 'काशी-करवट' इसमें बहुत प्रसिद्ध है। अब ये पद्धतियाँ लुप्त हो चुकी हैं।

इस प्रकारके देहत्यागको आत्महत्या नहीं माना गया है। यह आत्मदान भी नहीं है। शास्त्र इसे 'इच्छामृत्यु' कहता है। इसमें आत्महत्याका पाप नहीं होता।

(३)

असामान्य जन्म एवं मृत्यु

महर्षि अगस्त्य एवं वसिष्ठका जन्म घटसे हुआ था। स्वामिकार्तिकेय सरकंडोंके वनमें उत्पन्न हुए। भगवती जानकी प्रकट हुईं भूमिसे। द्रौपदी और उनके भाई धृष्टद्युम्न-का प्राकट्य यज्ञवेदीसे हुआ। ऐसे बहुत-से असाधारण जन्मोंकी बातें पुराणोंमें हैं।

इसी प्रकार असाधारण देह-त्यागके वर्णन भी मिलते हैं। जैसे—सांख्याचार्य भगवान् कपिलकी माताने जब शरीर छोड़ा तो उनका शरीर पानी बन गया और उससे एक नदी निकली। श्रीचैतन्य महाप्रभुका शरीर श्रीजगन्नाथजीके श्री-विग्रहमें लीन हो गया। मीराँबाईका शरीर श्रीद्वारिकाधीशके श्रीविग्रहमें प्रविष्ट हो गया।

उदाहरण तो पुराण-उपपुराण तथा लौकिक सन्त पुरुषोंमें ऐसे बहुत मिल जायँगे। यहाँ घटनाओंका विवरण नहीं देना है। ऐसा कैसे होता है, इसपर विचार करना है।

भगवती जानकीका प्राकट्य हुआ। उनका शरीर दिव्य था—चिन्मय था। महर्षि अगस्त्य एवं महर्षि वसिष्ठ पूर्व-जन्ममें भी महर्षि थे और उनमें विशेष शक्ति थी। स्वामिकार्तिक देवता हैं। उनका शरीर भौतिक अन्नमय शरीर है ही नहीं। इनको छोड़ भी दें, ऋषियोंको भी आकार अपना दिव्यदेह कह लीजिये; किंतु धृष्टद्युम्न तो न अवतार था, न उसका शरीर दिव्य था। द्रौपदी और धृष्टद्युम्न—ये दोनों महाराज द्रुपदके यज्ञमें यज्ञीय कुण्डकी अग्निसे प्रकट हुए।

उसे कह दें—'यह अग्नि है' तो उसके हाथपर फफोला पड़ जायगा। उस व्यक्तिके मनमें असंदिग्धभाव बना कि यह अग्नि है, यह तो ठीक; किंतु ठोस भौतिक पदार्थ बरफका गुण-धर्म उसके संकल्पने कैसे बदल दिया?

इतनी सब बातोंको यहाँ लिखनेका तात्पर्य यह है कि सिद्धियोंका तत्त्व ही यही है कि जगत्के पदार्थ वस्तुतः ठोस पदार्थ नहीं हैं। वे संकल्पात्मक हैं। सृष्टिकर्ताका संकल्प ही घनीभूत होकर हमें इन पदार्थोंके विभिन्न रूपोंमें उपलब्ध हो रहा है। जैसे स्वप्नका समस्त दृश्य, उसके सब पदार्थ संकल्पात्मक होते हैं, उसी प्रकार हमारा जाग्रत्‌का यह संसार भी संकल्पात्मक ही है। इसीलिये प्रबल संकल्प इसमें अपने अनुकूल परिवर्तन कर लिया करता है।

'जगत् स्वप्नवत् है। यह मायामय है।'—इस प्रकारकी बातें प्रायः सभी धार्मिक ग्रन्थोंमें प्रचुरतासे पायी जाती हैं। एक बार आप इसे ठीक हृदयगम कर लें तो जगत्‌में जो कुछ भी अद्‌भुत आश्चर्यजनक लगता है, उसको समझनेमें आपको कठिनाई नहीं होगी। इस तथ्यको अवगत किये बिना जो भी समाधान ढूँढ़ें अथवा दिये जायँगे, उनकी अपूर्णता नयी-नयी शङ्काएँ उत्पन्न ही करती रहेंगी।

अब अपने मूल विषयपर आवें। जब जगत्‌के सब पदार्थ संकल्पात्मक हैं, तब शरीर भी संकल्पात्मक ही है। किसीका शाप-वरदान अथवा अपना प्रबल संकल्प शरीरको अपने अनुकूल परिवर्तित कर सकता है, सिद्धिके द्वारा शरीर भारी-हल्का, छोटा-बड़ा हो सकता है, तो शरीरका जन्म तथा उसका लय भी प्रबल संकल्पके अनुसार हो सकता है; क्योंकि संकल्प मनमें होता है और स्थूल शरीरके न रहनेपर भी मन तो रहता ही है।

जो तपस्वी, सिद्ध पुरुष माताके गर्भमें आना पसंद नहीं करते, उनका संकल्प ही उन्हें 'अयोनिज' जन्म दे देता है। महर्षि अगस्त्य, महर्षि वसिष्ठ, द्रौपदी, धृष्टद्युम्नादिकी जन्मकथाएँ इसी बातको बतलाती हैं। इनके पूर्वजन्मका वर्णन पढ़नेपर यह बात स्वयं स्पष्ट हो जाती है। संकल्प यदि प्रबल है तो स्रष्टाके संकल्पसे एक होकर उसीमें परिवर्तन कर लेता है। इन्द्रजाल करनेवाले पदार्थको थोड़ी देरके लिये दिखा देते हैं, अनुभव करा देते हैं। उस समय वह पदार्थ देखने, छूने, चखनेमें वास्तविक ही लगता है। जो बात संकल्प कुछ क्षणके लिये सम्भव बना सकता है, वही बात अधिक शक्ति होनेपर कुछ वर्षके लिये भी सम्भव बना सकता है, यह बात समझमें आनी चाहिये। इस प्रकार उनके शरीर वैसे ही साधारण होते हैं या हो सकते हैं, जैसे साधारण जन्मसे उत्पन्न शरीर। यह बात वैसी ही है जैसे संकल्प-बलसे बनाये गये या बदले गये पदार्थ गुण-धर्ममें साधारण पदार्थों-जैसे ही बनते हैं और साधारण पदार्थोंके समान ही उनपर वातावरणका प्रभाव पड़ता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु या मीराँबाईने कोई संकल्प नहीं किया था श्रीविग्रहमें लीन होनेका; किंतु सहज भावसे उनका मन उस श्रीमूर्तिमें लीन हो रहा था। यह तल्लीनता जब बहुत बढ़ गयी—शरीर भी उस मूर्तिमें लय हो गया। शरीरका यह रूप भी मनने ही दिया है। हमारा स्थूल-शरीर हमारे सूक्ष्मशरीरके अनुरूप ही बना है। जब सूक्ष्म शरीरमें—मनमें सम्यक् एवं पूर्णतः दूसरा आकार आ गया, उससे तादात्म्य हो गया तो इस शरीरका भी उसमें तादात्म्य हो जाना स्वाभाविक है। माता देवहूतिके मनमें किसी आकारसे तादात्म्य नहीं आया। केवल भक्तिके कारण हृदयका परिपूर्ण द्रवीभाव सम्पन्न हुआ; अतः उनका स्थूल-देह भी द्रवीभूत हो गया।

(४)

परेच्छाभोग एवं अकालमृत्यु

यह विश्व परस्पराश्रित एवं परस्पर सम्बन्धित ही चलता है। यहाँ कोई एक व्यक्तित्व अपने आपमें स्वतन्त्र नहीं है। अपने शरीरमें ही हम देखते हैं तो इसका प्रत्येक कण अपनी क्रियाके लिये पूरे शरीरपर आश्रित है और अपनी क्रियासे पूरे शरीरको प्रभावित करता है। जब कोई कण शरीरसे पृथक् कुछ करने लगता है तो वह रोगका कारण बन जाता है। उसकी चिकित्सा करनी पड़ती है। इसी प्रकार हम सब लोग विराट् भगवान्‌के शरीरमें स्थित हैं। हम सब अपनी क्रिया एवं अपने भोगके लिये भी विराट्—समष्टिपर निर्भर हैं।

परेच्छाभोग—दुःख, अपमान, अभाव, रोग, असुविधा, अवनति कोई नहीं चाहता; किंतु सबके जीवनमें ये आते हैं। रोग, शोक, बुढ़ापा और मृत्यु, जीवनमें क्यों आते हैं? इसलिये आते हैं, क्योंकि प्रारब्धका भोग ऐसा है। इन्हें

होता है। कर्मका नियन्ता अपनी ओरसे कोई परिवर्तन प्रारब्धमें नहीं करता। लेकिन इस नियममें भी अपवाद है। जो भगवान्‌का आश्रय लेनेवाले लोग हैं, उनके सर्वसमर्थ परम दयामय प्रभु भले सर्वसामान्यके लिये समदर्शी हों; किंतु अपने शरणागतके लिये तो वे 'भक्तपक्षपाती' हैं। वे अपने आश्रितके ऐसे प्रारब्धभोगको, जो उसका अमङ्गल कर सकता हो (उनकी दृष्टिमें अमङ्गलकारी हो), निष्क्रिय कर देते हैं। भगवान्‌ने श्रीमद्भागवतमें स्वयं कहा है—

'यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।' (१०।८८।८)

'जिसपर मैं कृपा करता हूँ, (अनर्थोंमें ले जानेवाला) उसका धन मैं हरण कर लेता हूँ।'

अब प्रारब्धमें यदि उसके धन हो ही नहीं तो उसके हरणकी बात क्यों कही जाय? केवल धन ही आप हरण नहीं करते, दुःख-दुर्भाग्य और पापादि समस्त अमङ्गलोंका हरण कर लेते हैं।

सबको स्वेच्छाभोग बनाइये

प्रारब्ध केवल परिणाम प्रकट करता है। आप कर्म करनेमें स्वतन्त्र हैं; अतः मानसिक कर्म करनेमें—भावना करनेमें भी आप स्वतन्त्र हैं। अतः आप चाहें और थोड़ा अभ्यास कर लें तो प्रारब्धके सब भोगोंको आप स्वेच्छाभोग बना ले सकते हैं और ऐसा करनेपर आपके दुःख तो मिट ही जायँगे, हर कष्ट, हर अभाव आपको पुण्य देनेवाला बन जायगा।

आप परिस्थिति परिवर्तित कर देनेमें स्वतन्त्र नहीं हैं, यह बात प्रतिकूल परिस्थितिके लिये ठीक है। अनुकूल परिस्थिति—सुखके त्यागके लिये आप स्वतन्त्र हैं; क्योंकि नियम यह है कि पुण्यका भोग—पुरस्कारके त्यागमें प्राणी स्वतन्त्र होता है। पापका भोग—अपराधके दण्डको तो स्वीकार ही करना पड़ता है।

अब आप देखिये कि कर्म करनेमें—भावना बनानेमें तो आप स्वतन्त्र हैं ही, प्रारब्धमें भी जो सुखद है, अनुकूल है, उसे त्याग देनेमें—उसका दान कर देनेमें आप स्वतन्त्र हैं। केवल प्रतिकूल प्रारब्धको अस्वीकार करनेमें आप स्वतन्त्र नहीं हैं। यह प्रतिकूल प्रारब्ध भी जब स्वेच्छाभोगके रूपमें आता है, तो उससे आपको कोई कष्ट नहीं होता। उलटे उससे आपको प्रसन्नता होती है। आप व्रत, तप, दान, यज्ञ आदिमें भूखे रहते हैं, श्रम करते हैं, धनका त्याग करते हैं और इसमें प्रसन्नता तथा गौरवका अनुभव करते हैं। यह सब करके आपको पुण्य होता है।

परेच्छा या दैवेच्छासे जो प्रतिकूलता आती है, उसमें आप तप या त्यागकी भावना बना लें तो वह भी स्वेच्छा प्रारब्धके समान आपको पुण्य देगा तथा उसमें दुःख नहीं रहेगा। वह भी आपको प्रसन्न करेगा। एक साधुको ज्वर आया था। मैं उनके समीप गया तो वे बोले—'आज तप कर रहा हूँ। लोग पञ्चाग्नि तापते हैं, मैं जाठराग्नि ताप रहा हूँ।' अब ज्वर जितना तीव्र हो, तपकी बुद्धि उसमें उतनी ही अधिक। ज्वरकी पीड़ा तो ज्यों-की-त्यों बनी रही; किंतु उसमें दुःख नहीं रहा। उसमें गौरवभाव आ गया और ज्वरमें तपका पुण्य होने लगा।

मेरे एक परिचित व्यापारी हैं। बहुत ईमानदार, सच्चे तो हैं ही, बहुत प्रसन्नमुख, परिश्रमी और अध्ययनशील व्यक्ति हैं। व्यापारमें कभी हानि होती है तो प्रसन्नमुख कहते हैं—'सब मुझे ही क्यों मिलना चाहिये? समाजने अपना भाग दान ले लिया।' अब घाटेमें उन्हें दान-बुद्धि हो गयी तो दुःख तो विदा हो ही गया, दान करनेका पुण्य भी होता ही है।

एक सज्जन गिर गये। कड़ी चोट लगी। हड्डी टूट गयी। पैरपर पलस्तर चढ़ा था। हँसते हुए कह रहे थे—'चलो, प्रायश्चित्त हो गया। इन पैरोंसे जाने कितने ठौर-कुठौर घूमा हूँ, अब इन्हें दण्ड तो मिलना ही चाहिये था।'

'घरट पड़े की हरगंगा' व्यर्थ नहीं है। सचमुच उनका प्रायश्चित्त हो गया। आप भी इस प्रकारका अभ्यास कर लें तो प्रारब्धसे आये प्रतिकूल भोग आपको दुःखी नहीं करेंगे—उनमें व्यथा नहीं होगी। साथ ही वे पुण्य देकर अथवा पापका प्रायश्चित्त पूरा कराकर जायँगे। आप उनके द्वारा यह दुहरा लाभ उठाना सीख लें।

अकालमृत्यु

केवल प्रारब्धसे आये दुःखोंके सम्बन्धमें ही भावना बदली जा सकती हो, ऐसी बात नहीं है। भावना तो मृत्युके सम्बन्धमें भी बदली जा सकती है। मृत्युके सम्बन्धमें भाव बदल लिया जाय तो वह मृत्यु हमको—जन्ममरणसे ही मुक्त कर देनेवाली हो जाती है। मृत्युके

मृत्युकी विभीषिका और उसका निराकरण

(लेखक—श्रीरामलालजी)

विश्वके प्रायः समस्त धर्मग्रन्थोंमें मृत्युके विकराल तथा भीषण रूपका अङ्कन मिलता है। यद्यपि मृत्यु अपनी बाह्य आकृतिमें रूपतः अत्यन्त भयंकर और अशोभन है, तथापि विश्वके अनेक दर्शन और विचार तथा संत-महात्माओंके चिन्तनसे पता चलता है कि यह स्वरूपतः परम करुणामयी और परोपकारिणी है। जीवात्माका इसके माध्यमसे कल्याण-साधन होता है। मृत्यु अनिवार्य है, इसकी वास्तविकताके निरूपणमें भगवान् श्रीकृष्णका कथन है।

मृतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्न प्रतिक्रियाम्।

(श्रीमद्भागवत १ । ८ । ४)

मृत्युके भयसे छुटकारा पानेके लिये प्रायः यह बहाना किया जाता है कि 'मृत्यु नामकी वस्तुका अस्तित्व ही नहीं है'। अपने-आपको सान्त्वना देनेके लिये अनेक लोग ऐसा भी कहते हैं कि 'मृत्यु तो बहुत दूर है'। मृत्युके सम्बन्धमें इस तरहका दृष्टिकोण उसके भीषण रूपके प्रति हमें निश्चिन्तता नहीं प्रदान कर सकता। साथ ही-साथ यह भी स्मरणीय है कि 'मृत्यु शाश्वत निद्रा है। इसमें भयके लिये अवकाश नहीं है।' पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटोने मृत्युको शरीरसे जीवात्माका अलग होना माना है। उसकी दृष्टिमें मृत्यु और कुछ भी नहीं है। संत तिरुवल्लुवरके तमिळ वेद 'कुरल'में विज्ञप्ति है कि ''यह सोचना कि 'अमुक वस्तु सदा बनी रहेगी'—सबसे बड़ा अज्ञान है। पक्षी अपना घोंसला छोड़कर उड़ जाता है, इसी तरह देह और (जीव) आत्माका सम्बन्ध क्षणभर है। आत्मा देहको छोड़कर चला जाता है। मृत्यु नींद है और जन्म नींदके पश्चात् जागनेका नाम है।''

मृत्युके स्वरूपपर विचार करते हुए आधुनिक विज्ञान-जगत्के महान् वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र वसुका कथन है कि—'मृत्यु चेतन अवस्थासे अचेतन अवस्थाकी परिणति है।' सांख्यदर्शनके परम विज्ञानी भगवान् कपिलका देवहूतिके प्रति कथन है—

देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन्।
भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान्॥
जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः।
तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः॥

(श्रीमद्भागवत ३ । ३१ । ४३-४४)

इसका आशय यह है कि 'जीवके उपाधिभूत लिङ्गदेहके द्वारा पुरुष एक लोकसे दूसरे लोकमें जाता है और अपने प्रारब्ध कर्मोंको भोगता हुआ निरन्तर अन्य देहोंकी प्राप्तिके लिये दूसरे कर्म करता रहता है। जीवका उपाधिरूप लिङ्ग-शरीर तो मोक्षपर्यन्त उसके साथ रहता है तथा भूत, इन्द्रिय और मनका कार्यरूप स्थूलशरीर इसका भोगाधिष्ठान है। इन दोनोंका परस्पर संगठित होकर कार्य न करना ही प्राणीकी मृत्यु है तथा दोनोंका साथ-साथ प्रकट होना ही जन्म है।'

भारतीय चिन्तन-जगत्की यह प्रत्यक्ष अनुभूति है कि मृत्यु कितनी ही भयंकर और भीषण हो, वह भगवान्के विधानसे सर्वथा अनुशासित है। भगवद्वाक्य है—

'मृत्युश्चरति मद्भयात्।'

(श्रीमद्भागवत ३ । २५ । ४२)

इस कथनकी सत्यता मृत्युकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें पूरी तरह चरितार्थ होती है। प्रजापति ब्रह्माद्वारा प्रजाकी सृष्टि होनेपर ही मृत्युकी उत्पत्ति हुई। इसके पहले मृत्युका अस्तित्व नहीं था। ऋग्वेदका 'नासदीय सूक्त' प्रमाण है।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः
किमासीद् गहनं गभीरम्॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥

(ऋग्वेद १० । १२९ । १-२)

'इस जगत्के उत्पन्न होनेके पहले न असत् था, न सत् था। उस समय अनेक लोक भी नहीं थे। न आकाश था। जो उससे भी परे है, वह भी नहीं था। उस,

वरदान देंगे। तुम पापमुक्त होकर अपने निर्मल स्वरूपसे विख्यात होगी।' मृत्युने ब्रह्माकी आज्ञा मान ली। उसने निवेदन किया—'लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता और एक-दूसरेके प्रति कही गयी कठोर वाणी—ये दोष ही देहधारियोंके शरीरका भेदन करें।' ब्रह्माने कहा—'ऐसा ही होगा। तुम धर्ममें तत्पर रहनेवाली और धर्मानुकूल जीवन बितानेवाली धरित्री होकर समस्त जीवोंके प्राणोंका नियन्त्रण करो। काम और क्रोधका परित्याग कर जगत्के प्राणियोंका संहार करो। ऐसा करनेसे अक्षय धर्मकी प्राप्ति होगी। मिथ्याचारी पुरुषोंको तो उनका अधर्म ही मार डालेगा।'

इस तरह नारदने अकम्पनको मृत्युकी उत्पत्तिका आख्यान सुनाया। यह आख्यान महाभारतमें वर्णित होनेके नाते सर्वथा ऐतिहासिक है। इसे कोरी कल्पना या भावात्मक रूपक मानना असंगत है। नारदने उत्पत्तिपर प्रकाश डालकर मृत-पुत्रके लिये शोक न करनेका जो उपदेश दिया, उससे मृत्युकी विभीषिकाका सहज निराकरण हो जाता है। नारदने कहा कि 'यही मृत्यु अन्तकाल आनेपर काम और क्रोधका परित्यागकर अनासक्तभावसे समस्त प्राणियोंके प्राणका अपहरण करती है। यही प्राणियोंकी मृत्यु है। इसीसे व्याधियोंकी उत्पत्ति हुई है। आयु समाप्त होनेपर सबकी मृत्यु होती है। आयुके अन्तमें सारी इन्द्रियाँ प्राणियोंके साथ परलोकमें जाकर स्थित होती हैं और पुनः उनके साथ ही इस लोकमें लौट आती हैं। इस तरह सभी प्राणी देवलोकमें जाकर देवस्वरूपमें स्थित होते हैं तथा वे कर्मदेवता मनुष्योंकी भाँति भोग समाप्त होनेपर इस लोकमें लौट आते हैं। भयंकर शब्द करनेवाला बलशाली प्राणवायु चेतन आत्माका नहीं, प्राणियोंके शरीरका ही भेदन करता है। आत्मा सर्वव्यापी और अनन्त तेजसे सम्पन्न है। उसका कभी आवागमन नहीं होता है'—

> मृत्युस्त्वेषां व्याधयस्तत्प्रसूता
> व्याधी रोगो रुज्यते येन जन्तुः।
> सर्वेषां च प्राणिनां प्रायणान्ते
> तस्माच्छोकं मा कृथा निष्फलं त्वम्॥
> सर्वे देवाः प्राणिभिः प्रायणान्ते
> गत्वा वृत्ताः संनिवृत्तास्तथैव।
> एवं सर्वे प्राणिनस्तत्र गत्वा
> वृत्ता देवा मर्त्यवद् राजसिंह॥
>
> वायुर्भीमो भीमनादो महौजा
> भेत्ता देहान् प्राणिनां सर्वगोऽसौ।
> नो वाऽऽवृत्तिं नैव वृत्तिं कदाचित्
> प्राप्नोत्युग्रोऽनन्ततेजोविशिष्टः॥
> (महाभारत, द्रोण० ५४। ४५-४७)

नारदने कहा कि 'यह मृत्यु भगवान्‌द्वारा प्राणियोंके हितके लिये प्रदत्त है। समय आनेपर यह यथोचितरूपसे संहार करती है। प्रजावर्गका प्राण लेनेवाली मृत्युको स्वयं ब्रह्माने रचा है। सब प्राणी स्वयं ही अपने-आपको मारते हैं। मृत्यु हाथमें डंडा लेकर इनका वध नहीं करती है। धीर पुरुष मृत्युको ब्रह्माजीका रचा हुआ निश्चित विधान समझकर मृत प्राणियोंके लिये कभी शोक नहीं करते हैं'—

> एषा मृत्युर्देवदिष्टा प्रजानां
> प्राप्ते काले संहरन्ती यथावत्।
> स्वयं कृता प्राणहरा प्रजानाम्॥
> आत्मानं वै प्राणिनो घ्नन्ति सर्वे
> नैतान् मृत्युर्दण्डपाणिर्हिनस्ति।
> तस्मान्मृतान् नानुशोचन्ति धीरा
> मृत्युं ज्ञात्वा निश्चयं ब्रह्मसृष्टम्॥
> (महाभारत, द्रोण० ५४। ४९-५०)

यह निर्विवाद है कि जो प्राणी जन्म लेता है, उसके शरीरके साथ मृत्यु भी उत्पन्न होती है। मृत्यु होती ही है, चाहे आज हो, अभी हो या सौ सालके बाद हो। श्रीमद्भागवतमें सूतका शौनकादि ऋषियोंके प्रति कथन है कि 'स्थूल रूपसे परे भगवान्‌का एक सूक्ष्म अव्यक्त रूप है। यह न तो स्थूलकी तरह आकारादि गुणोंवाला है, न देखने सुननेमें ही आ सकता है। यही सूक्ष्मशरीर है। आत्माका आरोप या प्रवेश होनेसे यही 'जीव' कहलाता है और इसीका बार-बार जन्म होता है। उपर्युक्त सूक्ष्म और स्थूल शरीर अविद्यासे ही आत्मामें आरोपित हैं। जिस अवस्थामें आत्मस्वरूपके ज्ञानसे यह आरोप दूर हो जाता है, उस समय—उस अवस्थामें ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। तत्त्वज्ञानियोंकी यह मान्यता है कि जिस समय यह बुद्धिरूप परमेश्वरकी माया निवृत्त हो जाती है, उस समय जीवात्मा परमानन्दमय हो जाता है तथा अपनी स्वरूप-महिमामें प्रतिष्ठित होता है'—

> अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणबृंहितम्।
> अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात् स जीवो यत्पुनर्भवः॥

जन्म और मृत्युका रहस्य

(लेखक—श्रीवीरेन्द्रस्वरूपजी अग्रवाल)

पञ्चभूतोंसे निर्मित यह देह नाशवान् है। प्रत्येक जन्मी हुई वस्तुकी मृत्यु होना एक शाश्वत सत्य है। विशुद्ध भौतिकवादी धारणाके अनुसार शरीरके निधनके साथ ही मनुष्यका सब कुछ समाप्त हो जाता है, कुछ शेष नहीं रहता। उनका मत है कि जिन तत्त्वोंसे शरीरकी रचना होती है, वे सब अपने मूलतत्त्वोंमें आकर विलय हो जाते हैं और पुनर्जन्मका प्रश्न ही नहीं उठता। वास्तवमें वे लोग जड और चेतनका भेद ही वस्तुरूपमें स्वीकार नहीं करते और उनके मतानुसार चेतनता जड पदार्थोंकी वैज्ञानिक अथवा रासायनिक प्रक्रियामात्र होती है, जो एक विशेष स्थितिमें उत्पन्न होती है। इसी कारण वे शरीरसे पृथक् आत्माका अस्तित्व नहीं मानते। जडसे ही चेतनताका उद्भव होनेके कारण इस सिद्धान्तको उद्भूतिवाद भी कहा जा सकता है। उदाहरणतः—

"Mind is an emergent from life, as life an emergent from a lower physico-chemical level of existence."—Samuel Alexander (Space, Time and Diety—Vol. II, page 14).

इसके विपरीत कुछ अध्यात्मवादी जन्म और मृत्युका अस्तित्व ही भ्रमात्मक मानते हैं और योगवासिष्ठीय सिद्धान्तके अनुसार इसको मनःसृष्टि कहकर सारे विवादसे बच निकलते हैं। वस्तुतः यह तो दर्शनकी उच्चतम पराकाष्ठा है। अतः इस विशुद्ध धारासे हटकर ही जीवनकी मीमांसा करनी उचित होगी।

उपर्युक्त दोनों धारणाओंके मध्यकी एक और आध्यात्मिक धारणा है, जिसमें चेतनका एक स्वतन्त्र अस्तित्व माना गया है। उसके अनुसार चेतनका जडसे उद्भव नहीं होता; अपितु चेतनका प्रतिबिम्ब पड़नेसे जड भी उद्भासित हो उठता है और चेतन-सा ही प्रतीत होता है। उसके अनुसार शरीरका निधन होता है; परंतु आत्मा अवशिष्ट रहता है।

गीतामें कहा गया है—न आत्माका जन्म होता है, न वह मर सकता है। शरीर आत्माका वस्त्रमात्र है, जिसे जीर्ण होनेपर त्यागकर नवीन धारण कर लिया जाता है। आत्मापर न शस्त्रोंका प्रभाव पड़ता है, न अग्नि, जल अथवा वायुका।' तात्पर्य यह है कि पञ्चमहाभूतोंका, जिनसे शरीरका निर्माण होता है, आत्मासे पृथक् एवं निम्नस्तर है।

एक अध्यात्मवादी मनीषीने एक स्थानपर लिखा है कि 'आत्मा तो कर्ता नहीं है, अपितु साक्षीमात्र है; अतः वह जन्मके बन्धनमें कैसे आ सकता है?' उनके मतानुसार पुनर्जन्मका सिद्धान्त ही भ्रममूलक है। वास्तवमें पुनर्जन्मकी घटनाएँ इतनी बहुतायतसे देखनेमें आ रही हैं कि उनको नितान्त भ्रमात्मक नहीं कहा जा सकता है। अतः उनका अस्तित्व स्वीकार करके उनकी वैज्ञानिक मीमांसा करनी आवश्यक है।

वस्तुतः स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरकी संज्ञाएँ सर्वसिद्ध हैं। स्थूलके अदर सूक्ष्म और सूक्ष्मके अन्तरमें कारण शरीरकी विद्यमानता निरपवाद है। इनकी रचना एवं क्षयका कारण जानकर ही आगे बढ़ा जा सकता है।

वैशेषिक सूत्रोंके अनुसार द्रव्य नौ हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन—

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।
(वैशेषिक० १। १। ५)

इनमेंसे प्रथम पाँच महाभूत कहलाते हैं। इन तत्त्वोंके चौबीस गुण हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार। दो परमाणुओंके आपसमें संयुक्त होनेसे द्व्यणुककी, तीन द्व्यणुकोंके संयोगसे त्र्यणुककी और चार त्रसरेणुओंके योगसे चतुरणुककी उत्पत्ति होती है। इसी क्रममें स्थूल पदार्थोंका जन्म होता है। विभिन्न परमाणुओंके विभिन्न संयोगोंसे अनेकानेक योनियाँ प्रकट होती हैं। इसी प्रकार संयोग गुणके कारण पञ्च महाभूतोंसे मानव-शरीरका निर्माण होता है तथा पृथक्त्व-गुणके कारण कुमार, यौवन एवं जरा अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं और मृत्यु होती है।

यह अवश्य जानना चाहिये कि आत्माका अस्तित्व स्वतन्त्र है और निरवयव सत्ता होनेके कारण वह नित्य है तथा सावयव सत्ता होनेसे शरीर अनित्य है। यही आत्मा स्थूल

आयुको काटनेवाले छः दोष

(लेखक—श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

धृतराष्ट्रने पूछा—

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा।
नाप्नोत्यथ च तत् सर्वमायुः केनेह हेतुना॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३७। ९)

'जब सभी वेदोंमें पुरुषको सौ वर्षकी आयुवाला बताया गया है, तो वह किस कारणसे अपनी पूर्ण आयुको नहीं पाता!'

उत्तरमें विदुरजीने कहा—

अतिमानोऽतिवादश्च तथात्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्॥
एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।
एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३७। १०-११)

'राजन्! आपका कल्याण हो! अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्यागका अभाव, क्रोध, अपना ही पेट पालनेकी चिन्ता (स्वार्थ) और मित्रद्रोह—ये छः तीखी तलवारें देहधारियोंकी आयुको काटती हैं। ये ही मनुष्योंका वध करती हैं, मृत्यु नहीं।'*

उपर्युक्त छः दोषोंकी क्रमशः व्याख्या की जाती है—

(१) ऊँचे पदपर प्रतिष्ठित होना; अपनी प्रशंसा सुनना; धन और भोग-सामग्रीकी बहुलता; मनोकामना पूर्ण होना; अपने द्वारा किसीका हित होना; दूसरोंमें दोष और अपनेमें गुण देखना; अपनेको बलवान्, विद्वान्, बुद्धिमान्, साधक, त्यागी, महात्मा आदि मानना आदि एक-एक कारणपर ऊँची स्थितिवाले महात्मातक अभिमानके शिकार हो जाते हैं।

भगवान्‌ने जब कभी अपने भक्तमें अभिमानका प्रवेश देखा, तुरंत उसके अभिमानको चूर्ण किया। अभिमानी मनुष्य शीघ्र ही अपनी स्थितिसे विचलित तथा पतित हो जाता है। अति अभिमानी पुरुषको भ्रष्ट हुए बिना चेत नहीं होता। ऐसा पुरुष भगवान्‌के शरण नहीं हो पाता तथा न तो उसमें समता रहती है और न उसे अपने अवगुण—दोष ही कभी दीखते हैं। अभिमानी पुरुष अपनेसे श्रेष्ठको भी नीचा देखता है और उसकी अवहेलना करता है। अभिमानके नष्ट होनेपर प्रत्येक स्थितिवाला मनुष्य ऊँची-से-ऊँची स्थिति प्राप्त कर सकता है।

सभी वस्तुओंको प्रभुकी समझकर उनके द्वारा तन-मनसे दूसरोंकी सेवा निष्काम-भावसे करनेपर तथा दूसरोंके गुण एवं अपने दोष देखनेपर अभिमान दूर हो जाता है। अपनेको तुलसीदासजीकी भाँति सब ओरसे दीन-हीन समझते रहनेसे भी अभिमान समीप नहीं आता और बहुत बड़ा लाभ होता है।

(२) अधिक बोलनेवाला व्यक्ति व्यर्थकी बातें अधिक करता है। वह सत्यका पूर्णतया पालन नहीं कर सकता और ऐसी बातें भी कर बैठता है, जिनका परिणाम बुरा होता है। ऐसा व्यक्ति बुद्धिमानोंको प्रिय नहीं होता तथा दूसरोंपर उसकी बातोंका प्रभाव भी नहीं पड़ सकता। अतः निरर्थक शब्दोंका प्रयोग न करके वाणीको संयमित कर तपमें लगाना चाहिये। वाणीसम्बन्धी तप श्रीगीताजीमें इस प्रकार कहा गया है—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

(१७। १५)

'जो उद्वेगको न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है और जो वेद-शास्त्रोंके पढ़नेका एवं परमेश्वरके नाम जपनेका अभ्यास है, वह निःसंदेह वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है।'

अधिक बोलनेकी आदतसे छुटकारा पानेके लिये अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-जप करनेका नियम करना चाहिये। इससे दुहरा लाभ होगा।

(३) त्यागके अभावके कारण ही रावण, दुर्योधन आदिका पतन हुआ। सांसारिक भोगोंमें मनुष्यकी

---

* आयुकी अवधि श्वासोंकी संख्यापर है, महीने-दिन-वर्षपर नहीं। जिनमें ये छः दोष आ जाते हैं, उनमें आवेश, उत्तेजना आदिके कारण श्वास जोर-जोरसे चलकर जल्दी समाप्त होते रहते हैं। अतः आयुके दिन घट जाते हैं। श्वास पूरे होते ही मृत्यु हो जाती है।

ओर अग्रसर होते हुए कई पुरुषोंका उत्थान मित्रोंने ही किया है । परंतु जो मित्रद्रोही है, वह कैसे सुखी जीवन यापन कर सकता है । मित्रद्रोह नामक महान् दोषसे बचनेके लिये स्वार्थत्याग तथा परहितसाधन करना परम आवश्यक है । भगवान्ने 'भक्तको सब भूतोंका अद्वेष्टा तथा सबका मित्र' (अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः···) बतलाया है । अतएव किसी भी प्राणीसे द्वेष न करके सबका हितचिन्तन और हितसाधन करना चाहिये । महात्मा विदुरजीने आयुको काटनेवाले जो छः दोष बतलाये हैं, वे सभी प्रायः एक-दूसरेपर ही निर्भर हैं । अतः कल्याणके इच्छुक पुरुषोंको यथाशक्ति इन दोषोंसे बचना चाहिये । यदि छःमेंसे एक दोषका भी पूर्णतया अभाव हो जाय तो कल्याण-मार्ग प्रशस्त हो सकता है । अन्तमें महात्मा विदुरजीके कुछ और वचनोंका पाठकगण मनन करें—

द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान्॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३३ । ५८)

"राजन् ! ये दो प्रकारके पुरुष स्वर्गके भी ऊपर स्थान पाते हैं—'शक्तिशाली' होनेपर भी 'क्षमा' करनेवाला और 'निर्धन' होनेपर भी 'दान' करनेवाला ।"

गृहीतवाक्यो नयविद् वदान्यः
शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च ।
नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः
सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान्॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३७ । १४)

'बड़ोंकी आज्ञा माननेवाला, नीतिज्ञ, दाता, यज्ञशेष अन्न भोजन करनेवाला, हिंसारहित, अनर्थकारी कार्योंसे दूर रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और कोमल स्वभाववाला विद्वान् स्वर्गगामी होता है ।'

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः ।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना ॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३९ । ५२)

'सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति कोमलताका भाव, गुणोंमें दोष न देखना, क्षमा, धैर्य और मित्रोंका अपमान न करना—ये सब गुण आयुको बढ़ानेवाले हैं—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ।'

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात् ॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ३९ । ६६)

'जो अधर्मके द्वारा कमाये हुए धनसे परलोकसाधक यज्ञादि कर्म करता है, वह मरनेके बाद उसके फलको नहीं पाता; क्योंकि उसका धन बुरे मार्गसे आया होता है ।'

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

मानव-शरीर परमात्माका मन्दिर

मानव-शरीर अनेक जन्मोंके पुण्योंसे प्राप्त होता है । जो शरीर देवोंको दुर्लभ है, उसे व्यर्थ नष्ट कर देना हमारी बड़ी भूल है । हम अपने कर्तव्यको भुला दें, उसका स्मरण न करें,···नियमोंका पालन न करें, तब हम दुखी न हों तो कौन होगा ?

× × × ×

यह शरीर 'परमात्माका मन्दिर' है । इसमें ईश्वरका निवास है । सदैव उसको अपने भीतर अनुभव करो । इस मन्दिरको कभी अपवित्र न होने दो । इस मन्दिरको अपवित्र बना देनेवाली कुछ बातें हैं, जिनसे सदा बचो । उनमें एक असत्य है । भूलकर भी, स्वप्नमें भी असत्य मुँहसे न निकले; इसकी कोशिश बराबर करो । यदि कहीं भूलसे झूठ निकल जाय तो उस असत्यके लिये प्रार्थना करो, क्षमा माँगो । सच्चे और पवित्र हृदयसे परमात्माके चरणोंमें गिरो और पुनः असत्य न बोलनेका प्रण लो । उसे अपना प्राण देकर भी पालो ।

—महामना मदनमोहन मालवीय

आयुको काटते हैं और उनका त्याग शीघ्र ही शान्तिप्रद और आयुवर्द्धक भी होता है। भगवान् श्रीगीतामें कहते हैं—

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥
(१२।१२)

'मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे परोक्षज्ञान श्रेष्ठ है और परोक्षज्ञानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान श्रेष्ठ है तथा ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका मेरे लिये त्याग करना श्रेष्ठ है और त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है।'

इस बातको मनुष्य सदैव स्मरण रक्खें कि हम इस संसारसे कुछ लेनेके लिये नहीं आये हैं, बल्कि दूसरोंको सुख देनेके लिये ही आये हैं तथा यह शरीर हमें केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही मिला है, भोगोंको भोगनेके लिये नहीं।

यदि किसी वस्तुको ग्रहण करनेका हेतु 'राग' और त्यागनेका हेतु 'द्वेष' हो, तो ऐसा त्याग भी निरर्थक ही है। हमें तो शास्त्रको प्रमाण मानकर ही त्याग और ग्रहण करना है। श्रीगीतामें भगवान् कहते हैं कि 'कर्मोंको स्वरूपसे न त्यागकर उनमें की हुई आसक्तिका त्याग करे और उन शास्त्रसम्मत कर्मोंके फलका भी त्याग मेरे (प्रभुके) लिये करे।' अतः कल्याणके इच्छुक पुरुषोंको शास्त्रविरुद्ध कर्मोंको स्वरूपसे त्यागकर शास्त्रसम्मत कर्मोंको अनासक्त एवं निष्कामभावसे करते रहना चाहिये।

(४) क्रोध सभीका एक महान् शत्रु है। इसके वशमें होनेपर पुरुष धर्म (कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञान) को तथा परिणामको भूल जाता है, जिससे उसका पतन होता है। महात्मा विदुरजी कहते हैं—

अरुष्यं कटुकं शीर्षरोगि
पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य॥
(महाभारत, उद्योगपर्व ३६ । १८)

अर्थात् 'महाराज! जो बिना रोगके उत्पन्न, कड़वा, सिरमें दर्द पैदा करनेवाला, पापसे सम्बद्ध, कठोर, तीखा और गरम है, जो सज्जनोंद्वारा पान करनेयोग्य है और जिसे दुर्जन नहीं पी सकते—उस क्रोधको आप पी जाइये और शान्त होइये।'

क्रोधी पुरुष स्वयं सब कुछ करनेमें असमर्थ रहता है। श्रीगीताजीमें भगवान् कहते हैं कि 'शरीरान्तके पूर्व ही जिसने क्रोधको पूर्णतया जीत लिया, वह मनुष्य इस लोकमें योगी है और वही सुखी है।' इसके अतिरिक्त क्रोधको 'नरकका द्वार' भी कहा गया है। इसका तात्पर्य यह कि क्रोधयुक्त हुए मनुष्यको नरकमें जानेके लिये अन्य मार्गोंकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती (क्रोध अकेला ही मनुष्यको नरकमें पहुँचानेमें समर्थ नरकका द्वार ही है)।

भगवान् कहते हैं—क्रोधसे मुक्त हुआ पुरुष कल्याणका आचरण करता है, जिससे वह सुखी प्राप्त हो जाता है।'

प्रतिकूलता सहन करनेका अभ्यास करनेपर ही क्रोधसे रक्षा होती है। यदि दूसरा अपने ऊपर क्रोध करे, तो स्वयं शान्ति रखकर उसे क्षमा कर देना चाहिये।

(५) स्वार्थ सभी अनर्थोंका मूल है। लोकमें होनेवाले रोमाञ्चकारी युद्धोंका कारण स्वार्थ (पृथ्वी, धन या स्त्री) ही है। स्वार्थी मनुष्य स्वार्थसिद्धिके लिये बड़े-से-बड़ा पाप करनेमें भी लज्जाका अनुभव नहीं करता। इस स्वार्थके ही कारण आज चारों ओर पापोंकी वृद्धि होकर घोर अशान्ति ही छायी हुई है।

दूसरेके सुखको देखकर सुखी होने और दुःख देखकर दुःखी होनेका अभ्यास करनेपर स्वार्थ दोषका नाश होता है।

हमलोग सच्चे हृदयसे प्रार्थना करें—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

'सब सुखी हों, सब नीरोग हों, सब कल्याणको देखें, कोई भी दुःखको प्राप्त न हो।'

(६) मित्रद्रोही पुरुषको शास्त्रोंमें 'कृतघ्न' कहा गया है। ऐसे मनुष्यकी निन्दा सभी करते हैं। मनुष्यजीवनमें मित्रोंका बड़ा महत्त्व है। सच्चा मित्र मनुष्यके जीवनमार्गका एक आधार है। मित्रतासे एक नयी शक्तिका निर्माण होता है, जिससे शत्रुओंको भी भय होता है। मित्रोंने कई महापुरुषोंको अच्छे कार्योंकी प्रेरणा और सहायता दी है। इनके

क्यों किया जाय ? इसको माननेसे तो जीवन ही मूल्य-हीन हो जाता है। सत्य तो यह है कि संसारमें बुद्धि और विवेकका शासन है तथा विकास होता है। विज्ञान, दर्शन, धर्म एवं नैतिकताका अस्तित्व है; वे बेकार नहीं हैं। जीवात्माको मृत्यु समाप्त नहीं करती। वह तो एक जन्मसे दूसरे जन्ममें प्रकाशित होता रह सकता है। इसी आधारपर जीवका मोक्ष सम्भव है। अगर मृत्युके बादके जीवनकी आशा न हो तो सम्पूर्ण क्रियाएँ तथा कर्म बेकार हो जायँगे। मृत्युके बाद तो जीव लिङ्ग-शरीरसहित अनेक लोकोंमें विचरण करता है। अतः यह कहना कि मृत्यु व्यक्तित्वको समाप्त कर देती है, महान् मूर्खता है।

आधुनिक युगमें अब परामानसकीय अनुसंधान और परामनोविद्याकी खोजोंसे जिन तथ्योंकी स्थापना हुई है, वे हमारे अंदर एक ऐसी वस्तुकी ओर संकेत करते हैं जो दिक्, काल, शरीर और पर्यावरणकी भौतिक सीमाओंसे परे हैं। इनके परिणामोंकी व्याख्या किसी भी भौतिकीय सिद्धान्तके द्वारा नहीं हो सकती है। डा० जे० बी० राइनने अपनी पुस्तक 'न्यू वर्ल्ड आफ माइंड'में कहा है कि 'मनुष्यके अंदर भौतिक नियमोंसे परे कार्य करनेवाली चीज है, जिससे आध्यात्मिक नियमका अस्तित्व स्पष्ट है।' आज यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि इस शक्तिका अस्तित्व असंदिग्ध है। यह स्थूलशरीरके समाप्त होनेसे समाप्त नहीं होती है। डा० सी० टा० आत्रेयने अपनी पुस्तक 'परामनोविज्ञान'में कहा है कि 'मनुष्यकी असाधारण शक्तियाँ और मनुष्यके अंदर रहनेवाले अतिप्राकृतिक तत्त्वोंके वैज्ञानिक अध्ययनपर आधारित मानव-व्यक्तित्व-विषयक यह मत कि हम परस्पर और सब प्राणियोंसे जुड़े हुए आध्यात्मिक जीव हैं, तथा यह कि हम सब सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् परम सत्तासे एक हैं और वही हमारा मूल है; वही मत है जो भारतमें वेदों और उपनिषदोंके प्राचीनतम युगसे चला आ रहा है।' भगवद्गीतामें इसकी संक्षेपमें चर्चा है और योगवासिष्ठमें विस्तारसे। थियोसोफीने इसी मतको समस्त धार्मिक विचारोंके आधारके रूपमें स्वीकार किया है और इसकी विस्तृत व्याख्या की है। इस प्रकार परामानसकीय अनुसंधान आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान और प्राचीन भारतीय मनोविज्ञानके बीच इस समय पायी जानेवाली चौड़ी खाईको पाटनेका काम करता है।'

सब कथनोंका अन्तिम सारांश यह है कि व्यक्तित्वमें स्थूल शरीरके अतिरिक्त आध्यात्मिक शक्ति या भौतिक तत्त्वोंसे परेकी शक्ति भी विद्यमान है जो मृत्युके द्वारा समाप्त नहीं होती है। अतः व्यक्तित्व मृत्युके बाद भी विद्यमान रहता है।

जन्म-मरणरूपी दुःख-सागरसे तरनेका उपाय

जो नर इस संसारमें अत्यन्त प्रेम, धर्म, विद्या, सत्संग, सुविचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता आदि शुभ गुणों तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ईश्वरका आश्रय लेता है वही सौभाग्यशाली है; क्योंकि ऐसा जन यथार्थ सत्य विचारके द्वारा सम्पूर्ण दुःखोंसे छूटकर परमानन्द परमेश्वरका नित्य संसर्ग, जो मोक्ष है, उसको प्राप्त करता है। फिर वह जन्म-मरणरूप दुःख-सागरको प्राप्त नहीं होता। परंतु जो विषयलम्पट, विचाररहित, विद्या-धर्म-जितेन्द्रियता-सत्संगसे रहित, छल-कपट दुराग्रहादि दुष्ट गुणोंसे युक्त है, वह कभी भी मोक्ष-सुखको प्राप्त नहीं कर सकता; क्योंकि वह ईश्वर-भक्तिसे विमुख है। ऐसा जन जन्म-मरण आदि पीड़ाओंसे पीड़ित होकर सदा दुःख-सागरमें ही डूबा रहता है। सब मनुष्योंको उचित है कि परमेश्वर तथा उसकी आज्ञाके विरुद्ध कभी भी कोई आचरण न करें। परमेश्वर तथा उसकी आज्ञामें सदा तत्पर होकर इस लोक तथा परलोककी सिद्धि यथावत् करें। यही मनुष्य-जीवनकी कृतकृत्यता है।

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

मृत्यु और व्यक्तित्व

(लेखिका—प्रो० इन्दुप्रभा आत्रेय, एम्० ए०, एम्० एड्०)

भौतिकवादी मनोविज्ञानके अनुसार मृत्यु व्यक्ति और व्यक्तित्व—दोनोंको समाप्त कर देती है। यह भौतिकवादकी महान् भूल है। मनोविज्ञानकी नवीन शाखा परामनोविज्ञानकी खोजोंके द्वारा प्राप्त तथ्योंने यह सिद्ध कर दिया है कि मृत्यु केवल स्थूलशरीरको ही समाप्त कर पाती है। मरनेके बाद भी मृत व्यक्तिकी आत्मा इस संसारके व्यक्तियोंपर प्रभाव डालती रहती है[1]। स्थूल-शरीरतक *ही व्यक्तित्व सीमित नहीं माना जा सकता है।* डा० शान्तिप्रकाश आत्रेयने अपनी पुस्तक 'योग-मनोविज्ञान'-में कहा है कि 'स्थूलशरीरको ही व्यक्तित्व मानना तथा यह कहना कि स्थूलशरीरके नष्ट होनेपर व्यक्तित्व ही समाप्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकारसे है जिस प्रकारसे यह कहना कि बिजलीके बल्ब फूट जाने या फ्यूज हो जानेपर बिजली ही नहीं रह जाती तथा उस बल्बके स्थानपर कोई बल्ब ही नहीं जल सकता। व्यक्तित्वकी इस प्रकारकी धारणा मूर्खतापूर्ण धारणा है।' (योग-मनोविज्ञान—२८७)।

हेरवार्ड कैरिंगटन (Hereward Carrington)-ने भी मृत्युके बाद व्यक्तित्वको सिद्ध किया है।[2] आधुनिक वैज्ञानिक भी अब अपने अनुसंधानोंके आधारपर भारतीय विचारधाराका प्रतिपादन करने लगे हैं तथा मृत्युके बाद व्यक्तित्व विद्यमान रहता है इस तथ्यकी पुष्टि करने लगे हैं।[3] इन्द्रियजन्य ज्ञान एवं अनुभव तो बहुत सीमित है। व्यक्तित्व तथा अनुभवका क्षेत्र इन्द्रियजन्य ज्ञानके क्षेत्रसे कहीं विशाल है। स्थूल-शरीरके अतिरिक्त आत्मा एवं समस्त वासनाओंसहित सूक्ष्मशरीर भी है, जो मृत्युके बाद स्थूलशरीरके समाप्त हो जानेपर भी समाप्त नहीं होता। यह जीवके मोक्ष-प्राप्त करनेतक उससे सम्बन्धित रहता है। सांख्यदर्शनके अनुसार मृत्युके द्वारा स्थूलशरीरके नष्ट होनेपर भी लिङ्ग-शरीर तथा अधिष्ठान-शरीरसहित उसे लेकर दूसरी दुनियामें विचरता है। सूक्ष्मशरीरके साथ अनेक जन्मोंके कर्माशय संस्काररूपसे विद्यमान रहते हैं। सूक्ष्मशरीरके प्रवेशमें कहीं भी कोई रुकावट नहीं हो सकती। यह महाप्रलयकालमें भी नष्ट नहीं होता, बल्कि बीज-रूपसे प्रकृतिमें विद्यमान रहता है तथा सृष्टिकालमें पुनः आत्मासे सम्बन्धित होकर धर्म-अधर्मरूपी कर्मोंका फल भोगता रहता है। आत्मासे इसका सम्बन्ध केवल मोक्षके बाद ही छूटता है; अन्यथा कर्मोंका फल भोगनेके लिये एक स्थूलशरीरसे दूसरे स्थूलशरीरको धारण करता रहता है। सांख्य तथा योगके अनुसार अनन्त आत्माएँ हैं और उनके साथ अनन्त सूक्ष्मशरीर वासनाओंसहित लगे हैं। प्रलयकालीन अवस्था तो व्यक्तित्वकी केवल सुप्तावस्था है, सृष्टिकाल उसकी जाग्रत् अवस्था है। कोई दो जीव समान व्यक्तित्ववाले नहीं होते हैं। यह व्यक्तित्व परिवर्तनशील होनेसे मोक्षपर्यन्त स्थायी होते हुए भी गत्यात्मक है।[4] प्रारब्ध कर्मोंसे वर्तमान शरीर, भोग, कुल, आयु, वातावरण आदि प्राप्त होते हैं। व्यक्तित्वका निर्माण भी व्यक्ति अपनी स्वतन्त्र इच्छा-शक्तिद्वारा करता है। क्रियमाण कर्मोंसे व्यक्ति अपने व्यक्तित्वमें परिवर्तन पैदा कर सकता है। इस प्रकार ही व्यक्तित्वमें विकास हो सकता है तथा होता है। मृत्यु इस विकासको समाप्त नहीं कर सकती। इस विकासके बिना मोक्ष ही असम्भव है। यदि हम भौतिकवादियोंकी तरह मृत्युके द्वारा व्यक्तित्वको समाप्त मान लें तो हमारे प्रयत्न एवं इच्छाओंका कोई मूल्य नहीं होगा। इस रूपमें तो नैतिक उच्च व्यक्तित्वका विकास करना व्यर्थ ही है। मरनेके बाद जब कुछ रह ही नहीं जाता तो इतना कष्टप्रद प्रयत्न सब सुखोंसे वञ्चित होनेके लिये

1. डा० शां० प्र० आत्रेय—परामनोविज्ञान—पृ० १।

2. Carrington: The Story of Psychic Science, Page No. 121, 124, 272, 431.

3. Lodge: The Survival of Man, Page No. 221. Osborn: The Superphysical, 1938, Page 259; Sir A. Conan Doyle: Survival, Page 191.

4. डा० शान्तिप्रकाश आत्रेय—योगमनोविज्ञान—अध्याय ११।

जबतक वे समाप्त नहीं हो जाते और वे फिर लौटकर भूमिपर आ जायँगे।

प्रथमको 'देवयान' कहते हैं और द्वितीयको 'पितृयाण'। देवयानमार्गके विषयमें बृहदारण्यकोपनिषद्में कहा गया है—

'ते य एवमेतद्विदुः, ये चामी अरण्ये श्रद्धां सत्यमुपासते तेऽर्चिरभिसम्भवन्ति' अर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद् यान् षण्मासानुदङ्ङादित्य एति मासेभ्यो देवलोकं देवलोकादादित्यमादित्याद्वैद्युतं तान्वैद्युतान्पुरुषो मानस एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः। (६।२।१५)

'ये जो (गृहस्थ) इस प्रकार इस (पञ्चाग्निविद्या) को जानते हैं तथा जो (संन्यासी या वानप्रस्थ) वनमें श्रद्धायुक्त होकर सत्य (ब्रह्म अर्थात् हिरण्यगर्भ) की उपासना करते हैं, वे ज्योतिके अभिमानी देवताओंको प्राप्त होते हैं; ज्योतिके अभिमानी देवताओंसे दिनके अभिमानी देवताको, दिनके अभिमानी देवतासे शुक्लपक्षके अभिमानी देवताको और शुक्लपक्षके अभिमानी देवतासे जिन छः महीनोंमें सूर्य उत्तरकी ओर रहकर चलता है, उन उत्तरायणके छः महीनोंके अभिमानी देवताओंको (प्राप्त होते हैं); षण्मासाभिमानी देवताओंसे देवलोकको, देवलोकसे आदित्यको और आदित्यसे विद्युत्-सम्बन्धी देवताओंको प्राप्त होते हैं। उन वैद्युत्-देवोंके पास एक मानस पुरुष आकर उन्हें ब्रह्मलोकमें ले जाता है। वे उस ब्रह्मलोकोंमें अनन्त संवत्सरपर्यन्त रहते हैं। उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती।'

और पितृयाणके विषयमें लिखा है—

अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा लोकाञ्जयन्ति ते धूममभिसम्भवन्ति धूमाद्रात्रिं रात्रेरपक्षीयमाणपक्षमपक्षीयमाणपक्षाद् यान् षण्मासान्दक्षिणादित्य एति मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकाच्चन्द्रं ते चन्द्रं प्राप्यान्नं भवन्ति, तांस्तत्र देवा यथा सोमं राजानमाप्यायस्वापक्षीयस्वेत्येवमेनांस्तत्र भक्षयन्ति तेषां यदा तत्पर्यवैत्यथेममेवाकाशमभिनिष्पद्यन्त आकाशाद्वायुं वायोर्वृष्टिं वृष्टेः पृथिवीं ते पृथिवीं प्राप्यान्नं भवन्ति ते पुनः पुरुषाग्नौ हूयन्ते ततो योषाग्नौ जायन्ते लोकान्प्रत्युत्थायिनस्त एवमेवानुपरिवर्तन्ते।

(बृहदारण्यकोपनिषद् ६।२।१६)

'और जो यज्ञ, दान, तपके द्वारा लोकोंको जीतते हैं, वे धूम (धूमाभिमानी देवता) को प्राप्त होते हैं। धूमसे रात्रि देवताको, रात्रिसे अपक्षीयमाणपक्ष (कृष्णपक्षाभिमानी देवता) को, अपक्षीयमाणपक्षसे जिन छः महीनोंमें सूर्य दक्षिणकी ओर होकर जाता है, उन छः मासके देवताओंको, छः मासके देवताओंसे पितृलोकको, पितृलोकसे चन्द्रमाको प्राप्त होते हैं। चन्द्रमामें पहुँचकर वे अन्न हो जाते हैं। वहाँ जैसे ऋत्विग्गण सोमरसको 'आप्यायस्व अपक्षीयस्व'—ऐसा कहकर चमसमें भरकर पी जाते हैं, उसी प्रकार इन्हें देवगण भक्षण कर जाते हैं। जब उनके कर्म क्षीण हो जाते हैं, तो वे इस आकाशको ही प्राप्त होते हैं। आकाशसे वायुको, वायुसे वृष्टिको और वृष्टिसे पृथ्वीको प्राप्त होते हैं। पृथ्वीको प्राप्त होकर वे अन्न हो जाते हैं। फिर वे पुरुषरूप अग्निमें हवन किये जाते हैं। उससे वे लोकके प्रति उत्थान करनेवाले होकर स्त्रीरूप अग्निमें उत्पन्न होते हैं। वे इसी प्रकार पुनः-पुनः परिवर्तित होते रहते हैं।'

(३) और तीसरा है—अपने दुष्कर्मोंके परिणामस्वरूप आत्माका अधोगतिको प्राप्त होना। ऐसे लोग उपरिलिखित दोनों मार्गोंसे नहीं जायँगे। शास्त्रोंकी अवहेलना करके वे निम्न पशु-योनिमें यहाँतक कि जड वृक्ष या पत्थरोंकी योनिको प्राप्त करेंगे।

'य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतङ्गा यदिदं दन्दशूकम्।'

(बृहदारण्यकोपनिषद् ६।२।१६)

'और जो इन दोनों मार्गोंको नहीं जानते, वे कीट, पतङ्ग और डाँस-मच्छर आदि होते हैं।'

अब प्रश्न यह है कि 'क्या आत्माका इस आवागमनसे निकलनेका कोई उपाय है?'

इसके लिये हिंदू-मस्तिष्कका उत्तर है कि 'हाँ, है। यदि कोई सच्चाईके साथ उसपर चलना चाहे तो वह इस जन्म-मृत्युके चक्करसे बच सकता है।'

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोकयन्ति पथ्येव सूराः।
शृण्वन्ति विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् २।५)

'मैं तुमसे सम्बन्ध रखनेवाले पुरातन ब्रह्ममें नमस्कार (चित्त-संनिधान आदि) द्वारा मन लगाता हूँ। सन्मार्गमें स्थित विद्वान्की भाँति मेरा यह कीर्तनीय श्लोक (स्तुति-पाठ) लोकमें विस्तारको प्राप्त हो। जिन्होंने सब ओरसे दिव्य धामोंपर अधिकार कर रक्खा है, वे अमृत (हिरण्यगर्भ) के पुत्र इसे देवगण श्रवण करें।'

सत्सङ्गादेव निःस्पृहो गुरुमुपाश्रित्य प्रपद्याम्भवान्
प्रारब्धं परिभुज्य कर्म सकलं प्रक्षीणकर्मान्तरः ।
न्यासादेव निरङ्कुशेश्वरदयानिर्लूनमायान्वयो
हार्दानुग्रहलब्धमध्यधमनीद्वारा बहिर्निर्गतः ॥
मुक्तोऽर्चिर्दिनपूर्वपक्षषडुदङ्मासाब्दवातांशुमद्
ग्लौविद्युद्वरुणेन्द्रधातृमहितः सीमान्तसिन्ध्वाप्लुतः ।
श्रीवैकुण्ठमुपेत्य नित्यमजडं तस्मिन् परब्रह्मणः
सायुज्यं समवाप्य नन्दति चिरं तेनैव धन्यः पुमान् ॥

संतोंकी संगतिद्वारा मनुष्य सांसारिक विषयोंसे निःस्पृह हो सर्वशरण्य भगवान् नारायणकी शरणागति करता है। इन क्रियाके द्वारा उसे आत्मस्वरूपका परिचय प्राप्त होता है। आत्मज्ञान होनेपर अनातुरभावसे प्रारब्ध-कर्म फलको निःशेष भोगकर शरीरस्थ नाड़ियोंमें सर्वप्रधान सुषुम्णा-नाड़ीद्वारा आत्माका बहिर्निर्गमन होता है। यह मुक्तात्मा अर्चिरादि मार्गद्वारा वैकुण्ठ जाता है।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥
(गीता ८ । २४)

ब्रह्मज्ञानी मुक्तजन अर्चिरादि मार्गद्वारा परमधाम जाते हैं। इस मार्गमें अग्निलोक, अहर्लोक, शुक्लपक्षलोक, उत्तरायणलोक, संवत्सरलोक, वायुलोक, सूर्यलोक, चन्द्रलोक, विद्युल्लोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक तथा ब्रह्मलोक मिलते हैं।

भगवान्‌का अनन्य भक्त शरीर त्यागकर प्रथम अग्निलोकमें जाता है। अग्निलोक-देव उसे अपने लोकका मार्ग दिखाते हुए अहर्लोकतक पहुँचा देता है। अहर्लोक-देव अपने लोकसे उत्तरायणलोकतक पहुँचाकर लौट आता है। उत्तरायणलोक-देव उसे संवत्सरलोकतक पहुँचा देता है। इस तरह ऊपर लिखित बारह लोकोंके अधिपति अपने अपने लोकसे दूसरे लोकतक मुक्तात्माको सम्मान पहुँचाकर लौट आते हैं—

अर्चिरह्नः सितः पक्ष उत्तरायणवत्सरौ ।
मारुतोंऽशुग्लौ विद्युद्वरुणेन्द्रचतुर्मुखाः ॥
एते द्वादश धीराणां परधामातिवाहिकाः ।
वैकुण्ठप्रापका विद्युत्पादैर्न्यत्वनुग्रहः ॥

इसीको 'अर्चिरादि-मार्ग' कहते हैं। छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक आदि श्रुतियोंमें भी ऐसा ही कहा गया है।

गीता अ० ८ के २६ और २७वें श्लोकका यही मन्तव्य है। भगवान् श्रीकृष्णने इन श्लोकोंके द्वारा अर्जुनको ऊपर लोकोंमें जानेके लिये जिन दो मार्गोंका निर्देश किया है, अर्थात् अर्चि और धूम—इन दोनों मार्गोंका ज्ञाता योगी मोहाक्रान्त नहीं होता है। अतः मुमुक्षुओंको इसपर विचारकर अर्चिरादि-मार्ग प्राप्त करनेका उपाय करना चाहिये।

यद्यपि इस समय घनघोर कलिकालमें विद्याकी क्षीणता तथा जीवोंकी केवल अर्थ-कामपरायणताके कारण अर्चिरादि-मार्ग लोगोंके लिये कहानीका भी विषय नहीं रह गया है, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णका यह निर्देश अनुष्ठेय है—

'तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ।'
(गीता ८ । २७)

अर्थात् अर्चिरादि-मार्ग-ध्यानरूप योगप्राप्तिका उपाय आवश्यक है। वह उपाय भगवान्‌की अनन्य भक्ति ही है। जो व्यक्ति उल्लिखित दोनों मार्गोंका ज्ञान कर लेगा, वह तो अवश्य ही समझ जायगा कि अर्चि-मार्ग प्राप्त किये बिना संसारबन्धनका फंदा मिटनेको नहीं है। अतः शीघ्रातिशीघ्र भगवान्‌की शरणागति सबको करनी चाहिये, जिससे परलोक नहीं बिगड़ने पावे और मनुष्य-जीवन सफल हो—

एतद् यो न विजानाति मार्गद्वितयमात्मवान् ।
दन्दशूकः पतङ्गो वा भवेत्कीटोऽथ वा कृमिः ॥
(भाग० स्क० ३ । १९०)

अर्थात् 'जो व्यक्ति अर्चि और धूममार्गका ज्ञान नहीं कर सका है, वह सर्प, पतङ्ग, कीट या कृमि आदि योनियोंमें भ्रमता रहेगा।'

अर्चि-मार्ग-वर्णन

सोहर छन्दमें (देहाती भाषामें)

दया किये भगवान् मोर मोहि निजन के ।
तब संत दिहे उपदेश साधन रहि के संग के ॥ १ ॥
दिहे ज्ञान भगवान् हृदय-रस जागन के ।
तब तन पनमें मन लगा रहि भजन लागन के ॥ २ ॥
अन्तरजामी कृपा करि सबकी पावन के ।
रहि अर्चिर [illegible] [illegible] [illegible] के ॥ ३ ॥
कौशल्यके देव दिहे [illegible] [illegible] के ।
तब दिन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के ॥ ४ ॥

सत्सङ्गादथ निःस्पृहो मुमुक्षुरधीशं प्रपद्यात्मवान्
प्रारब्धं परिभुज्य कर्म सकलं प्रक्षीणकर्मान्तरः ।
न्यासादेव निरङ्कुशेश्वरदयानिर्लूनमायान्वयो
हार्दानुगृहीतधनमध्यधमनीद्वारा बहिर्निर्गतः ॥
मुक्तोऽर्चिर्दिनपूर्वपक्षषडुदङ्मासाब्दवातांशुमद्
ग्लौविद्युद्वरुणेन्द्रधातृमहितः सीमान्तसिन्ध्वाप्लुतः ।
श्रीवैकुण्ठमुपेत्य नित्यमजडं तस्मिन् परब्रह्मणः
सायुज्यं समवाप्य नन्दति चिरं तेनैव धन्यः पुमान् ॥

संतोंकी सङ्गतिद्वारा मनुष्य सांसारिक विषयोंसे निःस्पृह हो सर्वशरण्य भगवान् नारायणकी शरणागति करता है। इस क्रियाके द्वारा उसे आत्मस्वरूपका परिचय प्राप्त होता है। आत्मज्ञान होनेपर अनातुरभावसे प्रारब्ध-कर्म फलको निःशेष भोगकर शरीरस्थ नाड़ियोंमें सर्वप्रधान सुषुम्णा-नाड़ीद्वारा आत्माका बहिर्निर्गमन होता है। यह मुक्तात्मा अर्चिरादि मार्गद्वारा वैकुण्ठ जाता है।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥
(गीता ८ । २४)

ब्रह्मज्ञानी मुक्तजन अर्चिरादि मार्गद्वारा परमधाम जाते हैं। इस मार्गमें अग्निलोक, अहर्लोक, शुक्लपक्षलोक, उत्तरायणलोक, संवत्सरलोक, वायुलोक, सूर्यलोक, चन्द्रलोक, विद्युल्लोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक तथा ब्रह्मलोक मिलते हैं।

भगवान्का अनन्य भक्त शरीर त्यागकर प्रथम अग्निलोकमें जाता है। अग्निलोक-देव उसे अपने लोकका मार्ग दिखाते हुए अहर्लोकतक पहुँचा देता है। अहर्लोक-देव अपने लोकसे उत्तरायणलोकतक पहुँचाकर लौट आता है। उत्तरायणलोक-देव उसे संवत्सरलोकतक पहुँचा देता है। इस तरह ऊपर लिखित बारह लोकोंके अधिपति अपने अपने लोकसे दूसरे लोकतक मुक्तात्माको ससम्मान पहुँचाकर लौट आते हैं—

अर्चिरहः सितः पक्ष उत्तरायणवत्सरौ ।
मरुदर्केन्दवो विद्युद्वरुणेन्द्रचतुर्मुखाः ॥
एते इत्थं धीमतां परधामातिवाहिकाः ।
वैकुण्ठप्रापिका विद्युत्परादेव्यनुग्रहः ॥

इसीको 'अर्चिरादि-मार्ग' कहते हैं। छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक आदि श्रुतियोंमें भी ऐसा ही कहा गया है।

गीता अ० ८ के २६ और २७वें श्लोकका यही मन्तव्य है। भगवान् श्रीकृष्णने इन श्लोकोंके द्वारा अर्जुनको ऊपर लोकोंमें जानेके लिये जिन दो मार्गोंका निर्देश किया है, अर्थात् अर्चि और धूम—इन दोनों मार्गोंका ज्ञाता योगी मोहाक्रान्त नहीं होता है। अतः मुमुक्षुओंको इसपर विचारकर अर्चिरादि-मार्ग प्राप्त करनेका उपाय करना चाहिये।

यद्यपि इस समय घनघोर कलिकालमें विषयोंकी भोगता तथा जीवोंकी केवल अर्थ-कामपरायणताके कारण अर्चिरादि-मार्ग लोगोंके लिये कहानीका भी विषय नहीं रह गया है, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णका यह निर्देश अनुष्ठेय है—

'तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ।'
(गीता ८ । २७)

अर्थात् अर्चिरादि-मार्ग-ध्यानस्थ योगप्राप्तिका उपाय आवश्यक है। यह उपाय भगवान्की अनन्य भक्ति ही है। जो व्यक्ति उल्लिखित दोनों मार्गोंका ज्ञान कर लेगा, वह तो अवश्य ही समझ जायगा कि अर्चि-मार्ग प्राप्त किये बिना संसारबन्धनका पचड़ा मिटनेको नहीं है। अतः शीघ्रातिशीघ्र भगवान्की शरणागति सबको करनी चाहिये, जिससे परलोक नहीं बिगड़ने पाये और मनुष्य-जीवन सफल हो।—

एतद् यो न विजानाति मार्गद्वितयमात्मवान् ।
दन्दशूकः पतङ्गो वा भवेत्कीटोऽथ वा कृमिः ॥
(भाग० स्० ३ । १९.७)

अर्थात् 'जो व्यक्ति अर्चि और धूममार्गका ज्ञान नहीं कर सका है, वह सर्प, पतङ्ग, कीट या कृमि आदि योनियोंमें भ्रमता रहेगा।'

अर्चि-मार्ग-वर्णन

[illegible] (बँगला भाषामें)

[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] ॥ २ ॥
[illegible] ॥ ३ ॥
[illegible] ॥ ४ ॥

वाणीकी दृढ़ता, कार्यकी दृढ़ता, सच्चे साहसकी स्वाभाविकता, जीवनमें चापल्य और चाञ्चल्य—ये सब पूर्ण ब्रह्मचर्यके चिह्न हैं ।

वैज्ञानिकोंने यह निश्चय किया है कि ८० पाउंड भोजनसे ८० तोला खून बनता है और ८० तोला खूनसे दो तोला वीर्य बनता है । एक मासकी कमाई डेढ़ तोला वीर्य है । एक बार ब्रह्मचर्य-भङ्ग होनेसे लगभग डेढ़ तोला वीर्य निकलता है । इससे आयु घटती जाती है । कठिन परिश्रमसे प्राप्त की हुई शक्तिको एक बारमें नष्ट कर देना कैसी मूर्खता है । यही वीर्य यदि नष्ट न हो, तो ओजस् बनकर सारे शरीरको तेजस्वी बना देता है । इसी कारण कहा है—

'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात् ।'

'वीर्यका नाश मृत्यु है और वीर्यकी रक्षा जीवन है ।'

गुरुके सानिध्यमें रहकर प्राणायाम करना सीखना चाहिये और फिर उसका अभ्यास बढ़ाना चाहिये । स्वरोदयके अनुसार एक दिनमें अर्थात् चौबीस घंटेमें मनुष्यके औसत इक्कीस हजार छः सौ श्वास चलते हैं । उनमें जितनी कमी की जाय उतनी ही आयु बढ़ जाती है तथा जितने ही श्वास बढ़ते हैं, उतनी ही आयु घट जाती है ।

मैथुनक्रिया, क्रोध, उत्तेजना, हिंसा, आवेश, अतिहर्ष, दौड़ना आदिमें श्वास जल्दी-जल्दी चलकर बढ़ जाते हैं, जिससे आयु घटती है और प्राणायाम, ध्यान, शान्ति, क्षमा, ब्रह्मचर्य, नम्रता, धीरे धीरे चलना आदिसे श्वास धीमी गतिसे चलते हैं, अतः आयु बढ़ती है । आयुकी अवधि श्वासोंपर निर्धारित है, कालपर नहीं । आयुके घटने-बढ़नेका यह रहस्य निरन्तर स्मरण रखना चाहिये । मनुष्यको जहाँतक हो सके, जल्दी-जल्दी और लघु श्वास नहीं लेना चाहिये । बल्कि ऐसी आदत डालनी चाहिये कि श्वास लम्बा हो और धीरे-धीरे चले । प्राणायाम इसका एक मुख्य साधन है । परंतु प्रत्येक मनुष्य प्राणायाम नहीं कर सकता, इसलिये दीर्घ श्वास-प्रश्वासकी क्रिया नीचे लिखे अनुसार करनेसे उद्देश्यसिद्धि हो सकती है ।

प्रत्येक मनुष्यको सवेरे सूर्योदयसे पूर्व उठना चाहिये । हाथ-मुँह साफ करके स्नान करे । पश्चात् जमीनपर कम्बल या दरी बिछाकर सिरके नीचे कोई तकिया बिना रखे लेट जाय । हाथ पैरको ढीला रखे । कमरको एकदम ढीला करे और मुँह बंद करके नाकसे श्वास ले । श्वास इस प्रकार ले कि नाभिके साथ-साथ पेट फूलता जाय । इस प्रकार पेट भर जानेपर मुँह बंद रखते हुए नाकके द्वारा इस प्रकार श्वास छोड़े कि धीरे-धीरे पेट बैठता चला जाय । नाकसे श्वास लेने और छोड़नेका समय एक-सा होना चाहिये । परंतु यह समय घड़ीसे मापना ठीक नहीं । प्रभुकी प्रार्थनामेसे एक चरण-पद लेकर मनमें एक बार जबतक पाठ होता रहे, तबतक श्वास ले और पश्चात् वही पाठ एक बार होता रहे, तबतक श्वास छोड़े । पश्चात् जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जाय, वैसे-वैसे प्रार्थनाके पाठकी मात्रा बढ़ाता जाय । उसका दूसरा चरण ले ले । (अथवा प्रार्थनाके स्थानमें भगवान्के नामका जप करता रहे) अर्थात् जितने समयमें चौबीस अक्षरका उच्चारण हो, उतने समयतक श्वास लेने और उतने ही समयतक श्वास छोड़नेका अभ्यास करे । इस प्रकार कम-से-कम सात बार और अधिक-से-अधिक इक्कीस बार श्वास लेने-छोड़नेका नियमित अभ्यास करें । यह विशेष रूपसे याद रखें कि श्वास लेनेमें वायु नाभिपर्यन्त पहुँचता है या नहीं और श्वास छोड़ते समय नाभि खाली हो जाती है या नहीं । इस प्रकार क्रिया करनेके बाद दिन-रात यह ध्यान रखें कि श्वास छोटा तो नहीं हो रहा है । इसकी परीक्षा स्वयं ही की जा सकती है ।

यदि यह क्रिया बराबर होती रहेगी, तो क्रिया करनेवालेका मल साफ उतरेगा, पेशाब ठंडा होगा, भूख खूब लगेगी । खाया हुआ भोजन खूब पचेगा, आँखका तेज बढ़ेगा । सिरमें आनेवाला चक्कर और दिमागकी गरमी शान्त होगी । शरीरमें शक्ति बढ़ने लगेगी ।

किंतु यह क्रिया ठीक न होती होगी, तो श्वास लेनेकी अपेक्षा छोड़नेमें समय कम लगेगा । ऐसी अवस्थामें उपर्युक्त गुणोंकी अपेक्षा विरुद्ध परिणाम निकलेगा । यदि कभी आवश्यक कार्यवश श्रम होनेके कारण श्वास जोर जोरसे चलने लगे तो घबराकर मुँहसे श्वास न ले । बल्कि मुँह बंद रखकर नाकसे श्वास लेते रहनेसे थोड़ी ही देरमें श्वास नियमित हो जायगा और थकावट दूर हो जायगी ।

जैसे जैसे नाभिसे श्वास निकालकर बाहर हवामें फेंका जायगा और बाहर हवामें शुद्ध हुआ श्वास फिर नाकके द्वारा नाभि पर्यन्त पहुँचाया जायगा, वैसे-वैसे चिर-यौवनपूर्ण आयु अभिवर्धित होती जायगी; इस प्रकार दीर्घजीवन प्राप्त करनेमें सफलता मिलेगी ।

दिव्य देवीद्वीपमें महादेवी

जो पिण्ड दिया जाता है, उसके फलस्वरूप क्रमशः भोगदेह निर्मित होता है। इस मतसे पहले आतिवाहिक देह, उसके बाद भोगदेह तथा उसके बाद भी एक अन्य तृतीय देहका उल्लेख देखनेमें आता है। 'प्रायश्चित्तविवेक'के टीकाकार गोविन्दानन्द कहते हैं कि 'देह दो प्रकारके होते हैं, एक आतिवाहिक अर्थात् प्रेतदेह और दूसरा भोगदेह।' आचार्यगण कहते हैं कि 'पिण्डदान हुए बिना अथवा षोडश श्राद्ध किये बिना जीव चिरकालतक पिशाचरूपमें भ्रमण करता है और ढूँढ़नेपर भी उसे शान्ति-लाभका कोई मार्ग नहीं मिलता। समय बीत जानेपर अनेक श्राद्ध करनेपर भी पिशाचत्व सहसा दूर नहीं होता।' प्रेतको पिण्डदान करनेकी उपयोगिता प्राचीन कालमें सभी स्वीकार करते थे। धर्मशास्त्रके अनुसार यह पिण्डदान न होनेपर कल्पान्ततक पिशाचभाव रह जाता है। वर्षके अन्तमें सपिण्डीकरण हो जानेपर दूसरे प्रकारका देह धारण करना पड़ता है। यही वास्तविक 'भोगदेह' होता है। इसके बाद पाप-पुण्यका विचार होनेपर यदि पुण्यकी अधिकता होती है तो उसे 'दिव्य देह'की प्राप्ति और देवलोककी गति होती है। पापकी अधिकता रहनेपर 'यातना-देह' धारण करके नरकमें जाना पड़ता है। स्वर्ग और नरकका पृथक्रूपमें वर्णन किया गया है। किं बहुना, स्वर्गमें असंख्य देवलोक विद्यमान हैं और इसी प्रकार नरकोंकी संख्या भी अनेक है। किंतु स्वर्गमें केवल सुख और आनन्दका ही भोग होता है; वहाँ दुःखका लेश भी नहीं होता। इसी प्रकार नरकमें केवल दुःख ही रहता है।

स्वर्ग प्रकाशमय है, वहाँ अन्धकार नहीं है। सदा ज्योतिका प्रकाश रहता है। नरकमें प्रकाश नहीं है, केवल अन्धकार रहता है। स्वर्गमें नित्य सुगन्धकी अनुभूति होती है और नरकमें सदा दुर्गन्ध क्लेश देती रहती है। याद रखनेकी बात है कि स्वर्ग या नरकमें स्थिति दीर्घकालतक होनेपर भी यह नित्य नहीं है। पुण्यक्षय हो जानेपर स्वर्गीय जीवनसे स्खलित होना पड़ता है। इस प्रकार स्वर्गभ्रष्ट जीव मनुष्य-कुलमें, सद्वंशमें, उत्तम परिस्थितिमें जन्म ग्रहण करता है। इसी प्रकार नरकसे निकलनेपर साधारणतः पशु-पक्षीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है, पश्चात् मनुष्ययोनिमें जन्म होता है तथा मनुष्ययोनिमें आकर भी हीनवंशमें प्रायः विकृत देह लेकर जन्म लेना पड़ता है।

(२)

देहसिद्धि

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः।' 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्।'—

आदि वाक्योंके द्वारा पञ्चभूतात्मक पाञ्चभौतिक देहकी मृत्यु अवश्यम्भावी बतलायी गयी है। महाभारतमें बकरूपी धर्मने जब युधिष्ठिरसे पूछा कि 'आश्चर्य क्या है?' तब युधिष्ठिरने उनसे जो उत्तर दिया, उसमें यह तथ्य प्रकाशित था कि 'प्रतिदिन जीव यमलोकको जा रहे हैं, यह जानकर भी प्रत्येक प्राणी संसारमें स्थायीभावसे रहना चाहता है, यही परम आश्चर्य है।' योगशास्त्रमें भी इस विषयमें कहा गया है कि "सब जीवोंमें एक साधारण प्रार्थना स्वतः ही उदित होती है कि 'मैं सदा संसारमें रहूँ, मेरा कभी अभाव न हो।'"

देहसे हमारा अभिप्राय शुक्र और शोणितके द्वारा रचित योनिज शरीरसे जानना चाहिये। पूर्वजन्मके कर्मोंके फल भोगनेके लिये जीव यह देह ग्रहण करता है। यह देह चेष्टा, इन्द्रिय और भोगके आश्रयके रूपमें मुख्यतः देह-पदवाच्य है। इससे पृथक् सूक्ष्मदेहमें 'देह' शब्दका प्रयोग गौणरूपमें होता है। न्याय-वैशेषिकके मतसे 'देह' शब्दका यही तात्पर्य है। सांख्यमतसे 'सप्तदशैकं लिङ्गम्'—सूत्रके द्वारा लिङ्गशरीर स्वीकृत हुआ है। वेदान्तके मतसे भौतिक देह और लिङ्गदेहसे भिन्न मूलाविद्याको 'कारण शरीर'के रूपमें स्वीकार किया गया है। यहाँतक सुगमरूपसे ख्याति है। कार्य और कारण भेदसे भौतिक देह दो प्रकारका होता है। पुनः कारणदेहमें भी स्थूल और सूक्ष्म रूप विद्यमान हैं। प्रचलित दर्शन एवं पुराण और उपपुराणोंमें विविध देहोंका उल्लेख और विचार देखा जाता है।

भौतिक शरीर विनाशशील है, इस विषयमें सभी एकमत हैं; किंतु ऐसा होनेपर भी मन्त्र, औषधि तथा तपके प्रभावसे; उपासना, योग और ज्ञानके प्रभावसे अथवा अन्य किसी प्रक्रियासे यह शरीर यहाँतक स्थिर हो सकता है कि नश्वर होनेपर भी यह अविनाशी हो सकता है और मृत्युको जय कर सकता है। यह कल्पनामात्र नहीं है, बल्कि शास्त्र और अनुभवसिद्ध है। इस विषयमें अनुसंधान करनेवाले 'कायकल्प-तन्त्र' और 'मृत्युञ्जय-तन्त्र'में वर्णित विविध विषय देख सकते हैं। सिद्धसम्प्रदायानुयायी रसेश्वर सम्प्रदायके प्रायः

समरस हो जाते हैं, वे अद्वयस्वरूप और नित्य स्वप्रकाश-रूप होते हैं। तब उनका तिरोभाव भी नहीं होता।

सिद्ध-सम्प्रदायमें एक किंवदन्ती है, जिसके जाननेसे सम्यक् और असम्यक् रूप 'कायसिद्धि'का भेद स्पष्ट हो जाता है। ऐसा सुना जाता है कि एक बार गोरक्षनाथने अल्लाम प्रभुदेव नामक किसी एक महासिद्धके समीप प्रकट होकर उनके सामने अपने भूतजय तथा वज्राङ्गताका प्रदर्शन किया था। प्रभुदेवके मतसे केवल वज्राङ्गताकी प्राप्ति सम्यक् सिद्धिके रूपमें स्वीकृत नहीं है। देहकी स्थिरता सिद्ध हो जानेपर भी जबतक मायापर विजय नहीं प्राप्त हो जाती, तबतक परामुक्तिकी सम्भावना नहीं है। उनके मतसे क्षर भूतसमूह और अक्षर कूटस्थके अधीश्वर महेश्वरकी भक्ति ही परामुक्ति प्रदान करती है। इस भक्तिके उदय हुए बिना देहसिद्धि परम देहसिद्धिके रूपमें परिगणित नहीं हो सकती।

गोरक्षनाथने कहा कि उनके शरीरपर तीक्ष्ण धारवाली तलवारके प्रहारसे भी कोई क्षति नहीं होगी। प्रभुदेवके मतमें छेदन भेदन आदि क्रियाके द्वारा कायसिद्धिकी परीक्षा आसुरी परीक्षा है। तथापि जब गोरक्षनाथके शरीरपर खड्गप्रहार किया गया, तब उनके शरीरका कोई अंश छिन्न नहीं हुआ, यहाँतक कि उनके शरीरका रोम भी उससे नहीं कट सका। केवल देहसे उसी प्रकार शब्द हुआ, जैसे वज्रके द्वारा आघात लगनेपर पहाड़से शब्द उत्थित होता है। तब प्रभुदेवने कहा कि 'कायसिद्ध योगी वात, आतप, अग्नि, वज्र, वृष्टि, हिम आदिके द्वारा पीड़ित नहीं होता तथा वह जरा-मृत्युसे रहित होता है। वह सब प्रकारके सम्बन्धसे रहित होकर ईश्वरमें पूर्ण समाधिस्थ रहता है।'

गोरक्षनाथ ये सब बातें सुनकर उनकी परीक्षामें लग गये। उन्होंने तलवार लेकर अनेक प्रकारसे प्रभुदेवके शरीरपर आघात किया। परंतु प्रभुदेव आकाशवत् अचल रहे। यह आघात कहाँ लगा है, यह समझमें नहीं आता। गोरक्षनाथ इस प्रकारकी अद्भुत सिद्धि देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। उनके अपने शरीरपर आघातके फलस्वरूप शब्द उत्थित हुआ था, किंतु प्रभुदेवका शरीर अचल और निःशब्द था।

प्रभुदेव बोले—'काये यत्नोऽभिरक्षि मापि यत्नेन मायया।'

रससम्प्रदायमें अति प्राचीन कालसे ही जीवन्मुक्तिकी साधनाके लिये कायसिद्धिकी उपयोगिताके विषयमें जानकारी थी। रसतत्त्ववेत्ता कहते हैं कि 'इस शरीरसे ही परमात्म-संवेदन होना आवश्यक है। शरीरत्यागके बाद ज्ञानलिप्सा निरर्थक है। परंतु नाना प्रकारकी व्याधि, जरा-मरण आदि दुःखोंके द्वारा संतप्त क्षणभङ्गुर शरीरके द्वारा मनके अगोचर सूक्ष्म तत्त्वका साक्षात्कार प्राप्त करना सम्भव नहीं है। अतएव महाज्ञानकी प्राप्तिके पूर्व ही अणिमा आदि अष्ट गुणोंसे सम्पन्न स्थिर-देह प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न आवश्यक है।' दिव्य देह-निर्माणके लिये शिववीर्यरूप पारद तथा शक्ति-बीजात्मक अभ्रककी उपयोगिता रसतन्त्रमें बारंबार उल्लिखित हुई है और इसी कारण देहको 'हरगौरीसम्भूत' कहा करते हैं; क्योंकि पारद शिवके अङ्गसे उत्पन्न है, अतएव इसको 'रस' भी कहते हैं।

अष्टादश संस्कारके द्वारा संस्कृत रस जिस प्रकार एक ओर लौहको भेदनेमें समर्थ होता है, उसी प्रकार इसके द्वारा देहकी भी भेदनक्रिया सम्पादित हो सकती है। रसके द्वारा लौहका भेदन होनेपर वह स्वर्णके रूपमें परिणत हो जाता है तथा उसके द्वारा नरदेहका भेदन होनेपर वह सिद्धदेहमें परिणत होता है। वेधक्रियाके द्वारा देह शुद्ध होनेपर देह आकाशगमन आदि कार्य कर सकता है। रसायनविद्याका उद्देश्य लौहको स्वर्णमें परिणत करना नहीं है, बल्कि देहकी अमरता-साधन करना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। रस सम्यक्रूपसे संस्कृत हुआ है या नहीं, यह जाननेके लिये लौहका वेधन किया जाता है, और किसी उद्देश्यसे नहीं। रस जीवको 'पार' प्रदान करता है, इसी कारण इसका दूसरा नाम 'पारद' है। शिव-शक्ति-बीजस्वरूप पारद और अभ्रकके संघट्टके द्वारा रसदेहकी अभिव्यक्ति होती है। अनित्य भौतिक देह जिस प्रकार रज और वीर्यके संयोगसे उत्पन्न होता है, उसी प्रकार रसदेह भी शिव-शक्ति-सामरस्यसे उत्पन्न होता है। जो स्वर्णको प्राप्त होता है तथा जिसमें वह लीन होता है, उन दोनोंके बीच साम्य हो जाता है। जो पारद अभ्रकको ग्रास करता है, उसमें स्वर्ण आदि लीन होनेपर अपूर्व शक्ति प्रकट होती है, जिसके फलस्वरूप देहको स्थैर्य प्राप्त होता है।

देहसिद्धिके फलसे समस्त मन्वन्तरों, युग प्रभृतिके अन्तर्गत समस्त देवता रससिद्ध पुरुषके किंकर हो जाते हैं। अनादिकालसे अनेक उपासक इस देहको प्राप्त करके सिद्ध-रूपमें प्रसिद्ध हो चुके हैं। उनमें [illegible]

स्वरूपके अनुसंधानकी इच्छासे निजावेश प्राप्त करते हैं तथा निरुत्थान दशाको भी प्राप्त होते हैं। सच्चिदानन्द-चमत्कार, अद्भुत आकारसमूहका प्रकाश, प्रबोध, परमपद-प्रवेश आदि क्रमानुसार धीरे-धीरे प्राप्त होते हैं। इस अनुभवके बलसे निजपिण्डकी सिद्धि होती है। तब सिद्ध निजपिण्डके साथ परपदकी एकाकारता सम्पन्न करता है।

इस मार्गमें कहीं-कहीं चार ज्ञानकी बात वर्णित हुई है—ऐसा देखा जाता है। वे क्रमशः सहज, ससंयम, सोपाय और अद्वय नामसे वर्णित हैं। इनके आविर्भावके फलस्वरूप प्रकृष्ट निरुत्थान दशाका पूर्वाङ्गरूप स्वात्मविश्रान्ति सुलभ होती है।

आचार्य बल्लभद्रके मतसे सन्मार्गप्रदर्शक पुरुष ही गुरुरूपमें स्वीकृत हो सकते हैं। आत्मविश्रान्ति प्रदान करनेकी शक्ति केवल उनमें ही है। उनके द्वारा प्रदर्शित पथपर जो चलते हैं, वे स्वसंवेद्य वस्तुको देख पाते हैं। परमात्मरूपी सद्गुरुकी करुणादृष्टि ही सब प्रकारके कल्याणका मूल है। योगीलोग सब प्रकारकी सिद्धियोंका त्याग करके स्वात्मैकवेद्य निरुत्थान दशाको प्राप्त करते हैं और निजपिण्डको समरस कर सकते हैं।

पहले निजावेश उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् स्थिर महानन्द-दशा अभिव्यक्त होती है तथा उसके साथ अमल प्रकाशका आविर्भाव होता है। यहाँतक सम्पन्न होनेपर निखिल भेद विगलित होकर अभेदमय चैतन्यात्मक परमपदका उन्मेष होता है। उसके अनुभवके फलसे निजपिण्डका सम्यक् ज्ञान होता है तथा परमपदमें निजपिण्डका निर्वाण अथवा ऐक्य सम्पादित होता है। तत्पश्चात् निजपदमें प्रत्यावृत्त होती है। यही द्वितीय उन्मेष है। उसके प्रत्याहारसे सामरस्य होता है। निजकिरणपुञ्जका निजरूपमें साक्षात्कार होता है। यह सामरस्य ही 'अद्वैततत्त्व' है। अवधूत गीतामें वर्णित 'समतत्त्व' यही है। अमनस्क, भावाभावविनिर्मुक्त, नाश और उत्पादरहित, सर्वसंकल्पवर्जित परमपद अवस्था भी इसीका दूसरा नाम है।

महाज्ञानके द्वारा 'परमशून्ययोग'की प्राप्ति होती है। आदिनाथ श्रीशंकरसे यह ज्ञान मत्स्येन्द्रनाथके समान गोरक्षनाथको भी प्राप्त हुआ था। सिद्ध नाथयोगीगणकी नामावलीमें बहुतसे नाम आते हैं। ये सब नाम रस-सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें भी प्राप्त होते हैं। कहीं-कहीं चौरासी सिद्धोंके नाम प्राप्त होते हैं। उनमें कोई रसमार्गमें सिद्ध हैं, कोई हठयोगके द्वारा सिद्ध हैं और कोई तान्त्रिक प्रक्रिया अथवा बिन्दु-साधनके द्वारा सिद्ध हुए हैं। इस सम्बन्धमें किसी एक निश्चित सिद्धान्तपर पहुँचना कठिन है।

प्रायः सभी मार्गोंमें, सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर एक ही मार्ग दिखलायी देता है और वह है—ब्रह्ममार्ग। यही 'शून्य पदवी' नामसे प्रसिद्ध सुषुम्णा नामक मध्यमा प्रतिपद है। उसका वर्णन इस प्रकार होता है—

'भोक्त्री सुषुम्णा कालस्य गुह्यमेतदुदाहृतम्।'

'सुषुम्णा कालकी भोक्त्री है, यह गुह्य वस्तु कही जाती है।'

जन्म-मरणके चक्रसे छुटकारा

आत्मा पूर्ण ईश्वरस्वरूप है। जड शरीरसे उसके बद्ध होनेका आभास होता है सही, पर उस आभासको मिटा देनेसे वह मुक्त-अवस्थामें दीख पड़ेगा। वेद कहते हैं कि 'जन्म-मरण, सुख-दुःख, अपूर्णता आदि बन्धनोंसे छूटना ही मुक्ति है।' उक्त बन्धन बिना ईश्वरकी कृपाके नहीं छूटते और ईश्वरकी कृपा अत्यन्त पवित्र हृदय हुए बिना नहीं होती। जब अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध और निर्मल अर्थात् पवित्र हो जाता है, तब जिस मृत्पिण्ड देहको जड या त्याज्य समझते हो, उसीमें परमात्माका प्रत्यक्षरूपसे उदय होता है और तभी मनुष्य जन्म-मरणके चक्रसे छूट जाता है।

—स्वामी विवेकानन्द

३—अब देवतादि भोगयोनिके उच्च प्राणियोंको लें। बुद्धि उनमें मनुष्यसे अधिक है; किंतु उनको प्रकृतिने स्थूलशरीर नहीं दिया है। धर्माधर्मकी उत्पत्तिके लिये स्थूलदेह ही आवश्यक नहीं है, यह भी आवश्यक है कि वह कर्म पृथ्वीपर किया जाय। दैत्यराज बलिने बलपूर्वक स्वर्गपर अधिकार कर लिया, तब दैत्यगुरु शुक्राचार्यने उन्हें समझाया—'स्वर्गपर इस प्रकार अधिकार स्थायी नहीं हो सकता। अधिकार तभी स्थायी होता है, जब उस अधिकारको प्राप्त करनेका जो नियम है, उसे पालन किया जाय। अन्यथा सृष्टिका नियन्ता किसी-न-किसी प्रकार अनधिकारीको अनधिकार-प्राप्त स्थानसे च्युत कर ही देता है। स्वर्गका स्वामित्व सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवालेको मिले, यह नियम है। तुम यज्ञ करके यहाँके नियमित अधीश्वर बन जाओ तो तुम्हें सृष्टि-नियन्ता भी पदच्युत नहीं कर सकेगा।'

बलिको यज्ञ करनेके लिये पृथ्वीपर आना पड़ा। उन्होंने नर्मदाके उत्तरतटपर अपनी यज्ञशाला बनायी; क्योंकि समस्त लोकोंमें सृष्टिकर्ताने इस धराको ही कर्मभूमि बनाया है। दूसरे सब लोक तो भोगभूमि हैं। धरा ही कर्मक्षेत्र है। इसी क्षेत्रमें कर्मकी खेती सम्भव है। यहीं हुए शुभ या अशुभ कर्मोंका भोग दूसरे लोकोंमें कर्ताको मिलता है; जैसे वृक्षकी जड़ पृथ्वीमें ही रहती है, पृथ्वीके रससे ही वह बढ़ता-फलता है। अब यह बात भिन्न है कि कुछ वनस्पति पृथ्वीपर फैलकर वहीं फलती हैं, कुछके कन्द पृथ्वीके भीतर बनते हैं और कुछके फल ऊपर आकाशमें उनकी डालोंमें लगते हैं। कर्मका फल ऊपर-नीचे या पृथ्वीपर, कहीं भी होता हो, कर्मरूपी वृक्षके उगने-पोषण पानेका स्थान पृथ्वी ही है।

देवता, दैत्य या उपदेवता कर्म कर तो सकते हैं; किंतु तभी कर सकते हैं, जब वे पृथ्वीपर आकर और मनुष्यरूपमें रहकर कर्म करें। पृथ्वीपर आकर अपने देवरूपमें वे कुछ करें तो वह कर्म कोई पाप-पुण्य उत्पन्न नहीं करता। देवता पृथ्वीपर आकर किसीको वरदान दे जायँ या शाप, इससे उन्हें कोई पाप-पुण्य नहीं होता। उनके अपने लोक तो भोगलोक हैं ही। वहाँ वे कोई शुभ कर्म करें तो वह पुण्य नहीं उत्पन्न करता। जैसे महर्लोक और जनलोकमें जो ऋषि-मुनि रहते हैं, वे सत्कर्मोंमें ही लगे रहते हैं। ऐन्द्रियक भोगोंमें उनकी रुचि नहीं है; किंतु उन लोकोंका समस्त, ध्यान-धारणा अपेक्षाकृत नहीं बना करता। यदि कभी किसीको वहाँ ज्ञान होता भी है तो उसे होता है, जो धरासे ही उसका अधिकारी होकर जाता है।

देवताओंको अनेक बार भगवान् शिव एवं भगवान् नारायणके दर्शन होते हैं। श्रीराम-श्रीकृष्णादि जब पृथ्वीपर अवतार लेते हैं तो देवता उनका दर्शन करते हैं। अनेक बार उनकी सेवा भी करते हैं और उनके प्रत्यक्ष सम्पर्कमें भी आते हैं; किंतु इससे न उन्हें भक्ति मिलती और न उनकी मुक्ति होती है। वे तो जैसेके तैसे ही बने रह जाते हैं, जब कि पृथ्वीके पशु-पक्षी-वृक्षादिका भी उद्धार अवतार-कालमें भगवान्‌के सम्पर्कमें आनेपर हो जाता है।

देवलोकादि 'भोगलोक' हैं। वहाँ जो देह प्राप्त होता है, वह 'भोगदेह' है। उसमें नवीन कर्म-संस्कार ग्रहण करनेकी क्षमता नहीं होती। उस देहमें रहते अपवादस्वरूप ही कदाचित् पृथ्वीपर आकर और स्थूलदेह लेकर कर्म करनेकी प्रवृत्ति जागती है, जैसे बलिमें जागी। अन्यथा वहाँ भोगोंमें ही रुचि एवं प्रवृत्ति रहती है।

धरा कर्मभूमि है और यहाँ भी केवल मनुष्ययोनि ही कर्मयोनि है। देवता भी कर्म करना चाहें तो उन्हें बराबर मनुष्य बनकर आना पड़ता है।

'न हि मानुषात् परतरं हि किञ्चित्।'

'मनुष्यसे श्रेष्ठ दूसरा कोई कहीं किसी लोकमें नहीं है।' लेकिन क्या द्विपाद प्राणीका नाम ही मनुष्य है?

मनुष्ययोनिकी कुछ विशेषताएँ हैं, जिन्हें यहाँ दे देना उत्तम होगा—

देवता तथा दूसरे पुण्यलोकोंके सब प्राणी क्षयोन्मुख हैं। वे अपने पुण्योंका भोग करके उन्हें क्षीण कर रहे हैं। वे वहाँसे नीचे गिरनेके मार्गपर हैं। उनकी अवनति ही होनेवाली है।

पशु-पक्षी और वृक्ष ही नहीं, नारकीय प्राणी भी ऊर्ध्वमुख हैं। वे प्रगतिके मार्गपर हैं। वे अपने पापों—अशुभ कर्मोंको भोगकर क्षीण कर रहे हैं। वे विकासोन्मुख हैं। उनकी उन्नति ही होनेवाली है।

मनुष्य कहाँ है—यह उसे स्वयं देखना है। यह जो कुछ करेगा, कर्मयोनिका प्राणी होनेके कारण उसको उसका फल भोगना है। यह शुभकर्म करता है तो शुभफलमें

क्योंकि उससे मृत्यु अवश्यम्भावी है। योगिगण कहते हैं—'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात् ।' बिन्दुकी ऊर्ध्वगति सम्पादन करनेके फलस्वरूप कायसाधन सम्पन्न होता है। बिन्दु स्वभावतः मलयुक्त होनेके कारण अधोगतियुक्त है। उस अशुद्ध बिन्दुको बौद्ध तान्त्रिकगण 'संवृतिबोधिचित्त' नामसे अभिहित करते हैं। अशुद्ध बिन्दुमें भूमि-प्रवेशकी सामर्थ्य नहीं होती। अतएव उसके द्वारा भूमिभेद भी नहीं हो सकता तथा उसके फलस्वरूप प्रज्ञाकी भी शुद्धि नहीं हो सकती। अतएव बुद्धत्वकी प्राप्ति बहुत दूरकी बात रह जाती है। इसी कारण सबसे पहले शोधनशक्ति और निरोधशक्तिके द्वारा बिन्दुकी अधोगतिको रोकना आवश्यक है। तत्पश्चात् कर्ममुद्राके द्वारा ऊर्ध्वस्रोत खुलकर अमरत्वका मार्ग सिद्ध होता है। यहीं ही 'शुद्धकाय'का उदय होता है। निर्माणचक्रमें बिन्दुकी गति और स्थितिके फलस्वरूप जिस कायका उदय होता है, उसका नाम है—'निर्माणकाय'। बिन्दुके ऊर्ध्वगमनके साथ-साथ आनन्दका भी तारतम्य होता है। अवधूतिमार्गके आश्रयसे बोधिचित्त जब धर्मचक्र तक उठता है तब पूर्वोक्त आनन्द परमानन्दरूपमें परिणत होता है। निर्माणचक्रमें जो 'कर्ममुद्रा' होती है, वह धर्मचक्रमें 'धर्ममुद्रा' कहलाती है। इस अवस्थामें बोधिचित्त योगीके शिरोदेशमें रहता है। इसके बाद उत्कर्षको प्राप्त होनेपर सम्भोगचक्रमें 'विरमानन्द'का अनुभव होता है। उस समयकी मुद्राका नाम 'महामुद्रा' है। 'परमानन्द' और 'विरमानन्द' क्रमशः भव और निर्वाणस्वरूप हैं। इस समय 'समयमुद्रा' कार्य करती है, परन्तु यह भी पूर्णताकी प्राप्ति नहीं है। यहाँ क्लेशावरण और ज्ञेयावरण निवृत्त हो जाते हैं तथा भव और निर्वाण एकाकार हो जाते हैं। उसके ऊपर महासुखचक्रमें 'सहजानन्द'की उपलब्धि होती है। तब अहंबोध सर्वथा विलुप्त हो जाता है।

जैसे निर्माणचक्रमें बुद्धका 'निर्माणकाय' आविर्भूत होता है, उसी प्रकार धर्मचक्रमें 'धर्मकाय', सम्भोगचक्रमें 'सम्भोगकाय' तथा महासुखचक्रमें 'महासुखकाय' प्रकट होता है। यही दिव्यदेहका आविर्भाव है। इस स्थितिमें दिव्य चक्षु, दिव्य श्रोत्र, सर्वज्ञत्व, विभुत्व आदि महागुणोंका आविर्भाव होता है। सबके अन्तमें सम्यक् सम्बुद्धरूपमें बोधिचित्तकी स्फूर्ति होती है।

आनन्द ही अमृत है। चन्द्रकलामें इस अमृतका उन्मेष होता है। अवधूतिमार्गके द्वारा जब बोधिचित्त ऊर्ध्वगमन करता रहता है, तब विभिन्न प्रकारके आनन्दका उन्मेष होता है। षोडश कलात्मक चन्द्रकी प्रथम पाँच कलाओंसे धर्मचक्रमें परमानन्दका आविर्भाव होता है, मध्यम पञ्च-कलाओं और अन्तिम पञ्चकलाओंसे अन्य दो प्रकारके आनन्दका उद्भव होता है। 'अमृता' नामक सोलहवीं कला महासुखचक्रमें सहजानन्दरूपमें अनुभूत होती है। यही अमृतकला मानवदेहका अमरत्व सम्पादन करती है।

सहज साधक वैष्णवगण भी कायसाधनको साधनाके उद्देश्यके रूपमें स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि देहमें चार सरोवर विद्यमान हैं। कायसाधनकी सिद्धि होनेपर ये सरोवर प्रस्फुटित होते हैं। सरोवरके दो वामाङ्ग हैं और दो दक्षिणाङ्ग हैं। ये प्रकृति-पुरुषरूप हैं। वाम अङ्गमें 'काम-सरोवर' और 'मानस-सरोवर' हैं तथा दक्षिण अङ्गमें 'प्रेम-सरोवर' और 'अक्षय-सरोवर' हैं। संतवाणीसे ज्ञात होता है कि मानस-सरोवरमें स्नान कर लेनेके बाद व्यापक मनोमय रूप प्राप्त होता है। पश्चात् उसको अतिक्रम करके महाशून्य-भेद करना पड़ता है। अन्यथा चिदानन्दमय सगाद्धाम प्राप्त नहीं होता। अक्षय-सरोवर ही भगवद्धाम है। महाप्रलयमें सारे विश्वका नाश हो जानेपर भी एकमात्र अक्षय-सरोवर ही विद्यमान रहता है।

मानवदेहमें यह स्थान मस्तकमें स्थित सहस्रदल कमलमें अवस्थित है। यह सहजपुर है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डका भेद होनेपर इसकी प्राप्ति होती है। यहाँ काल नहीं है, जरा नहीं है, मृत्यु भी नहीं है।

सहज साधकगण कायसिद्धिके विषयमें तीन भूमि स्वीकार करते हैं। प्रथम 'प्रवर्तकभूमि' है, द्वितीय 'साधक-भूमि' है और तृतीय 'सिद्धभूमि' है। प्रथम भूमिमें नामसाधना, पश्चात् गुरुप्राप्तिके बाद मन्त्र ग्रहण और मन्त्रसाधना होती है। जबतक मन्त्रसिद्धि नहीं हो जाती, तबतक प्रवर्तक-अवस्थाका अतिक्रम सम्भव नहीं है। द्वितीय भूमिमें भाव-साधना और प्रेमसाधना होती है। भावसिद्धि-प्राप्तिके बाद उसी देहमें साधना चलती रहती है। सिद्धावस्थामें तृतीय भूमिमें रहकर वस्तुकी प्राप्ति होती है तथा श्रीभगवान्‌के नित्यलीला-राज्यमें प्रवेश प्राप्त होता है।

मृत्युकालमें जीव नहीं देह ग्रहण करके धर्मदेहपर लाभ देता है। यही वस्तुसिद्धि है। इस प्रकार नवीन-नवीन देह धारण करनेसे अवश्य ही देहकी शुद्धि हो जाती है।

वह महासाम्यरूप है। वह सब प्रकारके करणोंके अगोचर होनेके कारण निर्विकल्पस्वरूप वस्तु है। वह न द्वैत है, न अद्वैत। इस मतमें एक अचिन्त्य बाह्य सत्ता मानी गयी है। उसको हम विश्वकी सृष्टिका मूल, एक आदिद्रव्य कहकर वर्णन कर सकते हैं। सृष्टिके समय इस सत्तामें क्षोभ उत्पन्न होता है, जिसके फलस्वरूप वह विभक्त होकर सूक्ष्म, स्थूल असंख्य विभिन्न जड अंशके रूपमें परिणत हो जाता है। पूर्ण सत्ताके बाहर क्रमशः नित्य और अनित्य-मण्डलका उदय होता है। उसमें नित्य-मण्डल सत्य है और अनित्य-मण्डल मिथ्या। पूर्णत्व इन दोनोंके परेकी अवस्था है। नित्य-मण्डल निर्विकार है। अनित्य-मण्डल विकारमय है। नित्य-मण्डलमें एकताका भान रहनेपर भी, बहुकी समष्टि होनेके कारण उसमें वास्तविक एकता नहीं है, समष्टिगत वैकल्पिक एकता अवश्य उसमें है। सांख्यमतके अनुसार प्रकृति त्रिगुणात्मिका है; किंतु साम्यावस्थामें उसमें जिस प्रकारकी एकता रहती है, वैसी ही एकता इस नित्य-मण्डलमें है। पूर्णस्वरूपमें जो एकता है, वह साम्यरूप नहीं है; अतएव वह विलक्षण स्वभावकी है।

यह नित्य-मण्डल श्रीभगवान्‌का भावरूप अथवा आदि-कल्पनारूप है। यही सृष्टिके समय भौतिकरूपमें प्रकट होता है; परंतु सृष्टिके उन्मेषके समय ये दोनों मण्डल अव्यक्त अवस्थामें रहते हैं। चिद्-रूप (Logos) में नित्य-मण्डलका अधिष्ठान होता है। इसके साथ सृष्टि-प्रकृति (Archeus) का क्या सम्बन्ध है? ईसाई योगियोंके मतसे यह चित् और अचित्-सत्ता समकालीन और सम-भावापन्न कही जाती है। यह चित् मूल द्रव्यमें आच्छन्न अवस्थामें निहित रहता है तथा मूलद्रव्यरूपा प्रकृति भी चित्स्वरूपकी प्राणशक्ति है। सांख्यके मतसे जैसे सत्त्व और पुरुषमें कल्पित सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है, वैसा ही यहाँ भी समझना चाहिये। चित् ज्योतिरूपमें प्रतिभात होता है। द्वैत शैवागममें जैसे बिन्दुके क्षोभके फलस्वरूप चित्-शक्तिकी अभिव्यक्तिरूप ज्योतिका प्रकाश होता है, यहाँ भी बहुत कुछ वैसा ही होता है। अखिल सृष्टि, सब प्रकारकी स्थूल और सूक्ष्म देह इसी ज्योतिसे ही आविर्भूत होती हैं। ईसाई योगियोंकी परिभाषामें इस ज्योतिको (Pneuma) कहते हैं।

यह ज्योतिरूपा मूलशक्ति समस्त जड पदार्थोंमें निहित है तथा इसके प्रभावसे विभिन्न उपादान विभिन्न कार्यरूपको प्राप्त होते हैं। नव विधानमें Paraclete नामकी जीवात्मशक्तिका उल्लेख किया जाता है। यह इसी मूलशक्तिका ही दूसरा नाम है। महाज्ञान-सम्पादन करते समय यही शक्ति कार्य करती है। इसको त्यागकर कोई निर्गुण कार्य करना सम्भव नहीं है। भारतीय योगियोंके समान ईसाई योगी भी पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकताको स्वीकार करते हैं। ब्रह्माण्डमें जो कुछ लक्षित होता है, वह सभी पिण्डमें भी दृष्टिगोचर होता है तथा जो पिण्डमें है, वह ब्रह्माण्डमें है। बाह्य प्रपञ्चमें कारण, सूक्ष्म और स्थूल—ये तीन प्रकारकी भूमि वर्तमान हैं। उपर्युक्त अन्तर्मण्डल (Logos) ही 'कारण भूमि' है। यह ज्योतिर्मय है। मध्यभूमि मनोमय (Psychic) 'सूक्ष्म' है। अन्तिम भूमि भौतिक है, वह 'स्थूल' है। यह सब प्रकारसे इन्द्रियग्राह्य है। स्थूल और सूक्ष्मके अन्तरालमें एक भूमि और है, किसी-किसीके मतसे यह स्थूलके अन्तर्गत है और किसीके मतसे सूक्ष्मके अन्तर्गत। यह भूमि कल्पनामय है। इसी प्रकार मनुष्यकी अन्तः-सत्तामें भी तीन भूमि वर्तमान हैं। वे कारणरूप, सूक्ष्म और स्थूलरूपसे कारणादि देहत्रयके नामसे परिचित हैं।

कारण देह (Pneumatic body) ज्योतिर्मय है। कहीं-कहीं यह आत्मरूप (Spiritual body) देहके नामसे भी अभिहित होती है। अन्तर्दृष्टिके द्वारा देखनेपर यह अण्डाकार प्रभामण्डलके रूपमें प्रतिभात होती है और उसमें पूर्ववर्णित ज्योति (Paraclete, Logos) सुप्तवत् निहित रहती है। उसका उद्दीपन होनेपर यह मानवके अन्तःकरणको निर्मल कर सकती है। जागरणके समय यह तीव्र प्राणशक्तिके रूपमें, विद्युत्की प्रभाकी भाँति, सर्पकी गतिके समान तिर्यग्गति होती है। यह शक्ति अमित है। भारतीय योगशास्त्रमें इसको 'कुण्डलिनी' कहते हैं। प्राचीन कालके यवनशास्त्रमें यह शक्ति कुण्डलाकार सर्पके समान होनेके कारण 'Speirema' नामसे अभिहित की जाती थी। जब इस शक्तिका कुण्डल भङ्ग हो जाता है, तब यह वैद्युती शक्ति कपालदेशके ब्रह्मरन्ध्र पथसे बाहर होकर ज्योतिर्मय देहकी रचना करती है। इस देहका निर्माणकौशल ही ईसाई मतकी प्रसिद्ध है। इस चिद्-उज्ज्वल देहको रहस्यवेत्ता 'Augoeides' शब्दसे अभिहित करते हैं। इस अजर-अमर देहको 'गौरदेह' भी कहा जाता है। इस देहमें

परंतु इससे चरम सिद्धि नहीं प्राप्त होती। प्राकृत सत्त्व-शुद्धिके प्रकर्षसे जैसे अप्राकृत सत्त्वरूप नहीं होता; क्योंकि पूर्वोक्त प्राकृत सत्त्वमें रजः और तमका सम्पर्क अवश्य रह जाता है, इसी प्रकार देहसे देहान्तरकी प्राप्ति होनेपर भी उसमें अशुद्ध मायाका लेश रह ही जाता है। शुद्ध मायाका योग उसमें नहीं आता। सिद्धसम्प्रदायके मतसे माया तीन प्रकारकी है—'अशुद्धा माया,' 'शुद्धा माया' और 'महामाया'। शुद्धा माया शब्दसे यहाँ शैवागम-प्रसिद्ध बिन्दुतत्त्व समझना चाहिये। महामाया प्रायः चित्-शक्तिरूप है।

अशुद्ध सत्त्व विकारस्वभाव है, किंतु शुद्ध सत्त्व अविकारी है। इसी कारण सम्यक् देह-शुद्धि करनेके लिये अशुद्ध मायाजात देहको शुद्ध मायाकोटिमें ले आना आवश्यक है। जब इस प्रकार शुद्धि हो जाती है, तब मायासे उत्पन्न विकार-समूह तिरोहित हो जाते हैं; परंतु शुद्धमार्गमें अवस्थित मुक्तपुरुषके अनुग्रहके बिना शुद्धदेहकी उत्पत्ति सम्भव नहीं। जबतक अशुद्ध प्राकृतदेह शुद्ध मायामयदेहमें परिणत नहीं हो जाती, तबतक मृत्यु और संसारकी निवृत्ति नहीं होती। कर्मका अभाव होनेपर भी अशुद्ध देहके बीज तब भी रह जाते हैं, अतएव संसरण होगा ही। परंतु यह संसरण स्वेच्छाधीन है। यह किसी कर्मके अधीन नहीं है। परंतु सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर सूक्ष्म कर्म वहाँ भी वर्तमान है। शुद्धमार्गमें अवस्थित पुरुषकी कृपा प्राप्त होनेपर शुद्ध बीज प्राप्त होता है और अशुद्ध देहकी शुद्धि भी होती है, तब मृत्युंजय हो जाता है। मुक्त पुरुषके अनुग्रहसे अशुद्ध माया शुद्ध मायामें परिणत होती है और तब देहको भी अमरत्व प्राप्त होता है।

यह शुद्ध देह अमृतकलामय 'प्रणवतनु'के नामसे प्रसिद्ध है। प्रणवतनुकी प्राप्ति ही 'जीवन्मुक्ति' है। इस प्रकारका जीवन्मुक्त पुरुष जीव होकर भी ईश्वरस्वरूप होता है। वह शुद्ध और अशुद्ध जगत्के संधिस्थलमें रहता है। अशुद्ध जगत्के साथ उसका सम्बन्ध कुछ थोड़े समयतक रहता है। परामुक्ति उसके समीप रहती है। जब उसको परामुक्तिकी प्राप्ति होती है, तब योगी चिन्मय ज्योतिःस्वरूपमें अवस्थान करता है और देहमें रहता है ज्योतिस्वरूपमें। तब मायाका सम्बन्ध नहीं रहता। शुद्ध माया भी उस समय नहीं रहती। जीवन्मुक्तकी देह शुद्ध मायामय होती है, परमुक्तकी देह महामायामय होती है—परमुक्तकी देह ज्ञानमय होती है, यहाँ देह और आत्माका भेद विगलित हो जाता है। प्रणव-देहधारी जीवन्मुक्त पुरुष मायास्थ मुमुक्षु जीवोंका माया-गर्भसे उद्धार करते हैं। शुद्ध वासनाकी निवृत्ति होनेपर वे शुद्ध मायाराज्यका भी त्याग करते हैं। उनका देह अकस्मात् दिनके प्रकाशमें ही तिरोहित हो जाता है। सिद्धलोग कहते हैं कि देहमें रहते हुए ही जीवन्मुक्ति प्राप्त करना होगा, मृत्युके बाद नहीं। सिद्ध मतसे मनुष्यका एक कर्तव्य है—देहशुद्धि और चित्तशुद्धि। दोनोंके मिलनमें परतत्त्वकी अभिव्यक्ति होती है। रसेश्वर और नाथ-योगिगणका भी यही सिद्धान्त है।

पाश्चात्त्य देशोंमें भी कायसिद्धिके सम्बन्धमें विशेष अनुशीलन होता था। उन देशोंके प्राचीन इतिहास और गुप्त संस्कृतिकी आलोचना करनेपर इस विषयमें बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है। ईसाई-मतके प्रामाणिक तथ्य यहाँ उल्लेखनीय जान पड़ते हैं।

बाइबिलके 'नव विधान' (New Testament) के चतुर्थ खण्डमें 'अप्राकृत जन्म' शब्दका उल्लेख मिलता है। इससे जान पड़ता है कि इस शब्दके द्वारा दिव्यदेह प्राप्तिका ही संकेत है।

ज्ञानसे ज्ञेयका भेद दूर करके ज्ञानको ज्ञेयके आकारमें परिणत करनेकी शक्ति ही 'महाज्ञान'का लक्षण है। मनुष्य शरीरमें अनादिकालसे असंख्य शक्तियाँ सुप्तावस्थामें वर्तमान हैं। इस शक्ति-समूहको जाग्रत् किये बिना ज्ञान महाज्ञानमें परिणत नहीं हो सकता। फलतः आत्मविकास भी नहीं होता और उसके अभावमें स्वरूपप्रतिष्ठा भी नहीं हो सकती। शक्ति-जागरणका उपाय है—अन्तर्दृष्टिका उन्मीलन। उन्मीलित शक्तिसमूहके द्वारा ही मनुष्य-जीवनकी सार्थकता सिद्ध होती है तथा जरा-मरण आदिसे रहित, मल और पापलेशसे हीन दिव्यदेहका उदय होता है। यही द्विजत्व-सम्पादनकारी द्वितीय जन्म (Regeneration अथवा Birth from Above) है।

हमारे देशमें जैसे उपनयन-संस्कारके प्रभावसे अथवा दीक्षाके फलसे शुद्ध देहका उदय माना जाता है, उसी प्रकार ईसाई-मतमें दीक्षा (Baptism) के प्रभावसे शुद्ध देह प्राप्त होती है। ऐसा उनके ग्रन्थोंमें वर्णित है।

अब प्रश्न यह होता है कि अन्तर्दृष्टिका उन्मीलन किस प्रकार हो? इसके उत्तरमें कहा जाता है कि इस सम्प्रदायके मतसे पूर्णसत्य अखण्ड एकरस-स्वभाव है।

शक्तिका आश्रय लेकर आगेकी क्रियाओंका साधन होता है। इस स्पन्दके द्वारा आविष्ट 'मध्यमा कला' नामक प्रसिद्ध शक्ति-कन्द जन्मस्थानमें प्रमुख अवस्थामें है। कौलमतसे जन्मस्थान आनन्देन्द्रिय है। तान्त्रिक प्रक्रियामें यह कन्द (मूल) रूप है। केवल इतना ही दोनोंमें भेद है।

योगी बहुत सावधान चित्तसे निरन्तर इस शक्तिकी भावना तबतक करते रहें, जबतक समावेश सिद्ध न हो जाय। तत्पश्चात् भावनाके बलसे पादाङ्गुष्ठमें स्थित कालाग्निके आधारका आश्रय लेकर ऊर्ध्वमें आरोहण करनेका प्रयत्न करना आवश्यक है।

यह प्रथम पर्व है। इसके समाप्त होनेपर कन्द-भूमिसे प्राप्त शक्ति-स्पन्दात्मक वीर्यको उसमें निक्षेप करके प्रस्फुट भावनाके द्वारा व्यक्त करें। तत्पश्चात् प्राणस्पन्दरूपी क्रिया-शक्ति उस वीर्यके द्वारा आपूरित होती है। इसकी मात्रा बढ़नेपर देहकी मध्यवर्ती नाभि प्राप्त होती है। वह तीन प्रकारकी है—एक 'इच्छारूप', जिसमें संकोचक्रमसे उत्पन्न ऊर्ध्वारोहणका प्रयत्न मुख्य है। द्वितीय है 'भावनारूप' और तृतीय है 'क्रियारूप', जिसके द्वारा ऊर्ध्वग्रन्थियोंका भेद या वेध होता है। ये ग्रन्थियाँ गुल्फ, जानु, मेढ़ तथा कन्दरूप हैं।

मूलस्पन्दके आश्रय मत्तगन्धस्थानकी बारंबार संकोच-विकासक्रियाका तात्पर्य है—निरोध। यह स्वच्छन्द शास्त्रमें वर्णित दिव्यकरणका उपलक्षण है।

इडा और पिङ्गला-रूपी दोनों पार्श्वकी नाड़ियोंका परित्याग करके, इच्छाका अवष्टम्भ साधन करते हुए, मध्यमार्गमें प्रवाहित मध्यप्राणशक्तिके द्वारा सुषुम्णाका आश्रय लेना कर्तव्य है। सुषुम्णामें प्रवेश होनेपर समस्त इन्द्रियों और विषयोंसे विरत होना चाहिये। तब मायारहित विज्ञानके द्वारा (चिदात्मक ज्ञानशक्तिके द्वारा) क्रमशः हृदय आदि स्थानोंमें स्थित ब्रह्मादि कारणोंको एक-एक करके त्यागना पड़ता है। यहाँ प्राणादिकी प्रधानता न होनेके कारण इसे विज्ञानरूप समझना चाहिये। यह ब्रह्मादि सृष्टि आदि संवित्-स्वभाव है। तत्पश्चात् मायाग्रन्थि-भेद करके पञ्च आकाशका त्याग करें। तब ब्रह्मासे लेकर शिवतक सब कारणोंके ऊर्ध्वदेशमें विराजमान 'समना' नामक कुण्डली-शक्तिको प्राप्त करना होगा। उसीके गर्भमें शून्यातिशून्य अखिल विश्व कुण्डलकी भाँति अवस्थित है। समना-प्राप्तिके बाद ऊर्ध्वमें विरति है। वहाँ उन्मनाकी प्राप्ति होती है। वही परशिवदशा परमाकाशस्वरूप 'परव्योम' है।

अनर्थका साधन अर्थ

अर्थैश्वर्यविमूढो हि श्रेयसो भ्रश्यते द्विजः। अर्थसंपद्विमोहाय विमोहो नरकाय च ॥
तस्मादर्थमनर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्। यस्य धर्मार्थमर्थेहा तस्यानीहा गरीयसी ॥
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्। योऽर्थेन साध्यते धर्मः क्षयिष्णुः स प्रकीर्तितः ॥
यः परार्थे परित्यागः सोऽक्षयो मुक्तिलक्षणः ॥

(पद्मपुराण सृष्टि॰ १९। २५०—२५३)

'धन-सम्पत्ति मोहमें डालनेवाली होती है। मोह नरकमें गिराता है; इसलिये कल्याण चाहनेवाले पुरुषको अनर्थके साधन अर्थका दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जिसको धर्मके लिये धन-संग्रहकी इच्छा होती है, उसके लिये वह इच्छाका त्याग ही श्रेष्ठ है; क्योंकि कीचड़को लगाकर धोनेकी अपेक्षा उसका स्पर्श न करना ही उत्तम है। धनके द्वारा जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह क्षयशील माना गया है। दूसरेके लिये जो धनका परित्याग है, वही अक्षय धर्म है, वही मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है।

(महर्षि पुलस्त्य)

यह स्वरूपसे अतिरिक्त नहीं है; क्योंकि वह स्वरूपमें आश्रित नहीं है; स्वरूपसे अभिन्न है और स्वरूपके साथ एकरस है। इस चितिरूपा परमेश्वरकी स्वातन्त्र्य-शक्तिका आश्रय करके योगिगण परमपदकी ओर यात्रा करते हैं। यह समस्त विश्वके मध्यमें है, विश्वकी हृदयगुहामें अति गुप्तभावसे निहित है।

मानव निरन्तर श्वास-उच्छ्वासशील है तथा नाना प्रकारके द्वन्द्वोंके घात-उपघातसे पीड़ित होनेके कारण मध्यमार्गमें संचरणशील, समस्त वस्तुओंके मध्य रहनेवाली इस शक्तिका साक्षात्कार नहीं कर सकता। अन्योन्यविरुद्ध प्राण और अपानकी वृत्तियोंके संघट्टके द्वारा जीवदेहके सारे कार्य तथा चिन्तन परिव्याप्त रहते हैं। अतएव किसी-न-किसी प्रक्रियासे इन वृत्तियोंको अभिभूत करना आवश्यक है। विरुद्ध शक्तियोंका विरोध शान्त होनेपर यह भावना करनी चाहिये कि सुषुम्णामें स्थित मध्यम प्राणमें पराशक्तिका संचार हो रहा है। यह मध्यम प्राण ही 'उदान' नामक प्राणब्रह्म है। जब देहादिमें अहंभावका त्याग हो जायगा तथा पूर्णाहंताके समावेशकी सिद्धि हो जायगी, तभी समझना होगा कि सब भावना सफल हो गयी। अहंभाव-परामर्शके लिये यही क्रमशः करना चाहिये। योगी पूर्णाहंतामय मूलमन्त्रके साथ पराशक्तिका सामरस्य चिन्तन करें। इस प्रकारकी भावनाके फलस्वरूप प्राणादि-संस्पर्शसे रहित स्पन्द स्वयं प्रकट होगा। इस स्पन्दके द्वारा पूर्वोक्त सामरस्यकी प्राप्ति कठिन नहीं रहेगी।

यहाँतक सिद्ध हो जानेपर भावनाके मार्गमें मन्त्रवीर्यका सार समुदित होता है। यही अभिमान-उदयरूप रहस्य है। तत्पश्चात् देह-प्राण आदिमें परिच्छिन्न प्रमातामें विद्यमान अभिमानका परिहार करके उसको आनन्दघनमें उठाकर मूलाधारमें स्थापित करना पड़ता है।

यहाँतक प्रारम्भिक प्रक्रिया हुई। इसके बाद वेध-क्रियाका समय आता है। पहले आधार आदि सोलह केन्द्रोंको एक-एक करके वेध करना पड़ता है। वेधकार्यमें नाद स्फुरण होता है, यह मन्त्रात्मक प्राणरूपमें अथवा स्फुरत्ता-के उन्मेषके रूपमें प्रकट होता है। यहाँ सूक्ष्म योग और प्रयोगकी आवश्यकता है।

उन्मिषित स्फुरत्ताकी तीव्र उत्तेजनाका संचार ही 'सूक्ष्म योग' है। इसका प्रयोग इस प्रकार होता है कि प्राणात्मक मन्त्र पूर्वोक्त उत्तेजनाके वश अपने स्थानको त्यागकर ऊर्ध्व सुषुम्णाके मार्गसे आरोहण करता है। इस साथ-साथ कौलिक मतके अनुसार सारे आधार और ग्रन्थियोंकी वेधक्रिया सम्पन्न होती है। वेधक्रिया ... है, इसमें कोई संदेह नहीं। द्वादशान्तमें प्रवेशके ... महामायापर्यन्त सारे बन्धन परिहृत हो जाते हैं। उसके ... ध्रुवपदमें स्थिति होती है। अन्तिम वेध सम्पन्न ... महाव्याप्तिका आविर्भाव होता है। यह नित्योदित ... सामरस्य रूप है। यहाँतक योग सम्पन्न होनेपर ... साथ अभिन्नता स्फुरित होती है। यह अभिन्नता ... शिवतादात्म्यरूप होती है।

कौलिक प्रक्रियामें प्रथम प्रपञ्च है परम शिवके ... अभिन्नता और उसका फल—सब कुछ इस प्रपञ्चके अन्तर्गत है। इसके बाद द्वितीय प्रपञ्च आता है। ... प्रसरण करनेवाली शक्तिधाराकी सहायतासे मध्यम ... पथमें हृदयके आपूरित होनेपर परमानन्द प्रकट होता है। उस आनन्दको परामृत-प्रवाह समझना चाहिये।

यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि हृदयमें ... परानन्द रसायनका काम करता है। जबतक वह हृदयमें रहता है, तबतक भावनाके बलसे उसको स्वदेह ... लेना आवश्यक है। हृदयसे उमड़ती हुई परमानन्द-अमृत-धाराको चारों ओर फैला देना कर्तव्य है, जिससे यह ... समस्त नाड़ियोंके अनगिनत तन्तुओंमें गमन कर ... इसके बाद अनुरूप ध्यान करना आवश्यक है।

तत्पश्चात् इस अमृतके द्वारा देहके बाहर और भीतर ... पूर्ण कर लेना आवश्यक है। इस प्रकार स्वदेह अमृतमय ... जाय, तब तीव्रवेगसे इस प्रवाहको देहस्थ रोमकूपके मार्गसे बाहरके विषयोंमें निरन्तर प्रेरित करना चाहिये। ... शाक्तानन्द-पानके द्वारा समस्त जगत् आप्यायित हो रहा है—ऐसा ध्यान करना चाहिये। इस ध्यानके फलस्वरूप अज और अमर भाव आता है तथा आत्मसिद्धि भी प्राप्त होती है। कौलिक शास्त्रमें मृत्युपर विजयके लिये यह प्रक्रिया उपदिष्ट हुई है।

तान्त्रिक वाङ्मयमें भी इस प्रकारकी तथा इससे ... प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है। तान्त्रिक लोग कहते हैं ... पहले मत्स्यगन्धस्थान—संकोच-प्रसरणरूपी किसी मुद्राके द्वारा अपनी सूक्ष्म प्राणशक्तिका उद्बोधन आवश्यक है। ...

हैं। इससे भिन्न 'शुद्ध' है। चिद् और अचिद्—इन दोनों प्रकारके तत्त्वोंपर शिव और शिवाका ही अधिकार है। जैसे शिव हैं, वैसे ही शक्ति हैं। ये दोनों चन्द्र और चन्द्रकी चन्द्रिका (चाँदनी) की भाँति परस्पर सम्बद्ध हैं अर्थात् एक दूसरेसे पृथक् नहीं हैं। अतएव लिखा है—

यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः।
नानयोरन्तरं विद्याच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव॥

शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्या—ये पाँच 'शुद्ध' तत्त्व हैं। इनका अर्थ श्री१००८ राष्ट्रगुरु श्रीस्वामीजी महाराज, पीताम्बरापीठ, दतिया, म० प्र० के अनुवादसे लिखा जाता है—

शुद्ध तत्त्व

(१) शिव—इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक पूर्णानन्दस्वरूप परम शिव ही 'शिव' तत्त्व हैं। अर्थात् महेश्वर ही शिव हुए हैं।

(२) शक्ति—जगत्‌की रचना करनेवाले परमेश्वरका प्रथम स्पन्दरूप, जो उसकी इच्छा है, उसे ही 'शक्ति' कहते हैं। अतः यह शक्तितत्त्व अप्रतिहत इच्छावाला है।

(३) सदाशिव—सदरूप अङ्कुरायमाण जगत्‌की जो प्रथमावस्था है, जो अपने स्वरूपमें अहंतासे आच्छादन करके स्थित है, उसे 'सदाशिव' कहते हैं। अर्थात् अहंतासे इदंताको आच्छादन करनेवाले तत्त्वको 'सदाशिव' कहते हैं।

(४) ईश्वर—अङ्कुरित जगत्‌को अहंताद्वारा स्फुट-रूपसे जो ग्रहण किये हुए हैं, उन्हें 'ईश्वर' कहते हैं।

(५) शुद्धविद्या—अहंता और इदंता (जगत्) की एकात्मता बोध जिससे होता है उसे 'शुद्धविद्या' तत्त्व कहते हैं।

शुद्धाशुद्ध तत्त्वोंमें प्रथम 'मायातत्त्व' है।

(६) माया—स्व स्वरूप भावोंमें भेदप्रथारूप 'माया' तत्त्व है। कहा भी है—

मायाविभेदबुद्धिर्निजांशजातेषु निखिलजीवेषु।
नित्यं तस्य निरङ्कुशविभवं वेलेव वारिधे रुन्धे॥

अर्थात् जिस प्रकार वेलातट समुद्रको आबद्ध रखता है, वैसे ही माया समस्त जीवोंमें भेद-बुद्धिरूप रहती है।

(७) पुरुष—जब परमेश्वर अपनी पारमेश्वरी माया-शक्तिद्वारा स्वरूप ग्रहण करके संकुचित ग्राहकताको प्राप्त करते हैं, तब उसकी 'पुरुष' संज्ञा होती है।

(८) कला—उस पुरुषकी किंचित कर्तृताको 'कला' कहते हैं।

(९) विद्या—किंचित् ज्ञानके कारणको 'विद्या' कहते हैं।

(१०) राग—विषयोंमें प्रीति 'राग' है।

(११) काल—प्रकाशित और अप्रकाशित स्वरूप-वाले भावोंके क्रमका जो अविच्छेदक एवं भूतोंका जो आदि है उसे 'काल' कहते हैं।

(१२) नियति—मेरा यह 'कर्तव्य' तथा यह 'अकर्तव्य' है, इसके नियमन-हेतु 'नियति' है।

उपर्युक्त पाँचों तत्त्व जीवके आवरण करनेवाले होनेके कारण 'पञ्च-कञ्चुक' कहलाते हैं।

अशुद्ध तत्त्व

(१३) प्रकृति—महत्‌से लेकर पृथिवीपर्यन्त तत्त्वोंका मूलकारण 'प्रकृति' है और यह प्रकृति सत्त्व, रज, तमकी साम्यावस्थामें अविभक्त रूपवाली है।

(१४) बुद्धि—सत्त्वप्रधान और स्वच्छ होनेके कारण बुद्धिमें प्रतिबिम्ब ग्रहण करनेकी योग्यता है। इसी निश्चय करनेवाली और विकल्प-प्रतिबिम्बको धारण करनेवाली शक्तिको 'बुद्धि' कहते हैं।

(१५) अहंकार—मेरा यह है, मेरा यह नहीं है इस अभिमानके साधनको 'अहंकार' कहते हैं।

(१६) मन—संकल्प-विकल्पके साधनको 'मन' कहते हैं। मन, बुद्धि और अहंकार—इन तीनोंको 'अन्तःकरण' कहते हैं।

(१७-२१) शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धात्मक विषयोंको क्रमसे ग्रहण करनेके साधनोंको श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण—'पाँच ज्ञानेन्द्रिय' कहते हैं।

(२२-२६) वचन, आदान, विहरण, विसर्ग- (मलत्याग), आनन्दात्मक क्रियाओंके साधन क्रमसे जिह्वा, हस्त, पाद, पायु और उपस्थ—ये 'पाँच कर्मेन्द्रियाँ' हैं।

(२७-३१) शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इनकी सूक्ष्मावस्थाको 'पञ्च तन्मात्रा' कहते हैं।

षडध्वा-रहस्य देह-विचार

(लेखक—श्रीकुलमार्तण्ड राजगुरु पण्डित श्रीयोगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री, विद्याभूषण, साहित्यरत्न)

पञ्चदेवोंमेंसे किसी भी देवताकी मन्त्रदीक्षाके सुअवसरपर श्रीगुरुदेव आवश्यक पञ्चाङ्ग-पूजनके अनन्तर श्रेष्ठ देवार्चन करते हैं; तदनन्तर शिष्यके शरीरमें षडध्वाओंका शोधनकर उसको (शिष्यको) मन्त्र-ग्रहण करनेका अधिकारी बनाते हैं।

यहाँपर सबसे प्रथम मन्त्रशास्त्रमें वर्णित षडध्वाओंका वर्णन करते हैं। उनके नाम हैं—कलाध्वा, तत्त्वाध्वा, भुवनाध्वा, वर्णाध्वा, पदाध्वा और मन्त्राध्वा । ये प्रकाश और विमर्शके अंशस्वरूप हैं, अर्थात् शिव-शक्त्यात्मक हैं। इनमेंसे पहलेके तीन 'अर्थ'स्वरूप और अन्तिम तीन 'शब्द'स्वरूप हैं। अतएव लिखा है—

मन्त्राध्वा च पदाध्वा च वर्णाध्वा चेति शब्दतः।
भुवनाध्वा च तत्त्वाध्वा कलाध्वा चार्थतः क्रमात्॥

(शारदातिलक ५। ७९ टीका)

विरूपाक्षसंहितामें भी आया है—

अस्य विमर्शस्यार्णैः पदमन्त्रार्णात्मकस्त्रिधा भवति।
पुरतत्त्वकलात्मार्थो धर्मिण इत्थंप्रकाररूप इति।

अर्थात् 'पद, मन्त्र और वर्णाध्वा विमर्शात्मक (शक्त्यात्मक) हैं (शब्दस्वरूप हैं) तथा पुर (भुवन) तत्त्व और कलाध्व प्रकाशात्मक अर्थाध्व कहे जाते हैं।'

निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता कलाके भेदसे 'कलाध्वा' पाँच प्रकारका है। कलाके षोडश भेद और भी हैं।

'तत्त्वाध्वा'—३६ प्रकारके शिवतत्त्व, ३२ प्रकारके विष्णुतत्त्व, २४ प्रकारके सांख्यतत्त्व, प्रकृतिके १० तत्त्व और त्रिपुराके ७ तत्त्वोंके भेदसे अनेक प्रकारका है, जिसका वर्णन आगे करेंगे।

भुवनोंकी संख्या २२४ है, जिनका सम्बन्ध तत्त्वोंसे ही है तथा आकाश, वायु, तैजस, आप्य (जलीय) और पार्थिव भुवनोंसे भी है।

'ईरितो भुवनाध्वेति भुवनानि मनीषिभिः।'

(शारदातिलक ५। ९०)

वायवीय संहितामें—

'आधाराद्युन्मन्यन्तश्च भुवनाध्वा प्रकीर्तितः।'

(शारदातिलक ५। ९०-९१ की टी[illegible]

—ऐसा लिखा है, अर्थात् मूलाधारादि षट्च[illegible] आज्ञाचक्रसे एक-एक अङ्गुल ऊपर बिन्दु, अर्धच[illegible] रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना और उन्म[illegible] पर्यन्त 'भुवनाध्वा' कहा गया है।

अकारसे लेकर क्षकारपर्यन्त वर्णोंकी संज्ञा 'वर्णाध्वा' है तथा हि—

'वर्णाध्वेति वदन्त्यर्णानादिक्षान्तान् मनीषिण[illegible]
वर्णसङ्घः पदाध्वा स्यात् ।'

(शारदातिलक ५। ९[illegible]

अर्थात् वर्णोंका समूह 'पदाध्वा' कहा जाता है। वर्णसंघका अर्थ बिन्दुयुक्त वर्णसमूहका है। वायवीय संहि[illegible] दूसरे प्रकारसे लिखा है—

अनेकभेदसम्भिन्नः पदाध्वा पदसंहतिः।
महामन्त्रोपमन्त्राणां वर्ततेऽवयवात्मना॥
प्रधानावयवत्वेन सोऽध्वा पञ्चपदात्मकः। इति

(शारदातिलक ५। ९०-९१ की टीकामें द्र[illegible]

अर्थात् महामन्त्र तथा उपमन्त्रोंके अङ्गवाला अ[illegible] प्रकारके भेदोंसे युक्त पञ्चपदात्मक पदसमूह 'पदाध्वा' क[illegible] जाता है।

'मन्त्राध्वा मन्त्रराशयः।' (शारदाति० ५। ९१) अर्थ[illegible] मन्त्रोंके समूहको 'मन्त्राध्वा' कहते हैं। 'मन्त्रराशयः' [illegible] अर्थ शारदातिलककी टीकामें 'अकचटतपयः [illegible] मन्त्राः।' इस प्रकार लिखा है। तथा 'सप्तकोटिमहामन्त्राः' [illegible] अनुसार 'मन्त्रराशयः'का अर्थ सात करोड़ मन्त्रोंका भी है।

छत्तीस प्रकारके शिवतत्त्वोंका वर्ग नीचे लिखा जाता है। तत्त्व तीन कोटियें विभक्त हैं, जिनको 'शुद्ध', 'शुद्धाशुद्ध' और 'अशुद्ध' कहते हैं। कोई वस्तु चेतन है तथा कोई अचेत[illegible] इन्हीं दोनों (जीव-जड़को) 'शुद्ध' एवं 'अशुद्ध' कहते हैं तथा इन्हींकी संज्ञा 'पर' और 'अपर' भी है। अनिद् च[illegible] चिद् संसारको अनुभव कर रहा है, इसे ही 'अशुद्ध' क[illegible]

सम्भूत है तथा श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीका श्रीचक्र ब्रह्माण्डाकार है, जो कि पञ्चभूतात्मक, पञ्चतन्मात्रात्मक, पञ्चज्ञानेन्द्रियात्मक, मनस्तत्त्वरूप, मायादितत्त्वस्वरूप है। उसीके (श्रीचक्रके) तत्त्वातीत (तत्त्वोंसे परे) बैन्दवस्थानमें जगत्की उत्पत्ति-स्थिति-संहारकारिणी ज्योतिःस्वरूपा पराकारा महेश्वरी विराजमान हैं, जिनके देहसे समुत्पन्न कोटिशः किरण चराचर सम्पूर्ण जगत्को (ब्रह्माण्डको) प्रकाशित करते हैं। उन अनन्तकोटि मयूखों (किरणों) के मध्यमें सोम, सूर्य और अनलात्मक तीन सौ साठ रश्मियाँ हैं, जिनमेंसे एक सौ आठ अग्निकी, एक सौ सोलह सूर्यकी और १३६ (एक सौ छत्तीस) चन्द्रमाकी किरणें हैं, जो कि ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्डको प्रकाशित करती रहती हैं। अर्थात् दिनमें भगवान् भास्कर, निशीथिनी (रात्रि) में निशापति चन्द्र और दोनों संध्याओंमें अग्निदेव। अतएव ये तीनों (सूर्य, चन्द्र और अग्नि) 'कालात्मक' माने जाते हैं, अर्थात् ये (तीनों) कालत्रयको प्रकाश प्रदान करते हैं। वर्षभरमें तीन सौ साठ दिन होते हैं। परमेशानी (श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी) से नियुक्त हायनात्मा महादेव सृष्टि, स्थिति और लयको करते रहते हैं और यह कार्य इस प्रकार चलता रहता है।

'तामेवानुप्रविश्य।' इत्यादिना—'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।' इस श्रुत्यर्थका ही उपर्युक्त अनुवाद भैरवयामलने किया है।

श्रीललितासहस्रनाममें भगवतीके निम्नलिखित तीन नाम आये हैं—'तत्त्वाधिका, तत्त्वमयी, तत्त्वमर्थस्वरूपिणी।' 'तत्त्वेभ्यः षट्त्रिंशत्तत्त्वेभ्यः अधिका तदतीतेऽप्यवस्थानात्।' अर्थात् छत्तीस तत्त्वोंसे भी जो अधिक है, अतः तत्त्वोंके नाश होनेपर भी जो विद्यमान रहती है। 'तत्त्वमयी—तत्त्वप्रचुरा' अर्थात् बहुतसे तत्त्वोंसे युक्त 'यद्वा तत्त्वं शिवतत्त्वं तदधिका चिन्मयी चेति नामद्वयार्थः।' अर्थात् शिवतत्त्वसे भी अधिक तथा चिन्मयी। यानी जो सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधिरूपा है। अथवा तत्त्वमयी—आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—त्रिविध तत्त्वरूपिणी तथा तत्त्वाधिका—तीन प्रकारके आत्म, विद्या और शिवतत्त्वोंसे अधिक अर्थात् 'तत्त्वमतिक्रम्य सर्वतत्त्वस्थानात् त्रिविधतत्त्वाधिका—तीनों तत्त्वोंको समष्टिरूप सर्वतत्त्वरूपसे जो तीन प्रकारके तत्त्वोंसे अधिक है।' तथा 'तत्त्वमयी' का अर्थ शिवस्वरूपा भी है। यथा 'महत्कार्य-कारणोपाध्यवच्छिन्नौ शिवजीवौ तत्त्वमर्थौ तन्मयी।' (सौभाग्यभास्कर-व्याख्या)।

जिस प्रकार परमेश्वरीका शरीर षडध्वमय है, इसी तरह परमेश्वरका (परमात्माका) शरीर भी षडध्वमय है। अर्थात् देवी और देवताओंके—सबके देह षडध्वभरित हैं, तथा हि—

षडध्वात्मकपरमात्मशरीरे षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकतयाध्वनोऽप्यवयवत्वात्तन्मयी। तदुक्तं कामिके—पृथिव्यादीनि षट्त्रिंशत्तत्त्वान्यागमवेदिभिः। उक्तान्यमुष्य तत्त्वाध्वा शुक्रमज्जास्थिरूपतः इति। (ललितासहस्रनाम सौभाग्यभास्कर-व्याख्या)

अध्वशोधन-विधि लेखके अन्तमें दी जायगी। अध्वशोधनानन्तर श्रीगुरुदेव शिष्यसे तत्त्वाचमन कराकर उसके मलमय तथा स्थूल-सूक्ष्मादि चतुर्विध देहोंका संशोधन कराते हैं। मनुष्यका शरीर (२३) स्थूल-सूक्ष्म-कारण और महाकारणके भेदसे चार प्रकारका माना जाता है।

स्थूलशरीर (देह)

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंकुलम्।
पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यमिदं वपुः॥
(विवेकचूडामणि ९८)

अर्थात् 'त्वचा (चर्म), मांस, रक्त, स्नायु (नसें), मेदा (चर्बी), मज्जा और हड्डियोंका समूह तथा मल-मूत्रसे पूर्ण (भरा हुआ) स्थूलदेह कहलाता है।' यह अन्य देहोंसे अंशतः निन्दनीय है। यह शरीर आत्माका स्थूल भोगायतन (भोगका घर) है। इसकी अवस्था जाग्रत् है। इस अवस्थामें ही स्थूल पदार्थोंका अनुभव किया जाता है। अतएव जाग्रदवस्थामें स्थूलदेहकी प्रधानता है। स्थूलदेहका अभिमानी जीव 'विश्व पुरुष' कहलाता है।

सूक्ष्मशरीर

वागादिपञ्च श्रवणादिपञ्च प्राणादिपञ्चाभ्रमुखानि पञ्च।
बुद्ध्याद्यविद्यापि च कामकर्मणी पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः॥
(विवेकचूडामणि ९८)

'वाणी आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ, श्रवण आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राणापानादि पाँच प्राण, आकाशादि पञ्चभूत, बुद्धि, मन आदि अन्तःकरण (भीतरकी इन्द्रियाँ—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार), अविद्या, काम और कर्म यह पुर्यष्टक सूक्ष्मशरीर कहलाता है।' इस सूक्ष्मशरीरको लिङ्गशरीर भी कहते हैं। यह अपञ्चीकृत भूतोंसे उत्पन्न हुआ है। यह वासना

(३२) आकाश–अवकाश देनेवाला तत्त्व ।

(३३) वायु–संजीवन करनेवाला तत्त्व ।

(३४) अग्नि–दाहक और पाचक क्रिया करनेवाला तत्त्व ।

(३५) सलिल–गीला करनेवाला और बहानेवाला जल-तत्त्व ।

(३६) भूमि–धारण करनेवाली वस्तु 'भूमि' तत्त्व कहाती है ।

वैष्णव-तत्त्व

जीवप्राणधियश्चित्तं ज्ञानकर्मेन्द्रियाण्यथ ॥
तन्मात्राः पञ्चभूतानि हृत्पद्मं तेजसां त्रयम् ।
वासुदेवाद्यश्चेति तत्त्वान्येतानि शार्ङ्गिणः ॥

(शारदातिलक ५ । ८५-८६)

अर्थात् 'जीव, प्राण, बुद्धि, चित्त, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चभूत, हृदय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये बत्तीस तत्त्व विष्णुके हैं ।'

सांख्य-तत्त्व

पञ्चभूतानि तन्मात्रा इन्द्रियाणि मनस्तथा ।
गर्वो बुद्धिः प्रधानं च मेत्राणीति विदुर्बुधाः ॥

(शारदातिलक ५ । ८७)

अर्थात् 'पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन, अहंकार, बुद्धि और प्रकृति—ये चौबीस तत्त्व सांख्यशास्त्रके हैं ।'

प्रकृति-तत्त्व

निवृत्त्याद्याः कलाः पञ्च ततो विन्दुः कला पुनः ।
नादः शक्तिः सदापूर्वः शिवश्च प्रकृतेर्विदुः ॥

(शारदातिलक ५ । ८८)

अर्थात् 'निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता कलाएँ, विन्दु, कला, नाद, शक्ति और सदाशिव—ये दस तत्त्व प्रकृतिके हैं ।'

त्रिपुरा-तत्त्व

आत्मविद्या शिवः पश्चाच्छिवो विद्या स्वयं पुनः ।
सर्वतत्त्वं च तत्त्वानि प्रोक्तानि त्रिपुरात्मनः ॥

(शारदातिलक ५ । ८९)

अर्थात् 'आत्मा, विद्या, शिव, शिव, विद्या, आत्मा तथा सर्वतत्त्व—ये सात तत्त्व 'त्रिपुरा-तत्त्व' कहाते हैं ।' इस प्रकार यह सब 'तत्त्वाध्वा'का वर्णन है ।

कला, तत्त्व, भुवन और वर्ण, मन्त्र तथा पद—इन छः अध्वाओंकी भलीभाँति शुद्धि हुए बिना पूर्णत्व-प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि सब पापोंका उच्छेद करनेके लिये इन अध्वाओंकी शुद्धि आवश्यक है; तभी पशुत्वकी निवृत्ति एवं शिवत्वकी अभिव्यक्ति हो सकती है ।

अनेन अध्वविशोधनेन शरीरशुद्धिः कृता भवति, यतः षडध्वमयमेव शरीरम् । यदाहुः—

शान्त्यतीतकला मूर्द्धा शान्तिर्वक्त्रशिरोरुहा ।
निवृत्तिजानुजङ्घाङ्घ्रिर्भुवनाध्वशिरोरुहा ॥
मन्त्राध्वमांसरुधिरा पदवर्णशिरायुता ।
तत्त्वाध्वमज्जामेदोऽस्थिधातुरेतोयुता शिवे ॥

(शारदातिलक ५ । ९५-९६ में द्रष्टव्य)

अर्थात् "मानव-शरीर षडध्वमय है, अर्थात् छः अध्वाओंसे युक्त है । शरीरमें अध्वविभाग करके बताते हैं—सिरमें शान्त्यतीतकला है; मुख और बालोंमें शान्तिकला है; घुटने, जङ्घा और पैरोंमें निवृत्तिकला है; सिरमें 'भुवनाध्वा', मांस और रुधिरमें 'मन्त्राध्वा', शरीरकी शिराओंमें (नाड़ियोंमें) 'पदाध्वा' और 'वर्णाध्वा' तथा मज्जा-मेद (चर्बी), अस्थि (हड्डियाँ), धातु (कफ, पित्त और श्लेष्म) तथा वीर्यमें 'तत्त्वाध्वा' है ।"

केवल मानव-शरीर ही षडध्वमय नहीं, अपितु देवशरीर भी षडध्वपरिपूर्ण है । अतएव 'ज्ञानार्णव-तन्त्र'में श्रीचक्र (श्रीचक्रके) विषयमें लिखा है—

'अस्मिंश्चक्रे षडध्वानो वर्तन्ते वीरवन्दिते ।'

(१० । ८९)

'एवं षडध्वविमलं श्रीचक्रं परिचिन्तयेत् ।'

(१० । ९८)

दक्षिणामूर्ति-संहितामें भी लिखा है—'षडध्वरूपमखिलं शृणु योगेशि साम्प्रतम् ।' इत्यादि—'एवं षडध्वनिरतं श्रीचक्रं परिचिन्तयेत् ।' इत्यादि । ज्ञानार्णवतन्त्रमें षट् अध्वाओंके लक्षण भी लिखे गये हैं ।

भैरवयामलमें महेश्वर गौरीके प्रति कहते हैं कि श्रीचक्राकाररूपिणी पराशक्ति श्रीचक्रके बैन्दवस्थानमें श्रीसदाशिवके

तीन प्रकारके मल हैं। शरीरका अर्थ शरीरमें स्थित जीवात्माका है। इन तीनों मलोंको अणु, भेद और कर्म नामके तीन पाश भी कहते हैं। अणुसे आणव, कर्मसे कार्मण (कर्म) तथा भेद—मायासे मायिक (मायिकमल अथवा मायापाश) मल।

आणव मल

अणुका अर्थ अज्ञान है। अज्ञानसे चैतन्यस्वरूप आत्माको आत्मा न मानकर शरीरको आत्मा मानना तथा अनात्मा (आत्मासे भिन्न) देहको आत्मा मानना, इस भाँति दो प्रकारके अज्ञानका नाम 'आणव मल' है। अतएव कहा है—

'आणवो नाम सदाशिवस्य स्वस्याऽनवमर्शः।

अर्थात् सदाशिवका अपनेको न पहचानना ही आणव मल है। आणव मलको 'अविद्या' भी कहते हैं। इसी कारण वह अपनेको नहीं पहचानता तथा सौर-संहितामें भी लिखा है—

'आत्मनोऽणुत्वहेतुत्वादणोर्मालिन्यतो मलम्।'

कार्मण मल

विहित तथा निषिद्ध क्रियाओंके (कर्मोंके) करनेसे उत्पन्न पुण्य और पापके भेदसे कार्मण मल दो प्रकारका है। अतएव कहा भी है—

'कार्मो नाम पुण्यपापयोरहं प्रतीतिः।'

अर्थात् 'मैं पुण्यवान् हूँ, मैं पापी हूँ'—इस प्रकारकी प्रतीति (विश्वास) ही 'कार्मण मल' है।

मायिक मल

मायासे उत्पन्न मलको 'मायिक मल' कहते हैं। मायाका अर्थ है—ईश्वरके अंशसे उत्पन्न सम्पूर्ण जीवोंमें भेदबुद्धि रखना। अर्थात् भिन्न भिन्न प्रकारके मायीय मलसे माननेवाला जड़ चेतनमें अनेक प्रकारकी भेदवाली बुद्धिको 'माया' कहते हैं। यह तत्त्वोंमेंसे छठा तत्त्व है। तथा मायासे उत्पन्न स्थूल तत्त्वसे (पुरुषतत्त्वसे) पृथ्वीपर्यंत तत्त्व (पृथिवीतत्त्व) पर्यन्त सभी तत्त्व 'मायिक मल'के नामसे व्यवहृत होते हैं।

आणव मलसे आच्छन्न और स्वयं देहपरिमित होकर, अन्य अनन्त जीवोंको भी देहपरिमित बनाता हुआ अपनेसे भिन्न देखता है। यही 'मायिक मल' है। भेदप्रकारक मायिक मलसे मलिन जीव शुभाशुभ कर्मोंको करते हुए उनसे (शुभाशुभ कर्मोंसे) उत्पन्न संस्कारवाले होते हैं। इसीको 'कार्मण मल' कहते हैं। इन तीनों प्रकारके मलोंको 'शरीर' भी कहते हैं।

जब परमेश्वर अपनी पारमेश्वरी मायाशक्तिके द्वारा स्वरूप ग्रहणकर संकुचित ग्राहकताको प्राप्त करते हैं, तब उनकी पुरुष संज्ञा होती है। पुरुष (अर्थात् जीव) ही मायासे मोहित होकर कर्मबन्धनवाला 'संसारी जीव' कहाता है। परमेश्वरसे अभिन्न होनेपर भी इसी जीवको मोह होता है, परमेश्वरको नहीं। बाजीगर अपनी इच्छासे ही दर्शकोंकी भ्रान्तिके लिये अपना इन्द्रजाल प्रकट करता है; परंतु स्वयं मोहित नहीं होता। इसी तरह परमेश्वरको भी अपनी मायासे मोह नहीं होता है।

जीवात्मा देहमें ही स्थित रहता है। वह देहसे भिन्न स्थानमें नहीं रहता। किंतु आणव, कार्मण और मायिक मलोंसे आच्छन्न होकर अपने परमात्मभावको भूला रहता है। वह यह नहीं समझता कि वह (जीवात्मा) स्वयं परमात्मा है, जिसके (परमात्माके) विषयमें गीता कहती है—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः॥
(१३ । २२)

अर्थात् 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, प्राण और इन्द्रियोंकी आकृतियोंका परमेश्वर, अनुमोदनकर्ता, भर्ता, भोक्ता (इन्द्रियोंद्वारा तद्विषयोंके भोगनेवालेको) इस शरीरमें महेश्वर, परपुरुष (परमपुरुष) तथा परमात्मा कहते हैं।'

शाक्त धर्मके अनुसार जीवात्मा और (ईश्वर)

परमात्माका सम्बन्ध

शरीरकञ्चुकितः शिवो जीवो
निष्कञ्चुकः परः शिवः।
([illegible])

उपर्युक्त आणवादि मलोंको 'कञ्चुक' कहते हैं। कञ्चुकका अर्थ आवरण (आच्छादित करनेवाला) है। आणव, कार्मण और मायिक मलसे आवृत कञ्चुकित (आच्छादित) शिव 'जीव' कहलाता है और निष्कञ्चुक—

युक्त होनेसे कर्मफलोंका अनुभव करानेवाला है। अपने स्वरूपका यथार्थ ज्ञान न होनेके कारण यह आत्माकी अनादि उपाधि है। स्वप्न इसकी अभिव्यक्ति अवस्था है। इस अवस्थामें यह स्वयं रचा हुआ भासता है। बुद्धि इसकी उपाधि है। यह लिङ्ग-देह (शरीर) चिदात्मा पुरुषके सम्पूर्ण व्यापारोंका कारण है। स्वप्नदशापन्न (स्वप्नावस्थाको प्राप्त) सूक्ष्मशरीरके व्यष्टयभिमानी जीवकी संज्ञा 'तैजस पुरुष' है।

कारणशरीर

अव्यक्तमेतत्त्रिगुणैर्निरुक्तं
तत्कारणं नाम शरीरमात्मनः।
सुषुप्तिरेतस्य विभक्त्यवस्था
प्रलीनसर्वेन्द्रियबुद्धिवृत्तिः ॥

(विवेकचूडामणि १२२)

रजोगुणकी विक्षेपशक्ति क्रियारूपिणी है। इसीसे समस्त क्रियाएँ होती हैं और इसीसे मानसिक विकार (सुख-दुःखादि) उत्पन्न होते हैं। इसीके कारण ही जीव नाना प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त होता है। रजोगुण ही जीवके बन्धनका कारण है।

तमोगुणकी आवरण-शक्तिसे वस्तु कुछ-की-कुछ प्रतीत होती है। यही पुरुषके (जन्म-मरणरूप) संसारका आदिकारण है। अज्ञान, आलस्य, जड़ता, निद्रा आदि तमके गुण हैं।

यद्यपि सत्त्वगुण जलके समान शुद्ध है, तथापि रज और तमसे मिलनेपर यह भी (सत्त्वगुण) संसार-बन्धनका कारण होता है। यम-नियमादि, श्रद्धा, भक्ति, मुमुक्षुता और दैवीसम्पद्—ये 'मिश्र सत्त्वगुण'के धर्म हैं। प्रसन्नता, आत्मानुभव, परम शान्ति, आत्यन्तिक आनन्द और परमात्मामें स्थिति—ये 'विशुद्ध सत्त्वगुण'के धर्म हैं।

एवं उक्त तीनों गुणोंके निरूपणसे अव्यक्तका वर्णन किया गया है। यही आत्माका 'कारण शरीर' है। इसकी अभिव्यक्ति सुषुप्ति-अवस्थामें होती है। सुषुप्तावस्थामें बुद्धिकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ लीन हो जाती हैं। अर्थात् सब प्रकारका ज्ञान शान्त हो जाता है और बुद्धि बीजरूपसे ही स्थिर रहती है।

कारण-शरीरके व्यष्टयभिमानी जीव (पुरुष) की संज्ञा 'प्राज्ञ पुरुष' है।

महाकारण-शरीर

तुरीया दशाको प्राप्त जीवकी उपाधिको 'महाकारण शरीर' कहते हैं। उपर्युक्त जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओंका तथा इन अवस्थाओंके भोक्ताओंके ज्ञानपूर्वक विवेचनसे उत्पन्न शुद्धविद्याके उदयका (ज्ञानका) चमत्कार 'तुरीयावस्था' है।

तदुक्तं स्पन्दशास्त्रे—

—एवमवस्थात्रयस्य तद्भोक्तॄणां च विविच्य ज्ञानमनुशुद्धविद्योदयाख्यश्चमत्कारस्तुर्यावस्था। तथा हि—

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्तितः।
विद्यात्तदुभयं यस्तु स भुञ्जानो न लिप्यते॥

इति वरदराजोऽप्याह—

तुर्यं नाम परं धाम तदाभोगश्चमत्क्रिया।
भेदेऽपि जाग्रदादीनां योगिनस्तस्य सम्भवः॥

(शिवसूत्र, वरदराज० ४४।४५)

अर्थात् 'तुर्य (तुरीयावस्था) उस महाशक्तिका परम धाम है। उसका आभोग (परमानन्दका अनुभव) ही चमत्कार है। जाग्रत्-स्वप्न आदि अवस्थाओंके भेद होनेपर भी योगी पुरुषको तुरीयावस्थाके आनन्दका अनुभव होता रहता है।' इस विषयमें शिवसूत्र (१।७) भी कहता है—

'जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभेदेऽपि तुर्याभोगसम्भवः।'

अर्थात् 'जाग्रदादि अवस्थाओंमें भेद होनेपर भी तुर्याभोग (तुरीयावस्थाको आनन्द अनुभव) सम्भव है।' एक और भी शिवसूत्र (३।२०) है—

'त्रिषु चतुर्थं तैलवदासेच्यम्।'

अर्थात् 'तीनों अवस्थाओंके रहते हुए भी चतुर्थ तुरीयावस्थाका आनन्द उनके ऊपर ऐसा रहता है जैसे पानीके ऊपर तैलबिन्दु ऊपर ही तैरता रहता है और पानीका उसके ऊपर कुछ भी असर (प्रभाव) नहीं होता है।'

तद्वान् महाकारणशरीराभिमानी जीवन्मुक्तः। तस्य व्यष्ट्या समष्ट्या चाभिन्ना तुर्यावस्था॥

मलत्रय-१२ कर्ममल, मायमल और आणवमलका देह-सम्बन्ध

मनुष्यके शरीरमें आणव, कार्म और मायामलके भेदसे

इस प्रकार मन्त्रशास्त्रके अनुसार षडध्वशोधन तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण-शरीरोंके शोधनके अनन्तर शाक्ती, शैवी, वैष्णवी और सौरी आदि दीक्षाओंमेंसे किसी भी स्वाभिलषित दीक्षासे दीक्षित होनेपर अपनी उपासनामें प्रवृत्त होनेवाला उपासक मनुष्य अपने इष्टदेवतापर दृढ़ भक्ति रखनेसे तथा योग्यतानुसार देवतामें और अपनेमें अभेदचिन्तन कर मुक्तिपथका पथिक बनता है। अतएव शाक्तिके विषयमें लिखा है कि 'जो ललिता भगवतीके मन्त्रका साधक है, वह देहान्तमें इन्द्रनीलमणि-कक्षामें वास करता है। वहाँपर नदियोंके तटपर मन्त्र-जप करता हुआ भगवतीका गुणानुवाद करता रहता है। कर्मक्षय होनेपर पुनः भूलोकमें मनुष्य-शरीर धारणकर पूर्ववासनानुसार फिर भगवतीकी पूजा करता है और पुनः श्रीनगरमें इन्द्रनीलकक्षामें वास करता है। जो ज्ञानी पुरुष निर्द्वन्द्व जितेन्द्रिय होते हैं, वे चिन्मय होकर महेश्वरीमें प्रविष्ट हो जाते हैं।' तथा हि—

> ये भूलोकगता मर्त्या ललितामन्त्रसाधकाः ।
> ते देहान्ते शक्रनीलकक्ष्यां प्राप्य वसन्ति हि ॥
> तत्र दिव्यानि वस्तूनि भुञ्जाना वनितासखाः ।
> सरस्तटेषु सिन्धूनां कूलेषु कल्लोलत्व ॥
> सदा जपन्तः श्रीदेवीं वदन्तश्चापि तद्गुणान् ।
> कर्मक्षये पुनर्यान्ति भूलोके मानुषीं तनुम् ॥
> पूर्ववासनया युक्ताः पुनरर्चन्ति चक्रिणीम् ।
> पुनर्यान्ति श्रीनगरे शक्रनीलमहास्थलीम् ॥
> ये पुनर्ज्ञानिनो मर्त्या निर्द्वन्द्वा नियतेन्द्रियाः ।
> ते मुने चिन्मया भूत्वा प्रविशन्ति महेश्वरीम् ॥

(श्रीललितोपाख्यानम् अध्याय २९)

इस प्रकार विष्णुभक्त विष्णुलोकमें जाता है, जहाँपर भगवान् विष्णु अपने चार, दस और द्वादश रूपोंमें विराजमान होते हैं। तथा हि—

> तत्र वैष्णवलोके तु विष्णुः साक्षात् सनातनः ।
> चतुर्धा दशधा चैव तथा द्वादशधा पुनः ॥
> विभिन्नमूर्तिः सततं वर्तते माधवः सदा ।

इसी प्रकार शैवलोग शिवलोकमें जाते हैं और वहाँपर आनन्द करते हैं—

> शिवलोकस्तत्र महान् जागर्ति स्फुरितद्युतिः ।
> शैवागमा मूर्तिमन्तस्तत्राष्टाविंशतिः स्मृताः ॥
> नन्दिभृङ्गिमहाकालप्रमुखास्तत्र कौशमाः ।

अर्थात् 'शिवलोकमें २८ शैवागम मूर्तिमान् विद्यमान हैं और नन्दी, भृङ्गी, महाकाल आदि प्रमुख शिवजीके गण सर्वदा उपस्थित रहते हैं।'

जो लोग उपासनासे विमुख रहते हैं, दुराचारी हैं, गुरुसे शापित हैं, कपटसे भक्ति करनेवाले हैं, मूर्ख हैं, अत्यन्त घमण्डी हैं, मन्त्रोंकी चोरी करनेवाले, नास्तिक और पापी हैं तथा प्राणियोंके हिंसक और स्त्रियोंसे द्वेष करनेवाले हैं, उनको दण्डधर यमराज कालसूत्र, रौरव और कुम्भीपाक आदि नरकोंमें यातना प्रदान करते हैं।

उपर्युक्त सब लोक 'परलोक' (स्वर्ग और नरक) कहलाते हैं। वहाँ स्वकर्मानुसार सुख-दुःख भोगकर पुनः संसारमें पुनर्जन्म लेना पड़ता है और पूर्ववासनाके अनुसार कर्म करने पड़ते हैं। गीता ७। १४में श्रीभगवान्ने कहा है—'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।'

प्रभु-पदमें स्थान प्राप्त हो

दुर्लभ मानव-तन मिला, साधन-धाम महान।
मन क्यों भोगोंमें फँसे, भज ले श्रीभगवान॥
मोह-निशा-तम मिटे सब, समुदित हो रवि ज्ञान।
पुनर्जन्मसे मुक्ति हो, प्रभु-पदमें हो स्थान॥

उपर्युक्त मलत्रयके आवरणसे रहित (निरावरण) जीव 'परशिव' कहलाता है । मन्त्रशास्त्रमें परमात्माको 'परशिव' कहते हैं । इसी प्रकार जीवात्मा और परमात्माका सम्बन्ध है ।

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।'
(गीता १५ । ७)

वास्तवमें 'कञ्चुक' संस्कृतमें 'स्तनावरण वस्त्र'को कहते हैं; अतएव 'निन्दति कञ्चुककारं प्रायः शुष्कस्तनी नारी ।' यह संस्कृतकी लोकोक्ति है ।

तत्त्वशोधन

आणव, कार्मण और मायिक मलोंकी तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण-शरीरोंकी संशोधन-प्रक्रियाको 'तत्त्वशोधन' कहते हैं । अतः तत्त्वशोधन-मन्त्र नीचे लिखे जाते हैं ।

प्रथमाचमन

आचमनीमें तीर्थजल लेकर—'ॐ अं आं इं ईं ······ अं अः प्रकृत्यहंकारबुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धआकाशवाय्वग्निजलभूम्यात्मकाय चतुर्विंशतितत्त्वात्मकाय आत्मतत्त्वायात्मतत्त्वात्मने विष्णुरूपाय विश्वपुरुषात्मने सरस्वतीहिरण्यगर्भसहितात्मने ब्रह्मग्रन्थिविदलनार्थमात्मपाशविच्छेदनप्रवीणमाणवमलशोधनार्थमाधारेऽऽत्मतत्त्वं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा । ॐ ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्मणे इदं न मम ।' इस मन्त्रसे प्रथम आचमन करे ।

द्वितीयाचमन

'ॐ कं खं गं घं ङं चं टं मं पं मायाकलाविद्यारागकालनियतिपुरुषसप्ततत्त्वात्मकाय विद्यातत्त्वाय विद्यातत्त्वात्मने लक्ष्मीनारायणसहितात्मने तैजसपुरुषात्मने विष्णुग्रन्थिविदलनार्थमविद्यापाशविच्छेदनप्रवीणं कार्मणमलशोधनार्थं हृदये विद्यातत्त्वं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा । ॐ विष्णवे स्वाहा विष्णवे इदं न मम ।' इस प्रकार आचमन करे ।

तृतीयाचमन

'ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यात्मकाय शिवतत्त्वाय शिवतत्त्वात्मने प्राज्ञपुरुषाय प्राज्ञपुरुषात्मने विद्यांकुरसहितात्मने तन्त्रज्ञात्मकरुद्रग्रन्थिविदलनार्थं कर्मपाशविच्छेदन[illegible] मायिकमलशोधनार्थं शिरसि शिवतत्त्वं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा । ॐ रुद्राय स्वाहा रुद्राय इदं न मम ।' इस प्रकार आचमन करे ।

चतुर्थाचमन

'ॐ अं आं ······ कं खं रं सं पं यं [illegible] प्रकृत्यहंकारसात्त्विकभूमिमायाकलाविद्यारागकालनियतिपुरुष[illegible] यशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यात्मकायात्मविद्याशिवतत्त्व[illegible] याग्निसूर्यसोममण्डलरूपाय सात्त्विकराजसतामसात्म[illegible] ग्रन्थिविदलनार्थं स्थूलसूक्ष्मकारणमहाकारणशरीरचतुष्टय[illegible] वाणीवल्लभलक्ष्मीनारायणविद्यांकुरसहितात्मने शिवेश्वर[illegible] प्राज्ञपुरुषात्मने सर्वतत्त्वेन महाकारणदेहं परिशोधयामि जुहोमि स्वाहा । ॐ ईश्वराय स्वाहा । ईश्वराय इदं न मम ।'

—इस प्रकार चतुर्थाचमन करे मलत्रय और स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण शरीरोंका शोधन करे ।

षडध्व-विशोधन-प्रक्रिया

पूर्वोक्त षडध्वाओंका शिव-शरीरमें संशोधन-प्र[illegible] निम्नलिखित है—

क्रमादेतानध्वनः षट् शोधयेद् गुरुसत्तमः ।
पादान्धुनाभिहृद्भालमूर्द्धस्वपि शिशोः स्मरेत् ॥
(शारदातिलक ५ । [illegible])

अर्थात् 'गुरुदेव पहले संहारक्रमसे शिष्यके शरी[illegible] षडध्वाओंका पद, अन्धु (गुह्यस्थान), नाभि, हृ[illegible] भाल और शिरमें तत्तदध्वाओंका न्यास—उनका चि[illegible] कर दें;' पुनः सृष्टिक्रमसे शिष्यके तत्तदङ्गोंको दर्भ[illegible] (कुशोंकी कूर्चीसे) स्पर्शकर पूर्वोक्त छः स्थानोंमें क[illegible] तत्त्वाध्व, भुवनाध्व, वर्णाध्व, पदाध्व और मन्त्राध्व[illegible] उत्पादन करें और पुनः आज्य (घृत) मि[illegible] तिलोंकी अग्निकुण्डमें आहुति दें । आहुति-प्रदा[illegible] मन्त्र 'अमुष्य कलाध्वानं शोधयामि स्वाहा ।'—इस प्र[illegible] होता है ।

एवं पैरोंमें कलाध्वका, गुह्यस्थानमें तत्त्वाध्वका, ना[illegible] वर्णाध्वका, भालमें (माथेमें) पदाध्वका और उत्तमा[illegible] (शिरमें) मन्त्राध्वका शोधन करते हैं ।

हमने षडध्वशोधनका क्रममात्र दर्शाया है । वि[illegible] विधि शारदातिलक आदि मन्त्र-शास्त्रोंमें द्र[illegible] अवलोकनीय है ।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद् विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥
(४।४)

अर्जुनने पूछा—'आप जन्ममें आपने यह अव्यय योग विवस्वान्‌को कहा था, यह मैं कैसे जानूँ?' इसपर भगवान्‌ने कहा—'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन!' (४।५) 'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' (४।९) 'तेरे और मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं।' 'मेरा जन्म दिव्य हुआ करता है।'

उपनिषदोंमें भी पुनर्जन्म बताया गया है—'स इतः प्रयन्नेव (मरकर) पुनर्जायते।' (फिर जन्म लेता है) (ऐतरेय ४।४)। 'जन्म-जन्म पुनः-पुनः' (गर्भोपनिषद् ४)। 'पुनरावृत्तिरहितां मुक्तिम्।' (मुक्तिकोपनिषद् १।२०) यहाँपर मुक्तिसे अन्यत्र पुनर्जन्म माना गया है।

(ग) अब पुनर्जन्मका अन्य नाम 'पुनर्भव' भी देखिये। जैसे कि श्रीमद्भागवतपुराणमें प्रार्थना है—'क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम्' (४।२४।५७) यहाँ 'अपुनर्भव' मुक्तिका नाम है।

(घ) पुराणोंका वेदोंके समकाल होना

पुराणोंका प्रमाण हमने जो दिया है, उसका कारण यह है कि पुराण भी वेदके समकालीन हैं। पुराणका यह उद्घोष है—

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥
(शिवपु०, वायुसं०, पूर्वभाग १।३१।३२, मत्स्यपुराण ५३।३)

'पहले ब्रह्माजीने पुराणोंका स्मरण किया, उनके बाद ब्रह्माजीके मुखसे वेद प्रकट हुए।' इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये। इसका यह आशय है कि वेद और पुराण—दोनों ही 'अनादि' हैं; अतः दोनों समकालीन हैं। पुराण 'अर्थ' हैं और वेद 'मूल' हैं। वेद 'बीज' हैं और पुराण 'वृक्ष' हैं। दोनों साथ ही रहते हैं। इस विषयमें 'श्रीसनातनधर्माङ्क' ग्रन्थमालाका नवम पुष्प* देखना चाहिये। सांसारिक साहित्यमें कोई भी ऐसी बात नहीं है, जिसमें पुराणका स्मरण न किया गया हो।

¹व्याकरण महाभाष्यमें शब्दके विषयमें महाभाष्यकारने कहा है—'लोके अर्थमर्थमुपादाय शब्दान् प्रयुञ्जते। नैषां निर्वृत्तौ यत्नं कुर्वन्ति।' (पस्पशाह्निकमें 'लोकतः' इस वार्तिकमें)। इसका यह अभिप्राय है—किसी पुरुषको घड़ेकी आवश्यकता हो, तब वह कुम्हारके पास जाकर कहता है—'मुझे घड़ा बना दो, मैं उसके शीतल जलको पीया करूँगा।' परंतु शब्दको कहना चाहता हुआ पुरुष वैयाकरणके पास जाकर नहीं कहता कि 'मुझे शब्दोंको गढ़ दो; उनका मैं प्रयोग करूँगा।' किंतु अर्थका पहले स्मरण करके ही उसके बाद उसके मूलरूप शब्दका प्रयोग करने लग जाता है। यही बात वहाँ महाभाष्यमें कही गयी है—'न तद्वत् शब्दान् प्रयुयुक्षमाणो वैयाकरणकुलं गत्वा आह—कुरु शब्दान् प्रयोक्ष्ये। तावत्येवार्थमुपादाय शब्दान् प्रयुञ्जते।'

तब पुराण हैं—वेदके अर्थ और वेद उन विस्तीर्ण अर्थके संक्षिप्त मूल शब्द हैं। शब्दोंके प्रयोगका इच्छुक जन पहले अपने इष्ट अर्थका स्मरण करके फिर उनके शब्दोंका प्रयोग करता है। पुराणके उक्त वचनमें भी 'पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्।' पहले अर्थरूप पुराणका स्मरण करना ही कहा है। 'अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।' पीछे शब्दरूप वेदका उनके मुखसे प्रकट होना कहा है। यह बात स्वाभाविक भी है। तब अर्थरूप पुराणका पहले स्मरण; उसके बाद उसके शब्दरूप वेदका प्राकट्य—यह ठीक ही है। 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे'—इस व्याकरण-वार्तिकसे शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्धके नित्य होनेसे अर्थरूप पुराण और शब्दरूप वेद नित्य ही हैं—'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' (रघुवंश १।१)।

तभी पुराणमें वेदका और वेदमें पुराणका नाम भी सुनायी पड़ता है—

'तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्।' 'इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति। य एवं वेद।' (अथर्ववेद १५।६।११-१२)।

तब पुराण भी सृष्टिके आदिकालमें ही ब्रह्माजीद्वारा स्मरण किये गये, यह सिद्ध हो गया। तभी तो वेदमें कहा गया है—

'ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे।' (अथर्व० ११।७।२४)। यहाँपर ऋग्वेदादिकी भाँति पुराणोंकी भी उत्पत्ति (आविर्भाव)

*सन् ... [illegible] ... विषय ... का वर्णन है।

परलोक एवं पुनर्जन्मविषयक विचारधारा

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यावाचस्पति)

(क) पुनर्जन्मवादमें विप्रतिपत्तियाँ

'पुनर्जन्म' विषय वस्तुतः विचारणीय है और महत्त्वपूर्ण भी है। इस संसारमें हिंदू, ईसाई, मुसलमान, पारसी, यहूदी आदि बहुत-सी जातियाँ हैं। इनमें हिंदुओंको छोड़कर शेष जातियाँ अब पुनर्जन्मसिद्धान्तको नहीं मानतीं; पहले कभी ये जातियाँ भी पुनर्जन्मको मानती थीं। हिंदुओंमें भी चार्वाक आदि कई मत पुनर्जन्मके सिद्धान्तको नहीं मानते, यह 'सर्वदर्शनसंग्रह'में स्पष्ट है। उस विषयमें आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वा० दयानन्दजीने उस मतका संग्रह करते हुए चार्वाकका यह वचन (स० प्र० १२ समु० के आरम्भमें) उद्धृत किया है—

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥
(चार्वाकदर्शन २२)

यहाँपर परलोक जानेवाला आत्मा चार्वाकके मतमें नहीं है—यह कहा गया है। इसलिये नास्तिक लोग अनुमान भी उपस्थित करते हैं—'तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा, देहातिरिक्ते आत्मनि प्रमाणाभावात्।'—'यह चेतन देह ही आत्मा है, इससे भिन्न आत्मा नहीं है।' इसलिये चार्वाक लोगोंकी यह उक्ति सुप्रसिद्ध है—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥
(चार्वाकदर्शन २१)

'जबतक जीना है सुखपूर्वक जीते रहिये। ऋण करके घी पीते रहिये। देहके भस्म हो जानेपर पुनर्जन्म नहीं होता; अतः ऋण चुकाना नहीं पड़ेगा।'

कई लोग माता-पिताको जन्मका कारण मानते हैं। उनके शुक्र-शोणितके योगसे संतान स्वयं ही हो जाती है; कोई भिन्न आत्मा नहीं है। तब पूर्वजन्म और पुनर्जन्मका प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे लोग स्वभावको ही जन्मका कारण मानते हैं। पृथिवी आदिका यह स्वभाव ही है। ये संयोगविशेषसे मिलकर चेतन कार्यविशेषको आरम्भ करते हैं। जैसे—'भैंसका दही, गधेका पेशाब और गोबर—इन अचेतनोंको मिलाकर और ढँककर रख दिया जाय; तो उनसे चेतन बीच्छू पैदा हो जाते हैं—यह लोक-सिद्ध है। इस प्रकार दम्पतिके शुक्र-शोणितद्वारा जब पञ्च भूतोंका योग हुआ तब स्वयं ही उसमें चेतनता आ जाती है। उसमें पुनर्जन्मका कोई अवकाश नहीं'—यह स्वभाव-वादियोंका मत है।

कई लोग पर-निर्माणको जन्मका कारण मानते हैं अर्थात् माता-पितासे भिन्न स्वभावका आधारभूत कोई ऐश्वर्यसे मिला हुआ पर (परमात्मा) ही निर्माण करता है, उसीके प्रभावसे प्राणी चैतन्यको प्राप्त होते हैं; अतः पुनर्जन्म कारण नहीं है।

अन्य लोग 'यदृच्छा'को जन्मका कारण मानते हैं। अर्थात् उत्पत्ति अचानक हो जाती है, उसमें कारण नहीं है। यदृच्छा माननेवाले प्राणि-उत्पत्तिको आकस्मिक (By Chance) घटना मानते हैं, इसमें कारणका विचार नहीं करना चाहिये, यह उनका मत है। इस मतमें भी पुनर्जन्मके लिये अवकाश नहीं।

इधर आस्तिकमतकी श्रुतियाँ पुनर्जन्मको मानती हैं; इस पुनर्भव (पुनर्जन्म) का विषय विचारणीय है।

(ख) 'पुनर्जन्म' शब्दकी सिद्धि तथा उसके विभिन्न नाम

'जननमिति जन्म' पैदा होनेका नाम जन्म है। 'जनी प्रादुर्भावे' दिवादि आत्मने० सेट्, धातुसे 'सर्वधातुभ्यो मनिन्' (४। १४४) इस उणादि सूत्रसे मनिन् प्रत्यय होनेपर जन्म शब्द बनता है। इसीके पर्यायवाचक 'जनुः जननं, जन्म, उत्पत्तिः, उद्भवः' (अमरकोष १। ४। ३०) ये शब्द हैं। पुनः—जन्म=पुनर्जन्म। 'सह सुपा' (२। १। ४) समास है।

इसके अन्य नाम—पुनर्जन्म, गतजन्म, पुनर्भव, परलोक, प्रेत्यभाव इत्यादि हैं। इनमें 'पुनर्जन्म' शब्द सब उपनिषदोंकी सारभूत 'भगवद्गीता' में मिलता है—

'मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।' (८। १६)

(ग) 'गतजन्म'का प्रयोग भी श्रुतिमें है—

'अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।'
(कठ० १ । २ । ६)

यद्यपि 'परलोक' इससे भिन्न स्वर्ग आदि लोकोंका नाम है, तथापि 'परलोक' शब्द भी पुनर्जन्मको सिद्ध करता है; क्योंकि मरकर पुनर्जन्म केवल मनुष्यलोकमें हो—ऐसा नहीं है; किंतु स्वर्ग आदि अन्य लोकोंमें भी हुआ करता है—यह इससे सूचित होता है।

इसके अतिरिक्त पुनर्जन्म केवल मनुष्ययोनिमें ही नहीं होता, किंतु पशुयोनिमें भी होता है, पक्षियोनिमें भी होता है, कीट-पतङ्गादि योनियोंमें भी होता है, देव-गन्धर्वादि योनियोंमें भी होता है। उसमें भी पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग मनुष्यलोकमें होते हैं; और स्थूलशरीर होते हैं। देव-गन्धर्व आदि स्वर्गादि लोकोंमें होते हैं। वे वहाँ सूक्ष्मकाय भी होते हैं और कामरूप भी होते हैं। गरुड़ आदि पक्षी, नन्दी बैल, सिंह आदि भी वहाँ होते हैं; पर दिव्य।

आकाशमें जो तारामण्डल दीख रहा है, वही 'द्युलोक' या 'परलोक' है। परलोकको न माननेवालेको उपनिषद्ने 'नास्तिक' कहा है। 'पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।' (कठ० १ । २ । ६) इस रूपसे उसकी निन्दा की है। इस निन्दा-वाक्यसे भी उपनिषद्ने पुनर्जन्मको प्रमाणीकृत किया है; क्योंकि कठोपनिषद्के वक्ताको 'मृत्यु' (१ । १ । ४), 'यम' (१ । १ । ५), 'वैवस्वत' (सूर्यका लड़का) (१ । १ । ७), 'अन्तक' (१ । १ । २६) कहा गया है। ये नाम कोश (अमर० १ । १ । ५८-५९) के अनुसार मृत्यु-देवताके हैं। अमरकोशमें यद्यपि मृत्यु (२ । ८ । ११६) मरणका नाम है, तथापि यमराजके मृत्युके अधिष्ठाता होनेसे 'मृत्यु' नाम भी उसका है। इसलिये मेदिनीकोशमें 'मृत्युर्ना मरणे यमे।' (अमरकोशकी सुधा-व्याख्यामें २ । ८ । ११६) 'मृत्यु' भी यमका नाम कहा गया है।

(ऊ) प्रसङ्गसे प्राप्त आस्तिक और नास्तिक

हमारे शास्त्रकारोंने आस्तिक और नास्तिक—ये दो मत प्रसिद्ध हैं। इनसे भी पुनर्जन्म सिद्ध होता है। श्रीपाणिनिने 'अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः।' (अष्टा० ४ । ४ । ६०) इस सूत्रमें आस्तिक और नास्तिक शब्दकी सिद्धि की है।

(अ) इसमें—

'अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः।
नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिकः॥'

श्रीमद्भट्टोजिदीक्षितने तद्धितप्रकरणमें उक्त सूत्रमें यह विग्रह किया है।

(आ) काशिकाकार श्रीवामन और जयादित्यने उक्त सूत्रकी वृत्तिमें लिखा है—

'अस्ति मतिरस्य आस्तिकः, नास्ति मतिरस्य नास्तिकः।'

यह विग्रह करके आगे कहा है—

'न च मतिसत्तामात्रे प्रत्यय इष्यते, किं तर्हि? परलोकोऽस्ति इति यस्य मतिरस्ति स आस्तिकः, तद्विपरीतो नास्तिकः।'

इसमें 'परलोक' मानने-न-माननेवालेको 'आस्तिक-नास्तिक' शब्दसे कहा है; तब 'आस्तिक' शब्दसे भी 'पुनर्जन्म' पर प्रकाश पड़ता है।

(इ) आर्यसमाजके प्रवर्तक श्रीस्वामी दयानन्दजीने भी अपने 'वैणतद्धित' में उक्त सूत्रकी व्याख्यावाली टिप्पणीमें कहा है—"यहाँ वाक्यार्थमें 'इति' शब्द [इस] उत्तर पदका लोप समझना चाहिये; क्योंकि ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म और शुभाशुभ कर्मोंका फल आदि है—ऐसी बुद्धि जिस पुरुषकी हो, वह आस्तिक और इसके विरुद्ध नास्तिक समझा जावे।" यहाँपर स्वामीजीने पुनर्जन्मको परलोकमें अन्तर्भावित कर दिया है।

(ई) पातञ्जल-महाभाष्यमें उक्त सूत्रके 'प्रदीप'में श्रीकैयटने भी लिखा है—

'अस्तीत्यस्य इति परलोकसम्बन्धः च सत्ता विशेषा, तत्रैव विषये लोके प्रयोगदर्शनात्। तेन परलोकोऽस्तीति मतिर्यस्य स आस्तिकः, तद्विपरीतो नास्तिकः।'

(उ) 'नास्तिको वेदनिन्दकः' (२ । ११) इस मनुवचनमें 'वेद' शब्द श्रुति और स्मृतिका उपलक्षण है; क्योंकि उक्त वचनके प्रथम पाद 'योऽवमन्येत ते मूले' में यही कहा है। 'ते मूले' से इससे पूर्व—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥
(मनु० २ । १०)

अवशिष्ट) ब्रह्माजीके पास स्थित रहना बताया गया है। उक्त मन्त्रमें 'पुराणं' यह जातिमें एकवचन है। उससे सब पुराण लिये जाते हैं।

पूर्वोक्त अथर्ववेदके वचनके अनुवादरूप ब्राह्मणभागात्मक वेदमें भी कहा है—'अरे अस्य महतो भूतस्य [उच्छिष्टस्य] निःश्वसितमेतद् यद्—ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः, इतिहासः, पुराणं · अस्यैव एतानि।' (शतपथब्रा० १४ । ५ । ४ । १०; बृहदारण्यक उप० २ । ४ । १०)

यहाँपर पुराणको भी परमात्माका निःश्वासरूप कहा है। यदि ऐसा है, तब ब्रह्माजीने पुराणका पहले स्मरण किया हो; फिर उसके बाद वेद उनके मुखसे प्रकट हुए हों, यह बात युक्तियुक्त भी सिद्ध हो गयी। इसलिये त्रेतायुगके वाल्मीकि-रामायणमें भी पुराणका नाम सुनायी पड़ता है—'श्रूयतां तत् पुरावृत्तं पुराणेषु च मया श्रुतम्।' (वाल्मीकि० २ । ९ । १)।

इससे यह भी प्रतीत होता है कि श्रीवाल्मीकिमुनिने पुराणोंसे दुहकर ही अपनी ललित कवितामें रामायणकी रचना की। उसका प्रमाण यह है कि वाल्मीकिरामायणमें राजा दशरथसे पहला और लवकुशके बादका वृत्तान्त नहीं है; पर कालिदासके रघुवंशमें है और वह उसने पुराणोंसे लिया है—यह स्पष्ट है। जब त्रेतायुगके रामायणका मूल भी पुराण है, तब पुराण भी सृष्टिके आदिकालके सिद्ध हो गये।

द्वापरयुगके अन्तमें बने हुए महाभारतमें तो पुराणका वर्णन स्पष्ट है—

'पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्।'

(आदिपर्व ५ । २)

इस प्रकार उपवेद—आयुर्वेदकी चरकसंहिता (सूत्रस्थान १५ । ६) में भी पुराणका नाम स्पष्ट है। इस प्रकार आपस्तम्ब-धर्मसूत्र (२ । २४ । ६), आश्वलायनगृह्यसूत्र (३ । ३ । १), शुक्रनीति (२ । १७७), कौटिल्य अर्थशास्त्र (१ । ५ प्रकरण), इसी प्रकार अन्यत्र भी बहुत ग्रन्थोंमें पुराणोंका वर्णन है।

कई लोग पुराणोंका व्यासजीके द्वारा द्वापरयुगके अन्तमें निर्माण मानते हैं। वास्तवमें श्रीव्यास पुराणोंके कर्ता नहीं हैं; किंतु वक्ता और सम्पादक हैं। प्रत्येक द्वापरमें भिन्न-भिन्न व्यास पुराणका परिष्करण तथा सम्पादन करते हैं; यह पुराणमें ही स्पष्ट है। अबके द्वापरमें 'कृष्णद्वैपायन' व्यास थे और अग्रिम द्वापरमें 'अश्वत्थामा' नामके व्यास पुराणोंके सम्पादक होंगे, कर्ता नहीं। यह देवीभागवत पुराण (१ । ३ । १८-३३) में स्पष्ट है। पुराणका महत्त्व पुराणमें ही दीखता है—

श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्।
एतत्त्रयोक्तमेवास्माद् धर्मो नान्यत्र कुत्रचित्॥

(देवीभागवत ११ । १ । २१)

यहाँ श्रुति-स्मृतिको नेत्र और पुराणको हृदय कहा गया है। अब क्रमागत पुनर्जन्मके नामोंको भी देखना चाहिये। 'प्रश्नोपनिषद्'में भी 'पुनर्भव'का नाम है—

'तस्माद् उपशान्ततेजाः पुनर्भवम्।' (३ । ९)

कात्यायनरुद्रोपनिषद्में भी है—

'तत्समाचरेन्मुमुक्षुर्न पुनर्भवाय।' (४)

चरकसंहितामें भी 'पुनर्भव' शब्दका प्रयोग मिलता है—

'अथ तृतीयां परलोकैषणामापद्येत संशयश्चात्र।
कथं भविष्याम इतश्च्युता न वा॥'

(सूत्रस्थान ११ । ६)

'कुतः पुनः संशय इत्युच्यते। सन्ति हि एके प्रत्यक्षपराः परोक्षत्वात् पुनर्भवस्य नास्तिक्यमाश्रिताः॥'

यहाँ संहिताकारने पुनर्भव (पुनर्जन्म) को संशय बताया है। प्रत्यक्ष माननेवाले पुनर्भवको नहीं मानना चाहते; अतः यहाँ संशय दिखलाया गया है। आगे संहिताकार कहते हैं—

'सन्ति च आगमप्रत्ययादेव पुनर्भवमिच्छन्ति।'

यहाँ संहिताकारने पुनर्भवकी सिद्धि आगमप्रमाणसे सूचित की है और कहा है—

'द्वयतः संशयः, किं नु खलु अस्ति पुनर्भवो न वा इति।'

(११ । ६)

(घ) परलोक

पुनर्जन्मका अन्य नाम 'परलोक' भी है। इससे पुनर्जन्मके विषयमें प्रकाश पड़ता है। 'परलोक' उपनिषद्में भी दीखता है—

'अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ।'
(कठ० १ । २ । ६)

यद्यपि 'परलोक' इससे भिन्न स्वर्ग आदि लोकोंका नाम है, तथापि 'परलोक' शब्द भी पुनर्जन्मको सिद्ध करता है; क्योंकि मरकर पुनर्जन्म केवल मनुष्यलोकमें हो—ऐसा नहीं है; किंतु स्वर्ग आदि अन्य लोकोंमें भी हुआ करता है—यह इससे सूचित होता है।

इसके अतिरिक्त पुनर्जन्म केवल मनुष्ययोनिमें ही नहीं होता, किंतु पशुयोनिमें भी होता है, पक्षियोनिमें भी होता है, कीट-पतङ्गादि योनियोंमें भी होता है, देव-गन्धर्वादि योनियोंमें भी होता है। उनमें भी पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग मनुष्यलोकमें होते हैं; और स्थूलशरीर होते हैं। देव-गन्धर्व आदि स्वर्गादि लोकोंमें होते हैं। वे वहाँ सूक्ष्मकाय भी होते हैं और कामरूप भी होते हैं। गरुड़ आदि पक्षी, नन्दी बैल, सिंह आदि भी वहाँ होते हैं; पर दिव्य।

आकाशमें जो तारामण्डल दीख रहा है, वही 'द्युलोक' या 'परलोक' है। परलोकको न माननेवालेको उपनिषद्ने 'नास्तिक' कहा है। 'पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।' (कठ० १। २। ६) इस रूपसे उसकी निन्दा की है। इस निन्दा-वाक्यसे भी उपनिषद्ने पुनर्जन्मको प्रमाणीकृत किया है; क्योंकि कठोपनिषद्के वक्ताको 'मृत्यु' (१।१।४), 'यम' (१।१।५), 'वैवस्वत' (सूर्यका लड़का) (१। १।७), 'अन्तक' (१।१।२६) कहा गया है। ये नाम कोष (अमर० १।१।५८-५९) के अनुसार मृत्यु-देवताके हैं। अमरकोषमें यद्यपि मृत्यु (२।८। ११६) मरनेका नाम है, तथापि यमराजके मृत्युके अधिष्ठाता होनेसे 'मृत्यु' नाम भी उसका है। इसलिये मेदिनीकोषमें 'मृत्युर्ना मरणे यमे।' (अमरकोषकी सुधा-व्याख्यामें २।८।११६) 'मृत्यु' भी यमका नाम कहा गया है।

(ङ) प्रसङ्गसे प्राप्त आस्तिक और नास्तिक

हमारे प्राच्यशास्त्रियोंमें आस्तिक और नास्तिक—ये दो मत प्रसिद्ध हैं। इनसे भी पुनर्जन्म सिद्ध होता है। श्रीपाणिनिने 'अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः।' (अष्टा० ४।४। ६०) इस सूत्रमें आस्तिक और नास्तिक शब्दकी सिद्धि की है।

(अ) इसमें—

'अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः।
नास्तीति मतिर्यस्य स नास्तिकः॥'

श्रीमद्भट्टोजिदीक्षितने तद्धितप्रकरणमें उक्त सूत्रमें यह विग्रह किया है।

(आ) काशिकाकार श्रीवामन और जयादित्यने उक्त सूत्रकी वृत्तिमें लिखा है—

'अस्ति मतिरस्य आस्तिकः, नास्ति मतिरस्य नास्तिकः।'

यह विग्रह करके आगे कहा है—

'न च मतिसत्तामात्रे प्रत्यय इष्यते, किं तर्हि? परलोकोऽस्य अस्तीति यस्य मतिरस्ति स आस्तिकः, तद्विपरीतो नास्तिकः।'

इसमें 'परलोक' मानने-न-माननेवालेको 'आस्तिक-नास्तिक' शब्दसे कहा है; तब 'आस्तिक' शब्दसे भी 'पुनर्जन्म' पर प्रकाश पड़ता है।

(इ) आर्यसमाजके प्रवर्तक श्रीस्वामी दयानन्दजीने भी अपने 'स्त्रैणतद्धित' में उक्त सूत्रकी व्याख्यावाली टिप्पणीमें कहा है—"यहाँ वाक्यार्थमें 'इति' शब्द [इस] उत्तर पदका लोप समझना चाहिये; क्योंकि ईश्वर, जीव, पुनर्जन्म और शुभाशुभ कर्मोंका फल आदि है—ऐसी बुद्धि जिस पुरुषकी हो, वह आस्तिक और इसके विरुद्ध नास्तिक समझा जावे।" यहाँपर स्वामीजीने पुनर्जन्मको परलोकमें अन्तर्भावित कर दिया है।

(ई) पातञ्जल-महाभाष्यमें उक्त सूत्रके 'प्रदीप'में श्रीकैयटने भी लिखा है—

'अभ्युपगम इति परलोककर्तृत्वं च सत्ता विवक्षिता, तस्यैव विषये लोके प्रयोगदर्शनात्। तेन परलोकोऽस्तीति मतिर्यस्य स आस्तिकः, तद्विपरीतो नास्तिकः।'

(१) 'नास्तिको वेदनिन्दकः' (२।११) इस मनुवचनमें 'वेद' शब्द श्रुति और स्मृतिका उपलक्षक है; क्योंकि उक्त वचनके प्रथम पाद 'योऽवमन्येत ते मूले' में यही कहा है। 'ते मूले' से इससे पूर्वके—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥
(मनु० २।१०)

इस मनुवचनमें आये हुए श्रुति-स्मृतिका संकेत है। इनसे श्रुति एवं स्मृतिका शुष्क तर्कके बलसे तिरस्कार करनेवालेको भी 'नास्तिक' कहा गया है। उसमें कारण यह है कि श्रुति एवं स्मृतिमें भी परलोकका स्पष्ट वर्णन है। जैसे कि—

'आप्नोति इमं लोकम्, आप्नोति अमुम्' (अथर्व० शौसं० ९। ११। १३) यहाँपर 'इमं लोकं' इस 'इदम्' शब्दसे हमारा यह लोक सूचित होता है; और 'अमुं' इस 'अदस्' शब्दसे आमुष्मिक लोक (परलोक) सूचित होता है; क्योंकि—

इदमस्तु संनिकृष्टे समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

—इस प्रसिद्ध शास्त्रीय उक्तिसे 'इदम्' शब्दका निकटता-में तथा 'अदस्' शब्दका इस लोकसे बहुत दूरी बताकर इस लोक और 'परलोक'का परस्पर भेद बता दिया गया है।

(अ) 'इमं च लोकं परमं च लोकम्।'

(अथर्व० १९। ५४। ५)

यहाँपर 'परमलोक' का 'परलोक' अर्थ है, जैसे कि—

'यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे।'

(अथर्व० १३। ३। ५)

यहाँपर 'परम' शब्द 'पर' वाचक है।

(आ) जैसे श्रुतिमें परलोकका वर्णन है, वैसे स्मृतिमें भी है। जैसे कि—

(अ) 'परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन्।'

(मनु० ४। २३८)

(आ) 'नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।'

(मनु० ४। २३९)

(इ) 'परलोकं नयत्याशु' (मनु० ४। २४३)

इस प्रकार 'परलोक' शब्दको अन्य शास्त्रोंसे भी दिखाया जा सकता है। जब परलोकको न माननेवालेको 'नास्तिक' कहा जाता है, तब इससे 'पुनर्जन्म'की सिद्धि स्पष्ट है।

अब पुनर्जन्मके पर्यायवाचक 'प्रेत्यभाव' शब्दको भी देखिये।

(च) प्रेत्यभावः

'प्रेत्यभवनं प्रेत्यभावः।' यह उक्त शब्दकी व्युत्पत्ति है।

(अ) 'प्रेत' शब्दकी सिद्धि और अर्थ।

'प्र'उपसर्गपूर्वक 'इण्' धातु (अदादि० परस्मै० अनिट्) से 'क्त' प्रत्ययसे 'प्रेत' शब्द बनता है। 'प्रकर्षेण इतः' (अच्छी तरहसे गया हुआ) यह 'प्रेत' का निर्वचन है। इसीका दूसरा नाम 'परेत' भी है। इसमें 'परा' उपसर्ग है। इसकी व्युत्पत्ति है—(परा-दूरम् इतः) अथवा 'पर लोकम् इतः'—अच्छी तरहसे गये हुएका नाम 'प्रेत' बनता है। वह इससे भिन्न होकर अन्य लोकमें जाकर फिर उत्पन्न होता है—यही उसका 'प्रकर्षसे गमन' है।

अमरकोषमें 'परासु-प्राप्तपञ्चत्व-परेत-प्रेत-संस्थिताः। मृत-प्रमीतौ त्रिष्वेते' (२। ८। ११७) ये नाम 'मृतक'के हैं। इसमें तीसरा नाम 'परेत' है और चतुर्थ नाम 'प्रेत' है।

'प्रकर्षेण इतः' इस व्युत्पत्तिसे यह मृतकका नाम कैसे हुआ? यह जिज्ञासा होती है; परंतु थोड़े विचारसे यहाँ स्पष्ट हो जाता है। एक होती है—यात्रा। दूसरी होती है महायात्रा। लोकमें 'महायात्रा'—मृत्युका नाम प्रसिद्ध है। 'अमुक पुरुषकी महायात्रा हो गयी है'—यह बात किसीकी मृत्युपर कहा जाता है। इस प्रकार 'प्रकर्षेण इतः' का भी महायात्राको प्राप्त हो गया—यह अर्थ सिद्ध होता है। तब 'प्रेत' यह मृतकका नाम ठीक ही है।

(आ) 'प्रेत' शब्दका शास्त्रोंमें प्रयोग।

'प्रेत' शब्दका प्रयोग उपनिषदोंमें भी दीखता है। जैसे कि—

१ ईशोपनिषद्में।

'तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।' (३)

यहाँ आत्महत्या करनेवालोंका मरकर असुरलोकमें जाना कहा है। यहाँ 'प्रेत्य' शब्द मरणवाचक स्पष्ट है।

२ कठोपनिषद्में—

'येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये।' (१। १। २०)

३ उपनिषदोंके मूल वेदोंमें—

'इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।' (अथर्ववेद १८। ३। १)

यहाँ मृतकको कहा जा रहा है कि—'हे मर्त्य—(मरणधर्मा मनुष्य!) इयं नारी—(यह तुम्हारी स्त्री) पतिलोकं वृणाना—

([illegible])
[illegible]
मृतकका नाम है।

४ प्रेत एक योनिविशेष।

'प्रेत' एक योनिविशेष भी है। जैसे कि—

'प्रेतः प्राण्यन्तरे मृते।' (अमरकोष ३ । ३ । ५९)

'भूत-प्रेत' शब्द उक्त योनिविशेषमें भी प्रसिद्ध है। 'मेदिनी'कोषमें भी कहा है—

'प्रेतो भूतान्तरे पुंसि मृते स्याद् वाच्यलिङ्गकः।'

(टक्त अमरकोषकी सुधाव्याख्यामें)

इस प्रकार शौनककृत 'ऋग्विधान'में भी कहा है—

'भूतप्रेतादिचौरादिव्याघ्रादीनां च नाशनम्।'

(८ । ७ । १८)

'बालग्रहा न पीड्यन्ते भूतप्रेतादयस्तथा।'

(प्रा० वि० ६ । २ । ९)

यहाँपर विशेष मन्त्रके जपसे भूत-प्रेतोंकी पीड़ा हट जाना कहा है। वैशेषिकदर्शनके प्रशस्तपादभाष्यमें भी कहा है—'प्रेतं तिर्यग्योनिस्थानेषु' (संसारापवर्गप्रकरण) यहाँपर प्रेतयोनि भी स्वीकृत की गयी है कि अधमयोनिमें 'प्रेत' होता है। 'बौधायनदक्षशौचसूत्र'में भी 'प्रेतयोनि' दिखलायी गयी है। जैसे कि—

'भूतप्रेतपिशाचाद्याः सर्वे ते भूमिभारकाः।' (५ । ४ । २)

इस प्रकार प्रेतयोनि भी अपमृत्युसे शास्त्रोंमें कही गयी है। उससे भी मरकर पुनर्जन्म-सम्बन्ध फलित हुआ।

५ 'प्रेत्यभाव' का प्रयोग और उसका अर्थ

प्रेत्य—मृत्वा, भावः—पुनर्जन्म इति 'प्रेत्यभावः'। मरकर फिर जन्म। इसका स्पष्ट दर्शनोंमें दीखता है। इससे भी पुनर्जन्मवाद प्रकाश पड़ता है। 'न्यायदर्शन'में कहा है—

'आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफल-दुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्।' (१ । १ । ९)

यहाँ प्रमेयोंमें 'प्रेत्यभाव'की गणना सम्मत है। अब इसका न्यायदर्शनसे स्पष्ट देखिये—

'पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः।' (४ । १ । १०)

इस सूत्रकी व्याख्या करते हुए श्रीवात्स्यायनमुनिने कहा है—'उत्पन्नस्य (पैदा हुए प्राणीका) क्वचित् सत्त्वनिकाये (किसी शरीरेन्द्रियसमुदायमें) मृत्वा (मरकर) या पुनः उत्पत्तिः (जो फिर देहादिसे सम्बन्ध है) स प्रेत्यभावः (इसका नाम प्रेत्यभाव है)। यत् क्वचित् प्राणभृन्निकाये (किसी प्राणीके शरीरमें) वर्तमानः पूर्वोपात्तान् (होकर पूर्व प्राप्त हुए) देहादीन् जहाति (शरीर-इन्द्रिय आदिको छोड़ देता है) तत् प्रैति (वह मर जाता है)। यत् तत्र अन्यत्र वा देहादीन् अन्यान् उपादत्ते (जब वह अन्य देह आदिको लेता है), तद् भवति (वह उसका पुनर्जन्म होता है)'—यह कहकर भाष्यकार फिर प्रेत्यभावको स्पष्ट करते हैं—'प्रेत्यभावः—मृत्वा पुनर्जन्म' (मरकर फिर जन्म होना—यह प्रेत्यभाव होता है)।

तर्कशास्त्रके इस वचनसे प्रमाणित होता है कि पुनर्जन्मवाद केवल आप्त वचनसे प्रमाणित नहीं है, किंतु तर्कसे भी अनुगृहीत है। पहले ईशोपनिषद् (३)के वचनसे भी हम 'प्रेत्यभाव'को स्पष्ट कर ही चुके हैं।

(छ) परलोकसे पुनर्जन्मकी सिद्धि

पहले हम बता चुके हैं कि पुनर्जन्मका दूसरा नाम 'परलोक' है; इस 'परलोक' शब्दसे भी 'पुनर्जन्म'की सिद्धि होती है। उसमें कारण यह है कि यदि पुरुष यहीं होकर यहीं मर जाता, तब तो पुनर्जन्मका कोई प्रसङ्ग ही नहीं था; पर जब कि मृतकका शास्त्रोंमें परलोकमें जाना कहा है; तब इससे सिद्ध हुआ कि इस लोकमें स्थित होकर अब वह परलोकमें गया है, यह भी 'पुनर्जन्म' है।

पुनर्जन्म केवल कर्मयोनि मनुष्योंमें नहीं होता; बल्कि भोगयोनि—पशु पक्षी आदिमें भी जन्म होता है; यह भी यही लोक है। ये योनियाँ ८४ लाख कही जाती हैं। मरकर परलोकमें गये हुए जीवका देवता आदि भोगयोनियोंमें भी जन्म होता है। उनकी संख्या ३३ करोड़ कही जाती है।

इस लोकसे परलोकका यही अन्तर है कि इस लोकमें तो जीवको पार्थिव पाञ्चभौतिक देह मिलता है और उसमें मुख्यता पृथिवीभूतकी हुआ करती है और जल, तेज, वायु, आकाश आदिकी गौणता भी होती है। देह यहाँ पार्थिव होता है, इसलिये यहाँ मिट्टी मुख्य होती है; परंतु उसमें जल, तेज, वायु, आकाश आदिकी सहायताके बिना यह चल नहीं सकता था सकता, वैसे ही परलोकमें दूसरे मुख्य हैं तेज भी है उसमें जल आदि भूतोंकी सहायता भी अपेक्षित होती ही है।

इस लोकके पृथिवीलोक होनेसे यहाँका देह भी पार्थिव हो, यह स्वाभाविक ही है; परंतु शास्त्रकी दृष्टिसे 'परलोक' इस लोकसे भिन्न ही माना जाता है। 'परलोक' शब्दसे स्वर्ग, नरक, पितृ, मुक्ति आदि लोक लिये जाते हैं। उनमें पृथिवी प्रधान नहीं होती; किंतु जल, तेज एवं वायुकी प्रधानता रहती है; इसलिये वहाँके देवताओं आदिके शरीर भी तैजस आदि हुआ करते हैं। अतएव न्यायदर्शन तथा वैशेषिकदर्शनके प्रशस्तपादभाष्य आदिमें भी वैसे शरीरोंका वर्णन मिलता है। जैसे कि—

'तत्र मानुषं शरीरं पार्थिवम्'''' '''आप्यतैजसवायव्यानि लोकान्तरे (वरुण, सूर्य, वायुलोकेषु) शरीराणि। तेष्वपि भूतसंयोगः पुरुषार्थतन्त्रः। अर्थात् एक भूतसे बने शरीरसे भोग नहीं हो सकता; इसलिये उन शरीरोंमें भी शेष चार भूतोंका संयोग भोगके लिये ही हुआ करता है, जल आदिकी प्रधानतासे ही उन्हें 'जलीय तैजस' आदि कहा जाता है।' 'स्थाल्यादिद्रव्यनिष्पत्तावपि [भूतसंयोगो] निःसंशयः [अपेक्ष्यते] न ह्युदकादिसंयोगमन्तरेण निष्पत्तिः।—घड़े आदिके निर्माणमें भी जल आदिके संयोगके बिना केवल मिट्टीसे काम नहीं होता।' (न्यायदर्शन ३।१।२८)

यही बात प्रशस्तपादभाष्यमें भी कही गयी है—'तत्र शरीरम् अयोनिजमेव वरुणलोके पार्थिवावयवोपष्टम्भाच्च उपभोगसमर्थम्।' (वरुणलोकमें शरीर अयोनिज होता है; परंतु पार्थिव अवयवोंके आश्रयसे उपभोगमें समर्थ होता है।) (द्रव्यप्रन्थ जलनिरूपणमें)। 'शरीरम् अयोनिजमेव आदित्यलोके पार्थिवावयवोपष्टम्भाच्च उपभोगसमर्थम्।' (तेजके निरूपणमें)। 'तत्र अयोनिजमेव शरीरं मरुतां लोके, पार्थिवावयवोपष्टम्भाच्च उपभोगसमर्थम्।' (वायुनिरूपणमें)

यहाँपर जलीय, तैजस, वायव्य आदि शरीर भी लोकान्तर-निवासियोंके बताये गये हैं। यह भी 'पुनर्जन्म' ही है। इस प्रकारके शरीरधारी लोकोंमें 'देव' कहे जाते हैं। नरकलोक-वासियोंको भी नरकयातनाकी प्राप्तिके लिये मरनेके बाद अन्य शरीर भी मिलता है। जैसे कि मनुस्मृतिमें कहा है—

> पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम्।
> शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम्॥
> तेनानुभूय ता यामीः शरीरेणेह यातनाः।
> तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः॥
> (१२।१६-१७)

'जिन पापियोंको नरकलोक जाना होता है, उन्हें प्रेत्य—मरनेके बाद पीड़ाके अनुभवार्थ जरायुज आदिसे भिन्न दुःख सहनेमें समर्थ पृथिवी आदि पाँच भूतोंसे अन्य शरीर परलोकमें मिलता है। वे नारकी जीव यमके पापभोगार्थ दी जानेवाली पीड़ाओंको प्राप्त करके उन सूक्ष्म स्थूलशरीरके अवसानमें शुद्ध हो जाते हैं।' जैसे कि—

> सोऽनुभूयासुखोदर्कान् दोषान् विषयसङ्गजान्।
> व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ॥
> तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह।
> याभ्यां प्राप्नोति सम्पृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम्॥
> (१२।१८-१९)

'यह जीव यमलोकका दुःख आदि अनुभव करके मैले पापके क्षीण होनेपर महान् तथा परमात्माको प्राप्त होता है। वे उसके धर्म और भुक्तशेष पापका निरीक्षण करते हैं, जिससे यह इहलोक तथा परलोकमें सुख-दुःख पाता है।'

मनुस्मृति (१२।१४) में जिनको 'महान्' और 'परमात्मा' बताया है, उन्हींको गरुडपुराण आदिमें 'चित्रगुप्त' और 'यमराज' नामसे कहा गया है; उसमें 'महान्' चित्रगुप्त मन्त्री हैं और 'परमात्मा' यमराज राजा या न्यायकर्ता हैं। धर्म अधिक होनेपर जीवको स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है—

> यद्याचरति धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः।
> तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते॥
> (मनु० १२।२०

पुण्य अधिक होनेपर वह स्वर्गमें देवता बनकर देव-योनि बनता है। पाप अधिक होनेपर नरकमें जाता है।

> यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः।
> तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः॥
> (१२।२१

इस कर्मभोगसे जीवको गतिविशेषकी प्राप्तिसे पुनर्जन्म सिद्ध हो जाता है। जैसे कि—

> जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम्।
> येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु॥
> (मनु० १२।१३)

यहाँपर जीवको जन्म-जन्ममें पुण्य-पापके कारण सुख-दुःखकी प्राप्ति कही गयी है। अत्यन्त पुण्यसे स्वर्ग, अत्यन्त

ापसे नरक होता है। इससे सिद्ध होता है कि पुण्य-पाप दोनोंकी समानता हो, तो जीव मनुष्यलोकमें जन्म लेता है। स्वर्ग-नरकमें तो शरीरकी पृथिवी-प्रधानता नहीं थी, पर पृथिवी-लोकमें पृथिवी-प्रधान होनेसे स्थूलशरीर होता है। पुण्य-पाप दोनोंके न रहनेसे जीवकी मुक्ति हो जाती है। उसमें 'संकल्पमय शरीर' माना जाता है। उसमें कर्मोंके अभावसे पुनर्जन्मकी समाप्ति हो जाती है। इस प्रकार परलोकसे भी पुनर्जन्मकी स्पष्ट सिद्धि हो जाती है। (शेष आगे)

पुनर्जन्म

(लेखक—आचार्य श्रीमुन्शीरामजी शर्मा)

अपाङ् प्राङ् एति स्वधया गृभीतो अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥
(ऋ० १ । १६४ । ३८; अथर्व० ९ । १० । १६)

अमर जीवात्मा मरणधर्मा शरीरके साथ संयुक्त होता है। इसका कारण है स्वधा—अपनेको धारण करनेकी भावना। स्वधासे गृहीत हुआ जीव 'सु' अच्छी, किंतु 'अधा' नीची प्रकृतिके प्रवाहमें पड़ता है। प्राकृतिक वैभव देखनेमें आकर्षक है, पर उसका उपभोग निर्बलताका भी जनक है। जीव इस वैभवके उपभोगमें रुचि लेने लगता है, इसीलिये वह शक्तिहीनताका आखेट बनता है। मनुने (१२ । ३८) लिखा है कि "प्रकृतिके तमोगुणसे चिपटकर मानव 'कामी' बनता है, रजोगुणसे लिपटकर 'अर्थवान्' बनता है और सत्त्वगुणका आश्रय लेकर 'धार्मिक' बनता है।" काम और अर्थकी लोलुपता उसे नीचे गिराती है और पशु-पक्षी आदिकी योनियोंमें ले जाती है। काम और अर्थका संयम उसे मानव-योनिमें ले आता है। धर्मका आचरण उसे पितर तथा देवयोनियोंकी ओर ले जाता है। 'काम और अर्थमें अनासक्त' व्यक्ति ही धर्मज्ञान प्राप्त करते हैं। धर्मकी जिज्ञासा वेदसे शान्त होती है। धर्मके जिज्ञासुओंके लिये श्रुतिसे बढ़कर अन्य कोई प्रमाण नहीं है। (२ । १३) 'वेद ही परम प्रमाण है। वेद ही अखिल धर्मका मूल है।' अतः द्विजोंको, संस्कृत व्यक्तियोंको, विशेषतः आत्मोन्नतिचाहनेवालोंको वेदका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये। यदि वे वेदको छोड़कर अन्यत्र श्रम करेंगे, तो पुनः शूद्रत्वको प्राप्त कर जायेंगे।' (२ । १६८)

धर्म क्या है? आचार ही प्रथम धर्म है। वेद और उसके अनुकूल स्मृति जिन विधि-निषेधोंका वर्णन करते हैं, उनमें विधिका स्वीकार तथा निषेधोंका परित्याग ही धर्मका पालन करना है। ये स्वीकार तथा परित्याग भावनासे प्रेरित होने चाहिये। कर्मोंको करनेमें [illegible] करना चाहिये। ज्ञानके अनुकूल आचरण करना ही धर्म है। यदि ज्ञान तथा आचरणमें वैपरीत्य रहा तो दम्भका रूप खड़ा हो जायगा। मनुष्य धार्मिक नहीं बन सकेगा। सदाचार या सच्चरित्रसे ही मानव धार्मिक बनता है। वाणी मात्रसे नहीं। रोम-रोमद्वारा सच्चरित्रकी ध्वनि निकलनी चाहिये; हमारे एक-एक आचरणद्वारा धर्मका जय-घोष होना चाहिये। धर्म व्याख्यान-व्यापार नहीं, आचार-अनुष्ठान है; जो वाणी ही नहीं, अङ्ग-अङ्गको प्रभावित करता है। हमारी समस्त चेष्टाओंमें धर्म प्रतिध्वनित होता है।

आचरण कर्म है। कर्म तीन प्रकारका हो सकता है—तामस, राजस तथा सात्त्विक। तामस कर्म हेय है; क्योंकि वह अधोगतिका कारण है। राजसपर नियन्त्रणकी आवश्यकता है। सात्त्विक कर्म ही उन्नयन करता है—ऊपर उठाता है। वेद कहता है—'उद्यानं ते पुरुष नावयानम्—जीव! तुझे ऊपर उठना है, नीचे नहीं गिरना है। अधोगतिकी मार खाते-खाते तू अपने स्वरूपसे ही हाथ धो बैठा है। मनुष्य-योनिमें आकर अब तो अपने स्वरूपको पहिचान; अपने घरकी ओर चल। इस पृथिवीकी पीठपर सवार हो जा और द्युलोकका आधान करता हुआ अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जा।'

धर्म साधना है, तप है—ऐसा सभी साधक स्वीकार करते हैं। पर सत्कर्म क्या है, असत्कर्म क्या है तथा धर्म, अधर्म और विधर्मके परिस्थितियोंमें प्रभावमें क्या और कैसा अन्तर पड़ता है, इस विषयमें कभी-कभी बड़े-बड़े कवि, ज्ञानी भी मोहित हो जाते हैं और निर्णय नहीं कर पाते। एक ही कर्म एक समयमें कर्तव्य, परंतु दूसरे समयमें

१. कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥
(गीता ४ । १७)

क और वस्तु आकर चिपट गयी और मेरा स्वत्व उसके ाथ बँट गया। विभाजन शक्तिको कम करना है। शक्तिका कीकरण तो केन्द्रस्थ—स्वस्थ रहनेमें है। शक्तिकी हीनता राधीनताकी ओर ले जाती है। जीव भी भोगके अधीन ोकर परतन्त्र होता ही जाता है। ज्ञान और प्रयत्न उसके ो गुण हैं। इन्हें लेकर यह स्वाधीन होना चाहता है, पर हीं हो पाता। भोग भोगेच्छाको और प्रबल करता है। जब यह भोगसे विरत होकर तपस्या करता है, तब कहीं स्वाधीनता की झलक सामने आती है। यदि उस झलकको पकड़कर यह तपमें निरत रहा, त्यागभावको अपनाता रहा, तो एक दिन अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जायगा। तपसे अहंकारको अवश्य पृथक् रखना होता है और परम प्रभुके समक्ष समर्पण करना होता है, तब कहीं पूर्ण स्वाधीनताके दर्शन हो पाते हैं।

'जो कर्ता सो भोक्ता' की कहावत प्रख्यात है। कर्मका भोगसे और भोगका कर्मसे नित्य सम्बन्ध है। सुख और दुःख भोगरूप हैं और किसी-न-किसी कर्मके परिणाम हैं। सुखके साथ दुःख लगा रहता है, परंतु मोक्षमें दुःखका एकान्त अभाव हो जाता है। जैसे दिन और रात्रिका चक्र है, सृष्टि और प्रलयका चक्र है, जन्म और मरणका चक्र है, वैसे बन्ध और मोक्षका भी चक्र है। मोक्षको इसीलिये 'सावधि' कहा गया है। उसके भोगका समय 'परान्तकाल' है। परान्तकाल ३६ सहस्र बार सृष्टि और प्रलयके होनेका समय है। ऋग्वेद (१० । १९० । ३) में 'अघमर्षण सूक्त'[1] या 'भाववृत्त सूक्त'के अन्तर्गत सृष्टि और प्रलयके चक्रका 'धाता यथापूर्वमकल्पयत्' शब्दोंद्वारा वर्णन किया गया है। वर्तमान सृष्टि वैसी ही है, जैसी पूर्व कल्पमें थी। सृष्टि या रचना प्रकृतिका बन्ध है। प्रलय प्रकृतिका मोक्ष है। इसी प्रकार जीवका कर्मफलके अनुसार विविध प्रकारकी योनियोंमें आवागमन 'बन्ध' है और इस आवागमनसे छुटकारेका नाम 'मोक्ष' है। मोक्षका अर्थ ही है—छूट जाना। छूटनेका अर्थ है—बन्धनसे पृथक् होना। मोक्ष-जैसी महान् उपलब्धिके लिये महती साधनाकी अपेक्षा है। यह साधना मानव-योनिमें ही सम्भव है, पशु-पक्षियोंकी योनियोंमें नहीं। मानवको मानव योनिमें भी एक नहीं, अनेक बार जन्म लेना पड़ता है। उसमें भी श्रेणी-विभाग है, सब अपने हाथ है। मनुष्यकी उच्चतम कक्षामें जबतक जीवका प्रवेश नहीं होता, तबतक वह मोक्षका अधिकारी नहीं बन सकेगा।

श्मशानमें जिस मृत्युके दर्शन होते हैं, वह शरीरकी मृत्यु है, जीवकी नहीं। जीव जब शरीरको छोड़ देता है, तब शरीर समाप्त हो जाता है; जीव प्राण मन-बुद्धिके साथ दूसरे शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। यह दूसरा शरीर पहले शरीरकी अपेक्षा उत्कृष्ट होगा या निकृष्ट, इसकी पहिचान कुछ-कुछ पहले शरीरको छोड़नेके समय ही की जा सकती है। सबकी मृत्यु एक समान नहीं होती। क्षत्रिय रणमें मृत्युका वरण स्वेच्छासे करता है। शूद्र तथा वैश्यवृत्तिवाले घरमें रहते हुए मरणमें अनिच्छा प्रकट करते हैं; पर उन्हें भी शरीर छोड़ना पड़ता है। ब्राह्मीवृत्तिवालोंके लिये शरीरका परित्याग वस्त्र या परिधानके परित्यागके समान है। अतः मरणके समय प्राणीकी भावनाएँ अपने-अपने कृतकर्मों तथा निर्मित वृत्तियोंके अनुसार होती हैं और जिस-जिस भावनाको लेकर जीव शरीर छोड़ता है, उसी भावनाके अनुकूल उसे आगामी शरीर मिलता है।*

हम जैसे कर्म करते हैं, वैसे ही संस्कार बनते हैं और उन्हीं संस्कारोंके अनुसार हमें आगामी शरीर मिलते हैं। वेद कहता है—

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्यं पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति॥
(ऋग्वेद १ । १६४ । १९)

'जो नीचे थे, वे ऊपर पहुँच जाते हैं और जो ऊपर थे वे नीचे आ जाते हैं। इन्द्र अर्थात् इन्द्रियोंका स्वामी जीवात्मा जिन कर्मोंको करता है, वे धुरेकी भाँति युक्त होकर इसे लोक-लोकान्तरोंमें एक योनिसे दूसरी योनिमें ले जाते हैं।'

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः॥
(ऋग्वेद १ । १६४ । ३०)

'मृत शरीरका जीवात्मा उस शरीरसे निकलकर अपनी स्वधाओंके अनुसार, धारण करनेवाली कृतियों तथा प्रवृत्तियोंके अनुसार, कृतियों और स्वभावोंके अनुरूप अमर होता हुआ भी मर्त्य शरीरको अपना सयोनि बनाकर विचरण करता है, अर्थात् एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरको धारण करता हुआ चला जाता है।' देवों, मनुष्यों, योनियों तथा लोकोंके सम्बन्धे

* यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
(गीता ८ । ६)

१. ऋग्वेद—अघमर्षण [illegible]

योनिको प्राप्त होकर पुनः माताओंका संसर्ग कर उनके गर्भमें आता है। आत्मा स्वयं ज्योतिष्मान् है। उसका यह ज्योतिरूप बुद्धिमान् मानवके रूपमें पुनः प्रकट होता है।

विभिन्न योनियोंमें जानेके कारणपर प्रकाश डालते हुए मनु कहते हैं—

> शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
> वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्॥
>
> (१२।९)

'कर्मके जो दोष शारीरिक हैं—जैसे हत्या, चोरी, व्यभिचार, उनके कारण मनुष्य वृक्षादि स्थावरयोनिको प्राप्त करता है, वाणीसे किये पापोंके द्वारा पक्षी और मृगादिका शरीर धारण करता है तथा मनसे किये पापोंद्वारा चाण्डाल आदिका शरीर मिलता है।' यह अन्नजन्य पापका परिणाम है।

> देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।
> तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः॥
>
> (१२।४०)

'गुणोंकी दृष्टिसे विचार करें तो सात्त्विक गुणसम्पन्न व्यक्ति देवयोनिको प्राप्त करते हैं, रजोगुणी मानव-योनिमें आते हैं तथा तमोगुणी तिर्यक्योनिमें जाते हैं।' तामसी तथा राजसी गति जघन्य, मध्यम तथा उत्तम तीन-तीन भागोंमें विभाजित है; परंतु सात्त्विकी गतिके प्रथमा, द्वितीया तथा उत्तमा तीन भेद हैं। इन भेदोंके अनुसार योनियाँ भी भिन्न भिन्न हो जाती हैं, जिनका विस्तृत विवरण मनुस्मृतिके १२ वें अध्यायमें दिया गया है। मनु लिखते हैं—

> इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च।
> पापान् संयान्ति संसारान् अविद्वांसो नराधमाः॥
>
> (१२।५२)

'इन्द्रियोंके वशीभूत, धर्म-सेवनसे रहित अज्ञानी अधम नर पापमयी योनियोंको पाते हैं।' किंतु जो धर्मपरायण हैं, इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाले हैं, वे ज्ञाननिष्ठ, प्रभु-प्रेमी नर ऊर्ध्वलोकोंमें जाते हैं। सांख्य (१।१) सूत्रके अनुसार 'मनुष्यका परम पुरुषार्थ त्रिविध दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति करनेमें निहित है।'

ऊर्ध्वलोकोंकी गतियाँ भी अनेक हैं, परंतु सबमें दो प्रमुख हैं—पितृयान तथा देवयान। पितृयान पथके पथिक परोपकारी, आदर्शचरित भद्रपुरुष होते हैं। देवयान पथपर वैज्ञानिक एवं दार्शनिक चलते हैं। इन दोनोंमें सत्कर्म और ज्ञान-प्रकाशका अन्तर है। पितरोंकी दिशा दक्षिण तथा देवोंकी दिशा उत्तर है। इस आधारपर उन्हें दक्षिणायन तथा उत्तरायण-मार्ग भी कहा जाता है। एकको 'चान्द्रमस' तथा दूसरेको 'गौर्दायण' ज्योति भी कहते हैं। गीताने इन्हें 'कृष्ण' तथा 'शुक्ल' गतिका नाम दिया है। ये दोनों ही गतियाँ ब्रह्मलोकसे ऊपर नहीं जातीं, ऐसा गीताका मत है।

गीताके आठवें अध्यायमें जो देवयान तथा पितृयाणका वर्णन है, उसका स्रोत छान्दोग्य उपनिषद्में और छान्दोग्यका स्रोत वेदमें है। वेद कहता है—

> द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
> ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥
>
> (ऋग्वेद १०।८८।१५; यजु० १९।४७)

'मर्त्य मनुष्य अपने शुभ कर्मोंके अनुसार पुण्यका फल भोगनेके लिये दो मार्गोंसे जाते हैं—एक पितृयानसे और द्वितीय देवयानसे। पिता द्यौ और माता पृथ्वीके बीचमें यह सब जो गतिशील है, इन्हीं दोनों मार्गोंमें समा जाता है।'

इसके पूर्व मन्त्र (१२) में वैश्वानर अग्निका वर्णन है जो अह्नाम्–दिनकी अर्थात् प्रकाशका केतु प्रतीक है। यही अग्नि प्रकाशमयी ज्वालाओंका विस्तार करता है, जिससे अग्नि या ज्वालासे व्यापक अन्धकार दूर होता है। यह वैश्वानर अग्नि सूर्यकी संवत्सराग्नि है, जिसका वर्णन छान्दोग्य उपनिषद्में भी है।

छान्दोग्य उपनिषद्ने शिष्ट मानवोंके दो भाग किये हैं। एक ग्राममें वास करके लोकोपकारके कार्योंमें संलग्न रहते हैं, दूसरे अरण्यमें रहते हुए श्रद्धापूर्वक तपस्या जीवन व्यतीत करते हैं। इन्हें 'वैखानस' भी कहा जाता है। एक लोक-सेवी हैं, लोक-संग्रह-विधायक हैं; दूसरे तपस्वी या आत्म-साधक हैं। एक मरकर पितृलोकको तो दूसरे ब्रह्मलोकको जाते हैं। एकका पथ पितृयान है तो दूसरेका देवयान है।

'तद् य इत्थं विदुः। ये च इमे अरण्ये श्रद्धा तप इति उपासते ते अर्चिषम् अभिसंभवन्ति। अर्चिषो अहः। अह्न आपूर्यमाणपक्षम्। आपूर्यमाणपक्षाद् यान् षड् उदङ् एति मासाँस्तान्। मासेभ्यः संवत्सरम्। संवत्सरात्

ध्रुव जीवको भी जो पतत्–हिला देनेवाली किया है, वह यही स्वभाव हैं; भोगेच्छा, कर्म, वृत्ति और उनसे बने हुए स्वभाव हैं। यही इस प्राण धारण करनेवाले, वेगशाली जीवको भुला देते हैं, परमात्माने विमुख कर देते हैं, प्रमादमें डाल देते हैं। आत्माकी पवित्रतापर स्वभाव ही आवरण डालता है, उसे मलिनताकी ओर ले जाती है और नीची-ऊँची योनियोंके दुःख-सुख दिखाती, अनुभव कराती है।'

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः॥
(ऋग्वेद १।१६४।३१)

'इस अनिपद्यमान, ऊर्ध्व स्थानपर विराजमान, गोपा, इन्द्रियोंके पालक जीवको मैंने अधः एवं ऊर्ध्व, अवर एवं परले पथोंमें विचरण करते हुए देखा है। यह कभी अनुकूल, कभी प्रतिकूल, कभी सम, कभी विषम दशाओंको अपनाता हुआ, ऊँची-नीची योनियोंमें घूमता हुआ भुवनोंके अंदर बार-बार आया जाया करता है।' सध्रीची धारण करनेवाली अवस्था है तो विषूची निम्नप्रवाही विचलन, विरेचन एवं निम्नगामी अवस्था है।

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश॥
(ऋग्वेद १।१६४।३२)

'जननीके गर्भमें झिल्ली और अज्ञानसे ढका हुआ जीवात्मा अनेक जन्म धारण करता है। यह बहुप्रजा—अनेक जन्मों तथा संततियोंवाला बनता है और घोर-से-घोर दुर्गतिमें पड़ता है। इस दुर्दशामें यह जो कुछ करता है, उसे स्वयं भी नहीं जानता और जो कुछ देखता है, वह भी इससे छिपा हुआ ही रहता है।' उदात्त आत्माका यह कैसा अधःपतन है।

अधोगतिमें पड़ा हुआ, कर्मजालमें फँसा व्याकुल होता हुआ इसीलिये प्रभुसे प्रार्थना करता है—

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः॥
(ऋग्वेद १।१६४।३७)

'मैं नहीं जानता, मैं क्या हूँ। क्या मैं यह शरीर हूँ? [illegible] ममत्वरूप बन्धन मुझे घेरे हैं, अपने स्वरूपका कुछ ज्ञान नहीं पड़ता। मैं अपने इन बन्धनोंसे विमुख [illegible] हूँ, इनकी चाह बँध गया हूँ।

अब तो प्रभु ही कृपा करें, ऋतको प्रथमजो प्राप्त करावें। तभी इस वाणीका भाग भोग सकेगा, इसमें आ सकेगा।'

जीव जलचर तथा वानस्पत्य योनियोंमें भी जाता है। इसका समर्थन निम्नाङ्कित मन्त्रोंमें होता है—

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे गर्भे सन् जायसे पुनः॥
(यजु० १२।३६)

मन्त्रके दो अर्थ हैं—एक अग्निपरक है, जो विज्ञानके अन्तर्गत आता है। दूसरा आत्मपरक है, जो पुनर्जन्मसे सम्बन्ध रखता है। विज्ञानके अनुसार अग्नि जहाँ बाहर है, वहाँ जलों तथा ओषधियोंके अंदर भी है। जलसे विद्युत् रूप अग्नि आजकल बाहुल्यसे पैदा की जाती है और उससे घरोंमें रोशनी ही नहीं होती, रोटी आदि भी पकायी जाती है, पंखा चलाया जाता है, बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ बिजलीसे चलती हैं, रेलें चलती हैं आदि-आदि। ओषधियाँ अन्नरूप हैं, यह रसायनमें ही नहीं, अन्नादिमें भी व्याप्त है। और विशेषतः शमी तथा पीपलकी लकड़ीमें अग्नि छिपी रहती है। वह इनके गर्भमें रहती हुई प्रकट भी हो जाती है। बाँसोंकी पारस्परिक रगड़से भी वनमें दावाग्नि भड़क उठती है।

पुनर्जन्मके सम्बन्धमें आत्मा जलचरोंकी योनिमें भी जाती हुई मानी गयी है। पृथ्वी, वनस्पतियों तथा ओषधियोंमें जीवात्माओंकी स्थिति अन्तःसंज्ञ है—ऐसा मनुस्मृति भी कहती है। इनके गर्भमें रहकर जीव पुनः मानव-योनिमें आता है, भोगयोनियोंके उपरान्त उसे मानव-योनिकी कर्मभूमि प्राप्त होती है—

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।
संसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः॥
(यजु० १२।३८)

इस मन्त्रके भी पूर्ववत् दो अर्थ हैं—एक अग्निपरक, दूसरा आत्मपरक। अग्नि भस्म होकर जलों तथा पृथ्वीकी योनियोंको प्राप्त होकर पुनः माताओंके साथ मिलती है और ज्योतिष्मान्, अर्थात् प्रज्वलित रूपमें उपस्थित हो जाती है। अग्निकी माताएँ, अर्थात् अग्निको जन्म देनेवाली ईंधन, लकड़ियाँ हैं, जल है, काष्ठ है, जैसा पहले लिख चुके हैं। आत्मा जब शरीरको छोड़ता है, तब शरीर तो भस्म हो जाता है, परंतु आत्मा मातादिको लिये हुए अपना कर्म

चला आता है। बौद्ध तथा जैन वेदोंको मान्यता नहीं देते, पर पुनर्जन्मका सिद्धान्त उनको भी स्वीकार है। चार्वाक मतवाले अवश्य भौतिकतावादी हैं। इस जन्म और इस लोकके अतिरिक्त वे न पुनर्जन्म मानते हैं, न किसी परलोककी सत्ता स्वीकार करते हैं। ईसाई तथा मुसलमान भी पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं करते। जर्मनीका प्रसिद्ध दार्शनिक इमेन्युल काण्ट ईसाई होते हुए भी आचारशास्त्रके आधारपर पुनर्जन्मको अप्रत्यक्षरूपसे मान्यता अवश्य दे गया। अब तो यूरोपीय देशोंमें कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद आदिके अध्ययनमें विशेष रुचि उत्पन्न हो रही है। कर्मसिद्धान्तका समाधान जैसा पुनर्जन्म करता है, वैसा अन्य किसी वादद्वारा हो भी नहीं सकता। ऋषियोंने तो इसका साक्षात् दर्शन कर लिया था। इसीलिये इतनी गहनतापर स्पष्टताके साथ वे इसका प्रतिपादन कर गये।

जन्मान्तर-रहस्य

(लेखक—पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र का० व्या० सां० स्मृ० तीर्थ)

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥
(गीता २। २७)

जन्म और मृत्युका रहस्य अत्यन्त गूढ़ है। वेदोंमें, दर्शनशास्त्रोंमें, उपनिषदोंमें तथा पुराणोंमें ऋषियोंने इस विषयपर विस्तृत विचार किया है। गीताके उपर्युक्त श्लोकसे यह ज्ञात होता है कि जन्म लेनेवालोंकी मृत्यु और मरनेवालोंका जन्म अवश्य होता है। भगवान्‌ने स्वयं इन दोनोंको ध्रुव बतलाया है।

इनमें पहला विषय तो प्रतिदिन प्रत्यक्ष ही देखा पड़ता है। इसलिये इसको सिद्ध करनेके लिये दूसरे प्रमाणकी अपेक्षा नहीं है। सांख्यशास्त्रके निर्माता महर्षि कपिलने तीन ही प्रमाण माने हैं—

यथा—'दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्। त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि॥'
(सांख्यकारिका ४)

पुनर्जन्मके विषयमें दृष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण तो कुछ मिलता नहीं, अनुमान भी इसीके ही आधारपर स्थित है। अतः जन्मान्तरके विषयमें आप्तवचन ही प्रमाण हो सकता है।

'आप्तपुरुष' वे ही कहे जाते हैं, जो क्लेशादिकोंसे रहित राग-द्वेषसे रहित होते हैं। इनमें अलौकिक वेदवाक्य, महर्षियों द्वारा लिखे हुए दर्शन, शास्त्र और वेदव्यासादि भगवान् भगवदवतारोंद्वारा लिखित पुराण और स्मृतियोंके वचन ही इसमें प्रमाण हो सकते हैं।

शास्त्रोंमें लिखा है—'अङ्गुष्ठमात्र पुरुष निश्चकर्ष यमो बलात्। पुण्येन स्वर्याति पापेन नरकं याति' इत्यादि। इस वाक्यमें अङ्गुष्ठ शब्द उपलक्षण है। इसका तात्पर्य है—बहुत छोटा। एक तो बहुत छोटा है, दूसरे यह अपार्थिव है, इसलिये इन पार्थिव नेत्रोंसे यह देखा नहीं पड़ता।

महर्षि कपिलने कहा भी है—

सूक्ष्मा मातापितृजाः सहप्रभूतैस्त्रिधा विशेषाः स्युः।
सूक्ष्मास्तेषां नियता मातापितृजा निवर्तन्ते॥
(सांख्यकारिका ३९)

'माता-पितासे उत्पन्न यह पार्थिव स्थूलशरीर है। इसके साथ ही त्रिगुणात्मक होनेसे तीन तरहके सूक्ष्मशरीर भी उत्पन्न होते हैं। मृत्यु होनेपर ये माता-पितासे उत्पन्न स्थूलशरीर अपने कारणोंमें विलीन हो जाते हैं; परन्तु सूक्ष्मशरीर तो नियत है, इसकी निवृत्ति ब्रह्मज्ञान होनेपर ही होती है।' और त्रिगुणात्मक होनेके कारण सत्त्वगुणप्रधान होनेसे अपने श्रेष्ठ योनि देवताओंको प्राप्त करता है, रजोगुण प्रधान होनेसे मनुष्ययोनिमें जन्म ग्रहण करता है एवं तमोगुणप्रधान होनेसे मूढयोनि पशु-पक्षी, कृमि-कीट और वृक्षयोनि पर्वत आदिमें उत्पन्न होता है।

गीताके १४ वें अध्यायके १८वें श्लोकमें लिखा है—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥

श्रीमद्भागवतमें कथा आती है कि विष्णुके पार्षद जय विजयको सनकादि ऋषियोंके शापसे तीन जन्म असुर देहोंमें जैसा रहना पड़ा था। महाराज युधिष्ठिरके पूछनेपर नारदजीने कहा था—

पुनर्जन्म

(लेखक—श्रीशिशिरकुमार सेन एम्०ए०, बी० एल्०, सम्पादक 'दूत')

एक सनातनधर्म ही संसारभरमें ऐसा धर्म है जो कर्मफल अथवा कर्मके अविनाशीस्वरूपसे उद्भूत एक स्वाभाविक सिद्धान्त 'जन्मों तथा अवगमनोंके पुनरावर्तन'के विषयमें पूरी जानकारी रखता तथा प्रदान करता है। संसारके अन्य धर्म-मत कर्मके अक्षय स्वरूपको तो मानते हैं; परंतु उसे मानते हैं केवल मृत्युके उपरान्त ही, न कि जन्मके पहले, जो तर्कसंगत नहीं है। यदि मृत्युके उपरान्त पुरस्कार अथवा दण्ड देनेके लिये कर्मका अविनाशी होना आवश्यक है तो जन्ममें दिखायी देनेवाली विषमताके स्पष्टीकरणके लिये क्या यह दस गुना अधिक आवश्यक नहीं है? संसारके धर्मोंको इसका उत्तर देना होगा।

> लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत ।
> यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ॥

'अव्यक्त कारणसे जीवकी सृष्टि होती है, जो बादमें अव्यक्त हो जाती है। इस संसारमें एक सजीव प्राणीका जन्म अदृश्य कर्मसे होता है।' इस जीवनमें प्रकट होकर अपने कर्मके प्रभावसे पुनः मृत्युको प्राप्त करके प्रच्छन्न हो जाता है। महान् शक्तिशाली इस कर्मसे ही प्रेरित होकर एक जीव ऐसे परिवारके माता पिताके यहाँ जन्म ग्रहण करता है, जहाँ वह अपने कर्मका अनुभव कर सके।

परंतु मूर्ख पापियोंके लिये अपने पापमार्गको साफ करनेकी चिन्तामें इस कर्मफलको अमान्य करनेके सिवा दूसरा चारा दिखायी नहीं देता, जिसे प्रायश्चित्तके उद्देश्यसे भोगना ही पड़ता है। इसीलिये जन्मों तथा अवगमनोंके कभी समाप्त न होनेवाले चक्करको अस्वीकार करना उन्हें आवश्यक हो जाता है। परंतु लगभग जीवनके हर मोड़पर जन्म तथा मृत्यु मनुष्यको घूरते हुए दिखायी देते हैं। अनेक उदाहरण ऐसे हैं, जो असंदिग्धरूपसे पूर्वजन्मोंके अस्तित्वको प्रमाणित करते हैं। उनके सम्बन्धमें अपनी अनभिज्ञता प्रकट करके उनकी व्याख्या करनेकी चेष्टा करना एक दुराग्रह मात्र होगा और उन्हें काल्पनिककी संज्ञा देना अपने आपको धोखा देनेका प्रयत्न है। नीचे हम उन सैकड़ों घटनाओंमेंसे कुछ उदाहरण दे रहे हैं।

हम विख्यात राजा भरतकी घटनासे ही प्रारम्भ करें, जो राजा रहूगणसे यों कहते हैं—

> अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः ।
> आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः ॥
> सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति ।
> अथो अहं जनसङ्गादसङ्गो विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि ॥
> (श्रीमद्भा० ५ । १२ । १४-१५)

'हे राजन्! पूर्वजन्ममें मैं भरत नामका राजा था। ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके विषयोंसे विरक्त होकर भगवान्‌की ही आराधनामें लगा रहता था, तो भी एक मृगमें आसक्ति हो जानेसे मुझे परमार्थसे भ्रष्ट होकर अगले जन्ममें मृग बनना पड़ा; किंतु भगवान् श्रीकृष्णजीकी आराधनाके प्रभावसे उस मृगयोनिमें भी मेरे पूर्वजन्मकी स्मृति लुप्त नहीं हुई। इसीसे अब मैं जन-संसर्गसे डरकर सर्वदा असङ्गभावसे गुप्तरूपसे विचरता रहता हूँ।'

हमारे पुराण, स्मृतियाँ तथा महाभारत पुनर्जन्मकी घटनाओंसे भरे पड़े हैं। उनकी प्राचीनताके कारण उन्हें एक पौराणिक गाथामात्रका रंग दिया जा सकता है। इसीलिये हमारे द्वारा समय-समयपर संगृहीत की गयी हालकी कुछ घटनाओंको हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

(१) बर्मी भाषामें बोलनेवाला अंग्रेजी सैनिक—

लन्दनसे प्रकाशित होनेवाले 'सण्डे एक्सप्रेस' नामक समाचारपत्रके माध्यमसे सन् १९३५ ई०में जार्ज कस्टर (George Castor) ने अपने कुछ गत अनुभवोंका वर्णन किया है। वह एक सैनिक था और उसका जन्म १८८९ ई०में हुआ था। अपने बचपनसे ही वह निद्रामें बोला करता था और उसके ऐसा बोलनेकी भाषा कुछ बर्मी होती थी। १९०७ ई०में वह सेनामें भरती हुआ। सन् १९०९ में २० वर्षकी अवस्थामें उसका स्थानान्तरण मेम्यो (बर्मा) में हो गया। वहाँ उसे ऐसा लगा कि वह उस भूमिसे भलीभाँति परिचित है, वहाँ रहा है, वहाँकी भाषा बोलता रहा है और इलाकेको जानता है। उसने अपने तात्कालिक सैनिक अधिकारी लैन्स कार्पोरल कैरीगन (Lance Corporal Carrigon) को बतलाया कि इस इलाकेमें कुछ दूर एक बड़ा पैगोडा है, जिसकी छोटी बगलमें उसके नीचे तहखानेमें एक भारी ढाल पड़ी हुई है और

'मेरी यह दृढ़ आस्था थी कि दक्षिण अमरीकाके कुछ भागोंसे मैं पूर्वपरिचित हूँ। मुझे यह बार-बार स्वप्न आया करता था कि मैं उष्णकटिबंधके जंगली प्रदेशमें एक अन्वेषकके रूपमें अकेला घूम रहा था कि सहसा काले रंगके लोगोंका एक झुंड प्रकट हुआ, जिनसे मैंने उनकी भाषामें बातचीत की, परंतु किसी कारणसे वे क्रुद्ध हो गये और उनके नेताने मुझे मार डाला। अन्ततोगत्वा मैं रायलमैन जहाजपर पाकशालाका भण्डारी बनकर दक्षिण अमरीका गया। वहाँ मुझे अज्ञात गलियों और भवनोंके नामोंका ठीक-ठीक पूर्वाभास होने लगा और रियो डे जेनेरो सान्टोज़ तथा बेनोस आइरेस (Rio de Janeiro, Santos and Buenos Aires) में घूमते समय मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि मैं निश्चित ही इन स्थानोंमें पैदल घूम चुका हूँ। एक समुद्री यात्रामें सेन्टोसमें हमारे जहाजपर एक डेनिश (Danish) लेखक सवार हुआ। उसने मुझे एक दिन अपने कक्षमें बुलाया और कहा—

'मिस्टर भण्डारी! आप एक विचित्र आकस्मिक संयोगके शिकार प्रतीत होते हैं, अथवा इससे भी कहीं अधिक आश्चर्यजनक कोई और बात हो सकती है।' इतना कहकर उसने मुझे एक नरकंकाल दिखाया, जिसे देखकर मैं सिहर उठा; क्योंकि उसमें अपनी आकृतिकी ठीक प्रतिकृति मुझे स्पष्ट दिखायी दे रही थी। उस खोपड़ीको उसने अमेज़नके मानवीय सिरोंका शिकार करनेवाले शिकारियोंसे प्राप्त किया था और एक गुप्त प्रक्रियासे उसके स्वाभाविक आकारसे उसे आधा कर दिया था। (Truth, Vol. IV, Page 394)

(५) बाजितपुर (फरीदपुर) के डाक-विभागके लिपिकका लड़का (एडवान्स १५।७।३६)

बाजितपुरके डाक-विभागके लिपिक (Clerk) का तीन वर्षका लड़का एक दिन चिल्लाने लगा तथा आग्रह करने लगा कि मैं अपने घर जाऊँगा। प्रश्न करनेपर उसने उत्तर दिया—

'मैं चटगाँवके पाहिरपुर कस्बेका निवासी हूँ। ल्हाम रेलवे स्टेशनसे एक सड़क मेरे गाँवको जाती है। वहाँ मेरे तीन पुत्र तथा चार पुत्रियाँ हैं। मेरे घरसे मेदरकी काली-बाड़ी बहुत अधिक दूर नहीं है। मेदरकी कालीबाड़ीमें ही सर्वानन्दने मुक्तिका अनुभव किया है। वहाँ कालीकी कोई प्रतिमा नहीं है। एक विशाल वटवृक्ष है, जिसकी जड़ोंपर ही पूजा की जाती है। वहींपर एक बहुत ऊँचा नारियलका पेड़ भी है।'

लड़केका बाप न तो कभी चटगाँव गया था और न ही ल्हाम रेलवे स्टेशन अथवा मेदरकी कालीबाड़ी देखी थी। कभी कभी लड़का ऐसे गीत गाया करता है, जिन्हें उसने कभी सुना ही नहीं। (Truth, Vol. V, Page 264)

(६) हंगरीकी एक लड़कीका अपने माता-पिताका विस्मरण

यह घटना १९३३ ई० की है, जब बुडापेस्टमें हंगरीके एक इंजीनियरकी १५ वर्षकी लड़की मृत्युशय्यापर पड़ी थी। प्रत्यक्षतः उसकी मृत्यु हो गयी; परंतु थोड़ी देर बाद वह कुछ ठीक होने लगी और हंगरीकी अपनी मातृभाषाको पूर्णतया भूलकर स्पेनकी भाषामें बातचीत करने लगी। वह अपने माता-पितातकको नहीं पहचान पायी, जिनके सम्बन्धमें यह कहने लगी—

'ये सम्भ्रान्त लोग मेरे प्रति अत्यन्त दयालुताका व्यवहार कर रहे हैं; परंतु इनका यह कथन मुझे मान्य नहीं है कि ये मेरे माता-पिता हैं।'

मेरा नाम सेनोरे ल्युसिड अल्टोरेज डी सैल्विओ (Senore Lucid Altoreze de Salvio) है। मैं मैड्रिडमें एक कारीगरकी पत्नी थी और मेरे १४ बच्चे थे। मैं कुछ बीमार थी और मेरी अवस्था ४० वर्षकी थी। कुछ दिन पूर्व मैं मर गयी थी, अथवा कम-से-कम मैं यह समझती थी कि मैं मर रही हूँ। अब मैं इस अपरिचित देशमें ठीक हो गयी हूँ।

वह अब स्पेनी भाषाके गीत गा रही है और विशिष्ट स्पेनी पकवान बना रही है तथा मैड्रिडका बड़ा विस्तृत और रोचक वर्णन कर रही है, जहाँ वह आजतक कभी गयी नहीं। (Truth, Vol. III, Page 135)

क्या ये सब घटनाएँ पुनर्जन्मके प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं? क्या ये जन्म और मरणके चक्करका तथ्य स्पष्ट उद्घोष नहीं करतीं?

अभी-अभीकी कुछ घटनाओंमें हम १९।६।४८ के 'अमृतबाजार पत्रिका' में प्रकाशित बोलपुरकी इस घटना-पर ध्यान दें—

एक अमरीकी मनोविज्ञान-चिकित्सक इस समय सीलोनमें पुनर्जन्मके सिद्धान्तके समर्थनमें तथ्योंका संग्रह करनेके उद्देश्यसे आया हुआ है। इसने पुनर्जन्मके सम्बन्धमें पहले ही एक पुस्तक प्रकाशित की है।

वर्जीनिया विश्वविद्यालयके मनोविज्ञानके चिकित्सा-विभागके प्राध्यापक इयान स्टीवेन्सन (Ian Stevenson) इस समय छः वर्षकी एक बालिकाकी घटनाकी जाँच-पड़ताल कर रहे हैं। उस बालिकाको यह स्मरण है कि अपने पूर्वजन्ममें वह एक सम्पन्न जौहरी-परिवारमें जन्मी थी। उसे इस बातकी भी स्मृति है कि उसका पिता उसे कोलम्बोके सेन्ट ब्रिजिट्स कानवेन्ट (St. Bridget Convent) में पढ़नेके लिये ले गया था, जहाँ उसने तीसरी कक्षातक शिक्षा पायी थी। जब वह तीसरी कक्षामें पढ़ती थी, तभी एक अस्पतालमें उसकी मृत्यु होनेकी उसे स्मृति है।

प्राध्यापक स्टीवेन्सन 'ट्वेन्टी केसेज सजेस्टिव ऑफ रिइनकार्नेशन' (Twenty Cases in Suggestive Reincarnation) पुस्तकके लेखक हैं।

परलोक-तत्त्व

(लेखक—श्रीशरत्कुमार चट्टोपाध्याय एम० ए०)

मृत्युके समय व्यक्तिकी वाक् आदि इन्द्रियाँ मनमें विलीन हो जाती हैं। उस समय वह मन-ही-मन विचार कर सकता है, परंतु बोल नहीं सकता। उसके बाद चक्षु-कर्ण आदि इन्द्रियाँ भी मनमें विलीन हो जाती हैं। उस समय वह देख नहीं पाता, सुन नहीं पाता। उसके बाद मन प्राणके भीतर विलीन हो जाता है, तब वह कुछ समझ नहीं पाता, केवल श्वास-प्रश्वास चलता है। प्राण जीवके भीतर अवस्थान करता है। जीव सूक्ष्म क्षिति, जल, तेज, वायु और आकाश-(अर्थात् पञ्च तन्मात्राओं) में अवस्थान करता है। हृदयदेशमें १०१ नाड़ियाँ निकली हैं। मृत्युके समय जीव एक नाड़ीसे प्रवेश करके देह त्याग करता है। ब्रह्म प्राप्त करनेवाला जीव जिस नाड़ीसे प्रवेश करता है, वह नाड़ी हृदयसे मस्तकतक गयी है। जो ऐसे प्राप्त नहीं करते, वे जीव किसी दूसरी नाड़ीसे प्रवेश करते हैं। जीव जबतक नाड़ीमें प्रवेश नहीं करता, तबतक विद्वान् और अविद्वान्की गति एक ही तरहकी होती है। उसके बाद भिन्न प्रकारकी गति हो जाती है। श्रीशंकराचार्यजी कहते हैं कि

होते हैं; और जो लोग निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करके ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त करते हैं, वे लोग देवयान पथमें नहीं जाते। अग्निके संयोगसे जब स्थूलशरीर भस्म हो जाता है, उस समय सूक्ष्मशरीर भस्म नहीं होता। मृत्युके बाद देहका कोई स्थान उष्णतासे अनुभव होता है और जिस स्थानसे सूक्ष्मशरीर देह त्याग करता है, वही स्थान गरम जान पड़ता है।

जिसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया है, उसकी मृत्यु उत्तरायण या दक्षिणायनमें होनेपर भी उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। भीष्मपितामहने जो उत्तरायणकी प्रतीक्षा की थी, वह तो आचारका पालन करनेके लिये तथा यह दिखलानेके लिये की थी कि वे 'स्वेच्छामृत्यु' हैं। गीतामें श्रीभगवान्ने कहा है—

श्रीरामानुज स्वामीने देवयान पथका इस प्रकार वर्णन किया है—(१) अग्निदेवताका अधिकृत देश (२) दिवस-देवता (३) शुक्लपक्ष (४) उत्तरायण (५) वत्सर (६) वायु और (७) आदित्य। देवयान पथ—इन सब देवताओंके अधिकृत देशोंमें होकर जाता है। उसके बाद (८) चन्द्र (९) विद्युत् (१०) वरुण (११) इन्द्र (१२) प्रजापति (१३) ब्रह्म। जो लोग ईश्वरकी पूजा करते हैं, वे इस पथसे जाते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता; परंतु जो लोग ईश्वरकी पूजा नहीं करते, बल्कि कूप-तड़ाग-निर्माण तथा दान आदि पुण्यकर्म करते हैं, वे इस पथसे नहीं जाते। वे पितृयाण पथसे जाते हैं और उनका पुनर्जन्म होता है। पितृयाण पथसे भी चन्द्रलोक जाना पड़ता है; किंतु मार्ग भिन्न है। उनका पथ धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन है—अर्थात् ये सब देवता उनको अपने अधिकृत स्थानके मध्यमें ले जाते हैं। चन्द्रलोकसे ये लोग मेघमें उतरते हैं, मेघसे वृष्टिके साथ पृथिवीपर आते हैं, पृथिवीपर शस्यके भीतर प्रवेश करते हैं, उसके बाद शस्यको खानेवाले पुरुषके देहमें प्रवेश करते हैं। पुरुषके देहसे उसके शुक्रके साथ रमणीके गर्भमें प्रवेश करते हैं। तत्पश्चात् पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार मनुष्य या पशुदेहको प्राप्त होते हैं। चन्द्र कभी तो खूब गरम रहते हैं और कभी अतिरिक्त शीतल हो जाते हैं। यहाँ स्थूलशरीरयुक्त मनुष्य रह नहीं सकता, परंतु सूक्ष्मदेह, जो परलोकमें जाता है, वह चन्द्रमें रह सकता है।

जो ईश्वरकी पूजा नहीं करते, परोपकार भी नहीं करते; जो केवल इन्द्रिय-सुख-भोगमें जीवन व्यतीत करते हैं, वे लोग न तो देवयान पथसे जाते हैं और न पितृयाण पथसे। वे कीट-पतङ्ग होकर यहीं बारबार जन्मते-मरते रहते हैं।

जो लोग अधिक पाप करते हैं, वे मृत्युके बाद नरकमें जाते हैं। नरकोंका वर्णन पुराणोंमें मिलता है। पापोंके तारतम्यके अनुसार नरकमें कम या अधिक यन्त्रणा भोगनी पड़ती है तथा कम या अधिक समयतक रहना पड़ता है। किंतु किसीको भी नरकमें सदा नहीं रहना पड़ता। नरकमें दुःख-भोगके द्वारा पापक्षय हो जानेपर पापी पुनः मनुष्यदेहको प्राप्त होकर तथा सत्-जीवन यापन करके उन्नति प्राप्त करनेका शुभअवसर पाता है। ईसाई-धर्मकी अनन्त स्वर्ग तथा अनन्त नरककी कल्पना युक्तिपूर्ण नहीं है। पुनर्जन्म माने बिना इस प्रकारकी कल्पना अनिवार्य हो जाती है। विशेषरूपसे ईसाई-मतकी यह कल्पना कि जो लोग यीशु ख्रीष्टमें (ईसामें) विश्वास करेंगे, उन्हें अनन्त स्वर्ग मिलेगा और जो विश्वास नहीं करेंगे, उनको अनन्त नरक मिलेगा—अत्यन्त असंतोषप्रद है। हिंदूधर्मका सिद्धान्त यह है कि विश्वास चाहे जिसमें करो, जो आदमी सत्कर्म करेगा, उसको स्वर्ग मिलेगा और जो असत्कर्म करेगा, उसको नरक-वास करना पड़ेगा तथा कर्मके गुरुत्वके अनुसार स्वर्ग या नरकमें अल्प या दीर्घकालतक रहना पड़ेगा—यह सिद्धान्त पूर्णतया युक्तियुक्त है। ईसाई और मुसलमानोंके धर्मकी एक और असंतोषप्रद कल्पना यह है कि 'मृत्युके बाद आत्मा देहके साथ कब्रमें रहेगी। प्रलयके शेष दिन ईसु बाँसुरी बजायेंगे और उसे सुनकर सब आत्माएँ अपने-अपने देहके साथ कब्रसे उठकर आयेंगी।' हिंदूधर्मका सिद्धान्त यह है कि 'मृत्युके बाद इस देहके साथ आत्माका सम्बन्ध नहीं रहता, इसलिये जहाँतक हो सके, शीघ्र देहको अग्निसे दग्ध कर देना चाहिये। श्राद्धके समय जो अन्न-पान आदि निवेदित होते हैं, वे मन्त्र और श्रद्धाके प्रभावसे परलोकवासी आत्माके पास पहुँचते हैं, जैसे पोस्ट आफिसमें रुपया जमा करके उसे उद्दिष्ट व्यक्तिके पास भेजा जाता है। वह यदि पुण्यवान् व्यक्ति होता है तो वह श्राद्धके समय वहाँ अवस्थान करता है। यदि उसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति हो गयी होती है तो वह मनुष्य या पशु—चाहे जिस योनिमें जन्म ग्रहण करे, सद्गुरुओंसे अन्नके रूपमें श्राद्धका अन्न उसके पास पहुँच जायगा।'

किस पुण्यसे कौनसे श्रेष्ठ फल या सुखकी प्राप्ति होती है

दानाद् भोगमवाप्नोति सौख्यं तीर्थस्य सेवया। शुभाभाषणात् मृतो यस्तु विप्रोऽथ धर्मवित्तमः ॥

(पद्मपुराण—१।१४।१८)

दान करनेवाला प्राणी परलोक एवं (अगले) पुनर्जन्ममें अनेक भोगोंको प्राप्त करता है, तीर्थसेवन करनेवाला स्वर्गसुख पाता है और मीठा तथा हितकर सुन्दर वचन बोलनेवाला मनुष्य अगले जन्मोंमें बड़ा विद्वान् एवं धर्मके रहस्योंको जाननेवाला होता है।

है। जीव अपने किये हुए कर्म-प्रारब्धके अनुसार इस जन्ममें सुख-दुःख भोग करता है। मृत्युके बाद पाप और पुण्यके वश नरककी यन्त्रणा या स्वर्गका सुख भोगनेके पश्चात् संचित (अवशिष्ट) कर्मफलके भोगके लिये फिर संसारमें आकर विभिन्न योनियोंमें जन्म लेता है। जड देहमें बारंबार रोग-शोक, जरा-मृत्यु, सुख-दुःखकी शृङ्खलामें आबद्ध होकर आवागमनके चक्रमें भटका करता है। इससे त्राण पानेका एकमात्र उपाय है—वर्णाश्रम-धर्मको मानकर अपने-अपने अधिकारके अनुसार निष्कामभावसे शास्त्र-निर्दिष्ट मार्गमें नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मोंको प्रवाह-पतितवत् करते जाना। इससे पाप-पुण्य, सुकृत-दुष्कृतका अतिक्रमण करके, भगवद्-दर्शन प्राप्त कर जीव अमृतका अधिकारी हो जाता है। संसारके और किसी धर्ममें क्रम-मुक्तिका इस प्रकारका उपाय नहीं है। भारत और वर्णाश्रमी भारती-जातिसे आबाद द्वीपों तथा बृहत्तर भारतको छोड़कर अन्य किसी भी देशमें मोक्षकी कल्पना भी नहीं थी। हम इस लेखमें केवल सेमिटिक मतकी संक्षेपमें आलोचना करेंगे।

सेमिटिक एकजन्मवाद

सेमिटिक (Semitic) अर्थात् यहूदी, ईसाई और मुस्लिम मतकी कुछ विशेषताएँ यहाँ संक्षेपमें दिखलायी जाती हैं।

(१) यहूदी पुराण (Torah और Old Testament) या शास्त्रमें परलोकका कोई उल्लेख नहीं है। इस जन्मके कृतकर्मोंका फलभोग इसी जन्ममें होता है।

(२) मनुष्यजातिके पुरुषके सिवा अन्य किसी जीवकी, यहाँतक कि नारीकी भी आत्मा नहीं होती। मनुष्यका इस लोकमें केवल एक बार जन्म होता है। सर्वव्यापी ब्रह्मकी कोई कल्पना भी नहीं है। यहूदीके 'यहोवा' (Yahveh or Jehovah), ईसाईके 'गाड' (God) और मुस्लिमके 'अल्लाह' (Allah) 'ईश्वर' हैं। वे पुरुष हैं और स्वर्गमें रहते हैं। उनका अवतार नहीं होता। स्वर्गमें और कोई देवता नहीं और न कोई देवी है।

(३) यहूदी-मतसे ईश्वरके प्रेरित दूत मसीहा (Messiah) भविष्यमें पृथ्वीपर आयेंगे। ईसाइयोंके मतसे यह मसीहा ईसा (Jesus) हैं। वे ईश्वरके पुत्र हैं और पृथ्वीपर अवतीर्ण हो गये हैं। मुस्लिमोंके मतसे मुहम्मद ईश्वरके दूत (अल्लाहके पैगम्बर) हैं।

ईसाई-समाजमें, रोमन कैथलिक और पूर्वदेशीय ग्रीक चर्च आदिमें ईसाकी कुमारी माता (Virgin) मेरी (Mary) की उपासना होती है। परंतु 'मेरी' ईश्वरकी महाशक्ति या महामाया नहीं हैं। उनकी पूजा भी पहले नहीं थी[1]। पाँचवीं शताब्दीमें मिश्रके आइसिस् (Isis) और ग्रीक आर्टेमिस् (Artemis) आदि देवीकी उपासनाके अनुकरणमें पहले-पहल प्रवर्तित हुई। प्रोटेस्टैण्ट और दूसरे ईसाई देवीकी उपासना नहीं करते।[2]

मुस्लिम-स्वर्गमें कोई देवी नहीं है। जान पड़ता है कि किसी स्त्रीको वहाँ प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।

(४) ईसाई और मुस्लिमके मतसे आत्मा और देहका सम्बन्ध प्रायः अविच्छेद्य है। इसी कारण मिश्रदेशके 'ममी' के अनुकरणमें मृतदेहको दाह न करके शव-देहके उपयुक्त आकारकी शव-पेटिका कफन (Coffin) में सुरक्षित कर

1. The council of Ephesus, in that year (431) sanctioned or Mary the title 'Mother of God.' *Gradually the tenderest features of Astette, Cybele, Artemis, Diana and Isis were gathered together in the worship of Mary.* (Dr. Durant, The Age of Faith, P. P. 745- 46.)

'Statues of Horus and Isis were renamed Jesus and Mary.' (Ibid. P. 75)

एफिसस् नगरके धर्मपरिषद्में ४३१ ई० में मेरीके लिये 'ईश्वरकी जननी' उपाधि अनुमोदित हुई थी। क्रमशः आस्तार्त, सिबिलि, आर्टेमिस, डायना और आइसिस देवीके कोमलतम वैशिष्ट्य मेरीकी उपासनाके अङ्गीभूत हो गये।' 'होरस और आइसिसकी प्रतिमाओंको ईसा और मेरी नवीन नाम दिया गया।'

The identification of Mary with Isis, and her elevation to a rank quasi-divine, × × × was also a very natural step."

—(H. G. Wells, The Outline of History, p. p. 363–69)

'आइसिस देवीके साथ मेरीका एकीकरण तथा उनका प्रायः देवीके पदमें उन्नयन भी एक बहुत ही स्वाभाविक परिणति थी।'

2. "Note the absence of mother goddesses in such strongly patriarchal societies as Judea, Islam and Protestant Christendom." (Durant, *"Life of Greece"* p. 172, F. n.)

'यहूदी, इस्लाम और प्रोटेस्टेंट ईसाइयोंके अत्यन्त कठोर पितृ-प्रधान समाजमें मातृरूपिणी देवीका अभाव ध्यान देने योग्य विषय है।'

है। जीव अपने किये हुए कर्म-प्रारब्धके अनुसार इस जन्ममें सुख-दुःख भोग करता है। मृत्युके बाद पाप और पुण्यके वश नरककी यन्त्रणा या स्वर्गका सुख भोगनेके पश्चात् संचित (अवशिष्ट) कर्मफलके भोगके लिये फिर संसारमें आकर विभिन्न योनियोंमें जन्म लेता है। जड देहमें बारंबार रोग-शोक, जरा-मृत्यु, सुख-दुःखकी शृङ्खलामें आबद्ध होकर आवागमनके चक्रमें भटका करता है। इससे त्राण पानेका एकमात्र उपाय है—वर्णाश्रम-धर्मको मानकर अपने-अपने अधिकारके अनुसार निष्कामभावसे शास्त्र-निर्दिष्ट मार्गसे नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मोंको प्रवाह-पतितवत् करते जाना। इससे पाप-पुण्य, सुकृत-दुष्कृतका अतिक्रमण करके, भगवद्-दर्शन प्राप्त कर जीव अमृतका अधिकारी हो जाता है। संसारके और किसी धर्ममें क्रम-मुक्तिका इस प्रकारका उपाय नहीं है। भारत और वर्णाश्रमी भारती-जातिसे आबाद द्वीपों तथा बृहत्तर भारतको छोड़कर अन्य किसी भी देशमें मोक्षकी कल्पना भी नहीं थी। हम इस लेखमें केवल सेमिटिक मतकी संक्षेपमें आलोचना करेंगे।

सेमिटिक एकजन्मवाद

सेमिटिक (Semitic) अर्थात् यहूदी, ईसाई और मुस्लिम मतकी कुछ विशेषताएँ यहाँ संक्षेपमें दिखलायी जाती हैं।

(१) यहूदी पुराण (Torah और Old Testament) या शास्त्रमें परलोकका कोई उल्लेख नहीं है। इस जन्मके कृतकर्मोंका फलभोग इसी जन्ममें होता है।

(२) मनुष्यजातिके पुरुषके सिवा अन्य किसी जीवकी, यहाँतक कि नारीकी भी आत्मा नहीं होती। मनुष्यका इस लोकमें केवल एक बार जन्म होता है। गर्भान्तरी प्रश्नकी कोई कल्पना भी नहीं है। यहूदीके 'यहोवा' (Yahveh or Jehovah), ईसाईके 'गाड' (God) और मुस्लिमके 'अल्लाह' (Allah) 'ईश्वर' हैं। वे पुरुष हैं और स्वर्गमें रहते हैं। उनका अवतार नहीं होता। स्वर्गमें और कोई देवता नहीं और न कोई देवी है।

(३) यहूदी-मतसे ईश्वरके प्रेरित दूत मसीहा (Messiah) भविष्यमें पृथ्वीपर आयेंगे। ईसाइयोंके मतसे वह मसीहा ईसा (Jesus) हैं। वे ईश्वरके पुत्र हैं और पृथ्वीपर अवतीर्ण हो गये हैं। मुस्लिमके मतसे महम्मद ईश्वरके दूत (अल्लाहके पैगम्बर) हैं।

ईसाई-समाजमें, रोमन कैथलिक और पूर्वदेशीय ग्रीक चर्च आदिमें ईसाकी कुमारी माता (Virgin) मेरी (Mary) की उपासना होती है। परंतु 'मेरी' ईश्वरकी महाशक्ति या महामाया नहीं हैं। उनकी पूजा भी पहले नहीं थी[1]। पाँचवीं शताब्दीमें मिश्रके आइसिस् (Isis) और ग्रीक आर्तेमिस् (Artemis) आदि देवीकी उपासनाके अनुकरणमें पहले-पहल प्रवर्तित हुई। प्रोटेस्टैण्ट और दूसरे ईसाई देवीकी उपासना नहीं करते।[2]

मुस्लिम-स्वर्गमें कोई देवी नहीं है। जान पड़ता है कि किसी स्त्रीको वहाँ प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है।

(४) ईसाई और मुस्लिमके मतसे आत्मा और देहका सम्बन्ध प्रायः अविच्छेद्य है। इसी कारण मिश्रदेशके 'ममी'के अनुकरणमें मृतदेहको दाह न करके शव-देहके उपयुक्त आकारकी शव-पेटिका कफन (Coffin) में सुरक्षित कर

---

1. The council of Ephesus, in that year (431) sanctioned or Mary the title 'Mother of God.' Gradually the tenderest features of Asterte, hybele, *Artemis, Diana and Isis were gathered together in the* worship of Mary. (Dr. Durant, The Age of Faith, P. P. 745- 46.)

'Statues of Horus and Isis were renamed Jesus and Mary.' (Ibid. P. 75)

'एफिसस् नगरके धर्मपरिषद्में ४३१ ई० में मेरीके लिये 'ईश्वरकी जननी' उपाधि अनुमोदित हुई थी। क्रमशः अस्टार्टे, सिबिलि, आर्टेमिस, डायना और आइसिस देवीके कोमलतम वैशिष्ट्य मेरीकी उपासनाके अङ्गीभूत हो गये।' 'होरस और आइसिसकी मूर्तियोंको ईसा और मेरी नवीन नाम दिया गया।'

The identification of Mary with Isis, and her elevation to a rank quasi-divine, x x x was also a very natural step."

—(H. G. Wells, The Outline of History, p. p. 363–67)

'आइसिस देवीके साथ मेरीका एकीकरण तथा उनका प्रायः देवीके समकक्ष उन्नयन भी एक बहुत ही स्वाभाविक परिणति थी।'

2. "Note the absence of mother goddesses in such strongly patriarchal societies as Judea, Islam and Protestant Christendom." (Durant, "Life of Greece" p. 172, F. n.)

'यहूदी, इस्लाम और प्रोटेस्टेंट क्रिश्चियनिटीके प्रबल पितृ-शासित समाजमें मातृदेवियोंके विशेष अभाव पर ध्यान दिया जाय।'

मोक्ष तथा अवतारवादके सिद्धान्तकी घोषणा स्पष्टाक्षरोंमें की है। सूत्ररूपमें यहाँ उसमेंसे कुछ दिया जाता है—

(१) जन्मान्तर—जन्म लिये हुए व्यक्तिकी मृत्यु तथा मृत व्यक्तिका जन्म निश्चित है।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'
(गीता २ । २७)

'देहाभिमानी जीवका जैसे इस एक स्थूलदेहमें शैशव, यौवन और वार्द्धक्य होता है—देहिनोऽस्मिन्' इत्यादि (गीता २ । १३), 'मनुष्य जैसे जीर्ण वस्त्र त्याग करके नवीन वस्त्र ग्रहण करता है। देहान्तरकी प्राप्ति भी वैसे ही होती है—'वासांसि जीर्णानि' इत्यादि (गीता २ । २२)। 'हमलोगोंके बहुत-से जन्म हो चुके हैं—बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि' इत्यादि (गीता ४ । ५)।

(२) परलोक—'मृत्युके समय जो कुछ चिन्तन करता हुआ मनुष्य देह त्याग करता है, परलोक भी तदनुसार ही प्राप्त होता है।' (यं यं वापि—इत्यादि गीता ८ । ६) 'मृत्युके समय सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण जिसकी उस समय वृद्धि होगी, उसीके अनुसार यथाक्रम उत्तम ऊर्ध्वलोक, कर्मासक्त मनुष्यलोक अथवा पशु-पक्षी आदिकी निम्न योनिमें जन्म होता है।' ('यदा सत्त्वे' इत्यादि गीता १८ । १४–१६)। 'देवताओंकी पूजा करनेवाले अनित्य देवताओंको, पितरोंकी पूजा करनेवाले पितरोंको, भूतोंके उपासक भूतोंको और मेरे उपासक अक्षय आनन्दस्वरूप मुझको प्राप्त होते हैं।' ('यान्ति देवव्रताः' इत्यादि, गीता ९ । २५)। 'द्वेषकारी, क्रूर, नराधम, अशुभकर्मा लोगोंको जन्म-मृत्यु-पथमें आसुरी अर्थात् व्याघ्र-सर्प आदि और कृमि-कीटादि योनियोंमें अनवरत मैं डालता हूँ।' ('तानहं द्विषतः' इत्यादि गीता १६ । १९-२०)।

'वैदिक क्रियापरायण लोग यज्ञद्वारा निष्पाप होकर स्वर्गमें जाते हैं। विपुल भोगके पश्चात् पुण्यक्षीण होनेपर पुनः मर्त्यलोकमें पवित्र और धनवान् या योगीके कुलमें जन्म-ग्रहण करते हैं।' ('त्रैविद्या मां' इत्यादि गीता ९ । २०-२१ तथा 'योगिनो,कुले॰' इत्यादि गीता ६ । ४१–४२)

(३) मुक्ति—'अनेक जन्मकी योग-साधनासे सिद्ध, निष्पाप, भगवान् पुरुष मुझको अर्थात् मेरी समानताको प्राप्त होते हैं।' ('अनेकजन्मसंसिद्धः'—गीता ६ । ४५); ('बहूनां जन्मनाम्' गीता ७ । १९)। 'शुक्ल और कृष्ण—दो गति हैं, एकसे संसारमें लौटना नहीं होता, दूसरेसे लौटना पड़ता है' ('यत्र काले' इत्यादि, गीता ८ । २३-२४)। 'दैवी और आसुरी सम्पत्तिमें प्रथम मोक्षका हेतु है और दूसरी संसार-बन्धनका हेतु है।' ('दैवी' इत्यादि, गीता १६ । ५)। 'मनीषी लोग कर्मजन्य फलका त्याग करके जन्म-बन्धनसे मुक्त होकर अनामय मोक्षपदको प्राप्त होते हैं।' ('कर्मजं' इत्यादि, गीता २ । ५१)।

(४) अवतार—'मैं जन्मरहित होकर भी साधुवृन्दकी रक्षा और पापीलोगोंका विनाश करनेके लिये अपनी मायाके द्वारा धर्मकी संस्थापनाके लिये युग-युगमें अवतीर्ण होता हूँ।' (गीता ४ । ६–८)।

पाश्चात्त्यमत—ऋग्वेदमें जन्मान्तर और मोक्षवाद नहीं है

बहुत-से पाश्चात्त्य लोगोंका मत है कि ऋग्वेदमें जन्मान्तरकी और मोक्षकी बात नहीं है। यह बात परवर्ती युगमें हिंदू-धर्म-दर्शनने प्रविष्ट की गयी है।

वेबर (Weber १८५१) कहते हैं कि यह बात पहले-पहल छान्दोग्य उपनिषद्में मिलती है। बृहदारण्यक उपनिषद्में भी तदनुरूप उल्लेख है।

मैकडोनेल (Macdonell १९००) साहबने द्वारा प्रकट किया है कि 'इस मतवादके ग्रहण करनेका फल यह हुआ है कि वैदिक आशावाद, जो पहले स्वर्गमें चिरस्थायी सुखकी आशा करता था, वह एक मृत्युसे दूसरी मृत्युके बीच निःसीम दुःखमय जीवन प्रवाहके एक विषादमय दृश्यमें परिवर्तित हो गया। × × × ऋग्वेदमें इस विषयका (जन्मान्तरका) कोई संकेत भी नहीं मिलता। केवल अन्तिम मण्डलमें दो स्थलोंमें मृत आत्माके जल या उद्भिज्जमें जानेकी बात पायी जाती है। × × × सम्भवतः आर्य औपनिवेशिक लोगोंने भारतके आदिम निवासियोंसे इस विषयको ग्रहण किया जान पड़ता होगी। मोक्षके तत्त्व सभी दर्शनोंमें है। मोक्षका सिद्धान्त देहान्तर-प्राप्तिके सिद्धान्तके समान ही प्राचीन है। मोक्षमें जन्मान्तरकी समाप्ति हो जाती है।

4. By the acceptance of this doctrine, the Vedic optimism, which looked forward to a life of eternal happiness in heaven, was transformed into the gloomy prospect of an interminable

मोक्ष तथा अवतारवादके सिद्धान्तकी घोषणा स्पष्टाक्षरोंमें की है। सूत्ररूपमें यहाँ उनमेंसे कुछ दिया जाता है—

(१) जन्मान्तर—जन्म लिये हुए व्यक्तिकी मृत्यु तथा मृत व्यक्तिका जन्म निश्चित है।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'
(गीता २ । २७)

'देहाभिमानी जीवका जैसे इस एक स्थूलदेहमें शैशव, यौवन और वार्द्धक्य होता है—देहिनोऽस्मिन्' इत्यादि (गीता २ । १३), 'मनुष्य जैसे जीर्ण वस्त्र त्याग करके नवीन वस्त्र ग्रहण करता है। देहान्तरकी प्राप्ति भी वैसे ही होती है—'वासांसि जीर्णानि' इत्यादि (गीता २ । २२)। 'हमलोगोंके बहुत-से जन्म हो चुके हैं—बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि' इत्यादि (गीता ४ । ५)।

(२) परलोक—'मृत्युके समय जो कुछ चिन्तन करता हुआ मनुष्य देह त्याग करता है, परलोक भी तदनुसार ही प्राप्त होता है।' (यं यं वापि—इत्यादि गीता ८ । ६) 'मृत्युके समय सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण जिसकी उस समय वृद्धि होगी, उसीके अनुसार यथाक्रम उत्तम ऊर्ध्वलोक, कर्मासक्त मनुष्यलोक अथवा पशु-पक्षी आदिकी निम्न योनिमें जन्म होता है।' ('यदा सत्त्वे' इत्यादि गीता १८ । १४–१६)। 'देवताओंकी पूजा करनेवाले अनित्य देवताओंको, पितरोंकी पूजा करनेवाले पितरोंको, भूतोंके उपासक भूतोंको और मेरे उपासक अक्षय आनन्दस्वरूप मुझको प्राप्त होते हैं।' ('यान्ति देवव्रताः' इत्यादि, गीता ९ । २५)। 'द्वेषकारी, क्रूर, नराधम, अशुभकर्मा लोगोंको जन्म-मृत्युपथमें आसुरी अर्थात् व्याघ्र-सर्प आदि और कृमि-कीटादि योनियोंमें अनवरत मैं डालता हूँ।' ('तानहं द्विषतः' इत्यादि गीता १६ । १९-२०)।

'वेदोक्त क्रियापरायण लोग यज्ञद्वारा निष्पाप होकर स्वर्गमें जाते हैं। विपुल भोगके पश्चात् पुण्यक्षीण होनेपर पुनः मर्त्यलोकमें पवित्र और धनवान् या योगीके कुलमें जन्म-ग्रहण करते हैं।' ('त्रैविद्या मां' इत्यादि गीता ९ । २०-२१ तथा 'योगिनां कुले०' इत्यादि गीता ६ । ४१–४२)

(३) मुक्ति—'अनेक जन्मकी योग-साधनासे सिद्ध, निष्पाप, ज्ञानवान् पुरुष मुझको अर्थात् मेरी परमगतिको प्राप्त होते हैं।' ('अनेकजन्मसंसिद्धः'—गीता ६ । ४५); ('बहूनां जन्मनाम्' गीता ७ । १९)। 'शुक्ल और कृष्ण—दो गति हैं, एकसे संसारमें लौटना नहीं होता, दूसरेसे लौटना पड़ता है' ('यत्र काले' इत्यादि, गीता ८ । २३-२४)। 'दैवी और आसुरी सम्पत्तिमें प्रथम मोक्षका हेतु है और दूसरी संसार-बन्धनका हेतु है।' ('दैवी' इत्यादि, गीता १६ । ५)। 'मनीषी लोग कर्मजन्य फलका त्याग करके जन्म-बन्धसे मुक्त होकर अनामय मोक्षपदको प्राप्त होते हैं।' ('कर्मजं' इत्यादि, गीता २ । ५१)।

(४) अवतार—'मैं जन्मरहित होकर भी साधुवृन्दकी रक्षा और पापीलोगोंका विनाश करनेके लिये अपनी मायाके द्वारा धर्मकी संस्थापनाके लिये युग-युगमें अवतीर्ण होता हूँ।' (गीता ४ । ६–८)।

पाश्चात्त्यमत—ऋग्वेदमें जन्मान्तर और मोक्षवाद नहीं है

बहुत-से पाश्चात्त्य लोगोंका मत है कि ऋग्वेदमें जन्मान्तरकी और मोक्षकी बात नहीं है। यह बात परवर्ती युगमें हिंदू-धर्म-दर्शनमें प्रविष्ट की गयी है।

वेबर (Weber १८५१) कहते हैं कि यह बात पहले-पहल छान्दोग्य उपनिषद्में मिलती है। बृहदारण्यक उपनिषद्में भी तदनुरूप उल्लेख है।

मैकडॉनेल (Macdonell १९००) साहबने दुःख प्रकट किया है कि 'इस मतवादके ग्रहण करनेका फल यह हुआ है कि वैदिक आशावाद, जो पहले स्वर्गमें चिरस्थायी सुखकी आशा करता था, वह एक मृत्युसे दूसरी मृत्युके बीच निःसीम दुःखमय जीवन-प्रवाहके एक विषादमय दृश्यमें परिवर्तित हो गया। × × × ऋग्वेदमें इस विषयका (जन्मान्तरका) कोई संकेत भी नहीं मिलता। केवल अन्तिम मण्डलमें दो स्थलोंमें मृत आत्माके जल या उद्भिज्जमें जानेकी बात कही गयी है। × × × सम्भवतः आर्य औपनिवेशिकोंने भारतके आदिम निवासियोंसे इस विषयकी प्रथम शिक्षा प्राप्त की होगी। मोक्षके तत्त्व सभी दर्शनोंमें हैं। मोक्षका सिद्धान्त देहान्तर-प्राप्तिके सिद्धान्तके समान ही प्राचीन है। मोक्षसे जन्मान्तरकी समाप्ति हो जाती है'[4]।

---

4. By the acceptance of this doctrine, the Vedic optimism, which looked forward to a life of eternal happiness in heaven, was transformed into the gloomy prospect of an interminable

आपको उत्तम सुख प्राप्त हो। स्वर्गभोगके बाद आप पाप (अवद्य) त्याग करके पुनः पृथिवीपर आकर उत्तम देह धारण करें। अर्थात् जन्म ग्रहण करें।'

(४) 'सूर्यं चक्षुर्गच्छतु' इत्यादि। (ऋ० १०।१६।३)

शवदाहके बाद यह मन्त्र पढ़ा जाता है। जन्मान्तर और पुनर्जन्मकी बात इसमें स्पष्टरूपमें कही गयी है। 'परलोकगत आत्माने अपने कर्मोंके द्वारा जिस स्वर्गादि लोकको प्राप्त किया है, वहीं वह गमन करे। उसके नेत्र सूर्यमें गमन करें। इसके बाद जल और ओषधि अथवा शस्यके माध्यमसे नये माता-पिताके शरीरमें आत्मा प्रवेश करके नये शरीरमें प्रतिष्ठित हो जाय।'

मोक्षका प्रसङ्ग

(५) 'त्र्यम्बकं यजामहे' इत्यादि। (ऋ० ७।५९।१२)

इस मन्त्रसे महादेवकी पूजा होती है। हलायुधकृत 'ब्राह्मणसर्वस्व' में इसकी व्याख्या है। 'उर्वारुक (ककड़ी) जैसे पकनेपर अपने आप वृन्तसे टूट पड़ती है, उसी प्रकार हम शिवजीकी उपासनाके द्वारा श्रेय प्राप्त करें तथा संसारके बन्धन अर्थात् जन्म-मृत्युके पाशसे मुक्त होकर अमृतत्व प्राप्त करें।'

देवयान और पितृयाण

श्रीभगवान्‌ने गीताके अष्टम अध्यायमें 'अक्षर ब्रह्मयोग' का उपसंहार करते हुए कुछ श्लोकों (८। २३–२८) में जन्म-मृत्युके पथसे अनावृत्ति प्राप्त करनेके उपायको विशद रूपसे बतलाया है।

(१) जो लोग ब्रह्ममें संलीन हैं, वे तत्काल मुक्ति प्राप्त करते हैं। उनके प्राणका उत्क्रमण नहीं होता—

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति। (बृह० ४।४।६)

(२) देवयान, देवपथ, ब्रह्मपथ, शुक्लगति तथा अर्चि आदि मार्ग—इतर विद्याके अभ्यासी जो सगुण ब्रह्मके उपासक हैं, जिनकी चित्तशुद्धि हो गयी है, कृष्ण निर्विकल्प समाधिमें या गृहस्थमें धारणा करते हैं किंतु जो ब्रह्मविद् हैं—इस प्रकारके ब्रह्मसाक्षात्कारी नहीं हुए हैं, उनकी मृत्युके अनन्तर जब प्राण नाड़ीसे उत्तर दिशामें पहुँचता है, तब एक ज्योति प्रकाशित होती है और प्राण सुषुम्ना नाड़ीमें प्रवेश करके मूर्धस्थित ब्रह्मरन्ध्रसे बहिर्गत होकर ऊर्ध्व गतिको प्राप्त होता है। अर्चिः आदि मार्ग अग्नि और ज्योतिका मार्ग है। क्रमशः अर्चिःके अभिमानी, दिवसके अधिष्ठाता, आपूर्यमाण पक्ष (शुक्ल पक्ष), उत्तरायण तथा संवत्सरके अभिमानी देवता उसको ऊर्ध्वमें ले जाते हैं। क्रमशः सूर्य, चन्द्र, विद्युत् और अन्तमें ब्रह्माके मानस पुरुष उसको ब्रह्मलोकमें ले जाते हैं। ब्रह्माके साथ वह क्रममुक्तिका साधक लयको प्राप्त होता है। उसको आवर्तन नहीं करना पड़ता। (छान्दोग्य उप० ५।१०।१-२)

(३) पितृयाण या कृष्णगति—

'जो गृहस्थाश्रममें नित्यकर्म, इष्टापूर्त आदि, अग्निहोत्र आदि कर्म तथा कूप, कूप, वापी, तड़ाग आदिकी प्रतिष्ठा करते हैं; किंतु ज्ञान-प्राप्तिकी चेष्टा नहीं करते अथवा पञ्चाग्नि विद्याको नहीं जानते, वे मृत्युके बाद पितृयाण मार्गसे गमन करते हैं। क्रमशः धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायनके छः मास, संवत्सर आदिके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं। पश्चात् पितृलोक, वहाँसे आकाश, चन्द्रमा (ब्राह्मणके राजा सोम) को प्राप्त होते हैं। चन्द्रमण्डलमें वास करके जबतक कर्म क्षीण नहीं होता, तबतक देवगणके साथ क्रीड़ा करते हैं।

'पश्चात् इसी पथसे उनका पृथ्वीपर पुनरावर्तन होता है। चन्द्रमण्डलसे क्रमशः आकाशमें, वायुमें, धूममें, अभ्रमें, मेघमें, वृष्टिके साथ भूमिमें गिरकर व्रीहि, यव, ओषधि, वनस्पतिमें प्रविष्ट होते हैं। व्रीहिसे बाहर निकलनेमें बहुत क्लेश होता है। अन्न या फलके साथ पुरुष या नर-पशु अथवा अन्य जीवमें प्रविष्ट होकर रेतःके साथ अनुरूप स्त्री-गर्भमें निषिक्त होकर पुनः अपने कर्म-देहको प्राप्त होते हैं।' (छान्दोग्य उप० ५।१०।३–६)

'जो लोग संसारमें शुद्ध आचरण (रमणीयचरण) का अभ्यास करते हैं, वे पुनर्जन्मके प्राप्त होते हैं वे ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य-कुलमें जन्म लेते हैं। जो लोग अशुभ आचरण (कपूयचरण) का अभ्यास करते हैं, वे अशुभ योनि—कुक्कुर, सूकर या चाण्डाल होकर जन्म लेते हैं।' (छा० ५।१०।७)।

पितृयाण आवृत्तिका मार्ग है। बृहदारण्यक उपनिषद्में भी देवयान और पितृयाणके विषयमें विस्तृत विवरण है।

(४) 'जो लोग काम्यादिक कर्म निरन्तर करते हैं

परंतु पाश्चात्य अनुसंधानकारी लोग उपदेश करते हैं कि आदि-वैदिक युगमें शवदाह नहीं होता था। ईसाई या मुस्लिमके समान शवदेह भूमिमें दफना दिया जाता था।

स्थानाभावके कारण केवल दो-तीन ऋग्वेदके मन्त्रोंका हम उल्लेख करते हैं। इसके द्वारा प्रमाणित हो जायगा कि पाश्चात्य वेदधुरन्धर लोग भ्रान्त और मिथ्यावादी हैं। दाह-संस्कार ऋग्वेदीय युगकी प्रथा है—

(१) 'ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा' इत्यादि (ऋ० १०।१५।१४)

आश्वलायन श्रौतसूत्र तथा सायणभाष्यके अनुसार चितापर शवदाह करनेके समय इस मन्त्रका पाठ करना पड़ता है। 'अग्निदग्धा'का अर्थ सुस्पष्ट है। 'अनग्निदग्धा'का अर्थ उन सब स्थितियोंके लिये प्रयुक्त हुआ है, जहाँ शवदाह नहीं हो पाता; जैसे युद्धमें, जलमें डूबनेपर या जानवरोंके द्वारा खाये जानेपर इत्यादि।

(२) 'मैनमग्ने वि दहो' इत्यादि (ऋ० १०।१६।१)

इस मन्त्रमें अग्निदेवतासे शवदेह सावधानीसे जलाकर परलोकगत आत्माको पितृगणके समीप पहुँचानेमें सहायता करनेके लिये कहा गया है।

(३) 'उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं' इत्यादि (ऋ० १०।१८।८)

पहले उच्च वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि) की विधवाओंको चितापर पतिके शवके पार्श्वमें शयन करना पड़ता था, इस प्रकारकी विधि थी। अधिकांश स्थलोंमें सहमरण नहीं होता था। विधवा नारीका देवर, वृद्ध नौकर या अन्तेवासी (पड़ोसी या शिष्य) कोई भी यह मन्त्र पढ़कर चितापरसे उसका हाथ पकड़कर उठा लेते थे।[7]

परंतु मैकडानेल साहबने अपने युक्त पुस्तककी आलोचनामें निश्चय कर डाला कि वैदिक युगमें दाह और समाधि दोनों प्रथा प्रचलित थीं। विधवाको हाथ पकड़कर उसका नवीन पति, निस्संदेह मृत पुरुषका कोई भाई चितासे उठाता था। यह एक प्राचीन विवाह-प्रथा थी[8]।

भारतीय आधुनिक समाज-सुधारक लोग तथा कुछ ऐतिहासिक लोग इस मन्त्रकी गलत व्याख्या करके चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं कि 'यह वैदिक युगमें विधवा-विवाहका प्रमाण है'।

किंतु सायणभाष्यमें आश्वलायन गृह्यसूत्रका जो उद्धरण है, उससे क्या यह समझा जायगा कि पतिकी मृत्युके पश्चात् ही देवर ही क्यों, वृद्ध दास, शिष्य, पड़ोसी या जो कोई मित्र होता उसके साथ विधवाका विवाह स्थिर हो जाता था? क्या वृद्धा स्त्रियोंका भी इसी प्रकार पुनर्विवाह होता था?

समस्त वैदिक शास्त्र या भारतके प्राचीन साहित्य या इतिहासमें विधवा-विवाहका या शवदेहकी समाधिका एक भी दृष्टान्त नहीं मिलता है। हिंदू नारीका, चाहे वह सधवा हो या विधवा, दूसरा पति ग्रहण करना, सोनेकी पथरौटी बनानेके समान एक असम्भव और असंगत बात कभी थी ही नहीं।

सौ वर्षकी बात है, ईश्वरचन्द्र विद्यासागरने स्मृतिके पुनर्भूविषयक श्लोकका गलत अर्थ करके विधवा-विवाहका कानून बनानेमें सहायता की थी। परंतु समाजने इसे नहीं माना, यह कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी।

विन्टरनिट्ज कहते हैं कि 'प्राचीन भारतमें सामान्यतः शवदाहकी प्रथा रहनेपर भी अति प्राचीन कालमें अन्य इण्डो-यूरोपीय जातिके समान सम्भवतः पृथ्वीमें समाधि (कब्र) दे दी जाती थी।'[9] ऋग्वेद (१०।१८।१०—१३)के मन्त्रमें समाधिका उल्लेख मिलता है।

---

७. सायण अपने भाष्यमें कहते हैं—[illegible] देवरः। [illegible] [illegible]। (आश्वलायन गृह्यसूत्र ४।२।१८ [illegible])

8. 'Burial was practised as well as cremation by the Vedic Indians. The widow is called upon to rise from the pyre and take the hand of her new husband, doubtless a brother of the deceased in accordance with an ancient marriage custom.'
(Macdonell, "History of Sanskrit Literature" 125-6)

9. 'In ancient India, corpses were usually burnt, yet in the oldest times burial was probably the custom with the Indians, as with other Indo-European people.'
(Winternitz, History of Indian Literature, P. [illegible])

पुनर्जन्मका प्रयोजन

(लेखक—श्रीअनिलवरण राय)

भगवान्‌के बिना मानवजीवनका कोई अर्थ ही नहीं होता। मानवजीवनकी किसी समस्याका यथार्थ समाधान नहीं हो सकता; तथापि आज भारतवर्षमें 'सेक्युलरिज्म' (Secularism) इसी असम्भव चेष्टामें लगा हुआ है और इसका जो फल होना चाहिये, वही हो रहा है। भगवान्‌में विश्वास तो अधिकांश लोग ही करते हैं; परंतु वह इतना शिथिल और मोहाच्छन्न है कि उससे कोई काम नहीं निकलता। गतानुगतिक धर्मानुष्ठान करके लोग कोल्हूके आँखोंमें पट्टी बँधे बैलके समान एक ही स्थानमें घूमते रहते हैं। धर्मके नामपर आज सारा जगत् ही जो कुछ कर रहा है, गीताकी भाषामें उसको 'धर्मकी ग्लानि' कहा जा सकता है। केवल शास्त्र-विचारके द्वारा यह ग्लानि दूर न होगी। अर्जुनमें शास्त्र ज्ञानकी कोई कमी नहीं थी तथापि उन्होंने गीताके प्रथम अध्यायमें जो धर्मतत्त्वकी व्याख्या की है, वह धर्मकी ग्लानिका प्रकृष्ट दृष्टान्त है। आज हमारी भी यही दशा है। गीताकी यथार्थ शिक्षाका आचरण आज कितने आदमी करते हैं? वस्तुतः कम्युनिस्ट लोग जो कहते हैं कि 'धर्मने लोगोंको अफीम खिलाकर निर्जीव बना दिया है'—यह इस दृष्टिसे अधिकांशमें सत्य है। इसी कारण आज संसारकी जनसंख्याके प्रायः एक तिहाई अंशने कम्युनिस्टोंके नास्तिकवादको ग्रहण कर लिया है। अदृष्टकी दुहाई देकर हिंदू निश्चिन्त हैं, संसारमें कोई दुःख-दारिद्र्य भोग करता है, तो उसको वह पूर्वजन्मका कर्मफल या दण्ड समझकर उसकी सहायता करनेके लिये कोई अग्रसर नहीं होते। समाजके दारुण वैषम्यको हिंदू कर्मफलकी दुहाई देकर स्वीकार कर लेते हैं। कर्मफल निश्चय ही है, परंतु उसका यथार्थ मर्म क्या है—इसे लोग नहीं समझते—'गहना कर्मणो गतिः'। आज लोगोंको सत्यधर्मकी शिक्षा देते समय शास्त्र-की दुहाई देनेसे काम नहीं चलेगा; क्योंकि शास्त्रमें लोगों-की श्रद्धा नहीं है। जो लोग शास्त्रानुसार धर्मानुष्ठान करते हैं, उनमें भी श्रद्धाका अभाव रह जाता है। इस प्रकारके अश्रद्धायुक्त आचरण करनेसे कोई फल नहीं होता।

> अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
> असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥
> (गीता १७। २८)

शास्त्रका पाठ या विचार करके अर्जुनका मोह दूर नहीं हुआ था। भगवान्‌ने साक्षात् रूपसे उनके सामने खड़े होकर उनके सारे संशयोंको दूर किया था—

> 'योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्।'
> (१८। ७५)

योगसिद्ध तत्त्वज्ञानी गुरुके हृदयमें आविर्भूत होकर श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं मनुष्यको अर्जुनके समान शिक्षा देते हैं। यही उपनिषद्‌का निर्देश है—

> 'प्राप्य वरान् निबोधत।'—(कठ० १। ३। १४)

'तत्त्वज्ञानीको खोजकर, उनके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो।' जिनकी अपनी साधना नहीं है, आध्यात्मिक अनुभूति उपलब्ध नहीं है—वे लोग पाण्डित्यके अभिमानमें शास्त्रकी व्याख्या करके लोगोंको विभ्रान्त करते हैं।

> अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
> स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
> दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
> अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥
> (कठ० १। २। ५)

आजकलका मानव ऐसे पण्डितोंकी बातपर कान देना नहीं चाहता—इसके लिये उसको दोष नहीं दिया जा सकता। स्वामी विवेकानन्दने श्रीरामकृष्ण परमहंसको गुरु मानकर पहले सीधा—स्पष्ट यह प्रश्न किया था—'क्या आपने भगवान्‌को देखा है?'—यही है वर्तमान युगके मनुष्यका प्रश्न। इस प्रश्नका उत्तर जो दे सकते हैं, उन-की बातसे ही लोगोंके मनमें श्रद्धा होती है। श्रद्धा उत्पादन करनेका अन्य मार्ग नहीं है। इसी कारण उपनिषद्‌के ऋषि घोषणा करते हैं—

> वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
> मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
> तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
> नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
> (श्वेता० ३। ८)

इस प्रकारके तत्त्वदर्शी ब्रह्मज्ञ महापुरुष प्रत्यक्ष ब्रह्म &

करते हैं, सुख-दुःखका बोध करते हैं, संकल्प-विकल्प करते हैं, ये सब भी मनुष्यकी मूल सत्ता या आत्मा नहीं हैं। मानवात्माके विकासके लिये प्रकृतिके द्वारा ही इन सबका विकास होता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
(गीता ७।४)

मनुष्य अपने कर्मोंके कारण सुख-दुःख भोग करता है। दुःख-यन्त्रणा पापका दण्ड है, यह कर्मतत्त्वकी अति स्थूल धारणा है। मनुष्यकी मूल सत्ता आत्मा है, जो साधारण मानवीय सुख-दुःखसे अतीत है। वह सदा आनन्दमय और सच्चिदानन्द है। सुख-दुःख आदि अहंभावापन्न मानस-चैतन्यमें होते हैं। ये प्रकृतिके अन्तर्गत हैं। यह मानस-चैतन्य भी जब अज्ञान, अहंभावसे मुक्त होगा, तब मनुष्यका बाह्य-चैतन्य भी आनन्दमय हो जायगा, प्रेम उसका मूल उपादान होगा; मानव-जीवन भीतर-बाहर सौन्दर्यमय हो जायगा। वृन्दावनके श्रीकृष्ण भगवान् उसीके प्रतीक हैं। एक दिन सारा जगत् वृन्दावन हो जायगा, सारा मानव-जीवन हो जायगा—'रासलीला'। यही जगत्‌में मानवजीवनका लक्ष्य है। वेदमें इसीको 'अमृत' या 'अमृतत्व' नामसे अभिहित किया है। अमृतत्वकी प्राप्तिको ही मानवजीवनका लक्ष्य बतलाया गया है। भारतीय नारी मैत्रेयीकी वाणी है कि—'येनाहं नामृता स्यां तेन किमहं कुर्याम्' (बृहदा० २।४।३) जिससे मुझको 'अमृतत्व' नहीं मिलता, उसको लेकर मैं क्या करूँगी!

हमें अपने बालकों और कन्याओंको नचिकेता और मैत्रेयीके आदर्शमें उद्बुद्ध करना पड़ेगा, जिससे वे इस भूतलपर ही दिव्य जीवन, अमृतत्व प्राप्तिको जीवनका लक्ष्य मानकर चलें तथा ऐसा कोई काम न करें या न चाहें जो उनके इस दिव्य जीवनकी प्राप्तिमें प्रतिबन्धक हो।

भगवत्प्राप्ति ही मानवजीवनका लक्ष्य कहा जाता है। यह भी केवल एक स्थूल बात है; क्योंकि संसारमें भगवान्‌को छोड़कर कोई भी न तो है और न रह सकता है। सब भगवान्‌के भीतर स्थित हैं और भगवान् सबके भीतर स्थित हैं। भगवान् स्वयं ही जगत्‌का सब कुछ बन गये हैं—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—यही वेद-वेदान्तका सार तत्त्व है।

'सदेव सोम्य इदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्।'
(छान्दोग्य० ६।२।१)

प्राचीन भारतमें तरुण शिष्य ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये तत्त्वज्ञ ऋषिके सामने उपस्थित होता था तो वह मूल सूत्र बतलाते थे—'हे प्रियदर्शन युवक! यह जो कुछ देखते हो, यह सब पहले एक सत्ता थी, दूसरा कुछ न था।' अकेले रति नहीं होती, मिलनका आनन्द नहीं होता। इसी कारण सच्चिदानन्द ब्रह्म अपने आनन्दको अनन्त वैचित्र्यके द्वारा उपभोग करनेके लिये अपनेको विभक्त करके इस अनन्त वैचित्र्यस्वरूप जीव-जगत्‌में बन गये—

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
(गीता १३।१६)

वे सचमुच ही विभक्त नहीं हो जाते, बल्कि मानो विभक्त हो गये हों, इस प्रकारसे आलिङ्गन करते हैं। यही यह अघटनघटनापटीयसी माया है। यह मिथ्या नहीं है, रज्जुमें सर्पका भ्रम नहीं है। वे एक रहते हुए ही सचमुच बहुत रूप ग्रहण करते हैं; किंतु इससे उनके एकत्वकी कोई हानि नहीं होती। जैसे स्वर्णके द्वारा अनेक प्रकारके अलङ्कार निर्मित होनेपर भी सोना ज्यों-का-त्यों रहता है, उसमें किसी प्रकारकी विकृति नहीं होती, इसी प्रकार ब्रह्म भी सत्य है और उनके असंख्य नाम-रूप भी सत्य हैं। नाना नाम-रूपकी सृष्टि करती है—'प्रकृति'। 'प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।' किंतु इस बहुरूपका विस्तार करनेके लिये जडदेहकी सृष्टि करनी पड़ी; क्योंकि जडदेहका अवलम्बन करके ही वे एकसे बहु (अनेक) बनते हैं। जैसे एक सूर्य असंख्य जलाशयोंमें असंख्य सूर्योंके रूपमें प्रतिबिम्बित होता है। देह ब्रह्मको प्रतिबिम्बित कर सके, इसके लिये युग-युगान्तरसे देहका क्रमविकास चल रहा है। इसका प्रारम्भ होता है जड अणुसे। भगवान् स्वयं ही अपनी प्रकृतिके द्वारा अणु बने हैं—

'अणोरणीयान् महतो महीयान्'—(श्वेताश्वतर० ३।२०)

यह अणु परमाणुसे कैसे विश्वजगत्, ग्रह-नक्षत्र तथा अन्तमें पृथ्वीका उद्भव हुआ तथा पृथ्वीपर पहले प्राण, प्राणसे मन—अर्थात् उद्भिद् जीव-जन्तुके भीतर विकसित होकर जगत्‌में मानवदेहका* आविर्भाव हुआ। आधुनिक वैज्ञानिकोंने इसकी विस्तृत रूपसे खोज की है। किंतु मनुष्यदेहमें आकर भी इस विकासका अन्त नहीं हुआ है।

---

* ८४ लाख योनि प्रकारान्तरसे विष्णु रहस्य है। मनुष्यको [illegible] है, उसका [illegible] होता है। इसीलिए मानवदेहका विकास होनेसे पूर्व किसी देवीने वध नहीं हुआ।

है। इस जीवनके अच्छे उपकारी कार्योंका ही फल अगले जन्म जीवनको प्राप्त करनेका उपाय है। अशुभ कर्मके फलस्वरूप बुरे भविष्यकी सम्भावना है।

मनुष्य-योनि इस संसारकी पूर्ण विकसित, उच्चतम सीमा और सर्वोच्च शिखररूप है। अनेक शुभ कर्मोंके फलस्वरूप यह देव-तुल्य स्थिति प्राप्त होती है। इसके प्राप्त होनेपर इसके द्वारा भगवत्सेवाके भावसे सत्कर्मोंका ही अनुष्ठान करना चाहिये, जिससे जन्म-मृत्युके चक्रसे छुटकारा मिले और मानवजीवन सफल हो।

पुनर्जन्मकी मान्यतासे लाभ

अच्छे कर्मोंसे भविष्यमें अच्छी योनिमें जन्म होता है। हमारे सब कर्मोंके फल इस जन्ममें तथा अगले जन्ममें भी मिलते रहते हैं। यह सत्य है और इस सत्यकी मान्यतासे व्यक्ति और समाज दोनोंको लाभ होता है। पुनर्जन्ममें विश्वास करनेवाला व्यक्ति यह मानता है—

'मेरे-जैसा ही आत्मा सबका है और सबके-जैसा ही मेरा आत्मा है। मेरे आत्माकी अवस्था भूतकालमें अन्य जीवों-जैसी हुई है और भविष्यमें भी हो सकती है। जीवमात्र ही किसी-न-किसी समय परस्पर निकट-सम्बन्धी रहे हैं और शुभ-अशुभ कर्मोंके फलोंके अनुसार भविष्यमें भी रह सकते हैं।'

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥
(यजुर्वेद ४०। ६-७)

अर्थात् 'जो मनुष्य सब प्राणियोंको आत्मामें और सब प्राणियोंमें आत्माको ही देखता है, वह कभी भी किसीसे घृणा (द्वेष या बुरा बर्ताव) नहीं करता। इस प्रकार जाननेवाले पुरुषके लिये सभी प्राणी अपने आत्मस्वरूप ही हो चुके हैं। जो सबमें एक आत्माको (आत्मस्वरूप एकमात्र परमात्मा परमात्माको) देखनेवाले पुरुषमें कौन-सा मोह-शोक रह जाता है।'

इस प्रकार इस मान्यतासे मनुष्यका सब जीवोंके प्रति प्रेम और आत्मीय-भाव बढ़ता है। ऊँचा-नीचा, अमीर-गरीब, पापी और पुण्यात्मा, निम्न वीर तथा उदार, वीर, पशु, कीट, पतंग आदि सब समीप आ जाते हैं। सबके प्रति सहज आत्मभाव और सौहार्द बढ़ जाता है।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि जीवकी कोई योनि शाश्वत नहीं है। यदि परोपकार किया जाय, उत्तमोत्तम पुण्यकर्म किये जायँ, तो सभीको अच्छी योनि प्राप्त हो सकती है।

हिंदू मान्यताओंके अनुसार परलोकमें अनन्तकालीन स्वर्ग या अनन्तकालीन नरक नहीं है। जीवके किसी जन्म या किन्हीं जन्मोंके पुण्य या पापोंमें ऐसी शक्ति नहीं है कि वह सदाके लिये उस जीवका भाग्य निश्चित कर दे। वह अपने इस जीवनके पुरुषार्थसे गुणग्रामी होकर अत्यन्त उन्नत-अवस्थाको प्राप्त कर सकता है।

दूसरी ओर बुरे और निन्दित कर्म करनेके कारण दण्डके रूपमें अधःस्वरूपको भी धारण कर सकता है—

येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु मा॥
(सामवेद ५।२।८।५)

मनुष्य-जीवनकी सफलता इस बातमें है कि वह आत्मिक और मानसिक दोषोंको त्यागकर निर्मल और पवित्र बने। मल-विक्षेप और आवरणरहित बने। इसके अनेक उपाय वेदोंमें वर्णित हैं। अतः वे पठनीय हैं।

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि।
महाँस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि॥
(अथर्ववेद १३।२।२९)

'हे मनुष्यो! तुम्हारा आत्मा सूर्यके समान तेजस्वी, प्रकाशमान एवं महान् है। यही तुम्हारा शुद्ध स्वरूप है। (तुमको अपना उत्तम परमात्मस्वरूप प्राप्त करना है। अच्छे पुण्यकर्म करने हैं। परोपकारमय जीवन बिताना है। आत्माके गुणोंको विकसित करना है) देखो, तुम्हारी महिमा कितनी विशाल है।'

भारतीय संस्कृतिमें इसी समझने, इसी जगत्‌मे सत्कर्म, सद्‌व्यवहार तथा सदाचरणद्वारा पुरुषार्थ, सत्प्रयत्न और आशाकी प्रेरणा मिलती रहती है। पुनर्जन्ममें अपने सत्प्रयत्नोंसे हम बहुत कुछ सुधार और उन्नति भी कर सकते हैं। हम स्वयं ही अपने भविष्यके निर्माता हैं। भविष्यमें अच्छा जन्म पाना स्वयं हमारे हाथकी बात है। कहा है—

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे
प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः॥
(अथर्ववेद १९।५१।१)

मनुष्यके बाद भी अतिमानव (Superman) का आविर्भाव होगा, जिसका उसका भी संकेत देता है। परंतु विकासके किस शक्तिके प्रभावसे यह आश्चर्यमय विकास चल रहा है? विज्ञान इसका उत्तर नहीं दे पाता। इसका उत्तर मिलता है भारतके वेद, उपनिषद् और गीतामें, भारतकी युग-युगान्तरकी अध्यात्मसाधनामें। इस पृथ्वीपर मनुष्यको ही देवता बनना पड़ेगा, यह पृथ्वी स्वर्ग बनेगी—यही वेदवाणी है—'मर्त्येषु अमृतम्'।

'यो मर्त्येषु अमृत ऋतावा देवो
देवेष्वरतिर्निधायि।' (ऋग्वेद० ४। २। १)

'मरणशील मानवोंमें जो अमृत है, वह देवता है। मनुष्यके भीतर रहकर वह शक्तिका विकास करता है।'

भगवान् एक हैं। 'बहु स्याम्'—बहुत हो जानेकी इच्छा थी, तब उनके अंशस्वरूप बहुत जीव हो गये और जीवलोकका आविर्भाव हो गया—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥
(गीता १५। ७-८

ईश्वरका अंश जीवात्मा पञ्चभूतात्मक देहमें प्रवेश करके इस देहको विकसित करता है, जिससे उसके अन्तर्निहित दिव्य शक्तियाँ इस देहमें प्रकाशित हो जायँ, यह जड देह ही सच्चिदानन्दविग्रह बन जाय। परंतु एक जन्ममें देहका यह विकास पूर्ण नहीं होता, इसी कारण जीवात्मा एक देहमें आत्मविकासके पथपर जितना अग्रसर हुआ, उसे संग्रह करके भोगोन्मुख देहको परित्याग करके नवीन देह ग्रहण करता है। यही मृत्यु और पुनर्जन्म का मूल तत्त्व है। मृत्युके बाद ही पुनर्जन्म नहीं होता। जीवात्मा कुछ समय परलोकमें वास करके पूर्वजन्मकी अभिज्ञताओंको आँचता-परखता है। जो रखनी होती है, उसे रखता है। जो त्यागनी होती है, उसे त्याग देता है। ठीक उसी प्रकार जैसे सारे दिनकी अर्जित अभिज्ञताको लेकर रातमें मनुष्य सोने जाता है और पुनः प्रभात कालमें नवीन रूपसे जीवन-पथमें चलने लगता है। जबतक मनुष्य इसी शरीरका विकास नहीं कर लेता, जो जन्म और मृत्युसे मुक्त हो, तबतक उसको बार-बार जन्म ग्रहण करना पड़ेगा—यही पुनर्जन्मका प्रयोजन है।

हिंदुओंका पुनर्जन्ममें विश्वास और उसके लौकिक लाभ

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्यासागर, दर्शनकेसरी)

भारतीय संस्कृतिकी मान्यता है कि मृत्युसे मानव-जीवनका अन्त नहीं होता। हमारा आत्मा शरीररूपी जर्जर वस्त्र त्यागकर नया वस्त्र (नया शरीर) धारण कर लेता है। आत्मा अमर है।

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्॥
(ऋग्वेद १। १६४। ३८। अथर्ववेद ९। १०। १६)

अर्थात् कारण इसलिये, जीवात्मा अमर है तथा शरीरसे भिन्न है और यह जड़ नश्वर शरीर नाशवान् एवं क्षणभङ्गुर है। सम्पूर्ण शारीरिक क्रियाओंका अधिष्ठाता हमारा आत्मा है (यह ईश्वरका अंश है); क्योंकि जबतक इस शरीरमें प्राण रहता है, तबतक यह क्रियाशील रहता है। अभी इस आत्माके स्वरूपको पूर्ण रूप बड़े-बड़े दार्शनिकों और वैज्ञानिकों पूर्णरूपेण-सं नहीं है। आत्माको अमरता ही मानवजीवनका प्रमुख तत्त्व है।

कर्मोके अनुसार उपहार या दण्डके रूपमें जीव नाना योनियोंमें जन्म लेता है। संसारमें अपने अच्छे या बुरे कर्मोंके अनुसार भ्रमण होता हुआ चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् जीव मनुष्य-जैसा दुर्लभ और स्वतन्त्र शरीर प्राप्त करता है।

लोकानामुत्तमं ह्येतद् मानुष्यं जन्म दुर्लभम्।
लब्धात्मानं समाप्नोति संसारे न पुनर्भवः॥

अर्थात् ध्यान रखिये, यह मनुष्यका मानवजीवन, जो पूर्व-जन्मोंके बड़े-बड़े सत्कर्मोंसे मिला है, सर्वश्रेष्ठ जीवन है। इस जन्ममें भी ऐसे शुभ कर्मोंको ही अपनाना चाहिये, जिससे मनुष्य आत्मशक्ति, पवित्रता और नैतिक उन्नतिको ओर न बढ़ सके।'

स्वेदज, उद्भिज्ज, अण्डज, जरायुज आदि जीवयोनियोंके एकके बाद दूसरी, दूसरीसे ऊँची बनती है। मनुष्यको उसके कर्मोंके अनुसार योनि प्राप्त होती है। वहाँ ही प्राप्त

है । इस जीवनके अच्छे उपकारी कार्योंका ही फल अगले श्रेष्ठ जीवनको प्राप्त करनेका उपाय है । अशुभ कर्मके फलस्वरूप बुरे भविष्यकी सम्भावना है ।

मनुष्य-योनि इस संसारकी पूर्ण विकसित, उच्चतम सीमा और सर्वोच्च शिखररूप है । अनेक शुभ कर्मोंके फलस्वरूप यह देव-तुल्य स्थिति प्राप्त होती है । इसके प्राप्त होनेपर इसके द्वारा भगवत्सेवाके भावसे सत्कर्मोंका ही अनुष्ठान करना चाहिये, जिससे जन्म-मृत्युके चक्रसे छुटकारा मिले और मानवजीवन सफल हो ।

पुनर्जन्मकी मान्यतासे लाभ

अच्छे कर्मोंसे भविष्यमें अच्छी योनिमें जन्म होता है । हमारे सब कर्मोंके फल इस जन्ममें तथा अगले जन्ममें भी मिलते रहते हैं । यह सत्य है और इस सत्यकी मान्यतासे व्यक्ति और समाज दोनोंको लाभ होता है । पुनर्जन्ममें विश्वास करनेवाला व्यक्ति यह मानता है—

'मेरे-जैसा ही आत्मा सबका है और सबके-जैसा ही मेरा आत्मा है । मेरे आत्माकी अवस्था भूतकालमें अन्य जीवों-जैसी हुई है और भविष्यमें भी हो सकती है । जीवमात्र ही किसी-न-किसी समय परस्पर निकट-सम्बन्धी रहे हैं और शुभ-अशुभ कर्मोंके फलोंके अनुसार भविष्यमें भी रह सकते हैं ।'

> यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
> सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥
> यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
> तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥
> (यजुर्वेद ४० । ६-७)

अर्थात् 'जो मनुष्य सब प्राणियोंको आत्मामें और सब प्राणियोंमें आत्माको ही देखता है, वह कभी भी किसीसे घृणा (द्वेष या बुरा बर्ताव) नहीं करता । इस प्रकार जाननेवाले पुरुषके लिये सभी प्राणी अपने आत्मस्वरूप ही हो चुकते हैं । सबमें एक आत्माको (आत्मस्वरूप एकमात्र परात्पर परमात्माको) देखनेवाले पुरुषमें कौन-सा मोह-शोक रह जाता है ।'

इस प्रकार इस मान्यतासे मनुष्यका सब जीवोंके प्रति सप्रेम और आत्मीय भाव बढ़ता है । ऊँचा-नीचा, अमीर-गरीब, पापी और पुण्यात्मा, मित्र और शत्रु तथा उपकार और, पशु, कीट, पतंग आदि सब इसके अन्दर आ जाते हैं । इससे प्रति हृदय भ्रातृभाव और सौहार्द बढ़ जाता है ।

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि जीवकी कोई योनि शाश्वत नहीं है । यदि परोपकार किया जाय, उत्तमोत्तम पुण्यकर्म किये जायँ, तो सभीको अच्छी योनि प्राप्त हो सकती है ।

हिंदू मान्यताओंके अनुसार परलोकमें अनन्तकालीन स्वर्ग या अनन्तकालीन नरक नहीं है । जीवके किसी जन्म या किन्हीं जन्मोंके पुण्य या पापोंमें ऐसी शक्ति नहीं है कि वह सदाके लिये उस जीवका भाग्य निश्चित कर दे । वह अपने इस जीवनके पुरुषार्थसे गुणगामी होकर अत्यन्त उन्नत-अवस्थाको प्राप्त कर सकता है ।

दूसरी ओर बुरे और निन्दित कर्म करनेके कारण दण्डके रूपमें अधःस्वरूपको भी धारण कर सकता है—

> येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
> तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥
> (सामवेद ५ । २ । ८ । ५)

मनुष्य-जीवनकी सफलता इस बातमें है कि वह आत्मिक और मानसिक दोषोंको त्यागकर निर्मल और पवित्र बने । मल-विक्षेप और आवरणरहित बने । इसके अनेक उपाय वेदोंमें वर्णित हैं । अतः वे पठनीय हैं ।

> बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
> महाँस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥
> (अथर्ववेद १३ । २ । २९)

'हे मनुष्यो ! तुम्हारा आत्मा सूर्यके समान तेजस्वी, प्रकाशमान एवं महान् है । यही तुम्हारा शुद्ध स्वरूप है । (तुमको अपना उच्चतम परमात्मस्वरूप प्राप्त करना है । अच्छे पुण्यकर्म करने हैं । परोपकारमय जीवन बिताना है । आत्माके गुणोंको विकसित करना है) देखो, तुम्हारी महिमा कितनी विशाल है ।'

भारतीय संस्कृतिमें इसी भावनासे, इसी सत्सूत्रसे सत्कर्म, सद्व्यवहार तथा सदाचरणद्वारा पुरुषार्थ, उत्थान और आशाको प्रेरणा मिलती रहती है । पुनर्जन्ममें अपने प्रयत्नोंसे हम बहुत कुछ सुधार और उन्नति भी कर सकते हैं । हम स्वयं ही अपने भविष्यके निर्माता हैं । भविष्यमें अच्छा जन्म पाना स्वयं हमारे हाथकी बात है । कहा है—

> अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे
> प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥
> (अथर्ववेद १९ । ५१ । १)

बड़ी दवा है ।' यह इलाज देवर्षिकी ईजाद है । दरिद्र पुरुष—अकिंचन होकर, अपना सब कुछ गवाँकर ही सभी प्राणियोंके साथ अपने समान व्यवहारका आचरण करता है; और परिणाम क्या हुआ—मदिरा-मदान्ध कुबेर सेठके दोनों बेटे वर्षोंके लिये जुड़वाँ अर्जुन वृक्ष बने । ब्रजराज नन्दबाबाके दरवाजेपर शीतातप-वृष्टिमें खड़े-खड़े तपते रहे । कर्मफलभोग और पुनर्जन्मके इतिहासकी यह एक अमर कथा तथा अमिट घटना है । नारद, वाल्मीकि, कुम्भजन्मा (अगस्त्य) तथा वामदेवादि ऋषियोंके पुनर्जन्मोंकी कथाएँ रामायण-महाभारत तथा पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं । कहते हैं—मीराँ भी गोलोकवासिनी गोपियोंमें एक थीं । किसी शापके कारण उन्हें भी भारत-भूमिमें अवतरित होना पड़ा । सूरदासने भी कृष्णोपासिका एक मीराँके पुनर्जन्मकी बात लिखी है, जो मुगल बादशाहके हरममें रहती थी । बचपिनी 'ताज', जिसकी तुलना आप और हम मीराँसे करते हैं, भी कृष्णोपासिका एक धारमक्ता गोपी ही थी । ऐसी-ऐसी ढेरों कथाएँ-उपकथाएँ उपलब्ध हैं, जिनसे 'पुनर्जन्म'की पुष्टि होती है । 'योगवासिष्ठ' का 'लीलोपाख्यान' तो महर्षि वसिष्ठ तथा देवी अरुन्धतीके ही लीला एवं विदूरथके रूपमें जन्मान्तरोंकी घटनाएँ हैं ।

हमारे दर्शन-शास्त्र तो स्पष्टतः 'पुनर्जन्मप्रतिपादक' हैं । अपने अकाट्य तर्कों तथा सबल युक्तियोंसे वे विश्वके उन सभी मतोंको, जो पुनर्जन्मवादी सिद्धान्तोंसे दूर हैं, खुली चुनौती दे रहे हैं । 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।'—आद्यशंकराचार्यके इस कथनमें कितना सार है, कितना तथ्य है, यह तो विद्वानोंका विचारणीय विषय है । इसी पुनः पुनर्जन्मको सदाके लिये मिटा देनेके लिये दर्शनके चार प्रतिपाद्य विषय हैं । वे हैं—(क) हेय—दुःखका वास्तविक स्वरूप क्या है, जो 'हेय' अर्थात् त्याज्य है ? (ख) हेयहेतु—दुःख कहाँसे उत्पन्न होता है ? इसका वास्तविक कारण क्या है, जो हेय अर्थात् त्याज्य दुःखका वास्तविक हेतु है ? (ग) हान—दुःखकी सर्वथा निवृत्ति अर्थात् दुःखका नितान्त अभाव क्या है ? अर्थात् 'हान' किस अवस्थाको कहते हैं ? (घ) हानोपाय—हान अर्थात् सर्वथा दुःख-निवृत्तिका उपाय क्या है ? निष्कर्ष तो इतना ही है कि दुःख किसको होता है, क्यों होता है ? जिसको दुःख होता है, यदि यह दुःख उसका स्वाभाविक धर्म होता तो वह उससे छुटकारा पानेका प्रयत्न ही क्यों करता ? इससे तो सिद्ध होता है कि कोई ऐसा तत्त्व है, जिसका दुःख और जड़ता स्वाभाविक धर्म नहीं है । अतः मनुष्य-जीवनका चरम ध्येय क्या है ? तीन प्रकारके दुःखोंका अत्यन्ताभाव—सर्वथा निवृत्ति । अतः सांख्यका प्रथम सूत्र यही है—

'अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ।'

पुनर्जन्मके कारण ही आत्माके शरीर, इन्द्रियों तथा विषयोंसे सम्बन्ध जुड़ते रहते हैं और 'आत्मनो भोगायतनं शरीरम् ।' न्यायसे उस जीवको सुख-दुःखके भोगोंके लिये बार-बार एक शरीरसे दूसरेमें भटकना पड़ता है । हमारे शास्त्रोंमें ८४ लाख योनियोंकी चर्चा कपोल-कल्पना नहीं है । यह तथ्यपूर्ण, मनोवैज्ञानिक एवं रहस्यातिरहस्यपूर्ण दार्शनिक सिद्धान्त है । अतएव मीमांसकोंकी मोक्षकी परिभाषा इन शब्दोंमें है—

'प्रपञ्चसम्बन्धविलयो मोक्षः । त्रेधा हि प्रपञ्चः । पुरुषं बध्नाति तदस्य त्रिविधस्यापि बन्धस्य आत्यन्तिको विलयो मोक्षः ।' (शास्त्रदीपिका)

इस संसारके साथ आत्माके साथ आत्माके देहेन्द्रिय तथा विषयोंके सम्बन्धके आत्यन्तिक विनाशका नाम ही मोक्ष है ।

'सांख्यकारिका' (१८) का श्लोक सांख्योक्त—'जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् ।' (१ । १४९)—का ही भाष्य है । लिखा है—

जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत् प्रवृत्तेश्च ।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ॥

सचमुच ईश्वरकृष्णकी उक्त कारिका पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी सिद्धिके लिये अकाट्य युक्तियाँ दे रही है । यदि जन्म-जन्मान्तर नहीं होते तो जीवकी अनेक अवस्थाएँ देखनेमें क्यों आतीं ? जन्मादि व्यवस्थासे ही यह सिद्ध होता है कि पुरुष बहुत हैं; क्योंकि यदि सभी अन्तःकरणकी वृत्तियोंका आधार एक ही पुरुष होता तो यह घट है, यह पट है, इस घटको मैं जानता हूँ, इस पटको मैं देखता हूँ । इस प्रकारका अनुभव भिन्न रूपमें एक अन्तःकरणको होता, वही सब सभी अन्तःकरणोंमें होना चाहिये; क्योंकि वह एक ही सबका साक्षी है । लेकिन व्यवहारमें ऐसा देखनेमें नहीं आता । इस कारण पुरुष अनेक हैं । और युक्तियाँ सुनिये—

बिना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। अतः सिद्ध है कि इन्हीं २२ तत्त्वोंसे संसारकी उत्पत्ति होती है। अविशेष जो सूक्ष्म भूत हैं, उनकी सृष्टि प्रवृत्ति तभीतक रहती है, जबतक विवेक (ज्ञान) नहीं होता। विवेक होते ही सूक्ष्म भूतोंकी प्रवृत्ति तिरोहित हो जाती है।

पुनः पुनर्जन्मोंके कारण कर्माशय हैं। पातञ्जलदर्शनके साधनपादका १३वाँ सूत्र—

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।'

'अविद्या आदि क्लेशोंकी जड़के होते हुए उस (कर्माशय) का परिणाम जन्म, आयु और भोग होता है।' बहुत कालतक किसी जीवात्माका एक शरीरके साथ सम्बन्ध बना रहना 'आयु' पदका अर्थ है। इन्द्रियोंके विषय रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श ही भोग हैं। क्लेश जड़ है। उन जड़ोंसे कर्माशयका वृक्ष बढ़ता है। उस वृक्षमें तीन प्रकारके फल लगते हैं—जाति, आयु और भोग। यह वृक्ष तभीतक फल देता रहता है, जबतक अविद्यादि क्लेशरूपी उसकी जड़ें विद्यमान रहती हैं। इनसे उत्पन्न हुए संस्कार भी अनन्त हैं। मनकी वृत्तिरूपी कर्म भी अनन्त हैं। ये संस्कार चित्तमें जन्म-जन्मान्तरोंसे संचित चले आ रहे हैं। चित्तका अर्थ ही है 'संचित' अर्थात् इकट्ठा। जिन कर्माशयोंके संस्कार चित्तमें प्रबलरूपसे उत्पन्न होते हैं, वे 'प्रधान' तथा शिथिलरूपसे उत्पन्न होनेवाले 'उपसर्जन' कहलाते हैं। मृत्युके समय 'प्रधान' कर्माशय पूरे वेगसे जाग उठते हैं और अपने-जैसे पूर्वजन्मोंके कर्माशयके संचित संस्कारोंको अभिव्यक्त करके उन्हें सबसे ऊपर जगा देते हैं। इन्हीं प्रधान संस्कारोंके अनुसार ही अगला जन्म देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदिमें होता है। गुरुगोविन्दसिंहके 'विचित्र नाटक' में उनके पूर्वजन्मके कर्माशयोंका तथा उनसे प्रेरित पुनः उनके गुरुगोविन्दसिंहके रूपमें जन्म लेनेका उल्लेख मिलता है। कर्माशयों-के अनुकूल ही उनका भोग नियत होता है। आयु भी उतनी ही होती है, जितनेमें उन कर्माशयोंका फल भोगा जा सके।

उपकर्माशय, जो अगले जन्मोंमें भोगने योग्य हैं पर जिनका विपाक आरम्भ नहीं हुआ है, उन्हें 'अनियत विपाक' कहते हैं। प्रधान कर्माशयोंके अनुसार जन्म, आयु तथा भोग निश्चित हो जाता है, 'नियत विपाक' कहलाता है। [illegible] है, ऐसी कर्मोंकी वासना वर्तमान तथा भविष्य जन्मोंमें भोग्य है। जब चित्तमें क्लेशोंके संस्कार जमे होते हैं, तब उनसे 'सकाम कर्म' उत्पन्न होते हैं। रजोगुणके बिना कोई क्रिया नहीं हो सकती। रजोगुणका जब सत्त्वगुणसे मेल होता है, तब ज्ञान, वैराग्य, धर्म तथा ऐश्वर्यके कार्योंमें प्रवृत्ति होती है और जब तमोगुणके साथ मेल होता है, तब तद्विपरीत—अज्ञान, अवैराग्य, अधर्म तथा अनैश्वर्यके कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है। ये ही दोनों प्रकारके कर्म 'शुभ-अशुभ', 'शुक्ल-कृष्ण' तथा 'पाप-पुण्य' कहलाते हैं। इन कर्मोंसे इन्हींके अनुकूल फल भोगनेके बीजरूप जो संस्कार चित्तमें पड़ते हैं, उन्हींको 'वासना' कहते हैं। यही मीमांसकोंका 'अपूर्व' तथा नैयायिकोंका 'अदृष्ट' कहलाता है। पुण्य-कर्माशय मनुष्योंसे ऊँचे देवताओं आदिके सदृश भोग देनेवाले होते हैं। पाप-कर्माशय मनुष्येतर योनियों—पशु-पक्षीमें ले जानेवाले तथा तत्तुल्य भोग देनेवाले होते हैं। इस प्रकार वासनाएँ अनन्त हैं, उनके संस्कार अनन्त हैं, मनोवृत्तियाँ अनन्त हैं तथा फल-भोग भी अनन्त होते हैं। कुछ कर्माशय वर्तमान जन्ममें, कुछ अगले जन्ममें तथा कुछ दोनों ही जन्मोंमें फल देते हैं। उपर्युक्त जाति, आयु और भोग इनका परिणाम है इसीलिये योगदर्शनमें इन्हें 'अदृष्ट जन्मवेदनीय' (२।१२) कहा गया है।

सामान्यतः मनुष्योंका जन्म मनुष्योंमें ही होता है। उनसे ऊँची देवादि योनियोंमें होता है तथा शास्त्रवश अथवा विशेष कारणोंसे विशेष अवस्थामें तिर्यक् (पशु-पक्षी) योनियोंमें भी जाना पड़ जाता है।

गुरु नानकने पितृपक्षके अवसरपर लाहौरके सेठ दुनीचन्दको उनके पिताको मांसाहारी भेड़ियेके शरीरमें दिखलाया था। पूछनेपर गुरुने यही कारण बतलाया कि मृत्युके समय उनके पिताके मनमें मांस खानेकी उत्कट इच्छा बन गयी थी। 'मुण्डक'में कहा है—

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः॥

(३।२।२)

—जो इच्छाओंको मनमें रखता हुआ उनकी पूर्ति चाहता है, वह मनुष्य उन कामनाओंके अनुरूप उत्पन्न होता है। 'योगवासिष्ठ'में [illegible] ([illegible]

संस्कृतमें 'जन्म' शब्दका क्या अर्थ है? 'जनी प्रादुर्भावे' धातुसे व्युत्पन्न 'जन्म' शब्द सिद्ध होता है, जिसका अर्थ है—प्रकट होना। प्रकटसे अभिप्राय है—जो वस्तु पहले अप्रकट थी, उसीका प्रकट होना अर्थात् आँखोंके सामने आकर देखने योग्य हो जाना। संस्कृतमें इसका दूसरा पर्याय है 'उत्पत्ति'। अंग्रेजीमें इसे 'ओरिजिन' (Origin) शब्दसे व्यक्त किया गया है। इस शब्दका अभिप्राय है उद् (ऊपर) पद् (चलना), अर्थात् ऊपर आकर प्रकट होना। दूसरे शब्दोंमें गुप्त वस्तुका ऊपर आकर प्रकट होना, बाहर आना है। संस्कृतमें इसके लिये तीसरा शब्द है 'सृष्टि'। अंग्रेजीमें 'क्रिएशन' (Creation) है। यह सृष्टि शब्द 'सृज् विसर्गे' धातुसे व्युत्पन्न है। इसका अर्थ भी बाहर आना—प्रकट होना ही है।

इसी प्रकार 'मृत्यु' शब्दको लें। इसका पर्याय संस्कृतमें 'नाश' है। यह 'नश् अदर्शने' धातुसे व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है—देखने योग्य नहीं रह जाना। ये चारों शब्द बतलाते हैं कि जन्म तथा मृत्युका अर्थ नव-जीवनकी प्राप्ति अथवा समाप्ति होना नहीं है।

पुनर्जन्म भारतीय दर्शनका एक प्रमुख तथा विवेच्य विषय है। यहाँके बड़े-बड़े दार्शनिकों, तत्त्व-चिन्तकों, मनीषियों और तार्किकोंने इसपर बड़ी ही गम्भीरतापूर्वक मनन-चिन्तन किया है। आस्तिक दर्शनोंमें पुनर्जन्मका सिद्धान्त निर्विवाद-सा मान लिया गया है। बौद्ध तथा जैनदर्शन इसे डंकेकी चोट स्वीकार करते हैं। बौद्ध जातकोंमें तो तथागतके पूर्वके हजारों जन्मोंकी कथाएँ लिपिबद्ध हो चुकी हैं। न्याय-दर्शनका तो यह एक प्रतिपाद्य सिद्धान्त रहा है। गीता-जैसी सर्वतन्त्र-सिद्धान्त एवं शिष्ट-सम्मान्य पुराणोंमें भी पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्मका उल्लेख है।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'

(गीता २। २७)

श्रीभगवान्‌की वाणी सुर-मन्त्रकी भाँति अंगुलिनिर्देश कर रही है। जन्म और मरणमें अन्योन्य सम्बन्ध है। जन्म है तो मृत्यु भी है और मृत्यु है तब जन्म भी स्वयंसिद्ध है। मृत्यु सिद्ध है तो जन्म कैसे असिद्ध हो सकता है!

पातञ्जलदर्शनमें इसके लिये 'अभिनिवेश' शब्द आता है। अभिनिवेश क्या है? मरण-भीति। मरण-दुःखके ज्ञानके बिना मरण-भय हो ही नहीं सकता। अतएव पूर्वजन्ममें अनुभूत मरण-दुःखकी स्मृतिसे ही मरण-भय उत्पन्न होता है। मरण-भीतिके कारण ही पूर्वजन्म अनुमित होता है।

जीवको आचार्य रामानुजने अपने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तके प्रतिपादनमें अणु, अज्ञ, क्षुद्र, अल्पज्ञादि विशेषणोंसे विभूषित किया है। अथच जीव अल्पज्ञ है और तद्विपरीत ब्रह्म सर्वज्ञ है। सांख्यने लिखा है—'स हि सर्ववित् सर्वकर्ता' (३।५६)। पातञ्जल अन्य दर्शनोंसे लोहा लेता हुआ प्रमाणित करता है कि 'ज्ञान जहाँ चरमोत्कर्षको पहुँचा है, वह अवश्य ही सर्वज्ञ है। वही ईश्वर है।'

जीव काय, क्लेश, कर्म, विपाक तथा आशय-सम्पर्कयुक्त है—अपरामृष्ट या निर्भिन्न नहीं। ये क्लेशादि सभी भोगोंके कारण हैं और शरीर भोगायतन है। वात्स्यायन कहते हैं—'आत्मनो भोगायतनं शरीरम्।' अर्थात् 'शरीर ही आत्माके शुभाशुभ भोगोंका आयतन है।' शरीर-धारणके अतिरिक्त शुभाशुभ कर्मोंका भोग सम्भव नहीं। अथच शरीर-धारण पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मका कारण है। कारणसे हमारा अभिप्राय कर्म-विपाक है। शरीरका अर्थ है—'शीर्यते (प्रतिक्षणम्) इति शरीरम्।'

चूँकि यह शरीर अनुक्षण क्षीयमाण है, अतएव सड़ने-गलनेके कारण ही बुद्धिमानोंने इसको शरीरकी संज्ञा दी है। किसी भी प्रकारके शरीरकी प्राप्तिका उद्देश्य पुरातन कर्मोंका भोग तथा नवीन कर्मोंका आरम्भ है। 'योनिज' तथा 'अयोनिज'—शरीर दो प्रकारके माने गये हैं। शुक्र-शोणितके संयोगसे उत्पन्न शरीर 'योनिज' एवं तद्भिन्न 'अयोनिज' कहलाता है। 'योगवार्तिक'के अनुसार (१) उद्भिज्ज, (२) स्वेदज, (३) अण्डज तथा (४) जरायुज—शरीर चार प्रकारके होते हैं। भूमिको फोड़कर निकलनेवाला तृण-लता-गुल्मादि 'उद्भिज्ज', स्वेद (पसीने) से उत्पन्न कृमि-कीटादि 'स्वेदज', अंडेसे उत्पन्न 'अण्डज' तथा जरायु (गर्भ) से उत्पन्न 'जरायुज' कहलाता है।

पूर्वजन्म, पुनर्जन्म तथा पुनः पुनर्जन्म—सभीका एक कारण है—कर्म। कृष्ण, शुक्ल-कृष्ण, शुक्ल और अशुक्ला-कृष्णके भेदसे—कर्म चार प्रकारके हैं। निरवच्छिन्न पापकर्मोंका नाम 'कृष्ण कर्म' है। बहिःसाधन-साध्य कर्मोंका नाम 'शुक्ल-कृष्ण' है। कारण, बहिःसाधन-साध्य कर्मोंमें दूसरे प्राणियोंको पीड़न तथा अनुग्रह रहते ही हैं। तपस्या, स्वाध्याय तथा ध्यानसाध्य कर्म 'शुक्ल'

भारतमें मरणोत्तर जीवनका कितना महत्त्व है, यह बात भारतीय दर्शनके अनन्य प्रेमी, जर्मन विद्वान् पॉल डायसन (Paul Deussen) के 'उपनिषद् दर्शन' (The Philosophy of the Upanishads) नामक ग्रन्थके निम्न अवतरणसे देखी जा सकती है—'मरणोत्तर मनुष्यकी क्या गति होती है ?' यह प्रश्न हमें जीवात्माके पुनर्जन्मके सिद्धान्तकी ओर ले जाता है जो कि भारतीय दर्शनका अत्यन्त मौलिक और प्रभावकारी सिद्धान्त है और जो उपनिषद्कालसे लेकर आजतक भारतीय चिन्तनमें प्रमुख स्थान रखता आया है। भारतमें आज भी यह सक्रियरूपसे अत्यधिक प्रभावशील है।' (पृ० ३१३)

भगवल्लीन स्व० श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने इस विषयमें लिखा है—'आत्माकी उन्नति तथा जगत्में धार्मिक भाव, सुख शान्ति और प्रेमके विस्तारके लिये तथा पाप-तापसे बचनेके लिये भी परलोक एवं पुनर्जन्मको मानना आवश्यक है।' (तत्त्व-चिन्तामणि भाग ५)

आज भौतिकवाद तथा जड़वादकी ओर उसके फलस्वरूप देहात्मवादकी वृद्धि हो रही है, जो अनेक अनर्थोंको जन्म दे रही है। एकमात्र इसी लोक और इसी जन्मकी ओर ध्यान केन्द्रित करनेके कारण जीवन संघर्ष अत्यन्त तीव्र हो गया है और सम्पूर्ण जीवन ही समस्यामय बन गया है। इस कारण मानसिक तनाव तथा अशान्तिकी अत्यधिक वृद्धि हो रही है। इन सब बातोंका दुष्परिणाम जीवनका भार असह्य होकर बढ़ती हुई आत्महत्याओंके रूपमें दिखायी दे रहा है। यदि इन अनिष्ट प्रवृत्तियोंमें रोक लगाना हो तो धर्ममें श्रद्धा, ईश्वरमें विश्वास, आत्माकी अमरता, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म तथा परलोकमें विश्वास रखना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा करनेपर मनुष्यके मनमें पापभीरुता और कर्तव्याकर्तव्यका विवेक जाग्रत् होगा और मनुष्य जन्मका तथा चित्तकी सात्त्विकताका महत्त्व मालूम होगा और आत्महत्याके सम्भाव्य दुष्परिणामोंका ज्ञान होकर उस ओर उसकी भूलकर भी प्रवृत्ति न होगी।

(ख) पाश्चात्त्य विचारकोंद्वारा इस विषयमें समर्थन

सुप्रसिद्ध यूनानी तत्त्वज्ञ प्लेटो (Plato) ने तो दर्शनकी व्याख्या ही 'मृत्यु तथा मरणका एक दीर्घ अध्ययन' ("One long study of death and dying") इस प्रकार की है।

प्लेटोके सुयोग्य शिष्य अरस्तू (Aristotle) कहते हैं, 'हमें इस मतका अनुसरण कदापि नहीं करना चाहिये कि चूँकि हम मानव तथा मर्त्य हैं, इसलिये हमें अपने विचार मानव तथा मृत्युलोकतक ही सीमित रखने चाहिये। चाहिये तो यह कि हम अपने जीवनके दैवी अंशको जाग्रत् करके अमरत्वका अनुभव करनेमें कोई कसर न उठा रक्खें।'

लूथर (Luther) के अनुसार भावी जीवनके निषेधका अर्थ होता है—'स्वयं ईश्वरका तथा हमारे उच्चतर नैतिक जीवनका निषेध और स्वैराचारका स्वीकार।'

फ्रेंच धर्मप्रचारक मसिलॉ (Massilon) तथा ईसाई संत पॉल (St. Paul) के अनुसार 'देहके साथ ही आत्माका नाश माननेका अर्थ होता है—विवेकपूर्ण जीवनका अन्त और विकारमय जीवनके लिये द्वारमुक्त करना।'

सुप्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक कांट (Kant) ने 'परिपूर्ण नैतिक तथा सदाचारसम्पन्न जीवनकी प्राप्ति तथा उसके फलस्वरूप मिलनेवाली सुखप्राप्तिके लिये आत्माके अमरत्वको माननेकी आवश्यकता सिद्ध की है।'

फ्रेंच विचारक रेनन (Renon) के अनुसार 'भावी जीवन तथा आत्माके अमरत्वमें अविश्वासका पर्यवसान मानवके भयंकर नैतिक तथा आध्यात्मिक पतनमें होना अनिवार्य है।'

मैकडुगल (Mc Dougall) के अनुसार 'भावी जीवनमें विश्वास उठना हमारी सभ्यताके लिये तथा हमारे नैतिक जीवनके लिये एक भयानक संकट होगा।' श्रीमैकडुगलने अपना 'शरीर और मन' (Body and Mind) नामक ग्रन्थ भावी जीवनमें पुरातन तथा विश्व-व्यापक विश्वासको वैज्ञानिक आधार प्रदान करनेके लिये ही लिखा है।

मैक टैगार्ट (Mc Taggart) के अनुसार 'आत्माके अमरत्वकी व्यापक युक्तियोंद्वारा ही हमें भावी जीवनके साथ ही पूर्वजन्मकी भी सिद्धि हो जाती है। एकके बिना दूसरेमें विश्वास तर्कसंगत और युक्तियुक्त नहीं।'

मानव-वंश शास्त्रियोंके अनुसार 'मरणोत्तर जीवनमें विश्वास मानवजातिमें शैशवकालसे ही स्वाभाविक प्रचलित रहा है।'

सर जेम्स फ्रेज़र (Sir James Fraser) के अनुसार 'अन्य जातियोंमें मरणोत्तर जीवन कल्पनामात्र न होकर एक विश्वासका रूप रहा है।'

यही इलेक्ट्राप्याग उक्त दोनों बातोंके मूलमें है। वस्तुतः अमर जीवन हमारी प्रकृति है और मृत्यु अज्ञानमूलक विकृति है, जिसकी यथार्थ ज्ञानद्वारा निवृत्ति सम्भव है। मरणभय और उत्कट जीवितेच्छाके द्वारा हमारा असीम आत्मप्रेम ही प्रकट होता है। श्रीविद्यारण्यस्वामी 'पञ्चदशी'में यथार्थताके साथ कहते हैं—

अयमात्मा परानन्दः परप्रेमास्पदं यतः।
मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनीक्ष्यते॥
(तत्त्वविवेक ८)

"नित्य स्वयंप्रकाश ज्ञान ही आत्माका स्वरूप है। साथ ही यह परम प्रेमास्पद होनेके कारण परमानन्द-स्वरूप भी है। 'मैं न रहूँ ऐसा कभी न हो; किंतु मैं सदैव बना रहूँ' ऐसा प्रेम आत्मासे सभी करते हैं।"

ध्यान रहे, विषयोंके साथ हमारा प्रेम सोपाधिक, सावधिक और अनित्य होता है। इसके विपरीत आत्माके साथ हमारा प्रेम नित्य, निरुपाधिक और निरवधिक होता है। दुःखरूप वस्तुके साथ इस प्रकारका प्रेम कभी सम्भव नहीं। मृत्यु तो सबसे बड़ा दुःख है। आत्मा यदि उससे ग्रस्त होता तो इस प्रकारका प्रेम उसके साथ कदापि न होता। इससे सिद्ध होता है कि आत्मस्वरूप सत् यानी त्रिकालाबाधित है और नित्य, निरतिशय आनन्द या सुखस्वरूप है। जाग्रदादि समस्त अवस्थाओंका साक्षी होनेके कारण यह ज्ञानस्वरूप भी है। आत्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, अज, अमर और सच्चिदानन्दस्वरूप है। यही जीवमात्रका सच्चा स्वरूप है।

३—मरणभय अज्ञानमूलक है

अब प्रश्न यह है कि यदि हम स्वरूपतः ही अमर हैं तो हमें मरनेसे भय क्यों लगता है और त्रिकालाबाधित सत्य हमारा स्वरूप होते हुए भी हमें सदैव बने रहनेकी इच्छा क्यों होती है। इसका निस्संदिग्ध उत्तर यह है कि यही तो माया या मूल अविद्याका प्रभाव है। इसकी आवरण शक्तिके प्रभावसे हम अपने अज, अमर, सच्चिदानन्द-स्वरूपको स्वप्नद्रष्टाकी तरह भूल-से गये हैं और इसकी विक्षेप शक्तिके प्रभावसे हम सब्जनस्वरूप ममत्वबुद्धि स्थापित करके पञ्चमहाभूतोंसे बने देहादि अनात्मपदार्थोंके साथ आत्यन्तिक यानी मिथ्या तादात्म्य स्थापित कर बैठे हैं। इसके फलस्वरूप हम अपना अमरत्व अनात्मपदार्थोंपर आरोपित करके उनको शाश्वत समझने लगते हैं और उनका विनश्वर स्वरूप अपने स्वयंपर आरोपित करके अपने-आपको मरणशील समझने लगते हैं। अज्ञानका तो यह स्वभाव ही होता है कि वह 'जो वस्तु है और भासमान होती है' उसीके सम्बन्धमें 'वह नहीं है और भासती नहीं है' इस प्रकारका विपरीत व्यवहार करा देता है। हमारे समस्त वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण तथा शास्त्र—मनुष्यके इस आत्मस्वरूपविषयक अज्ञानको दूर करके उसे उसके स्वानन्द-स्वाराज्य-साम्राज्यपदपर अभिषिक्त कराना चाहते हैं। भारतकी ब्रह्मविद्या डंकेकी चोट यह कहती है कि "हे मनुष्य! तू न तो क्षुद्र है और न मर्त्य! तू न तो जड है और न नियति-परतन्त्र! यह तो तेरा स्वप्नद्रष्टाकी तरह अज्ञान-कालीन कल्पित स्वरूप है। तू तो अमृतका पुत्र है 'अमृतस्य पुत्राः।' तू अजर, अमर, अक्षर, अव्यय है। तू स्वयं ही अमृतस्वरूप परात्पर परब्रह्म है। श्रुति तेरे ही हितमें मुक्तकण्ठसे कहती है—'नाऽयमस्मि'। तू कालका कवल न होकर तू कालका भी काल—महाकाल है। तेरे वास्तविक स्वरूपसे ही स्वयं निःसत्त्व मृत्यु सत्ता प्राप्त करती है और तेरे भयसे ही वह निरन्तर कार्यशील रहती है। 'मृत्युर्वा असत् सदमृतम्।' (बृ० उपनिषद् १।३।२८)। 'भीषास्मात्...... मृत्युर्धावति' (तैत्तिरीयोपनिषद् २।८)। 'जगत्के सारे पदार्थ तेरे प्रकाशसे ही प्रकाशित हैं—तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।' (मुण्डकोपनिषद् २।२।१०)। उनकी उत्पत्ति, स्थिति तेरे कारण ही है और लय भी तेरेमें ही है। तू उठ, अपनी अनादि अविद्याजन्य मोहनिद्राको छोड़ और अपने वास्तविक स्वरूपको पहचान॥ 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।' (कठोपनिषद् १।३।१४) उठो! जागो और श्रेष्ठ पुरुषोंके चरणोंमें जाकर (आत्म-) ज्ञान प्राप्त करो।"

४—आत्माका अमरत्व श्रुति, युक्ति तथा विद्वदनुभवसिद्ध है

आत्माके अमरत्वकी सिद्धि पाश्चात्त्य तथा पौरस्त्य विचारकोंने अनेक युक्तियाँ देकर की है। इनमेंसे कुछ प्रमुख युक्तियाँ हम प्रस्तुत पाठकोंके सामने रख रहे हैं। पाश्चात्त्य दार्शनिकोंने प्राचीन कालसे आत्माके अमरत्वको अनेक युक्तियोंद्वारा सिद्ध किया है। उदाहरणार्थ प्लेटो (Plato) ने आत्माके अमरत्वके समर्थनमें चार युक्तियाँ दी हैं। इन दार्शनिकोंमें कुछ तो इस्लामके पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मको कर्मवादको मानते हैं। इस दृष्टिसे प्रसिद्ध उदाहरण अगस्टाइन......

महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है और दे रहा है। इसी विषयके संशोधनके लिये संस्थापित 'साइकिकल रिसर्च सोसायटी' (Psychical Research Society) इस कार्यमें तत्परताके साथ संलग्न है।

भौतिक विज्ञानके अनुसार जगत्‌में किसी भी पदार्थका नाश नहीं होता; रूपान्तर मात्र होता है। विज्ञान शक्तिके *संरक्षणके सिद्धान्तमें* (*Law of conservation of energy*) और पदार्थकी अनश्वरताके सिद्धान्तमें विश्वास करता है। जब जगत्‌के जड पदार्थोंकी यह स्थिति है, तब इन्हींके अभिन्न निमित्त-उपादान-कारण चेतन आत्मतत्त्वकी अनश्वरता कैमुतिक न्यायसे सुतरां सत्य होनी चाहिये।

मनुष्य मनुष्यमें, एक ही माता-पितासे उत्पन्न बालकोंमें दिखायी देनेवाला स्वभावका वैचित्र्य तथा वैविध्य, नवजात शिशुमें पायी जानेवाली स्तन्यपानादिकी सहज प्रवृत्ति, जीव-मात्रमें पाया जानेवाला मरण भय इत्यादि सहज बातें पूर्व-जन्मके संस्कारोंको सिद्ध करती हैं। उनके बिना इनकी कोई समाधानकारक उपपत्ति नहीं लग सकती। इस तरह भी आत्माका पूर्वकालीन अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।

हमारा वर्तमान जन्म ही हमारे पूर्वकालीन और मरणोत्तर अस्तित्वको सिद्ध करता है। 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।' अर्थात् 'असत्‌का कभी भाव नहीं हो सकता और सत्‌का कभी अभाव नहीं हो सकता।' यह अबाधित सिद्धान्त इस विषयमें पर्याप्त प्रमाण है। पाश्चात्त्य विचारकोंने भी इस सिद्धान्तको माना है। लैटिन भाषामें यह न्याय निम्न शब्दोंमें व्यक्त किया गया है— 'Ex nihilo nihil fit' जिसका अंग्रेजी अनुवाद है— 'Nothing comes out of nothing.' यह 'नासतो विद्यते भावः' को ही व्यक्त करता है।

पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्म न माननेका यह अर्थ होता है कि हमारा वर्तमान जन्म आकस्मिक है। यह यदृच्छासे, बिना किसी कारणके और बिना किसी उद्देश्यके होता है और यदृच्छासे, बिना किसी कारण और उद्देश्यके ही उसका अन्त होता है; मानो यहाँ कार्य-कारण भावने विराम ले लिया हो; किंतु यह विश्व सुव्यवस्थित, सुसम्बन्धित, अनन्त कार्य-कारण-भावसे बद्ध है, यह अव्यवस्थित नहीं है। यह बात तो विज्ञानकी समस्त शाखाओंको मान्य है। इस दृष्टिसे यदृच्छावाद अवैज्ञानिक ही है। यदि यह जन्म है तो इसका कोई कारण होना ही चाहिये और वह इस जन्मसे पूर्व ही होना चाहिये; क्योंकि कारणका स्वरूप ही यह है कि वह कार्यके नियत पूर्ववर्ती होता है। इसी प्रकार यदि यह जन्म है तो भावी जन्म होना ही चाहिये; क्योंकि वर्तमान जन्ममें भावी जन्मके बीज बोये जाते हैं। यह अज्ञानमूलक भवचक्र तबतक चलता रहता है, जबतक कि यथार्थ ज्ञानके द्वारा इसका आत्यन्तिक उच्छेद न हो जाय।

आत्माके अमरत्वके विषयमें श्रुति स्मृति इतिहास-पुराणादिमें सहस्रशः प्रमाण हैं। इनमेंसे उदाहरणार्थ कुछ वचन उद्धृत किये जाते हैं—

१. 'अविनाशी वा अरेऽयमात्मा अनुच्छित्तिधर्मा।'
(बृहदारण्यकोपनिषद् ४।५।१४)

'*यह आत्मा स्वभावतः ही अविनाशी और उच्छेदरहित* है, अर्थात् इसका न तो विकाररूप नाश होता है और न उच्छेदरूप ही।'

२. '*स वा एष महानज आत्माजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्म।*'
(बृ० उ० ४।४।२५)

'वही यह महान् अजन्मा आत्मा अजर, अमर, अमृत एवं अभय ब्रह्म है।'

३. 'एष त आत्मा सर्वान्तरो योऽशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति।' (बृ० उ० ३।५।१)

'यह तुम्हारा आत्मा सर्वान्तर है, जो भूख-प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्युसे परे है।'

४. 'एष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्तम्।'
(बृ० उ० ३।७।२३)

'यह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी और अमृत यानी अमर है। इससे भिन्न सब विनाशी है।'

५. न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
(कठोपनिषद् १।२।१८)

'यह मेधावी आत्मा न तो उत्पन्न होता है और न मरता है। यह न तो किसी कारणसे ही उत्पन्न हुआ है और न स्वयं ही कुछ बना है। यह अजन्मा, नित्य (सदासे वर्तमान), शाश्वत (सदा रहनेवाला) और पुरातन है। शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता।'

पुनर्जन्मके आधार

(लेखक—श्रीगोविन्दजी शास्त्री, एम्० ए०)

वेदने कहा है—'धाता यथापूर्वमकल्पयत्', लोकने स्वीकार किया 'इतिहास अपनेको दोहराता है।' आजका युग जिसे हम जी रहे हैं, अथवा विज्ञानके वे स्वप्न जो भविष्यमें छिप रहे हैं, कोई अभूतपूर्व परिवर्तन नहीं है। कालने विज्ञानकी कल्पनातीत स्थितिको साक्षी बनकर देखा है और महाकाल बनकर इस सारे विकासको लील लिया है। इसलिये लील लिया है कि यही क्रम फिरसे दोहराया जाय। उस चरम क्षितिजपर पहुँचनेके बाद विनाश ही तो शेष रहता है। जिन शस्त्रों और अस्त्रोंका आज आविष्कार किया जा रहा है, क्या उनका अस्तित्व किसी और युगमें नहीं था? क्या महाभारत और रामायणकाल विज्ञानकी प्रगति और भौतिक उपलब्धियोंके क्षितिज नहीं थे? किंतु मानवने उस सत्यको भुलाकर अपने पौरुषपर उसी तरह अट्टहास करना शुरू कर दिया है, जिस तरह अतीतमें रावणने किया था। वह आज फिरसे प्रकृतिको विजित करनेका दम्भ भरने लग रहा है, जब कि प्रकृतिके साधारणसे आक्रोशसे उसका यह सारा प्रयास-इतिहास अपने-आप जलकर राख हो जायगा। यह परिवर्तन ही युग है, इसका परिवेश ही इसकी शैली है, अन्यथा अथ और इति तो सदा एक-से होते हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है—भले ही हम इसे स्वीकार न करें; क्योंकि आजका हमारा चिन्तन आयातसे प्रभावित है और यह आयात हो रहा है—पश्चिमसे। पश्चिमके विज्ञानपुष्ट इतिहासको पाषाण-युगसे आगे मानते ही नहीं। उनके विचारमें इस युग—पाषाणयुगसे पहले किसी युगका अस्तित्व ही नहीं है, वैसे ही जैसे वे इस ब्रह्माण्डसे दूसरे ब्रह्माण्डको अभी कुछ समय पहलेतक नहीं मानते थे, किंतु आज वे इस आकाशगङ्गा, जो एक ब्रह्माण्डमें एक ही होती है—से परे भी कई आकाशगङ्गाओंको मानने लगे हैं। पश्चिमी सभ्यता और भौतिक विज्ञान भले ही इतिहासको पाषाणयुगसे ही माने और इसे सिद्ध करनेके लिये आनुमानिक एवं [illegible] भी हुआ है, किंतु यह यथार्थ है कि इस तरहके पाषाण-युग हम कितने अतीत कर देते हैं और यह विज्ञानके विकासका [illegible] भी कई बार देखा है। [illegible] भारतीय [illegible] नहीं बना; इसलिये नहीं बना कि यहाँका प्रत्येक [illegible] और यथार्थसे पूर्ण रहता था। यदि हम यह कहें कि आजका भौतिक विज्ञान भारतीय कल्पना और आख्यानोंकी पृष्ठभूमिपर ही पनप रहा है तो यह असंगत नहीं होगा। व्यक्तिके जीवनसे भिन्न विश्वका इतिहास नहीं है। व्यक्ति लघुतम इकाई है, इसलिये उसके जीवनकी हर घटना आनुपातिक ढंगसे होगी; समष्टि उसका विराट्रूप है, इसलिये उसमें हो रहे परिवर्तन उसी क्रमसे होंगे। व्यक्ति जिन अवस्थाओंको वर्षोंमें भोगता है, विश्व उनको युगोंमें।

सामयिक विज्ञान भौतिक, अन्तरिक्षीय और रसायन विज्ञान है, तात्त्विक नहीं। यह किसी भी सत्यको तथ्यके रूपमें स्वीकार करता है। किसी भी परिणाम और परिवर्तनका इन्द्रियगम्य रूप ही उसके लिये विश्वसनीय होता है। किसी भी वस्तुका इन्द्रियगम्य रूप कुछ और होता है तथा आन्तरिक कार्य-कारण कुछ और; इसीलिये भारतीय शास्त्रोंने चेतनसे भी आगे मन, बुद्धि और आत्मा-जैसे तत्त्वोंको खोजा, परखा और माना है। ये तीनों—मन, बुद्धि और आत्मा—भौतिक सीमामें नहीं आते। ये प्राणीकी आन्तरिक सूक्ष्मताएँ हैं, जिनको खोजनेकी सामर्थ्य विज्ञानके उपकरणोंमें नहीं है। इनके खोजनेमें तो आस्था ही एकमात्र उपकरण हो सकती है। प्राणी पाँच तत्त्वोंका एक संगठन है। साधारणतया उसके ज्ञानकी भी एक परिसीमा रहती है। इन्द्रियाँ जो पाँच तत्त्वोंका प्रतिनिधित्व करती हैं—उनका अधिष्ठाता मन भी सामान्यतया सीमाका अतिक्रमण नहीं करता। यद्यपि मनका धर्म कल्पना है तथा उसमें बड़ी शक्ति है; फिर भी वह असीमित कल्पना नहीं कर सकता। मनकी कल्पनाको असीमित करते समय हम वैसी ही भूल कर बैठते हैं, जैसी एक मण्डूक कूपमें बैठा [illegible] समझ लेता है कि इस [illegible] कोई अन्त ही नहीं है। फिर भी मनका महत्त्व भौतिक और आत्मिक, बाह्य और आन्तरिक वस्तुके लिये अनिवार्य माना है। हमारी इन्द्रियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ) इन्हीं पाँचों तत्त्वोंका प्रतिनिधित्व करती हैं, पर उस प्रतिनिधित्वका अनुपात भी इन्द्रियोंमें भिन्न-भिन्न रहा है। कान आकाश-तत्त्वका प्रतिनिधित्व करता है [illegible]

उन्होंने बताया था कि भारत आनेसे पहले वे कई बार स्वप्नमें शिखरवाले मन्दिर, देवताकी मूर्ति और पूजा-सामग्री देखा करते थे। ऐसे स्वप्नोंपर उनको स्वयंको आश्चर्य था; क्योंकि उनके देशमें मन्दिर-जैसी कोई चीज नहीं थी और उनके धर्ममें किसीकी मूर्ति नहीं होती थी, फिर भी वे स्वप्न उनके लिये स्वप्नमात्र न रहकर प्रेरणाके स्रोत बने रहे। अन्ततः उन्होंने भारतके सम्बन्धमें पढ़ा, चित्रोंमें मन्दिर देखे और उनका विश्वास प्रबल हो गया कि ये स्वप्न भारतीय भूमिके हैं। एक दिन ऐसा भी आया जब उन्होंने भारतके दर्शन किये और दक्षिण भारतमें उनको यह मन्दिर उसी रूपमें मिल गया, जिस रूपमें वे उसे स्वप्नमें देखते थे।

उनको स्वतः ही यह विश्वास हो गया कि वे पूर्वजन्ममें भारतीय थे और उस मन्दिरके पुजारी थे। परामनोविज्ञान विभाग उनकी इस मान्यताको न माने, पर भारतीय शास्त्र इसे स्वीकार करते हैं।

पुनर्जन्मकी वास्तविकताका विश्वास दिलानेवाला दूसरा ज्वलन्त प्रमाण है—व्यक्तिके जीवनस्तरका। एक ही व्यक्तिकी दो संतानें—एक सुरूप, दूसरी कुरूप; एकमें असाधारण बल, दूसरी अपंग; एक प्रतिभासम्पन्न, दूसरी जड़; बड़े होनेपर एक ही पिताकी सम्पत्तिका दो पुत्रोंमें समान विभाग किया गया। एकने सम्पदाको शतगुणा कर दिया, दूसरेको रोटियोंके लाले पड़ गये। एकके कुत्ते दूध पीते हैं, दूसरेको सूखी रोटीके टुकड़े भी नहीं मिलते—यह सब क्या है? मनोविज्ञानवादी इन भिन्न परिणामोंका आधार कुछ भी खोज लें और उनका सामान्य सूत्र भी निश्चित कर लें, पर भारतीय इस व्यवस्थाको भाग्य ही मानेगा और भाग्यका निर्माण होता है—कर्मसे; तथा उत्पन्न होते ही किसी प्रकारके कर्मका इतिहास नहीं जुड़ पाता; इसलिये उसे पूर्वजन्मका स्पष्ट आधार चाहिये ही। वह आधार समय और संसारके पारदर्शी ऋषियोंने भारतीयोंको वरदानके रूपमें दे ही दिया है। आज हम निर्विवादरूपसे कह सकते हैं कि भारतके पास जो कुछ है, उससे नया हो ही नहीं सकता। यदि उस आर्ष सत्यको हम अनुभव करके व्यवहारयोग्य बना देते हैं और भारतीयोंकी आस्थाको पुनर्जागरित कर देते हैं तो यही वैज्ञानिक उपलब्धि होगी।

भौतिक विज्ञानके अन्धविश्वासकी तमिस्रामें भाग्यको अवकाश नहीं है, इसीलिये कर्मका जन्मना सम्बन्ध यह नहीं जोड़ता तथा पुनर्जन्मको विश्वसनीय नहीं मानता। वह व्यक्तिका भाग्य समाजके साथ जोड़कर निश्चिन्त हो जाता है; किंतु ऐसा सम्भव हो ही नहीं सकता। जो प्राणीका प्राणिगत ऐक्य है, वहींतक समाजवाद है। प्रकृतिकी समरसता तक ही समानता है; इससे आगे न है, न हो सकती है। ये भौतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ क्या व्यक्तिको व्यक्ति-स्तरसे हटाकर समष्टि-स्तरपर सुखी कर सकती हैं? नहीं, बिल्कुल नहीं। सुविधा-साधनोंके परिग्रहसे व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता, सामान्य आवश्यकताकी पूर्तिसे दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंसे नहीं बचा जा सकता। यह तो व्यक्ति-स्तरपर चलता रहा है और चलता रहेगा। इस चलनेके साथ कर्म-बन्धनोंका सत्य जुड़ा हुआ है और कर्म-बन्धन पुनर्जन्मकी पृष्ठभूमि है।

यह इन्द्रियगम्य विषय तो है नहीं, जिसे प्रत्यक्षकी तरह देख-सुन-समझ लिया जाय। इसके लिये तो आस्थाका सम्बल लेकर आर्ष सत्योंको मान लेनेसे ही कुछ पाया जा सकता है। भारतीय संस्कृति पुनर्जन्मके प्रति आस्थावान् है और इस आस्थाके पीछे प्रबल आधार है, भले ही वह आजके भौतिक विज्ञानकी प्रक्रियाओंसे सिद्ध न हो, पर सत्य है।

जन्म-मरणके भयानक दुःखसे छूटनेका उपाय

जन्म-मरणके दुःख भयानकसे यदि चाहो होना मुक्त।
मनको रखो निरन्तर श्रीहरिकी पावन स्मृतिसे संयुक्त॥
भोगोंमें न राग रख रंचक, बने रहो प्रभु-पद-अनुरक्त।
सेवा करो सदा सबकी, बन प्रभु-भक्तोंके सेवक भक्त॥

विशेष निदान अनुभूतिगत तथा स्वबोध-परक है। लोगोंकी यह भी धारणा मिलती है कि मृत्यु आती है। इसका कारण यह है कि शरीरस्थ पुरुष इतने पर्याप्तरूपमें विकसित नहीं रहता है कि वह परिवर्तनकी आवश्यकताके बिना एक ही देहमें निरन्तर पढ़ता ही रहे; तथा स्वयं शरीर भी काफी सचेतन नहीं होता।

यह निर्विवाद है कि अनेक संत-महात्माओंके सत्यलोक, अथवा स्वलोक, किंवा परलोकगमनमें असाधारण विचित्र बातोंके दर्शन हुए। यामुनाचार्यके तिरोधान-कालमें उनके ब्रह्मलीन होनेपर हाथकी तीन अँगुलियाँ तबतक उठी रहीं, जबतक उनके प्रिय शिष्य रामानुजाचार्य नहीं आ गये। आचार्य रामानुजके आते तथा प्रणाम करते ही अँगुलियाँ पहलेकी हालतमें आ गयीं। यामुनाचार्यकी तीन कामनाएँ थीं। उनकी पूर्तिमें रामानुजने कहा कि "मैं 'ब्रह्मसूत्र', 'विष्णु-सहस्रनाम' और 'दिव्यप्रबन्धम्'की टीका अवश्य लिखूँगा और लिखवाऊँगा।" इस घटनाके सम्बन्धमें इतना ही कहकर संतोष किया जा सकता है कि यामुनाचार्यकी देहान्तर-स्थितिमें सूक्ष्मशरीरकी प्रेरणा-शक्तिसे तीनों अँगुलियाँ उठ गयी थीं। रहस्य तो अभेद्य ही है।

पार्थिव शरीरका दिव्य देहमें रूपान्तर प्रत्यक्षरूपसे प्रस्तुत कर काश्मीरकी सिद्ध और संत योगिनी लल्लेश्वरीने मध्यकालीन साधना-जगत्को आश्चर्यचकित कर दिया। उनकी दृष्टिमें कोई पुरुष नहीं था, वे सबको शिवकी उपासिकाके रूपमें देखती थीं। एक दिन उन्होंने प्रसिद्ध सूफी संत शाह हमदानीको देखा। वे 'पुरुष' कहकर चौंक उठीं और दौड़कर एक जलते तंदूरमें कूद पड़ीं। संत हमदानीने उनका पीछा किया। तंदूरवालेसे पूछा; पर पता न चला। तंदूरवालेकी दृष्टिमें तो वे जलकर राख हो गयी थीं। संत हमदानी सोचते रहे। थोड़ी ही देरमें वे दिव्य स्वर्णिम हरे रंगके परिधान पहनकर संत हमदानीके आगमन-पर बाहर आ गयीं। यह अध्यात्म विज्ञान है। यह विज्ञान इस रूपान्तर-सम्बन्धी समाधान कदापि नहीं प्रस्तुत कर सकता।

संत कबीर, महाप्रभु वल्लभाचार्य, चैतन्यदेव, मीराँबाई-के रूपान्तरको इस लोकमें उनके मानव विग्रह दैहिक रूपान्तरकी बात भारतीय इतिहासकी आश्चर्यमय स्मृति है। कबीरका शरीर छूटनेपर हिंदू उनके शवको जलाना चाहते थे और मुसलमान उसे दफनाना चाहते थे। चादर उठानेपर शवके स्थानपर फूल दीख पड़ा। हिंदू-मुसलमान—दोनोंने आधा-आधा ले लिया। चादर उठानेपर शवका न पाया जाना संत कबीरकी लीलामात्र स्वीकृत है। धनी धरमदासका शब्द है—

'खोदिके देखो कबर, गुरु-देह न पाइया।'
... ...
'मगहरमें एक लीला कीन्हीं ... ...

संत कबीरका शरीर पाञ्चभौतिक तत्त्वसे गठित नहीं था। इसलिये उस शरीरपर मृत्युका वश नहीं चला, वह लुप्त हो गया और उसके स्थानपर केवल फूल दीख पड़ा। विक्रमीय सत्रहवीं शताब्दीके प्रथम चरणमें उपस्थित भक्त कवि हरिराम व्यासका कथन है—

'कलि में साँचो भक्त कबीर।
पाँच तत्त्व ते देह न धारी, ग्रस्यो न काऊ शरीर॥'

वैश्वानर-अवतार महाप्रभु वल्लभाचार्यने अपने अग्नि-स्वरूपमें स्थित होकर श्रीकृष्णके नित्य लीला-लोकमें प्रवेश किया था। अन्तिम दिन उन्होंने मौन लिया था। वे काशीमें हनुमानघाटपर गङ्गाकी धारमें मध्याह्न-स्नान करने गये थे।... लोगोंने प्रत्यक्षरूपसे देखा कि भागीरथीकी मध्यधारासे महाप्रभुके शरीरके स्थानपर एक अलौकिक अग्नि-शिखा आकाशकी ओर उठती जा रही है। उनका लौकिक शरीर अलौकिक अग्नि-तेजमें रूपान्तरित हो उठा।

चैतन्य महाप्रभु सदेह पुरीमें श्रीजगन्नाथ-विग्रहमें समा गये। एक दिन वे गरुड़-स्तम्भके पीछेसे दर्शन न कर सीधे मन्दिरके भीतर चले गये। मन्दिरके दरवाजे अपने-आप बंद हो गये। वे जगन्नाथजीमें अन्तर्हित हो गये।

ठीक इसी तरह राजरानी मीराँ रणछोड़जीकी ज्योतिमें आत्मलीन हो गयीं। रणछोड़जीके सम्मुख एक दिन वह गा-गाकर तथा नाचकर उन्हें रिझा रही थीं। एक दिव्य ज्योतिने भगवान्के श्रीविग्रहसे निकलकर उनका आलिङ्गन किया। वे ज्योतिमें समा गयीं। वह मूर्ति द्वारकामें है और मीराँका चीर उसमें अटका हुआ दिखाया जाता है।

संत तुकारामके सदेह स्वर्ग जानेका विवरण उपलब्ध होता है। संवत् १७०६ विक्रमी चैत्र कृष्ण द्वितीयाको संत तुकारामने सदेह स्वर्गगमन किया। यह घटना कोरी कल्पनामात्र कहकर नहीं उड़ायी जा सकती। मराठी साहित्यके इतिहासकार महादेव मोरेश्वरका कथन है कि

काल-विवेचन

(लेखक—महामहोपाध्याय महोदय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम० ए०, डी० लिट्०)

(१)

काल-संकर्षण

साधारण दृष्टिसे आलोचना करते समय यह जान पड़ता है कि विश्वमें दो विपरीत शक्तियाँ कार्य कर रही हैं। उनमें एक 'भगवत्-शक्ति' या 'अनुग्रह-शक्ति'के नामसे परिचित है और दूसरी शक्तिका नाम 'कालशक्ति' या 'तिरोधान-शक्ति' है। पूर्ण परमतत्त्वमें ये दोनों शक्तियाँ परस्पर भेदरहित अभिन्न रूपमें स्वातन्त्र्य स्वरूप नाम ग्रहण करके कार्य करती हैं। किंतु परमेश्वर जब आत्मसङ्कोच करके जीव-रूपमें आत्मप्रकाश करते हैं, तब शक्तिकी ये दोनों धाराएँ पृथक् हो जाती हैं। एक जीवभाव या पशुभावका पुष्टिसाधन करती है, और दूसरी पशुभाव निवृत्त करके परम-स्वरूपमें प्रत्यावर्त्तन करनेमें सहायता करती है। अनुग्रह-शक्ति क्रमशः आत्माको परमस्वरूपमें पुनः प्रतिष्ठित करती है। कालशक्ति निरन्तर बहिर्मुख प्रेरणाके द्वारा जीवको संसारमें जकड़े रखती है। जो शक्ति क्रमशः कालको स्वाधिकारसे अपसारित करती है, उसका नाम है—'कालसंकर्षिणी शक्ति'। क्रम कालका धर्म है। काल-राज्यमें क्रमका अवलम्बन करके ही चलना पड़ता है। काल-संकर्षणका चरम लक्ष्य है—क्रमको अतिक्रम करके अक्रम-स्वरूपमें आत्मप्रकाश करना। काल-संकर्षणके फलसे क्रमशः कालसे क्षणकी प्राप्ति होती है। विश्वराज्य कालके अधीन है। इसी कारण इसमें निरन्तर परिणाम हो रहा है। इस परिणाममें क्रमका मात्रागत तारतम्य रहता है। भगवत्कृपाके प्रभावसे यह मात्रागत तारतम्य क्रमशः स्थूलसे सूक्ष्ममें परिणत होता है। चैतन्यकी अभिव्यक्ति जितनी अधिक होती है, कालकी मात्रा उतनी ही क्षीण होती जाती है। इसके फलस्वरूप कालके स्पर्शहीन चैतन्यावस्थामें कालगत मात्राका प्रभाव कुछ भी नहीं रहता। वहाँ एक ही क्षणमें अनादि-अनन्त महाकाल प्रकाशित हो उठता है। कालमें क्रम है, किंतु 'क्षण'में क्रम नहीं है। जब आत्मा क्रमशून्य भावमें चला जाता है, तब एकमात्र क्षण ही वहाँ रह जाता है। इसी कारण कहा जाता है कि एक ही क्षणमें समस्त विश्वका परिणाम संघटित हो जाता है। कालसे क्षणमें प्रविष्ट होनेके उपायका अवलम्बन कर पानेपर इच्छामात्रसे, अविलम्ब क्षणमें प्रवेश हो जाता है। कालराज्यके विभिन्न स्तर हैं। प्रत्येक स्तरमें कालकी गतिमें मात्राका तारतम्य है। यह तारतम्य वेगकी न्यूनता अथवा अधिकतापर निर्भर करता है। जहाँ अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे कालकी मात्रा क्षीण हो जाती है, वहाँ कालसंधि प्रकाशित होती है, वहाँ क्षणका प्रकाश सहज ही अनुभवमें आने लगता है। जिस स्थानमें या जिस अवस्थामें यह क्रम लुप्त हो जाता है, उस स्थानमें क्षणका प्रकाश अनिवार्य हो जाता है। क्षण जब स्थायी रूपमें प्रतिष्ठित होता है, तब वहाँ काल नहीं रहता। इस अवस्थाको 'काल-संकर्षिणी' की अवस्था कहते हैं। योगके तारतम्यके अनुसार इस अवस्थाके नाना प्रकारके भेद हो सकते हैं। 'क्रमहीन काल'का ही नाम 'क्षण' है। क्षण नित्य और स्वप्रकाश है। व्यवहार-भूमिमें कालका क्रम स्वीकार करना पड़ता है, परंतु क्षणिक ज्ञान व्यवहार-भूमिका विषय नहीं है। 'अनन्त काल' शब्दसे हमारा जो अभिप्राय होता है, वह एक दृष्टिसे क्षणके सिवा और कुछ नहीं है। कालसंकर्षिणीके प्रभावसे कालकी निवृत्ति हो जाती है। कालकी निवृत्तिके साथ-साथ अखण्ड स्वप्रकाशपूर्ण आत्मतत्त्व, निजस्व स्वानन्दमय प्रकाशरूपमें प्रस्फुटित होता है। कालकी मात्राके अनुसार उसके वेगकी न्यूनता या अधिकताका निरूपण किया जाता है। कालके साथ देशका सम्बन्ध नित्य संश्लिष्ट है, अतएव काल-निवृत्तिके साथ देश-निवृत्ति भी हो जाती है। तब आत्मा देश और कालसे मुक्त हो जाता है। इस अवस्थामें अपने संकल्पके अनुसार उसके सामने कोई भी देश और कोई भी काल प्रकट हो सकता है। इस प्रकार देशीय नित्यत्व और व्यापकता उसके निकट प्रकट हो जाता है।

गया। इसके बाद 'क' ऊर्ध्वगतिके द्वारा मनोमयमें प्रवेश करता है और उसके साथ एक हो जाता है। तत्पश्चात् 'क' में अवतरण करके 'क'को भी मनोमय कर डालता है। धीरे-धीरे यह एक हो जाता है। उसका नाम 'ख' है। इसके बाद 'ख' ऊर्ध्वगतिके द्वारा विज्ञानमय कोषमें प्रवेश करता है और उसके साथ ऐक्य प्राप्त करता है। तत्पश्चात् यह उतरकर 'ख'के साथ एक हो जाता है। इस अवस्थाका नाम 'ग' है। इसके बाद 'ग' उत्थित होकर आनन्दमय कोषको स्पर्श करता है और उसको अपना लेता है। उसके बाद यह एकीभूत सत्ता विज्ञानमयमें अवतरण करती है और विज्ञानको अपने साथ अभिन्नरूपमें स्थापित करती है। इसका नाम 'घ' है। इसके परे भी अवस्था है। जिसको 'घ' कहा गया, वह एक ही साथ अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय और आनन्दमय सत्ता है। किंतु यह अचित्-स्वरूप है। इसके बाद 'घ' चित्-स्वरूप आत्मामें प्रवेश करके उसके साथ एक हो जाता है। उसके बाद चित्स्वरूप आत्मा अवतरण करके अचित्‌के साथ एक हो जाता है। तब चित् और अचित्‌का अथवा आत्मा और शरीरका भेद नहीं रहता। यहाँतक सम्पन्न होनेपर चित् और अचित्‌का भेद कट जाता है तथा स्थूल और सूक्ष्मका भी भेद नहीं रह जाता। विभिन्न खण्ड सत्तामेंसे सब प्रकारका पार्थक्य तिरोहित होकर एक अखण्ड सत्ता विद्यमान हो जाती है। यही यथार्थ सिद्धावस्था है। इसीके दूसरे नाम 'कालजय' या 'मृत्युञ्जयत्व'की प्राप्ति है। यह देवावस्थासे बहुत ऊँची अवस्था है; क्योंकि देवावस्थामें अमरत्वकी प्राप्ति तो होती है, किंतु मृत्युपर जय प्राप्त नहीं है। अमर लोग मृत्युसे डरकर दूर ही रहते हैं। इसीसे कहा जाता है कि देवगण भी मृत्युके अधीन हैं। सोमपान या अमृतपानके द्वारा देवगण जो अमरत्व प्राप्त करते हैं, वह केवल दीर्घजीवनकी प्राप्ति मात्र है। महाप्रलय या अतिमहाप्रलयमें इस दीर्घ-जीवनका भी अवसान हो जाता है; किंतु मृत्युञ्जय अवस्था कालातीत है। उसमें मृत्यु ही नहीं रहती। सिद्धगणका सिद्धत्व इस मृत्युञ्जयत्वकी सामर्थ्यके ऊपर निर्भर करता है। केवल मृत्युञ्जयत्व परम सिद्धि नहीं है। गीता (१४।२) में जो कहा है—

'सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।'

यह इसी 'कालातीत मृत्युञ्जय' अवस्थाका वर्णन है।

(२)

काल और महाकालका रहस्य

काल और महाकालके रहस्यके सम्बन्धमें संक्षेपसे कुछ कहा जाता है। काल और महाकाल स्वरूपतः एक ही वस्तु हैं। तथापि दोनोंमें पार्थक्य है। जगत्‌के परिणामके मूलमें कालकी शक्ति क्रिया करती है। प्रकृतिके परिणाम-शीला होनेपर भी सृष्टिकी धारा कालके द्वारा ही नियन्त्रित होती है। पातञ्जलदर्शनके दृष्टिकोणसे ज्ञात होता है कि प्रकृति परिणामिनी है। यह परिणाम दो प्रकारका है। एक परिणाम 'सदृश परिणाम'के नामसे ख्यात है। दूसरेका नाम 'विसदृश परिणाम' है। गुणत्रयकी साम्यावस्था ही प्रकृतिका स्वरूप है। वैषम्यावस्थामें सृष्टिका उदय होता है। प्रलयके समय सत्त्व सत्त्वरूपमें, रजः रजोरूपमें और तमः तमोरूपमें 'सदृश परिणाम'को प्राप्त होता है। इस परिणामके साथ भी कालका सम्बन्ध है। इस परिणामके समय सारे कर्म-संस्कार परिपक्व होते हैं और सृष्टिकी उन्मुखावस्थाका उदय होता है। सृष्टिके नियामकके रूपमें कालके न रहनेपर प्रलयके अनन्तर सृष्टिके आरम्भ होनेका कोई निर्देश न रहता। प्रकृतिका परिणाम स्वभावसिद्ध होनेपर भी गुणका परिणाम काल-सापेक्ष है। गुणके परिणामके बिना 'विसदृश परिणाम' अथवा 'धर्मान्तर परिणाम' नहीं होते। धर्मान्तर परिणामकी सम्भावना न रहनेपर सृष्टिका उदय असम्भव हो जाता है। सृष्टिके मूलमें कर्मसंस्कार रहता है, यह सत्य है; किंतु अपक्व संस्कारसे सृष्टि नहीं होती। इसके लिये कालकी अपेक्षा है। इसी कारण महाभारतमें कहा है कि—

'कालः पचति भूतानि।'

धर्मान्तर परिणामके तीन प्रकार हैं—धर्म, लक्षण और अवस्था। प्रकृति धर्मी है। यह जो धर्मरूपमें परिणत होती है, यही उसका प्रथम परिणाम है। यह धर्म उसके बाद काल परिणामके अधीन हो जाता है। 'काल-परिणाम'को 'लक्षण-परिणाम' कहते हैं। अनागत, वर्तमान और अतीत—ये तीन लक्षण हैं। इनका विचार (तीन काल) के नामसे वर्णन किया जाता है। धर्म सर्वदा पहले अनागत अवस्थामें प्रवेश करता है। उसके बाद अनागत धर्म आगे धर्म वर्तमान रूपमें परिणत हो जाता है।

परब्रह्मके साथ तादात्म्यको प्राप्त हो जाते हैं। अबतक ब्रह्मलोकमें जो लोग रहते थे, उन सभीको लेकर वे ब्रह्ममें प्रविष्ट हो जाते हैं। परंतु ब्रह्मलोकमें सब लोग एक ही अवस्थामें हों, ऐसी बात नहीं है। सालोक्यसे सायुज्यपर्यन्त सभी अवस्थाएँ वहाँ हैं। महाप्रलयके बाद नवीन सृष्टि दूसरे ब्रह्माको लेकर होती है। इसी प्रकार अनादिकालसे होता आ रहा है और अनन्त कालतक होता रहेगा। ब्रह्माण्डके ध्वंसरूपी इस प्रलयको 'प्राकृतिक प्रलय' कहते हैं। प्रचलित भाषामें इसका नाम 'महाप्रलय' है। इस अवस्थामें प्राचीन जगत्‌की सृष्टिका अवसान तथा नवीन जगत्‌का अभ्युत्थान होता है।

ब्रह्माके दिनके अन्तमें अर्थात् ब्रह्माके निद्राकालमें जो प्रलय होता है, उसका नाम 'नैमित्तिक प्रलय' है। नैमित्तिक प्रलय दो प्रकारका होता है—आंशिक और पूर्ण। आंशिक प्रलय कब होता है।—इसके उत्तरमें आचार्यगण कहते हैं कि एक-एक मन्वन्तरके बाद यह हुआ करता है। ब्रह्माके एक दिनको 'कल्प' कहते हैं। कल्पके अन्तमें जो प्रलय होता है, उसका नाम 'कल्प प्रलय' है। एक कल्पमें, अर्थात् ब्रह्माके एक दिनमें चतुर्दश मनुओंका आविर्भाव और तिरोभाव होता है। ७१००० महायुगमें एक-एक मनुका आविर्भाव और तिरोभाव होता है। एक मनुके अवसानमें एक प्रलयावस्था उदय होती है। तत्पश्चात् द्वितीय मनुका उदय होता है, इत्यादि। इस प्रकार चतुर्दश मनुका आयुःकाल पूर्ण होनेपर ब्रह्माका एक दिन पूर्ण होता है। 'मन्वन्तर प्रलय' से 'कल्प प्रलय' व्यापक है और 'कल्प प्रलय' से 'महाप्रलय' व्यापकतर होता है। एक-एक मन्वन्तरमें मनुके साथ इन्द्र, ऋषि, देवर्षि और पितृगणका परिवर्तन होता है। मन्वन्तर प्रलयमें पृथिवी जलमग्न हो जाती है। तब भूर्लोकसे भुवर्लोक और स्वर्लोकका सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है। महर्लोककी अवस्था अविकृत रहती है। पूर्ण नैमित्तिक प्रलयके समय कल्पका अन्त हो जाता है, अर्थात् ब्रह्माके एक दिनका अवसान हो जाता है, अतएव समस्त सृष्टिमें निद्राका भाव प्रबल हो जाता है। ब्रह्माके निद्रागत होनेके कारण कल्प प्रलयमें सारा जगत् सुप्त हो जाता है। उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक नहीं रहते, दग्ध हो जाते हैं। महर्लोकके ऋषिगण तापके कारण जनलोकमें चले जाते हैं। इसके बाद नीचेके तीनों लोक जलमग्न हो जाते हैं। तब ब्रह्माण्डकी प्राणशक्तिको आकर्षण करके भगवान् विष्णु शेषशय्यापर शयन करते हैं। यह उनकी 'योगनिद्रा' है।

'नित्य प्रलय' और 'आत्यन्तिक प्रलय' पिण्डके साथ संश्लिष्ट हैं, किंतु 'नैमित्तिक प्रलय'का सम्बन्ध ब्रह्माण्डके साथ है।

पापका फल अकेला ही भोगता है

अन्तकालमें मनुष्य सबको छोड़कर अकेला ही परलोककी यात्रा करता है। मेरी माता, मेरे पिता, मेरी पत्नी, मेरे पुत्र और मेरी वस्तु—इस प्रकारकी ममता प्राणियोंको व्यर्थ पीड़ा देती रहती है। पुरुष जबतक धन कमाता है, तभीतक भाई-बन्धु उससे सम्बन्ध रखते हैं, परंतु इहलोक और परलोकमें केवल धर्म और अधर्म ही सदा उसके साथ रहते हैं, वहाँ दूसरा कोई साथी नहीं है। धर्म और अधर्मसे कमाये हुए धनके द्वारा जिसने जिन लोगोंका पालन-पोषण किया है, वे ही मरनेपर उसे आगके मुखमें झोंककर स्वयं घी मिलाया हुआ अन्न खाते हैं। पापी मनुष्योंकी कामना रोज बढ़ती है और पुण्यात्मा पुरुषोंकी कामना प्रतिदिन क्षीण होती है। मनुष्यके कमाये हुए सम्पूर्ण धनको सदा सब भाई-बन्धु भोगते हैं, किंतु वह मूर्ख अपने पापोंका फल स्वयं अकेला ही भोगता है। (महर्षि उतथ्य)

मनोविज्ञानकी विचारसरणिमें इस अध्यात्मसाधनके पथपर योगिराज श्रीअरविन्दको बहुत सफलता प्राप्त हुई। चेतनाके विभिन्न स्तरोंकी परिकल्पनाके साथ-साथ 'अतिमानव'का सृष्टि-विकास तथा भूतलपर देवत्वके स्वयं आविर्भावकी उच्चतम परिकल्पना (Highest hypothesis) भारतके प्राचीन मनीषियोंके सिद्धान्तसे निराली वस्तु है। मूलतः यह परिकल्पना डार्विनके विकासवादकी श्रेष्ठतम आध्यात्मिक परिणति है। इसका परिच्छेद भारतीय है; परंतु सांख्यके परिणामवादसे इसका पूर्णतः मेल नहीं खाता और न पुराणोंका कर्मवाद इसके अनुकूल है।

मनोविज्ञानकी भारतीय परम्परामें पुनर्जन्मका सिद्धान्त पूर्णतः कर्मफलपर आधारित है। इस परम्पराके पूर्ण समर्थक स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—

'It is the Science of Psychology that teaches us to hold in check the wild gyrations of the mind, place it under the control of the will, and thus free ourselves from its tyrannuous mandates. Psychology is therefore the science of sciences without which all sciences, all our knowledge are worthless.'

—(Complete Works Vol. VI. Page 26)

'मानस-शास्त्रका विज्ञान हमको मनकी उच्छृङ्खल प्रवृत्तियोंको निरुद्ध करने, उसको संकल्पशक्तिके नियन्त्रणमें रखने और इस प्रकार मनके अनियन्त्रित शासनसे अपनेको मुक्त करनेकी शिक्षा देता है। इस प्रकार मनोविज्ञान विज्ञानोंका विज्ञान है। इसके बिना सारे विज्ञान, हमारा सारा ज्ञान व्यर्थ है।'

स्वामी विवेकानन्दने इस कथनके द्वारा महर्षि पतञ्जलिके 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।' (१।२)—इस सूत्रके अभिप्रायको व्यक्त किया है। वस्तुतः चित्तवृत्ति अर्थात् मनको उच्छृङ्खल बने रहने देना ही सब अनर्थोंका मूल है। अपने जीवनमें मनका अनियन्त्रित शासन चलने देना अपनेको नरकमें गिराना है। अतः, यहींसे हमारा भारतीय मनोविज्ञान शुरू होता है। प्रश्न यह होता है कि मन है क्या? इसकी कहाँसे उत्पत्ति हुई है? प्रथम प्रश्नका उत्तर योगवासिष्ठके अनुसार है—

अतस्त्वं मन एवेदं नरं विद्धि न देहकम्।
अदो देहो मनश्चात्र न जडं नाजडं विदुः॥
(३।११०।११)

सारांश यह है कि 'मन ही मनुष्य है, देह मनुष्य नहीं है। देह तो जड है, परंतु मन न जड है न चेतन। यह उभयात्मक है। जड-चेतनके बीचमें दुभाषियेका काम करता है। चेतनसे चेतना लेकर जडको चेतनामय बनाता है।'

सांख्यशास्त्र कहता है—

उभयात्मकमत्र मनःसंकल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात्।
गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च॥
(कारिका २७)

'मन ज्ञानेन्द्रियोंके साथ होकर रूप-रस आदि विषयोंका ज्ञान-सम्पादन करता है और कर्मेन्द्रियोंके साथ रहकर वचनादान-विहरणादि कर्मोंका सम्पादक बनता है। भीतर-ही-भीतर नाना प्रकारके संकल्प-विकल्प करता है। सात्त्विक अहंकारसे उत्पन्न होनेके कारण इन्द्रियोंके साथ इसका साधर्म्य है, इस कारण मनको एकादश इन्द्रिय कहते हैं। सत्त्वादि गुणोंका परिणामविशेष होनेके कारण मन नाना प्रकारका होता है और बाह्य इन्द्रिय-व्यापारोंके भेदके कारण मन विभिन्न रूप धारण करता है।' इसी बातको योगवासिष्ठने इस प्रकार व्यक्त किया है—

मनः पश्य [illegible] [illegible] ततम्।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥
[illegible] [illegible] [illegible]।
नाटके नटवदेहे मन एवानुवर्तते॥
(३।११०।१८-१९)

'देखो, मन अपना रूप बदल करता है [illegible] [illegible] आकार [illegible] करता है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] धारण करता है, [illegible] [illegible] होता है, इत्यादि नाना रूपोंसे इस देहकी नाटकमें मन ही नटराज नृत्य करता है।'

सारांश यह है कि मन ही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। तात्पर्य [illegible] [illegible] [illegible] यही है कि मनपर नियन्त्रण एक नियम है। यदि नियन्त्रण न किया [illegible] मन दुर्बल [illegible] हो जायगा। इस

या क्रिया कहना भी ठीक नहीं है। वेदान्तसूत्र (२ । ४ । ९) में इसका खण्डन है—'न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्।'— अर्थात् 'प्राण वायु और क्रिया नहीं है; क्योंकि श्रुतिमें वायुसे पृथक् प्राणका उपदेश है।' जैसे—

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ॥
(मुण्डक० २ । १ । ३)

'आत्मासे प्राण, मन, सारी इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, अग्नि, जल और सबको धारण करनेवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है।'—यहाँ स्पष्टरूपसे प्राण और वायुका पृथक्-पृथक् निर्देश किया है; अतएव प्राण वायु नहीं है, पृथक् तत्त्व है। परंतु सांख्यने प्राणको वायु कहकर भी पृथक् तत्त्व नहीं माना है। जैसे—

स्वालक्षण्यं वृत्तित्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ॥
(सांख्यकारिका २९)

'मन, बुद्धि और अहंकारकी विशेष स्वालक्षण्य-वृत्ति है। मन मनन करता है, बुद्धिद्वारा बोध (ज्ञान) होता है और अहंकारकी अहं (मैं और मेरा) वृत्ति है। परंतु करण, अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियकी प्राणादि पञ्च-वायु सामान्य वृत्ति हैं।' अभिप्राय यह है कि इन्द्रियाँ पञ्च-प्राणके साथ ही अपने-अपने विषयोंमें वर्तती हैं। वस्तुतः मनसे पृथक् प्राणको तत्त्वरूपमें ग्रहण करना ठीक नहीं है। 'वाक्' मनका स्वरूप है और प्राण 'गति' है।

पुनर्जन्मके सिद्धान्तको समझनेके लिये प्राणके स्वरूपको समझना आवश्यक समझकर कुछ विस्तारपूर्वक इसकी आलोचना की गयी है। इसके द्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि मन ही वस्तुतः जीवन-मरणमें मुख्य तत्त्व है। आश्चर्यकी बात है कि पाश्चात्त्य मनोवैज्ञानिक श्रीएफ० डब्ल्यू० बेलिस (F. W. Balls) साहबने भी यही बात निष्कर्षरूपसे कही है। जैसे—

'Man is not a body consisting a mind. He is a mind operating through a body. The body itself is the result of the activity of mind, is moulded by mind and changed by mind.'

'मनुष्य मनके साथ शरीर नहीं है। वह शरीरके द्वारा कार्य-सम्पादन करनेवाला मन है। शरीर स्वयं मानसिक कर्मोंका परिणाम है, मनके द्वारा गठित हुआ है और मनके द्वारा परिवर्तित होता है।' सच है, शरीर मनके हाथका खिलौना है। वह शरीरको जिधर, जिस रूपमें चाहता है, चलाता-फिराता है। शरीरके द्वारा मन मौज करता है और शरीररूप अपनेको मानकर नाना प्रकारके शारीरिक क्लेशोंका कर्ता-भोक्ता भी बनता है। मन ही शरीरको नीरोग रखता है और वही उसको रोगी बनाता है। मन ही शरीरको रोगोंके द्वारा जर्जर बनाकर उसे मार डालता है और मन ही लिङ्गशरीरको लेकर पुनर्जन्मका हेतु बनता है।

'उभयात्मकं अत्र मनः'—पूर्वजन्ममें क्रियमाण कर्मोंका कर्ता मन है और उनको प्रारब्धके रूपमें लेकर इह-जन्ममें उनका भोक्ता भी मन ही है। यही बात वर्तमान जन्म और अगले जन्मके विषयमें है। ये तो व्यक्तिके विषयमें व्यष्टि मनके क्रियाकलाप हैं। जरा आँखें खोलकर विश्वमें चारों ओर कला-कौशलकी वस्तुएँ, आलीशान मकानात, सुन्दर सड़कें, इञ्जिनियरिंगकी आश्चर्योत्पादक निर्माणकला, विज्ञानके रेल, तार, जहाज, वायुयान आदि तथा जीवनोपयोगी नाना प्रकारके विविध प्रकारके प्रसाधन-सामग्रियोंका अम्बार, ज्ञान-विज्ञानके सारे साधन, मानव-संस्कृति और सभ्यताको व्यक्त करनेवाली वस्तुएँ इत्यादिको देखिये। ईश्वरीय सृष्टिके मुकाबले एक अद्भुत मानवीय सृष्टि आपको दीख पड़ेगी। यह सब कुछ मनुष्यके मनके करिश्मे (achievements of human mind) के सिवा क्या है? मानवके समष्टि मनके करिश्मोंको देखकर आप चकित हो जायँगे। अनादिकालसे मानवके समष्टि मनने सृष्टिमें अपने भोगके लिये जो कुछ बनाया-बिगाड़ा है तथा इस समय जो कुछ उसके कर्तृत्वकी निशानी या बानगी मौजूद है, वह अशेष है, अपार है, अनन्त है। इसीलिये कहना पड़ता है कि समष्टि मन 'परमात्माका मन' है और यह सारी सृष्टि परमात्माकी सृष्टि है।

ऊपर जो मनके विषयमें कहा गया है कि मन अनादि इन्द्रियविषयोंमें आसक्त होकर बन्धन (जन्म-मृत्यु)का कारण बनता है, वह पुरुषरूपसे मनके संग है। प्रकृति और पुरुष दोनों 'विभु' हैं। विभुका अर्थ है—कालातीत और देशातीत; देश और काल प्रकृति और पुरुषको सीमित नहीं कर सकते। मन और मनुष्यशरीर विभु नहीं हैं;

मृत्यु-संसार-सागरसे पार उतारते हुए भगवान् (गीता १२ । ७)

सेवाका फल भगवत्प्राप्ति

भोगका फल दुःखप्राप्ति

अणु-स्वभावके हैं। देश (दिक्) और काल कोई तत्त्व नहीं हैं, उपाधि हैं। इनको साथ लेकर ही मन अपने व्यापारमें लगता है। मन जो कुछ बाह्य विषयोंका ज्ञान प्राप्त करता है, उसके साथ देश और काल लगे रहते हैं। देश-कालके परे मनकी गति नहीं है और न मनकी गतिसे अस्पृष्ट देश-कालकी स्थिति है। देश और कालका व्यवधान हमारे मनमें है। समीप और दूर, अतीत और भविष्य मानसिक कल्पनामात्र हैं। वस्तुतः इनका कोई अस्तित्व नहीं। सांख्यकारिकामें कहा है कि—

'प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद् व्यवतिष्ठते लिङ्गम्।' (४२)

'लिङ्ग-शरीर प्रकृतिके विभुत्वके कारण नटके समान नाना रूपमें (नाना योनियोंमें जन्म लेकर) क्रीड़ा करता है।' भावोंसे अधिवासित अर्थात् इहजन्मके कृतकर्मोंके सूक्ष्म संस्कारसे युक्त लिङ्ग-शरीर बिना स्थूलशरीरके रह नहीं सकता। इसलिये मृत्युके बाद मानसिक आतिवाहिक शरीरसे संलग्न होकर वह गतिशील होता है। प्रकृति और पुरुषके विभुत्वके बाहर उसे नहीं जाना पड़ता। जैसे इहलोक और इसके सारे व्यापार प्रकृति-पुरुषके विभुत्वके भीतर ही हैं, उसी प्रकार लोक-लोकान्तर भी इसके भीतर ही हैं। वस्तुतः भावोंसे अधिवासित लिङ्ग-शरीर और ये भोगार्थ परिकल्पित लोक-लोकान्तर सब कुछ मानसिक हैं; प्रकृति और पुरुषके संयोगके कारण प्रकृति अर्थात् भावोंके विलासमात्र हैं। मन स्वभावतः विषयात्मक है, तभीतक यह जन्म-जन्मान्तर और लोक-लोकान्तरके मानसिक चक्करमें पड़कर परेशान हो रहा है। जब यह निर्विषय हो जायगा तब यह सारी परेशानी दूर हो जायगी।

यह मनकी विषयोंमें आसक्ति ही मूलतः पुनर्जन्मका कारण है, यह स्पष्ट हो गया। इस विषयासक्तिका परिणाम दुःख है। मनःसंतापका यही मूल कारण है। मनको जो विषयभोग प्राप्त होता है, उसका संस्कार मनपर पड़ता है और उसको अधिकाधिक भोग प्राप्त करनेकी इच्छा होती है। मनकी कभी इस भोगसे परितृप्ति नहीं होती। यही अतृप्तिकी वासना उसके पुनर्जन्मका कारण बनती है। अतएव इस वासनासे मनको मुक्त करनेसे ही पुनर्जन्मके दुःखसे जीवको त्राण मिल सकता है। इसके लिये विभिन्न सम्प्रदाय विभिन्न प्रकारकी साधनाका निर्देश करते हैं। परंतु कलिमें एकमात्र भगवन्नाम ही आधार है। गोस्वामीजीने ठीक ही कहा है कि—

कलि केवल हरि नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा॥

शास्त्रमें भी कहा है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

आचरणको पवित्र रखकर नाम-स्मरणकी साधनासे अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरणके शुद्ध होनेसे मन विषय-वासनासे विरक्त हो जाता है। इस प्रकार कृपाको प्राप्तकर कृतार्थ होता है और पुनर्जन्मके चक्करसे उसे त्राण मिलता है तथा उसका मानव-जीवन सफल हो जाता है। इसके सिवा संसारके लिये दूसरा कोई सरल उपाय नहीं है।

निष्काम भावसे नारायणकी पूजा करो

तुम प्रतिदिन सर्वभेद्य भगवान् विष्णुका भजन करो। सर्वशक्तिमान् श्रीनारायणका चिन्तन करते रहो। दूसरोंकी निन्दा और चुगली कभी न करो। महात्मो! सदा परोपकारमें लगे रहो। भगवान् विष्णुकी पूजामें मन लगाओ और दूसरोंसे मिलना-जुलना छोड़ दो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य छोड़कर लोकोंको अपने आत्माके समान देखो—इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। ईर्ष्या, दोषदृष्टि तथा दूसरोंकी निन्दा भूलकर भी न करो। दम्भ, प्रमाद, अहंकार और कृपणता सर्वथा त्याग करो। सब प्राणियोंपर दया तथा साधु पुरुषोंकी सेवा करते रहो। अपने किये हुए सत्कर्मोंको पूछनेपर भी दूसरोंपर प्रकट न करो। दूसरोंको अत्याचार करते देखो, यदि शक्ति हो तो उन्हें रोको, उपेक्षा न करो। अपने कुटुम्बका विरोध न करते हुए सदा अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करो। पत्र, पुष्प, फल अथवा दूर्वा आदि वस्तुओंद्वारा निष्कामभावसे जगदीश्वर भगवान् नारायणकी पूजा करो। (ऋषि [illegible])

'कालोऽस्मि' (११ । ३२)

'कालः कलयतामहम्' (१० । ३०)

'अहमेवाक्षयः कालो' (१० । ३३)

'तस्मात्सर्वेषु कालेषु' (८ । ७, २७)

'यमः संयमतामहम्' (१० । २९)

अतएव भगवान् ही महाकाल हैं। वही ब्रह्माण्डके परम प्रशासक हैं—ईश्वर हैं। वे एकमात्र अपरिमित हैं। कालावधिवाले समस्त देव, लोक-ब्रह्माण्ड आदि परिमित हैं। श्रीमार्कण्डेयपुराणके अनुसार "प्रत्येक मन्वन्तरके अन्तमें मन्वराज मनुके साथ देवता, ऋषि, पितृगण तथा इन्द्रादि समस्त पदाधिकारी बदल जाते हैं। कालके परम प्रशासक (ईश्वर) भगवान् महाकाल ही 'अक्षर' रहते हैं।[1]"

'पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।' (पातञ्जल-योगदर्शन १ । २६) निष्कर्षतः ब्रह्मलोक आदि अवधिवाले हैं; अतएव अनित्य हैं। (ब्रह्मणः अहः रात्रि-गीता ८ । १७) एकमात्र ईश्वर भगवान् महाकाल ही कालातीत हैं।

जिस वस्तुको किसी प्रकार सीमित करना सम्भव न हो, उसे ही 'असीम' कहा जायगा। असीमताको ही व्यापक समझा जाता है। सापेक्ष काल (समय) को 'संख्या' द्वारा सीमित किया जा सकता है; किंतु निरपेक्ष महाकालको सीमित नहीं किया जा सकता। अतएव 'महाकाल' पुरुष अनादि है, व्यापक है। 'काल'में संख्या, परिमाणादि गुण हैं; इसलिये वह 'सादि' हुआ। सभी लोक एवं देव पद धारी अवधि (संख्या) वाले हैं, अतएव नश्वर हैं, 'सादि' हैं। 'सादि' मृत्युरूप है; असत् है। 'अनादि' अमृतरूप है; सत् है। इसलिये काल मृत्युरूप है। मृत्यु ही यमराज हैं।[2] महाकाल अनादि है, अमृत है; अतएव वही कालातीत भगवान् महाकाल हैं। वह सत्, असत् और सदसत्से परे परात्पर ब्रह्म है।

प्रत्येक वस्तु देश और कालसे ही सीमित होती है; किंतु कालातीत महाकालसे शक्तिरूपमें अनन्तकाल (संख्या रूपमें) उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। वही 'एकोऽहं बहु स्याम' रूप है। काल उन्हीं भगवान्‌की शक्तिका रूप है। माया अव्यक्त प्रकृति है। भगवान् महाकालकी शक्ति अनन्त है। तदनुसार उनके रोम-रोममें (अनन्त) ब्रह्माण्ड हैं। उनका कालचक्र अनन्त है। उसके द्वारा वह नियतिरूपमें सात लोक, चौदह-भुवनपर शासन कर रहे हैं। उन्हींके द्वारा सृष्टि-प्रलय (कालचक्र) संचालित है। जैसा कि अथर्व श्रुति कहती है—

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात्तपः कालादजायत ॥
(अथर्व १९ । ५३ । ५, ८, १०)

कालातीत भगवान् शिवकी शक्ति (माया) महाकाली है। यह भी 'कालरूपम्' है। 'कलनात्सर्वभूतानाम्, अर्थात् 'काल ही सब पदार्थोंका कलन कर्ता है।'

'कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः ।'

'कालसे ही सभी भूत-पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है तथा उसीमें सब लय हो जाता है।'

इसी काल-चक्र (भव-चक्र) में फँसकर भ्रमात्मक जीव असहाय होकर कालका चबेना बनता है। 'संशयात्मा विनश्यति ।' (गीता ४ । ४०) और फिर 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ॥' को चरितार्थ करता हुआ नाना योनियोंमें घूमता रहता है।

अतएव कालातीत भगवान् महाकाल, जो कालसे परिमित नहीं हैं, वही एक परात्पर हैं। उन्हींका एकमात्र आश्रय लेना चाहिये। तभी सुरक्षित 'काल' का सीधा इस तरह अतिक्रमण हो सकता है; भगवान् मार्कण्डेयकी भाँति 'काल-गति'को अवरुद्ध किया जा सकता है और नचिकेताकी भाँति 'काल-सत्य'का ज्ञान हो सकता है।

---

१. 'कल्याण' का शिवांक, अङ्क, पृ॰ ५०।

२. [illegible]उपनिषद्में 'मृत्यु' और 'यम' दोनों ही रुद्रदेवके पर्याय हैं।

(ङ) आत्मा अप्रमेय है—काल भी अप्रमेय है; क्योंकि काल स्वयं अप्रमाणित रहता हुआ दूसरोंको प्रमाणित करता है।

३—इन उपर्युक्त अतीत गुणोंके तुलनात्मक विवेचनसे तो 'आत्मा' और 'काल'में कोई भी भेद प्रतीत नहीं होता है। तो क्या आत्मा और काल एक ही वस्तुके दो नाम हैं ? पाठक तनिक गम्भीरतासे विचार करें। इस प्रकार तो काल सर्वातीत प्रतीत होता है; क्योंकि यह स्वयं अतीत रहता हुआ सबको व्यतीत कर देता है। अच्छा, तो विवेचनद्वारा जहाँ इस समय हम पहुँचे हैं, वहाँ तो यह प्रतीत होता है कि यह काल हमारी आत्माकी समानता करता हुआ कहीं हमारे आत्माका ही अन्त तो नहीं कर देगा ? चलो देखें, काल कहाँतक आत्माकी समानता कर सकता है ?

(क) आत्मा स्वयंप्रकाश है और अपने प्रकाशद्वारा दूसरोंको भी प्रकाशित करता है। आत्मचेतना ही आत्म-प्रकाश है। यह आत्मचेतना जब बुद्धिमें पहुँचती है तो बुद्धिको प्रकाशित करती है। इसी प्रकार मन, चित्त, इन्द्रियाँ, शरीर सबको प्रकाशित करती है। फिर इन बुद्धि, मन, चित्त, इन्द्रियोंद्वारा ही समस्त संसारको प्रकाशित करती है अर्थात् सबके अस्तित्वको सिद्ध करती है। इस आत्माके प्रकाश बिना हमारी बुद्धि सोच-विचार-निश्चय कुछ भी नहीं कर सकती, चित्त स्मृति रूप नहीं कर सकता, मन संकल्प-विकल्प नहीं कर सकता, आँखें देख नहीं सकतीं, कान सुन नहीं सकते, नाक गन्ध नहीं ग्रहण कर सकती, त्वचा स्पर्श अनुभव नहीं कर सकती और जिह्वा स्वाद नहीं चख सकती है। आत्माके चेतनप्रकाशसे ही चैतन्य होकर सब कार्यशील बनते हैं—तो क्या काल भी इस प्रकार स्वयंप्रकाश है ? क्या यह भी इसी प्रकार हमारी बुद्धि, मन, चित्त, इन्द्रियों, शरीर, संसार सबको चेतना देता है ? ऐसा देखा सुना-पढ़ा है क्या कहीं हमने ? कदापि नहीं ! काल स्वयं हमारी आत्मचेतनाद्वारा प्रकाशित होता है, हमारी आत्मचेतनाद्वारा प्रमाणित होता है। हमारी आत्मचेतना न हो तो बुद्धि, मन, चित्त, इन्द्रियाँ, शरीर, देश, काल, वस्तु, संसार कुछ भी प्रमाणित नहीं हो सकता। आत्मा और कालके भेदका यह पहला स्पष्टीकरण है।

(ख) आत्मा सर्वशक्तिमान् है। जैसे यह एक पिण्डको शक्ति देता है, वैसे ही ब्रह्माण्डको भी यही एक आत्मा शक्ति देता है। क्या काल भी सर्वशक्तिमान् है ? क्या काल भी पिण्ड और ब्रह्माण्डको शक्ति देता है ? कदापि नहीं। इसका प्रयोजन तो कालगणना अथवा कालमान ही है। यह काल स्वयं आत्मशक्तिद्वारा गतिमान् है, आत्माद्वारा प्रमाणित है—यह किसीको शक्ति क्या देगा ? भेदका यह दूसरा स्पष्टीकरण है।

(ग) आत्मा ज्ञानस्वरूप है, अनुभवस्वरूप है। क्या काल भी ज्ञानस्वरूप तथा अनुभवरूप है ? कदापि नहीं ! जो स्वयंप्रकाश नहीं है, स्वशक्तिमान् नहीं है, वह ज्ञानस्वरूप अनुभवरूप कैसे हो सकता है ? कालद्वारा आत्मा प्रमाणित नहीं है; परंतु आत्माद्वारा काल प्रमाणित है; क्योंकि आत्मा कालको जानता है, काल आत्माको नहीं जानता है। यह तीसरा भेद है।

४—इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि काल एक 'अचेतन तत्त्व' है और आत्मा 'चेतन तत्त्व' है। अचेतन-तत्त्व चेतन-तत्त्वके द्वारा ही प्रमाणित होता है; नहीं तो कालके, अचेतनकी क्या सत्ता है ? यह काल आत्म भगवान्‌से ही सत्ता पाकर समस्त संसारको भयभीत करता रहता है, स्वयं अचेतन है। यह स्वयं आत्म भगवान्‌से भयभीत रहता है। तभी तो शास्त्रोंमें आत्माको कालका भी काल बताया है। अब बताइये कि क्या काल हमारे आत्मापर शासन कर सकता है ? यह तो जो आत्मा परमात्मासे विमुख हैं, उनपर शासन करता है अर्थात् अनात्म उपासकोंपर शासन करता है—उन्हींका ही अन्त करता है। आत्मा परमात्मा तथा इनके उपासकोंका यह काल क्या बिगाड़ सकता है ? फिर भी काल आत्मा तथा परमात्माका किंकर बना है, उनका प्रभुत्व स्वीकार करता है। आइये, अब हम काल और इनके सम्बन्धपर विचार करें कि भगवान्‌से इसका क्या सम्बन्ध रहता है ?

५—अब इसपर विचार करना चाहिये कि यह जो कुछ समस्त चराचर [illegible] विद्यमान है—यह कुछ कालका ही बना हुआ है अथवा कालके अतिरिक्त कोई और तत्त्व भी इसके निर्माणमें विद्यमान है ? [illegible] निर्माणमें [illegible] कारण [illegible] 'अनु, परमाणु' ही है। [illegible] [illegible] है—यह [illegible] समझना है—

> वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
> नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
> तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
> न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
> (२ । २०, २२)

जब हमें यह ज्ञान हो जाता है कि हम अमर आत्मा हैं, हम शरीर नहीं हैं; तो बताइये फिर हमारे आत्माके आगे कालका क्या स्वरूप रह जाता है। काल तो इन अनात्मपदार्थोंसहित अभावरूप ही सिद्ध होता है। यही वह आत्मा है, जिसका कभी अभाव नहीं है और यही वह अनात्म-शरीर पदार्थ हैं कि जिनका कभी अपना अस्तित्व नहीं है। आत्माके अस्तित्वसे इनका अस्तित्व है—नहीं तो, नित्य इनका अभाव ही है। गीतामें कहा है कि 'सत् वस्तुका कभी अभाव नहीं है और असत्का कभी अस्तित्व नहीं है।'—

> नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
> उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥
> (२ । १६)

इस प्रकार सत्य और असत्य वस्तुका तत्त्व जान लेना ही कालचक्रसे निवृत्तिका स्वरूप है; क्योंकि आत्मामें—सत्य वस्तुमें, काल और कालचक्रका नित्य अभाव है। इस प्रकार जब हम अपनेको कालातीत जान लेते हैं और इसी कालातीत तत्त्वका अपनेमें तथा दूसरोंमें दर्शन करते हैं, तो हमें दूसरे भी मुक्तस्वरूप दीखते हैं; क्योंकि उनका और हमारा आत्मा एक ही है, जो नित्यमुक्त है। आत्मा तो सब जीवोंका मुक्त है—फिर हम क्यों अपने तथा दूसरोंके लिये परेशान होते हैं। सब जीवोंका आत्मा कालातीत है; परंतु सबके अनात्मशरीर काल-परिधिमें हैं। तो ये शरीर यदि काल-परिधिमें हैं, तो होते रहें—हमें अनात्माओंको थोड़ा ही मुक्त करना है। हमें तो जीवोंका अज्ञान (भ्रम) दूर करना है। अज्ञानमें काल भी है और कालचक्र भी है। ज्ञानमें न काल है और न कालचक्र है। यह <u>सिद्धान्त है। यह आत्मज्ञानद्वारा काल-निवृत्ति है।</u>

योग—

७. आत्मा ही ज्योतिःस्वरूप है। उसकी ज्योतिसे सूर्य, चाँद, तारे, लोक-लोकान्तर सबका ब्रह्माण्ड देदीप्यमान हैं। आत्मा अमर है तो उसकी ज्योति भी अमर है। इस प्रकार ज्योतिदर्शन भी काल-निवृत्तिका उपाय है—अथवा अमर विभूतिमें निवास पाना है। सुषुम्णा-मार्ग सारा ज्योतिर्मय मार्ग है। यही वह अर्चि-मार्ग है कि जिसके द्वारा गया योगी लौटता नहीं है। सुषुम्णा-द्वारपर कुण्डलिनी-शक्ति विद्यमान रहती है। कुण्डलिनी अग्नि-स्वरूपा है, अर्थात् ज्योतिर्मयी है। जब यह योगद्वारा जाग्रत् होती है तो इडा-पिङ्गलारूपी श्वास प्रश्वासको निगल जाती है और सुषुम्णा-द्वारमें प्रवेश पा जाती है। योग-द्वारा कुण्डलिनीको जाग्रत् करके यही सुषुम्णारूपी ज्योतिःपथ खोला जाता है। इस मार्गसे गया योगी मस्तिष्कमें शिवरूपी परम ज्योतिमें समा जाता है—यही वह 'मूर्द्धा ज्योति' कहलाती है। श्वास-प्रश्वासका सुषुम्णामें लय होना ही 'कालातीत पद'पर आरूढ़ होना है। सुषुम्णा-रूपी ज्योतिर्मय मार्ग कालातीत है। इस मार्गद्वारा योगी कालातीत धाममें पहुँचता है। यह योगद्वारा काल-निवृत्ति है।

भक्ति—

८. परमात्मा नित्य-सत्य, नित्य-चेतन तथा नित्य-आनन्दस्वरूप है। जीवात्मा भी परमात्माका अंश होनेके हेतु सत्+चित्+आनन्दरूप है। जीवको अपने सच्चिदानन्द रूपका ज्ञान नहीं है। जिस पूर्णका यह अंश है, वह पूर्ण स्वयं अंशसे अभिन्न है। इस अभिन्नताका ज्ञान अंशको नहीं है। परमात्मा चेतन है तो उसका अंश भी चेतन स्वाभिक है। चेतन अंशका जड़ अंशके साथ कोई सजातीय सम्बन्ध तो हो नहीं सकता है, परंतु जीवात्मा अपने पुरातन नित्य सम्बन्धको, जो परमात्मासे है, भूलकर जड़ शरीरों—पदार्थोंसे सम्बन्ध जोड़ बैठा है। यह भूल ही अज्ञान है, यही भ्रम है। जब अंशको, अर्थात् जीवको यह ज्ञान हो जाता है कि मेरा वास्तविक नित्य सम्बन्धी तो परमात्मा है; ये जड़ शरीर—पदार्थ नहीं हैं; तो उस जीवके हृदयमें एक उत्कण्ठा पैदा हो उठती है, जिस ज्वालाको (Divine Spark) 'दिव्य चिनगारी' कहते हैं अथवा भगवदनुराग, भगवद्भक्ति, अथवा दिव्य प्रेम कहते हैं। यही भक्तिका आरम्भ है। इसी भावसे प्रकाश और अपने कृत्रिम सम्बन्धोंको तोड़कर अपने परम चिन्मय भगवान्‌की खोजमें निकल पड़ता है और दिन-रात, भूख-प्यास, शीत-उष्ण सब भूल हुआ

परमात्मा सबमें सोपानरूपसे रहता हुआ भी हमारे साक्षात् दर्शनकी धारणाद्वारा सजातीय आकर्षण पाकर, उन सबके मलरूपी आवरणोंको हटाता हुआ हमसे अभिन्न हो जायगा। इस प्रकार जो अध्यात्मकी ओर नहीं भी आना चाहते, अथवा अध्यात्मसे विमुख हैं, वे भी पहले अज्ञानरूपसे, फिर ज्ञानरूपसे अपना परिवर्तन प्रतीत करते हुए हमसे समरूप होते जायँगे। जब हम भगवद्धारणाद्वारा एक पत्थरमेंसे भगवान्‌को प्रकट कर सकते हैं तो क्या चेतन जीवोंमेंसे आत्मतत्त्व अथवा परमात्मतत्त्वको हम बाहर व्यक्त नहीं कर सकते ? यह संसार तो पहले ही भगवद्रूप है। हमें तो अपना तथा दूसरोंका अज्ञानरूपी मल धोना है। जब हम इस दूसरे सोपानमें सफल होंगे तो समस्त संसार सच्चिदानन्दरूपमें व्यक्त हो जायगा। इस प्रकार काल तथा कालचक्र भी सच्चिदानन्दरूपमें ही परिणत हो जायगा। इस प्रकार समस्त संसारकी काल-निवृत्ति सम्भव है—यह समष्टि-साधनाका सोपान है।

कर्मका श्रेणी-विभाग और क्लिष्ट-अक्लिष्ट कर्म

(लेखक—महामहोपाध्याय श्रद्धेय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०, डी० लिट्०)

(१)

कर्मका श्रेणी-विभाग

कर्मका श्रेणीविभाग विभाजन-धर्मके अनुसार नाना प्रकारका है। उनमें एक विभाजन-धर्मके प्रति कर्मके पृथक्-पृथक् कृत्य हैं। तदनुसार कर्मका इस प्रकार श्रेणीविभाग होता है। प्रथम कर्म 'जनक', द्वितीय 'उपष्टम्भक', तृतीय 'उपपीडक' और चतुर्थ 'उपघातक' होता है। जनन, उपष्टम्भन आदि कर्मके विभिन्न कार्य हैं। उनको विभाजक धर्मके रूपमें स्वीकार करके इस प्रकारके विभाग किये जाते हैं। इसको भलीभाँति समझ लेना आवश्यक है। प्रत्येक कर्मके कृत्य विभिन्न प्रकारके होते हैं। प्रतिसंधि या उत्पत्ति-स्थानमें फल प्रदान करनेके क्रमके अनुसार कर्मका श्रेणीविभाग हुआ करता है। इसके अतिरिक्त समस्त जीवनकी प्रवृत्तिके समयमें भी फलप्रदानके समयके अनुसार भी कर्मका भेद होता है। यह अत्यन्त जटिल रहस्य है। याद रखनेकी बात है कि जीवनके दो अंश हैं—एक है 'प्रवर्तन' और दूसरा है 'प्रतिसंधि'। प्रतिसंधिसे प्राणनकी धारा चलती है। यही भव या संसार है। प्राणनकी जहाँ समाप्ति होती है, वहाँ है च्युतिक्षण। च्युतिके बाद भी दूसरी अवस्थाएँ हैं। प्रतिसंधिक्षणके बाद भव या संसारके च्युतिपर्यन्त प्राणन 'भव' कहलाता है। शुभ और अशुभ चेतना ही जनक कर्म कहलाती है। यह चेतना जीवनधारामें विपाक या कर्मफल उत्पन्न करती है। [illegible] भावी प्रथम क्षणसे ही विपाक उत्पन्न होने लगता है। जीवनधारामें अन्तराल कर्मोंके द्वारा जनक कर्म यदि पुष्ट होता है या बाधाको प्राप्त होता है तो वह विपाक उत्पन्न कर सकता है अथवा बाधित होता है। उपष्टम्भक कर्म जनक कर्मकी सहायता करता है या पुष्ट करता है अर्थात् फलोत्पादनमें उसकी सहायता करता है। उपपीडक कर्मका कार्य है—जनक-कर्मके विपाकको बलहीन करना। इसका प्रधान उपाय है—उपष्टम्भक-कर्मको सदा और सर्वत्र बाधा प्रदान करना। उद्देश्य यह होता है कि उपष्टम्भक-कर्म यदि बाधाको प्राप्त होगा, तो जनक कर्मको अपना विपाक-साधन करनेमें बाधा होगी। आचार्यगण कहते हैं कि शुभ उपपीडक कर्म अशुभ उपष्टम्भक कर्मको और अशुभ उपपीडक कर्म शुभ उपष्टम्भक कर्मको बाधा प्रदान करके दुर्बल बना देता है। उपघातक कर्म उपपीडकके समान बाधक तो होता ही है, साथ ही उपष्टम्भक कर्मको ध्वंस करके अपना फल उत्पादन करनेकी चेष्टा करता है। दार्शनिक लोग इसे एक दृष्टान्तके द्वारा समझाया करते हैं। कल्पना कीजिये कि एक आदमीने एक पत्थर ऊपर फेंका। वह पत्थर कुछ दूर ऊपर जाकर गिर पड़ा। यहाँ उस आदमीका हस्तव्यापार, जिसके द्वारा पत्थर ऊपर उठा, जनक कर्मका दृष्टान्त है। पत्थरका प्रहार उपष्टम्भक कर्मका दृष्टान्त है; क्योंकि यह प्रहार ही गतिका परिपोषक है। पत्थरके ऊपर उठनेमें वायुकी बाधा उपपीडक कर्मका दृष्टान्त है। माध्याकर्षण शक्तिकी बाधा उपघातक कर्म है। सर्वत्र इसी प्रकार समझ लेना चाहिये।

स्मरण करना अनुचित है।' स्मरण करनेपर वह हानिकारक होता है। उस समय वह 'आचरित कर्म' के रूपमें परिणत हो जाता है।

इस प्रकार हमने तीन प्रकारके कर्मोंके फल और स्वरूपका विवरण देख लिया। गुरु-कर्म, मुमुर्षुका अनुस्मृत आसन्न-कर्म और प्रतिदिन नियमित रूपसे जिस कर्मका आचरण होता है अर्थात् जिसको आचरित-कर्म कहते हैं। इन तीनों प्रकारके कर्मोंके विषयमें कहा जा चुका है। इसके सिवा शुभ या अशुभ जो भी कर्म हों, सबके सब वर्तमान जीवनके या अतीत जीवनके सभी कर्म 'उपचित कर्म' के नामसे प्रसिद्ध हैं। उपचित कर्मकी शक्ति उपर्युक्त तीन प्रकारके कर्मोंसे कम होती है।

इन चार प्रकारके कर्मोंमें गुरु-कर्म ही अगले जन्मके नियामक बनते हैं। उनके अभावमें आसन्न-कर्म नियामक बनते हैं। आसन्न कर्म न हों तो आचरित-कर्म यह स्थान ग्रहण करते हैं। यदि इन तीनोंका अभाव हो तो एकमात्र उपचित-कर्मके द्वारा भावी जीवन नियन्त्रित होता है।

(२)

कर्मफल-प्रदानके समय नियामक कौन है ?

इसके बाद प्रश्न यह होता है कि कर्म फल प्रदान करते हैं, यह तो समझमें आ गया, पर इस फल प्रदानके कालका नियामक क्या है ? अर्थात् कर्मसे फलकी उत्पत्ति कब होगी, उस फलकी उत्पत्ति कब होती है ? इस विषयमें साधारण नियम है कि कर्म तीव्ररूपसे अनुष्ठित होनेपर उसकी फलोत्पत्ति शीघ्र होती है। यह तीव्रता आश्रयगत और विषयगत दोनों ही हो सकती है, अर्थात् जो कर्म करता है, वह यदि तीव्र भावसे उसे करता है तो फल-प्राप्ति आसन्न होती है और यदि कर्मका विषय किसी उच्च स्तरका होता है तो उससे भी कर्मकी तीव्रता सिद्ध होती है। यह नाना प्रकारके औपाधिक कारणोंसे भी हो सकता है। काल-विशेष, स्थान-विशेष अथवा अन्य किसी उपाधि-विशेषके द्वारा कर्मकी तीव्रतामें वृद्धि हो सकती है। कौन-सा कर्म किस समय फल प्रदान करेगा, इसको भलीभाँति समझनेके लिये जवन तत्त्वको समझना आवश्यक है। 'जवन' शब्दका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। जवन शब्दका अर्थ वेग है अर्थात् सक्रिय रूपसे चित्तके द्वारा आलम्बनकी उपलब्धि। बौद्ध मनीषियोंने 'संस्कृत चित्त' और 'जवन चित्त' के रूपमें चित्तके दो भाग किये हैं। संस्कृतका अभिप्राय है शिथिल और मन्दगति (slow and dull) चित्त। इस [illegible] चित्तके वेग और उसकी मात्राके विचारके प्रसङ्गमें उन्होंने सात जवनोंका उल्लेख किया है। जवन चित्तके ये सात क्षण विशेषरूपसे आलोचनीय हैं। इन सात क्षणोंमें प्रथम क्षण चित्त 'निश्चिन्ततः' या 'अनिर्दिष्टतः' रहता है। इसी अवस्थामें वह आलम्बनको ग्रहण करता है। द्वितीय क्षणमें अधिक स्पष्ट ग्रहण करता है। यही द्वितीय जवन है। प्रथम क्षणमें इच्छाशक्ति (will) अस्फुट होती है, द्वितीय क्षणमें अधिकतर स्फुट हो जाती है। उस समय उसको 'स्वबोध' कहते हैं अर्थात् जिसको स्वबोध—(self awareness) कहा जाता है। यह परिस्फुट होता है। प्रथम क्षण ठीक जवन चित्तके रूपमें परिचित होने योग्य नहीं होता। यह बहुत कुछ स्रोतके अधीन रहता है। जवन चित्त ठीक अनुकूल प्रतिकूल उभय क्षेत्रमें काम करता है। जवन चित्तमें सात चित्तक्षणकी क्रिया होती है। प्रथम क्षण अति दुर्बल है; क्योंकि इसमें प्रथम उत्पन्न होनेके कारण अभ्यासजनित संस्कारकी अनुकूलता नहीं होती। इसी कारण प्रथम क्षणसे द्वितीय क्षण प्रबल होता है, तृतीय क्षण और भी प्रबल होता है। चतुर्थ क्षण सर्वाधिक प्रबल होता है। इसके बाद वेगका ह्रास होने लगता है। पञ्चम कुछ दुर्बल होता है। षष्ठ अधिक दुर्बल होता है। सप्तम सबसे दुर्बल होता है। प्रथम जवनका विपाक उसी जन्ममें फल देता है; यदि किसी कारणवश फल न दे सके तो क्षीण हो जाता है। सप्तम जवनका फल अत्यन्त कम होता है, अतएव इस जवनका फल अगले जीवनमें फलता है। फल न दे सकनेपर वह क्षीण हो जाता है। मध्यवर्ती जवनोंकी शक्ति निर्वाणप्राप्तिपर्यन्त समाप्त नहीं है, क्षीण नहीं होती। पहले कह चुके हैं कि प्रथम जवनका कर्म इसी जीवनमें फल दे देता है। इसलिये आचार्यगण 'दृष्टधर्मवेदनीय कर्म' कहते हैं।

जिस जन्ममें कर्मानुष्ठान होता है, यदि किसी विशेष कारणसे उस जन्ममें वह फल प्रदान न कर सके तो वह कभी फल प्रदान नहीं कर सकता। वह [illegible]

है; परंतु अक्लिष्ट कर्म संस्कारनाशक है। परमेश्वरके स्वरूपमें किसी प्रकारके कर्मका ही स्पर्श नहीं है। कर्मविज्ञान अति जटिल रहस्य-स्वरूप है। चित्त मनुष्यके जालके समान है। यही ग्रन्थियुक्त कर्मका आश्रय है। अनादिकालसे क्लिष्ट कर्मकी धारा चली आ रही है। जबतक विवेकख्याति पूर्ण नहीं होती, इस धाराकी निवृत्ति नहीं है। कर्माशय क्लिष्ट कर्मसे उत्पन्न होता है, अक्लिष्ट कर्मसे नहीं होता। सुख दुःखके तारतम्यके अनुसार शुभ कर्माशय और अशुभ कर्माशयको पृथक्-पृथक् करके देखना आवश्यक है। कर्माशय और वासना, दोनों ही संस्कार हैं और कर्मसे उत्पन्न होते हैं, किंतु दोनों संस्कार एकसे नहीं होते। कर्माशयसे सुख-दुःखका भोग सम्पादित होता है, परंतु वासनासे पातञ्जलयोगकी दृष्टिके अनुसार भोग नहीं उत्पन्न होता। वासनाका फल स्मृति है, परन्तु कर्माशयका फल सुख दुःख है। ये दोनों संस्कार एक साथ जड़ित होकर कार्य करते हैं। कर्माशयसे तीन प्रकारके विपाक उत्पन्न होते हैं। प्रथम विपाक 'जाति' अथवा जन्म है। देह-धारणका दूसरा नाम जन्म है। देह भोगायतन है। अतएव इसे सुख दुःखका अनुभवरूप भोग सम्पन्न होता है। इस देहके स्थिति-कालको 'आयु' कहते हैं। जिस कर्मसे देह उत्पन्न होता है, उसी कर्मसे उस देहके भोग और आयुका नियन्त्रण होता है। इस प्रकारके कर्मका नाम 'प्रारब्ध कर्म' है। स्थूलदृष्टिसे मनुष्यके कर्म दो प्रकारके होते हैं। वर्तमान कर्मको 'क्रियमाण' कर्म कहते हैं। जीव कर्तृत्वके अभिमान द्वारा कर्म करता है। देहात्मसंबंधके बिना कर्म नहीं उत्पन्न होता तथा कर्मके भोगानुकूल संस्कार भी नहीं उत्पन्न होते। सकल कर्म अनादिकालसे क्रमशः चित्तमें संचित होते हैं, उनको 'संचित कर्म' कहते हैं। ये अनेक जीवनके संस्कारोंकी समष्टि हैं। इन संचित कर्मोंसे ही प्रारब्ध कर्मकी उत्पत्ति होती है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि केवल संचित कर्मसे काम नहीं चलता, संचित और क्रियमाण कर्मकी सहकारितासे देहत्यागके समय 'प्रारब्ध कर्म'का आविर्भाव होता है। मृत्युके समय या अन्तिम कालमें जो चिन्ताधारा रहती है, उसीका दूसरा नाम है—'क्रियमाण कर्म'। उस धाराके अनुसार संचित कर्मोंसे [illegible] अनुरूप कर्मोंके संस्कार उद्बुद्ध होकर प्रारब्ध कर्मकी रचना करते हैं। साधारण प्रारब्ध एक जन्मका नियामक होता है, किंतु अवस्थाविशेषमें इससे अधिक जन्मका प्रादुर्भाव एक ही प्रारब्धसे हो सकता है। कर्मका विपाक कालके अधीन है। बहुधा बहुतेरे कर्मोंके संस्कार कालमें चाप्य अवस्थामें रहते हैं। वे योग्य अभिव्यञ्जकके अभावमें प्रसुप्तवत् पड़े रहते हैं। परंतु संस्कार नष्ट नहीं होते। समय आनेपर वे फलप्रदानोन्मुख हो जाते हैं।

कर्मकी एक रहस्यात्मक प्रक्रिया है, उसका नाम है—'आवापगमन'। बहुधा एक ही कर्मपिण्डमें शुक्ल और कृष्ण विरुद्ध संस्कार रहते हैं। प्राचीनकालमें यज्ञार्थ पशुहिंसाके सम्बन्धमें यही आवापगमनका प्रश्न उठाया जाता था। समष्टि कर्म शुक्ल और कृष्ण उभयात्मक हो तो उसे गुणप्रधानरूपमें विभक्त किया जाता है। यदि उसमें शुक्ल कर्म या पुण्य है, तथापि वह तत्संश्लिष्ट क्लिष्ट कर्म या पापके द्वारा युक्त होकर यथासमय फल प्रदान करता है। इस व्यापारमें दोनों कर्मोंके संयोगमें समष्टि कर्मका विचार होता है। अर्थात् किसी पुण्य कर्मके करते समय आनुषङ्गिक रूपमें यदि कुछ पाप कर्म होते हैं तो इस पुण्य और पाप कर्मका फल एक साथ जुड़ जाता है। दृष्टान्तस्वरूप, यदि किसी पुण्य कर्मके अनुष्ठानमें अनिवार्यरूपसे कुछ पाप कर्मका अनुष्ठान होता है तो दोनों कर्मोंकी एक साथ योजना करके कर्मफल निर्णीत होता है। अर्थात् पुण्य कर्म दस आने और पाप कर्म दो आने हों तो ऐसी अवस्थामें पुण्य और पाप—एक साथ जोड़ लिये जायँगे और पुण्यके भागमेंसे दो आने घटकर वह पुण्यभाग आठ आने फल उत्पन्न करेगा। यही कर्मका 'आवापगमन' है। साधारणतः पाप और पुण्यका फल अलग-अलग भोगना पड़ता है; किंतु सजातीय विरुद्ध कर्म होनेपर दोनोंका विचार एक साथ होता है। जैसे क्रोध और क्षमा—ये दोनों सजातीय विरुद्ध कर्म हैं। यही व्यापारके अनुसार फलनियन्त्रण होता है। कर्मके सम्बन्धमें एक प्रधान नियम यह है कि विशेष विशेष क्षेत्रमें विशेष कारणसे इसकी तीव्रता बढ़ती है अथवा घटती है। जैसे, यदि कोई पुण्य कर्म [illegible] तो उसके फलकी अभिव्यक्तिमें [illegible] कालके परिवर्तनकी सम्भावना है, यह जान लेना चाहिये। साधारण [illegible] जो फल होता है, स्थान विशेष या काल विशेषके कारण उसका फल अधिक हो जाता है। [illegible] समझना चाहिये। [illegible] करके उसके लिये [illegible] हृदयसे पश्चात्ताप करेगा, अथवा [illegible] या किसी विशिष्ट [illegible] प्रायश्चित्त कर लेगा, अथवा अन्य किसी उपायसे [illegible]

उन्हें निर्धारित क्रमके अनुसार चलना पड़ता है। अपने यहाँके सिद्धान्तानुसार जब कोई मनुष्य अपने कर्मोंके फलस्वरूप किसी पशु-पक्षीकी योनिमें जन्म लेता है, तब प्रायः उसमें कुछ पिछले संस्कार बने रहते हैं। अपने यहाँ पक्षियोंमें भी जटायु-जैसे पक्षी हो गये हैं, जिन्होंने भगवान्‌की सेवा करते अपने प्राण गँवाये थे।

(२)

कयामतका दिन

मुसल्मानोंका विश्वास है कि 'कयामतके दिन अल्ला मियाँ शंख फूकेंगे तब सब मृत प्राणी जीवित हो उठेंगे।' परंतु यह नहीं बतलाया गया है कि यह कयामतका दिन कब आयेगा। यह बात अवश्य है कि 'शंख ध्वनिसे मुसल्मान घबराते बहुत हैं।' फिर इससे यह बात भी सुस्पष्ट नहीं होती कि मरनेके बाद यदि प्राणी स्वर्ग या नरकमें जाता है, जैसा कि मुसल्मान भी मानते हैं, तो फिर कब्रमें कौन रह जाता है जो कयामतके दिन उठेगा। एक बात और भी है। यदि सभी मृत व्यक्ति जीवित हो उठेंगे तो फिर उस समय जनसंख्या-विस्फोट कितना भारी होगा, इसकी भी क्या कोई कल्पना की जा सकती है?

(३)

मुक्तिका द्वार सबके लिये खुला

संसारमें जितने धर्म या सम्प्रदाय हैं, उन सबमें यही व्यवस्था है कि स्वर्ग या मोक्षका द्वार उन्हीं लोगोंके लिये खुला है, जो उस धर्म या सम्प्रदायके अनुयायी हैं। पर अपने यहाँ मोक्षका द्वार सभीके लिये खुला है; केवल हिंदुओंके लिये ही नहीं। अपने यहाँ काशी, काञ्ची, मायापुरी, अयोध्या, द्वारका, मथुरा और उज्जैनको मोक्षदा पुरियाँ अर्थात् मोक्ष देनेवाली पुरियाँ माना गया है। इनमें मृत्यु होनेपर कोई भी प्राणी, वह किसी भी सम्प्रदायका क्यों न हो, मोक्ष प्राप्त करेगा। उसमें हिंदू, मुसल्मान, ईसाई-जैसा कोई भेद नहीं। कहा जा सकता है कि 'यदि ऐसा ही है तो इन पुरियोंमें रहकर सभी प्रकारके पाप किये जा सकते हैं। अन्ततः मोक्ष तो हो ही जायगा।' किंतु इसमें भी एक बात भुला दी जाती है। कर्मफलके अनुसार ही तो इन पुरियोंमें जन्म या निवास होता है। तभी उन्हें अन्तमें मोक्ष मिलता है। काशीमें रहनेवालेके लिये भी भैरवी यातनाकी व्यवस्था है। प्रायः लोग कर्मफल यहीं भोगकर शरीर छोड़ते हैं। जब ऐसा नहीं हो पाता तो उन्हें स्वर्ग या नरकमें फल भोगना पड़ता है। किसी बातको प्रसंगसे अलग कर उसपर विचार नहीं हो सकता। किस प्रसंगमें क्या बात कही गयी है, इसपर ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। सभी कार्योंमें एक तारतम्य रहता है। उसीके अनुसार आगे प्रगति होती है।

कर्मानुसार देहप्राप्ति

जबसे यह त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ, तभीसे कर्मका सम्बन्ध है। सबकी उत्पत्तिमें कर्म ही कारण है। यद्यपि जीव स्वभावतः जन्म और मरणसे रहित है, फिर भी कर्मरूपी बीजके प्रभावसे अनेक योनियोंमें बार-बार जन्मते और मरते रहते हैं। कर्म समाप्त हो जानेपर जीवका देहसे सम्बन्ध कभी नहीं हो सकता। उत्तम, निम्न और उत्तम निम्न मिश्रित—इन तीनों गुणोंसे यह जगत् व्याप्त है। जो तत्त्वके रहस्यको जाननेवाले विद्वान् हैं उनके द्वारा भी कर्मोंका भेद तीन प्रकारसे ही बताया गया है। वे तीन प्रकारके कर्म—संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण हैं। इस देहमें कर्मोंके तीन संस्कारोंका अस्तित्व रहता है। राजन्! ब्रह्मा आदि सभी उन कर्मोंके अधीन हैं। महाराज! सुख, दुःख, जरा, मृत्यु, हर्ष, शोक, काम, क्रोध तथा लोभ—ये सभी देहसे सम्बन्ध रखनेवाले गुण हैं। देवताओं, मनुष्यों और पशुओं—सबमें ये गुण रहते हैं। इन सभी विकारोंका देहसे ही सम्बन्ध रहता है। पूर्वजन्मके किये हुए बैर और स्नेहके अनुसार वे शरीरमें आबद्ध रहते हैं। कर्म शेष न रहनेपर प्राणियोंकी उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। (महर्षि व्यास)

नियम ठीक है। कर्मका फल कर्ताको ही होता है, यह नियम भी ठीक है। कर्मका फल भोगना ही पड़ता है, यह बात भी सच है; किंतु ये सब सामान्य नियम हैं। सैकड़ों नियम-उपनियम इन सामान्य नियमोंके बाधक हैं; क्योंकि कर्मका फल कहीं कर्ताकी प्रधानतासे होता है, कहीं देशकी प्रधानतासे; कहीं कालकी प्रधानतासे, कहीं क्रियाकी प्रधानतासे; कहीं वस्तु-उपकरणकी प्रधानतासे और कहीं तो फलभोक्ताकी प्रधानतासे ही कर्मफल कम-अधिक हो जाया करता है।

कर्मफलमें अनेक भागीदार होते हैं। माता-पिता, पुत्र, पति या पत्नी, देशका शासक, गुरु—ये सब कर्मफलमें भाग पाते हैं, भले उस कर्मके किये जानेका उन्हें पता तक न हो। कर्मका आदेश देनेवाले, उसका समर्थन या विरोध करनेवाले, उसकी प्रशंसा या निन्दा करनेवाले भी उसमें भाग पाते हैं।

इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर कहा गया है, 'गहना कर्मणो गतिः।'—कर्मकी गति बहुत गहन—अत्यन्त जटिल है। बड़े-बड़े कर्मशास्त्रके ज्ञाता भी इस सम्बन्धमें भ्रममें पड़ जाते हैं।

कर्मभोग कितना

किस कर्मका क्या भोग प्राप्त होगा? कितने समयतक प्राप्त होगा? इसका वर्णन यद्यपि ज्योतिषशास्त्र और कर्म-विपाक दोनोंमें है, यह सत्य है। किंतु यही कोई बहुत सुनिश्चित बात नहीं है। सबको एक-सा ही फल नहीं मिलता। स्थितिके अनुसार तारतम्य रह सकता है।

एक ही कर्मका उदीयमान दुःखद फल एक सामान्य प्राणीको दीर्घकालतक दुःख देता है और एक साधकको कभी-कभी तो उसके आराध्यकी कृपासे केवल स्वप्नमें ही उसका फल-भोग हो जाता है। जाग्रत्‌में उसका कोई प्रभाव ही नहीं होता। इसीलिये गुरुवर स्वर्गीय श्रीमैथिली शरण गुप्तने कहा था—

'जो हरते हो सभी मुझको [illegible] विविध [illegible] विपदा।
[illegible] है समर्थ मेरा भगवान॥'

भक्तिशास्त्रमें—भगवान्‌में जिनकी श्रद्धा है, उन भगवान्‌के मङ्गलविधानमें महत्त्व विश्वास रखनेवाले भक्तोंपर प्रारब्धका कोई प्रभाव नहीं होता। वे सर्वेश सदा भगवान्‌का मङ्गल स्पर्श प्राप्त करते हैं। भक्तका कोई पूर्वकृत कर्म ऐसा फल प्रकट कर नहीं सकता, जिसमें भक्तका अहित—अमङ्गल हो। कर्मविधानका दुःख-फलरूप भक्तके लिये जाग्रत् तो क्या, स्वप्नमें भी नहीं है।

श्रीशुकदेवजी तो कहते हैं—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥
(श्रीमद्भागवत ११।५।४१)

'राजन् परीक्षित्! शरण देने योग्य श्रीमुकुन्दकी शरणमें जो अपने कर्तृत्वाभिमानको छोड़कर सर्वात्मना चला गया, वह अब देवता, ऋषि, किसी प्राणी, पोष्य मनुष्य (राजादि) एवं पितरोंका भी न सेवक है और न ऋणी।'

अतः कर्मका भोग कब, कैसे मिलेगा और कैसे नहीं मिलेगा, इस चिन्ताको छोड़कर मङ्गलमय श्रीहरिके मङ्गल-विधानपर विश्वास रखकर उनकी शरण ग्रहण करना सबसे निरापद मार्ग है। जो ऐसा नहीं कर पाते, उनके लिये सकाम अनुष्ठान तथा कर्म प्रायश्चित्तका विधान शास्त्रने किया है।

कर्म-प्रायश्चित्त

मनुष्य संयम नियमसे रहे और नियमित पथ्य, आहार-विहार रखे तो उसके रोगी होनेकी सम्भावना बहुत कम रहती है। रोग प्रायः आहार विहारके असंयमसे अथवा कहीं किसी प्रकारकी असावधानीमें त्रुटि हो जानेसे होते हैं। जब रोग हो जाता है, तब उसकी चिकित्सा करनी पड़ती है।

'कोई स्वयं कुशल चिकित्सक भी हो तो भी अपनी चिकित्सा स्वयं न करे, यह नियम है।' उसे दूसरे अच्छे चिकित्सककी सम्मति लेनी चाहिये। जो चिकित्साशास्त्र जानते ही नहीं अथवा अधूरा जानते हैं, उनके द्वारा कोई चिकित्सा करायेंगे तो परिणाम जो कुछ होगा, यह आप समझ सकते हैं।

पाप मानसिक रोग है। जैसे आहार एवं आचारमें अशुद्धि होनेसे शारीरिक रोग होते हैं और वे दुःख देते हैं, वैसे ही विचार भावनामें अशुद्धि होना ही पाप कहलाता है। इससे मनमें रोग होते हैं और [illegible] [illegible] दुःखद होते हैं।

(२)

कर्मफल-पद्धति

कर्मफल कालान्तरमें

'बीज-वृक्ष न्याय'—कर्मफलकी पद्धति बहुत संक्षिप्त कहें तो इतनी ही है। बीज-वृक्ष-न्यायको ठीक-ठीक समझ लिया जाय तो कर्मका सिद्धान्त समझमें आ जायगा।

'अमुक व्यक्ति बहुत धर्मात्मा है; किंतु उसको तो अभाव तथा दुःख ही भोगना पड़ रहा है।' अथवा 'अमुक व्यक्ति धर्माधर्मकी कोई चिन्ता नहीं करता; झूठ-छल, कपट, विश्वासघात आदि ही करता है; किंतु कितना सम्पन्न और सुखी है!'—ऐसी बातें प्रायः लोग कहते हैं।

धर्मका फल दुःख और पापका फल सुख कभी हो नहीं सकता। यदि पापका फल सुख होता तो पाप करनेवाले सब धनी और सुखी होते; किंतु उनमें तो अत्यन्त दरिद्र, रोगी और बहुत दुःखी देखे जाते हैं।

एक किसानने पिछले वर्ष खेती नहीं की। इस वर्ष खेतोंमें जी-तोड़ परिश्रम करता है; किंतु पुराना अन्न घरमें रहा नहीं; फलतः उसे और उसके परिवारको प्रायः भूखों रहना पड़ता है। दूसरे किसानने पिछले वर्ष बहुत परिश्रम खेतोंमें किया था। इस वर्ष उसने हल-बैलको छुट्टी दे रखी है। दिन-रात घरमें पड़ा रहता है। घरमें पिछले वर्षका अन्न भरा है, सो स्वयं खाता है, दूसरोंको भी देता है। अब आप क्या कहना चाहते हैं कि खेतोंमें श्रम करनेका फल उपवास है और बैठे रहनेका फल भरपेट भोजन!

एक दैनिक मजदूरीपर काम करनेवाला मजदूर भी शामको या सप्ताहान्तमें मजदूरी पाता है। कर्म बहुत ही प्रबल न हो तो वह तत्काल फल नहीं देता और उतना ही फल नहीं देता जितना किया जाय। कर्मका फल कितने गुना बहुत अधिक होता है, यदि ठीक संयोग मिलते जायँ। सब संयोग विपरीत हो तो कर्म निष्फल भी हो सकता है। कुछ संयोग मिलें तो अल्प फल दे सकता है। प्रायः पाप पुण्यका फल इस जीवनमें नहीं मिलता। वह जन्मान्तरमें मिलता है।

कर्मका फल ऐसा कम ही होता है जो कर्मकालमें मिले। फल प्रायः कालान्तरमें ही मिलता है, भले वह काल अल्प हो या बहुत लंबा। आप भोजन बनाते हैं तो थोड़े ही समय बाद खानेके लिये भोजन मिल जाता है। कोई कारखाना लगाते हैं तो कई वर्षमें कारखाना चालू होता है। इमली-जैसे कुछ वृक्ष हैं, जो लगाये जानेपर बहुत लंबे समयमें फल देते हैं। अतः कालान्तरमें फलकी प्राप्ति, यह तो कर्मका स्वाभाविक नियम है।

कर्मफल—देश-काल-पात्रानुसार

आप एक बीज बोते हैं या एक वृक्ष लगाते हैं तो क्या वह एक ही फल देता है? जितना लगाया जाय, उतना ही मिले तो कोई व्यापार क्यों करे और कारखाने क्यों स्थापित करे। कर्मका दूसरा नियम है कि अनुकूल संयोग मिलते जायँ तो वह अपना सैकड़ोंगुने फल देता है। अवश्य ही अनुकूल संयोग कम हों तो फल कम होता है और सब संयोग विपरीत हों तो बोया बीज भी नष्ट हो जाता है। यही बात धर्म-अधर्मरूप सभी कर्मोंके सम्बन्धमें है।

अनुकूल संयोग क्या? देश, काल, पात्र तथा कर्ताका भाव एवं कर्म करनेकी विधि—ये सब कर्मफलको प्रभावित करते हैं। जिस खेतमें बीज बोना है, वह उपजाऊ होना चाहिये। वह बंजर हो तो सब अन्य संयोग व्यर्थ जायँगे। इसी प्रकार धर्म या अधर्म कहाँ किया गया, उस स्थानका महत्त्व है। गयामें किया गया श्राद्ध पितरोंको अपार तृप्ति देता है। तीर्थमें किया गया दान पुण्य बहुत अधिक फल देता है और तीर्थमें किया गया पाप भी बहुत अधिक कुफल देता है।

स्थान देश उपयुक्त हो, इतना ही पर्याप्त नहीं है। काल भी उपयुक्त होना चाहिये। खेत कितना भी उपजाऊ हो, आप मौसमके विपरीत उसमें बीज डालें तो फसल होगी? इसी प्रकार जिन कर्मोंके जो समय निश्चित हैं, उनमें वह कर्म करनेपर पूरा फल देता है। एकादशी आदि पर्वोंको दान, भजन एवं श्राद्धतिथिमें श्राद्ध करनेपर उनका फल बहुत बढ़ जाता है। ऐसे ही पुण्यपर्वमें किया पाप करनेसे वह बहुत बढ़ जाता है।

किसके प्रति दान या पुण्य किया गया, इसका भी उस कर्मके फलपर प्रभाव पड़ता है। [illegible] करते हैं, और एक [illegible] [illegible]

कर्म अनेक फल उत्पन्न करता है। आप स्नान करते हैं—इस एक कर्मसे शरीर स्वच्छ होता है, मन प्रसन्न होता है, पूजा-पाठादि करनेकी योग्यता आती है। आप खेतमें खाद डालते हैं तो खेत उर्वर बनता है, खाद जहाँ थी, उस स्थानकी सफाई होती है, आपके शरीरको श्रम होता है। इसी प्रकार धार्मिक-पारमार्थिक कर्म भी एक करने-पर अनेक फल उत्पन्न करते हैं। कोई सत्य बोलता है तो पापसे—असत्यसे बचता है, समाजमें एक आदर्श उपस्थित करता है, उसका मन शान्त-निर्भय बनता है। कोई सकाम भावसे भी भगवान्की पूजा करता है तो उसका चित्त निर्मल होता है, मन भगवान्के स्मरणमें लगता है, कम-से-कम उतने समय बुराइयोंसे बचा रहता है; लोकमें आस्तिकता—भगवद्-विश्वास उसके द्वारा फैलता है।

कोई व्यक्ति जैसे समाजमें अकेला नहीं है। हमारा जीवन, हमारे समस्त दैनिक व्यवहार अनेकोंके ज्ञात एवं अज्ञात सहयोगपर निर्भर हैं और हमारे प्रत्येक कार्यका अनेकों-पर प्रभाव पड़ता है, वैसे ही कर्म लौकिक हों या पारलौकिक, अकेले नहीं हुआ करते। प्रत्येक कर्म अपनी पूर्णताके लिये अनेक अन्य कर्मोंपर निर्भर रहता है। उसकी पूर्णतारूप फल वस्तुतः अनेक कर्मोंका फल होता है और कोई कर्म केवल अपना एक ही फल नहीं देता। उसके अनेक फल हुआ करते हैं।

कर्मकी प्रतिक्रिया

कर्मका तीसरा मुख्य नियम है कि उसकी प्रतिक्रिया होती है। जहाँ क्रिया होगी, वहाँ प्रतिक्रिया भी होगी। जितनी बलवान् क्रिया होगी, प्रतिक्रिया भी उतनी ही बलवान् होगी। आप गेंद जितने वेगसे दीवारपर मारेंगे, उतने ही वेगसे वह आपकी ओर लौटकर आवेगी। आप आकाशमें धूल फेंकेंगे तो आपके सिरपर धूलि गिरेगी और पुष्प फेंकेंगे तो पुष्प सिरपर पड़ेंगे।

आप यदि जगत्को भलाई दे रहे हैं तो आपको भलाई प्राप्त होगी। भलेके लिये पूरा संसार भला है और बुरेके लिये पूरा संसार बुरा है। आप यदि समाजको बुराई दे रहे हैं तो आपको बुराई मिलकर रहेगी। इसलिये व्यवहार-का नियम यह है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

भगवान् व्यास कहते हैं—'धर्मका सर्वस्व सुनो और इसे सुनकर चित्तमें बैठा लो कि जो बात-व्यवहार दूसरोंसे तुम अपने प्रति नहीं चाहते, वह व्यवहार तुम दूसरोंके साथ मत करो।'

ऐसा नहीं है कि आप कुछ करेंगे, तभी उसका प्रभाव दूसरोंपर पड़ेगा। आप मनमें जो सोचते हैं, उसका प्रभाव भी दूसरोंपर पड़ता है। आप किसीको बुरा मानते हैं, किसी-की बुराई सोचते हैं तो उसके मनमें आपके प्रति उपेक्षा, घृणा या द्वेष उत्पन्न होता है। आपके मनका भाव उसके यहाँसे प्रतिक्रान्त होकर आपकी ओर लौटता है।

कर्मके लिये प्रकृतिका नियम

कर्मका चौथा नियम है कि जिस शक्तिका—जिस इन्द्रियका आप दुरुपयोग करते हैं, वह आपसे छीन ली जाती है। जो बहुत जिह्वालोलुप हैं, वे यदि आहारपर संयम नहीं रख पाते तो उनका पेट ऐसा खराब होता है कि वे सामान्य भोजनका भी स्वाद नहीं ले पाते और उन्हें पथ्यपर रहना पड़ता है। जो बहुत कामुक हैं, वे अल्पकाल-में ही पुंस्त्व खो बैठते हैं। बहुत सिनेमा देखनेवालोंकी नेत्र-ज्योति क्षीण हो जाती है। यह नियम सभी इन्द्रियोंके सम्बन्धमें है।

जैसे इस जन्ममें यह नियम सत्य है, पुनर्जन्मके लिये भी यही नियम सत्य है। जिन्होंने वाणीका दुरुपयोग लोगों-को कटुवचन कहनेमें किया, वे गूँगे होकर उत्पन्न होते हैं। जो दूसरोंको कुदृष्टिसे ही देखते हैं, वे अन्धे पैदा होते हैं। जिन्होंने अपने बलके गर्वमें दूसरोंको सताया है, वे निर्बल तथा रोगी होकर जन्म लेते हैं। जो अपनी बुद्धि सबका तिरस्कार करनेमें, अच्छे लोगोंको मूर्ख बनाने, अपमानित करनेमें लगाते हैं, वे बुद्धिहीन अथवा पागल उत्पन्न होते हैं।

इसके विपरीत जो अपनी शक्तियों, अपनी इन्द्रियोंका सदुपयोग करते हैं, उनकी वह शक्ति जन्मान्तरमें बढ़ जाती है अथवा वे अधिक उच्च योनिमें जन्म लेते हैं। यह नियम भी संसारके कर्मक्षेत्रके नियमके समान ही है। यहाँ भी जो कोई कर्मचारी अपने पद-अधिकारका दुरुपयोग करता है, उसकी पदावनति होती है अथवा उसे पदच्युत कर दिया जाता है। जो अपने पद-अधिकारका ठीक-ठीक सदुपयोग करता है, उसे पदोन्नति प्राप्त होती है।

कर्मविपाक-मीमांसा

(लेखक—डा० श्रीशान्तिप्रकाशजी आत्रेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

'निष्काम कर्म' तथा 'सकाम कर्म' भेदसे कर्म दो प्रकारके होते हैं। निष्काम कर्म रागरहित कर्म होते हैं। इन कर्मोंके द्वारा बन्धनकी उत्पत्ति नहीं होती है। अतः इनके द्वारा जाति, आयु, भोग—ये तीनों ही प्राप्त नहीं होते। निष्काम बुद्धिसे किया हुआ कर्म आगे सांसारिक कर्म-बन्धन पैदा नहीं करता।

सकाम कर्मके द्वारा ही जाति, आयु और भोग—ये तीनों प्राप्त होते हैं। इन कर्मोंके द्वारा ही व्यक्ति एक विशिष्ट स्थान, कुल, वातावरण, जाति एवं शरीरको प्राप्त करता है। शरीरको 'भोगायतन' कहा गया है। सत्य तो यह है कि कर्मके द्वारा शरीर प्राप्त होता है और साथ-ही-साथ यह भी सत्य है कि शरीरके द्वारा कर्म होते हैं। संसार स्वयं कर्म-जाल है। इसकी उत्पत्ति आदि सब प्राणीके कर्मोंके ऊपर आधारित है। कर्मोंको भोगनेके हेतु देहकी आवश्यकता होती है। शरीरके बिना कर्म और भोग दोनों ही नहीं होते। शरीरके द्वारा चार प्रकारके कर्म होते हैं—

(१) शुक्ल (पुण्य या धर्म)।
(२) कृष्ण (पाप या अधर्म)।
(३) शुक्ल-कृष्ण (पुण्य-पापमिश्रित)।
(४) अशुक्ल-अकृष्ण (न पुण्य, न पाप)।

जिन कर्मोंसे अपना-पराया किसीका अहित नहीं होता, किसी प्राणीको कष्ट प्राप्त नहीं होता, बल्कि परहित अर्थात् दूसरोंको सुख पहुँचता है, वे कर्म ही 'शुक्ल कर्म' कहे जाते हैं। इन कर्मोंसे धर्मरूप कर्माशय उत्पन्न होते हैं। इन धर्मरूप कर्माशयोंसे कर्त्ताको सुख प्राप्त होता है। इन कर्मोंके फलभोगके अनुसार वासनाओंकी उत्पत्ति होती है; इसी कारण कर्म-फल भोगनेके लिये ऐसे व्यक्तियोंको भी जन्म लेना पड़ता है। वे भी संसारचक्रमें डाले रखनेवाले कर्म हैं। समाजके लिये अकल्याणकारी अर्थात् असामाजिक कर्म जिनके द्वारा दूसरोंका अहित होता है तथा प्राणियोंको कष्ट होता है, वे कर्म 'कृष्ण कर्म' कहलाते हैं। इस प्रकारके कर्म करनेवालोंको 'पापी' कहते हैं। वे अधर्मरूप कर्माशयको उत्पन्न करनेवाले कर्म हैं, जिनसे कर्त्ता इनके फल भोगनेके लिये उनके अनुरूप जन्म ग्रहण करता है। अधर्मरूपी कर्माशयके फलस्वरूप कर्त्ताको दुःख भोगने पड़ते हैं। ये पापकर्म भी व्यक्तिकी मनोवृत्तिसे प्रभावित होते हैं, जिनसे कि निश्चितरूपसे फल भुगवाते हैं और प्राणीको संसार-चक्रमें डाले रहते हैं।

सामान्यरूपसे साधारण व्यक्तिके कर्म पाप-पुण्यमिश्रित होते हैं। ऐसे व्यक्तियोंके द्वारा समाजमें किसीका अहित होता है, जिसके फलस्वरूप उसको दुःख प्राप्त होता है और किसीका हित होता है, जिसके फलस्वरूप उसको सुख प्राप्त होता है। इस प्रकार कर्मोंके फलोंके अनुरूप गुणोंवाली वासनाएँ उत्पन्न होती हैं और उनके अनुसार ही प्राणी जाति, आयु और भोग प्राप्त करता है और सुख-दुःखादि फल भोगता है। इन वासनाओंके द्वारा कर्ममें प्रवृत्ति होती है और पुनः कर्मके द्वारा वासनाएँ बनती हैं। इस रूपसे पुण्य-पापमिश्रित कर्मोंवाले प्राणियोंको उनकी मनोवृत्तियोंके कारण सुख-दुःख-रूपी कर्म-फल प्राप्त होते रहते हैं।

वासनामय कर्म अर्थात् रागमूल कर्म ही प्राणियोंको निरन्तर संसार-चक्रमें घुमाते रहते हैं। सत्य तो यह है कि वासनामय कर्म ही संसार है। इनके बिना संसार-चक्र समाप्त हो जाता है। कर्म स्वयंमें फल प्रदान करनेकी शक्ति नहीं रखते। यह तो कर्ताकी मनोवृत्ति ही फल प्रदान करती है।

जो कर्म फलोंकी आशासे रहित होते हैं, उन निष्काम कर्मोंको 'अशुक्ल-अकृष्ण कर्म' कहते हैं। वे कर्म किसी भी मनोवृत्तिसे नहीं किये जाते। वासनाओंसे प्रेरित होकर न किये जानेके कारण इनसे धर्म अथवा अधर्मरूप कर्माशय उत्पन्न नहीं होते और इसी कारण कर्मोंका फल भी प्राप्त नहीं होता। योगी लोग इसी प्रकारके कर्म करते हैं। वासना ही बन्धनका कारण है। वासनारहित कर्म धर्म-अधर्मरूप नहीं होते। कर्मोंको किये बिना तो प्राणीका शरीर नहीं रहता। कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश—ये पञ्चक्लेश नहीं होने चाहिये। केवल कर्तव्यके लिये कर्म करने चाहिये। आत्मतुष्ट व्यक्तिके लिये अपना कोई भी कार्य नहीं रह जाता। उसके जितने कार्य होते हैं वे सब [illegible] होते हैं। उसके सारे कार्य ईश्वर और

साथ ऋषियोंको लात मारनेके उस पापसे सर्पयोनिको प्राप्त हो गये। शिलाद मुनिके पुत्र नन्दीश्वरकुमारका मनुष्यशरीर शिवजीकी उग्र पूजा आदिसे देवशरीरमें परिवर्तित हो गया था अर्थात् उसने देवत्व प्राप्त किया था।

हिंदू सनातन-धर्ममें कर्मके विषयमें बड़े सुन्दर ढंगसे विवेचन किया गया है। कल्याणकी इच्छावालोंको शास्त्रविहित कर्मोंका आचरण करना चाहिये तथा शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंका निश्चितरूपसे त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि कर्म सूक्ष्मरूपसे सदैव विद्यमान रहते हैं। वे संस्काररूपसे चित्तमें रहनेके कारण बिना भोगे नहीं रहने देते। ये कर्माशयरूपी संस्कार फोटोग्राफकी नेगेटिव प्लेटकी तरह या टेप रिकार्डकी तरहसे हैं। अतः जबतक चित्तमें संस्कार स्थित हैं, तबतक उन्हें भोगनेके लिये निश्चितरूपसे जन्म लेना ही पड़ेगा। संस्कारोंको समाप्त करनेके लिये योगमें बतायी गयी विधियोंसे अभ्यास करना चाहिये; क्योंकि अभ्यासके द्वारा संस्कार दग्धबीज हो जाते हैं और कर्मफल प्राप्त नहीं होता। सारे संसारका खेल इन संस्कारोंके ऊपर है। ये जब समाप्त हो जाते हैं तो संसार भी समाप्त हो जाता है। इन संस्कारोंका जाल बड़ा विचित्र है। चित्तके जन्म-जन्मान्तरोंके अनन्त कर्मोंके अनन्त संस्कारोंमेंसे कुछ संस्कार प्रबलरूपसे जागते हैं और कुछ मन्दरूपसे। जो संस्कार प्रबलरूपसे जागते हैं, उनको 'प्रधान' कहा जाता है। दूसरे 'उपसर्जन' कहलाते हैं। मृत्युके समय प्रधान संस्कार जाग्रत् होकर पूर्वजन्मके समस्त अन्य समान संस्कारोंको जाग्रत् कर लेते हैं, जिससे कि उन कर्माशयोंके अनुकूल फल-भोग प्राप्त करनेके लिये अग्रिम जन्म तथा आयु निश्चित होती है। जिस जातिमें जन्म होता है, उस जातिके पूर्वके समस्त जन्मोंके संस्कार उदय हो जाते हैं और उन्हींके अनुकूल भोग प्राप्त होता है। अन्य जातियोंके समस्त संस्कार सुप्तावस्थामें रहते हैं। जिस प्रकार बीजमें वृक्ष विद्यमान होता है, किंतु उसका प्रत्यक्ष नहीं हो पाता; उसी प्रकारसे सम्पूर्ण कर्म संस्काररूपसे प्राणीके चित्तमें विलीन रहते हैं और अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण अज्ञानी पुरुष उनका स्मरण भी नहीं कर पाते; किंतु वे देश-कालकी अनुकूलता पाकर यथासमय और यथायोग्य फल प्रदान करते हैं[1]। कर्म संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण-भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। ऐसे कर्म केवल संस्काररूपसे विद्यमान होते हैं और उनके फल भोगनेकी अवधि नहीं आती है, ऐसे अनन्त जन्म-जन्मान्तरोंके कर्मोंको 'संचित कर्म' कहते हैं। कर्माशयके अनन्त कर्मोंमेंसे जिन कर्मोंको भोगनेके लिये हमें वर्तमान जाति और आयु प्राप्त हुई है, उन कर्मोंको 'प्रारब्ध कर्म' कहते हैं। इस जन्ममें अपनी इच्छासे संग्रह किये हुए कर्मोंको 'क्रियमाण कर्म' कहते हैं। क्रियमाण कर्मोंके द्वारा नवीन संस्कारोंकी उत्पत्ति होती है और पूर्वके कर्माशयोंमें वृद्धि होती है। क्रियमाण कर्मोंमेंसे कुछ कर्म ऐसे होते हैं, जो संचित कर्मोंमें मिश्रित होकर सुप्तावस्थामें पहुँचकर विपाक होनेपर कभी अग्रिम जन्मोंमें फल देते हैं। कुछ इस प्रकारके भी उग्र क्रियमाण कर्म होते हैं, जो इसी जन्ममें प्रारब्ध कर्मोंके साथ मिश्रित होकर फल प्रदान करते हैं। प्रधान कर्माशयोंको अर्थात् प्रारब्ध कर्मोंको भोगनेके लिये प्राणीको एक निश्चित आयु मिलती है। प्राणी प्रारब्ध कर्मोंका फल भोगकर ही मरता है। इन कर्मोंके द्वारा ही वर्तमान जाति, आयु और भोग निश्चित होते हैं। इसी कारणसे यह 'नियत विपाक कर्म' कहे गये हैं। योगमें इन्हें 'दृष्ट जन्म-वेदनीय' कहा है। इन कर्मोंको भोगनेसे ही प्राणीको छुट्टी नहीं मिल जाती, किंतु उसे तो संचित कर्मोंमेंसे नियत विपाक होनेवाले कर्मोंको भोगते रहना पड़ता है। कर्माशयोंमें निरन्तर क्रियमाण कर्मोंके मिश्रित होनेसे कर्माशयोंकी वृद्धि इतनी अधिक होती चली जाती है कि उनका निरन्तर जन्म ग्रहण करके भी भोग समाप्त नहीं होता। संचित कर्मोंके संस्कार सुप्तावस्थामें रहते हैं। अतः उन्हें 'उपसर्जन' कहते हैं। इन कर्मोंका फल निश्चित न होनेसे इन्हें 'अनियत विपाक' कहते हैं। इन कर्मोंको बिना भोगे साधारण प्राणी नहीं बचता; किंतु फिर भी इनके भोगनेका फल निश्चित न होनेसे इन्हें योगमें 'अदृष्ट जन्मवेदनीय' कहा है। ये संचित कर्म योगियोंके द्वारा दग्धबीज किये जानेपर ही अग्रिम जन्मोंको उत्पन्न नहीं करते और संसार-चक्रसे छूटनेके लिये पुरुषार्थ प्रदान कर देते हैं; क्योंकि योगियोंके क्रियमाण कर्म होते ही नहीं, इन्हें तो केवल प्रारब्ध कर्मोंको ही भोगना पड़ता है।

शास्त्रोंमें दग्धबीज होनेतक ही [illegible] है। समस्त संचित कर्म दग्धबीज हो जानेपर भी [illegible] प्रारब्ध कर्मोंका फल भोगे बिना [illegible] नहीं होता। यह अवस्था [illegible] हो जाती है [illegible] करते हैं। [illegible] न कुछ [illegible] है, न [illegible]। साधारण [illegible] तरह [illegible] करते हुए भी वह [illegible]

---

1. योगदर्शन टी॰, अध्याय ४।७।११।

भक्त इस मुक्तिको अस्वीकार क्यों करता है ? मुक्ति प्राप्त होनेपर भक्त परमात्मा बनेगा और परमात्मा बननेपर भक्तको इष्टदेवकी प्रेममयी और आनन्द देनेवाली सेवासे वञ्चित होना पड़ेगा । भगवत्सेवाकी लगन बड़ी मधुर तथा अपार आनन्दमयी होती है । मुक्तिमें इस सेवाके लिये अवसर नहीं। इसीलिये तो भक्त मुक्तिका तिरस्कार करता है । भ्रमरको मकरन्दका बड़ा शौक होता है । यदि भ्रमर स्वयं ही मकरन्द बन गया तो वह मकरन्दके माधुर्यका अनुभव कैसे कर सकेगा ? भगवत्सेवाका दिव्यतम मधुर सुख निरन्तर लूटनेको मिले, इस प्रेममय भूमिकामेंसे ही भक्त मुक्तिका निषेध करते हैं ।

तुकाराम महाराज भगवान्से स्पष्ट कहते हैं—

'मोक्ष तुमचा देवा, ठेवा तुमचे पाशी ।
मज सर्वाची आवडी ।'

'भगवन् ! आप अपना मोक्ष अपने पास ही रक्खें । मुझे तो भक्ति प्रिय लगती है ।' यह प्रेममय भक्तिरस मुक्तिकी महत्ताको सम्पूर्णतया कम कर देता है । श्रीमधुसूदन सरस्वतीजी भक्तिके लक्षण बतलाते समय 'मोक्षलघुताकृत्' इस मार्मिक शब्दकी योजना करते हैं ।

भक्ति-सुख उत्तरोत्तर बढ़नेवाला सुख है । उधर भक्त भक्तिसे कभी ऊब नहीं सकता । उसको नित्य नया आनन्द भक्तिसे मिलता रहे, यही तो भक्तकी उत्कट इच्छा होती है ।

तुकाराम महाराज एक अभंगमें कहते हैं—'भगवान्‌के सेवा-सुखमें जो आनन्द है, वह मोक्षानन्दमें नहीं ।' भागवत-माहात्म्यमें कहा है—

'सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ।' (४ । ८०)

परिपक्व-आनन्दमय हरिनामको इस भक्तिधर्ममें बहुत ऊँचा स्थान है । हरिनाम-संकीर्तनका माधुर्य अमृतसे भी बढ़कर है और अपूर्व है। इस नामामृतकी मधुरताको वैष्णव निरन्तर चाखते रहते हैं । भक्तिरसयुक्त ऐसे नामामृतके माधुर्यका आस्वादन करनेके लिये कमल-मुखकी आवश्यकता है (राम-भजनको लिया कमलमुख)। कमल-मुखके लिये रूप चाहिये । रूप चाहिये—देह चाहिये । देहके लिये जन्म भी चाहिये । भक्तिसुखका सौन्दर्य निरन्तर प्राप्त हो, इस लिये भक्त ईश्वरसे पुनर्जन्मकी इच्छा करते हैं । गर्भवासके भारी दुःख वे सहनेको तैयार हैं; क्योंकि उनको भक्तिसुखके महान् माधुर्यका बड़ा भारी आकर्षण है । अतः जन्म-मृत्युकी परम्पराका कष्ट सहनेको वे सहजमें प्रस्तुत हैं । ऐसा अटूट भक्ति-प्रेम प्राप्त हो, यह उनके मनकी उत्कट अभिलाषा है ।

भक्ति-सुखकी उत्कट इच्छाकी भूमिकामें भक्तिशास्त्र पुनर्जन्मको स्वीकार करता है । अपुन र्जन्मकी इच्छाको उत्कट भक्तिमें जरा भी स्थान नहीं है । भक्ति-सुख लूटनेके लिये हमें पुनः-पुनः जन्म प्राप्त हो—उत्तम देह मिले—ऐसा अपूर्व दृष्टिकोण भगवद्भक्तोंका है ।

तुकाराम महाराजने जीवनभर भगवद्भक्ति की । उनको भक्तिका बहुत बड़ा शौक था । वे निश्चय पूर्वक भगवान्से कहते हैं—

'घेईन मी जन्म याजसाठी देवा । तुझी चरणसेवा साधावया ।

'भगवन् ! तुम्हारी चरणसेवाके लिये मैंने जन्म ग्रहण किया है ।'

पूर्वके युगमें भी वे बड़े भक्त थे । महाराष्ट्रके भक्तोंकी मान्यता है कि अति पूर्वकालमें वे 'प्रह्लाद' थे । रामावतारमें वे रामभक्त 'अङ्गद' थे । फिर श्रीकृष्णावतारमें आपने 'उद्धव' रूपमें भक्तिका आनन्द लूटा था । उन्होंने कलियुगमें ज्ञानदेवके समय नामदेवकी भूमिकामें भक्तिरसका सेवन किया । इन्हीं नामदेवने आगे चलकर तुकारामके रूपमें जन्म लिया । इस प्रकार तुकारामजीने युगों-युगोंमें भक्ति की । उनकी भक्तिकी रुचि कभी कम नहीं हुई । ऐसे ये हरिप्रेममें रँगे रहनेवाले भक्त भक्ति-प्रेम-सुखकी प्राप्तिके लिये बार-बार जन्म लेते हैं—नयी-नयी देह धारण करते हैं ।

हालमें ही वैकुण्ठवासी हुए ह० भ० प० गुरुवर्य सोनोपंत दांडेकरजी अस्वास्थ्यके कारण [illegible] बैठकर कीर्तन करते थे । कीर्तन मेरा ईश्वरके साथ [illegible] रहकर करनेकी सेवा है ।

'[illegible] नामदेव, [illegible] कीर्तन ।' —तुकाराम

[illegible] ईश्वर कीर्तन करनेकी स्थितिमें न होनेसे दुःखित रहते थे और ईश्वरसे प्रार्थना करते थे—'हे ईश्वर ! मुझे ऐसा आरोग्य दो कि मैं सदा ईश्वर कीर्तन करता रहूँ ।' उनके अन्तःकरणमें भक्तिकी यही उत्कट इच्छा जाग्रत थी ।

उपलब्धि करके अपने नैसर्गिक शुद्ध स्वरूपमें आ जाता है। शून्यवादी आत्माका उच्छेद होना मोक्ष मानते हैं। 'निर्वाण'को उन्होंने दुःख-निरोधके नामसे चार आर्य-सत्योंमें सम्मिलित किया है।

सांख्य-दर्शनमें 'प्रकृति-नर्तकीके उपरत हो जानेपर पुरुषका अपने स्वरूपमें स्थित हो जाना ही मोक्ष है'—'द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः।' (सां० सू० ३।६५)। प्रकृतिकी निवृत्ति होनेपर पुरुष स्वतः कैवल्यकी स्थितिमें पहुँच जाता है—

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद् विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्॥
(सां० का० ६४)

न्यायदर्शन 'दुःखके आत्यन्तिक उच्छेदको ही मोक्ष कहता है'—'दुःख-जन्म-प्रवृत्ति-दोष-मिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः।' (न्या० सू० १ । १ । २)

न्याय-दर्शनकी एक विशिष्ट मान्यता यह है—यह मुक्तदशामें सुखकी विद्यमानता स्वीकार नहीं करता; क्योंकि सुखका रागसे अनिवार्य सम्बन्ध है और राग बन्धनका कारण है। आत्मा गुणी है, सुख-दुःख आदि गुण हैं। मुक्त होनेपर आत्मा सभी प्रकारके गुणोंसे मुक्ति पा जाता है—स्वरूपैकप्रतिष्ठानः परित्यक्तोऽखिलैर्गुणैः।

ऊर्मिषट्कातिगं रूपं तदस्याहुर्मनीषिणः।
संसारबन्धनाधीनदुःखक्लेशाद्यदूषितम्॥
(न्यायमञ्जरी)

वैशेषिक दर्शनकी मान्यता भी न्यायसे ही मिलती-जुलती है। मीमांसकोंके अनुसार ''प्रपञ्च-सम्बन्धके साथ आत्माके सम्बन्धका विनाश ही मोक्ष है—प्रपञ्चसम्बन्धविलयो मोक्षः।'' (शा० दी०)' प्रपञ्च तीन प्रकारसे पुरुषको बन्धनमें जकड़ता है—भोगायतन शरीर, भोग-साधन इन्द्रिय एवं भोग्य विषय-पदार्थ। इस त्रिविध बन्धनके आत्यन्तिक विलयका नाम ही मोक्ष है।''[1] कुछ मीमांसक मुक्तावस्थामें नित्य-सुखकी अभिव्यक्ति भी स्वीकार करते हैं—

दुःखात्यन्तसमुच्छेदे सति प्रागात्मवर्तिनः।
सुखस्य मनसा भुक्तिर्मुक्तिरुक्ता कुमारिलैः॥
(मा० मे० पृ० २१२)

अद्वैत-वेदान्तमें 'अपने यथार्थ स्वरूपका परिज्ञान अथवा स्व-स्वरूपमें अवस्थान ही मोक्ष' है। मोक्षमें कुछ अपूर्व वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती है; किंतु शुद्धस्वरूपमें जीवात्माका जो अवस्थान है, वही मोक्ष है। पारमार्थिक दृष्टिसे आत्मा, ब्रह्म और मोक्ष एक ही है। (ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति) आत्मा तो नित्य-मुक्त है। बन्धन और मोक्ष—यह सब अज्ञानकी सृष्टि है—'अज्ञानमंशी भवबन्धमोक्षौ।' 'अज्ञान अथवा अविद्यासे छुटकारा पाना' अर्थात् आत्मा और ब्रह्मके तादात्म्यका अनुभव करना ही मोक्ष है।' उस अखण्ड चिद्वस्तुको छोड़कर अन्य किसीकी सत्ता ही नहीं है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥
(माण्डूक्यकारिका २ । ३२)

चित्सुखाचार्य मुक्तावस्थामें अनवच्छिन्न आनन्दकी प्राप्ति स्वीकार करते हैं—'अनवच्छिन्नानन्दप्राप्तिः।' अद्वैत-दर्शनका प्रमुख सिद्धान्त है—'आत्मा तथा ब्रह्मकी एकताका अङ्गीकरण, इस सम्बन्धका प्रबोध ही मुक्ति है।'

तुलसीदासजीने इन सभी दर्शनोंका सार लेकर प्रासङ्गिक बन्धनको 'जड़ और चेतनकी ग्रन्थि पड़ जाना कहा है।' चिदात्मा मानव, जड़ पदार्थोंसे इस प्रकार तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर लेता है कि जिससे मुक्ति प्राप्त कर लेना एक कठिनतम व्यापार है—

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥
(मानस ७ । ११७ । २-३)

योगवासिष्ठमें इन्होंने 'सर्वाशासंक्षयको ही मुक्ति' कहा है—

न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले।
सर्वाशासंक्षये चेतःक्षयो मोक्ष इति श्रुतिः॥
([illegible])

---

१. त्रेधा हि प्रपञ्चः पुरुषं बध्नाति—भोगायतनं शरीरं भोगसाधनानीन्द्रियाणि, भोग्याः शब्दादयो विषयाः। भोग इति च सुखदुःखविषयोऽपरोक्षानुभव उच्यते। तदस्य त्रिविधस्यापि बन्धस्य आत्यन्तिको विलयो मोक्षः।' (शास्त्रदीपिका पृ० १५ । ८)

१. अविच्छिन्नानन्दो मोक्षः [illegible] ([illegible])

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः अधो गच्छन्ति तामसाः

सत्त्वगुणी भगवान्‌को जाता है रजोगुणी फिर मनुष्य होता है तमोगुणी कुत्ता आदि बनता है

(ग) नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु।
जनम जनम रघुनंदन तुलसिहि देहु॥
(बरवै०)

(क) कर्मवश जहाँ भी मेरा जन्म हो, जिस योनिमें भ्रमण करूँ, वहाँ-वहाँ भगवन्! आपकी भक्ति-सत्संग बराबर मिले। राम ही एक विश्राम हों।

(ख) मेरा दुष्कर्म मुझे जिस भी योनिमें ले जाकर डाले, वहाँ हे भगवन्! आप मुझपर कृपा न छोड़ें, जैसे कछुआ अपने अंडेपर स्नेह नहीं छोड़ता।

(ग) हे रघुनन्दन! तुलसीको जन्म-जन्म नाममें भरोसा, बल और स्नेह प्रदान करो।

(२) कबीरदास—

राम बुलावा देखिके दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधु सतसंगमें सो सुख वहाँ न होय॥

कबीरदासने भी यहाँके सत्संग-सुखको मुक्तिसे अधिकतर बताया है।

बड़े-से-बड़े देवता

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्॥
तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥
(श्रीमद्भा० १०।१४।३०, ३४)

'भगवन्! मुझे इस जन्ममें, दूसरे जन्ममें अथवा किसी पशु-पक्षी आदिके जन्ममें भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासोंमेंसे कोई एक दास हो जाऊँ और फिर आपके चरणकमलोंकी सेवा करूँ। प्रभो! इस व्रजभूमिके किसी वनमें और विशेष करके गोकुलमें किसी भी योनिमें जन्म हो जाय, यही मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी; क्योंकि यहाँ जन्म हो जानेपर आपके किसी-न-किसी प्रेमीके चरणोंकी धूलि अपने ऊपर पड़ ही जायगी। प्रभो! आपके प्रेमी व्रजवासियोंका सम्पूर्ण जीवन आपका ही जीवन है। आप ही उनके जीवनके एकमात्र सर्वस्व हैं। इसलिये उनके चरणोंकी धूलि मिलना आपके ही चरणोंकी धूलि मिलना है और आपके चरणोंकी धूलि तो श्रुतियाँ भी अनादिकालसे अबतक ढूँढ़ रही हैं।'

भगवान् शंकर—

बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥
(मानस, उत्तरकाण्ड १४ क)

इस प्रकार भगवत्प्रेमियोंने मुक्ति न चाहकर नित्य प्रेमसेवा—सेवाकी ही इच्छा की है, चाहे कितने ही जन्म हों। यह उनकी विशेषता है।

प्रियतम-मुख सुखभरा

नहीं चाहता राज्य चक्रवर्ती मैं नहीं चाहता स्वर्ग।
नहीं चाहता विधि सुरपति-पद नहीं चाहता मैं अपवर्ग॥
नहीं चाहता योगसिद्धि मैं नहीं चाहता पद-पाताल।
नहीं चाहता मुक्ति चतुर्विध दुर्लभ सालोक्यादि विशाल॥
जन्म-जन्ममें बनी रहे मन प्रियतमकी स्मृति मधुर अबाध।
रहे छलकता श्याम-रूप-रस-सुधा-उदधि उर सतत अगाध॥
इच्छा रहे उसीमें संलग्न रहे न अन्य [illegible] काम।
दिखता रहे सदा सुखराशि प्रियतम-मुख सुखभरा ललाम॥

मृत्युके समय भगवन्नामका महत्त्व

(लेखक—श्रीश्रीकान्तशरणजी, सकल दुःखभीमादिग्रन्थोंके भाष्य एवं तिलककार)

महत्त्व-प्रमाण

मृत्युके समयका एक बारका भी नामोच्चारण अत्यन्त हितकारी है; यथा—

जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥

(रामचरितमानस, अरण्य० ३०)

जाको नाम मरत मुनि दुरलभ तुमहि कहाँ पुनि पैहौं॥

(गीतावली, अरण्य० १३)

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान॥

(रामचरितमानस, अरण्य० २०)

मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ रामरामेति यः स्मरेत्।
स पापात्मापि परमं मोक्षमाप्नोति जैमिने॥

(पद्मपुराण, क्रियायोग०, व्यासवचन)

अर्थ—(श्रीव्यासजी जैमिनिसे कहते हैं कि) हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! मृत्यु-कालमें 'राम' इस नामका जो स्मरण करता है, वह पापी भी परम मोक्ष-पद प्राप्त करता है; तथा—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८।५)

'जो मनुष्य अन्तकालमें भी मेरा ही स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करता है, वह मेरे स्वरूपको प्राप्त करता है, *इसमें संशय नहीं है।'*

यहाँतक मृत्युकालमें नामोच्चारणके प्रमाण लिखे गये। अब नाम-श्रवणका माहात्म्य सुनिये—

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥

(श्रीरामोत्तरतापनी० १।८)

'श्रीरामजीने श्रीशिवजीसे कहा है कि जिस किसी मरनेवालेके दाहिने कानमें आप यह मन्त्र (राममन्त्र) देंगे, वह मुक्त हो जायगा।'

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥

(रामचरितमानस, बाल० ११९)

माहात्म्य-विमर्श

मृत्युकालके नाम-स्मरणका ऐसा प्रभाव क्यों है? इसका वेद-वाक्यके आधारपर विचार किया जाता है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।

(यजुर्वेद ३२।३)

'जिस परमात्माका नाम और यश महान् है, उसकी बराबरीका कोई नहीं है।'

नामकी महिमा—

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

(रामचरितमानस, बाल० २२)

'चारों युगों और चारों वेदोंमें नाम-प्रभाव कहा गया है। कलिकालमें विशेषरूपमें यही उपाय है; क्योंकि इसमें अन्य उपायोंका अभाव-सा है; इससे इसमें नामका प्रभाव प्रत्यक्ष है। तथा—

ध्यानु प्रथम जुग मखबिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥

(रामचरितमानस, बाल० २६)

अर्थात् सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें क्रमशः ध्यान, यज्ञ और पूजन विधिरूपमें रहते हैं; नामाराधनसे इन विधियोंकी रक्षा एवं पूर्ति होती है। यथा—

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥

(रामचरितमानस, बाल० २१)

'कलि केवल—कलिकालमें यह नाम केवल (विधियोंके बिना स्वयं) ही सब कल्याण करता है; क्योंकि कलियुग पापमूल एवं मलिन है; इसमें लोग पाप-सागरके मीन हो रहे हैं। अतः रामनाम साधनमात्रके सम्पन्न होनेसे ही सफल साधक सिद्ध होते हैं।' तथा—

राम नाम को अंक है सब साधन है सून।
अंक गएँ कछु हाथ नहिं अंक रहें दस गून॥

(दोहावली १०)

उच्चारण मनुष्यके पापोंको उसी प्रकार जला देता है, जैसे किसी प्रकार डाला हुआ ईंधन अग्निमें भस्म हो ही जाता है। फिर साथ ही, प्राण निकल जानेपर और पाप होते नहीं, इससे वह मनुष्य नाम-प्रभावसे मुक्त हो जाता है। यथा—

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

(रामचरितमानस, उत्तर० १२९)

(२) अन्तमें नामोच्चारणके साथ शरीर छोड़नेमें भगवान् अपने नामकी महत्ता सिद्ध करते हुए यह मान लेते हैं कि इसने मेरा नाम लेकर जो शरीर छोड़ा है, इसका तात्पर्य यह कि अपना शरीर मुझे संकल्प कर दिया। अतः इस शरीरके सम्बन्धवाले एवं इसके पूर्व शरीरोंके सभी पाप और पुण्य भी मुझे ही पचाना चाहिये, बस, इसपर यह सभी पापों और पुण्योंसे रहित होकर मुक्त हो जाता है। नामसे ही भगवान् अपने नामवाले स्वरूप एवं धाम-प्राप्तिकी आकाङ्क्षा भी पूरी करते हैं। प्रमाण ऊपर आ गये हैं।

मृत्युके समय भगवन्नामका महत्त्व

(लेखक—साहित्यरत्न पं० श्रीकेशीरामजी शर्मा, गौड़, वेदान्तार्य)

चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण करता हुआ जीवात्मा भगवत्कृपासे मनुष्य-योनिको प्राप्त करता है। जीव जब गर्भाशयमें आता है, तो वह वहाँके भयंकर कष्टोंसे पीड़ित होकर अपने आत्मोद्धारके लिये भगवान्‌की स्तुति करता हुआ सर्वदा भगवन्नामोच्चारण करनेकी प्रतिज्ञा करता है। किंतु यह जीव जब गर्भसे बाहर आता है, तब अपनी की हुई प्रतिज्ञाको भूलकर सांसारिक मायामोहमें आसक्त हो जाता है। सांसारिक मायामोहमें आसक्त होनेके कारण यह जीव आत्मोद्धार न कर वही कर्म करता है, जिससे बन्धनको प्राप्त होकर सर्वदा जन्म मरणके चक्रमें फँसा रहता है—

'यदर्थं कुरुते कर्म यद् बद्धो याति संसृतिम् ।'

(श्रीमद्भागवत ३ । ३१ । ३१)

मानव-जन्म बड़ा ही दुर्लभ है। भगवत्कृपासे मानव-जन्मको प्राप्तकर जो मनुष्य आत्मोद्धार नहीं करता, उसका मानव-जन्म धारण करना ही व्यर्थ है। अतः मनुष्यको आत्मोद्धारार्थ अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। आत्मोद्धारके लिये भगवन्नामोच्चारण ही सर्वश्रेष्ठ सरल साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य आत्मोद्धार कर सकता है।

भगवान्‌ने मनुष्यके शरीरमें हाथ, पैर, मुख, वाणी, कान, नाक, नेत्र, सिर आदि जो अङ्ग दिये हैं, वे सभी भगवत्सेवार्थ दिये हैं। अतः भगवान्‌के दिये हुए हाथ, पैर आदिसे भगवान्‌की तन्मय होकर उन्हींकी सेवा करनी चाहिये।

भगवान्‌ने मनुष्यके शरीरमें मुखका जो निर्माण किया है, वह केवल भोजन करनेके लिये नहीं, किंतु भगवन्नामोच्चारण करनेके लिये किया है। अतः मनुष्यको भगवन्नामोच्चारण करके ही भोजन करना चाहिये। जो मनुष्य भगवन्नामोच्चारण न कर केवल भोजन करता है, वह महापापी और भगवान्‌का विरोधी है।

वस्तुतः मुखकी यथार्थ शोभा और यथार्थ उपयोग भगवन्नामोच्चारण करनेमें ही है। जो मनुष्य अपने मुखसे भगवन्नामोच्चारण नहीं करता, उसका मुख निरर्थक ही है। इसलिये मनुष्यको अपने मुखको सार्थक करनेके लिये सर्वदा भगवन्नामोच्चारण करना चाहिये।

भगवान्‌ने मनुष्यके मुखमें जो वाणी दी है, वह व्यर्थकी बातें करनेके लिये नहीं दी है, किंतु भगवान्‌की लीलाओंके गायन करनेके लिये दी है। जो मनुष्य अपनी वाणीके द्वारा भगवान्‌की लीलाओंका गायन नहीं करता, उसकी वाणी मेढककी जीभके सदृश कही गयी है—

जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥

(श्रीमद्भागवत २ । ३ । २०)

'जिस मनुष्यकी जीभ भगवान्‌की लीलाओंका गायन नहीं करती, वह मेढककी जीभके समान टर्र-टर्र करनेवाली है। उसका तो न रहना ही अच्छा है।'

और भी कहा है—

'श्रीरामका नाम अङ्क (१, २, ३) के समान है और समस्त साधन (कर्म, योग, ज्ञान आदि) शून्य (०) के समान हैं। अङ्कके चले जानेपर हाथमें कुछ नहीं रह जाता (शून्यका अर्थ कुछ न रहना है) और अङ्क रह जानेपर वे शून्य दसगुने (१०, २०, ३०) महत्त्व पाते हैं।' तथा—

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
(रामचरितमानस, बाल० २६)

'भक्ति-वैराग्य-विज्ञान-शम-दान-दम,
नाम आधीन साधन अनेकम्॥'
(विनयपत्रिका ४६)

इसीसे नामको सदासे महान् यश प्राप्त होता आया है; यथा—

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
(रामचरितमानस, बाल० २६)

कुछ उदाहरण

(१) जैसे कोई यशस्वी वैद्य अच्छे-अच्छे देशोंमें जड़ी-बूटीकी ओषधियोंमें कुछ रसायन देकर बहुतोंका कल्याण करता है, इससे उसका यश फैल जाता है। संयोगसे यदि वह किसी ऐसे देशमें जा पहुँचता है, जहाँ जड़ी-बूटी नहीं मिलती; वहाँ वह रसायन मात्रसे रोगियोंकी रक्षा कर अपने यशकी रक्षा करता है और अपने नामकी लज्जा रखता है; वैसे यशस्वी राम-नाम भी विधिहीन कलिकालमें अपने ही प्रभावरूपी रसायनसे अपनी लज्जा रखता है। ध्यान, यज्ञ और पूजन आदि विधियोंके अभावकी भाँति नाम-जप विधिके अभावमें भी अपने यशकी रक्षा करता है। गोस्वामीजीने कहा है—

सो धौं को जो नाम लाज तें नहिं राख्यो रघुबीर।
कारुनीक बिनु कारन ही हरि हरी सकल भव भीर॥ १॥
बेद-बिदित जग-बिदित अजामिल बिप्रबन्धु अघ-धाम।
घोर जमालय जात निवारयो सुत हित सुमिरत नाम॥ २॥
पसु पाँवर अभिमान-सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह।
सुमिरत सकृत सपदि आये प्रभु हर्यो दुसह उर-दाह॥ ३॥
ब्याध निषाद गीध गनिकादिक अगनित औगुन मूल।
नाम-ओट तें राम सबनि की दूरि करी सब सूल॥ ४॥
(विनय-पत्रिका १४४)

श्रीरामजी अपने नामकी लज्जा रखनेके लिये 'बिनु कारन ही'—नाम-जप विधि-हीन जापककी भी भव-भीर हरण करते हैं; उसके प्रति करुणा हो आती है और उनके ह... थापके हृदयमें त्वरा और विह्वलता जग जाती है। यथा—

अंतरजामिहु तें बड़ बाहेर जामि हैं, जे राम नाम लिये तें...
धावत धेनु पेन्हाइ लवाई ज्यों बालक बोलनि कान किये तें...
(कवित्त०, उत्तर० १२...)

इसी पदमें आगे अजामिल और गजेन्द्रादि... उदाहरण हैं—

(२) अजामिलने बेटेके लक्ष्यपर 'नारायण' नाम लि... है। उच्चारण ठीक था, पर लक्ष्य ठीक नहीं था। इस... भगवान्‌के पार्षदोंने वाद होनेपर अन्तमें कहा कि इ... यमदूतोंसे डरकर 'नारायण' यह नाम पुकारा है। इस... बचानेवाले तो भगवान् नारायण ही हैं (बेटा नारा... नहीं)। अतः यह भगवान्‌के द्वारा ही रक्षणीय है।

(३) गजेन्द्रके हृदयका लक्ष्य ठीक था, पर उच्चा... नहीं था। उसने डूबनेके समय भगवान्‌का ध्यान कर... सूँड़का अग्रभाग फैला दिया कि क्षणभर भी बच जाऊँ... इतनेमें भगवान्‌ने 'रा' उच्चारणका संकेत मान लिया; ... डूबनेसे प्रथम ही भगवान्‌ने बचा लिया। डूबनेमें मुँह ... करनेमें 'म' का संकेत भी हो जाता, पर आधे नाम... संकेतपर ही उसकी रक्षा हो गयी; यथा—

'तर्यो गयंद जाके अर्द्ध नाँय।' (विनयपत्रिका ८...)

यहाँ नाम लेनेके संकेतमात्रपर रक्षा हुई। ऐसे ... व्याधादिके भी भाव हैं। ऐसे यशस्वी श्रीराम-नामका अन्त... समय एक बार स्मरणपर मुक्ति होनेपर विचार करता है—

(१) अन्तका एक बारका भी नामोच्चारण इस... समस्त पापोंको भस्म कर देता है; यथा—

'जासु नाम पावक अघ तूला।'
(रामचरितमानस, अयोध्या० २४...)

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥
(श्रीमद्भा० ६। २। १४, १८)

'संकेतसे, परिहासमें, स्तोभ या अवज्ञापूर्वक ... भगवान्‌का नाम लेनेसे समस्त पाप नष्ट होते हैं। अज्ञा... अथवा ज्ञानपूर्वक किया हुआ पुण्यश्लोक भगवान्‌का नाम...

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥
न तद् वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद् ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंससेवितं
यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः॥
(श्रीमद्भागवत १२। १२। ४८—५०)

'जिस वाणीके द्वारा अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णके नाम, लीला, गुण आदिका उच्चारण नहीं होता, वह वाणी भावपूर्ण होनेपर भी निरर्थक है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है और सर्वोत्तम विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली होनेपर भी असत्कथा है। जो वाणी और वचन भगवान्के गुणोंसे परिपूर्ण रहते हैं, वे ही परम पावन हैं, वे ही मङ्गलमय हैं और वे ही परम सत्य हैं।

'जिस वाणीसे भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र यशका गान होता है, वही परम रमणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण नयी-नयी जान पड़ती है। उससे अनन्तकालतक मनको परमानन्दकी अनुभूति होती रहती है। मनुष्योंका समस्त शोक, चाहे वह समुद्रके समान लंबा और गहरा क्यों न हो, उस वाणीके प्रभावसे सदाके लिये सूख जाता है।

'जिस वाणीसे जगत्को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके यशका कभी गान नहीं होता, वह कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अत्यन्त अपवित्र है। मानस-सरोवरनिवासी हंस अथवा ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त उसका कभी सेवन नहीं करते। निर्मल हृदयवाले साधुजन तो वहीं निवास करते हैं, जहाँ भगवान् रहते हैं।'

भगवान्ने मनुष्यको जो जिह्वा दी है, वह खासकर भगवन्नामोच्चारणके लिये ही दी है। अतः जो मनुष्य भगवान्की दी हुई जिह्वाके द्वारा भगवन्नामोच्चारण करता है, वह अवश्य ही मोक्षकी सीढ़ियोंपर आरूढ हो सकता है। जो मनुष्य भगवान्की दी हुई जिह्वाके द्वारा भगवन्नामोच्चारण नहीं करता, वह मोक्षकी सीढ़ियोंपर आरूढ नहीं हो सकता। कहा भी है—

जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत्।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणिं स नारोहति दुर्मतिः॥

'जो मनुष्य जिह्वा प्राप्त करके भी कीर्तनीय भगवान् विष्णुका कीर्तन (उच्चारण) नहीं करता, वह कुत्सित बुद्धिवाला मनुष्य मोक्षकी सीढ़ियोंको पाकर भी उनपर चढ़नेमें सर्वदा असमर्थ रहता है।'

अतः मनुष्यको अपनी जिह्वाद्वारा भगवन्नामोच्चारण कर मोक्षकी सीढ़ियोंपर आरूढ होना चाहिये। भगवन्नामोच्चारणद्वारा मोक्षकी सीढ़ियोंपर आरूढ होनेसे ही मनुष्य परम पद (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है।

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्-
निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥
(श्रीमद्भा० ११। ९। २९)

'यह मानव-शरीर यद्यपि अनित्य और मृत्युग्रस्त है, तथापि इससे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति हो सकती है। इसलिये अनेक जन्मोंके बाद यह अत्यन्त दुर्लभ मानव-शरीर पाकर विचारशील मनुष्यको शीघ्रातिशीघ्र मृत्युसे पहले ही मोक्ष-प्राप्तिके लिये प्रयत्न कर लेना चाहिये। मानव-जीवनका मुख्य उद्देश्य मोक्ष-प्राप्ति ही है, विषय-भोग नहीं। विषय-भोग तो सभी योनियोंमें प्राप्त हो सकते हैं, जो कि मनुष्यके लिये सर्वथा त्याज्य हैं।'

समस्त योनियोंमें मनुष्य-योनि श्रेष्ठ कही गयी है। मनुष्य-योनिके श्रेष्ठ होनेका कारण यह है कि, इसी योनिके द्वारा 'मोक्ष'की प्राप्ति की जा सकती है, अन्य योनियोंके द्वारा नहीं की जा सकती। मनुष्यके लिये 'मोक्ष'की प्राप्ति बहुत ही श्रेष्ठ और आवश्यक वस्तु है। इसकी प्राप्ति होनेके अनन्तर मनुष्य सदाके लिये 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्'के चक्करसे मुक्त हो जाता है। अतः मनुष्यको मोक्षकी प्राप्तिके लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये।

दुःखका विषय है कि जिस मोक्षकी प्राप्तिसे मनुष्य बार-बार जीवन-मरणके चक्करसे छूट जाता है, उस मोक्षकी प्राप्तिके लिये वह प्रयत्न नहीं करता, किंतु सांसारिक

पशु-पक्षीकी तरह आहार, निद्रा, भय, मैथुनादि अनित्य लौकिक सुख-भोगोंमें ही आसक्त रहता है। ऐसे मनुष्यकी तुलना उस व्यक्तिसे की गयी है, जो अपने स्वर्गकी प्राप्तिके लिये ऊपरकी मंजिलमें पहुँचकर, असावधानवश पुनः अकस्मात् नीचे गिर जाता है। ऐसे मनुष्यके लिये ही भगवान् वेदव्यासजीने कहा है—

'समारूढच्युतं विदुः।' (श्रीमद्भा० ११।७।७४)

अतः बुद्धिमान् मनुष्यको संसार-चक्रसे छुटकारा पानेके लिये मोक्षप्राप्त्यर्थ सदा प्रयत्न करना चाहिये। मोक्ष-प्राप्तिके लिये भगवन्नामसे बढ़कर और कोई सुगम साधन नहीं है। इसलिये मनुष्यको मोक्ष-प्राप्तिके लिये सर्वदा भगवन्नामका उच्चारण करना चाहिये।

भगवन्नामका उच्चारण वही मनुष्य कर सकता है, जिसकी भगवान्‌में श्रद्धा और विश्वास हो। श्रद्धा और विश्वासके बिना मनुष्य भगवन्नामका उच्चारण नहीं कर सकता। अतः भगवन्नामके उच्चारणार्थ मनुष्यको भगवान्‌के प्रति श्रद्धा और विश्वास रखना चाहिये।

भगवान्‌के प्रति श्रद्धा और विश्वासका होना भी भगवत्कृपापर ही निर्भर है। भगवत्कृपाके बिना मनुष्य भगवान्‌में श्रद्धा और विश्वास नहीं कर सकता। अतः स्पष्ट है कि भगवत्कृपासे ही मनुष्य भगवान्‌के प्रति श्रद्धा और विश्वासको प्राप्तकर भगवन्नामका उच्चारण कर सकता है।

भगवन्नामका उच्चारण मनुष्य-जीवनके प्रारम्भकालसे ही होना चाहिये। जो मनुष्य अपने जीवनके प्रारम्भकालसे ही भगवन्नामके उच्चारणका अभ्यास कर लेता है, वही अपनी मृत्युके समयमें भी भगवन्नामका उच्चारण कर सकता है। जो मनुष्य अपने जीवनके प्रारम्भकालमें भगवन्नामके उच्चारणका अभ्यास नहीं करता, उसके लिये मृत्युके समय भगवन्नामका उच्चारण करना बहुत ही कठिन है। अतः मनुष्यको अपने जीवनके प्रारम्भकालमें ही भगवन्नाम-के उच्चारण करनेका अभ्यास कर लेना चाहिये, जिससे वह अपनी मृत्युके समयमें भी भगवन्नामका उच्चारण कर सके। जो मनुष्य अपने समस्त जीवनमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवन्नामका उच्चारण करता रहता है, वह निश्चित ही जीवन-मरणके बन्धनसे छूटकर मुक्त हो जाता है। अतः मोक्षाभिलाषीको उठते, बैठते, सोते, जागते, चलते, फिरते आदि सभी अवस्थाओंमें सर्वदा भगवन्नामका उच्चारण करना चाहिये।

वेदादि सद्ग्रन्थोंका तो यहाँतक कहना है कि जिस मनुष्यने प्रमादवश जीवनपर्यन्त कभी भी भगवन्नामका उच्चारण नहीं किया, उसने भी भगवत्कृपासे मृत्युके समयमें भी विवश होकर यदि भगवन्नामका उच्चारण कर लिया, तो उसके समस्त पापोंका क्षय हो जाता है और वह निश्चित ही मुक्तिको प्राप्तकर भगवत्सायुज्य लाभ करता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अजामिल है, जिसने मृत्युके समय अपने पुत्रके व्याजसे भगवान्‌का नाम लेकर परम पदको प्राप्त किया*—

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन्॥
(श्रीमद्भा० ६।२।४९)

'अजामिल-जैसे पापीने मृत्युके समय पुत्रके बहाने भगवान्‌के नामका उच्चारण किया, जिसके फलस्वरूप उसे परमपद (वैकुण्ठ) की प्राप्ति हुई। फिर जो लोग श्रद्धा-भक्तिसे सावधान होकर भगवन्नामका उच्चारण करते हैं, उनकी भगवत्प्राप्ति अर्थात् उनके मुक्त होनेमें तो संदेह ही क्या है?'

प्राणत्यागके समय भगवन्नामके उच्चारण और स्मरण करनेसे मनुष्य 'मोक्ष' प्राप्त करता है, इस विषयका उल्लेख भागवत, गीता आदि शास्त्रोंमें बारंबार किया गया है—

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये॥
(श्रीमद्भा० ३।९।१५)

'जो मनुष्य प्राणत्यागके समय आपके (भगवान्‌के) अवतार, गुण और कर्मोंको बतलानेवाले 'देवकीनन्दन', 'जनार्दन', 'कंसनिकन्दन' आदि नामोंका विवश होकर भी उच्चारण करते हैं, वे अनेकों जन्मोंके पापोंसे तत्काल मुक्त होकर माया आदिसे रहित होकर ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। आप नित्य अजन्मा हैं, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।'

* [illegible]
[illegible]
([illegible])

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः
पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान्।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः॥
(श्रीमद्भा० १२।३।४४)

'मनुष्य मरनेके समय आतुर अवस्थामें अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर भी यदि भगवान्‌के किसी एक नामका उच्चारण कर ले, तो वह मनुष्य समस्त कर्मबन्धनसे मुक्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त करता है। किंतु फिर भी इस कलियुगमें कलियुगसे प्रभावित होकर प्राणी उन भगवान्‌की आराधना नहीं करते, यह बड़े दुःखकी बात है।'

जासु नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥
(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड ३०।३)

मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ रामनामेति यः स्मरेत्।
स पापात्मापि परमं मोक्षमाप्नोति जैमिने॥
(पद्मपुराण, क्रियायोग०)

'हे जैमिनि! जो मृत्युकालमें रामनामका स्मरण करता है, वह पापात्मा होनेपर भी परम मोक्ष-पदको प्राप्त करता है।'

भगवान् श्रीकृष्णने अपने नामके स्मरणके महत्त्वके सम्बन्धमें अर्जुनसे यों कहा है—

नामस्मरणमात्रेण प्राणान् मुञ्चन्ति ये नराः।
फलं तेषां न पश्यामि भजामि तांश्च पार्थिव॥
तस्मान्नामानि कौन्तेय भजस्व दृढचेतसा।
राम राम सदा युक्तास्ते मे प्रियतमाः सदा॥

"हे पार्थ! जो मनुष्य मेरे नामका स्मरण करते हुए प्राणत्याग करते हैं, उनके फलको मैं स्वयं भी नहीं कह सकता हूँ, किंतु मैं स्वयं उनका भजन करता हूँ। इसलिये स्थिरचित्त होकर भगवान्‌के नामका ही स्मरण और कीर्तन करना चाहिये। जो 'राम-राम' इस प्रकार निरन्तर जपते रहते हैं, वे मेरे अत्यन्त प्रिय हैं।''

भगवान् बड़े ही दयालु हैं। वे अपना नाम स्मरण करनेवाले भक्तको सदा स्मरण करते हैं। भगवन्नाम-स्मरण करनेवाला कोई भक्त यदि अपने पूर्वजन्मके संचित पापोंके कारण मृत्युकालमें ज्ञानशून्य (बेहोश) होकर भगवन्नाम-स्मरण करनेमें असमर्थ हो जाता है, तो उसका भगवान् स्वयं स्मरण करते हैं और उसे परमगति देते हैं। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

ततस्तं म्रियमाणं तु काष्ठपाषाणसंनिभम्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्॥

'काष्ठ और पाषाणके सदृश म्रियमाण उस भक्तका मैं स्वयं स्मरण करता हूँ और उसको परमगति देता हूँ।'

और भी कहा है—

कफवातादिदोषेण मद्भक्तो न च मां स्मरेत्।
तस्य स्मराम्यहं नो चेत् कृतघ्नो नास्ति मत्परः॥

'मेरा भक्त यदि कफ-वातादि दोषोंके कारण (मृत्युके समय) मेरा स्मरण करनेमें असमर्थ होता है, तो मैं स्वयं उसका स्मरण करता हूँ। यदि मैं अपने स्मरण करनेवाले भक्तको मृत्युके समय भूल जाऊँ, तो मेरे बढ़कर कोई कृतघ्न नहीं हो सकता।'

भगवान्‌की दयाशीलता और कृपाशीलता अवर्णनीय है। वे अपने भक्तकी जिम्मेदारी जीवनपर्यन्तताके लिये स्वयं वहनकर सदा उसका सर्वप्रकारसे कल्याण करते हैं। अतः भगवद्भक्त मनुष्यको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपने शरीर, वाणी, मन, बुद्धि, इन्द्रिय और आत्मा आदि सबको भगवान्‌में समर्पितकर सर्वदा उनके नाम, लीला और स्वरूपका स्मरण और उच्चारण करना चाहिये।

अब हम उन सच्चिदानन्द भगवान्‌को प्रणाम करते हुए अपने लेखको समाप्त करते हैं, जिनके नाम-स्मरणसे मनुष्यके समस्त प्रकारके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं—

प्रयाणे चाप्रयाणे च यन्नाम स्मरतां नृणाम्।
सद्यो नश्यन्ति पापौघा नमस्तस्मै चिदात्मने॥

'मृत्युकालमें अथवा जीवनकालमें भगवान्‌का नाम-स्मरण करनेवाले मनुष्योंके सभी प्रकारके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। उन चिदात्मा भगवान्‌को नमस्कार है।'

प्रकृतिरूपी वृक्षपर आत्मा और परमात्मारूपी दो पक्षी बैठे हैं, जिनमें आत्मारूपी पक्षी तो इस प्रकृतिके फलोंको खाता है और परमात्मारूपी पक्षी केवल द्रष्टाके रूपमें देखता रहता है। इस वृक्षके फलोंको खाना ही जीवात्माके बन्धनका कारण है; क्योंकि इन फलोंमें आसक्त होकर वह अपना स्वत्व खो बैठता है और उस स्वत्वके खोनेसे उसकी शक्ति कम हो जाती है और शक्तिके कम हो जानेके कारण वह परतन्त्र हो जाता है; और इस परतन्त्रताके कारण वह जन्म-मरण या पुनर्जन्मके चक्रमें पड़ता है। पर जब वह भोगेच्छाको छोड़कर अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है, तभी वह पूर्णरूपसे स्वाधीन हो जाता है और मोक्षका अधिकारी बन जाता है।

वस्तुतः आत्माका सच्चा स्वरूप वह नहीं है, जो बन्धनमें पड़े हुए आत्माका देखा जाता है। आत्माका सच्चा स्वरूप सच्चिदानन्द है। वह परमात्माका एक अंश है। जिस प्रकार एक चिनगारी अग्निका अंश है और वह चिनगारी भी अग्निके समस्त गुणोंको सूक्ष्मरूपमें समेटे रहती है, उसी प्रकार यह आत्मा भी परमात्माका एक अंश होनेके कारण परमात्माके सभी गुणोंको अपनेमें समेटे रहता है। गीतामें भी भगवान् कृष्णने कहा है कि 'मेरा ही अंश इस मर्त्यलोकमें जीवके रूपमें अभिव्यक्त हुआ है[7]।' पर इस जीवात्मामें जो शक्ति है जिसके लिये वेदमें 'स्वधा' शब्द आया है, यह शक्ति ही इसके सच्चे स्वरूपको ढक देती है और उस स्वधाशक्तिसे प्रभावित होकर यह आत्मा अपनेको बन्धनमें समझने लगता है। इसीको यजुर्वेदके शब्दोंमें इस प्रकार कहा जा सकता है—

'सोनेके पात्रसे सत्य ढका हुआ है[8]।' चमक-दमकवाली माया जीवात्माके सच्चे स्वरूपको ढक देती है। उस अवस्थामें यह आत्मा अपनी शक्तियोंसे युक्त होकर मर्त्य शरीरको अपना स्थान बनाकर एक शरीरसे दूसरे शरीरमें विचरता है, यही इसका 'पुनर्जन्म' है।

पर बन्धनसे हीन होनेपर आत्मा अपने सच्चे स्वरूपको जब पहचान लेता है, तब वह परमात्मामें ही मिल जाता है। उपनिषद्के अनुसार 'ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है[9]।' एक तत्त्वदर्शीके लिये परमात्मा और ब्रह्म एक ही तत्त्व है। यजुर्वेदका भी कथन है कि 'अजन्मा प्रजापति गर्भके अंदर विचरता हुआ अनेक रूपोंमें प्रकट होता है[10]।' बुद्धिमान् जन उस परमात्माके स्थानको देखते हैं, जिसमें यह सारा संसार स्थित है। 'जब मनुष्य इस अवस्थापर पहुँच जाता है, तब उसके हृदयकी ग्रन्थियाँ टूट जाती हैं, सभी संशय समाप्त हो जाते हैं और उसके कर्म भी क्षीण हो जाते हैं।[11]' यही 'मोक्ष' है। इस मोक्षमें उसके सभी प्रकारके बन्धन टूट जाते हैं। 'वह सिद्ध साधनसम्पन्न होकर मुक्तावस्थामें क्षणोंमें पृथ्वीतक धाम में घूम आता है। चारों ओर भ्रमण करता हुआ स्वर्लोकका दर्शन करता है और सारी दिशाओंमें घूमता है। सर्वत्र फैले हुए तन्तुओंको चीरकर यह आनन्दका अनुभव करता है और वह आनन्दस्वरूप ही हो जाता है[12]।'

दो मार्ग

ऋग्वेदमें (१०।८८।१५) देवयान और पितृयाण इन दो मार्गोंका वर्णन है। पूर्वजन्मके चक्रमें पड़ा हुआ आत्मा पितृयाणसे गमन करता है और मोक्षका अधिकारी आत्मा देवयानसे। अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये जीव इन दो मार्गोंसे जाता है। द्यौ और पृथ्वीके बीचमें जितने भी पदार्थ हैं, वे सब इन्हीं दो मार्गोंसे चले जाते हैं।

देवयानका मार्ग ही तत्त्वज्ञानीको स्वर्गकी ओर ले जाता है। 'यज्ञ करते हुए जो याजक [illegible] आरोहण करते हैं, वे नाकके पीठसे द्युलोकको और चले हैं। उन्हीं उत्तम कार्य करनेवालोंको नभमें स्वर्गको ले जानेवाला देवयानका मार्ग दिखायी देता है[13]।' वेदका यह मन्त्र उपनिषदोंमें जाकर और अधिक विस्तृत हुआ। जिसे यहाँ

७. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (१५।७)

८. हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।(यजु० ४०।१७)

९. ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।

१०. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
(यजु० ३१।१९)

११. भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥
([illegible] ५।१४)

१२. यजुर्वेद (३२।१२)।

१३. अथर्व० (१८।४।१४) व्याख्या डॉ० [illegible]

आत्यन्तिक लोकवादी चार्वाक और आत्यन्तिक मोक्षवादी बौद्धधर्मको स्वीकार नहीं किया। भारतमें चार्वाक तो कभी फूला-फला ही नहीं और बौद्धधर्म भी बरसाती नदीकी तरह एकदम जितनी तेजीसे फैला, उतनी ही तेजीसे उतर भी गया। अन्तमें रह गया वेदों और अन्य वैदिक दर्शनों यह समन्वयवाद ही।

वेदोंका यह 'समन्वयवाद' शाश्वत है, सनातन है और अभेद्य है।

परलोक और पुनर्जन्मका वैदिक रहस्य

(लेखक—कविरत्न पं० श्रीदेवीप्रसादजी शास्त्री 'पाराशर')

भूतलपर जन्म लेनेवाले मानवोंके लिये स्वर्गलोक, पितृलोक, यमलोक आदि आकाशमण्डलस्थ लोक प्रत्यक्ष नहीं दीख सकते, परंतु वेदमन्त्रोंसे उनका अस्तित्व अवश्य मानना पड़ेगा। संसारमें सभी पदार्थोंका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता; अतः अनुमान, उपमान तथा शब्दादि प्रमाणकी उपयोगिता सिद्ध ही है। उदाहरणार्थ—गर्भाधानकालमें पुत्रका अस्तित्व नहीं होता, यह शब्दप्रमाणसे ही अपने पिताका निश्चय करता है तथा अपने पिताकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी भी होता है। इसी प्रकार श्रुति भगवतीकी आज्ञासे अदृश्य वस्तु तथा लोक-लोकान्तरका बोध होना सम्भव है। वैसे तो सम्पूर्ण सनातन वाङ्मय परलोक और पुनर्जन्मकी कथाओंसे भरा है। पुराणेतिहास आदि धर्मशास्त्रोंमें इसके अनेकानेक प्रमाण हैं। जैसे नारद आदिकी पुनर्जन्म-कथाएँ तथा गर्गसंहिता इत्यादि पुण्यग्रन्थोंके प्रसंग पठनीय हैं।

आधुनिककालमें नास्तिकताका अत्यधिक प्रचार है। मनुष्य धर्मनिरपेक्षताके नामपर अधर्मका आचरण कर घोर पतनकी ओर जा रहा है। परलोक तथा पुनर्जन्मको मिथ्या समझकर शास्त्रमर्यादाके विरुद्ध यथेच्छाचारपरायण हो अपना तथा विश्वका सर्वनाश करनेमें कटिबद्ध है। ऐसी परिस्थितिमें अनादिकालसे संसारके प्रकाण्ड विद्वानोंद्वारा सम्मानित वेद भगवान्‌की पुण्यवाणीका आश्रय लेकर गुह्यतम रहस्यका पता लगाना तथा तदनुसार सदाचार धारण कर ऐहिक पारमार्थिक श्रेय पाना ही परम धर्म है। प्रथम परलोकपर विचार करें। सत्कर्मानुष्ठानसे देवमार्ग और पितृमार्गसे लोकान्तर जानेका वर्णन वेदवर्णित है—

द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥
(यजुर्वेद १९। ४७)

इन दो मार्गोंका उल्लेख अन्यत्र भी पाया जाता है—

स एष देवयानो वा पितृयाणो वा पन्थाः।

स्वर्गादि पुण्यलोकोंकी प्राप्तिके लिये आराधक प्रार्थना करता है—'हम अनृण होकर जो देवयान और पितृयाण मार्ग हैं, इन सभी मार्गोंसे स्वर्गको प्राप्त करें।'

'ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः
सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम।'
(अथर्ववेद ६। ११७।३)

श्राद्धकर्म करनेका अभिप्राय ही एकमात्र मृतात्माकी सुख-शान्तिमय लोकोंकी प्राप्तिका सूचक है। ऋग्वेदका मन्त्र मृतात्माको सूर्य-रश्मियोंके साथ सहगमनसे लोकान्तर गमनका बोधक है। (ऋग्वेद १। १०९। ७)

इसी प्रकार अथर्ववेदमें भी मृतात्माके बान्धव कहते हैं कि 'हे मृतात्मन्! जो हमारे पिताके पिता हैं तथा पितामह हैं और जो बड़े अन्तरिक्षमें प्रविष्ट हुए हैं, उनको तथा सूर्य जो कि लोकान्तरमें पहुँचानेवाला है, जहाँतक हो सके वहाँतक शीघ्र ही पितृयोनिका शरीर दें।'
(अथर्ववेद १८। ३। ५९)

उपर्युक्त मन्त्रोंमें मार्ग-प्रदर्शन, पितृलोकगमन और शरीर-प्राप्ति आदि अनेक विलक्षण विषय आये हैं। इनसे मृतात्माका पितृलोक, यमलोक, स्वर्गलोकमें जाना सिद्ध है। स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक आदि पावन लोकोंमें पवित्र अन्तःकरण, यम, दान, तप इत्यादि सत्कर्मोंसे सम्पन्न विशुद्धात्मा महापुरुषोंका ही गमन होता है। 'जातवेद नामक कव्याद अग्नि चितामें जलाते समय स्वर्गीय आत्माओंका इन्द्रियसमूह नष्ट नहीं करता। सूक्ष्म शरीरके साथ सब इन्द्रियगोलक बने रहते हैं, इसलिये उसे वहाँपर बहुत-सा भोग प्राप्त होता है।'
(अथर्ववेद ४। १४। १)

तथा अग्नि है—ऋणात्मक विद्युत् (निगेटिव इलेक्ट्रिसिटी)। दोनों प्रकारके विद्युतोंके परस्पर सहयोग, आघात-प्रतिघात से ही जगत्की सृष्टि होती है। जगत्का मूल उपादान जल ही तो है (अप एव ससर्जादौ—मनु)। फलतः उस मूल तत्त्वमें जगत्के उत्पादक तत्त्वोंका अस्तित्व होना नितान्त उचित तथा वैज्ञानिक है। सोमके साहचर्यसे अग्नि शोषक न होकर पोषक है। इसीलिये लोक-जीवनमें तथा धार्मिक कर्मकाण्डके सम्पादनमें जलकी इतनी महत्ता है।

जलके त्रिविध भेद हैं—(१) दिव्या आपः (२) आन्तरिक्षा आपः (३) पार्थिवी आपः।

'या दिव्या आपः पयसा संबभूवुः
या आन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः ॥'

इसीका निर्देश अथर्वण श्रुतिमें भी है (४।२८।५)। जलका प्रथम प्रकार है—दिव्यजल अर्थात् द्युलोकमें होने वाला जल। एक बात ध्यान देनेकी है कि सूक्ष्मरूप जलकी संज्ञा है—आप् या अम्भः। यह शुद्ध स्वरूप द्रव है। यह स्थूल रूपमें जल बन जाता है। इससे यह विश्वमें सर्वतः व्याप्त है। इसीलिये 'सर्वमापोमयं जगत्'का यही तात्पर्य है। इसके दृष्टान्त वैदिक मन्त्रोंमें उपलब्ध होते हैं। एक मन्त्र कहता है कि 'चन्द्रमा अप्के भीतर आकाशमें दौड़ता है—चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।' जिससे चन्द्रमाके लोकमें 'आप्'की सत्ता अनुमानित है। अन्य मन्त्र बतलाता है कि 'सूर्यके समीप तथा सूर्यके साथ अप् विद्यमान है'—

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम्।
(ऋग्वेद १।२३।१७)

जिससे सूर्यके साथ जलकी सत्ताका स्पष्ट वैदिक प्रमाण मिलता है। सूर्य जब बादलोंमें व्याप्त है, तब 'अप्' अपना स्थान छोड़नेके लिये बाध्य होता है; क्योंकि उसका प्रखर सूर्य-रश्मियोंसे संघर्ष होने लगता है और वह वहाँसे हटकर भुवर्लोककी दिशामें प्रस्थान करता है। उस लोकमें सूर्यकी किरणें मन्द रहती हैं और इसलिये वहाँ अप् जमा होने लगता है और अत्यन्त घनीभूत होनेके कारण वह स्थूल [illegible] धारण कर लेता है। [illegible] होनेसे अप् वायुमण्डलमें अधिक टिक नहीं सकता और भारी होकर वह स्थूल जलके रूपमें भूतलपर प्रवाहित हो जाता है।

यही है—दिव्य जलकी धारा—गङ्गाका प्रवाह।

पुराणोंमें वर्णित है कि ध्रुवके ऊपरसे सुमेरु पर्वतपर गङ्गाका जल गिरता है। विष्णुपुराण (द्वितीय अंश, अध्याय ८) में विष्णुका तृतीय पद 'ध्रुवलोक' बतलाया गया है, जो लोकोंका आधारभूत है तथा वृष्टिका कारण है। यहींसे गङ्गा प्रवाहित होती है।

वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठनखस्रोतोविनिर्गताम्।
विष्णोर्बिभर्ति यां भक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः॥
(११३)

आशय है कि 'विष्णुभगवान्के वाम चरणकमलके अँगूठेके नखरूप स्रोतसे निकली हुई उन गङ्गाजीको ध्रुव दिन रात अपने मस्तकपर धारण करता है।'

इसका आधिदैविक तात्पर्य बतलाते समय महामहोपाध्याय श्रीगिरिधरशर्मा चतुर्वेदीजीने लिखा है कि 'प्रातःकालका सूर्य ही 'वामन' कहा जाता है। उसके नखों (अर्थात् किरणों) के अग्रभागने जहाँ छिद्र बनाया है, वहाँसे यह जलधारा गिरती है[1]।' जो भी व्याख्या हो, ध्रुवलोकमें गङ्गाका उदय होता है। वहाँसे सुमेरुपर गिरती है और वहाँसे शिवके जटाजूटमें वह घूर्णित घूमा करती है। इस दृश्यका साक्षात्कार आज भी किया जा सकता है। भगवान् शंकरका एक नाम 'व्योमकेश' है (आकाशरूपी केशवाला)। इसी आकाशपर द्वितीयाका चन्द्रमा चमकता है, जो शिवके मस्तकपर विराजमान बताया जाता है। रात्रिके समय आकाशमें धूएँकी धाराके समान करोड़ों नक्षत्रोंका जो पुञ्ज दृष्टिगोचर होता है, वही तो 'आकाशगङ्गा' है और यह आज भी व्योमकेशके शिरपर अपनी दुग्धमयी शुभ्रधारासे दिगन्तको विभूषित करती प्रदर्शित होती है। यहीं सुमेरु शिखरपर [illegible] बाद भगीरथ कल्याणार्थ भगवती गङ्गाका प्रादुर्भाव इस भारतवर्षमें होता है।

इस प्रकार दिव्य जलकी धारा होनेके कारण गङ्गाजीका 'ब्रह्मद्रव' (ब्रह्मरूप जल) नाम नितान्त उपयुक्त है। इसीलिये गङ्गाके जलकी इतनी महिमा है। [illegible]

१ वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति [illegible] इस विषयका विशेष विवरण द्रष्टव्य है।

रण इसी तथ्यका द्योतक है। 'मेकाङ्ग' का अर्थ है 'माई ङ्गा' (मे=माई, काङ्ग=गाङ्ग, गङ्गा)। इस प्रकार ङ्गा माईकी प्रशस्त स्तुति भारतवर्षके ही हिंदू नहीं रते, प्रत्युत थाईलैण्डके बौद्ध भिक्षु भी 'मेकाङ्ग' को 'माई गङ्गा'के नामसे पुकारकर गङ्गाके प्रति अपनी श्र- ञ्जलि अर्पित करते हैं। तथास्तु

> नराकारं भजन्त्येके निराकारं तथापरे।
> वयं तु सर्वशास्त्रज्ञा नीराकारमुपास्महे॥

गीतामें भगवान्के स्वरूप, परलोक, पुनर्जन्म तथा भगवत्प्राप्तिका वर्णन

श्रीमद्भगवद्गीता अखिल ब्रह्माण्डनाथ, सर्वलोकमहेश्वर, सूर्य-चन्द्र-इन्द्र-वायु-अग्नि-वरुण-यम आदि सुर-लोकनायक- ायक, सर्वनियन्ता, सर्वरूप, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, र्वातीत, सर्वगुणमय, सर्वगुणातीत, अनन्त-चेतनाचेतन- ियन्ता तथा भिन्नाभिन्न सम्बन्धी, परात्पर परब्रह्म, ब्रह्म- तिष्ठा, अनन्ताचिन्त्य-निरवधि-निरङ्कुश-ऐश्वर्यस्वरूप, युगपत् -रोधिगुणधर्माश्रय, शरणागतवत्सल, भक्तवाञ्छाकल्पतरु, ामस्वरूप, भक्तिवश्य, अचिन्त्यानन्त परोक्षापरोक्ष- लीलास्वरूप 'स्वयं भगवान्' श्रीकृष्णकी वाणी है। इसमें जो कुछ कहा गया है वह परम सत्य है; विविध भाव-विचार- अधिकार-रुचि-युक्त प्राणियोंके कल्याणके लिये ज्ञान, भक्ति, निष्काम कर्म, योग प्रभृति विभिन्न साधनरूपमें परम कल्याणकर है।

वेद भगवान्के सिद्धान्तप्रतिपादक 'भगवद्-निःश्वास' हैं; गीता भगवान्के सिद्धान्तदर्शक साक्षात् 'भगवद्वचन' है। उपनिषद् भगवत्तत्त्व-बोधक हैं। गीता उन्हीं उपनिषद्- रूप गौओंका दुग्धामृत है। महाभारत अखिल ज्ञान-भण्डार- रूप दुग्धसिन्धु है और गीता उसको मथकर निकाला हुआ सार-सर्वस्व नवनीत है। गीता भगवान्का हृदय है, गीता साक्षात् भगवत्स्वरूप है।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण किसी मत-विशेषका प्रतिपादन या किसी सिद्धान्तका खण्डन नहीं करते हैं। वे त्रिकालाबाधित नित्य सत्यका अपनी दिव्य भाषामें अपने प्रिय भक्त अर्जुनके हितार्थ प्रकाश करते हैं। भगवान् सबके हैं, भगवान्की वाणी सबके लिये सहज ही कल्याणकारिणी है और त्रिकालाबाधित सत्य तत्त्व सबके लिये प्राप्य है। अतएव गीता सहज ही अखिल विश्वके हितमें संलग्न है। अन्धकारमें पड़े हुए प्रत्येक प्राणीको बिना किसी भेदके गीताने प्रकाश दिया है—दे रही है और देती रहेगी।

सत्यका प्रतिपादन या खण्डन नहीं होता, वह तो नित्य अनादि अनन्त है ही। वह किसीकी न तो स्वीकृतिकी अपेक्षा रखता है, न समर्थन या संरक्षणकी। सत्यकी निर्बाध सत्ता है; उसे न माननेवाले उससे वञ्चित भले ही रह जायँ। सत्य किसीके मानने न माननेकी परवा नहीं करता। वह तो अपने सनातन जीवनमें ही नित्य सुप्रतिष्ठित रहता है। उसी सत्यका प्रकाश गीतामें है। भगवान्ने गीतामें यह बताया है कि 'जो कुछ है, सब एकमात्र वे पुरुषोत्तम भगवान् ही हैं।' इसी तत्त्वको विविध प्रकारसे उन्होंने समझाया है—

'लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।' (१५। १८)

''लोक और वेदमें 'पुरुषोत्तम' नामसे प्रसिद्ध हूँ।''

> मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय।
> मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥ (७। ७)

'धनंजय! मेरे अतिरिक्त कुछ भी अन्य नहीं है। यह सब जगत् सूत्रमें सूतके मणियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है।'

'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।' (९। ४)

'यह समस्त जगत् मुझ अव्यक्त मूर्तिसे (जलसे बर्फके समान परिपूर्ण है।'

> अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
> इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥ (१०। ८)

'मैं ही सबकी उत्पत्तिका मूल हूँ, सब मुझसे प्रवर्तित हैं। इस प्रकार मानकर भावसमन्वित बुद्धिमान् भक्त मुझे भजते हैं।'

> न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
> अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः॥ (१०। २)

'मेरे प्रभवको, उत्पत्तिको न तो देवतागण जानते हैं, न महर्षिगण ही; क्योंकि मैं ही देवताओं और महर्षियोंका भी आदि मूल हूँ।'

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
(१० । ३)

'जो मुझको अजन्मा (प्राकृतिक जन्मरहित), अनादि (उत्पत्तिरहित सर्वकारणकारण) तथा लोकोंका महान् ईश्वर जानता है, वह ज्ञानवान् पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥
(५ । २९)

'(जो मुझको) सब यज्ञ-तपोंका भोक्ता, समस्त लोकोंका महान् ईश्वर तथा प्राणिमात्रका सुहृद् जानता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।'

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
(६ । ३०)

'जो सर्वत्र (चराचर जगत्में) मुझको देखता है और सबको मुझमें देखता है, उसके लिये मैं कभी अदृश्य नहीं होता और मेरे लिये वह कभी अदृश्य नहीं होता।'

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥
(१० । ३९)

'अर्जुन! जो समस्त भूतोंकी उत्पत्तिका बीज है—मूल कारण है, वह मैं ही हूँ; क्योंकि चराचरमें कोई भी ऐसा भूत नहीं है जो मुझसे रहित हो। (सब मेरा ही स्वरूप है—सब मैं ही हूँ।)'

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥
(९ । २३)

'कौन्तेय! जो श्रद्धायुक्त भक्त दूसरे देवताओंकी पूजा करते हैं, वे भी मेरी ही पूजा करते हैं (पर वे मुझको मुझसे अलग मानते हैं। (इसलिये) उनकी वह पूजा अविधिपूर्वक होती है।'

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥
(१४ । २७)

'ब्रह्मकी, अमृतकी, अविनाशी और सनातनधर्मकी तथा ऐकान्तिक सुखकी प्रतिष्ठा मैं ही हूँ, (इन सबका परम आश्रय मैं ही हूँ)।'

इस प्रकार सम्पूर्ण अनन्त विश्वब्रह्माण्ड एकमात्र भगवान्की ही अभिव्यक्ति है। भगवान्से ही प्रकट है, भगवान्में ही स्थित है तथा भगवान्में ही पर्यवसित होता है। भगवान्से ही भगवान्में ही विश्व-प्राणियोंका प्रकृतिके द्वारा बार-बार उदय-विलय होता रहता है। यही प्रलय-सृजन है। भगवान् कहते हैं-

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥
सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥
(९ । ६-७)

'जैसे आकाशसे उत्पन्न सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु सदा ही आकाशमें स्थित है, वैसे ही समस्त भूत मुझमें स्थित हैं, ऐसा जानो। अर्जुन! कल्पके अन्तमें सब भूत मेरी प्रकृतिमें लय हो जाते हैं और कल्पके आदिमें मैं उनका फिर सृजन कर देता हूँ।'

यही भगवान् सर्वत्र व्याप्त एक आत्मा हैं। आत्मा स्वरूपतः जन्म-मरण-हीन नित्य सत्य है। भगवान्ने कहा है

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
(२ । २०, २३-२५)

'यह आत्मा किसी कालमें भी न जन्मता है, न मरता है और न यह आत्मा हो करके फिर होनेवाला है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है; शरीरके

नाश नहीं होता। इस आत्माको न शस्त्रादि काट सकते हैं, न आग जला सकती, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा ही सकता है। यह आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, अशोष्य है और निश्चय ही यह नित्य, सर्वगत, अचल, स्थिर और सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त (इन्द्रियोंका अविषय), अचिन्त्य (मनका अविषय) और विकाररहित (कभी न बदलनेवाला) कहा जाता है।'

सारे जीवोंके हृदयमें भगवान् ही आत्मारूपसे वर्तमान हैं—

> अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
> अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥
> (१० । २०)

'अर्जुन! सब भूत-प्राणियोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा मैं हूँ। मैं ही समस्त भूतोंका आदि, मध्य और अन्त हूँ।'

प्राणिमात्रके शरीरमें स्थित रहनेपर भी आत्मा (भगवान्) निर्लेप रहता है। इस विषयमें भगवान् कहते हैं—

> अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
> शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥
> यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
> सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥
> (१३ । ३१-३२)

'अर्जुन! अनादि तथा निर्गुण होनेसे यह अविनाशी आत्मा शरीरमें स्थित होकर भी वास्तवमें न तो कुछ करता है, न लिप्त होता है। जैसे सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होनेके कारण लिपायमान नहीं होता, वैसे ही देहमें सर्वत्र स्थित होकर भी आत्मा देहके कर्मों—गुणों आदिसे लिपायमान नहीं होता।'

तथापि जबतक पुरुष (आत्मा) 'प्रकृतिस्थ' है, तबतक उसमें सारे व्यापार होते रहते हैं। भगवान्का मनस्तत्त्व अंश यह प्रकृतिस्थ आत्मा ही 'जीव' है।

भगवान् कहते हैं—

> पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
> कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥
> (१३ । २१)

'प्रकृतिमें स्थित पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न तीनों गुणोंको भोगता रहता है—इनमें [illegible] है और इन गुणोंका सङ्ग ही उसके सत्-असत् (देव, पितर, प्रेत, मनुष्य, पशु आदि) योनियोंमें जन्म लेनेका कारण होता है।'

गीतामें गति, योनि, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक और लोक—सभीका स्पष्ट वर्णन है—

> यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
> तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥
> रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
> तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥
> (१४ । १४-१५)

'जब जीव सत्त्वगुणकी वृद्धिमें मरता है, तब वह उत्तम कर्म करनेवालोंके मलरहित (दिव्य स्वर्गादि) लोकोंको प्राप्त होता है। रजोगुणकी वृद्धिमें मरनेपर कर्मासक्तिवाले मनुष्योंमें जन्म लेता है और तमोगुणके बढ़नेपर मरनेवाला पशु-पक्षी आदि मूढ योनियोंमें जन्म लेता है।'

दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोधसे युक्त, अशुद्ध आचरण करनेवाले कामक्रोधपरायण, कामोपभोगको ही जीवनका परम ध्येय माननेवाले, अन्यायसे धनोपार्जन करनेवाले, विलासी, हत्या-हिंसापरायण, अन्तर्यामी भगवान्से द्वेष करनेवाले आसुरभावापन्न मनुष्य मरनेपर नरकोंमें आसुरी योनियोंमें जाकर, वहाँ नाना प्रकारकी यन्त्रणा भोगते हैं। (गीता १६। ४-१५ देखिये।) भगवान् आगे कहते हैं—

> अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
> प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥
> आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
> यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥
> अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
> मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥
> तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
> क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥
> आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
> मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥
> (१६ । १६-२०)

'जिनका चित्त अनेक भोगोंमें भटका करता है, जिनका जीवन मोहजालसे ढका है, जो कामोपभोगोंमें अत्यन्त आसक्त हैं, वे अपवित्र (घोर) नरकमें गिरते हैं। वे अपनेको ही श्रेष्ठ माननेवाले, घमंडी, धन-मान-मदसे युक्त [illegible] अविधिपूर्वक नाममात्रके यज्ञों—[illegible]

करते हैं, उन द्वेष करनेवाले क्रूरहृदय नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी (कुत्ते, सूअर, गदहे आदि) योनियोंमें गिराता हूँ। वे मूढ लोग (जिनको मानवजन्म मेरी प्राप्तिके लिये दिया गया था) मुझे न पाकर जन्म-जन्ममें आसुरीयोनिमें जाते हैं और फिर उससे भी नीच गति (घोर नरक आदि)को प्राप्त होते हैं।'

अर्जुनने कहा—

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥

(१ । ४१-४४)

'श्रीकृष्ण ! अधर्म अधिक बढ़ जानेसे कुलस्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं और वार्ष्णेय ! स्त्रियोंके आचरण दूषित होनेपर वर्णसंकर (सन्तान)का जन्म होता है। वर्णसंकर कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले जानेके लिये ही होता है। लुप्त हुई पिण्ड और जलकी क्रियावाले (तर्पण श्राद्धरहित) इनके पितरलोग भी गिर जाते हैं। इन वर्णसंकरकारक दोषोंसे कुलघातियोंके सनातन कुलधर्म और जातिधर्म नष्ट हो जाते हैं और हे जनार्दन ! नष्ट हुए कुलधर्मवाले मनुष्योंको अनिश्चित कालतक नरकमें रहना पड़ता है, ऐसा हमने सुना है।'

भगवत्प्राप्ति या मोक्षके साधनमें तत्पर पुरुष यदि योगसाधनसे विचलित होकर बीचमें ही मर जाता है तो उसकी क्या गति होती है ? अर्जुनके इस आशयके प्रश्नपर भगवान् कहते हैं—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥

(६ । ४०-४२)

'पार्थ ! उस पुरुषका न तो इस लोकमें नाश—पतन होता है, न परलोकमें ही; किसी भी कल्याण—(भगवदर्थ) कर्म करनेवालेकी दुर्गति नहीं होती। वह योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके (स्वर्गादि दिव्य) लोकोंको प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षोंतक निवास करके शुद्ध आचरण करनेवाले श्रीमानोंके घरमें जन्म लेता है। अथवा (साधनसम्पन्न या भगवत्प्राप्त) धीमान् योगियोंके कुलमें जन्म लेता है। इस प्रकारका जन्म इस लोकमें निःसन्देह ही अति दुर्लभ है।'

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥

(९ । २०-२१)

'जो तीनों वेदोंके विधानके अनुसार सकामकर्म करनेवाले, सोमरस पीनेवाले पापरहित पुरुष यज्ञोंके द्वारा पूजा करके स्वर्गमें जाना चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्योंके फलस्वरूप सुरेन्द्र (स्वर्ग) लोकको प्राप्त होकर वहाँ देवताओंके दिव्य भोगोंको भोगते हैं। वे उस विशाल स्वर्गलोक (स्वर्गसुखों) को भोगकर पुण्यक्षय होनेपर पुनः मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्गके साधन रूप तीनों वेदोंमें कथित सकाम कर्मोंका सेवन करनेवाले भोगकामी पुरुष बार-बार स्वर्गलोक और मृत्युलोकमें आते-जाते रहते हैं।'

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

(९ । २५)

'देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको (उन-उन देवलोकोंको), पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको (पितृलोकको), भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको (प्रेतलोकको) और मेरा (भगवान्‌का) पूजन करनेवाले मुझको ही प्राप्त होते हैं। (वे किसी अन्य लोकमें नहीं जाते, और न उनका मर्त्यलोकमें पुनर्जन्म ही होता है।)'

नाश नहीं होता। इस आत्माको न शस्त्रादि काट सकते हैं, न आग जला सकती, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा ही सकता है। यह आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, अशोष्य है और निश्चय ही यह नित्य, सर्वगत, अचल, स्थिर और सनातन है। यह आत्मा अव्यक्त (इन्द्रियोंका अविषय), अचिन्त्य (मनका अविषय) और विकाररहित (कभी न बदलनेवाला) कहा जाता है।'

सारे जीवोंके हृदयमें भगवान् ही आत्मारूपसे वर्तमान हैं—

> अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
> अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥
> (१० । २०)

'अर्जुन! सब भूत-प्राणियोंके हृदयमें स्थित सबका आत्मा मैं हूँ। मैं ही सम्पूर्ण भूतोंका आदि, मध्य और अन्त हूँ।'

प्राणिमात्रके शरीरमें स्थित रहनेपर भी आत्मा (भगवान्) निर्लेप रहता है। इस विषयमें भगवान् कहते हैं—

> अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
> शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥
> यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
> सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥
> (१३ । ३१-३२)

'अर्जुन! अनादि तथा निर्गुण होनेसे यह अविनाशी आत्मा शरीरमें स्थित होकर भी वास्तवमें न तो कुछ करता है, न लिप्त होता है। जैसे सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होनेके कारण लिपायमान नहीं होता, वैसे ही देहमें सर्वत्र स्थित होकर भी आत्मा देहके कार्यों—गुणों आदिसे लिपायमान नहीं होता।'

तथापि जबतक पुरुष (आत्मा) 'प्रकृतिस्थ' है, तबतक उसमें सारे व्यापार होते रहते हैं। भगवान्का सनातन अंश यह 'प्रकृतिस्थ आत्मा' ही 'जीव' है।

भगवान् कहते हैं—

> पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।
> कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥
> (१३ । २१)

'प्रकृतिमें स्थित पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न तीनों गुणोंसे सम्बन्धित रहता है—उनको भोगता है और इन गुणोंका सङ्ग ही उसके सत्-असत् (देव, पितर, प्रेत, मनुष्य, पशु आदि) योनियोंमें जन्म लेनेका कारण होता है।'

गीतामें गति, योनि, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक [illegible] लोक—सभीका स्पष्ट वर्णन है—

> यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
> तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥
> रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
> तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥
> (१४ । १४-१५)

'जब जीव सत्त्वगुणकी वृद्धिमें मरता है, तब वह उत्तम [illegible] करनेवालोंके मलरहित (दिव्य स्वर्गादि) लोकोंमें [illegible] होता है। रजोगुणकी वृद्धिमें मरनेपर कर्मासक्तिवाले मनुष्योंमें जन्म लेता है और तमोगुणके बढ़नेपर मरनेवाला [illegible] आदि मूढ योनियोंमें जन्म लेता है।'

दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोधसे युक्त अशुद्ध आचरण [illegible] वाले कामक्रोधपरायण, कामोपभोगको ही जीवनका परम [illegible] माननेवाले, अन्यायसे धनोपार्जन करनेवाले, [illegible] हत्या-हिंसापरायण, अन्तर्यामी भगवान्से द्वेष करने[illegible] आसुरभावापन्न मनुष्य मरनेपर नरकोंमें आसुरी योनि[illegible] जाकर, वहाँ नाना प्रकारकी यन्त्रणा भोगते हैं। ([illegible] १६ । ४-१९ देखिये) भगवान् आगे कहते हैं—

> अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
> प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥
> आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
> यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥
> अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
> मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥
> तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
> क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥
> आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
> मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥
> (१६ । १६-२०)

'जिनका चित्त सदा भोगोंमें अटका रहता है, जिनका जीवन मोहजालसे ढका है, जो कामोपभोगमें अत्यन्त आसक्त हैं, वे अपवित्र (गंदे) नरकमें गिरते हैं। [illegible] अपनेको श्रेष्ठ माननेवाले घमंडी, धन-मान-मदसे [illegible] अविधिपूर्वक नाममात्रके यज्ञों-दिखावटीद्वारा [illegible]

करते हैं, उन द्वेष करनेवाले क्रूरहृदय नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी (कुत्ते, सूअर, गदहे आदि) योनियोंमें गिराता हूँ। वे मूढ़ लोग (जिनको मानवजन्म मेरी प्राप्तिके लिये दिया गया था) मुझे न पाकर जन्म-जन्ममें आसुरीयोनिमें जाते हैं और फिर उससे भी नीच गति (घोर नरक आदि)को प्राप्त होते हैं।'

अर्जुनने कहा—

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥
(१ । ४१-४४)

'श्रीकृष्ण! अधर्म अधिक बढ़ जानेसे कुलस्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं और वार्ष्णेय! स्त्रियोंके आचरण दूषित होनेपर वर्णसंकर (सन्तान)का जन्म होता है। वर्णसंकर कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले जानेके लिये ही होता है। लुप्त हुई पिण्ड और जलकी क्रियावाले (तर्पण श्राद्धरहित) इनके पितरगण भी गिर जाते हैं। इन वर्णसंकरकारक दोषोंसे कुलघातियोंके सनातन कुलधर्म और जातिधर्म नष्ट हो जाते हैं और हे जनार्दन! नष्ट हुए कुलधर्मवाले मनुष्योंको अनिश्चित कालतक नरकमें रहना पड़ता है, ऐसा हमने सुना है।'

भगवत्प्राप्ति या मोक्षके साधनमें तत्पर पुरुष यदि योगसाधनसे विचलित होकर बीचमें ही मर जाता है तो उसकी क्या गति होती है? अर्जुनके इस आशयके प्रश्नपर भगवान् कहते हैं—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥
(६ । ४०-४२)

'पार्थ! उस पुरुषका न तो इस लोकमें नाश—पतन होता है, न परलोकमें ही; किसी भी कल्याण—(भगवदर्थ) कर्म करनेवालेकी दुर्गति नहीं होती। वह योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानोंके (स्वर्गादि दिव्य) लोकोंको प्राप्त होकर, उनमें लंबे समयतक निवास करके शुद्ध आचरण करनेवाले श्रीमानोंके घरमें जन्म लेता है। अथवा (साधनसम्पन्न या भगवत्प्राप्त) धीमान् योगियोंके कुलमें जन्म लेता है। इस प्रकारका जन्म इस लोकमें निश्चय ही अति दुर्लभ है।'

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥
(९ । २०-२१)

'जो तीनों वेदोंके विधानके अनुसार सकामकर्म करनेवाले, सोमरस पीनेवाले पापमुक्त पुरुष यज्ञोंके द्वारा पूजा करके स्वर्गमें जाना चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्योंके फलस्वरूप सुरेन्द्र (स्वर्ग) लोकको प्राप्त होकर वहाँ देवताओंके दिव्य भोगोंको भोगते हैं। वे उस विशाल स्वर्गलोक (स्वर्ग-सुखों)को भोगकर पुण्यक्षय होनेपर पुनः मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्गके साधनरूप तीनों वेदोंमें कथित सकाम कर्मोंका सेवन करनेवाले भोगकामी पुरुष बार-बार स्वर्गलोक और मृत्युलोकमें जाते-आते रहते हैं।'

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥
(९ । २५)

'देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको (उन-उन देवलोकोंको), पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको (पितृलोकको), भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको (प्रेतलोकको) और मेरा (भगवान्‌का) पूजन करनेवाले मुझको ही प्राप्त होते हैं। (वे फिर किसी प्रकार लौटकर नहीं आते और न उनका कर्मोंसे पुनर्जन्म ही होता है।)'

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्तते पुनः॥
(८।२६)

'जगत्‌में शुक्ल और कृष्ण (देवयान और पितृयाण) मार्ग सनातन माने गये हैं। इनमें एक (देवयान) के द्वारा गया हुआ वापस न लौटनेवाली परम गतिको प्राप्त होता है। दूसरे (पितृयाण) के द्वारा गया हुआ वापस लौटता है (पुनः जन्म लेता है)।'

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

'वायु गन्धके स्थानसे जैसे गन्धको ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिका स्वामी जीवात्मा जिस पहिले शरीरको त्यागता है, उससे मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर जिस शरीरको प्राप्त होता है, उसमें जाता है।'

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥
(२।१३)

'जैसे इस देहमें जीवात्माकी कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है, वैसे ही देहान्तरकी—दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है। इसमें तत्त्वज्ञ धीर पुरुष मोहित नहीं होते।'

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(२।२२)

'जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्र ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको छोड़कर दूसरे नये शरीरको प्राप्त होता है।'

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥
(२।१२)

'अर्जुन! न ऐसा है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू भी नहीं था अथवा ये राजालोग भी नहीं थे और न ऐसा ही है कि हम सब आगे नहीं रहेंगे।'

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥
(४।५)

'अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं; परंतु हे परंतप! उन सबको तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ।'

अवश्य ही भगवान्‌के जन्म न तो कर्मोंसे होते हैं, न पाञ्चभौतिक देह उन्हें प्राप्त होता है, न वे त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके अधीन होते हैं। उनके सभी जन्म, शरीर तथा कर्म सभी दिव्य—भगवत्स्वरूप होते हैं। इसीसे वे कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥
(४।६, ९)

'मैं अजन्मा (प्राकृत जन्मरहित), अविनाशीस्वरूप होनेपर भी तथा समस्त भूत-प्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको (स्वभावको) अधिष्ठित करके अपनी मायासे प्रकट होता हूँ। अर्जुन! मेरा वह जन्म और कर्म दिव्य (अप्राकृत भगवत्स्वरूप) है। इसको जो पुरुष तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता; मुझको ही प्राप्त होता है।'

उपर्युक्त उद्धरणोंसे पुनर्जन्म, परलोक, नरक, स्वर्ग, सद्गति, दुर्गति आदिकी बात तो स्पष्ट हो गयी। परंतु मानव-जीवन तो इसलिये मिला है कि जिसमें जीव कर्मोंको त्यागकर, 'प्रकृतिस्थ' अवस्थासे मुक्त होकर स्वरूपस्थ (आत्मस्थ) हो जाय; वह भौतिक पुनर्जन्म न होनेवाली उस स्थितिको प्राप्त कर ले, जिसे प्राप्त कर लेनेपर कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। वह आवागमनसे सर्वथा मुक्त हो जाय। इसी स्थितिका भगवान्‌ने गीतामें ब्रह्म-निर्वाण, शान्ति, परमा शान्ति, शाश्वत शान्ति, दिव्य परम पुरुषकी प्राप्ति, परमा गति, अनामय पद, अव्यय पद, ब्रह्मप्राप्ति, अमृत-प्राप्ति, सिद्धि, अक्षय सुख, आत्यन्तिक सुख, मेरे भावकी प्राप्ति और मेरी प्राप्ति आदि विभिन्न नामोंसे वर्णन किया है तथा उसके साधन बतलाये हैं। वे उद्धरण अनन्त हैं, इसलिये इनके कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥
(२।७१)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥
(५।२९)

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(४।३९)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥

(६।१५)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(१८।६२)

'जो पुरुष समस्त कामनाओंको त्यागकर, ममतारहित और अहंकाररहित होकर, स्पृहारहित हुआ विचरता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।' 'जो मुझको (भगवान्‌को) यज्ञ और तपोंका भोक्ता, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी महान् ईश्वर तथा समस्त भूतप्राणियोंका सुहृद् जान लेता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है'। 'श्रद्धावान्, साधनपरायण, जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है और फिर तुरंत ही परा शान्तिको प्राप्त हो जाता है।' 'आत्माको निरन्तर परमात्माके स्वरूपमें लगाता हुआ स्वाधीन मनवाला योगी मेरी स्थितिरूप निर्वाण परमा शान्तिको प्राप्त होता है।' 'अर्जुन! सब प्रकार उस (अन्तर्यामी) परमेश्वरकी ही अनन्य शरणमें चला जा, उस परमेश्वरकी कृपासे ही पराशान्ति तथा शाश्वत स्थानको प्राप्त होगा।'

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(९।३०-३१)

'अतिशय दुराचारी (पापी) भी अनन्यभाक् होकर यदि मुझको भजता है तो उसे 'साधु' मान लेना चाहिये; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय (मेरी अनन्य शरणसे ही पर-मात्माको पानेका पूर्ण निश्चय करके मुझे भजने लगा) वाला है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और शाश्वती (सदा रहनेवाली परम) शान्तिको प्राप्त होता है। अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक यह सत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। (उसका परमात्मामें कभी पतन नहीं होता।)'

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

(२।७२)

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्॥

(५।२४—२६)

'इस ब्राह्मी स्थितिको (कामना, स्पृहा, ममता और अहंकारसे रहित स्थितिको) प्राप्त होकर पुरुष मोहित नहीं होता और अन्तकालमें वह इस निष्ठामें स्थित होकर ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होता है।' 'जो पुरुष अन्तरात्मामें ही सुखवाला है, अन्तरात्मामें ही आरामवाला है तथा जो आत्मामें ही प्रकाशवाला है, वह परब्रह्म परमात्माके साथ ऐक्यभावको प्राप्त योगी ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होता है।' 'जिनके कल्मष (पाप) नष्ट हो गये हैं, ज्ञानके द्वारा जिनका संशय निवृत्त हो गया है, जो समस्त भूतप्राणियोंके हितमें ही निरत हैं तथा जो भगवान्‌में ही संयतचित्त हैं—ऐसे महात्मा पुरुष ब्रह्मनिर्वाणको प्राप्त होते हैं।' 'काम-क्रोधसे रहित, जीते हुए चित्तवाले, परब्रह्म परमात्माको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंके लिये सब ओर ब्रह्मनिर्वाण ही प्राप्त है।'

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥
प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

(८।८, १०)

'अभ्यासरूप योगसे युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्तके द्वारा निरन्तर चिन्तन करता हुआ साधक दिव्य परम पुरुष (परमात्मा) को प्राप्त होता है। वह भक्तियुक्त साधक अन्तकालमें भी योगबलसे भृकुटीके मध्यमें प्राणोंको भलीभाँति स्थापन करके निश्चल मनसे स्मरण करता हुआ दिव्य परम पुरुष (परमात्मा) को ही प्राप्त होता है।

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥
(१४।२०)

'यह पुरुष जिस कालमें समस्त भूत-प्राणियोंके पृथक्-
यक् भावको एक परमात्मामें स्थित देखता है और उस
रमात्मासे ही समस्त भूतप्राणियोंका विस्तार देखता है,
स कालमें वह ब्रह्मको प्राप्त होता है।' 'यह पुरुष स्थूल-
रीरकी उत्पत्तिके कारणरूप तीन गुणोंसे जब अतिक्रमण
र जाता है, तब जन्म-मृत्यु, वृद्धावस्था तथा सब प्रकारके
ुःखोंसे मुक्त होकर अमृतत्वका अनुभव करता है।'

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥
(१२।१०)

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥
(१८।४६)

'अर्जुन! तू यदि अभ्यास करनेमें असमर्थ है तो केवल मेरे लिये ही कर्म करनेके परायण हो जा। इस प्रकार मेरे अर्थ कर्म करके तू (मेरी प्राप्तिरूप) सिद्धिको प्राप्त होगा।' 'जिस परमात्मासे समस्त भूत-प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिस परमात्मासे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमात्माको अपने स्वाभाविक कर्मके द्वारा पूजकर मनुष्य (भगवत्प्राप्तिरूप) सिद्धिको प्राप्त होता है।'

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
(८।२१)

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥
(१५।६)

'उस (परमात्मा) को अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा गया है, उसीको परम गति कहते हैं तथा जिसको प्राप्त करके जीव वापस नहीं लौटते, वह मेरा परमधाम है।' 'उस स्वयंप्रकाश परमपदको न सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है। उसको पाकर जीव वापस नहीं लौटते और वह मेरा परमधाम है।'

यह परमधाम स्वयं भगवान्का ही स्वरूप है। इसीसे अर्जुनने भगवान्को 'परमधाम' बतलाया है।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
(१०।१२)

भगवान् कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥
(७।१९)

''बहुत-से जन्मोंके अन्तके जन्ममें ज्ञानी भक्त—'सब कुछ वासुदेव ही है'—इस प्रकार मुझको भजकर प्राप्त होता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है।'

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥
(४।१०)

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥
(८।५)

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद् विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥
(१३।१८)

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥
(१४।१९)

'आसक्ति, भय और क्रोधसे रहित मुझमें तन्मय, मेरे ही आश्रित बहुत-से पुरुष मेरे ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे भाव (स्वरूप) को प्राप्त हो चुके हैं।' 'अन्तकालमें जो पुरुष मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है, वह मेरे ही भाव (स्वरूप) को प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।' 'क्षेत्र, ज्ञान तथा ज्ञेयका स्वरूप संक्षेपसे (अध्याय १३ श्लोक ५ से १७ तक) कहा गया है; इसको तत्त्वसे जानकर मेरा भक्त मेरे भाव (स्वरूप) को प्राप्त होता है।' 'जिस कालमें द्रष्टा ([illegible] स्थित) पुरुष तीनों गुणोंके सिवा अन्य किसीको कर्ता नहीं देखता, [illegible] कालमें वह मेरे भाव (स्वरूप) को प्राप्त होता है।'

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥
(७ । २३)

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥
(८ । ७)

'(भगवान्से पृथक् मानकर देवताओंके भजनेवाले) उन अल्प बुद्धिवालोंको नाशवान् फल ही मिलता है और वे देवपूजक देवताओंको प्राप्त होते हैं, पर मेरे भक्त तो मुझको ही प्राप्त होते हैं ।'

'अतएव तू सब समय निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध कर । इस प्रकार मुझमें अर्पित मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होगा ।'

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥
(८ । १४-१५-१६)

'जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्तसे स्थित होकर नित्य निरन्तर मुझे स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगीके लिये मैं सुलभ हूँ । वे परम सिद्धि (मेरे प्रेम)को प्राप्त महात्मागण मुझे प्राप्त होकर, दुःखके स्थानरूप पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते । अर्जुन ! ब्रह्मलोकतकके सब लोक पुनरावर्ती हैं, वहाँ जानेवालोंको वापस लौटना पड़ता है, परंतु कौन्तेय ! मुझे प्राप्त हो जानेपर पुनर्जन्म नहीं प्राप्त होता ।'

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥
(९ । ३४)

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥
(१० । ९-१०)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥
(११ । ५५)

'मुझमें मनवाले होओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करनेवाले होओ, मुझे ही नमस्कार करो—इस प्रकार मेरे शरण होकर अपनेको मुझमें युक्त रखो तो मुझको ही प्राप्त होओगे ।'

'जिन्होंने अपना चित्त मुझमें ही लगा दिया है और प्राण (जीवन) मुझको अर्पण कर दिये हैं, वे भक्तजन परस्पर मेरी चर्चा करते—मेरे प्रेम स्वभाव-गुणोंको समझते-समझाते हुए, मेरे ही नाम-गुणोंका कथन करते हुए मुझमें ही संतुष्ट रहते हैं और मुझमें निरन्तर रमण करते हैं । उन निरन्तर मुझमें लगे रहकर प्रेमपूर्वक भजन करनेवाले भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं ।' 'जो मेरा ही कर्म करता है (अपना कुछ कर्म उसको है ही नहीं), मेरे ही परायण है, मेरा ही भक्त है, किसी भी प्राणि-पदार्थमें आसक्ति नहीं रखता और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें जो वैरभावसे रहित है—ऐसा अनन्य भक्त मुझको ही प्राप्त होता है ।'

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(१८ । ६५-६६)

'मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा कर, मुझे ही नमस्कार कर—इस प्रकार करनेपर तू मुझे प्राप्त होगा । यह मैं तेरे लिये सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है । सब धर्मोंका परित्याग कर तू एकमात्र मेरी शरणमें आ जा, मैं तुझे सब पापोंसे मुक्त कर दूँगा । तू शोच मत कर ।'

इस परमधामकी, परमात्माकी या भगवान्की प्राप्ति अथवा मुक्ति ही मानव-जीवनका परम लक्ष्य है । जबतक भगवत्प्राप्ति या मुक्ति नहीं होगी, तबतक जन्म-मृत्यु, तीन लोकोंमें गति, अगति-दुर्गति, नरकोंकी यन्त्रणा आदि निश्चित होती ही रहेगी । इसी हेतु भगवान् श्रीकृष्णने रणाङ्गणमें अपने प्रिय सखा अर्जुनको निमित्त बनाकर बार-बार मानव-जन्मके परम लक्ष्यको दिखाकर शरणागत होनेकी आज्ञा दी है । परमात्माकी प्राप्ति या परमधाममें नित्य स्थिति ही सच्ची मुक्ति है—यह भी भगवान्‌की

; क्योंकि परमात्मा, भगवान् एक ही तत्त्व हैं और गवत्सेवाधिकार प्राप्त करके भगवत्स्वरूप दिव्य लीला-कोंमें—भगवान्के दिव्य परमधाममें निवास करना भी भगवत्प्राप्ति है।' शान्ति, मोक्ष, ज्ञान आदिके नामसे, जिसमें रमात्म-स्वरूपमें मिल जाना है—प्रधानतया उस मुक्तिका, और 'मेरी प्राप्ति' आदिमें सेवाधिकार प्राप्त करके भगवान्के दिव्य परमधाममें निवासका—संकेत है। दोनोंमें ही पुनर्जन्म नहीं होता, दोनोंमें ही जन्म-मरणका चक्र छूट जाता है। दोनों ही परम सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। पर एकमें अभिन्न ब्रह्मानन्द है, दूसरेमें दिव्य रसलीलानन्द है।

वैदिक वाङ्मयमें पुनर्जन्म

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

पुनर्जन्म हिंदूधर्मका प्रधान विश्वास है। यही एक बात उसे इस्लाम तथा ईसाई धर्मसे भिन्न भूमिका प्रदान करती है। पुनर्जन्मका यह विश्वास, सिद्धान्त-रूपसे, अत्यन्त प्राचीन है और हिंदू-ज्ञानका समस्त स्रोत वैदिक होनेके कारण वैदिक वाङ्मयमें उसके सूत्र बिखरे हुए हैं। उपनिषद् तो ऐसी कथाओंसे भरे हुए हैं, जिनसे पुनर्जन्म-सिद्धान्तमें हमारे विश्वासकी पुष्टि होती है; किंतु वेदोंमें भी कुछ कम प्रमाण नहीं हैं।

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति॥
पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः॥
(ऋग्वेद १०। ५९। ६-७)

इनमें परमात्माकी 'असुनीति' संज्ञासे स्पष्ट किया गया है कि वह प्राणरूप जीवको भोगके लिये एक देहसे दूसरी देहतक ले जाता है। उस असुनीति परमात्मासे प्रार्थना है कि वह अगले जन्मोंमें भी हमें सुख दे और ऐसी कृपा करे कि सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि हमारे लिये कल्याणकारी सिद्ध हों।

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः॥
(ऋग्वेद १०। १६। ५)

इस मन्त्रमें श्रुति कहती है कि मृत्युके उपरान्त जब पञ्चतत्त्व पाँचों-भूतोंमें मिल जाते हैं, तब जीवात्मा बना रहता है और वह जीवात्मा ही दूसरी देह धारण करता है।

अथर्ववेद तो ऐसे मन्त्रोंसे परिपूर्ण है, जिनमें पुनर्जन्मकी मान्यता किसी-न-किसी रूपमें झलकती रहती है। कहीं अगले जन्ममें विशिष्ट वस्तुएँ पानेके लिये प्रार्थना है, कहीं स्पष्ट कहा गया है कि पूर्वजन्मके अच्छे-बुरे कर्मोंके अनुसार ही जीवात्मा नवीन योनियोंमें शरीर धारण करता है। कर्मानुसार पशुयोनिमें जन्म लेनेका भी उल्लेख इन मन्त्रोंमें पाया जाता है।

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पन्तामिहैव॥
(अथर्व० ७। ६७। १)

इसमें अगले जन्ममें कल्याणमयी इन्द्रियोंकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना है।

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत॥
(अथर्व० ५। १। २)

इसमें श्रुति कहते हैं कि पूर्वजन्मकृत पाप-पुण्यका भोगी जीवात्मा है और वह पिछले जन्मोंमें जो पाप-पुण्य करता है, उसीके अनुसार अच्छे-बुरे शरीर धारण करता है। अच्छा कर्म करनेवाला अच्छा शरीर धारण करता है और अधर्माचरण करनेवाला पशु आदि योनियोंमें भी जन्म लेता है।

आत्मा तो नित्य है, किंतु कर्मोंकी प्रेरणासे वह पिताद्वारा पुत्र शरीरमें प्रविष्ट होता है। यही जीवात्मा प्राण है और यही गर्भमें [illegible] आवेष्टित पड़ा रहता है—

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः॥
(अथर्व० ११। ४। २०)

'जायते पुनः' शब्द बहुत ही स्पष्ट रूपसे पुनर्जन्मकी घोषणा करते हैं।

यजुर्वेदके कुछ मन्त्र लीजिये—

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् ।

वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥

(यजु० ४ । १५)

इसमें फिरसे जीवात्माके आगमनकी बात स्पष्ट रूपसे कही गयी है । इतना ही नहीं, आगे चलकर तो कर्मगतिका भी विश्लेषण है और बताया गया है कि उसीके अनुसार कुछ लोग मुक्त हो जाते हैं और दूसरे मर्त्यपुरुष बार-बार जन्म लेते रहते हैं—

द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥

(यजु० १९ । ४७)

जहाँ पहिलेके उद्धृत मन्त्रोंमें जीवात्माके पश्वादि योनियोंमें जन्म लेनेकी ओर संकेत मिलता है, वहाँ यजुर्वेदमें इसका भी उल्लेख प्राप्त है कि जीवात्मा न केवल मानव या पशु योनियोंमें जन्म लेता है, वरं जल, वनस्पति, ओषधि इत्यादि नाना स्थानोंमें भ्रमण और निवास करता बार-बार जन्म धारण करता है । देखिये—

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे ।
गर्भे सन् जायसे पुनः ॥
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥
प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने ।
संसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥
पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने ।
शेषे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्यां शिवतमः ॥

(यजु० १२ । ३६—३९)

यजुर्वेदके अन्तिमांशमें तो यह भी कहा गया है कि मनुष्यको अपने कर्मोंके अनुसार ही आगे जन्म धारण करना होगा । इसलिये जब मृत्यु सामने खड़ी हो और [illegible] शरीरके भस्मान्त होनेका समय आ जाय, तब उसे अपने कर्मोंका स्मरण करना चाहिये

[illegible]
[illegible]

हमारे प्राचीन वाङ्मयमें यम और नचिकेता प्रसिद्ध है । नचिकेता प्रसिद्ध ऋषि वाजश्रवसका पुत्र था । जब वाजश्रवसने संन्यास ग्रहण करनेका [illegible] तब सर्वमेध यज्ञ करनेके पश्चात् वे अपनी [illegible] वितरण करने लगे । तब पुत्र नचिकेताके [illegible] गया कि 'सब चीजें आप दे रहे हैं तो मुझे किसे [illegible] कुछ अटपटा-सा प्रश्न था, इसलिये पिताने उत्तर नहीं दिया—समझा, बालक है, यों ही [illegible] वे बटवारेके काममें लगे रहे । उधर बालक [illegible] बार-बार वही प्रश्न पूछने लगा । इससे [illegible] श्रवसने कह दिया—'मृत्यवे त्वा ददामीति'—तुझे [illegible] दूँगा ।' कहनेको कह दिया, परंतु पिता ही थे, [illegible] पश्चात्तापसे हृदय भर आया । नचिकेता पिताको [illegible] बोला—'आप दुःख क्यों करते हैं ? यह शरीर [illegible] भाँति मरता है और उसीकी तरह पुनः उत्पन्न [illegible] 'सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः।' (कठ० १।१ [illegible] बालकका बहुत आग्रह देख पिताने पुत्रको मृत्यु [illegible] प्राप्त करनेके लिये आचार्य यमके पास भेज दिया । [illegible] जब यमके आश्रममें पहुँचा, वे कहीं बाहर गये हुए थे । [illegible] दिन बाद लौटे । उन्हें यह जानकर बड़ा [illegible] हमारे यहाँ अतिथिरूपमें आकर भी नचिकेता तीन [illegible] भूखा है । उसके परिमार्जनके लिये उन्होंने कहा—'[illegible] तीन वर माँग सकते हो ।'

नचिकेताने और वरोंके साथ तीसरा वर [illegible] रहस्य बतानेका माँगा । उसने पूछा—'[illegible] है या नहीं ?—अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके (कठ० १।१।[illegible] यमने सोचा था कि बालक धन-धान्य, पुत्र-पौत्र, [illegible] इत्यादिकी याचना करेगा । किंतु उसने तो [illegible] ज्ञान माँगा । उन्होंने बालकको बहुत समझाया कि [illegible] मनुष्यके भोग्य पदार्थ माँग ले, जो माँगता है दूँगा [illegible] यह प्रश्न गहन है और तेरे किसी कामका भी नहीं है ।'

किंतु नचिकेता तो अपने प्रश्नके उत्तरको [illegible] ज्ञानकी क्योंकि [illegible] होना चाहता था, इसीसे [illegible] निर्णय [illegible]

[illegible]

नचिकेता कहता है कि 'मैं तो बस उसी आत्मतत्त्वका रहस्य जानना चाहता हूँ, जिसके बारेमें तरह-तरहके संशय-संदेह उठा करते हैं; जिसके विषयमें कई कहते हैं कि मृत्युके बाद भी बचा रहता है, कई कहते हैं कि नहीं बचता। मुझे निर्णय करके बताइये कि यह क्या नित्य है और मृत्युके बाद भी रहता है या नहीं रहता।'

इसके बाद यमने नचिकेताको आत्मतत्त्वका रहस्य समझाते हुए उसकी विशद व्याख्या की है। अपनी व्याख्यामें यम कहते हैं कि 'जो व्यक्ति इसी लोकके भोगोंमें डूबे रहते हैं, उनका बार-बार जन्म होता है किंतु जो आत्माको नित्य समझ, परलोकका ध्यान रखकर सत्कार्य करते हैं, वे जन्म-मरणके बन्धनसे छूट सकते हैं।' फिर यम आगे कहते हैं—

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥
(कठ० २।२।२)

'तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतम्॥
(कठ० २।३।१७)

यह 'हंस' (जीवात्मा) अन्तरिक्षमें, परमात्मामें, हृदयाकाशमें रहता है, यज्ञ करता है, पृथिवीपर जन्म लेता है, परंतु यह शरीरमें अतिथि-मात्र है।''''''यह स्वयं अमर है।

उत्तरके अन्तमें यमने यह भी कहा है कि 'तर्क वहाँतक नहीं पहुँच सकता।' 'नैषा तर्केण मतिरापनेया' (१।२।९)—उसे निश्चित जानो और वह है, यही समझो।

उपनिषद् और गीतामें तो पुनर्जन्मका स्पष्ट निर्देश बार-बार आता है। शास्त्रग्रन्थोंमें वैदिक उक्तियोंपर तर्कसम्मत विवेचन भी प्राप्त है। पुराणोंमें इसका और विशद विश्लेषण-विवेचन मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदके ऋषियोंने पुनर्जन्मके जिस सत्यको सूत्रवत् कहा था, बादके हिंदू-धर्म-ग्रन्थोंमें उसकी अभिवृद्धि होती गयी है। आर्यधर्म—हिंदूधर्म पुनर्जन्म और कर्म-सिद्धान्तके जिस मूलाधारपर खड़ा है, वैदिक वाङ्मयसे आजतक बराबर उसकी पुष्टि होती आयी है।*

पुनर्जन्म और परलोकसाधक तर्क

(लेखक—श्री[illegible] वेदान्ताचार्य, पञ्चतीर्थ)

यो गोलोकमहानिकुञ्जभवनेषु श्रीरंगदेवीयुतः
श्रीराधाचरणारविन्दमनिशं संसाधने तत्परः।
वैकुण्ठे स सुदर्शनो निगदितस्तस्यैकरूपं भुवि
श्रीनिम्बार्कमुनीश्वरं सद्गमनिर्णायकं संश्रये॥

विश्वके अनन्त प्राणियोंकी विचारधाराएँ भी अनन्त ही हो सकती हैं, किंतु उन सबकी आस्तिकता-अनास्तिकता परखनेकी कसौटियाँ प्रायः परिगणित हैं। उन्हें ही हम 'प्रमाण' कह सकते हैं। उनमें एक कसौटी 'तर्क' भी है। आजका मानव तर्कको अधिक अपना रहा है; अतः पुनर्जन्म-सम्बन्धी कुछ तर्क यहाँ प्रस्तुत की जाती हैं।

केवल प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही समस्त तत्त्वोंको सिद्ध करने-वाले विचारकोंका कहना है कि जिस प्रकार चूना-कत्था-सुपारी-पानके संयोगसे लालिमा व्यक्त होती है, उसी प्रकार पृथ्वी, जल, तेज, वायु—इन चारों तत्त्वोंके संयोगसे चेतनता (आत्मा-जीव) की उत्पत्ति हो जाती है। कीचड़में कीड़े, गोबरमें इल्ली (कीट), पसीनेमें और काठमें भी घुन पैदा होकर यह बाहर भी फिरने लगता है। इस प्रकार जीवोंकी उत्पत्तिका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। अतः देहको ही जीवात्मा, शासक नरेशको ही ईश्वर मानना चाहिये; कण्टक-वेधादि दुःख ही नरक है और कान्तालिङ्गन आदि सुख ही स्वर्ग है; अन्य अप्रत्यक्ष स्वर्ग-नरकादि लोक-लोकान्तर मानने-की क्या आवश्यकता है! जीव (चेतन) यहीं उत्पन्न होकर यहीं विनष्ट हो जाता है। मरनेके पश्चात् किसने किसको आते-जाते (जन्मते-मरते) देखा है। इसलिये जबतक जीवन रहे, खूब आनन्द लूटते रहें, धर्माधर्मकी कुछ भी परवा न की जाय।

यावज्जीवं सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

ऐसा यह बृहस्पति प्रणीत 'चार्वाक मत' कहलाता है। इसे नास्तिक दर्शनोंमें भी नीची कोटिका माना है; क्योंकि जिस प्रकार देहके शैशव, किशोर, युवा, वृद्ध आदि शारीरिक अवस्थाओंमें बाल्यावस्थामें [illegible]

* [illegible] —लेखक।

रहता है, हित-अनहितका विचार न करके जो कुछ वस्तु सामने आये, उसे मुँहमें ही डालनेकी चेष्टा की जाती है, चाहे विषधर सर्प ही क्यों न हो; ठीक उसी प्रकार यह चार्वाक-दर्शन समस्त दर्शनोंकी बाल्यावस्था-स्वरूप है। इसकी सार्थकता बस, इतनी ही है—

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'

शरीरपोषणके अतिरिक्त आगेके बौद्धिक विचार इस मतके लक्ष्य नहीं हैं।

चार्वाक दर्शनसे उच्चकोटिवाले नास्तिक दर्शनकार भी यह स्वीकार करते हैं कि चाहे शब्द (वेद आदि शास्त्र) को प्रमाण मानें या न मानें, परंतु केवल प्रत्यक्षसे ही समस्त तत्त्वोंकी सिद्धि नहीं हो सकती; अनुमान आदि अन्य प्रमाणों-का भी आश्रय लेना आवश्यक है।

(१) कोई भी संतति माता-पिताके बिना उत्पन्न नहीं हो सकती, ऐसा कारण-कार्य, जनक-जन्यभाव प्रत्यक्ष सिद्ध है। यदि किसीके माता-पिता जन्मते ही मर गये हों तो प्रत्यक्ष न होनेके कारण क्या उनका अस्तित्व न माना जायगा? यदि हाँ, तो संतति कहाँसे आयी? यही तर्क पितामह-प्रपितामह आदिके सम्बन्धमें दिया जा सकता है। अतः केवल प्रत्यक्षसे ही कार्य नहीं चल सकता। अनुमान, आप्तवचन (शब्द-प्रमाण) आदि अतीत अनागत तत्त्वोंको सिद्ध करनेवाले प्रमाणोंको भी अवश्य मानना पड़ेगा। केवल प्रत्यक्षसे समस्त विश्वके वर्तमान पदार्थ भी सिद्ध नहीं हो सकते।

(२) चाहे अच्छे हों या बुरे, सभी कर्मोंका फल कर्ताओंको भोगना पड़ेगा। अतः जबतक फलोपभोग नहीं होता, तबतक संस्काररूपसे वे कर्म बने ही रहते हैं—

'नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।'

इस सिद्धान्तको सभी दार्शनिक प्रायः स्वीकार करते हैं।

ऐसी स्थितिमें यदि पुनर्जन्म न माना जाय तो जो व्यक्ति अपने किये हुए समस्त कर्मोंके फलोंका उपभोग न करके पहले ही मर गया, उसके अभुक्त कर्म व्यर्थ हुए, अतः यह 'कृतनाश' दोष उक्त अभिमतवालोंपर आवेगा।

(३) यह प्रायः देखा जाता है कि किसी भी लौकिक कोई भी कर्म किये बिना ही कोई कर्म नहीं कर सकता, फिर भी सुख या दुःखका वह उपभोग करता है, अर्थात् बहुतसे बच्चे सदैव सुखी देखे जाते हैं, बहुतसे अभाव-ग्रस्त [illegible] दुःखी देखे जाते हैं। वह फल उन्हें कहाँसे मिला? बिना [illegible] कर्म किये यदि सुख-दुःखरूप फल प्राप्त होता है तो [illegible] 'अकृताभ्यागम दोष' मानते हैं; केवल प्रत्यक्ष प्रमाण [illegible] उस दोषसे मुक्त नहीं हो सकेगा। अतः पुनर्जन्म [illegible] होगा और अनुमान आदि प्रमाणोंसे प्रमाणित पूर्वजन्म [illegible] दुष्कृतोंका ही परिणाम उन सुख-दुःखोंको [illegible] जिन्हें नवजात शिशु भोगता है।

(४) नवजात शिशु बोल-चाल, उठना-बैठना [illegible] क्रिया नहीं कर सकता; उसे यह भी नहीं [illegible] सकता कि तुम अपनी माताके स्तनको मुँहमें लेकर [illegible] ओठोंसे दबाकर ऐसे चूसो, जिससे उसका दूध [illegible] पेटमें पहुँचे और तुम्हारा पोषण हो; अन्यथा तुम नहीं जीओगे। किंतु कुछ भी कहने और समझानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। मुँहमें स्तन दिया कि अपने-आप वह नवजात शिशु स्तन्यपान करने लग जाता है। यदि पूर्वजन्ममें किये हुए स्तन्यपानके संस्कार न हों तो उस बच्चेकी स्तन्यपानमें प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती।

(५) पशु-पक्षियोंको संतानोत्पत्ति, उनके पालन-पोषण और रहन-सहनकी व्यवस्था करनेका ज्ञान होता है, ऐसा उनकी क्रियाओंको देखनेसे प्रमाणित होता है। यदि पूर्वजन्म न मानें तो उन पशु-पक्षियोंको इन कार्योंकी शिक्षा कहाँ प्राप्त हुई? यह प्रश्न बना ही रहेगा।

(६) बिल बनाकर उसमें कीटको रखना और स्वरके द्वारा उसे अपने-जैसा ही भ्रमर बना लेना; अनेक पुष्पोंके सूक्ष्म रस लाकर उनसे मधु बनाना तथा एक-एक दानेके चञ्चुसे उठा-उठाकर उनसे ऐसा नीड़ (घोंसला) बनाना जिसे देखकर हाथ-पैर और बुद्धिवाले मानव भी चकित हो जाते हैं। भ्रमर, मधु-मक्खी, बया आदि पक्षियोंकी वे क्रियाएँ भी पुनर्जन्मको सिद्ध कर रही हैं।

(७) जीव (आत्मा) अमर और अविनाशी है। इसका अनेक योनियोंमें कई बार जन्म हुआ है और भविष्यमें यह होता ही रहेगा। अतः भिन्न-भिन्न योनियोंमें जहाँ जन्म हुआ था, उन्हीं योनियोंमें पुनः जन्म होनेपर उनके संस्कार उद्बुद्ध होकर वैसी ही स्मृति उत्पन्न कर देते हैं, जिससे नवजात अशिक्षित शिशु भी तदनुसार क्रिया करने लगते हैं। अन्यथा वह किसी भी प्रकारकी चेष्टा नहीं कर

सकेगा। अतः तर्कसे भी पुनर्जन्मकी सिद्धि हो रही है। 'पुनर्जन्म' सिद्ध हुआ कि 'परलोक' स्वतः सिद्ध हो गया। आजके वैज्ञानिक चन्द्रलोककी यात्राके लिये उद्यत हैं। उनके राकेट तो वहाँ उतर ही चुके हैं। जब चन्द्रलोक भूलोकसे एक पृथक् लोक प्रत्यक्ष सिद्ध है, तब अन्य इन्द्रादि लोक-लोकान्तर भी निश्चित हैं। यही मानना पड़ेगा।

जन्मान्तर-तथ्य

(लेखक—श्रीशैलेशजी ब्रह्मचारी)

जन्मान्तरवादीका तथ्य या पुनर्जन्म-तत्त्व—यह मनुष्यके लिये एक चिरन्तन कौतूहल है। युग-युगमें, देश-देशमें मनुष्यका मन सदासे इस विषयमें जिज्ञासाशील रहा है। हमारे देशमें तो अति प्राचीन कालसे ऋषियोंने इस विषयमें बहुत विचार किया है; किंतु पाश्चात्त्य जगत्‌में भी इस विषयमें लोगोंके कौतूहलकी सीमा नहीं है। हमारे आर्य-ऋषियोंने इस विषयमें हमको जहाँ पहुँचा दिया है, उससे आगेकी बात आजतक कोई कहनेमें समर्थ नहीं है। अति उन्नतिशील और गौरवान्वित विज्ञानने भी इस विषयमें कोई परीक्षण-निरीक्षण नहीं किया; अतएव विज्ञान भी कोई नवीन तथ्य हमारे सामने नहीं रख सका। ऐसी स्थितिमें क्या इस विषयमें हमारे ऋषि-प्रोक्त तथ्य ही अन्तिम सत्य हैं?

बहुत-से लोग कहते हैं कि 'पाश्चात्त्य जगत् इसके बारेमें मौन है, अर्थात् वहाँ अधिकतर लोग जन्मान्तरवादको मानते ही नहीं हैं और यदि कोई-कोई धर्म पुनर्जन्मके सिद्धान्तको मानते भी हैं तो यह उनके लिये गौण विषय ही है।' परंतु यह बात ठीक नहीं है। वर्तमान पाश्चात्त्य जगत् तो दूर रहे, उन देशोंके प्राचीन धर्मोंमें भी इसके अस्तित्वका विशेष परिचय प्राप्त होता है। ग्रीस देशमें अति प्राचीन कालमें Urphik नामक एक धार्मिक मत प्रचलित था, वह भी जन्मान्तरवादको मानता था। सनामधन्य गणितज्ञ और दार्शनिक पाइथागोरस तथा सुकरातके सुयोग्य शिष्य प्लेटो—इन दोनोंका धार्मिक मत उपर्युक्त Urphik धर्म ही था। उन्होंने अपनी विभिन्न रचनाओंमें जन्मान्तरवादका उल्लेख किया है। निश्चय ही यह बात सत्य है कि उनका यह धार्मिक मत प्राचीन आर्य-ऋषियोंके धर्मसे ही प्रभावित हुआ था। प्रसिद्ध मैकडोनेल (Macdonell) साहब तथा गोम्पर्ज (Gompers) साहबकी पुनर्जन्म-सम्बन्धी आलोचनाका उल्लेख किया जा सकता है। इन्होंने सटीक और पुनर्जन्मवादकी विस्तृत आलोचना करके दिखलाया है कि प्राच्य आर्यधर्मके साथ Urphik धर्मकी इस विषयमें बहुत समानता है। Gompers साहबके मतसे 'हिंदू धर्मका तथा ग्रीक धर्मका निरामिष भोजनका सिद्धान्त एक ही प्रकारके विचारसे उद्भूत था। दोनों धर्मोंमें जन्मराशि-चक्रका विवरण भी एक ही ढाँचेका है। यहाँतक कि पुनर्जन्मवादके जो सिद्धान्त दोनों धर्मोंमें विद्यमान हैं, उनकी व्याख्या भी एक ही प्रकारसे की जाती है।' मैकडानेल साहब स्पष्टरूपसे कहते हैं कि, 'There cannot be any doubt that the religion Urphik was fundamentally based on the Arya philosophy and faith.' अर्थात् 'इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि Urphik धर्म मूलतः आर्यदर्शन और विश्वासके ऊपर आधारित था।'

अतएव जन्मान्तरवादके विषयमें पाश्चात्त्य जगत् मौन है, यह उक्ति, जान पड़ता है, उन देशोंके वर्तमान भौतिकवादको लक्ष्य करके ही कही गयी है।

जो हो, पुनर्जन्मवाद हमारे उपनिषदोंका एक मुख्य सिद्धान्त है। नचिकेता मृत्युराजके द्वारपर उपस्थित हुए। बारंबार अनुरोधपूर्वक उन्होंने मृत्युराजसे पूछा कि 'मृत्युके बाद मनुष्यका कुछ रहता है या नहीं, यह एक प्राचीन समस्यामूलक प्रश्न है। आप मुझे इस विषयमें उपदेश दें।' यमराजने नचिकेताको जो बतलाया था, उसका संक्षिप्त सार यही है कि 'जो लोग परलोकमें विश्वास नहीं करते, वे अविवेकी और मूढ़ हैं। इस प्रकारके लोग बारंबार जन्म-मृत्युके अधीन होते हैं।' उन्होंने बतलाया कि 'आत्माका जन्म-मृत्यु नहीं होता। वह अज, नित्य तथा शाश्वत है। शरीरके नाश होनेपर भी वह अज (आत्मा) नष्ट नहीं होता, उसको पुनः शरीर धारण करके कर्मोंके अनुसार अथवा ज्ञानके अनुसार अन्यान्य योनियोंमें प्रवेश करना पड़ता है।' अर्थात् जन्मान्तरवाद और परलोकवाद मान्य हैं।

छान्दोग्य उपनिषद्में भी आया है—'जीवापेतं वाव किल इदं म्रियते । न जीवो म्रियते ।' (६ । ११ । ३)

नचिकेता योग्य प्रश्नकर्ता थे । अतएव यमराजकी बात सुनकर स्वभावतः जीवके मन जो प्रश्न आता है, उनके मनमें भी वही प्रश्न उठा था । किंतु वर्तमान प्रसङ्गमें यह प्रयोजनीय नहीं । हमारा प्रश्न यह है कि जीवके देह-त्यागके समय तथा उसके बाद क्या होता है ?

इस प्रसङ्गमें बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है कि 'यथाकारी यथाचारी भवति'……इत्यादि (४ । ४ । ५)—अर्थात् 'जो जिस प्रकारका आचरण करता है, उसकी परिणति उसी प्रकार होती है ।' पुरुषका मन आसक्त विषयमें आकृष्ट होकर उसी पथसे गमन करता है । छान्दोग्य उपनिषद् और भी कहता है कि 'तद् य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत् ते रमणीयां योनिमापद्येरन्' (५ । १० । ७)—'अर्थात् जो सुन्दर आचरण करते रहते हैं, वे मरणोपरान्त सुन्दर योनिमें जन्म लेते हैं ।'

तत्पश्चात् यह परिणति या गति होती है किस रूपमें ? इस विषयमें छान्दोग्य उपनिषद् कहता है कि 'मृत्युके समय पहले वाक् मनमें लीन होता है, मन तेजमें और तेज परदेवतामें लीन होता है' (६ । ८ । ६) । कौषीतकी उपनिषद् भी कहता है कि 'जीव शरीर-त्यागके समय वाक्, इन्द्रिय-समूह और मनको उपाधिके साथ एकत्रित कर लेता है तथा वे सब प्राणमें विलीन हो जाते हैं ।' बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है कि 'मृत्युकालमें इन्द्रियोंकी क्रिया अस्पष्ट हो जाती है और वे हृदयमें एकत्रित होकर प्रभायुक्त होती हैं । उस प्रभाके द्वारा आलोकित होकर आत्मा देहसे निकलता है तथा सब प्राण उसका अनुगमन करते हैं ।' उत्क्रान्तिका यही रूप उपनिषद्में वर्णित है ।

इस प्रकार आत्मा बहिर्गत होता है, किंतु बहिर्गत होकर वह जाता कहाँ है ? और किस पथसे जाता है ? छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि विभिन्न उपनिषदोंमें आत्माकी गतिके सम्बन्धमें 'देवयान' तथा 'पितृयान' के नामसे दो मार्गोंका वर्णन मिलता है । इसके सिवा विभिन्न सूत्रों और विभिन्न ब्राह्मणोंमें भी विभिन्न प्रकारसे बातें मिलती हैं ।

इनमें देवयान मार्गसे अमृतत्व मिलता या मोक्षकी प्राप्ति होती है और पितृयानसे जानेवालोंको पुनः लौटना पड़ता है ।

शतपथ-ब्राह्मणमें भी इन दोनों मार्गोंका उल्लेख है । 'अथ य एवं न विदुः, ते वै मृत्वा पुनः सम्भवन्ति ।' (१० । ४ । १०)

'पुनः सम्भवन्ति'—इससे यह प्रश्न उठता है कि 'अदेहीको देहकी प्राप्ति कैसे होती है ?' इसका उत्तर बृहदारण्यक उपनिषद् देता है कि 'मृत्युके समय मनुष्य अपनी सारी शक्ति और इन्द्रियग्रामको साथ ले जाता है । इन शक्तियोंके बलसे ही उसका पुनः जन्म लेना सम्भव होता है ।' देहके रूपके सम्बन्धमें भी उपनिषद् कहता है—'देहका आकार और गठन निर्भर करता है—पूर्वजन्मकी सुकृति या दुष्कृतिके ऊपर । जो आत्मा जन्म लेता है, उसके साथ उसके पूर्वजन्मके सारे संस्कार ही वर्तमान रहते हैं । पूर्वजन्मकी कामना-वासना भी उसके साथ लगी रहती है—

'स यथाकामो भवति तत् क्रतुर्भवति । यत् क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते ॥' (बृहदारण्यक० ४ । ४ । ५)

जन्मान्तरवादके विषयमें एक और बात है । वह यह कि पाप-पुण्यका फल कहाँ और किस प्रकार मिलता है ? उपनिषद्में लिखा है कि 'कृत पाप-पुण्यके फलसे ही उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट योनि प्राप्त होती है और पाप-पुण्यका फल-भोग होता है—इहलोक-परलोकोंमें ।' इहलोकमें भी पुनर्जन्मके बाद पूर्वजन्मके कर्मोंका फल भोगना पड़ता है; क्योंकि उपनिषद् कहता है कि 'जो जिसके जिस कर्मके लिये उत्तरदायी होता है, उस प्राणीके साथ उसका भी संयोग आवश्यक होता है ।' जैसे, इस जन्ममें जो ऋणी हो गया है, जन्मान्तरमें उस ऋणके परिशोधके लिये धनदाताके साथ उसका संयोग अवश्य होगा । अर्थात् पाप और पुण्यके भोगके लिये कोई दूसरा लोक ही नहीं है । यही उपनिषद्का मत है ।

इहलोक कर्मलोक है । उपनिषद् कहते हैं कि यहींके द्वारा ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चतुर्वर्गोंकी प्राप्ति होती है । अतएव केवल मुक्ति ही नहीं, मुक्तिके लिये भी इहलोककी आवश्यकता है । अतएव यदि कोई अपने कर्मों द्वारा आत्मज्ञान नहीं कर पाता, तो उसका पुनः उत्थान होता ही । (उसका पुनर्जन्म होता ही ।) जो आत्मज्ञानी, निष्काम हो जाते हैं, उनको जन्म नहीं लेना पड़ता ही ।' यही औपनिषदिक जन्मान्तरवादका संक्षिप्त तत्त्व है । ॐ ।

आध्यात्मिक पुनर्जन्म

(लेखक—श्रीमण्डनमिश्र)

भौतिक पुनर्जन्ममें शरीर बदलनेकी आवश्यकता पड़ती है, किंतु आध्यात्मिक पुनर्जन्म इस शरीरके रहते हुए ही होता है। इसके लिये कुछ संस्कारोंकी आवश्यकता होती है, जो प्रायः सभी विभिन्न धर्मोंमें पाये जाते हैं। अपने यहाँ उपनयन एक ऐसा ही संस्कार है। उसके बाद उपनीतको 'द्विज' या 'द्विजन्मा' कहा जाता है। यह संस्कार होनेपर व्यक्तिको आध्यात्मिक दृष्टिसे कुछ अधिकार मिल जाते हैं और साथ ही उसकी जिम्मेदारियाँ भी बढ़ जाती हैं। जो उपनयनके अधिकारी नहीं हैं, उनके लिये विवाह इसी प्रकारका एक संस्कार है। उसके बाद उसका एक प्रकारसे पुनर्जन्म ही समझना चाहिये। वह गृहस्थ बनकर अपनी नयी जिम्मेदारियोंका बोझ उठाता है। ईसाइयोंमें 'बपतिस्मा' एक ऐसा ही संस्कार है। इसके हो जानेपर ही वह ईसाई-धर्ममें दीक्षित समझा जाता है। इसी तरह मुसलमानोंके यहाँ 'सुन्नत' है। इसी तरह अधिकांश सम्प्रदायोंमें आध्यात्मिक पुनर्जन्मकी कुछ-न-कुछ व्यवस्था है। यह बात अवश्य है कि अपने यहाँ इस विषयपर जितना विचार तथा अनुसंधान चला है, उतना अन्य किसी धर्ममें नहीं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि इसका मूल सिद्धान्त अपने ही यहाँकी देन है, जिसे अन्य धर्मोंमें किसी-न-किसी रूपमें अपनाया गया है। किंतु उसमें असंगतियाँ भी हैं। यह स्वाभाविक है, जब कोई धर्म किसी दूसरे धर्मका कोई सिद्धान्त अपनाता है, तो यथार्थरूपमें उसे समझनेमें असमर्थ होनेके कारण उसमें असंगतियाँ आ जाती हैं।

पुनर्जन्म

(लेखक—वैद्य श्रीकन्हैयालालजी भेड़ा, व्याकरणायुर्वेदाचार्य)

पुनर्जन्म भारतीय संस्कृतिके तत्त्वज्ञानका एक मौलिक सिद्धान्त है। शरीरकी मृत्युके साथ शरीरगत आत्माकी मृत्यु न होकर, वह आत्मा उस देहमें प्राप्त संस्कारोंके साथ दूसरे देहमें चला जाता है, इसीको 'पुनर्जन्म' कहते हैं।

मृतो मृत इति प्रोक्तो यस्ते तत्र मृता हसन्।
स देशकालान्तरितो भूत्वा भूयानुभूयते॥
(योगवासिष्ठ ५।७१।६५)

अनुभूय क्षणं जीवो मिथ्यामरणमूर्छनम्।
विस्मृत्य प्राक्तनं भावमन्यं पश्यति सुमते॥
(योगवासिष्ठ ३।२०।११)

[illegible] जन्मनाशभयाविनः।
कषायाम्लकटुपाकान्ति वृक्षाद् वृक्षमिवाण्डजाः॥
(योगवासिष्ठ ४।४१।२६)

पुनर्जन्मका सिद्धान्त न केवल युक्तियुक्त है, अपितु आत्माकी दृष्टिसे आवश्यक पड़ता है। माता-पितासे अपनको भौतिक शरीर मिलता है तथा कुछ वंशपरम्परागत (Hereditary) गुण-दोष भी मिलते हैं। परंतु इससे संततिके समस्त शारीरिक एवं मानसिक गुण-दोषोंकी उत्पत्ति लगाना कठिन है। पुनर्जन्म ही एक ऐसी घटना है कि जिसके आधारपर कठिन-से-कठिन प्रश्नोंका उत्तर दिया जा सकता है।

पुनर्जन्मका सिद्धान्त अनुमान और युक्तिके आधारपर सिद्ध करना पड़ता है। इसके लिये आयुर्वेदमें बहुत सुन्दर सुयुक्तियुक्त एवं विस्तृत वर्णन मिलता है, उसका सार भाग यह है कि प्रथम परलोक तथा पुनर्जन्मकी सिद्धिके लिये—

अपुनर्भववादी—Rejector of the Rebirth of Spirit theory.

१ प्रत्यक्षवादी (पुनर्जन्मके परोक्ष होनेसे), श्रुतिवादी (परस्पर विरोध होनेसे)

Followers of Direct Observation theory and Followers of Tradition theory.

२ मातृपितृवादी—Followers of Mother and Father theory.

३ स्वभाववादी—Followers of Nature theory.

बहुत कारणोंके योगसे उत्पन्न अविज्ञात भावोंको विज्ञात भावोंके कार्य-कारण भावके अनुसार तथ्यको देखनेवाली बुद्धिको 'युक्ति' कहते हैं।

'विज्ञातेऽर्थे कारणोपपत्तिदर्शनाग्, अविज्ञातेऽपि तदवधारणं युक्तिः।' (गंगाधरः)

इन चार प्रमाणोंके द्वारा पुनर्जन्मको सिद्ध किया गया है। इससे परलोककी भी सत्ता सिद्ध होती है।

योगदर्शनमें—

'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्'। (योग०, विभूति० १८)

इस सूत्रके भाष्यकारने आवट्य नामक योगीश्वरका योगिराज जैगीषव्यके साथ एक संवादसे पुनर्जन्म सिद्ध किया है। इसका सार यह है कि भगवान् जैगीषव्य प्रसिद्ध योगीश्वर थे। उनके विषयमें ऐसी प्रसिद्धि है कि वे संस्कारोंके साक्षात्कारसे दस महाकल्पोंमें व्यतीत हुए अपने जन्म-परिणाम-परम्पराका अनुभव करते हुए विवेकजन्य ज्ञानसम्पन्न थे। एवं योगिराज भगवान् आवट्यके सम्बन्धमें भी सुना जाता है कि वे योगबलसे स्वेच्छामय दिव्य विग्रह धारण करके विचरण करते थे। एक समय दोनों योगियोंका संगम हो गया। उस समय आवट्यने जैगीषव्यसे यह प्रश्न किया कि 'दस महाकल्पोंमें देव-मनुष्य आदि योनियोंमें उत्पन्न होते हुए आपने जो अनेक तरहकी तिर्यक्-योनियोंमें तथा गर्भमें दुःखोंका अनुभव किया है, उन सबसे आप विदित-तत्त्व हैं; क्योंकि आपकी बुद्धि सत्त्वगुणसे युक्त होनेसे स्वच्छ है; अतः आपको सम्पूर्ण पूर्वजन्मोंका ज्ञान है। इसलिये आप यह बताइये कि इन महाकल्पोंमें आपने नानाविध जन्म धारण किये हैं, उन जन्मोंमें आपने संसारको सुखबहुल देखा या दुःख-बहुल?' इसके उत्तरमें श्रीजैगीषव्यने कहा कि 'उन दस महाकल्पोंमें अनेक प्रकारके नरक-तिर्यक्-योनियोंमें बहुविध दुःखोंका अनुभव करते हुए पुनः-पुनः देव और मनुष्यादि योनियोंमें जन्म लेते हुए जो अनुभव किया है, उन सबको मैं दुःखरूप ही मानता हूँ।' इत्यादि।

'भगवानावट्यो जैगीषव्यमुवाच दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्त्वेन त्वया नरकतिर्यग्गर्भसम्भवं दुःखं सम्पश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन सुखदुःखयोः किमधिकमुपलब्धमिति भगवन्तमावट्यं जैगीषव्य उवाच—दशसु महासर्गेषु भव्यत्वादनभिभूतबुद्धिसत्त्वेन मया तिर्यग्भवं दुःखं सम्पश्यता देवमनुष्येषु पुनः पुनरुत्पद्यमानेन यत् किंचिदनुभूतं तत् सर्वं दुःखमेव प्रत्यवैमीत्यादि।'

महाभारतमें महर्षि व्यासने सुगमतासे ज्ञान करानेके लिये शुभाशुभकर्मानुसारि पूर्वजन्मको इस तरह स्पष्ट किया है—

प्रागनेन कृतं कर्म तेनासौ निधनं गतः।
विनाशहेतुः कर्मास्य सर्वे कर्मवशा वयम्॥

अर्थात्—गौतमी नामकी कोई ब्राह्मणी सर्पके दंशसे मरे हुए पुत्रको देखकर अत्यन्त चिन्ता कर रही थी। किसी लुब्धकके द्वारा बाँधकर अपने समीप लाये हुए सर्पको, 'पुनः पुनः मारिये'—कहनेपर भी गौतमीने उसका वध नहीं किया। सर्प भी, 'मैं वध करनेवाला नहीं हूँ, कुठारकी तरह छेदनक्रियामें परतन्त्र हूँ; मृत्यु ही यहाँ कारण है।' ऐसा कह रहा था। तदनन्तर मृत्युने प्रादुर्भूत होकर कहा कि 'मैं भी काल-परतन्त्र हूँ।' फिर काल भी आकर कहता है कि "मैं भी स्वतन्त्र नहीं हूँ। इसका 'कर्म' ही इसकी मृत्युमें कारण है।"

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान॥
(ऋग्वेद १०।५५।५)

इसका सायणानुसार तात्पर्य यह है कि 'वृद्धावस्थासे व्याप्त प्राणीकी जब मृत्यु होती है, पुनः जन्मान्तरमें प्रादुर्भूत होता है, इस इसोक्तिसे भी जन्मान्तर सूचित होता है।' इसी वेदप्रदर्शितिका अनुसरण करते हुए—

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'
(गीता २।२७)

—कहकर श्रीमद्भगवद्गीतामें जन्म-मरण-सामानाधिकरण्य नियमका कथन साक्षात् भगवान्ने किया है। इसी तरह भगवद्गीताके द्वारा पुनर्जन्मप्रदर्शक बहुत वचनोंका उद्धरण दिया जा सकता है। जैसे—'बहूनां जन्मनामन्ते।' (गीता ७।१९)

'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि' (गीता ४।५) आदि तथा अन्यान्य श्रुति-स्मृत्यादि प्रमाणोंसे पुनर्जन्म सिद्ध होता है।

श्रीकालिदासने रघुवंश (१४।६६) में कहा है—

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः॥

शतपथ ब्राह्मण (१४ । ७ । १ । ३६) में देवलोकका (३७) में गन्धर्वलोकका (१४ । ७ । १ । १९) में ब्रह्मलोकका तथा (३ । ७ । १ । २५) में मनुष्यलोक एवं पितृलोकका उल्लेख मिलता है।

वेदान्तदर्शनके ३ । २ । ६ 'देहयोगाद् वा सोऽपि ।' इस सूत्रके भाष्यमें—'सोऽपि तु जीवस्य ज्ञानैश्वर्यतिरोभावो देहयोगात्, देहेन्द्रियमनोबुद्धिविषयवेदनादियोगात्, भवति ।' इत्यादि वाक्योंसे भी छान्दोग्योपनिषद्के तीन उद्धरणोंसे परलोकका वर्णन हुआ है।

सारांश—'पुनर्जन्म और परलोक' विषयपर इतना लिखनेका एकमात्र उद्देश्य यही है कि इस मनुष्ययोनिमें ही अपने जीवका उद्धार हो सकता है तथा यह मानव-शरीर पुण्यबल एवं प्रभुकी परम कृपासे ही प्राप्त हुआ है। भगवती श्रुति भी यही कहती है कि 'यदि इस सर्वोत्तम योनिमें इससे प्राप्त होनेवाले शुभ-अशुभ कर्मोंको खूब समझकर जन्म सफल—ईश्वर-प्राप्ति नहीं कर सके तो बहुत हानि होगी—'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, नो चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।'

भगवती श्रीगीताजी भी यही कहती हैं—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् । (६ । ५)

अर्थात्—परमेश्वरप्रदत्त यह मनुष्य-योनि सर्वोत्तम है, इसके द्वारा ही शुभ कर्मोंसे आत्मोद्धार सम्भव है—

इयं हि योनिः प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते ।
आत्मा वै शक्यते त्रातुं कर्मभिः शुभलक्षणैः ॥

यह भी स्मरणीय है—

पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र, धरा धन धाम हैं बंधन जी को ।
बार ही बार विषय-फल खात, अघात न जात सुधारस फीको ॥
आन औसान तजो अभिमान, कही सुन कान भजो सिय-पी को ।
पाय परम पद हाथ सों जात, गई सो गई अब राख रही को ॥

इसलिये इस मानव-जीवनके मुख्य लक्ष्य भगवत्प्राप्तिके लिये पूर्ण सचेष्ट रहना चाहिये।

पूर्वजन्म-सिद्धान्तकी विश्वव्यापी मान्यता, सत्यता और उसके प्रसारका उद्गम

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी, 'ब्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

पूर्वजन्म-स्मृति पुनर्जन्मका एक प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसे सिद्ध करनेके लिये किसी अन्य युक्तिकी आवश्यकता शेष नहीं रहती। भारतवर्षके आर्य इसे अनादिकालसे मानते चले आये हैं। आप किसी साधारण-से-साधारण अपठित हिंदूसे पूछिये, वह इस सिद्धान्तपर अपना अटल विश्वास प्रकट करेगा। यहाँ कोई हिंदू-सम्प्रदाय आपको ऐसा नहीं मिलेगा, जो इसपर विश्वास न करता हो। यहाँतक कि जैन और बौद्ध अवैदिक सम्प्रदाय भी इस सिद्धान्तपर आस्था रखते हैं। वेद, उपनिषद्, शास्त्र, स्मृति, पुराण इतिहास—सभी यह प्रतिपादन करते हैं कि आत्मा मृत्युके पश्चात् एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरमें इसी प्रकार जाता है, जैसे हम पुराने वस्त्रोंको उतारकर नयेको धारण करते हैं।

हम यहाँ पुनर्जन्मपर वेद तथा अन्य धर्मशास्त्रोंके प्रमाण नहीं दे रहे हैं; यह केवल इसलिये कि यह आर्यावर्तका एक सर्वमान्य सिद्धान्त रहा है और आज भी है। हिंदू-सम्प्रदायोंमें जहाँ अन्य विषयोंपर मतभेद है, वहाँ इस सिद्धान्तपर सब एकमत है। अतएव प्रमाणसंग्रहको हमने इस विषयमें अनावश्यक समझकर छोड़ दिया है।

संसारमें वैदिक धर्मके अतिरिक्त बौद्ध, ईसाई तथा इस्लाम—तीन प्रमुख मत प्रचलित हैं। बौद्धमत प्रसारसे पूर्व भी चीननिवासी इस सिद्धान्तपर विश्वास करते थे, ऐसे प्रमाण मिलते हैं। ईसाई और इस्लाम-सम्प्रदाय पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं करते; परंतु बाइबिल तथा कुरानमें ऐसे स्थल हैं, जिनसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। ईसाइयत और इस्लामसे पूर्व फ्रांस, इंगलैंड, यूनान आदि यूरोपीय तथा अरब, ईरान, मिश्र आदि एशियाई देशनिवासी आवागमनमें विश्वास रखते थे, इनके अनेक ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं।

बाइबिलमें राजाओंकी दूसरी पुस्तक पर्व २, आयत ८, १५ में वर्णन है कि 'एलिजाह नबीका आत्मा मरनेके पश्चात् एलीशामें आ गया।' इसी प्रकार मलाकी पर्व ४, आयत ४-५-६ में परमेश्वरने इसी एलिजाह नबीको भेजनेकी बात कही है। मत्ती पर्व ११, आयत १०-११ में 'यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाले' को पूर्वजन्मका एलिजाह नबी बताया है।' आरम्भमें ईसाइयोंके कुछ गुप्त सिद्धान्त थे, जिनमें

शतपथ ब्राह्मण (१४ । ७ । १ । ३६) में देवलोकका (३७) में गन्धर्वलोकका (१४ । ७ । १ । १९) में ब्रह्मलोकका तथा (३ । ७ । १ । २५) में मनुष्यलोक एवं पितृलोकका उल्लेख मिलता है।

वेदान्तदर्शनके ३ । २ । ६ 'देहयोगाद् वा सोऽपि।' इस सूत्रके भाष्यमें—'सोऽपि तु जीवस्य ज्ञानैश्वर्यतिरोभावो देहयोगात्, देहेन्द्रियमनोबुद्धिविषयवेदनादियोगात्, भवति।' इत्यादि वाक्योंसे भी छान्दोग्योपनिषद्के तीन उद्धरणोंसे परलोकका वर्णन हुआ है।

सारांश—'पुनर्जन्म और परलोक' विषयपर इतना लिखनेका एकमात्र उद्देश्य यही है कि इस मनुष्ययोनिमें ही अपने जीवका उद्धार हो सकता है तथा यह मानव-शरीर पुण्यफल एवं प्रभुकी परम कृपासे ही प्राप्त हुआ है। भगवती श्रुति भी यही कहती है कि 'यदि इस सर्वोत्तम योनिमें इससे प्राप्त होनेवाले शुभ-अशुभ कर्मोंको खूब समझकर जन्म सफल—ईश्वर प्राप्ति नहीं कर सके तो बहुत हानि होगी—'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, नो चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।'

भगवती श्रीगीताजी भी यही कहती हैं—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्। (६ । ५)

अर्थात्—परमेश्वरप्रदत्त यह मनुष्य-योनि सर्वोत्तम है, इसके द्वारा ही शुभ कर्मोंसे आत्मोद्धार सम्भव है—

इयं हि योनिः प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते।
आत्मा वै शक्यते त्रातुं कर्मभिः शुभलक्षणैः॥

यह भी स्मरणीय है—

पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र, धरा धन धाम है बंधन जी को।
बार ही बार विषय-फल खात, अघात न जात सुधारस फीको॥
आन औसान तजो अभिमान, कही सुन कान भजो सिय-पी को।
पाय परम पद हाथ सों जात, गई सो गई अब राख रही को॥

इसलिये इस मानव-जीवनके मुख्य लक्ष्य भगवत्प्राप्तिके लिये पूर्ण सचेष्ट रहना चाहिये।

पूर्वजन्म-सिद्धान्तकी विश्वव्यापी मान्यता, सत्यता और उसके प्रसारका उद्गम

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी, 'ब्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

पूर्वजन्म-स्मृति पुनर्जन्मका एक प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसे सिद्ध करनेके लिये किसी अन्य युक्तिकी आवश्यकता शेष नहीं रहती। भारतवर्षके आर्य इसे अनादिकालसे मानते चले आते हैं। आप किसी साधारण-से-साधारण अपठित हिंदूसे पूछिये, वह इस सिद्धान्तपर अपना अटल विश्वास प्रकट करेगा। यहाँ कोई हिंदू-सम्प्रदाय आपको ऐसा नहीं मिलेगा, जो इसपर विश्वास न करता हो। यहाँतक कि जैन और बौद्ध अवैदिक सम्प्रदाय भी इस सिद्धान्तपर आस्था रखते हैं। वेद, उपनिषद्, शास्त्र, स्मृति, पुराण इतिहास—सभी यह प्रतिपादन करते हैं कि आत्मा मृत्युके पश्चात् एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरमें इसी प्रकार जाता है, जैसे हम पुराने वस्त्रोंको उतारकर नयेको धारण करते हैं।

हम यहाँ पुनर्जन्मपर वेद तथा अन्य धर्म-शास्त्रोंके प्रमाण नहीं दे रहे हैं; यह केवल इसलिये कि यह आर्य-जातिका एक सर्वमान्य सिद्धान्त रहा है और आज भी है। हिंदू-सम्प्रदायोंमें जहाँ अन्य विषयोंपर मतभेद है, वहाँ इस सिद्धान्तपर सब एकमत हैं। अतएव प्रमाण-संग्रहको हमने इस निबन्धमें अनावश्यक समझकर छोड़ दिया है।

संसारमें वैदिक धर्मके अतिरिक्त बौद्ध, ईसाई तथा इस्लाम—तीन प्रमुख मत प्रचलित हैं। बौद्धमत प्रचारसे पूर्व भी चीननिवासी इस सिद्धान्तपर विश्वास करते थे, ऐसे प्रमाण मिलते हैं। ईसाई और इस्लाम-सम्प्रदाय पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं करते; परंतु बाइबिल तथा कुरानमें ऐसे स्थल हैं, जिनसे इस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। ईसाइयत और इस्लामसे पूर्व फ्रांस, इंगलैंड, यूनान आदि यूरोपीय तथा अरब, ईरान, मिस्र आदि एशियाई देशनिवासी आवागमनमें विश्वास रखते थे, इसके अनेक ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं।

बाइबिलमें राजाओंकी दूसरी पुस्तक-पर्व २, आयत ८, १५ में वर्णन है कि 'एलियाह नबीका आत्मा मरनेके पश्चात् एलीशामें आ गया।' इसी प्रकार मलाकी पर्व ४, आयत ४-५-६ में परमेश्वरने इसी एलियाह नबीको भेजनेकी बात कही है। मत्ती पर्व ११, आयत १०-११ में 'यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला ही पूर्वजन्मका एलियाह नबी बताया है।' आरम्भमें ईसाइयोंके कुछ गुप्त सिद्धान्त थे, जिनसे

पुनर्जन्मका आधार

(लेखक—श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

आधुनिक कवियों तथा रहस्यवादियोंने बार-बार पुनर्जन्मका उल्लेख किया है, उनमेंसे बहुतेरोंने अपने विचारोंका प्रासाद खड़ा करनेके लिये इस अनुमानित कल्पनाको मान्य किया है। उदाहरणके लिये टैगोर (श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर) निस्संकोच पुनर्जन्मको स्वीकार करते थे। वाल्ट विटमैन (Walt Witman) ने अपनी कृति 'सांग आव माइसेल्फ' (Song of Myself) में उच्च स्वरसे गाया है—

'As to you, Life, I reckon you are the leavings of many deaths. No doubt I had died myself ten thousand times before'.

'ओ जीवन! तुम मेरे अनेक अवसानोंका अवशेष हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि मैं इसके पूर्व दस हजार बार मर चुका हूँ।' बहुतोंका अनुमान है कि जीवन अनेक अवसानोंका अवशेष है। इस जीवनको मैं जो आज देखता हूँ, वह बहुतसे जन्मों तथा अवसानोंका परिणाम है। अगणित बार मरने तथा पुनः जन्म लेनेकी घटनाओंमेंसे इसे यह वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है। अपनी समस्त त्रुटियों और महानताओंके साथ एक व्यक्ति अनेक जन्मों तथा निधनोंमेंसे निकलनेवाली एक दीर्घ अविच्छिन्न प्रक्रियाका परिणाम है। आधुनिक कालमें कुछ ख्यातनामा पाश्चात्त्य दार्शनिकोंने भी पुनर्जन्मकी धारणाको मान्य किया है। न केवल कवि तथा रहस्यवादी ही इस मतके अनुगामी थे, अपितु अध्यात्मविद्याविशारद भी मानव-अस्तित्व तथा अनुभूतियोंसे सम्बन्धित कुछ समस्याओंको स्पष्ट करनेके लिये इसे मान्य करना अनिवार्य समझने लगे थे। आर्थर शोपेनहर (Arthur Schopenhauer) ने अपनी कृति 'पेरेरगा एण्ड पारलिपोमेना' (Parerga and Paralipomena) में यों लिखा है—

'Were an Asiatic to ask me for a definition of Europe, I should be forced to answer him it is that part of the world which is haunted by the incredible illusion that man was created out of nothing and that his present birth is his first entrance into life.'

'यदि कोई एशियानिवासी मुझसे यूरोपकी परिभाषा पूछे तो मुझे बाध्य होकर उसे यह उत्तर देना पड़ेगा कि योरप इस अविश्वसनीय भ्रान्तिके भूतसे संत्रस्त वह भूभाग है, जो मनुष्यका निर्माण शून्यमेंसे मानता है तथा उसके वर्तमान जन्मको ही जीवनमें उसका प्रथम पदार्पण समझता है।'

यदि वर्तमान जन्मको ही जीवनमें प्रथम प्रवेश मान लिया जाय तो हमारी चेतना परिमित हो जाती है। परंतु यह सभी स्वीकार करते हैं कि एक आध्यात्मिक तथा बुद्धिजीवी प्राणी होनेके कारण मनुष्यको अपनी सीमितताओंका अतिक्रमण करना ही चाहिये और अतिक्रमणमें ही उसके अस्तित्वकी सच्ची महत्ता है। ईश्वरीय चेतना हमारे भीतरके विश्व-चैतन्यकी सहायक है। उपनिषद्का कथन है—'ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।'—ईश्वरकी सर्वव्यापकताकी यह धारणा एक वैश्विक चेतना प्रदान करती है, जो इस पूर्वमान्य कल्पनाके साथ आगे बढ़ती है कि व्यक्तियोंके रूपमें हमारे इस वर्तमान भौतिक प्राकट्यके पूर्व भी हमारा अस्तित्व था। यहाँ स्वाभाविक रूपसे यह प्रश्न उपस्थित होता है कि भौतिक रूपोंमें हमारा प्राकट्य किन नियमोंद्वारा नियन्त्रित होता है। प्रायः इस शरीरको पैतृक देन समझा जाता है। हमारे भौतिक स्वभावमें भी पूर्वजोंके अनुरूप कुछ बातें रह सकती हैं। इस व्यक्तिकरणकी प्रक्रियामेंसे गुजरनेवाले आध्यात्मिक प्राणी हैं और इसलिये इन्हें नियमके प्रभावकी चपेटमें आना ही होगा। प्रत्येक घटनाके पीछे इतिहास है और वर्तमानको भूतकालकी उपज ही देखा गया है। अव्यक्तके रहस्यमय स्थानसे शरीरधारी अस्तित्वमें तत्त्वतः व्यक्ति उठते हुए प्रतीत होते हैं। निश्चय ही व्यक्ति यह शरीरमात्र नहीं है जिसमें वे आश्रित हैं। उनका अस्तित्व शरीरसे पूर्व होना ही चाहिये। यह अनुमान हमें कुछ सान्त्वना प्रदान करता है और हमारी [illegible] वृत्तियों [illegible] कई [illegible] उत्पन्न [illegible] बोध करता है। [illegible] और हैं। [illegible] कई रूप होते हैं। [illegible] निहित है और वे कुछ बाहर दिखायी दे रहा है, पर

हो सके। कुछ अर्थोंमें यह प्रक्रिया सहज स्वाभाविक चुनावके नियम (Law of natural selection) के अनुरूप है। पुनर्जन्मके सिद्धान्तके समर्थनमें वेदान्तके दार्शनिकोंका तर्क है कि इस सृष्टिमें कुछ भी नष्ट नहीं होता। आधुनिक वैज्ञानिकोंके समान वेदान्तवादियोंमें भी किसी वस्तुके लोपके अर्थमें उसका नाश होना कल्पनातीत है। उनका कथन है कि 'जो नहीं है उसका होनापना कदापि सम्भव नहीं और जो है उसके न होनेकी कभी सम्भावना नहीं।'—

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः॥'

(गीता २। १६)

या इसे दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते हैं जिसका पहले अस्तित्व नहीं था, उसका कभी अस्तित्व नहीं हो सकता और विलोम-पद्धतिसे विचार करनेपर जिसका किसी भी रूपमें अस्तित्व है, वह कभी अस्तित्वरहित नहीं हो सकता। यह प्राकृतिक नियम है। इस दृष्टिसे देखनेपर इस समय हमारे जो संस्कार या विचार हैं और जिन शक्तियोंपर हमारा अधिकार है, उनका नाश नहीं होगा। वे किसी-न-किसी रूपमें हमारे साथ रहेंगे। हमारे शरीरोंमें परिवर्तन हो सकता है, परंतु शक्तियाँ, कर्म, संस्कार और हमारे शरीरोंका निर्माण करनेवाले उपकरण हममें अव्यक्तरूपसे रहेंगे ही। उनका कभी विनाश नहीं होगा। विज्ञान हमें बतलाता है कि जो कुछ भी अव्यक्त अथवा प्रसुप्तरूपमें विद्यमान है, वह किसी-न-किसी समय अवश्य ही सत्यात्मक अथवा यथार्थ रूपमें मूर्तिमान् होकर रहेगा। इसलिये हमें देर-सबेर दूसरे शरीरोंकी भी प्राप्ति होगी। भगवद्गीता भी यही कहती है कि 'जन्मके पश्चात् मृत्यु और मृत्युके पश्चात् जन्म सुनिश्चित है।'—

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।'

(गीता २। २७)

जन्म-मरणके इस सतत प्रवाहमेंसे जीवनके बीच कारणको निकालना ही पड़ेगा। परंतु यहाँ एक समस्या खड़ी होती है। पुनर्जन्मके सम्बन्धमें इस आधारपर एक आपत्ति उठायी जा सकती है कि यदि जन्मके पूर्व हमारा अस्तित्व था, तो हमें पूर्व अस्तित्वोंकी स्मृति क्यों नहीं है।

वेदान्त इस प्रश्न तथा इससे सम्बन्धित अन्य प्रश्नोंका उत्तर यह कहकर देता है कि 'हमारे पूर्व अस्तित्वोंका स्मरण हो सकना सम्भव है।' हम 'राजयोग'के तृतीय अध्यायके १८वें सूत्रका अवलोकन करें। जिसमें यह वर्णित है कि 'संस्कारोंको अनुभव करनेका अर्थ है, हमारी गत अनुभूतियोंके वे संस्कार जो सुप्त रूपमें हमारे अवचेतन मानसमें पड़े हैं और जिनका कभी नाश नहीं होता।' सुप्त संस्कारोंका चेतनाके धरातलपर जाग्रत् होना और उठ बैठना ही 'स्मृति' कहलाता है। एक राजयोगी अपने अन्तश्चेतनाके संस्कारोंपर सशक्त एकाग्रताका उपयोग करके अपने गतजीवनकी सभी घटनाओंका स्मरण कर सकता है। भारतमें ऐसे योगियोंके बहुत उदाहरण मिलते हैं, जिन्हें न केवल अपने ही गतजीवनकी जानकारी थी; अपितु दूसरोंके गतजीवनके विषयमें भी वे बतला सकते थे। कहा जाता है कि गौतम बुद्धको अपने ५०० गत-जन्मोंकी स्मृति थी। हमारा अवचेतन मानस अथवा अन्तश्चेतना उन संस्कारोंका भण्डार है, जिन्हें हम हमारे जीवनकालमें हमारे अनुभवोंद्वारा संचित करते रहते हैं। जैसा कि वेदान्तमें कहा जाता है कि कबूतरखानेके समान चित्तमें संस्कार संगृहीत हो जाते हैं। चित्तका अर्थ है वह अवचेतन मानस अथवा अन्तश्चेतना जो हमारे संस्कारों तथा अनुभवोंका भण्डार है। ये संस्कार तबतक सुप्त पड़े रहते हैं, जबतक कि अनुकूल स्थितियाँ उन्हें जाग्रत् नहीं कर देतीं और उन्हें चेतनाके तलपर बाहर नहीं खींच लातीं। इस प्रकार प्रत्येक आत्माके पास उसके परिसरमें अन्तश्चेतनाके अंदर संगृहीत अनुभवों तथा संस्कारोंका भण्डार रहता है। इस अनुशीलनके प्रकाशमें हम यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि क्या प्रेमियोंकी मृत्युके पश्चात् भी उनका परस्पर प्रेम बना रहेगा? वेदान्तका कथन है कि 'हाँ' वह रहेगा। शरीरकी मृत्यु परस्परके आकर्षण तथा दो आत्माओंके लगावका अन्त नहीं करेगी; क्योंकि आत्मा अमर है, इसलिये उनके सम्बन्ध सदैव बने रहेंगे।

आत्मा उन शक्तियोंका मध्यवर्ती केन्द्र समझा जाता है, जिन्हें अपने अभिव्यक्त होनेके लिये उपयुक्त देहोंकी आवश्यकता है। यह स्पष्ट समझना उपयोगी होगा कि पुनर्जन्ममें कर्मफलवाद तथा नियतिवाद (या प्रारब्ध भोग) दोनों पहलुओंसे ही लक्ष्य मान लिये गये हैं। इस

कृतकर्म और पुनर्जन्म

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी एम्० ए० (द्वय), साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, साहित्यसुधाकर)

पुनर्जन्मके सिद्धान्तको केवल हिंदू-धर्मानुयायी या केवल आस्तिकवादी ही नहीं मानते, बल्कि बौद्धलोग जो आत्माको नहीं मानते, वे भी वैदिक धर्ममें वर्णित इस पुनर्जन्मकी कल्पनाको अपने धर्ममें पूर्णरूपसे स्थान देते हैं। आधुनिक आधिभौतिक शास्त्रकारोंका भी यह मत है कि कर्मशक्तिका कभी भी नाश नहीं होता; बल्कि जो शक्ति आज किसी नाम-रूपसे देख पड़ती है, वही शक्ति उस नाम-रूपके नाश होनेपर दूसरे नाम-रूपसे प्रकट हो जाती है। इस बीसवीं शताब्दीमें भी पक्के निरीश्वरवादी, नास्तिक जर्मन-पण्डित नीट्शेने भी पुनर्जन्मवादको स्वीकार किया है। उसने लिखा है कि 'कर्म-शक्तिके जो रूपान्तर हुआ करते हैं, वे सब नियमित और मर्यादित हैं और इसीलिये कर्मका चक्र अर्थात् बन्धन आधिभौतिक दृष्टिसे भी सिद्ध हो जाता है।' हेगेल (Hegel)-जैसे आधिभौतिक शास्त्रज्ञोंका भी यही सिद्धान्त है कि 'यह कृतकर्म रूपिचक्र मनुष्यको जिधर ढकेलता है, उधर ही उसे जाना पड़ता है।'

आध्यात्मिक दृष्टिसे इस नाम-रूपात्मक परम्पराको ही जन्म-मरणका चक्र अथवा 'संसारचक्र' कहते हैं और इन नाम-रूपोंकी आधारभूत शक्तिको समष्टिरूपसे 'ब्रह्म' अथवा 'परमात्मा' और व्यष्टिरूपसे 'जीवात्मा' अथवा 'देही' कहा करते हैं। सत्य दृष्टिसे तो यह आत्मा न जन्म धारण करता है और न मरता ही है, अर्थात् यह नित्य और स्थायी है; परंतु कर्म-बन्धनमें पड़ जानेके कारण एक नाम-रूपके नाश हो जानेपर उसी जीवात्माको दूसरे नाम-रूपोंमें प्रकट हो जाना अवश्यम्भावी हो जाता है। आजका कर्म कल भोगना पड़ता है और कलका परसों। इसी प्रकार इस जन्ममें आसक्त होकर जो कुछ किया जाता है, उसका फल यदि इस जन्ममें न मिले तो उसे अगले जन्ममें अवश्य भोगना पड़ता है। महाभारत (आ० ८० । ३) और मनुस्मृति (४ । १७३) में तो यहाँतक वर्णन है कि इन कृत कर्मफलोंको न केवल हमें ही, किंतु कभी-कभी हमारी नाम-रूपात्मक देहसे उत्पन्न हुई संतानोंको भोगना पड़ता है। शान्तिपर्वमें भीष्मने युधिष्ठिरसे कहा है—

> पापं कर्म कृतं किंचिद्यदि तस्मिन्न दृश्यते।
> नृपते तस्य पुत्रेषु पौत्रेष्वपि च नप्तृषु॥

अर्थात् 'हे राजा! यदि यह देख पड़े कि किसी मनुष्यको उसके पापकर्मोंका फल नहीं मिला तो समझ लेना चाहिये कि उस फलको उसके पुत्रों, पौत्रों और प्रपौत्रोंको भोगना पड़ेगा।'

बहुधा यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि कोई-कोई रोग वंशमें परम्परासे प्रचलित रहते हैं; कोई जन्मसे दरिद्र और कोई जन्मसे सम्पन्न कुलमें उत्पन्न होते हैं; कोई जन्मसे ही अङ्गहीन, बलहीन, बुद्धिहीन और कोई जन्मसे ही हृष्ट-पुष्ट अङ्गवाले, बुद्धिमान्, प्रतिभावान् होते हैं। इन सब बातोंकी उपपत्ति केवल कर्मवादसे ही बतलायी जा सकती है और यही सब कृतकर्मवादकी सचाईका प्रमाण है।

यद्यपि मानवी बुद्धिसे इस बातका पता नहीं लगता कि परमेश्वरकी इच्छासे संसारमें कर्मका आरम्भ कब हुआ और तदनुकूल यह प्राणी (जीव) कर्मके बन्धनमें पहले-पहल कब फँस गये, तथापि जब हम यह देखते हैं कि कर्मोंके भविष्य परिणाम या फल केवल कृतकर्मोंके नियमोंसे ही उत्पन्न हुआ करते हैं, तब अपनी बुद्धिसे इतना तो हम अवश्य निश्चय कर सकते हैं कि संसारके आरम्भसे प्रत्येक प्राणी नाम-रूपात्मक अनादि कर्मोंकी कैदमें बँधा-सा गया है। इसीलिये 'कर्मणा बध्यते जन्तुः'—कर्मसे जीव बाँधा जाता है' ऐसा महाभारतमें कहा गया है।

कर्म-सरिता प्रवाहमें बहती हुई जीवन-नौकाके पूर्वजन्म और पुनर्जन्म दो किनारे हैं। पूर्वजन्मकृत कर्म इस जन्मके तथा इस जन्मके कृतकर्म पुनर्जन्म धारण करनेके हेतु हैं। इस सचाईको सिद्ध करनेके लिये अनेक शास्त्रीय प्रमाण भरे हैं। श्रीहस्तामलकाचार्य [illegible] कहते हैं—

> कः कस्य हेतुर्दुःखस्य कश्च हेतुः सुखस्य वा।
> स्वपूर्वार्जितकर्मैव कारणं सुखदुःखयोः॥

अर्थात् 'कौन किसके दुःखका हेतु है तथा कौन सुखका? कारण कोई किसी दूसरेके सुख-दुःखमें कारण नहीं होता, पूर्वजन्मके किये हुए अपने ही शुभ या अशुभ कर्म मनुष्यको सुख-दुःखका भोग प्रदान करते हैं।' इसी प्रकार [illegible] (२ । [illegible] । ३) में कहा गया है—

आत्माकी सत्ता एवं नित्यता पुनर्जन्मकी साधक

['न्यायदर्शन'के आधारपर]

(लेखक—श्रीनारायणजी शर्मा, शास्त्री 'राजीव', एम्० ए०, 'प्रभाकर')

आजकलके इस आत्मा-अविश्वासी युगमें 'पुनर्जन्म'का मानना भी दकियानूसियोंका विचार माना जाता है। आजकल हेतुवादका युग है, प्रमाणवादपर लोगोंकी आस्था नहीं है। तब हम तर्कशास्त्र न्यायदर्शनके आधारपर आत्माकी सत्ता एवं नित्यता बताने जा रहे हैं; जिससे पुनर्जन्मकी सिद्धि स्वतः होगी।

देहादिसंघातको, जिसमें इन्द्रियाँ, मन और शरीर आ जाते हैं, कई लोग आत्मा मानते हैं; वे आत्माकी पृथक् सत्ता नहीं मानते। इस विषयको प्रश्न-उत्तररूपसे दिखलाया जाता है।

१. प्रश्न—शरीरमें भी चेष्टा दीखती है, इन्द्रियोंको भी ज्ञान होता है, मन भी ज्ञानका साधन है। इनके समुदायको ज्ञानका आधार देखा गया है, तब देहादिसंघात ही आत्मा है; उससे भिन्न आत्मा नहीं।

१. उत्तर—आत्मा देहादिसंघातसे भिन्न ही है। 'दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात्।' (३ । १ । १)। जिसको मैंने आँखसे देखा है; अब मैं उसे त्वचासे भी छू रहा हूँ; जिसे मैंने हाथसे छुआ था, अब उसे देख रहा हूँ; इससे भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंसे एक ही वस्तुके गृहीत होनेसे आत्मा देहादिसे भिन्न सिद्ध है। इससे आत्मा नित्य और चेतन सिद्ध होता है। पहले देखी हुई वस्तुका कालान्तरमें अन्य इन्द्रियसे भी ग्रहण हो सकता है। यदि देहादिसंघातको आत्मा माना जाय, तब आँखसे देखी हुई वस्तुका त्वचासे स्मृति नहीं हो सकती; क्योंकि दूसरेसे देखी हुई वस्तुका दूसरेसे स्मरण नहीं हो सकता। नहीं तो, देवदत्तसे देखी हुई वस्तुका यज्ञदत्तसे भी ग्रहण हो जाय। पर ऐसा नहीं है।

आँख आदि इन्द्रियोंको स्वयं ज्ञान नहीं होता, किंतु कोई दूसरा (आत्मा) ही आँख आदि साधनसे देखता है। वही किसी फलको देखकर—उसके पूर्वमें अनुभव किये हुए स्वादका स्मरण करता है। नहीं तो, देखनेवाली आँख उसके अनित्य स्वादको कैसे स्मरण कर सकती है?

'तद्व्यवस्थानादेवात्मसद्भावादप्रतिषेधः।' (न्याय० ३ । १ । २)।

यदि शरीरको आत्मा माना जाय, तो मृतक शरीरको जलानेपर पुत्रको भी पाप होगा—'शरीरदाहे पातकाभावात्।' (३ । १ । ४) अथवा देहादिसंघातको आत्मा माना जाय, वह तो प्रतिक्षणमें परिवर्तन होते रहनेसे अन्य हो जानेके कारण, जिस संघातने जीते हुए शरीरको जलाया; वह दूसरे समय तो रहा नहीं; तब उसे पाप या राजदण्ड नहीं होना चाहिये; परंतु हुआ करता है; इससे आत्मा शरीरादिसंघातसे भिन्न ही है।

२. प्रश्न—जब आत्मा नित्य है; तब जीते हुए शरीरके जलानेपर भी आत्माके विनष्ट न होनेसे हिंसा न होनेके कारण पाप नहीं होगा। 'तदभावः सात्मकप्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वात्।' (३ । १ । ५)

२. उत्तर—यह शरीर आत्माको सुख आदिके भोगार्थ मिला हुआ है; तब उसको उससे अलग करनारूप पाप यहाँ भी है—'न कार्याश्रयकर्तृवधात्।' (३ । १ । ६) इससे आत्मा देहसे भिन्न ही सिद्ध है।

३. प्रश्न—इन्द्रियोंको ही आत्मा क्यों न मान लिया जाय?

३. उत्तर—बायीं आँखसे देखी हुई वस्तुका दाहिनी आँखसे भी स्मरण हो जाता है; इससे आत्मा इन्द्रियसे भिन्न सिद्ध है। नहीं तो, एकसे देखे हुएको दूसरा स्मरण नहीं कर सकता—'सव्यदृष्टस्येतरेण प्रत्यभिज्ञानात्।' (३ । १ । ७)

४. प्रश्न—जैसे पुलके व्यवधानमें ठहरे हुए दो तालाब दो न होकर एक ही होते हैं; इसी प्रकार नाककी हड्डीके व्यवधानसे स्थित आँखें भी दो न होकर एक ही हैं; इसलिये पूर्वोक्त बात संगत नहीं है। 'नैकस्मिन् नासास्थिव्यवहिते द्वित्वाभिमानात्।' (३ । १ । ८)

४. उत्तर—ऐसा नहीं। यदि ऐसा हो तो एक आँख नष्ट हो जाय, तो दूसरी भी आँख नष्ट हो जाय,

बिना निमित्तके होते हैं; तब इससे आत्माकी नित्यता कैसे हो जायगी ? 'पद्मादिषु प्रबोधसम्मीलनविकारवत् तद्विकारः ।' (३ । १ । २०)

९. उत्तर—कमल आदिमें जो खिलना-बंद होना आदि विकार होते हैं, वे भी बिना निमित्तके नहीं होते; उसमें भी सूर्यके उदय-अस्त आदि निमित्त होते हैं। यहाँपर भी सद्यः उत्पन्न हुए शिशुके हर्ष-भय आदि पूर्वजन्मके अभ्यस्त होते हैं, पूर्वजन्मवाले शिशुके भी उससे भी पूर्वजन्मके अभ्यस्त होते हैं। इस प्रकार यह परम्परा निरवच्छिन्न चलती रहती है। 'न उष्णशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मकविकाराणाम् ।' (न्याय० ३ । १ । २१)

इस प्रकार बच्चेके हर्ष आदिमें पूर्वजन्मके अभ्यासके निमित्त होनेसे आत्मा नित्य सिद्ध है।

इसी प्रकार सद्योजात बच्चेका स्तन्यपान, शब्दका चाटना आदि भी पूर्वजन्मसे अभ्यस्त होनेसे हुआ करता है—'प्रेत्य आहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात् ।' (३ । १ । २२)

१०. प्रश्न—यह बच्चेकी स्तन्यपानमें प्रवृत्ति भी चुम्बकमणिके प्रति लोहेके खिंचनेकी तरह निर्निमित्त क्यों न मानी जाय ? 'अयसोऽयस्कान्ताभिगमनवत् तदुपसर्पणम् ।' (३ । १ । २३)

१०. उत्तर—यह ठीक नहीं। यदि अयस्कान्तमणि (चुम्बक) के प्रति लोहेका उपसर्पण निर्निमित्त हो तो अयस्कान्त ढेलेको क्यों नहीं खींच लेता ? पर नहीं खींच सकता। 'न अन्यत्र प्रवृत्त्यभावात् ।' (३ । १ । २४)

इस प्रकार शिशुकी स्तन्यपानमें प्रवृत्ति पूर्वजन्मके अभ्यासवश होती है, तब आत्माकी नित्यताके साथ पुनर्जन्म भी सिद्ध है।

उत्पन्न हुए शिशुमें राग भी दीखता है, वह खिलौने आदिसे प्रसन्न होता है। इससे यह पूर्वजन्मसे अभ्यस्त है, यह सिद्ध है—'वीतरागजन्मादर्शनात् ।' (३ । १ । २५)

इसलिये आत्मा नित्य है।

११. प्रश्न—जैसे घड़ा आदि द्रव्य सगुण पैदा होते हैं, वैसे आत्माकी उत्पत्ति भी गुणसहित मान ली जाय—'सगुणद्रव्योत्पत्तिवत् तदुत्पत्तिः ।' (३ । १ । २६)

११. उत्तर—राग आदि संकल्पसे होते हैं—'न संकल्पनिमित्तत्वाद् रागादीनाम् ।' (३ । १ । २७)

वे रागादि ज्ञान हो जानेपर हट भी जाते हैं। अतः वे स्वाभाविक नहीं। रागमें पूर्वजन्मके कर्म कारण होते हैं। इससे जीवके नाना जन्म सिद्ध होते हैं। जातिविशेषमें रागविशेष भी हुआ करते हैं। जैसे—गज-जन्ममें उसका शल्लकी नामक घासमें राग होता है। बिलाव-जन्ममें उसका मूषक आदिमें राग होता है। तब अदृष्ट (पूर्व-जन्मके धर्म-अधर्म आदि) से आत्मा नित्य सिद्ध है। आत्माकी नित्यतासे पुनर्जन्म भी सिद्ध है।

पुनर्जन्मकी घटनाएँ समाचारपत्रोंमें प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं। उन्हें पुनर्जन्म न माननेवाले ईसाई-मुसल्मान आदि छिपाते हैं। हिंदू भी अपने बच्चोंकी आयुके कम हो जानेकी शङ्कासे उन्हें छिपाते हैं। सुधारक इससे पूर्वजन्मके कर्मोंके फलकी सिद्धि होनेसे नास्तिकताके संस्कारवश इसे छिपाते हैं। उस संस्कारसे हिंदू मुक्तिको परम पुरुषार्थ माननेवाला होनेसे पुनर्जन्ममें आस्था नहीं रखता; परंतु पुनर्जन्म सिद्ध होनेसे और उसमें आस्था रखनेसे चोरी, जारी, पाप, हत्या आदि दुष्कर्म हट सकते हैं, इसी जनताकी कल्याण-भावनासे 'कल्याण'ने भी यह अङ्क निकाला है।

जन्ममरण-दुःखनाशके लिये ही आहार करे

आहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं कुर्यादाहारं प्राणसंधारणार्थम् ।
प्राणाः संधार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं तत्त्वं जिज्ञास्यं येन भूयो न दुःखम् ॥ ([illegible])

मनुष्यको चाहिये कि संसारमें आहारकी प्राप्तिके लिये शास्त्रानुसार अनिन्द्य कर्म करे। आहार भी प्राणोंकी रक्षाके लिये ही करे। प्राणरक्षा भी तत्त्वज्ञानके लिये ही करे। तत्त्वज्ञानकी इच्छा ऐसी करनी ही चाहिये, जिससे जन्म-मरण-दुःखकी फिर प्राप्ति न हो।

इस प्रकार आत्मतत्त्वको पृथ्वीतत्त्वके समान ही जातिविशेष मानकर वैशेषिकने एक प्रकारसे वेदान्तके अद्वैतवादको अमान्य कर दिया और मीमांसाका समर्थन किया; क्योंकि वैशेषिक दर्शनमें धर्मका लक्षण करते हुए लिखा है कि—

'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।'

अर्थात् 'धर्म वही है जिससे इहलोकमें अभ्युदय हो, उन्नत जीवन बने और निःश्रेयसकी सिद्धि हो अर्थात् स्वर्ग या मोक्षकी प्राप्तिके लिये भी साधना चलती रहे।' एक प्रकारसे मीमांसाके कर्मवादके सिद्धान्तको वैशेषिकने मान लिया है। यही बात न्यायदर्शनकी है।

बौद्ध-दर्शनके शून्यवादने आधिभौतिकवाद और भगवान् शंकरके अद्वैतवाद दोनोंको अस्वीकार किया है। सांख्य-दर्शनकारने शून्यवादके विषयमें लिखा है—

'शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य।'
(सांख्यदर्शन १।४४)

अर्थात् 'न भौतिकतत्त्व है, न ब्रह्म। केवल शून्यतत्त्व है; क्योंकि सब भाव विनाशको प्राप्त होते हैं और विनाश (शून्य) का धर्म है—वस्तुरूपमें प्रकट होना।'

परंतु बौद्धदर्शन कर्मवादके सिद्धान्तको मानता है, यद्यपि यह कर्मवाद मीमांसाके कर्मवादसे भिन्न है। 'धम्मपद'में कहते हैं—

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा॥
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं'व वहतो पदं॥ १॥
मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा च पसन्नेन भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति छाया'व अनपायिनी॥ २॥

'सारे जीवनके व्यापारोंके आगे-आगे मन चलता है, सब व्यापारोंमें मनकी ही श्रेष्ठता है, सारे व्यापार मनोमय हैं। जो दूषित मनसे बोलता है या कार्य करता है, उसके पीछे दुःख उसी प्रकार लग जाता है, जैसे गाड़ीको खींचनेवाले बैलके पीछे पहिया चलता है। इसी प्रकार जो स्वच्छ मनसे भाषण करता है या काम करता है, उसके पीछे सुख इस प्रकार चलता है, जैसे मनुष्यके पीछे छाया लगी रहती है।'

दुष्ट मनसे किये कर्म, भाषण या चिन्तनको 'पाप' कहते हैं और स्वच्छ मनसे किये कर्म, भाषण या चिन्तनको 'पुण्य' कहते हैं। पापका फल दुःख होता है और पुण्यका फल सुख। सुख-दुःखरूप फल मनुष्य इहलोकमें भोगता है और जो शेष रहता है, उसको भोगनेके लिये उसे स्वर्ग या नरकमें जाना पड़ता है।

बौद्धलोग हेतुवादी हैं, इसलिये पुण्य सञ्चय करनेका उपदेश देते हैं; जीवनमें जो जितना ही अधिक पुण्य सञ्चय करता है, उतना ही उसका जीवन सफल होता है। तथागत कहते हैं—

इध तप्पति पेच्च तप्पति पापकारी उभयत्थ तप्पति।
× × ×
इध नन्दति पेच्च नन्दति कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति॥
(धम्मपद १।१७-१८)

'पाप करनेवाला इहलोकमें संतप्त होता है और मरकर परलोकमें भी संताप भोगता है। × × × पुण्यकर्मा इहलोकमें आनन्द करता है, मरकर परलोकमें जाकर आनन्द भोगता है, यह दोनों लोकोंमें आनन्दित होता है।'

बौद्धलोग अनात्मवादी हैं। उनका परमतत्त्व 'शून्य' है। शून्यका लक्षण करते हुए कहते हैं—

'सदसदुभयानुभयात्मकचतुष्कोटिविनिर्मुक्तं शून्यम्॥'

अर्थात् सत्, असत्, उभयात्मक (सत्-असत्) तथा अनुभयात्मक (न सत् न असत्)—इन चारों कोटियोंसे पृथक् विलक्षण 'शून्यतत्त्व' है। इसी कारण इनका निर्वाण भी शून्यात्मक होता है। जैसे—

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचित्
स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम्॥
तथा कृती निर्वृतिमभ्युपेतो
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचित्
कर्मक्षयात् केवलमेति शान्तिम्॥

'जैसे दीप निर्वाणको प्राप्त होता है तो वह न दिशाओंमें जाता है, न अवान्तर दिशाओंमें—तेलके क्षय हो जानेपर शान्त हो जाता है। उसी प्रकार कृती जब निर्वाणको प्राप्त होता है तो वह न दिशाओंमें जाता है, न अवान्तर दिशाओंमें—कर्म-वासनाके क्षीण हो जानेपर केवल शान्त हो जाता है।'

'अहं करोमि'—इस वृत्तिमें 'अहं' को वे आत्मा नहीं मानते, अहंकार मानते हैं। उसका और संज्ञा, रूप, वेदना, विज्ञान और संस्कार—इन [illegible]

होकर नृत्य समाप्त कर देती है। सांख्यदर्शनके मतमें यही पुरुषका 'कैवल्य' है और यही 'परमपद' है।

परंतु इस अवस्थाको विरले ही भाग्यवान् पुरुष प्राप्त होते हैं। फिर तो आवागमन ही अधिकांशके मत्थे पड़ता है। मृत्युके पश्चात् पुरुषके कृतकर्मोंके संस्कार, जिनको 'भाव' कहते हैं, जो लिङ्ग अर्थात् सूक्ष्मशरीरके साथ अनुस्यूत होते हैं, पुरुषको साथ लेकर परलोक तथा जन्मान्तरमें भोग प्रदान करते हैं।

यहाँ 'भाव' और 'लिङ्ग' दो पारिभाषिक शब्द आये हैं। अतएव इनको स्पष्ट करना आवश्यक है। लिङ्ग या सूक्ष्म शरीर अनादिकालसे पुरुषके साथ लगा रहता है। सृष्टिके आदिमें पुरुष लिङ्गशरीरके साथ ही संसारमें आता है और जन्म-जन्मान्तर इसके साथ ही भोगोंमें लिप्त रहता है या कर्म करता है। जब 'कैवल्य'की प्राप्ति होती है, तब पुरुषको इस शरीरसे छुटकारा मिलता है। सांख्यशास्त्रके अनुसार बुद्धि, (महत्) अहंकार, मन, दस इन्द्रियाँ और पञ्च तन्मात्राएँ (सूक्ष्मभूत) कुल अठारह तत्त्वोंका लिङ्ग अर्थात् सूक्ष्म शरीर होता है। इस सूक्ष्मशरीरकी अप्रतिहत गति होती है। यह पत्थरके भीतरसे भी घुसकर निकल सकता है। प्रलयकालतक नियतरूपसे पुरुषके साथ रहता है। ज्ञान-अज्ञान, वैराग्य-अवैराग्य, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य सम्बन्धी कर्म-वासनाओंसे अधिवासित होता है।*

कर्मोंके सूक्ष्म संस्कारको 'भाव' या 'अदृष्ट' कहते हैं। 'भवतीति भावः'—कर्मोंके होनेसे उनका संस्कार बुद्धि और मनको संस्कृत करता है और 'अहं करोमि'के द्वारा अहंकार भी उससे लिप्त रहता है। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा कर्म होते हैं, अतएव वे भी उन कर्मोंके संस्कारसे युक्त होती हैं। पञ्चतन्मात्राएँ उनका आधार बनती हैं। इस प्रकार लिङ्गशरीरके अष्टादश तत्त्व† कर्मोंके संस्कारोंसे अनुलिप्त होते हैं। लिङ्गशरीर भावोंके बिना संसरण नहीं कर सकता; क्योंकि भाव कर्मोंके संस्कार होते हैं और कर्ममें चलनात्मक गुण होता है। यह कर्म पाँच प्रकारका होता है—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन। उत्क्षेपणका अर्थ है—ऊर्ध्वगति, अवक्षेपण है—अधोगति, आकुञ्चन है—सिकुड़ना—अल्पदेशमें व्याप्त होना, प्रसारण है—फैलना—अधिक देशमें व्याप्त होना और गमन है—एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना। कर्मके संस्कार भी लिङ्गशरीरके साथ रहकर इन पाँच प्रकारोंसे उसे प्रेरित कर सकते हैं और यह कर्मवासनाकी प्रेरणा ही जीवके एक योनिसे दूसरी योनिमें संसरणमें हेतु बनती है‡। कर्मके सूक्ष्म संस्कारों अर्थात् भावोंके बिना लिङ्गशरीर नहीं रह सकता और न लिङ्गशरीरके बिना कहीं ये कर्मके संस्कार रह सकते हैं। इसी कारण ईश्वरकृष्णने सांख्यकारिकामें कहा है—

> न विना भावैर्लिङ्गं न विना लिङ्गेन भावनिर्वृत्तिः।
> लिङ्गाख्यो भावाख्यस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः॥
> (सांख्यकारिका ५२)

सूक्ष्मशरीरमें तन्मात्राएँ अविशेष होती हैं, परंतु जिन वासनाओंसे अधिवासित होती हैं, तदनुकूल ही विशेष अर्थात् शान्त, घोर और मूढ़ पञ्चभूतात्मक शरीरका संयोग होता है। जिस प्रकार बिना आश्रयके चित्र नहीं बन सकता, उसी प्रकार स्थूलशरीरके बिना सूक्ष्मशरीर निष्क्रिय रहता है। केवल भोगायतन होता है।

अतएव परलोक-प्रदान करनेमें अर्थात् स्वर्ग-नरकादिका योग प्रदान करनेमें, अथवा बारंबार पुनर्जन्म कराकर भवसागरमें निमज्जित करनेमें अपने किये शुभाशुभ कर्म ही निमित्त बनते हैं। इन्हींके ऊपर मरणोपरान्त जीवकी गति निर्भर करती है। संक्षेपमें यह गति तीन प्रकारकी होती है—देवलोक, तिर्यक्-योनि और मनुष्य-योनि।

> अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति।
> मानुषश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः॥
> (सांख्यकारिका ५३)

* पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम्।
संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम्॥
(सांख्यकारिका ४०)

† अष्टादशकं लिङ्गम्—(सांख्यदर्शनम् ३।९)

‡ वेदान्तके मतसे मन-बुद्धि, ज्ञानेन्द्रिय और पञ्चप्राण—इन सत्रह तत्त्वोंका लिङ्गशरीर होता है। उपनिषदोंके अनुसार वेदान्त मतमें भी इसको ही संसरणमें हेतु माना है। यथा—

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्॥
[illegible]
[illegible]
([illegible])

जीवनकी साधनामें भी तारतम्य आता है। इसी कारण आचार्य लोग तत्तद् दर्शनमें तत्तत् अधिकारी साधकको महत्त्व देते हैं तथा दर्शनके अध्ययनमें अभिधेय, अधिकारी, लक्ष्य और सम्बन्धकी परीक्षाको प्राथमिकता प्रदान करते हैं। इस अधिकारीभेदके कारण एक ही वेदान्तके अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, अचिन्त्यभेदाभेदवाद आदि अनेक प्रस्थान हो गये हैं। इन विषयोंकी आलोचनाके लिये यहाँ अवसर नहीं है। अतएव परलोकवादसम्बन्धी इस अधूरी दार्शनिक आलोचनाको प्रस्तुतकर विज्ञ पाठकवृन्दसे क्षमायाचना करता हूँ।

पुनर्जन्म-निवारणका सुलभ उपाय, अर्चावतारके आलम्बनसे भगवदर्चा

(लेखक—श्री प. भास्कर रामकृष्णमाचार्युलु)

ज्ञानानन्दमयं देवं निर्मलस्फटिकाकृतिम्।
आधारं सर्वविद्यानां हयग्रीवमुपास्महे॥
नारायणः पिता यस्य माता चापि हरिप्रिया।
भृग्वादिमुनयः शिष्यास्तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

'जो ज्ञान और आनन्दमय हैं, जिनकी आकृति स्वच्छ स्फटिकके समान है, जो समस्त विद्याओंके आधारभूत हैं, उन श्रीहयग्रीवदेवकी हम उपासना करते हैं। जिनकी माता श्रीलक्ष्मीजी तथा पिता श्रीनारायण हैं, जिनके भृगु आदि मुनि शिष्य हैं, उन श्रीविष्वक्सेन गुरुजीको नमस्कार।'

पुनर्जन्मका सिद्धान्त भारतीय सनातनधर्मका परम प्रमुख सिद्धान्त है। वेद, शास्त्र, उपनिषद्, स्मृति, पुराण आदि ग्रन्थोंमें इसका विशद वर्णन मिलता है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि—

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।' (२।२७)

अर्थात् 'जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु ध्रुव है तथा मृतका जन्म भी ध्रुव है।' यहाँ पुनर्जन्मको अपरिहार्य बतलाया है। तथापि अनन्य भक्तिसे नित्ययुक्त होकर उपासना करनेसे पुनर्जन्म छूट जा सकता है। जैसे—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥
(गीता ९।१४)

इस प्रकारसे उपासना करनेवालोंके लिये कहते हैं—

—'यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।' (गीता ९।२५)

अर्थात् 'मेरी उपासना करनेवाले मुझको प्राप्त होते हैं।'

यह भगवत्-उपासना ज्ञान, योग और कर्म आदि भेदसे अनेक प्रकारकी है। उनमें मधुर मूर्ति-अर्चना अत्यन्त सुलभ है। इनमें भी श्रीविष्णुभगवान्‌की आराधना और सुलभ है। भगवान् विष्णुकी आराधनाके बिना परम पदकी प्राप्ति दुर्लभ है। कहा भी है—

'वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं समवाप्स्यति।'
(विष्णुपुराण १।४।१८)

मानव-शरीर अत्यन्त दुर्लभ है; क्योंकि इसीसे श्रीभगवान्‌की आराधना होती है—'जन्तूनां नरजन्म सुदुर्लभम्'। *मानव-जन्म प्राप्त करके यदि हमने निष्काम भावसे केवल* परम पदकी प्राप्तिके लिये आराधना की, तब तो ठीक है। नहीं तो, यदि दुष्कर्मोंमें पड़े तो अधम गति प्राप्त होगी। भगवान्‌ने बारंबार गीतामें कहा है कि 'यदि मनुष्य-शरीरसे भगवदाराधना नहीं हुई तो अधोगतिको प्राप्त होना अनिवार्य है।' यथा—

'मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥'
तथा— (गीता १६।२०)

'अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥'
(गीता ९।३)

इससे सिद्ध होता है कि जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति देनेमें आराधनाका बड़ा महत्त्व है। उस आराधनाके परम आलम्बन शरीर या अर्चामूर्तिके रूपमें अवतार ग्रहण करके भगवान्‌ने अपनी सहज करुणाका परिचय दिया है। भगवान्‌के स्वरूपके विषयमें श्रुति कहती है—

'पुरुष एवेदं सर्वम्।' 'विष्णुर्वै सर्वा देवताः।' 'अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः।'

—इन वाक्योंसे श्रीविष्णुभगवान्‌की महिमाका पता ही चल सकता है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि 'भगवत्‌ गति [illegible]'। सारांश यह है कि जन्म-मरणसे छूटकर मुक्ति पाने [illegible]—[illegible]

व्यापक 'अन्तर्यामी' रूप तथा सब जीवोंके क्लेशोंका नाश करनेवाला तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला 'अर्चा' रूप है। यथा—

> सुलभं मोक्षसिद्ध्यर्थं भवाम्यर्चास्वरूपवान्।
> निवसिष्यामि सर्वत्र जनानां मुक्तिहेतवे॥
> (ब्रह्माण्डपुराण)

श्रीविष्णुभगवान्‌की प्रेरणासे ब्रह्माजीने अर्चावतारकी अर्चा करनेकी प्रथाके प्रवर्तकके रूपमें ध्यानसे विखनस मुनिको प्रकट किया। विखनस मुनिने डेढ़ करोड़ श्लोकोंके तन्त्र-ग्रन्थको संक्षिप्त करके चार लाख श्लोकोंका बनाया और उसका भृगु, अत्रि, कश्यप, मरीचि, नीललोहित और दक्ष आदिको उपदेश किया। उसीके आधारपर भृगु आदि महर्षियोंने वैदिक ग्रन्थ भागकी रचना की। उसके आधारपर श्रीविष्णुभगवान्‌की प्रतिष्ठा करके अर्चा करनेसे ग्राम-निवासियोंके सारे श्रौत-स्मार्त कर्म सफल होते हैं।

यह अर्चावतार विष्णु, पुरुष, सत्य, अच्युत और अनिरुद्ध नामसे अवतरित हुआ है। देवालयमें अर्चामूर्ति ध्रुव, कौतुक, स्नपन, उत्सव और बलि नामसे पाँच विग्रह (बेर) में विभक्त है। ग्राम-रक्षार्थ 'ध्रुव' विग्रह है, अर्चाके लिये 'कौतुक' विग्रह है, उत्सवके लिये 'उत्सव' विग्रह है और स्नानके लिये 'स्नपन' विग्रह तथा बलिके लिये 'बलि' विग्रह है—

> ध्रुवस्य ग्रामरक्षार्थमर्चनार्थं तु कौतुकम्।
> उत्सवं घोषणार्थं च स्नपनं स्नपनार्थकम्॥
> बल्यर्थं बलिबेरं च पञ्च बेरान् प्रकल्पयेत्॥

यदि देवालयमें पृथक्-पृथक् पञ्च विग्रह (बेर) की प्रतिष्ठा न हो सके, तो केवल 'ध्रुव विग्रह'की प्रतिष्ठा करके वहाँ सुवर्ण या कूर्च रखकर अर्चा करनी चाहिये। ('अलाभे सुवर्णं कूर्चं वा निक्षिप्य यथालाभमर्चयेत्।') इस प्रकार निष्कामभावसे या सकामभावसे, किसी भी कारणसे अर्चा करनेसे विष्णुपदकी प्राप्ति होती है। ब्रह्माण्ड-पुराणमें लिखा है—

> निष्कामो वार्थकामो वा पूजयेन्मां भक्तवत्सलम्।
> यो मां पूजयते नित्यं मत्परं स्थानमुत्तमम्॥

भगवान्‌की अर्चा भक्तिसे, भयसे, कामनासे या धन लेकर, किसी भी प्रकारसे करनेपर परमपदकी प्राप्ति होती है। देवालयमें जाकर नित्य अर्चा न कर सके तो घरपर भी नित्य भगवान्‌की अर्चा करनेसे परम पद प्राप्त हो सकता है। यही सुलभतम साधन है।

श्रीविष्णुभगवान्‌के अर्चावतार चार प्रकारके होते हैं—(१) स्वयं व्यक्त, (२) दिव्य, (३) सैद्ध (सिद्धपुरुषद्वारा स्थापित) और (४) मानुष। यथा—

> अर्चावताराः श्रीविष्णोः कृतास्त्वेवं चतुर्विधाः।
> स्वयं व्यक्ताश्च दिव्याश्च सिद्धा वै मानुषा इति॥
> (ब्रह्माण्डपुराण)

भक्तकी रक्षा या वरदानके लिये स्वयमेव प्रकटित क्षेत्र 'स्वयं व्यक्त' कहलाते हैं। जैसे—श्रीरङ्ग, वेङ्कटादि, सिंहाचल, प्रयाग, काशी आदि क्षेत्र। ब्रह्मा आदि देवताओंके द्वारा प्रतिष्ठित क्षेत्र तथा तपोभूमि 'दिव्य' क्षेत्र हैं। जैसे—काशीमें माधव, हस्तिशैलमें रमाधव आदि। सिद्धपुरुषोंद्वारा स्थापित अर्चामूर्ति 'सैद्ध' कहलाते हैं। जैसे—घटिकाद्रिमें, सप्तर्षियोंद्वारा स्थापित, चित्रकूटमें पतञ्जलि, ताम्रपर्णीमें कुम्भसम्भव तथा नन्दिपुरीमें महाराजा शिविके द्वारा स्थापित अर्चामूर्तिमें श्रीविष्णुभगवान्‌की आराधना हुई है। भावुक भगवद्भक्तोंके द्वारा स्थापित अर्चामूर्ति अनन्त हैं। वे 'मानुष' कहलाते हैं। इन चारों प्रकारके अर्चावतारोंका प्रभाव या तेजःप्रसार क्षेत्र क्रमशः तीन योजन, एक योजन, दो कोस तथा एक कोसतक होता है। इस सीमाके भीतर ये अर्चावतार सेवा करनेवाले अपने भक्तजनका उद्धार करते हैं।

श्रीविष्णुभगवान्‌के अर्चारूप धारण करनेके विषयमें ब्रह्माण्डपुराणमें एक आख्यान है। कल्पान्तरमें नास्तिक मतोंके प्रचारसे पृथ्वीपर उपासना लुप्त हो गयी। भगवदुपासनाके लुप्त होनेसे अवर्षण तथा दुर्भिक्षका प्रकोप हुआ और प्रजा अपमृत्युसे व्याकुल होकर त्राहि त्राहि पुकार उठी। तब मुनियोंकी स्तुतिसे ब्रह्माजीने श्रीविष्णुभगवान्‌के पास जाकर जगत्‌के क्लेश निवारणके लिये प्रार्थना की। इसपर श्रीविष्णुभगवान्‌ने बतलाया कि 'अर्चासे जगत्‌का कल्याण होगा—

'[illegible]।'—(ब्रह्माण्डपुराण)

अनन्तर श्रीविष्णुभगवान् अर्चामूर्तिके रूपमें [illegible] आदि देवियोंके साथ [illegible], नदीतीर, पुण्यक्षेत्र, [illegible], पर्वत, वन आदि क्षेत्रोंमें अवतीर्ण हुए।

> भूलोके भजते यो मां [illegible] × × ×।
> [illegible]

होकर बुद्धि निश्चयात्मिका, एक, सूक्ष्म एवं प्रकाशरूप (चैतन्य) होती है। वेदान्तशास्त्रके श्रवण एवं मननसे तथा सद्गुरुके अनुग्रहसे जब सत्, असत् वस्तुका परोक्ष-ज्ञान दृढ़ हो जाता है, तब साधक पुरुष एकान्त स्थानमें ध्यानावस्थित होकर महावाक्योंके लक्ष्य—'अहं ब्रह्मास्मि'के परम तत्त्व (सत्य) का अपने ही अंदर अन्वेषण करता है और अनेक सत्कर्मोंकी संसिद्धिके रूपमें अपने आत्मस्वरूपकी अपरोक्ष रूपसे अनुभूति करता है। यह अपरोक्ष अनुभूति जीवके परिच्छिन्न अहंकार (जीवभाव) को इस प्रकार नष्ट कर देती है, जिस प्रकार सूर्यके प्रचण्ड तेजसे बरफ शीघ्र ही गल जाता है और अपने परिच्छिन्न नाम-रूपका त्याग करके अपने अधिष्ठान (जलरूप) को प्राप्त हो जाता है।

अपने ही अंदर छिपी हुई आत्मज्योतिके अज्ञानसे जीव-भावका पृथक् अस्तित्व जान पड़ता है। जिस प्रकार काठके भीतर व्याप्त सामान्य अग्नि बाहर दिखायी नहीं देती और उसी सूक्ष्म अग्निकी सत्तासे ही काठका पृथक् अस्तित्व दिखायी पड़ता है; किंतु जब उसी काठकी दो लकड़ियोंके परस्पर संघर्षणसे जो विशेष अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, वह आसपासके अन्धकार एवं शीतादिको मिटाते हुए उसी काठको सर्वथा भस्म करके, उसके परिच्छिन्न अस्तित्वको समाप्त कर देती है। इसी प्रकार जब सत् वस्तु (आत्मा) के दर्शनकी तीव्रतम जिज्ञासामें सद्गुरु-कृपाका योग हो जाता है, तब हमें अपने ही अंदर विराजमान उस शाश्वत ज्योतिका दर्शन (साक्षात्कार) हो जाता है, जिसकी अनुभूति मात्रसे परिच्छिन्न मानवी-अहंकार (द्वैतभाव) का सर्वथा नाश हो जाता है। विचार करनेपर पता चलता है कि वस्तुतः मानवी अहंकार अपने आत्मीय स्वरूप (अधिष्ठान) के अज्ञानसे आवृत था, तथापि उसमें देहात्मबुद्धिके कारण वर्धन एवं पोषण होनेसे जन्म-मरणके चक्रमें पुनरावर्तन हो रहा था, किंतु जब वही अहंकार सद्गुरुके विवेकसे ज्ञानवान् होकर दृढ़ तथा आत्माभिमुख हुआ, तब वही अहंकार बाधक होकर जीवात्माको शिवस्वरूपमें पहुँचाकर प्रतिष्ठित करा देनेमें भी समर्थ हो गया। अस्तु, अब तत्त्वज्ञान अथवा आत्मसाक्षात्कार हो जानेपर आत्मज्ञानी पुरुषकी कर्म करनेकी प्रवृत्ति किस प्रकारसे रहती है, थोड़ा इसपर भी विचार कर लिया जाय। आत्मज्ञानीका देहाभिमान दूर होनेके कारण उनके समस्त कर्म एवं क्रियाएँ बिना उनके संकल्पके समष्टि (ईश्वरीय) संकल्पद्वारा संचालित होती हैं और वे अहंकाररहित होकर ही, संसारके व्यवहारोंमें प्रवृत्त होते हैं। वे अपने आत्माको न किसी कर्मका कर्ता मानते हैं और न भोक्ता। वे कर्मके फल एवं परिणामसे रागद्वेष-रहित होकर, जलमें पद्मपत्रवत् निर्लेप रहते हैं। दूसरे शब्दोंमें व्यावहारिक रूपमें दिखायी देनेवाले उनके समस्त कर्म वास्तवमें अकर्म ही हो जाते हैं, जो उनके लिये बन्धन-का कारण नहीं हो सकते हैं; क्योंकि बन्धनके कारण तो अज्ञान एवं अहंकारसंयुक्त कर्म ही थे। भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा प्रतिपादित उपदेशके अनुसार आत्मज्ञानी पुरुषका यही 'योगः कर्मसु कौशलम्' ही उनके लिये 'कर्मभिर्न स बध्यते' की गारंटी है।

देहमें आत्मभाव होनेसे उससे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थोंमें राग, द्वेष एवं इष्ट-अनिष्टकी भावना रहती है, जो बार-बार जन्म-मरणका कारण होती है। जब आत्मज्ञान-का उदय होता है और अपने सत्स्वरूपकी अपरोक्ष अनुभूतिमें एकाकार हो जाता है, तब अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेशादि पञ्चक्लेशोंके बन्धनसे मुक्त होकर आत्मज्ञानी परमानन्दस्वरूप होकर जीवन्मुक्त अवस्थामें विचरने लगता है। ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुषोंके इस जन्म तथा पूर्वजन्मोंके संचित कर्मसमूह ज्ञानाग्निसे इसी प्रकार भस्म हो जाते हैं, जैसे रूईके गोदाममें अग्निकी चिनगारीके गिरते ही रूईका ढेर राख हो जाता है। आत्मज्ञानकी अपरोक्ष अनुभूतिसे, फलित जीवात्मा इस प्रकार शिवभावको प्राप्त हो जाता है, जैसे पानीकी बूँद महासागरमें गिरकर उस अनन्त जल-राशिमें इस प्रकार लीन हो जाती है कि फिर उस बूँदके अस्तित्वका कहीं पतातक नहीं चलता है। आत्मज्ञानी अपने शाश्वत सच्चिदानन्दस्वरूपमें महानन्दमें स्थित होकर जन्म-मृत्युके बन्धनसे रहित हो जाता है। गीता (१५।६) में निर्दिष्ट तत्त्वके अनुसार आत्मज्ञानी—

'न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥'

—परमधाममें प्रतिष्ठित हो जाता है।

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अर्चनार्थं स्थापयिष्यामि ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे।
निर्मिष्यामि सर्वत्र जनानां वै मुक्तिहेतवे ॥
(ब्रह्माण्डपुराण)

अतएव जहाँ कहीं भगवान्‌की मूर्ति प्रतिमा ही स्थापित है, वहाँ-वहाँ भक्तिभावसे अर्चा करके मानवको आत्म कल्याणके मार्गपर अग्रसर होना चाहिये।

आत्मज्ञानसे मुक्ति

(लेखक—पं० श्रीभृगुनन्दनजी मिश्र)

हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें कर्मवादके सिद्धान्तके आधारपर पुनर्जन्मकी मान्यता स्वीकार की गयी है और प्रत्येक आस्तिक पुरुष संसृतिके आवागमनका चक्र अनादिकालसे प्रवर्तमान होना मानता है; किंतु कुछ स्थानोंपर उपनिषदों एवं श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार इस आवागमनके चक्रका रुक जाना तथा स्व-स्वरूप-स्थिति—मोक्षका प्राप्त होना भी स्पष्टतः सिद्ध है—

संसारमें रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति शुभ अथवा अशुभ कर्मोंके करनेमें प्रवृत्त रहता ही है, और जबतक कर्म करनेमें लगा हुआ है, तबतक कर्मफल अवश्य ही बन्धनकारक होकर पुनर्जन्मके हेतु होंगे। फिर ऐसी कौन-सी स्थिति है, जिसमें कर्मफलके बन्धन अथवा आवागमनके चक्रसे छुट्टी मिल सकती है। मनुष्यमें प्रत्येक कर्ममें प्रवृत्त होनेसे पूर्व कर्म करनेकी स्फुरणा अथवा इच्छा उठती है। उसकी पूर्ति करनेके लिये मनमें संकल्प खड़ा होता है, जो मनुष्यको कर्म करनेमें प्रवृत्त कराता है। यह बात स्पष्टतया सिद्ध है कि व्यक्तिके अहंकारसे संयुक्त हुए बिना कर्म करनेमें समर्थ होना असम्भव है। अतः हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि कर्मके करने तथा उसके फलकी प्राप्तिमें अहंकार ही मूल कारण है।

जबतक किसी वृक्षको जड़से न उखाड़ते हुए, उसकी टहनियों, पत्ते, तना आदि काटते रहेंगे, तबतक उसका नष्ट होना सम्भव नहीं है। पूर्णतः नष्ट करनेके लिये उसका समूल उच्छेदन करना ही होगा। यही बात कर्मवाद तथा उसके परिणाम जन्म, मरण एवं पुनर्जन्म आदिके सम्बन्धमें लागू होती है। हमें देखना यह है कि क्या हम बिना संकल्प एवं अहंकारके कभी कर्म करनेमें प्रवृत्त हो सकते हैं? व्यावहारिक जगत्‌में इसका उत्तर प्रायः नकारात्मक ही मिलेगा।

यद्यपि व्यवहारमें स्थूलशरीर कर्म करता हुआ दिखायी देता है। किंतु उसकी समस्त क्रियाएँ सूक्ष्मशरीरद्वारा संचालित होती हैं, जो सत्रह तत्त्वोंका बना है। उसमें संकल्प-विकल्परूप मन तथा उसकी अनिश्चयात्मिका बुद्धि ही कर्म करनेवाली शक्तिका केन्द्रबिन्दु बनकर कर्म संस्कारोंको गहरा करने (उन्हें मूर्तरूप देने) में प्रवृत्त होती है। जिसमें कर्मके कर्तापनका अहंकाररूपी बीज छिपा रहता है और यह अहंकार अज्ञानावृत होनेसे देहात्मभूत ही होता है, इससे सिद्ध होता है कि कर्मका कर्ता वास्तवमें देह-इन्द्रियादि न होकर मनुष्यका संकल्पयुक्त अहंकार ही होता है, जो देहके साथ अभिन्न हो गया है। इस अहंकारका अस्तित्व जाग्रत् अवस्थामें अधिक स्पष्ट न होकर, स्वप्नावस्थापर सूक्ष्म विचार करनेसे आपको प्रतीत होगा कि वहाँ पूरा शरीर एवं इन्द्रियाँ निश्चेष्ट पड़े होते हैं; वे स्वप्नके व्यापारोंके कर्ता नहीं होते हैं। स्वप्नावस्थामें अपना स्वरूप ही अहंकारयुक्त संकल्प समस्त क्रियाओंका कर्ता-धर्ता एवं भोक्ता भी बनता है और सुषुप्ति (गहरी निद्राकी) अवस्थामें वही अहंकार जड एवं चेतनाशून्य होकर अपने असली कारणरूप (अज्ञान) में लय हो जाता है।

अब देखिये कि मानवी संकल्प सुषुप्ति अवस्थासे पुनः जाग्रत् अवस्थामें बाहर आकर देहाभिमानी हो फिर कर्म करनेमें प्रवृत्त हो जाता है और इन दोनों अवस्थाओंकी सीमामें आबद्ध रहनेके कारण अज्ञानजन्य दोषोंसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। आगे अब हम इसको तीनों अवस्थाओंकी सीमाओंसे बाहर निकालकर इनसे ऊपरकी चौथी स्थितिमें यानी (तुरीयावस्थामें) ले चलते हैं।

जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्थाएँ रजोगुण एवं तमोगुणप्रधान होकर, क्रिया एवं आलस्यकी अनुभूतियाँ स्वाभाविक ही प्रतिदिन प्राप्त होती रहती हैं; किंतु तुरीयावस्था संस्कारोंको निरोध करनेवाले केवल अभ्याससे ज्ञानियोंको ही प्राप्त होती है और उस अवस्थामें पहुँचकर मन ...

होकर बुद्धि निश्चयात्मिका, एक, सूक्ष्म एवं प्रकाशरूप (चैतन्य) होती है। वेदान्तशास्त्रके श्रवण एवं मननसे तथा सद्गुरुके अनुग्रहसे जब सत्, असत् वस्तुका परोक्ष-ज्ञान दृढ़ हो जाता है, तब साधक पुरुष एकान्त स्थानमें ध्यानावस्थित होकर महावाक्योंके लक्ष्य—'अहं ब्रह्मास्मि'के परम तत्त्व (सत्य) का अपने ही अंदर अन्वेषण करता है और अनेक जन्मोंकी संसिद्धिके रूपमें अपने आत्मस्वरूपकी अपरोक्ष रूपसे अनुभूति करता है। यह अपरोक्ष अनुभूति जीवके परिच्छिन्न अहंकार (जीवभाव) को इस प्रकार नष्ट कर देती है, जिस प्रकार सूर्यके प्रचण्ड तेजसे बरफ शीघ्र ही गल जाता है और अपने परिच्छिन्न नाम-रूपका त्याग करके अपने अधिष्ठान (जलरूप) को प्राप्त हो जाता है।

अपने ही अंदर छिपी हुई आत्मज्योतिके अज्ञानसे जीव-भावका पृथक् अस्तित्व जान पड़ता है। जिस प्रकार काष्ठके भीतर व्याप्त सामान्य अग्नि बाहर दिखायी नहीं देती और उसी सूक्ष्म अग्निकी सत्तासे ही काष्ठका पृथक् अस्तित्व दिखायी पड़ता है; किंतु जब उसी काष्ठकी दो लकड़ियोंके परस्पर संघर्षणसे जो विशेष अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, वह आसपासके अन्धकार एवं शीतादिको मिटाते हुए उसी काष्ठको सर्वथा भस्म करके, उसके परिच्छिन्न अस्तित्वको समाप्त कर देती है। इसी प्रकार जब सत् वस्तु (आत्मा) के दर्शनकी तीव्रतम जिज्ञासामें सद्गुरु-कृपाका योग हो जाता है, तब हमें अपने ही अंदर विराजमान उस शाश्वत ज्योतिका दर्शन (साक्षात्कार) हो जाता है, जिसकी अनुभूति मात्रसे परिच्छिन्न मानसी-अहंकार (द्वैतभाव) का सर्वथा नाश हो जाता है। विचार करनेपर पता चलता है कि जबतक मानसी अहंकार अपने असली स्वरूप (अधिष्ठान) के अज्ञानसे आवृत था, तबतक उसमें देहात्मबुद्धिके कारण कर्तापन एवं भोक्तापन होनेसे जन्म-मरणके चक्रमें पुनरावर्तन हो रहा था, किंतु जब वही अहंकार सत् वस्तुके विवेकसे जाग्रत् होकर शुद्ध तथा आत्माभिमुख हुआ, तब वही अज्ञानका नाशक होकर जीवात्माको शिवात्माके पदपर प्रतिष्ठित करा देनेमें भी समर्थ हो गया। अस्तु, अब तात्त्विक अपरोक्ष आत्मसाक्षात्कार हो जानेपर आत्मज्ञानी पुरुषको कैसे कर्मोंमें प्रवृत्ति बनी रहती है, थोड़ा इसपर भी विचार कर लिया जाय। आत्मज्ञानीका देहाभिमान छूट जानेके कारण

उनके समस्त कर्म एवं क्रियाएँ बिना उनके संकल्पके समष्टि (ईश्वरीय) संकल्पद्वारा संचालित होती हैं और वे अहंकाररहित होकर ही, संसारके व्यवहारोंमें प्रवृत्त होते हैं। वे अपने आत्माको न किसी कर्मका कर्ता मानते हैं और न भोक्ता। वे कर्मके फल एवं परिणामसे रागद्वेष-रहित होकर, जलमें पद्मपत्रवत् निर्लेप रहते हैं। दूसरे शब्दोंमें व्यावहारिक रूपमें दिखायी देनेवाले उनके समस्त कर्म वास्तवमें अकर्म ही हो जाते हैं, जो उनके लिये बन्धन-का कारण नहीं हो सकते हैं; क्योंकि बन्धनके कारण तो अज्ञान एवं अहंकारयुक्त कर्म ही थे। भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा प्रतिपादित उपदेशके अनुसार आत्मज्ञानी पुरुषका यही 'योगः कर्मसु कौशलम्' ही उनके लिये 'कर्मभिर्न स बध्यते' की गारंटी है।

देहमें आत्मभाव होनेसे उससे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थोंमें राग, द्वेष एवं इष्ट-अनिष्टकी भावना रहती है, जो बार-बार जन्म-मरणका कारण होती है। जब आत्मज्ञान-का उदय होता है और अपने सत्स्वरूपकी अपरोक्ष अनुभूतिमें एकाकार हो जाता है, तब अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेशादि पञ्चक्लेशोंके बन्धनसे मुक्त होकर आत्मज्ञानी परमानन्दस्वरूप होकर जीवन्मुक्त अवस्थामें विचरने लगता है। ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुषोंके इस जन्म तथा पूर्वजन्मोंकी संचित कर्मराशि ज्ञानाग्निसे इसी प्रकार भस्म हो जाती है, जैसे रूईके गोदाममें अग्निकी चिनगारीके गिरते ही रूईका ढेर राख हो जाता है। आत्मज्ञानकी अपरोक्ष अनुभूतिसे, कल्पित जीवका इस प्रकार शिवभावको प्राप्त हो जाता है, जैसे पानीकी बूँद महासागरमें गिरते ही उस अनन्त जल-राशिमें इस प्रकार लीन हो जाती है कि फिर उस बूँदके अस्तित्वका पता लगाया नहीं जा सकता है। आत्मज्ञानी अपने शाश्वत सच्चिदानन्दस्वरूपमें एकाकार होनेके लिये स्थित होकर जन्म-मृत्युके बन्धनसे रहित हो जाता है। गीता (१५।६) में भगवान्‌की वाणीके अनुसार आत्मज्ञानी—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

—परमधाममें प्रतिष्ठित हो जाता है।

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ब्राह्मी स्थिति एवं उसकी प्राप्तिके साधन

(लेखक—श्रीशान्तिस्वरूपजी गुप्त)

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। नित्य परिवर्तनशील एवं इस नाशवान् अनित्य जगत्के पीछे जो एक अपरिवर्तनशील, अविनाशी, नित्य सत्य है, उसको अन्वेषण करनेका प्रयत्न सदा-सर्वदासे करता आया है। भगवान्‌के चार प्रकारके भक्तोंमें एक स्थान 'जिज्ञासु'का भी है। विश्वके सौन्दर्यके मूलमें जो तत्त्व निहित है, जिज्ञासु मनुष्य उसे जाननेकी जिज्ञासा करता है, चिन्तन करता है एवं उसके अन्तरालमें देश, काल, पात्रके अनुसार परिवर्तित न होनेवाले निहित सत्यको ढूँढ़ निकालनेकी चेष्टा करता है। यह सत्य द्वन्द्वातीत, कार्य-कारणसे परे, अखण्ड, अद्वय एवं स्वयम्भू है। चर्म-चक्षुओंसे अदर्शनीय एवं नित्य है। असम्प्रज्ञात या निर्विकल्प समाधिमें योगियोंने इसे 'प्रत्यक्ष' अनुभव किया है।

इस सच्चिदानन्द, नित्यपूर्ण, चिरन्तन, सुखदुःखातीत तत्त्वका साक्षात्कार करनेकी अभिलाषा मानवमात्रका जन्म-जात स्वभाव है। अतः प्रत्येक धर्म एवं प्रत्येक जातिमें इस सत्यको साक्षात्कार करनेका प्रयास अपने-अपने ढंगसे होता आया है। बृहदारण्यक उपनिषद्‌में इस नित्य तत्त्वका वर्णन इस प्रकार किया है—

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च'

इदमेव मूर्तं यदन्यत्प्राणात्…

'अथामूर्तं प्राणश्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतं…'

(२।३।१,४)

अर्थात् ब्रह्मके दो रूप हैं—एक मर्त्य और एक अमर। प्राणसे भिन्न इन्द्रियादि शरीर मर्त्य एवं प्राण, बुद्धि, आत्मा अमर हैं। अतः मनुष्यके दो भाग हुए। एक स्थूल साकार मरणधर्मा और दूसरा अमर निराकार एवं अपरिवर्तनशील आत्मा। आत्मा स्वभावसे नित्य होते हुए भी कर्मानुसार तनमें प्रविष्ट होकर बार-बार जन्म लेता है।

एषो ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः।

(अथर्व० १०।८।२८)

अतः शाश्वत और नित्यानन्द सुखकी प्राप्तिके लिये हमारे ऋषियोंने भौतिक सुखोंको हेय समझ उनका परित्याग किया। एवं हृदय-गह्वरमें प्रवेशकर जिसमें उन्होंने अनेक भूमिका निर्धारण एवं परीक्षण किया और जाना कि—

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत् सुखम्।

(गीता ५।२१)

इन्द्रियोंके बाह्य स्पर्शोंमें जो आसक्त नहीं होता, वही इस शाश्वत आत्मिक सुखको प्राप्त कर सकता है। इन्द्रियोंके बाह्यस्पर्श सुख-दुःखादि द्वन्द्व उत्पन्न करनेवाले हैं। अतः जो मनुष्य इन द्वन्द्वोंके आघातसे अपने मनको चञ्चल होनेसे बचा सकेगा, वही इस अमृतत्वका अधिकारी हो सकेगा। इस सत्यको साक्षात्कार करनेमें सफल हो सकेगा।

'समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।'

(गीता २।१५)

इसी तत्त्वका अर्जुनके पूछनेपर भगवान्‌ने गीताके दसवें अध्यायके ८–११ तक चार श्लोकोंमें बड़ी सुन्दरतासे वर्णन किया है—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

प्रथम श्लोकमें भगवान् कहते हैं कि अर्जुन! मनुष्य स्वभावतया परमात्मतत्त्वसे अनभिज्ञ रहता है, किंतु जिस प्रकार घटको देखकर मनुष्य उसके निमित्त और उपादान कारण मिट्टी और कुम्हारका अनुमान कर लेता है, उसी प्रकार इस सृष्टिकी विविध विचित्रताओंको देखकर उसके उत्पत्तिकर्ता एवं उसके नियामकका भी अनुमान करता है। अतः प्रारम्भ करनेके लिये इतना मान ले कि ईश्वर इस सृष्टिका उत्पत्तिकर्ता है और उसीकी प्रेरणासे सब विविध पदार्थ अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है जो सर्वज्ञ सर्वशक्तिके बिना उसकी प्रेरणाके प्रवृत्त हुआ है। जिसकी प्रवृत्ति उसी एक अद्वितीय परमेश्वरसे हुई है। अतः सब प्रवृत्तिका आदिकारण परमेश्वर है। यह और

भक्तिसे ऐसा मान लेनेपर दूसरी अवस्था आती है—उसके साक्षात्कार करनेकी ।

किसी भी वस्तुका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भगवान्‌द्वारा प्रदत्त तीन साधन मनुष्यके पास हैं—चक्षु, श्रोत्र एवं स्पर्श । प्रकाशमें मनुष्य चक्षुओंद्वारा, अन्धकारमें श्रोत्रद्वारा अथवा स्पर्शके द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है । परमात्मतत्त्व इन किन्हीं साधनोंके द्वारा प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता । भगवान्‌ने भी लिखा है—'बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्'—वह तत्त्व बुद्धिद्वारा ग्राह्य है—इन्द्रियोंद्वारा नहीं । अतः यह निश्चय हो गया कि यह तत्त्व जाग्रत् अवस्थामें दर्शनीय नहीं ।

दूसरी अवस्था है—स्वप्नावस्था—इसमें इन्द्रियाँ ज्ञानशून्य होते हुए भी मनके द्वारा इन्द्रियोंके समस्त व्यापार सम्पादित होते रहते हैं । इसमें या तो प्राणोंका कार्य चलता रहता है या मनका । तो यह निश्चय हो गया कि इन प्राण और मनकी दो शक्तियोंके द्वारा साक्षात्कार सम्भव हो सकता है । लेकिन चित्तकी वृत्तियोंके निरोधद्वारा मनकी चञ्चलताको स्थिर किये बिना यह सम्भव नहीं । लिखा भी है—

> चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत् ।
> (हठयोगप्रदीपिका २ । २)
>
> मारुते मध्यसंचारे मनः स्थैर्यं प्रजायते ।
> (हठयोगप्र० २ । ४२)
>
> मारुतं धारयेद्यस्तु स मुक्तो नात्र संशयः ।
> (हठयोगप्र० १ । ५१)

अर्थात् प्राणोंके चञ्चल रहनेसे मन चञ्चल रहता है और प्राण मध्यसंचारी होनेसे चित्तको स्थिरता प्राप्त होती है और चित्तकी स्थिरतासे मुक्तिकी प्राप्ति होती है । अतः दूसरे श्लोकमें भगवान्‌ने बताया कि इन प्राणों और मनको स्थिर करनेके लिये इनको मेरेमें लीन कर दो—'मय्येव मन आधत्स्व'; क्योंकि बिना मनके लीन हुए स्थिरता नहीं आती; स्थिरता बिना मनपर अधिकार नहीं होता; मनपर अधिकार हुए बिना शक्तिकी प्राप्ति सम्भव नहीं; शक्ति बिना कल्पनाकी सिद्धि नहीं; सिद्धिके बिना मन अशुभसे शुभकी ओर अग्रसर नहीं होता । अतः प्रश्न उठता है कि इसको लीन कैसे किया जाय ? तो भगवान् कहते हैं कि—'मत्परायण मां विषयम्'—अर्थात् 'सदा-सर्वदा तुम मेरा ही ध्यान करो, मेरा ही चिन्तन हो, मेरी ही कथा हो, मेरी ही उपासना हो, मेरा ही कीर्तन हो, मेरे ही बारेमें पढ़ो, मेरे ही बारेमें बोलो ।' ऐसा करते-करते तुम्हारा जीवन ईश्वरके समर्पित हो जायगा और मैं-मेरेका भाव दूर होकर सब कुछ तेरा ही है 'इदं न मम'—यह भावना दृढ़से दृढ़तर होती चली जायगी ।

ऐसा ही भाव बृहदारण्यक उपनिषद्‌में महर्षि याज्ञवल्क्यने अपनी स्त्री मैत्रेयीको महाज्ञानकी शिक्षा देते हुए कहा था—

> 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः । आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ।' (बृ० उ० २ । ४ । ५)

अर्थात् प्रथम आत्माके बारेमें सुने, पश्चात् उसका मनन, ध्यान, चिन्तन अथवा स्मरण करे; तत्पश्चात् निदिध्यासनके द्वारा उसका ज्ञान प्राप्त करे । मुसलमान भक्तशिरोमणि 'रसखान' ने उसकी उपासनाका और ही सरल उपाय बताया है—

> 'रसखान गोविंदहिं यों भजिये, जिमि नागरिको चित गागरमें ।'

अर्थात् जिस प्रकार जलसे पूर्ण पात्रको सिरपर रखकर पनिहारी बिना हाथके आधारके हँसती-बोलती चलती रहती है—लेकिन सदा-सर्वदा उसका मन घड़ेमें ही लगा रहता है, विस्मरण होते ही घड़ा नीचे गिर जायगा । इसी प्रकार मनुष्यको भी चाहिये अपने चित्तको सदा उसके चिन्तनमें लगाकर मनुष्य-जीवनके चार पुरुषार्थ—धर्मार्थ-काम्य, अर्थप्राप्तिके उपाय, धर्मानुकूल एवं बन्धन-मुक्तिके लिये सतत प्रयत्नशील रहे । एवं जो सांसारिक सुख-भोग उसने हमें प्रदान किये हैं, उनको उसीकी वस्तु और उसीकी दी हुई समझकर, उसीके प्राणियोंके हितके लिये, उसके चरणोंमें अर्पित करता रहे । जो ऐसा नहीं करते, उसके दिये हुए भोग्य पदार्थोंको अपने निमित्त ही व्यय करते हैं, उनके लिये भगवान्‌ने कहा है—

> 'भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।'
> (गीता ३ । १३)

'जो केवल अपने लिये ही अन्न पकाते हैं—वे पापका भक्षण करते हैं ।' वेदने भी कहा है—

> 'केवलाघो भवति केवलादी ।'
> (ऋ० १० । ११७ । ६)

'अकेला खानेवाला अकेला पाप खानेवाला है ।' इस प्रकार 'सर्वभूतहिते रताः' बनकर मनुष्यका जीवन सुचारु

नहीं। भोजनका समय बीत जानेपर भी आपको स्मरण नहीं रहता। आपकी उपस्थितिसे ही काम चलता हो, ऐसा तो है नहीं।'

'तुम चिन्ता न करो'—भोजन करते-करते नागदत्तने उत्तर दिया। 'अब तो नाव किनारे लग चुकी है, सिर्फ रंग-रोगन और कुछ कलात्मक चित्रोंका काम ही बाकी है। तुम नहीं जानती कि आजके मजदूर लोग देख-रेखके बिना पूरा काम नहीं करते हैं।'

सुनकर पत्नी मौन रह गयी। थोड़ी देरके बाद नागदत्तने भोजन करते-करते कहा—'सातवीं मंजिलपर कलात्मक चन्दनका झूला बन चुका है। सोनेके कड़े भी तैयार हैं। उसी प्रकार हमारे प्यारे मुन्नेके लिये एक पलना बनानेका भी आर्डर दे दिया है। वह भी सोने-चाँदीका नक्काशीदार बनेगा।'

'मैं भी गृह-प्रवेशके मुहूर्तकी घड़ियाँ गिन रही हूँ।' सेठकी पत्नीने कहा। 'रसोई तो अच्छी बनी है न?'

'मैं तो दुविधामें पड़ गया हूँ'—भोजन करते-करते नागदत्त बोले। 'ये पूड़ियाँ, कचौरी, पकौड़ियाँ, यह स्वादिष्ट श्रीखण्ड—इनकी प्रशंसा प्रथम करूँ या गुलाबके फूल-जैसे अपने मुन्नेकी?'

'आप भोजन कर रहे हैं और यह तो देख रहा है' मुन्नेको सेठकी गोदमें देती हुई पत्नी बोली। 'इसे भी दो ग्रास खिला दीजिये न?'

सेठने दो वर्षके मुन्नेको अपनी गोदमें बैठाया और खीर-पूड़ीका एक छोटा-सा भाग उस नन्हें मुन्नेको खिलाना आरम्भ किया। संयोगवश उसी समय बच्चेने लघुशंका कर दी! थोड़े छींटे भोजनकी थालीमें भी पड़ गये।

'लो सँभालो अपने लालको।' पत्नीकी गोदमें बच्चेको रखते हुए सेठने कहा। 'इसने तो मेरी धोती और थालीको भी बिगाड़ दिया।'

—'तो इसमें क्या हुआ?' हँसते हुए पत्नीने उत्तर दिया। 'बच्चा ही तो है, उसमें समझ थोड़े ही है?'

—बात अधूरी-सी रह गयी, इतनेमें ही आँगनमेंसे सुनायी दिया—'धर्म लाभ [भिक्षां देहि]'

सेठने भोजन करते-करते मुनिराजको वन्दन किया, ठीक उसी समय मुनिराजने मन्द हास्य कर दिया। यह भी पूर्ववत् हास्य! पत्नीने उठकर मुनिराजको भिक्षा दी और मुनिराज लेकर चले गये।

भोजन कर लेनेके बाद सेठ पान-सुपारी खाते-खाते विचार करने लगे—'ऐसे ज्ञानयोगी मुनिराज बिना कारण हँसते रहें, यह तो सम्भव नहीं है। एकान्तमें जाकर उनसे इस हँसीका कारण पूछना चाहिये।' भोजनके बाद सेठ बिस्तर-पर लेटे; परंतु मन चिन्ताग्रस्त था, इस कारण आज नींद बिल्कुल नहीं आयी।

[२]

सायंकाल चार बजेका समय हुआ। दो-एक दिनसे सेठ दूकानपर नहीं आ सके थे। बँगलेका काम जो चल रहा था; किंतु आज थोड़ी देरके लिये उन्होंने दूकानपर जानेका निश्चय किया।

सेठ नागदत्तकी दूकान मध्य बाजारमें थी। मुनीम लोग अपने-अपने काममें लगे थे। गद्दीपर बैठकर सेठ हिसाब-किताब देख रहे थे। उसी समय एक हट्टा-कट्टा बकरा दूकानपर चढ़ आया। उसके पीछे दौड़ता हुआ एक कसाई भी वहाँ आ पहुँचा। कसाई और बकरा दोनोंपर एक ही साथ सेठकी दृष्टि पड़ी। बकरा सेठके सामने कुछ आशाभरी दृष्टिसे देख रहा था, मानो वह मूकभाषामें अपनेको छुड़ानेके लिये प्रार्थना कर रहा हो। अतः सेठने कसाईसे कहा—'इस बकरेको छोड़ दो; मैं तुम्हें एक मुहर दूँगा।'

'सेठ साहब!' कसाई बोला। 'जैसे आप व्यापारी हैं, वैसे ही मैं भी एक तरहका व्यापारी ही हूँ। मुझे इस बकरेकी कीमतमें पाँच मुहरें सहजमें ही प्राप्त हो सकती हैं, अतः मुझे तो मेरा बकरा ही दे दो।'

नागदत्तसेठ पाँच मुहर देना स्वीकार कर लें, तो बकरा अवश्य छूट सकता था। सेठने एक दृष्टि बकरेकी ओर देखा। बकरा याचना कर रहा था। उसका हृदय पुकार रहा था कि मुझे छुड़ा लो, मुझे छुड़ा लो।

परंतु दूसरी ओर सेठका लोभी मन पाँच मुहर देनेसे इनकार कर रहा था। उन्होंने यह भी सोचा कि पाँच मुहर देनेपर यह कसाई दिखावा करके छोड़ दे तो छोड़ देगा! अतः [illegible] देकर [illegible] ढूँढ़नी चाहिये।'

किसीके स्वागतकी शहनाई बज रही है, किसीकी विदाईका मर्सिया पढ़ा जा रहा है।

रोज आठ पहर, चौंसठ घड़ी यह तमाशा चल रहा है। हम सबका स्वागत करते हैं, सबको विदाई देते हैं, पर यह नहीं सोचते कि अपना नंबर भी आनेवाला है। हमें भी कोई पुकारकर कहता है—

कदम सूए मरकद, नजर सूए दुनिया,
किधर देखते हो, कहाँ जा रहे हो ?

पर हम हैं कि जान-बूझकर अपनी आँखें नहीं खोलते !

हमने जान-बूझकर अपनी आँखोंपर पर्दा डाल रक्खा है। ऐसा न होता तो क्या हमें इस क्षणिक, मिट्टीके खिलौनेपर इतना गर्व होता ! इस शरीरपर, इस पानीभरी खालपर इतना अहंकार होता ?

× × ×

रामकृष्ण परमहंस कहते थे—

'भगवान् दो मौकोंपर हँसते हैं। एक तो तब, जब दो भाई रस्सी लेकर जमीनको नापते हैं और कहते हैं—'इतनी जमीन 'मेरी' है, इतनी 'तेरी' और दूसरे तब, जब कालदेव सिरपर चढ़े हैं और डाक्टर कहता है—'मैं इस रोगीको बचा दूँगा !'

× × ×

स्त्रियों और पुरुषोंको, हर उम्रके लोगोंको, छोटेसे दुधमुँहे बच्चोंको, जवानों और बड़ों-बूढ़ोंको मैंने दम तोड़ते देखा है। उनकी शवयात्राके साथ श्मशान जानेके जीवनमें अनेक मौके आते हैं। कभी हित्-मित्रोंकी, सगे-सम्बन्धियोंकी, परिचितोंकी शवयात्राके साथ गया हूँ, तो कभी यों ही मणिकर्णिकाका दृश्य देखने चला गया हूँ। रास्तेमें पिण्डदान करते समय पुरोहित कहता है—'श्मशान-मार्गमें यह पिण्ड दिया जा रहा है।' सोचता हूँ सबकी यात्रा तो सभी रास्तोंमें होती है, तो फिर देखिये उधर श्मशान-मार्ग ही तो है !

और श्मशानमें देखिये—

यहाँ किसीको चिता जलायी जा रही है, यहीं किसीके शवको दफनाया किया जा रहा है। यहीं चिता बुझ रही है, यहीं चिता धधक रही है। कभी-कभी तो १०-१०, १५-१५ चितायें एक साथ धधकती हैं। यहीं हड्डियाँ पड़ी हैं, यहीं खोपड़ी। यहीं कफन है, यहीं [illegible] है, यहाँ कुत्ते हैं—लाशोंको नोच रहे हैं। सगे-सम्बन्धी बिलखते हैं, रोते हैं, चिल्लाते हैं।

जगत्की नश्वरता, क्षण-भङ्गुरताका यह सारा दृश्य देखकर जी भर आता है। आँखें भर आती हैं। कभी-कभी फूट-फूटकर रोनेको भी जी मचलने लगता है।

परंतु ?

कितनी देर टिकता है यह श्मशान-वैराग्य !

घाटपर ही मन तरह-तरहके सब्जबाग दिखाने लगता है—'अरे मूर्ख, जो गया सो गया। मौत आयेगी, तब देखा जायगा। अभीसे उसकी चिन्ता क्यों करता है ! जीवन तेरे सामने है। जीवनके नाना प्रकारके भोग तेरे सामने हैं। उनका मजा ले। दुनियाके बागकी बहार लूट। यह बहार चन्दरोजा है तो भी क्या ! सुख क्षणिक है तो भी क्या !'

मनकी ये लनतरानियाँ श्मशानघाटपर भी अपनी रौनक दिखाती हैं। जीवनके परम सत्यको देखकर भी हम उससे आँखें मूँद लेते हैं। प्रेयके चक्करमें पड़कर श्रेयको सर्वथा भुला बैठते हैं।

हमारी भोगासक्ति यहाँतक नहीं रुकती। हम 'मौत' का नामतक लेना नहीं पसंद करते। मौतके नामसे डरते हैं।

किसी शवको ढककर जाते देख माताएँ अपने बच्चोंको ढक लेती हैं—कहीं उनपर मृत्युकी छाया न पड़ जाय।

ऐसा प्रबल चक्र है मोह और ममताका !

× × ×

पर, चाहे कितनी पैतरेबाजी करिये, मौतके नामसे भी कानोंमें सन पड़ने दीजिये, पर अंत कभी पीछा छोड़नेवाली है नहीं।

कहते हैं कि लकड़ीका बोझा ढोनेवाला एक बूढ़ा एक दिन थककर बोल पड़ा—'हे मौत, [illegible] तू भी तो नहीं आती !' और सचमुच मौत सामने आ खड़ी हुई।

बोली—'बाबा, क्यों याद किया है मुझे ?'

'कौन है तू ?'—बूढ़ेने पूछा।

'मैं हूँ मौत।'

बूढ़ा बेचारा सहम गया।

पर [illegible]

६—'जन्म और मृत्यु—दोनों ही महान् रहस्य हैं। यदि मृत्यु दूसरे जीवनकी पूर्व-स्थिति नहीं है तो बीचका समय एक निर्दय उपहास है। हमें यह कला सीखनी चाहिये कि मृत्यु किसीकी और कभी भी हो, हम उसपर हर्गिज रंज न करें। मेरे खयालमें ऐसा तभी होगा जब हम सचमुच ही अपनी मृत्युके प्रति उदासीन होना सीखेंगे और यह उदासीनता तब आयेगी, जब हमें हर-क्षण यह भान होगा कि हमें जो काम सौंपा गया है, उसे हम कर रहे हैं। लेकिन यह कार्य हमें कैसे मालूम होगा ? यह ईश्वरकी इच्छाको जाननेसे मालूम होगा। ईश्वरकी इच्छाका पता चलेगा—प्रार्थना और सदाचरणसे।'

(बापूके पत्र मीराके नाम)

७—'यह बात गीतामें ही मिलती है कि मृत्युके लिये शोक नहीं करना चाहिये।'

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(२। १६)

इस श्लोकमें मृत्युका सारा रहस्य भरा हुआ है। अनेक श्लोकोंमें बार-बार कहा गया है कि शरीर 'असत्' है। 'असत्' का अर्थ 'माया' नहीं, ऐसी वस्तु नहीं जो कभी किसी रूपमें उत्पन्न न हुई हो; बल्कि उसका अर्थ है क्षणिक, नाशवान्, परिवर्तनशील। फिर भी हम अपने जीवन का सारा व्यवहार यह मानकर चलाते हैं, मानो हमारा शरीर शाश्वत है। हम शरीरको पूजते हैं, शरीरके पीछे पड़े रहते हैं। यह सब हिंदूधर्मके विरुद्ध है। हिंदूधर्ममें यदि कोई बात चाँदनीकी तरह स्पष्ट कही गयी है तो यह है—'शरीर और इतर पदार्थोंकी असत्ता।' फिर भी हम जितना मृत्युसे डरते हैं, रोते-पीटते हैं, उतना शायद ही कोई करते हों।

महाभारतमें तो यह कहा गया है कि मरनेसे मृत आत्माओंको संताप होता है और गीता इसीलिये लिखी गयी है कि लोग मृत्युसे कोई भी भीषण वस्तु न मानें। मनुष्य-का शरीर काम करते-करते थक जाता है। अनेक शरीर तो मृत्युके द्वारा दुःखसे मुक्त होते हैं। गीता हमें सिखाती है और मैं प्रतिदिन इस पाठको पढ़ाता जा रहा हूँ कि [illegible] बापूके लिये भी मरी गायें जितना स्वर्ग है, स्वर्ग [illegible] है।

'असत्‌का भाव'—इसका अर्थ है—अस्तित्व न होना। और जो सत् है, उसका नाश कभी नहीं हो सकता।

गीता इस श्लोकमें पुकार-पुकारकर कहती है कि हम अपने जीवनमें सत्यको धारण करके जियें और माया, असत्य, पाखण्डका त्याग करें। अनेक बार वाणी असत्य हो जाती है, पाखण्ड-रूप हो जाती है। क्रोध असत् है। काम, मोह, मद आदि असत् हैं। हमें इन तमाम सर्पोंका नाश करना है। स्थूल सर्प तो बेचारा केवल शरीरको कष्ट देता है, पर ये सर्प तो हमारी रग-रगमें पहुँच जाते हैं और हमारी आत्माको भी हानि पहुँचानेकी धमकी देते हैं। परंतु आत्माको हानि नहीं पहुँच सकती। वह अविनाशी है। यदि हम इस बातको समझ लें कि सत् क्या है तो जन्म-मृत्युका रहस्य भी समझ जायँगे।

जिस प्रकार रसायनशास्त्री कहते हैं कि जब मोमबत्ती जलती है, तब उसकी किसी वस्तुका नाश नहीं होता; उसी प्रकार जब शरीर मरता है और जलता है, तब कोई वस्तु नष्ट नहीं होती। जन्म और मृत्यु एक ही वस्तुकी दो स्थितियाँ हैं। किसी स्वजनके मरनेपर हम जो रोते-पीटते हैं, उसका कारण है—स्वार्थ।'

(हि० नवजीवन ३०—७—३५)

×   ×   ×

बापूके इन अनमोल उपदेशोंको हम हृदयमें धारण कर लें तो हमारा बेड़ा पार हो जायगा। सच बात तो यह है कि हमारी बुद्धि स्थिर हो; लोभ और ममता, राग और द्वेषके चक्करसे हम अपनेको मुक्त कर लें; फिर तो मौतका सारा डर ही दूर हो जायगा।

और यह दूर हुआ कि हमारा सारा जीवन ही पवित्र और आनन्दमय बन जायगा; साथ ही-साथ मृत्यु भी।

दूसरी दृष्टिसे सोचें तो मृत्युका भय यदि पर्याप्त हमें आक्रान्त कर ले, तब भी काम चल सकता है। फिर तो हमें अपने वैराग्यकी प्राप्ति हो जायगी। और निरन्तर स्मरण रही है—इतना विश्वास दृढ़ हो जाय तो फिर हमसे कोई गन्दा काम होगा ही कैसे ? कोई पाप हमसे होगा ही कैसे ? [illegible] हम [illegible] ही बैठे, जब कि हम जानते हैं कि पता नहीं कब [illegible] हम देख [illegible] सकें या नहीं।

पर इस [illegible] हम [illegible] देते हैं कि [illegible] हम [illegible] है नहीं। [illegible]

अन्तकालमें भगवान्‌के स्मरणसे भगवत्प्राप्ति (गीता ८ । ५)

'वह जीव गर्भाशयमें अनुप्रविष्ट होकर शुक्र और शोणित-से मिलकर अपनेसे अपनेको गर्भरूपमें उत्पन्न करता है। अतएव गर्भमें इसकी आत्मसंज्ञा होती है।'

'क्षेत्रज्ञ, वेदयिता, स्प्रष्टा, घ्राता, द्रष्टा, श्रोता, रसयिता, पुरुषस्रष्टा, गन्ता, साक्षी, धाता, वक्ता इत्यादि पर्यायवाची नामोंसे, जो ऋषियोंद्वारा पुकारा जाता है, वह क्षेत्रज्ञ (स्वयं अक्षय, अचिन्त्य और अव्यय होते हुए भी) दैवके संगसे सूक्ष्म भूत-तत्त्व, रज, तम, दैव, आसुर या अन्य भावसे युक्त वायुसे प्रेरित हुआ गर्भाशयमें प्रविष्ट होकर (शुक्र-आर्तवके संयोग होते ही) तत्काल उस संयोगमें अवस्थान करता है।'

जीवका गर्भ-वृद्धिक्रम

गर्भमें प्रविष्ट होनेके बाद यह आत्मा पाञ्चभौतिक शरीर-को धारण करने लगता है। इस शरीरकी वृद्धि गर्भमें क्रमशः नौ मासतक होनेका वर्णन हमें विभिन्न ग्रन्थोंमें इस प्रकार मिलता है—

'डिम्बाणुके साथ मिले हुए शुक्राणुकी वृद्धि एक रात्रि-में कलल, पाँच रात्रिमें बुद्बुद, दसरात्रिमें कर्कन्धू (बेर) के समान मांसके पिण्डके रूपमें होती है एवं अन्य मानवेतर योनियोंमें अंडेके रूपमें होती है। उसके बाद दो मासमें सिर और बाहु अङ्गका विग्रह (विभाग) होता है। तीन मासमें नख, रोम, हड्डी, चर्म और लिङ्ग आदि छिद्र होते हैं। चार महीनेमें सातों धातु बनते हैं, पाँचवें क्षुधा तथा तृषाकी उत्पत्ति होती है। एवं छठे मासमें जरायु (झिल्ली) में लिपटा हुआ दक्षिणकुक्षिमें भ्रमण करता है। सप्तम मासमें सचेत होकर प्रसूतिवायुसे कम्पित होता हुआ विष्ठामें उत्पन्न सहोदर कृमिके समान चलता रहता है।'

आयुर्वेदके प्रमाण ग्रन्थ सुश्रुतसंहिताके आधारपर गर्भ वृद्धिक्रम इस प्रकारसे उपलब्ध होता है—

'शुक्र और शोणितके संयोगसे पहले मासमें गर्भ कलल अर्थात् बुद्बुदाकार होता है। दूसरे मासमें शीत (श्लेष्मा), उष्मा (पित्त) और अनिल (वात)—इनसे पञ्चमहाभूतों-का समूह गाढ़ा बनता है। यदि यह समूह पिण्डाकृति हो तो पुत्र और पेशी (दीर्घाकृति) हो तो कन्या तथा अर्बुद गोला (Tumour) के परिमाणका हो तो नपुंसक होता है। तीसरे महीनेमें दो हाथ, दो पैर और सिर ऐसे पाँच अवयवोंके पिण्ड होते हैं और ग्रीवा, छाती, पृष्ठ तथा उदर—ये अङ्ग और ठोढ़ी, नासिका, कान, अँगुली, एड़ी इत्यादि प्रत्यङ्गोंका विभाग अस्पष्टतया ज्ञात होता है। चतुर्थ मासमें सब अङ्ग-प्रत्यङ्गके विभाग स्पष्ट प्रकट हो जाते हैं तथा गर्भका हृदय स्पष्ट होनेसे चेतना धातु व्यक्त होता है; क्योंकि हृदय चेतना-धातुका स्थान (आधार) है। इसलिये इन्द्रियार्थ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इनकी अभिलाषा चौथे मासमें होती है।

'पञ्चम मासमें मन अधिक प्रबुद्ध एवं सचेत होता है। षष्ठ मासमें बुद्धि प्राप्त होती है। सप्तममें सब अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी अभिव्यक्ति भलीभाँति होती है। अर्थात् चार शाखा, सिर और धड़—ये छः अङ्ग-प्रत्यङ्ग ठीक-ठीक स्पष्ट हो जाते हैं। अष्टम मासमें ओज चञ्चल रहता है। इस मासमें बालक पैदा होनेपर नैर्ऋत भागके कारण तथा ओजधातु स्थिर न रहनेसे जीता नहीं। नवम, दशम, एकादश या

[illegible] निरस्तकर्मा [illegible] पुरुषः [illegible] मुनी [illegible] जीवो [illegible] प्रयुज्य भूतानां [illegible] (च० शा० ४। ८)

४. स (आत्मा) गर्भाशयमनुप्रविश्य शुक्रशोणिताभ्यां संयोग-[illegible] गर्भत्वेन जनयत्यात्मनात्मानम्, आत्मसंज्ञा हि गर्भे।

(च. शा. ३। १९)

५. क्षेत्रज्ञो वेदयिता स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोता रसयिता पुरुषः [illegible]

(सुश्रु० शा० ३। ३)

१. कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम्।
दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम्॥
मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्गाद्यङ्गविग्रहः।
नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥
चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः।
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्रमति दक्षिणे॥
(श्रीमद्भा० ३। ३१। २—४ [illegible])
[illegible] सूतिवातैः [illegible]
विष्ठाभूरिव [illegible]
(श्रीमद्भा० ३। ३१। ९ [illegible])

है, तभी वैष्णवीमाया उस जीवको मोहित कर लेती है तथा वह मायासे लिप्त होकर परवश हुआ कुछ नहीं बोलता और संसारचक्रमें पुनः घूमने लगता है। किंतु पूर्वजन्मके प्रबल संस्कारसे यदि वह भगवद्भक्तिके सुमार्ग-पर लग जाता है तो प्राप्त-जन्ममें अपना उद्धार कर सकता है। अतः माता-पिताको चाहिये कि अपने बालकोंमें प्रारम्भसे ही इस प्रकारके जीवनोद्धारक संस्कार डालें, जिससे जीवका सर्वथा कल्याण हो सके।

उपर्युक्त गर्भवासका वर्णन आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें प्रकारान्तरसे इस प्रकार उपलब्ध होता है—

'गर्भको स्वकीय प्यास और भूख नहीं होती। उसका जीवन पराधीन होता है अर्थात् माताके अधीन होता है। वह सत् और असत् (सूक्ष्म) अङ्गावयववाला गर्भ मातापर आश्रित रहता हुआ उपस्नेह (रिसकर आये रस) और उपस्वेद (उष्मा) से जीवित रहता है। जब अङ्गावयव व्यक्त हो जाते हैं—स्थूलरूपमें आ जाते हैं, तब कुछ तो लोमकूपके मार्गसे उपस्नेह होता है और कुछ नाभिनालके मार्गसे। गर्भकी नाभिपर नाड़ी लगी रहती है। नाड़ीके साथ अपरा जुड़ी रहती है और अपराका सम्बन्ध माताके हृदयके साथ रहता है। गर्भको माताका हृदय स्पन्दमान (बहती हुई) सिराओंद्वारा उस अपराको रस या रक्तसे भरपूर किये रहता है। वह रस गर्भको बल एवं वर्ण देनेवाला होता है। सब रसोंसे युक्त आहाररस गर्भिणी स्त्रीमें तीन भागोंमें बँट जाता है। एक भाग उसके अपने शरीरकी पुष्टिके लिये होता है और दूसरा भाग क्षीरोत्पत्तिके लिये तथा तीसरा भाग गर्भवृद्धिके लिये होता है। इस प्रकार वह गर्भ इस आहारसे परिपालित होकर गर्भाशयमें जीवित रहता है।'

(चरक, शारीरस्थानम्-६ । १५)

'माताके निःश्वास, उच्छ्वास, संक्षोभ तथा स्वप्नसे उत्पन्न हुए निःश्वास, उच्छ्वास, संक्षोभ और स्वप्नोंको गर्भ प्राप्त करता है। अर्थात् बालक जबतक माताके गर्भमें रहता है, वह माताके शरीरके अङ्गके समान होता है और माताके प्रत्येक भले-बुरे कर्मोंका परिणाम जैसे उसके शरीरपर होता है, वैसे ही गर्भके ऊपर भी होता है। माता जब श्वासोच्छ्वास करती है, तब उसके रक्तकी शुद्धि होती है; साथ ही-साथ गर्भके रक्तकी भी शुद्धि होती है। माता जब सोती है तो उसके साथ-ही-साथ गर्भको आराम मिलता है। माता जब भोजन करती है, तब उसके शरीरके पोषणके साथ गर्भका भी पोषण होता है। माता जब संक्षुब्ध होती है, तब उसके शरीरपर जो परिणाम होता है, वही परिणाम गर्भपर भी होता है। संक्षेपमें माताके प्रत्येक कर्मके साथ-साथ गर्भ भी वही कर्म करता जान पड़ता है। वास्तवमें न गर्भ श्वास लेता है, न सोता है, न भोजन करता है, न क्षुब्ध होता है और न मल-मूत्रका त्याग ही स्वतन्त्रतासे करता है।'

(सु० शा० ३ । ५२)

गर्भ पूर्णरूपसे मातृकुक्षिपर आश्रित रहता है। अतः माताको यह आदेश दिया गया है कि वह अच्छे प्रकारका भोजन (जो लवणीय, कटु, तीक्ष्ण, खट्टे, उष्ण आदि पदार्थोंसे रहित हो) करे। शारीरिक परिश्रम अधिक न करे। मनको कष्ट देनेवाली बातोंका चिन्तन न करे। आराम करे। मलिन वस्त्र धारण न करे। ग्राम्य धर्म (मैथुन), गाड़ीकी सवारी आदि त्याग दे। शुद्ध सात्त्विक विचार करे, सात्त्विक वस्तु देखे, सात्त्विक बातें-कथाएँ सुने। तामसिक राजसिक भोजन त्याग कर दे। यह सब आदेश इसीलिये दिया गया है कि जिससे गर्भस्थ शिशुको किसी प्रकारकी पीड़ा न हो और वह सुख-जीवन बने।

'गर्भकी नाभिमें लगी नाड़ीके द्वारा माताके आहार-रससे गर्भका पोषण 'केदारकुल्या' न्यायसे होता है। जिस प्रकार सिंचाई करते समय कृषक विभिन्न क्यारियों (कालियों) में होनेवाले पौधोंकी सिंचाई करता है। ठीक उसी तरह नाभि नाड़ीके एक ही सूत्रसे [illegible] आहार-रसके द्वारा विभिन्न अङ्गोंका पोषण होता है।'

(अष्टाङ्गहृदय, शा० १ । ५६)

है, तब उसका पुनर्जन्म चेतन प्राणीकी योनिमें होता है और जब प्राणवायु अधोवायुका रूप ग्रहणकर शरीरका परित्याग करती है, तब उसका पुनर्जन्म नीची योनिमें होता है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने पुनर्जन्मपर बहुत कुछ कहा है।

भगवान्‌के कथनसे पुनर्जन्मका होना निर्विवाद सिद्ध है किंतु कुछ ऐसी अवस्थाएँ अवश्य होती हैं, जब कि मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता। इसके लिये ब्रह्मज्ञानिका मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। मस्तिष्कमें रमी हुई प्राणवायु जब नेत्रमार्गसे बाहर निकलती है, तब उसका पुनर्जन्म मनुष्ययोनिमें ही होता है और उसकी पूर्वस्मृति बराबर जाग्रत् रहती है। जिस नेत्रसे प्राणवायुका बहिर्गमन होता है, वह नेत्र कुछ अधिक बड़ा और विस्फारित-सा हो जाता है। इसी तरह जिस नासिका छिद्रसे प्राणवायु बाहर निकलती है उसी ओर नाक टेढ़ी हो जाती है। मुखसे प्राणवायु निकलनेपर मुख एकदम फटकर भयावना हो जाता है। जिस कर्णमार्गसे प्राणवायु शरीरसे बाहर निकलती है, वह कान दूसरेकी अपेक्षा शीघ्र ही जड और टेढ़ा हो जाता है। मल और मूत्रद्वारसे प्राणवायुके गमन करनेपर मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रियकी भी यही दशा हो जाती है, किंतु जब ब्रह्माण्ड फोड़कर प्राणवायुका गमन होता है, तब मृतककी बड़ी ही आकर्षक आकृति हो जाती है। उसकी सौम्यावस्था सुषुप्तावस्था-सी प्रतीत होती है। ऐसा सौभाग्य ज्ञानियों, भक्तों और महात्माओंको ही प्राप्त होता है। ऐसे प्राणीका पुनर्जन्म नहीं होता।

विराट् पुराणमें चौरासी लाख योनियोंका वर्णन आया है। यहाँ स्वेदज, अण्डज, जरायुज और उद्भिज्ज योनि—चार योनियोंमें विभाजित कर हर एककी संख्या इक्कीस लाख निश्चित की गयी है। स्वेदज योनिमें ताराओंकी संख्या नौ लाख, मेघ चार लाख और पहाड़ आठ लाख वर्णन किये गये हैं। अण्डज योनिमें नाग नौ लाख, जलचर प्राणी चार लाख और पक्षी आठ लाख तथा जरायुज योनिमें [illegible] नौ लाख, चौपाये चार लाख और [illegible] आठ लाख परिगणित किये गये हैं। उद्भिज्ज योनिमें निर्गन्ध पौधे नौ लाख, सुगन्ध चार लाख और कन्द-मूल आठ लाखकी संख्यामें निर्दिष्ट किये गये हैं, जिनका बहुत बड़ा विस्तार है। किसी किसीने चौरासी लाख योनियोंको [illegible] लाख [illegible], [illegible] लाख [illegible] और [illegible] लाख [illegible] बताया है। और भी कई प्रकारसे ८४ लाखका वर्णन मिलता है। वास्तवमें जीव-योनि एक रहस्यात्मक विषय है और इसका सम्बन्ध पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मसे है। पुनर्जन्मका विषय भी असाधारण है।

स्वरोदयका ज्ञान दर्पणकी भाँति स्वच्छ और निर्मल है। सांसारिक प्राणियोंका पुनर्जन्म अवश्य होता है, यह विषय भी निर्विवाद है; किंतु किस योनिमें पुनर्जन्म होता है, इसका ज्ञान स्वरोदयसे प्राप्त किया जा सकता है। नासिका छिद्रोंसे प्राणवायु चन्द्रस्वर, सूर्यस्वर और शिवस्वरके माध्यमसे बाहर निकलती है। इन स्वरोंमें अग्नि अथवा वायुतत्त्व मिले होनेसे प्राणवायु ऊर्ध्व श्वासका रूप ग्रहण करती है। अग्नितत्त्वसे संयुक्त यदि प्राणवायु चन्द्रस्वरके मार्गसे प्रयाण करती है तो जीवको प्रेत-योनि प्राप्त होती है और यदि सूर्यस्वरके मार्गसे प्राणवायुका निष्क्रमण होता है तो भी जीवको निकृष्ट योनि यानी भूत-पिशाचकी योनि ही प्राप्त होती है। वायुतत्त्वसे मिश्रित प्राणवायुके निकलनेपर जीवको अल्पायु योनि मिलती है; कीड़े-पतंगों आदि वायुमें उड़नेवाले प्राणियोंमें उसका पुनर्जन्म होता है। जलतत्त्वसे युक्त प्राणवायुके प्रयाण करनेपर जलचर जीवधारियोंमें जीवका पुनर्जन्म होता है। पृथ्वीतत्त्वसे मिली हुई यदि प्राणवायु चन्द्रस्वरके मार्गसे शरीरका परित्याग करती है तो मनुष्य-योनिमें ही पुनर्जन्म प्राप्त होता है और जीवको अपनी पूर्वस्मृति बनी रहती है, किंतु यदि प्राणवायु पृथ्वीतत्त्वसे युक्त सूर्यस्वरके मार्गसे प्रयाण करती है तो जीवको पशुयोनिमें जाना पड़ता है। इसी प्रकार आकाश-तत्त्वसे मिश्रित प्राणवायुके गमन करनेपर या तो पुनर्जन्म होता ही नहीं और यदि होता है तो वह [illegible] हो जाता है।

इस तरह स्वरोदयके माध्यमसे प्राणवायुके निष्क्रमणसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म सिद्धान्त है, जिससे जीवके पुनर्जन्मका ज्ञान प्राप्त होता है। जिस प्रकार मनुष्ययोनिमें पुनर्जन्म प्राप्त होनेपर [illegible] पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहती है, उसी प्रकार प्राणवायुके [illegible] [illegible] है और यदि ब्रह्माण्डसे प्राणवायुके निकलनेका [illegible] है तो मनुष्य [illegible] प्राप्त कर लेता है। इस तरह पुनर्जन्म बड़ा ही गोपनीय और रहस्यात्मक विषय है, जिसका [illegible]

अथवा पूर्वजन्मके कर्म माने गये हैं, उसीके अनुसार 'त्रिजग' योनियोंमें मानव जन्म ग्रहण अथवा धारण करता है। इस तथ्यपर स्वयं तुलसी तथा अन्य संत कवि भी प्रत्यय रखते हैं। कर्मोंके अनुसार जीव चेतन ही नहीं, अपितु यह शरीर भी धारण करता है। कविवर संत 'रसखान'का प्रसिद्ध सवैया इस तथ्यका स्वयं उद्घाटक है—

मानुष हौं तो वही 'रसखान' बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नंदकी धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल कदंब की डारन॥

तुलसीने बड़े स्पष्ट शब्दोंमें भगवान् श्रीरामकी अनवरत भक्तिकी स्पृहा करते हुए वालिके शब्दोंमें प्रभुसे निवेदन करवाया है—

'जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ।'
(मानस ४ । ९ । २ छं०)

जीव अपने कर्मोंके अनुसार श्रेष्ठ एवं अधम योनियोंमें संचरण करता रहता है। उससे उद्धारका एकमात्र उपाय है—अपने सहज स्वरूपका बोध, और इसीके हेतु साधक संतोंने वर्णाश्रमके अनेक उपाय बताये हैं—जिनमें ज्ञान, निष्काम कर्म, योग और सर्वसुलभ भक्ति है।

'मानस'के अन्तर्गत भिन्न जन्मोंकी प्राप्तिका कारण जीव अथवा साधककी तपश्चर्याजनित सहज अभिलाषा भी है। मनु और शतरूपाने अपनी कठोर तपस्याके फलस्वरूप एक कल्पमें दशरथ और कौसल्याके रूपमें जन्म लिया था। इसी प्रकार कश्यप और अदितिने भी अन्य कल्पमें दशरथ एवं कौसल्याके रूपमें जन्म लेकर भगवान् रामके माता-पिताके रूपमें कृतार्थता प्राप्त की थी—

'कस्यप अदिति तहाँ पितु माता।' (१ । १२२ । ४)

देवता एवं मुनिजन भी सदा यह अभिलाषा करते रहते हैं कि कभी भी ऐसा अवसर मिले, जब वे किसी-किसी प्रकार भगवान्के अवतारी रूपके अनुचर बन सकें—

[illegible] दीन्हा। [illegible] न [illegible]॥
[illegible] देह [illegible] नाहीं। [illegible]॥
[illegible] रघुपति [illegible]। [illegible] बिरचहिं [illegible]॥
(मानस १ । १८७ । १-२)

इनके कारण जन्मधारणके सम्बन्ध इतना 'मानस'के अन्तर्गत निरूपित है। शापवश निकृष्ट योनि प्राप्ति मात्र शापित जीवको ही नहीं, अपितु देवता, गन्धर्व, नाग, किन्नर ही क्या, स्वयं ब्रह्माको भी करनी पड़ती है। नारदके शापवश परब्रह्म भगवान् रामने नर-शरीर धारण किया एवं प्रिया-वियोगको सहन किया। यह बात और है कि इस प्रकार उन्होंने भू-भार-हरणकी लीला भी की। इसी संदर्भमें शंकरके गणोंको भी रावण एवं कुम्भकर्णके रूपमें जन्म लेना पड़ा।—

होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥
(मानस १ । १३५)

अगस्त्य मुनिके शापवश रावणके राक्षस दूत शुकके विषयमें स्पष्टतया यह तथ्य प्रकाशित किया गया है कि यह शापवश ही, ज्ञानी मुनिसे निशिचर रूपको प्राप्त हो गया था—

'रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥'
(मानस ५ । ५६ । १)

कभी-कभी तो सद्गतिवश भी परिजनोंके अभिशापोंके कारण दुष्ट जन्मोंकी प्राप्ति होती दिखायी गयी है। परम प्रतापी नरेश प्रतापभानुके विप्रोंद्वारा अभिशापित होनेपर उसके भाई, मंत्री, परिजन एवं सेना सभीको राक्षसरूपमें जन्म लेना पड़ा। गोस्वामीजीने इन पंक्तियोंमें यही तथ्य दर्शाया है—

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥
(मानस १ । १७६ । १-४)

'मानस'में परलोक-प्रत्यय

यह तथ्य तो सहज स्वाभाविक है कि जहाँ पुनर्जन्म-विधान है, वहाँ परलोककी स्थिति भी निश्चितरूपसे मान्य है। भारतीय [illegible] [illegible] परलोक [illegible] सदा इहलोकसे परे अन्य लोक [illegible] है। उसमें [illegible] [illegible] हेतु [illegible] आधुनिक [illegible] [illegible] परलोकको स्वीकार किया है। और [illegible]—[illegible], [illegible]—ये [illegible] [illegible]

महाकवि कालिदासके काव्योंमें जन्मान्तर-दर्शन

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

'नानृषिः कुरुते काव्यम्।' (देवीभागवत ६ । १० । २३) —के अनुसार कविकुलगुरु कालिदास परमर्षि ही थे। उनके चरित्रको अन्तःसाक्ष्यके आधारपर कसनेपर वे परमर्षि ही ठहरते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीपर उनकी पूरी छाप है। गोस्वामीजीका 'पार्वती-मंगल' तो 'कुमारसम्भव' का अनुवाद है ही, मानसपर भी रघुवंशादिकी छाया है। कालिदास भी शिवपुराण-पद्मपुराणसे अत्यन्त प्रभावित हैं। अस्तु।

उन्होंने प्राक्तन संस्कार तथा सर्वसाधारणमें भी जन्मान्तरकी पहचानकी बात निज अनुभवपर ही लिखी है। वे अज तथा इन्दुमतीके सम्बन्धमें सर्वसाधारणकी धारणा व्यक्त करते हुए लिखते हैं—'मानो पूर्वकी रति भव 'अज'रूपी कामदेवको पहचानकर उनके अनुरूप बन गयी। मन जन्मान्तरकी संगतियोंको अवश्य जानता है'—

गतेयमात्मप्रतिरूपमेव मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्।
(रघुवंश ७ । १५)

इस कथनसे उनकी निरभिमानिता भी प्रकट है। वे वेद-पुराण, व्याकरण, छन्द, काव्य, साहित्य, ज्योतिष, आयुर्वेदादिके साथ दर्शनमें भी पूर्ण निष्णात थे; फिर भी लेशमात्र अहंकार नहीं, प्रत्युत विनय ही प्रकट है। गोस्वामी तुलसीदासजी इनके पूर्वके श्लोक तथा इसकी छाया लेकर श्रीसीतारामके पुष्पवाटिकादि प्रसङ्गपर लिखते हैं—

तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥
× × × × × ×
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सबु कारन जान बिधाता। × × ×
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥
× × × । नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी॥
इत्यादि (मानस १ । २३० । १–४)

रघुवंश १ । २० में वे रघुके बारेमें लिखते हैं कि 'प्राक्तन-संस्कारकी तरह उनके कार्योंका पता पहले नहीं, फल मिलनेपर ही लगता था।' (इससे सिद्ध है कि सबके गुण-परिणामादि फल प्राक्तन-संस्कारोंके ही परिणाम हैं)—

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव॥
(रघुवंश १ । २०)

'शाकुन्तल' (५।२) में लिखते हैं कि 'रमणीय पदार्थोंको देखकर तथा मधुर ध्वनियोंको सुनकर भी जो सुखी मनुष्य कभी-कभी पर्युत्सुक—उदास सा दीखता है, उस समय निश्चय ही उसका मन पूर्वजन्मके स्थिर प्रेमसम्बन्धोंको स्मरण करता रहता है, यद्यपि वह उसे स्पष्ट नहीं प्रतीत होता।'

इसी तरह उन्होंने अन्यत्र भी जन्मान्तर-सम्बन्धी बहुत-सी बातें लिखी हैं। विस्तार-भयसे यहाँ विशेष नहीं लिखा जाता।

---

१. मानस १ । १०० । २२ में भी ऐसा ही भाव है— [illegible]

[illegible]

२. [illegible]

के अभीष्ट व्यक्ति तो मर चुका है, तब वह रुपये हमारे ही नाम होकर हमें ही मिल जायँगे ।

ऐसे ही परमधामवासी पितरोंके निमित्त किया गया श्राद्ध पुण्यरूपमें हमें ही मिल जायगा । अतः हमारा लाभ तो सब प्रकारसे ही होगा ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

श्राद्ध-तर्पणका रहस्य तथा आवश्यकता एवं श्राद्ध-तर्पणकी वैज्ञानिकता

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश')

हमारा सनातनधर्म पूर्ण सहिष्णु तथा विश्वहितकर है । इतना उदार कोई भी अन्य धर्म विश्वभरमें कहीं नहीं है । यह इसकी महान् विशेषता है । यहाँतक कि वर्षभरमें एक सम्पूर्ण पक्ष पूज्य पितरों आदिके प्रति शास्त्रीय कर्मोंद्वारा अपनी श्रद्धा-निष्ठादिको प्रकट करनेके लिये नियत है । कितना सुन्दर एवं सामयिक विधान है ! 'श्राद्ध' शब्दका श्रद्धासे पूर्ण सम्बन्ध है और इसी विशिष्टताको यह चरितार्थ करता है । प्रसिद्ध मुगल बादशाह शाहजहाँने भी धर्मके इस आचरणकी महत्ता स्वीकार कर इसकी सराहना की थी । बंदी बनाये जानेके पश्चात् जब औरंगजेबने उसके जमुना-जल पीने-पर पाबंदी लगा दी तो उसने एक फारसी शेर लिखकर औरंगजेबकी भर्त्सना इस प्रकार की कि 'हिंदू लोग प्रशंसाके योग्य हैं, जो अपने दिवंगत पितरोंको भी पानी देते हैं और एक तू ऐसा मुसलमान है, जो अपने बूढ़े पिताको पानीके लिये इस प्रकार तरसाता है ।' शाहजहाँकी इस वाणीमें कितनी मार्मिकता थी, जो औरंगजेबके हृदयमें तीरकी तरह चुभी । बात ही कुछ ऐसी थी ।

यह पक्ष एवं इसके कर्म—सभी वेदोक्त एवं शास्त्रोक्त हैं । दानवीर राजा कर्णके साथ भी पुराणमें इसका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है । श्रद्धाके साथ मन्त्रका उच्चारण करके इस [illegible] नैमित्तिक [illegible] आदिमें [illegible] पिता, पितामह आदि [illegible] पूर्वजोंकी [illegible] अनुसार जो क्रिया की जाती है, उसका [illegible] है । हिंदूधर्ममें इस लोकके बाद [illegible] परलोकपर भी दृष्टि रखी है; इसीलिये इसमें पिता, पितामह और प्रपितामहकी सद्गति तथा तृप्तिके लिये श्राद्ध-क्रिया नियत की हुई है । क्योंकि पितरोंसे तो [illegible] हुआ ही करते हैं, उनमें हमारी श्रद्धा भी होती है, पर

'श्राद्ध' शब्द तो पारिभाषिक होता है । इसमें श्रद्धाका मधुर भाव निहित रहता है । अपने जिन पिता आदिसे हमें शरीर प्राप्त हुआ, हमारा लालन-पालन हुआ, यदि उनके नामसे हम एक विशेष पक्षका व्यवहार न करें, तो यह हमारी कृतघ्नता होगी । उनके नामसे दान करनेपर परलोकगत उनकी आत्मा तृप्त हो जाती है, शान्तिको प्राप्त होती है और उन्नति पाती है । श्राद्धानुष्ठानके फलस्वरूप होनेपर प्रेतयोनि-प्राप्तका प्रेतत्व दूर [illegible] करता है । पिण्डदानसे प्रेत-मुक्ति हो जाया करती है । जैसे हजारों मीलका शब्द रेडियोद्वारा तत्क्षण [illegible] प्राप्त हो जाता है, वैसे ही मन्त्रोच्चारणद्वारा विधि एवं श्रद्धापूर्वक की हुई श्राद्ध आदि क्रियाएँ भी चन्द्रलोकस्थित पितरोंको प्राप्त होकर उन्हें प्रसन्न कर दिया करती हैं । चन्द्रमा मनका अधिष्ठाता है । यह हमारी मनमें श्रद्धासे की हुई क्रियाको नित्य पितरोंके द्वारा सूक्ष्मरूपसे अपने लोकमें खींचकर हमारे पितरोंको तृप्त कर दिया करता है । अन्नदान दिये हुए अन्न या जलको वह सूक्ष्मरूपसे [illegible] करता है । श्राद्ध पिता, पितामह, प्रपितामह—इन तीन पुरुषोंका होता है । श्राद्धमें [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible] आदिमें [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] होती है ।

श्राद्ध [illegible] [illegible] [illegible] है । [illegible] ।

[illegible] [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

इंग्लैंड, जर्मनी, रूस, अमेरिका आदि देशोंमें उसी समय हो रहे हुए शब्दोंको खींच सकता है; परंतु जिसके पास यह यन्त्र नहीं है, वह लंदन आदिमें तो क्या, भारतमें भी हो रहे हुए कुछ दूरके भी शब्दोंको खींच नहीं सकता। इसी प्रकार जीवितोंके पास दूरसे दिये हुए श्राद्ध-तरंगके आकाशस्थ रसको खींचनेकी शक्ति नहीं होती, परंतु मृतकोंके पितृलोकमें जानेसे उनके पास वह शक्ति सूक्ष्मतावश अनायास उपस्थित हो जाती है। स्थूलशरीरमें तो यह शक्ति नहीं रहती, परंतु सूक्ष्मशरीरमें वह रहती है, इसीलिये युधिष्ठिर स्थूलशरीरके साथ स्वर्ग-लोकमें विलम्बसे प्राप्त हुए। परंतु भीम-अर्जुन आदि मर जानेके कारण स्थूल शरीरके त्यागके कारण युधिष्ठिरसे पूर्व ही प्राप्त हो गये—यह महाभारतमें स्पष्ट है। स्थूल बीजमें वृक्षोत्पादन-शक्ति नहीं होती, जब वह पृथ्वीमें बोया जाकर मर जाता है, तब उसमें सूक्ष्मता आ जानेसे वह शक्ति प्राप्त हो जाती है। यह स्थूल तथा सूक्ष्म शक्तिका अन्तर है।

इस प्रकार स्थूलशरीरके नाश होनेपर प्राप्त हुए देव-पितृ आदिके शरीरमें तो यह शक्ति हुआ करती है। जैसे हम होम करें, तो उसके अग्निद्वारा आकाशमें पहुँचाये हुए सूक्ष्म अंशको सूर्य आदि देव खींच सकते हैं, वैसे ही हमसे किये श्राद्धादिके ब्राह्मणकी अग्नि और जठराग्निद्वारा आकाशमें प्राप्त हुए सूक्ष्म अंशको चन्द्रलोकस्थित पितर यन्त्रस्थानीय अपनी शक्तिके आश्रयसे खींच सकते हैं।

आधुनिक विज्ञान भी आधार एवं माध्यमको पूर्णतया मानता है। टेलीविज़नमें यह विज्ञान नहीं तो और क्या है? इस शास्त्रीय विज्ञानका प्रत्यक्ष चमत्कार हमें उस समय देखनेका अवसर मिला, जब कई वर्ष पहले सिन्धप्रान्तमें एक सिद्ध महात्मा पधारे थे। उनमें यह चमत्कार या दैवीसिद्धि थी कि वे साँपके काटे हुए व्यक्तिको ठीक कर देते थे—चाहे वह कितनी ही दूरपर क्यों न हो। जो व्यक्ति उनके पास इस आशयकी खबर लाता, मन्त्र पढ़कर वे उसके कानपर जोरसे थप्पड़ मारते, उधर वह व्यक्ति ठीक हो जाता। समाचार देनेवाले व्यक्तिको ही वे माध्यम बनाकर उसे ठीक कर देते। यदि ऐसा सर्पदंशित व्यक्ति उनके पास किसी कारण न लाया जा सकता तो महात्माजीका कहना था कि माध्यमके आधारपर एवं वायु-तरंगके आधारपर उसका सूक्ष्म सम्पर्क बना रहता है। सबका वायुमण्डलमें अर्थात् (ईथर) तत्त्व है ही। साधन-सिद्ध योगी महात्मा इसी वायुमण्डलमें अपना सम्पर्क बराबर बनाये रखते हैं।

यह भारतीय शक्ति ऋषियोंने हजारों वर्ष साधे हुए तपस्या, योग आदिके बलके द्वारा प्राप्त की है। इसका कोई भी शास्त्रज्ञ विद्वान् खण्डन नहीं कर सकता। जो पितर पितृलोकमें न होनेसे वैसी शक्ति नहीं रखते कि वे सूक्ष्मरूप बनकर श्राद्धमें भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके शरीरमें प्रवेश कर सकें, किंतु वे किसी मनुष्यादिके स्थूलशरीरकी योनियाँ प्राप्त कर चुके हों; तब हमारे द्वारा किये हुए श्राद्धके अन्नको वसु, रुद्र, आदित्य ही आकृष्ट करके उन स्थूल शरीरवाले पितरोंको पहुँचा दिया करते हैं। इस प्रकार मृतक-श्राद्ध रहस्यपूर्ण, गौरवान्वित और विज्ञानपूर्ण सिद्ध है।

मृत्यु-समयकी अनुपम सेवा

मृत्यु-समयकी अनुपम सेवा—मनसे हुए परे संसार ।
करे न कभी जगत्‌की, भोगोंकी, घरकी चर्चा निस्सार ॥
राग-वासना जगे, बढ़े जिनसे ममता मिथ्याहंकार ।
छा जाये मनपर मिथ्या भय चिन्ता-शोक विषाद अपार ॥
असत्‌-अनित्य-दुःखमय जगके भोग अशुचि सब और विकार ।
इनके दोष दुःख दिखलाकर प्रभुचर्चा हो बारंबार ॥
नाम-रूप गुण गावें जिनसे मन लागे बस इकतार ।
भगवत्-प्रेम सरस हो जावे, मिल जावें प्रभु सर्वाधार ॥

श्राद्धसे जातिस्मरता और मोक्ष—एक विशेष उदाहरण

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

हिंदू-श्राद्धकी विश्वदुर्लभ उदात्त भावना

श्रद्धालु हिंदू श्राद्धकर्ता तर्पण एवं श्राद्धमें भावपूर्ण आर्द्रहृदयसे कहता है—

ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः ।
तेषां हि दत्तमक्षय्यमिदमस्तु तिलोदकम् ॥
ये बान्धवाऽबान्धवाश्च येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते तृप्तिमखिला यान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा[1] ॥
(मत्स्यपुराण, १०१ । २४, [illegible]तर्पण-प्रयोग)

नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः ।
तेषामाप्यायनायैतद् दीयते सलिलं मया ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् ।
आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम् ॥
(वायुपुराण, ११० । २१-४०, ऋषितर्पण)

अर्थात् 'जो भी असहाय जीव मेरे कुलके हों, जो मेरे इस जन्मके बन्धु-बान्धव हों या उस जन्मके या जो कोई भी बन्धु-बान्धवोंसे रहित हों या जो कोई किसी भी लोकमें या नरकादिमें यातनाग्रस्त हों, वे मेरे इस श्राद्धके लिए या तिलजलके तर्पणसे पूर्ण दुःखमुक्त एवं पूर्ण तृप्त हो जायँ। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त सभी देवता, पितर, मनुष्य, कीट-पतंग, सात द्वीपके निवासी, सत्यलोक ब्रह्मलोकसे लेकर भूलोक तकके सभी प्राणी मेरे इस श्रद्धापूर्ण श्राद्ध-तर्पणसे पूर्ण तृप्त—आप्यायित एवं सुखी हो जायँ[2]।'

पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २१३-१४ अध्यायोंमें कथा आती है कि एक ब्राह्मणपुत्रने अपने कई जन्मपूर्वकी गोपा-योनिमें प्राप्त माताका श्राद्धद्वारा उद्धार किया—'पूर्वजन्मनि या माता पिता च··· [illegible] पितरौ यौ हि··· ··पितामही ।' (२१४ । १७ और [illegible]) वस्तुतः ऐसी भावना हिंदूके अतिरिक्त किसी भी जातिमें अत्यन्त दुर्लभ या असम्भव ही है।

अत्यन्त सत्कार तथा श्रद्धासे किये जानेके कारण ही इस कर्मका नाम 'श्राद्ध' है—'प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः।' (पा० ५ । २ । १०१) 'श्रद्धया क्रियते यस्मात्श्राद्धं तेन प्रकीर्तितम्।' (श्राद्धतत्त्व, पुलस्त्यस्मृति, वायुपुराण)

श्राद्धकर्ताको आयु, प्रजा, धन, राज्य, ज्ञान, स्वर्ग, मोक्ष, जातिस्मरता आदि सब प्राप्त होते हैं—

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति १ । २७०, गरुडपुराण १ । ९९ । १९, अग्निपुराण १०५ । ४१)

श्राद्धे प्रतिष्ठितो लोकः श्राद्धे योगः प्रवर्तते ।
श्राद्धात् परतरं नास्ति श्रेयस्करमुदाहृतम् ॥
(कूर्मपुराण, श्राद्धचन्द्रिका, हरिवंश १ । २१ । १)

पितॄनभ्यर्च्य धर्मेण·· ·····।
स्मृतिः प्रत्यवमर्शश्च तेषां जात्यन्तरेऽभवत् ॥
(हरिवंश १ । २१ । १७, १८)

प्रज्ञा पुष्टिः स्मृतिर्मेधा राज्यमारोग्यमेव च ।
पितॄणां हि प्रसादेन प्राप्यते सुमहात्मनाम् ॥
([illegible])

इस सम्बन्धमें सात कौशिक-पुत्रोंकी [illegible] भी सभी श्राद्धविधि-ग्रन्थ (एकोद्दिष्ट श्राद्ध, पार्वण, वृद्धि, तीर्थश्राद्ध एवं अन्वष्टकादि सभी श्राद्ध) आदिमें तथा प्रायः सभी श्राद्धसूत्रों एवं पुराणोंमें भी आती है और यो हरिवंश(पर्व १, अ० २१-२४) में सर्वाधिक विस्तारसे है, अतएव [illegible] है।* इन सातोंके क्रमशः [illegible], [illegible], हंस,

---

1. [illegible] पाठ है—[illegible] है, [illegible] हो।
2. [illegible]

* क्योंकि सभी ग्रन्थोंमें भी यही श्लोक है, जो इस प्रकार है—

[illegible]

([illegible])

श्राद्ध और परलोक

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

अथर्ववेद (१२ । २ । ४५) में 'पितृणां लोकमपि गच्छन्तु' तथा शतपथ (१४ । १ । ७ । १९) में भी पितृलोकादिका सुस्पष्ट उल्लेख है। स्कन्दपुराण काशीखण्ड तथा सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय, त्रिप्रश्नवासना, श्लोक १३में पितृलोकको चन्द्रमाके ऊपर बतलाया गया है—

'विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति ।'
(वही, १३)

'वीरमित्रोदय' तथा 'ब्रह्मपुराण'में आता है कि 'विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाला आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण विश्वको तृप्त कर देता है'—

यो वा विधानतः श्राद्धं कुर्यात् स्वविभवोचितम् ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः ॥

श्राद्धकर्ता कहता भी है—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥

श्राद्धकी वस्तुएँ पितरोंको कैसे प्राप्त होती हैं ?

शास्त्रोंमें बतलाया गया है कि संकल्पोक्त नाम-गोत्रोंके आधारपर विश्वेदेवता तथा अग्निष्वात्तादि दिव्य पितृगण हव्य-कव्यको पितरोंतक पहुँचा देते हैं। यदि पिता-माता या पितृगण देवयोनिमें भी पहुँच गये हों तो यहाँ दिये गये हव्य-कव्य उन्हें देवलोकमें अमृतादि बनकर संयोगसे प्राप्त हो जाते हैं। पशुयोनिमें भी वह अभीष्ट तृणादिके रूपमें निर्दिष्ट जीवोंके पास पहुँच जाता है। नागादि योनियोंमें वह इस रूपमें मधुरूपमें, पशुयोनिमें घासरूपमें, पितृलोकमें सुधारूप तथा अन्य योनियोंमें भी वह अभीष्ट तृप्तिकर पदार्थ बनकर पहुँच जाता है। नाम, गोत्र, हृदयकी भक्ति-श्रद्धा एवं शुद्ध उच्चरित मन्त्र हव्य-कव्योंको संदेशवाहित दिव्यपितरों एवं अग्निष्वात्तादि पितरोंद्वारा निर्दिष्ट [illegible] ढूँढ़कर वैसे ही पहुँचा दिये जाते हैं—जैसे [illegible] बछड़ा अपनी माताके पास'—

यथा गोष्ठे प्रनष्टां वै वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा तं नयते मन्त्रो जन्तुर्यत्रावतिष्ठते ॥
नामगोत्रं च मन्त्रश्च दत्तमन्नं नयन्ति तत् ।
अपि योनिशतं प्राप्तांस्तृप्तिस्ताननुगच्छति ॥

(वायुपुराण उपोद्घा० पा० ८३ । ११९-१२०; ब्रह्मपुराण २११ । १ । २; मत्स्य० १९ । ४ । ११; पद्म० ९ । १० । १२० ॥)

पितृलोकगतश्चान्नं श्राद्धे भुङ्क्ते स्वधामयम् ।
प्रेतस्य श्राद्धकर्तुश्च पुष्टिः श्राद्धे कृते ध्रुवम् ॥
तस्माच्छ्राद्धं सदा कार्यं शोकं त्यक्त्वा निरर्थकम् ।

शेष पूर्ववत् है।

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण २ । ७८ । १३, [illegible] २० । १४ ॥)

पितृगण देवताओंसे भी अधिक कृपालु होते हैं, अधिक सहयोग भी करते हैं। 'जहाँ श्राद्ध नहीं [illegible] वहाँ दुःख-क्लेश, रोग होता है, आयुका नाश होता है, कोई श्रेय नहीं होता'—

न तत्र वीरा जायन्ते नारोग्यं न शतायुः ।
न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्धं विवर्जितम् ॥
(श्राद्धकल्पलता, श्राद्धप्रकाश, श्राद्धविवेक, [illegible] [illegible])

अतः शाकादिसे भी श्राद्ध अवश्य करना चाहिये—

तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि ।
कुर्वीत श्रद्धया तस्य कुले कश्चिन्न सीदति ।
([illegible])

पिशुन, कवि, खस्म और पितृवर्ती—ये नाम थे। इनके कर्म भी नामानुरूप ही थे। एक बार गौके सम्बन्धमें इन्होंने अपने गुरु गार्ग्यसे भारी वञ्चना कर दी। फलतः अगले जन्ममें ये सातों ही दशार्ण देशमें व्याध हुए।† पर व्याधयोनिमें भी पितृवर्ती (श्राद्धकर्ता) के प्रभावसे ये सभी धर्मविचक्षण एवं जातिस्मर हुए—

स्मृतिः प्रत्ययमर्थाश्च तेषां जात्यन्तरेऽभवत्।
जाता व्याधा दशार्णेषु सप्त धर्मविचक्षणाः॥
(हरिवंश १।२१।१८)

जातिस्मृति होनेके कारण वे अत्यन्त सावधान हो गये और लोभ, क्रोध, अनृतसे बचकर मातृपितृभक्तिरत रहने लगे। कर्मानुसार इस जन्ममें इनके निर्वैर, निर्द्वन्द्व, शान्त, निर्मन्यु, कृति, वैधस और मातृवर्ती—ये (सात) नाम हुए। माता-पिताके मरते ही इन्होंने भृगुपतनद्वारा प्राण-त्याग किया। इस शुभ कर्मसे अगले जन्ममें कालंजर पर्वत (चित्रकूटके पास महोबाके निकट) पर ये मृग हुए। वहाँ भी ये जातिस्मर रहे—

'तमेवार्थमनुध्यान्तो जातिस्मरणमव्ययम्।'
(हरिवंश १।२१।२६)

यहाँ भी प्राण-साधनके द्वारा तप करते हुए प्राण छोड़कर ये सातों शरद्वीपमें चक्रवाक पक्षी हुए और अन्तमें मानसरोवरमें हंस हुए। यहाँ भी इन्हें जातिस्मरता बनी रही। कर्मानुसार उस समय इनके सुमना, शुचिवाक्, शुद्ध, पञ्चम, छिद्रदर्शन, सुनेत्र और स्वतन्त्र—ये नाम थे—

अथ ते सोदरा जाता हंसा मानसचारिणः।
जातिस्मराः सुसंयुक्ताः सप्तैव [illegible]॥
(हरिवंश १।२१।३१)

'ततो ज्ञानं च जातिं च ते हि प्रापुर्यथाक्रमम्॥'
(हरिवंश १।२१।३५)

जब ये हंसयोनिमें थे तभी नीप देशके राजा 'विभ्राज'[illegible] देखकर सातवें 'स्वतन्त्र' नामक पक्षीको उसके भवद्र [illegible] होनेकी वासना हो गयी। उसके दो साथियोंने भी मन्त्री होनेकी कामना की। यह बात शेष चार हंसोंमें [illegible] लगी। अतः पूर्वके तीन चक्रवाक काम्पिल्य[1] नगरमें [illegible] मन्त्री हो गये। पर शेष चारों हंस जातिस्मर ब्राह्मण हुए—

'स्मृतिमन्तोऽत्र चत्वारस्त्वपरे : परिमोहिताः॥'
(हरिवंश १।२१।[illegible])

'स्वतन्त्र' नामक हंस अणुहका पुत्र ब्रह्मदत्त नामक [illegible] हुआ, जैसा कि उनका पूर्वशरीरमें संकल्प हुआ [illegible] छिद्रदर्शी और सुनेत्र उसके मन्त्री हुए। शेष चार [illegible] श्रोत्रिय हुए, किंतु उन्हें जातिस्मरता बनी रही। ब्रह्मदत्त [illegible] सर्वभूतरुत (सभी जीवोंकी भाषा समझनेवाला) [illegible] एक बार वह अपनी रानी संनतिके साथ वनमें घूम [illegible] था कि पिपीलिका-दम्पतिके संगमविलास-व्यापार [illegible] आ गयी। संनतिने उससे हँसीका कारण पूछा। राजाने [illegible]

† इस दशार्ण देशका वर्णन सभी पुराणों तथा मेघदूत १।२३में भी आया है। इसमें दशार्णा (आजकी धसान) नदी बहती है। यह [illegible] पहले पूर्वी भाग था, जिसकी राजधानी विदिशा (आजका बेसनगर) थी, जो वेत्रवती (आजकी बेतवा) नदीके तटपर बसा है।

(Imperial Gazetteer Indian Empire).

[illegible] २।१२९।३०। ([illegible]) २।१५।५, २।३३।७, [illegible] ७३-७६ तथा ५।१८०-१९० [illegible] २।१।४१-४३, [illegible] १३ तथा १४।८२। [illegible] हुआ था।

१. यह काम्पिल्य पहले कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत था और [illegible] द्रुपदादि राजाओंकी राजधानी भी यही थी। द्रौपदीका स्वयंवर [illegible] यहीं हुआ था। (महाभारत आदिपर्व १३८।७३, हरिवंश १।२१।[illegible] वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड ३३।१९, यजुर्वेद २३।१८, [illegible] ७।४।१९, मैत्रायणी संहि० ३।१२।२०, [illegible] संहिता ४।८, शतपथब्राह्मण १३।२।८।३)

(Geographical Dictionary of Ancient [illegible] Mediæval India, Page 88, Archæological Surv[illegible] Report 1-255)

आज यह नगर फर्रुखाबाद, फतेहगढ़से [illegible] [illegible]

दिया, पर उसे इस बातपर विश्वास न हुआ कि कोई मनुष्य चींटीकी बात भी समझ सकेगा। अन्तमें वह प्राण छोड़नेपर तैयार हो गयी। राजाने भगवान्की शरण ली। भगवान्ने स्वप्नमें अगले दिन कल्याण-प्राप्तिका आश्वासन दिया। दूसरे दिन जब वह राजा अपने मन्त्रियोंके साथ सरोवर-स्नानकर चिन्ताकुल-हृदयसे लौट रहा था तो उन चारों ब्राह्मणोंने उसे सुनाकर ये श्लोक पढ़े—

सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ॥

(हरिवंश १। २४। २०-२१, गरुडपुराण १। २१०। २०-२१, पद्म० १। १०)

इतना सुनना था कि ब्रह्मदत्त अपने मन्त्रियोंसहित बेहोश हो गया। फिर जातिस्मरता-योग आदिको प्राप्तकर वह अपने लड़के विष्वक्सेनको राजगद्दीपर बैठाकर वन चला गया। उसकी रानी संनति भी योगिनी ही थी। वह भी उसके साथ वन चली गयी और कहा कि 'मैं सब कुछ जानती हुई भी तुम्हें रास्तेमें मुक्त करना चाहती थी।' इस तरह ये सातों ही मुक्त हो गये।

तर्पण और श्राद्ध

(लेखक—श्रीमूलनारायणजी मालवीय)

भारतवर्षमें रहनेवाले वर्णाश्रम-धर्मके अनुयायियोंको पितृ-ऋणसे उऋण होनेके लिये तर्पण और श्राद्धकी सुन्दर व्यवस्था है। द्विजातियोंको नित्यके कर्म संध्यावन्दनके साथ जलसे तर्पण करनेका आदेश धार्मिक ग्रन्थोंके द्वारा प्राप्त होता है। हिंदू धर्ममें जिस प्रकार जीवित मानवों, पशु-पक्षियों तथा स्थावर-जङ्गमको जलसे तृप्त करनेकी व्यवस्था है, उसी प्रकार मृतकोंको तर्पणके द्वारा भी है। महाराज भगीरथ जिस समय भूतलपर पतितपावनी श्रीगङ्गाजीको लाये, उसी अवसरपर सृष्टिनायक ब्रह्माजीने स्वयं उनके पास पधारकर कहा कि 'नरश्रेष्ठ! सगरके साठ हजार पुत्रोंका उद्धार तुमने कर दिया। अब तुम श्रीगङ्गाजीके पवित्र जलसे अपने पितामहोंका तर्पण करो।'

पितामहानां सर्वेषां त्वमत्र मनुजाधिप।
कुरुष्व सलिलं राजन्! XXXXX ॥

(वाल्मीकि० १। ४४। ७)

सनातनधर्मी गृहस्थित मनुष्योंकी प्रबल इच्छा रहती है कि 'मेरी संतान ऐसी हो जो मरनेके बाद तर्पण और पिण्डदान-से मुझे तृप्त करे।' महाभारतके युद्धके प्रारम्भमें अर्जुन इसीलिये युद्धसे कतराते थे कि—

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥

(गीता १। ४२)

वर्णसंकर होनेसे कुलघातों समस्त कुलको निश्चय ही नरकमें ले जाता है और पिण्डदान तथा तर्पणादि क्रियाओंके लुप्त हो जानेपर उनके पितरोंका अधःपतन होता है।

'पुत्र' शब्दकी व्याख्या यहाँपर की गयी है, उसका सार यह है कि 'पुनाम नरकसे पिताको बचानेवाला ही पुत्र होता है'—

पुंनाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥

(मनु० ९। १३८)

पुत्रसम्बन्धी निम्नलिखित श्लोक एक विद्वान्द्वारा अद्भुत रामायणसे लिया, जिसमें भगवान् रामके पास महाराज दशरथने सुमन्त्रके द्वारा यह संदेश भेजा था—

जीवितो वचनकरणात् क्षयाहे भूरि भोजनात्।
गयायां पिण्डदानेन त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥

इन्हीं सब युक्तियोंसे ग्रन्थोंकी बातोंसे मनुष्योंको प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिलता है और धार्मिक ग्रन्थोंसे रुचि प्राप्त होती है। तर्पण न करनेवालोंके लिये तो यहाँतक लिखा है कि—

नास्तिक्यादथवाऽऽलस्यात् तर्पणं न करोति यः।
पिबन्ति देहनिःस्रावं पितरोऽस्य जलार्थिनः॥

अर्थात् नास्तिकतासे अथवा आलस्यसे जो पुत्र तर्पण नहीं करता, उसके पितर निराश होते हैं और देहसे निकले दूषित पदार्थ पीते हैं।'

भगवान् रामको अपनी वनयात्रामें कई जगहोंपर तर्पण और पिण्डदान करना पड़ा था। सर्वप्रथम भरतजी-द्वारा जिस समय पिताके स्वर्गवासकी सूचना मिली, उस समय दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके आपने जलसे तर्पण किया और कहा—

> एतत् ते राजशार्दूल विमलं तोयमक्षयम्।
> पितृलोकगतस्याद्य मद्दत्तमुपतिष्ठतु॥
> (वाल्मीकि० २। १०३। २७)

'मेरे पूज्य पिता, राजशिरोमणि महाराज! आज मेरा दिया हुआ यह निर्मल जल पितृलोकमें गये हुए आपको अक्षय रूपसे प्राप्त हो।'

अधिकतर गोदुग्धद्वारा पकायी खीर, जौके आटे अथवा मावाके द्वारा पिण्ड बनाये जाते हैं; किंतु भगवान् रामने इंगुदीके गूदेमें बेर मिलाकर पिण्ड तैयार किया और कहा कि 'महाराज! प्रसन्नतापूर्वक यह भोजन स्वीकार कीजिये; क्योंकि आजकल यही हमलोगोंका आहार है। मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है, वही उसके देवता भी ग्रहण करते हैं'—

> इदं भुङ्क्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्।
> यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः॥
> (वाल्मीकि० २। १०३। ३०)

जिस समय पक्षिराज जटायु श्रीसीताजीके हरणके समय रावणके द्वारा हत हुआ था—अन्तिम श्वास ले रहा था, उस समय भगवान् रामने जटायुको गोदमें उठा लिया। किसी भक्त कविका कहना है कि—

> अधम जाति को गीध अपावन नित ही मांस अहारी।
> तेहि दई गति पितु समान तुम सुभग गोद बैठारी॥

जटायुके स्वर्ग प्राप्त होनेके बाद भगवान् रामने इनका दाह-संस्कार किया और गोदावरीके जलसे जलाञ्जलि दी तथा रोहीके गूदेके द्वारा पिण्ड बनाकर कुशापर रख पिण्ड-दान किया। 'ब्राह्मणगण परलोकवासीको स्वर्गप्राप्ति करानेके उद्देश्यसे जिन पितर-सम्बन्धी मन्त्रोंका जप बतलाते हैं, उन सब मन्त्रोंका जप भगवान् रामने किया'—

> यत् तत् प्रेतस्य मर्त्यस्य कथयन्ति द्विजातयः।
> तत्स्वर्गगमनं पित्र्यं तस्य रामो जजाप ह॥
> (वाल्मीकि० ३। ६८। ३४)

वनमें घूमते हुए जिस समय भगवान् राम अत्रिमुनि-के आश्रममें पहुँचे, उस समय ऋषिने कहा कि 'आप पितामह ब्रह्माजीद्वारा निर्मित पुष्करतीर्थमें जाकर अपने स्वर्गवासी पिताजीके लिये तर्पण और पिण्डदान कीजिये।' पुष्कर पहुँचकर भगवान् रामने इंगुदी, बेर, आँवले और पके बेलके द्वारा पिण्डदान किया तथा श्रीलक्ष्मणद्वारा एकत्रित कंदमूलसे ब्राह्मणोंको भोजन कराया। जिस समय ब्राह्मणमण्डली भोजन कर रही थी, उस समय श्रीसीताजी वहाँसे चली गयीं। श्रीरामजीने इसका कारण पूछा तो श्री-जानकीजीने कहा कि 'ब्राह्मणोंके साथ महाराज दशरथ वहाँ उपस्थित थे, इसलिये श्वशुरके सामनेसे जो मर्यादा है उसीको रखनेके लिये वहाँसे चली गयी थी।' इसीसे मिलती-जुलती बात पूज्य महामना मालवीयजी महाराजने प्रयागमें त्रिवेणीतट-पर सनातनधर्म सभामें भारतके प्रसिद्ध धार्मिक विद्वानोंके सम्मुख कही थी कि 'जिस समय मैं गयामें पिण्डदान कर रहा था, उस समय मुझे पूर्ण भासित हुआ कि मेरे दिये हुए पिण्डको प्रत्यक्षरूपसे कोई दोनों हाथोंसे ले रहा है।' आश्विन मासके पितृपक्षमें महामनाजी श्राद्ध करते थे। एक बार मुझे भी आपके यहाँ ब्राह्मण-भोजनमें सम्मिलित होना पड़ा था। महामनामें मैंने जो श्रद्धा देखी, विशेषकर देखा वह अन्यत्र मुझे देखनेको नहीं मिला। आश्विनके श्राद्धके सम्बन्धमें यह पढ़ा जाता है—

> सूर्ये कन्यागते श्राद्धं यो न कुर्याद् गृहाश्रमी।
> धनपुत्राद्दि तस्य पितृनिःश्वासपीडनात्॥

श्राद्धके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें बहुत कुछ लिखा गया है। ब्राह्मणभोजनमें सुपात्रको जहाँ भोजन करानेका महत्त्व है, वहीं भोजनकी सामग्रीपर भी ध्यान दिया गया है। नीचे लिखी हुई—कुम्हड़ा, भैंसका दूध, बिल्वपत्र आदि चीजोंका पूर्ण निषेध पाया जाता है—

> कूष्माण्डं महिषीक्षीरं बिल्वस्याकेऽष्टकादिकम्।

—और ब्राह्मणभोजनमें—

> संस्कृत्य व्यञ्जनाद्यं च पयोदधिघृतान्वितम्।
> श्रद्धया दीयते यस्माच्छ्राद्धं तेन निगद्यते॥

विष्णुपुराणमें आया है कि 'श्राद्धकालमें भक्ति और विनय निवेदनसे उत्तम ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन कराने और इससे असमर्थ होनेपर, जो श्राद्धमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको कुछ धान्य और थोड़ी भी दक्षिणा देगा, उसका श्राद्ध भी हुआ

होगा। यदि इसमें भी असमर्थ हो तो केवल शाक, तिलोंसे जलाञ्जलि देनी चाहिये। यदि यह भी नहीं कर सके तो कहींसे गौका चारा लाकर प्रीति और श्रद्धापूर्वक गौको खिला दे। सभी वस्तुओंके अभावमें एकान्तमें श्रीसूर्य आदि दिक्पालोंसे हाथ उठाकर उच्चस्वरसे कहे कि 'मेरे पास श्राद्ध-कर्मके योग्य न वित्त है, न और कोई सामग्री है; अतः मैं अपने पितृगणको नमस्कार करता हूँ, वे मेरी भक्तिसे ही तृप्ति-लाभ करें।'

न मेऽस्ति वित्तं न धनं च नान्य-
च्छ्राद्धोपयोग्यं स्वपितॄन्नतोऽस्मि ।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥
(विष्णुपुराण ३ । १४ । ३०)

श्रीसनत्कुमारजीका कहना है कि 'विशुद्ध चित्त, शुद्ध धन, प्रशस्त काल, योग्य पात्र और परम भक्ति—ये सब मनुष्यको इच्छित फल देते हैं।'

आयुर्वेदमें पुनर्भव

(लेखक—डा० पं० श्रीवासुदेवजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद बृहस्पति)

पुनर्जन्म समग्र आस्तिक भारतीय साहित्यका सर्वमान्य सिद्धान्त है। वेद, उपनिषद्, दर्शन तथा पुराणोंमें भी पुनर्जन्मको बिना किसी विवादके भारतीय जीवन-दर्शनका आधारभूत सिद्धान्त मान लिया गया है। नास्तिक-दर्शनोंमें चार्वाक दर्शनको छोड़कर जैन तथा बौद्धधर्मोंमें भी पुनर्जन्मको स्वीकार किया गया है।

भारतीय दर्शनके अनुसार आत्मा नित्य विभु है। उसमें ज्ञातृत्व, भोक्तृत्व तथा कर्तृत्वकी शक्ति नित्यरूपसे निहित है। आत्मा जब 'प्रकृतिस्थ' होता है, तब यह 'जीवात्मा' कहलाता है तथा मन और इन्द्रियोंके माध्यमसे कर्ता, भोक्ता और ज्ञाता बन जाता है। सांख्यदर्शनके अनुसार 'ज्ञ' पुरुष प्रकृतिके साहचर्यसे अपने आपको कर्ता और भोक्ता मान लेता है। जब इस प्रकारका अज्ञान नष्ट होकर तत्त्वज्ञान हो जाता है, तो यह नित्य पुरुष मुक्त हो जाता है।

आयुर्वेद यद्यपि मुख्यरूपसे भौतिक मन और शरीरको अपना विवेच्य एवं चिकित्स्य विषय बनाता है; किंतु इस शास्त्रकी आधारशिला आस्तिक-दर्शन ही है। आयुर्वेदने मुख्यरूपसे सांख्य, वेदान्त और न्यायको अपना आधार बनाया है। आयुर्वेदका प्रमुखतम उद्देश्य ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिके निमित्त एवं [illegible] प्राणीके स्वस्थ शरीर और मनको रोगरहित रखना है; किंतु आत्मरहित मन और शरीर आयुर्वेदके लिये चिकित्स्य नहीं है। आत्मासे युक्त मन और शरीरवाला पुरुष ही आयुर्वेदके विवेचन और चिकित्साका विषय है।

आयुर्वेदके अनुसार मनुष्यमें मुख्यरूपसे तीन एषणाएँ पायी जाती हैं—'प्राणैषणा', 'धनैषणा' तथा 'परलोकैषणा'। आधुनिक मानस शास्त्रके अनुसार मनुष्यमें चौदह मूल प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। इन चौदह मूल प्रवृत्तियोंका अन्तर्भाव एषणात्रयमें सरलतासे किया जा सकता है। उपनिषदोंमें भी तीन एषणा ही मुख्य मानी गयी हैं।

इन तीन एषणाओंका क्रम आयुर्वेदके अनुसार अपरिवर्तनीय है। 'प्राणैषणा' मनुष्यकी आदि और आधारभूत एषणा है। संसारका प्रत्येक प्राणी अपने जीवनको सुरक्षित रखना चाहता है। फिर मनुष्य-जैसे ज्ञानवान् प्राणीके लिये तो प्राणरक्षा और दीर्घ जीवन अनिवार्य तथा अनुपेक्षणीय एषणामें आता है। जब प्राणरक्षाका प्रश्न उपस्थित होता है, तो उसके लिये साधनोंकी प्राप्ति भी आवश्यक हो जाती है। अतएव 'धनैषणा' भी अनिवार्य है। तदनन्तर, मरण तथा

१. [illegible] सूक्ष्मम् ।
[illegible] ॥ १ ॥

[illegible] शरीरं च [illegible] ।
[illegible] ॥ १९ ॥
(च० सू० अ० १)

[illegible] ॥ १९ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ १८ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
([illegible] ११ । २)

धन-सम्पत्तिसे युक्त व्यक्तिको कामोपलब्धिमें कोई अड़चन नहीं होती; अतः आयुर्वेदके अनुसार कामोपलब्धि धनैषणाके अन्तर्गत आ जाती है।

तीसरी और चरम एषणा 'परलोकैषणा' है। प्रत्येक प्राणीकी मृत्यु नियत है, निश्चित ही है। अकालमृत्यु, अपमृत्युको रोकना तथा जीवनको दीर्घ एवं आरोग्यमय बनाना ही आयुर्वेदका उद्देश्य है; अतएव स्वस्थ और साधन-सम्पन्न मनुष्यके हृदयमें यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही है कि 'मैं कहाँसे आया हूँ तथा मृत्युके पश्चात् मेरी स्थिति क्या होगी ?' (चरक सूत्र ११ । २-४)

सामान्य नियतिके अनुसार प्रत्येक प्राणधारी जीवकी मृत्यु नियत भी है; किंतु आयुर्वेदका यह प्रयत्न रहता है कि मनुष्यकी अकालमृत्यु या अपमृत्यु न हो तथा उसे समृद्ध आरोग्यसे युक्त दीर्घजीवन प्राप्त हो। इसके पश्चात् भी यदि प्रत्येक जीवधारीके लिये मृत्यु अनिवार्य है तो अन्य धर्म तथा दर्शनोंके अनुसार आयुर्वेद भी पुनर्जन्मवादी है। इसलिये आयुर्वेदके अनुसार 'परलोकैषणा' मनुष्यकी स्वाभाविक अभिलाषा है।

कुछ लोग—चार्वाक तथा अन्य भौतिक दृष्टिकोण रखनेवाले लोग यह मानते हैं कि जीवनमें माता-पिता समवायीकरण है। अथवा माता-पिताकी आत्मा ही बालकके रूपमें अभिव्यक्त होती है। कुछ लोग प्रकृतिका स्वभाव ही यह मानते हैं, जिसके कारण प्रकृतिके विवर्तनसे चेतन या जीवनकी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकारकी मान्यता आधुनिक विज्ञानकी है। आधुनिक विज्ञानके अनुसार भौतिक गति-विधियोंके तत्त्वोंकी गति विधियाँ स्वतः गतिशील हैं। उसे अन्य कोई न तो प्रेरित करता है और न ही यह किसीके लिये प्रवर्तित होती है। यह तो भूत-जगत्का यह स्वभाव ही है कि उसमें आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है।

कुछ लोग जीवनको पर-निर्माण, कुछ लोग चेतनाको यदृच्छा (भाग्य chance) मानते हैं। आधुनिक विज्ञानके अनुसार Matter का चेतनारूपमें विपरिणाम भी एक chance है।

किंतु आयुर्वेदके आचार्योंके अनुसार मनुष्यकी चरम एषणा परलोक और पुनर्जन्म है। जितने भी भौतिकवादी हैं वे जन्मको भी एक संयोग तथा प्रकृतिका विपरिणाम मानते हैं। वे प्रत्यक्ष प्रमाणको लेकर ही चलते हैं; किंतु प्रत्यक्ष प्रमाणसे हमारे लौकिक कार्य भी सम्पन्न नहीं हो सकते। जैसे—यदि कोई व्यक्ति है कि राम दिनको नहीं खाता, फिर भी मोटा है। तब हम अनुमान लगा लेंगे कि खाये बिना तो मोटा नहीं हो सकता; यदि दिनको नहीं खाता तो रातको खाता होगा। इसी प्रकार धुआँ देखकर आगका अनुमान लगाना तथा किसी गर्भवती स्त्रीको देखकर मैथुनकी कल्पना करना अनुमानपर ही निर्भर है। इसी प्रकार यदि हम आप्तवचनोंपर भी विश्वास नहीं करेंगे तो हमारे पूर्वजोंद्वारा अर्जित ज्ञानराशि हमारे लिये निस्सार हो जायगी और यदि पूर्वार्जित ज्ञानको विश्वासपूर्वक हमने नहीं लिया तो आज तक जिस सभ्यता तथा ज्ञान-विज्ञानका विकास हुआ है, यह सब हमारे लिये निरर्थक सिद्ध होगा तथा हम पुनः आदि-मानवकी स्थितिमें पहुँच जायँगे।

इसी प्रकार माता-पिताको जन्ममें समवायी नहीं माना जा सकता। मानवीय या पशु-पक्षियोंकी सृष्टिमें तो माता-पिता निमित्त कारण हैं; किंतु स्वेदज तथा उद्भिज्ज सृष्टिमें तो माता-पिता नहीं होते। यहाँ हम माता-पिताको जन्मका समवायी कारण कैसे स्वीकार करेंगे!

आयुर्वेदके अनुसार जगत्में सत् और असत्—दो प्रकारकी निर्मिति है। इस सत् और असत्को जाननेके लिये चार (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द) प्रमाणोंको आधार मानकर सदसद् वस्तुकी परीक्षा करनी चाहिये।

इन आप्तवचन, प्रत्यक्ष, अनुमानोंके द्वारा यह सिद्ध होता है कि मनुष्यका पुनर्जन्म होता है तथा आत्मा मन और मनके माध्यमसे कर्मोंका उपभोग करता है।

आयुर्वेद (भारतीय वैद्यक-शास्त्र) की दृष्टिसे देह-विवेचन और देह-निवृत्ति

(लेखक—प्राध्यापक पं० काकुभाई दुर्गाशङ्कर दवे 'भानु', संस्कृत-साहित्य-व्याकरण-वेदान्त-ज्योतिष-आयुर्वेदाचार्य, संस्कृत-काव्य-पुराण-तीर्थ, जैनदर्शनशास्त्री, धर्मविशारद, संस्कृत-साहित्य-धर्मशास्त्र-पुराण-आयुर्वेद वक्ता)

भारतीय मुख्य-तत्त्व-विवेचकोंका मन्तव्य है—

पुनर्दाराः पुनर्वित्तं पुनः क्षेत्रं पुनः सुतः।
पुनः श्रेयस्करं कर्म न शरीरं पुनः पुनः॥[1]

महाकवि कालिदासकी भी एक मनोहारिणी उक्ति है—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'[2]

'शरीर' शब्दकी व्युत्पत्ति है—शृ धातुको ईरन् प्रत्यय लगनेसे 'शरीर' शब्द (नपुंसकलिङ्गमें) होता है और दिह् धातुको घञ् प्रत्यय होनेसे 'देह' शब्द बनता है। 'काय' शब्द चि धातुको घञ् प्रत्यय होनेसे सिद्ध होता है। तीनों शब्दोंका व्यवहार समानार्थक स्वरूपमें किया जाता है; इसीलिये चरक और सुश्रुत (बृहत्त्रयीकी प्रथम दो) संहिताओंमें 'शारीरस्थान'का संनिवेश है और 'काय-चिकित्सा' (कित् सन् अ=चिकित्साका स्त्रीलिङ्ग) अष्टाङ्ग आयुर्वेदका सर्वप्रथम अङ्ग होनेसे महर्षि सुश्रुतने अपनी संहिताके शारीरस्थानमें यह शरीर कैसे बनता है, अर्थात् देह-निर्माणका मनोमुग्धकारी विवेचन किया है। वाग्भटने भी कहा है।[3]

उपक्रममें महर्षि सुश्रुत कहते हैं—अथातः सर्वभूतचिन्ताशारीरं व्याख्यास्यामः। यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः। (सु० शा० १। १) अर्थात् सर्वसंसार-जङ्गम पदार्थोंके कारणभूत ये पृथिवी इत्यादि, किन कारणोंसे उत्पन्न हुए हैं और उनके लक्षण और कार्य क्या है, यही 'सर्वभूतचिन्ता' है; क्योंकि जबतक शरीरका सम्पूर्ण ज्ञान न हो, तबतक चिकित्सा व्यर्थ हो जाती है।

महर्षि चरक और सुश्रुत प्रणीत संहिताएँ आयुर्वेदके अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ हैं। सांख्यशास्त्रोक्त देह-निर्माणको अंशतः स्वीकार करते हुए महर्षि सुश्रुतने अपने ग्रन्थके शारीरस्थानके उपक्रममें कहा है—

"मूल प्रकृतिके अपर नामसे संज्ञित 'अव्यक्त' जो स्वयं तो कारणरहित है अर्थात् किसीके द्वारा उत्पन्न न होनेसे किसीका विकाररूप नहीं है और सत्त्व, रज और तम—गुणत्रयकी साम्यावस्थाके रूपमें है। उसके अष्ट रूप हैं—अव्यक्त (प्रकृतिस्वरूपी सामान्य धर्मसे युक्त), महत्तत्त्व (बुद्धि अथवा चित्त), अहंकार और शब्दादि पञ्चतन्मात्रा। सर्वजगत्की उत्पत्तिका कारण होनेसे यही मूल कारण (उपादान कारण) है। जैसे समुद्र ही समस्त जल-जन्तुओंका अधिष्ठान है, उसी प्रकार यही 'अव्यक्त' समस्त जीवात्माओंका अधिष्ठान है।"[4]

सुश्रुत शारीरस्थानमें आयुर्वेद स्वीकृत सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हुए कहा गया है—

"इस शास्त्रमें पृथिवी आदि पञ्चमहाभूत और जीवके सम्मिलनसे जो मनुष्य-शरीर होता है, वह 'पुरुष' कहलाता है और इस 'पुरुष'में सब क्रियाएँ संपन्न होती हैं। अतएव यह 'पुरुष' अधिष्ठान अर्थात् आधार है। संसार और ब्रह्म—इन भेदोंसे लोक दो प्रकारका है और दोनों प्रकारका यह लोक आग्नेय (अग्निमय) और सौम्य (चन्द्रमय) है। लोकमें उष्ण और शीत—ये दो ही गुण देखे जाते हैं, उनसे लोकको 'अग्नि-चन्द्रात्मक' कहते हैं। या तो समस्त लोक पृथ्वी आदि पञ्चभूतात्मक है, अथवा उसे 'पञ्चभूतात्मक' कहें तो भी ठीक है। इस लोकके प्राणी चार प्रकार होते हैं—स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज। इन स्थावर-जङ्गमात्मक जीवोंमें श्रेष्ठ मनुष्य शरीर हो, जिसे 'पुरुष' कहते हैं, प्रधान है और इस

---

१. स्त्री, धन, क्षेत्र, पुत्र और श्रेयस्कर कर्म, सब कुछ फिरसे प्राप्त हो सकते हैं; किंतु मनुष्य-शरीर पुनः प्राप्त होना दुर्लभ है (अथवा पुनः कभी होता ही नहीं)।

२. शरीर ही धर्मसाधनाके लिये प्रथम (first and foremost) साधन है।—(कुमारसम्भव पञ्चम सर्ग)

३. [illegible]
[illegible]
(अष्टाङ्गहृदय, सूत्रस्थान, अध्याय १ । [illegible])

४. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

को कुछ है, वह सब मनुष्य-शरीरके गुणोंके साधन-रूप है। फलतः मनुष्य-शरीर ही आयुर्वेदोक्त समग्र क्रियाओंका अधिष्ठान अर्थात् आश्रयरूप है।[५]

अव्यक्त, महत्तत्व, अहंकार, एकादश इन्द्रियाँ, पञ्च तन्मात्राएँ और आकाशादि पञ्च महाभूत—इस प्रकारसे सांख्योक्त चौबीस तत्व परिगणित होते हैं।[६]

इन चौबीस तत्त्वोंका वर्ग 'अचेतन' है। पुरुष अर्थात् जीवात्मा पचीसवाँ है। और यह महत्तत्त्व आदि कार्योंके और अव्यक्तरूप कारणके आभिमानिक संयोगवाला है।[७]

उपर्युक्त निरूपणसे स्पष्ट है कि सांख्य-प्रतिपादित सिद्धान्त केवल अव्यक्तको ही जगत्का मूल कारणरूप मानता है; किंतु आयुर्वेदके आचार्य इस प्रस्तावनाके ऊपर विस्तीर्ण विचार करते हैं और उनके सिद्धान्तानुसार, स्वभाव, ईश्वर, काल, यदृच्छा, पाप, पुण्य और अव्यक्तका परिणाम—इन पदपदार्थोंको जगत्का मूल कारण माना जाता है। आयुर्वेदमें शरीरकी चिकित्सा प्रधानरूपेण है। फलतः अव्यक्तादिका विचार यहाँ इतना आवश्यक नहीं, जितना कि पञ्चमहाभूतोंके गुण-स्वभावादिका विचार; क्योंकि पञ्चमहाभूत ही शरीरकी उत्पत्तिके कारणरूप शुक्र-शोणितादि पदार्थोंके मूल कारण हैं। इसी कारण सांख्यसिद्धान्तसे कुछ भिन्न-स्वरूपसे अर्थात् इन्द्रियों और शब्द-स्पर्शादिको अहंकारसे उत्पन्न न मानकर आयुर्वेद-शास्त्रमें उनकी उत्पत्ति पञ्चमहाभूतोंसे ही मानी गयी है। इतना होते हुए भी जिस इन्द्रियमें जिस महाभूतका विशेष प्रभाव है, उस इन्द्रियसे मनुष्य उसीका गुण ग्रहण करता है। जिस महाभूतका विशेष प्रभाव नहीं है उसके गुण मनुष्य इन्द्रियद्वारा ग्रहण नहीं करता है।

सांख्य-सिद्धान्तानुसार जीवात्मा सर्वव्यापक और [illegible] माना जाता है; किंतु आयुर्वेदके आचार्य इस सिद्धान्तमें कुछ संशोधन कर, जीवात्माको भिन्न-भिन्न और [illegible] असर्वव्यापक मानते हुए भी उसे नित्य मानते हैं। पुण्यानुसार तिर्यक्-मनुष्य-देवयोनियोंकी प्राप्ति [illegible] होती है। यही इस सिद्धान्तका साधक हेतु है। [illegible] अनुभूतिका अनेक्य सर्वसंवेद्य है और 'कर्मानुरूप गतिका सिद्धान्त' इस स्थापनासे परिपुष्ट हो जाता है। [illegible] 'कृतनाश' और 'अकृताभ्यागम' रूपी दोषदर्शी [illegible] भी सम्पूर्णतया नष्ट हो जाती है।

आयुर्वेद-शास्त्रानुसार, इन जीवात्माओंकी [illegible] प्रत्यक्ष प्रमाणसे नहीं, किंतु अनुमान प्रमाणसे ही [illegible] ये परम सूक्ष्म हैं, उनका जन्म नहीं होता; किंतु [illegible] योंके संयोगसे ये प्राकट्यमात्र होते हैं। और (प्राकट्यमात्र) को 'जन्मधारण करना' कहा [illegible] है। ये (जीवात्मा) सांख्यके 'पुरुष' [illegible] ही पाप पुण्यादिके फलोंके साथ, चिकित्साके [illegible] आरोग्यादिका भी भोग करते हैं। [illegible] यह जीवात्मा सांख्य प्रतिपादित 'निरञ्जन पुरुष' न [illegible] आयुर्वेद-निरूपित 'कर्म पुरुष' है।[८] और [illegible] इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, प्राणापान, [illegible] नेत्रोंके उन्मेष-निमेष, बुद्धि, मनसंकल्प, [illegible] विचार, स्मरण, शास्त्रादि-बोध, निश्चय और [illegible] ये उस पुरुषके गुण हैं।

आयुर्वेदका मन्तव्य है कि सांख्योक्त चौबीस [illegible] बने हुए शरीररूपी घरमें जीवात्मा निर्भय, सर्वव्यापक [illegible]

---

५. अस्मिन् शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते। तस्मिन् क्रिया, सोऽधिष्ठानम्। कस्मात्? लोकस्य द्वैविध्यात्। लोको हि द्विविधः स्थावरो जङ्गमश्च। द्विविधात्मक एवाग्नेयः सौम्यश्च तद्भूयस्त्वात्। पञ्चात्मको वा। तत्र चतुर्विधो भूतग्रामः। संस्वेदजजरायुजाण्डजोद्भिज्जसंज्ञः। तत्र पुरुषः प्रधानं तस्योपकरणमन्यत्। तस्मात् पुरुषोऽधिष्ठानम्। (सुश्रुत, सूत्रस्थान, अध्याय १, सूत्र १८-१९)

६. [illegible] तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः। तेभ्यो भूतानि व्योमानिलानलजलोर्व्यः। एवमेषा तत्त्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याता। (सुश्रुत, शारीरस्थान, अध्याय १, सूत्र ६)

७. तत्र सर्व एवाचेतन एष वर्गः। पुरुषः पञ्चविंशतितमः। स च कार्यकारणसंयुक्तश्चेतयिता भवति। (सुश्रुत, शारीरस्थान अध्याय १, सू० ८)

८. [illegible] × × × × [illegible] (सुश्रुत, शारीरस्थान, अध्याय १, सूत्र १६, १७)

निवास करता है। जीवात्माका स्वान्तमन नामका दूत, लिङ्ग-शरीरका आश्रय करके रहता है अतएव वही 'देही' कहलाता है और यह जीवात्मा पाप-पुण्य, सुख-दुःख इत्यादिसे व्याप्त है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, पञ्चम अहंकार, दस इन्द्रियाँ और बुद्धि—इन सोलहोंके साथ यह जीवात्मा मनद्वारा किये गये कर्मरूपी बन्धनोंसे बद्ध होता है और यही जीवात्मा, स्वरूपके अज्ञानसे, प्रपञ्चरूप क्लेशादिसे भी बन्धनको प्राप्त होता है और यही जीवात्मा आत्मज्ञानसे, क्लेशादि बन्धनोंसे मुक्तिकी प्राप्ति करता है। (शार्ङ्गधरसंहिता पूर्व० ५। ७०—७३)

अपने कर्मानुसार, जीवात्माके स्त्री-पुरुषादि शरीरोंके लिये आयुर्वेदशास्त्र ईश्वरकी इच्छाको ही कारण मानता है। (शार्ङ्गधरसंहिता पूर्व० ५। १०—१२)

देहकी निवृत्तिके लिये आयुर्वेदमें कर्मज, दोषज, कर्मदोषज—तीन प्रकारकी व्याधियोंको कारणभूत बताया है।[1]

भारतीय आयुर्वेद-शास्त्र सम्पूर्णतया विकसित विज्ञान (perfectly developed Science) है, इस विज्ञानकी सार्थकता उसकी उपरिनिर्दिष्ट विचारधारासे सिद्ध होती है।

प्राणियोंके जन्म, स्थिति और मरणका ग्रहोंसे सम्बन्ध

(लेखक—पण्डितप्रवर पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा, गौड़, वेदाचार्य)

वेदकी त्रिगुणा विश्वमें विख्यात है। उसके छः अङ्गोंमें ज्योतिष नेत्र होनेके कारण प्रधान माना गया है। महर्षि नारदने कहा है—

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमकल्मषम्॥
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्म न सिद्ध्यति।
तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा॥
(नारदपुराण)

'सिद्धान्त, संहिता और होरा (जातक)—ये तीन स्कन्धरूप ज्योतिषशास्त्र वेदका निर्मल और पुण्यप्रद नेत्र कहा गया है। इस ज्योतिषशास्त्रके बिना कोई भी श्रौत और स्मार्त कर्म सिद्ध नहीं हो सकता। अतः ब्रह्माने संसारके कल्याणार्थ सर्वप्रथम ज्योतिषशास्त्रका निर्माण किया।'

अतः स्पष्ट है कि संसारमें घटनेवाली समस्त घटनाओंका ज्ञान ज्योतिषशास्त्रके द्वारा ही होता है।

प्राणियोंके जन्मसे मरणपर्यन्त समस्त शुभ-अशुभ ग्रहोंके अधीन होते हैं। आकाशमें व्यक्त और अव्यक्त अनेक ग्रह हैं। उनमें सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि—ये सात ग्रह प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं। इनमें भी सूर्य प्रधान हैं; क्योंकि परब्रह्म परमात्मा अपनी शक्ति (प्रकृति) के द्वारा चराचर विश्वकी रचना करनेके समयमें सर्वप्रथम आकाशकी, तदनन्तर सूर्यकी सृष्टि करते हैं। पुनः सूर्यके द्वारा ही अन्य चन्द्र आदि ग्रहों एवं वायु, अग्नि, जल और पृथिवी तथा पृथिवीस्थित प्राणियोंकी सृष्टि, पालन और प्रलयरूप क्रिया करते हैं। इसलिये वेदमें सूर्यको ही चराचर जगत्का आत्मा माना गया है—

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।'
(यजुर्वेद ७। ४२; ऋग्वेद १। ११५। १; अथर्ववेद १३। २। ३५)

तथा—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥
(ऋग्वेद १०। १९०। ३)

अनन्तर सूर्यादि ग्रहोंके इसी प्रकारसे अन्य चर और अचरकी सृष्टि होती है।

गुरु (बृहस्पति) ने लिखा है—

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

1. कर्मजाः [illegible]
([illegible])

पशु-पक्षी आदि जीव भी ग्रहोंके ही अधीन हैं। कालका भी ज्ञान ग्रहोंके अधीन है और कर्मका फल ग्रहोंके द्वारा ही मिलता है। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय—ये सभी ग्रहोंके ही अधीन हैं।'

इसी प्रकार समस्त पुराणोंमें मुनियोंने सूर्यादि ग्रहोंको ही जन्म, पालन और मरणका कारण बतलाया है।

वसिष्ठने अपनी संहितामें कहा है कि 'समस्त उच्चावच प्राणियोंकी सृष्टि आकाशस्थ उच्चावच ग्रहोंकी रश्मिवश ही होती है। उनमें सूर्य और चन्द्रमाके बलानुसार पुरुष और स्त्रीकी सृष्टि होती है। जैसे किसीके गर्भाधानके समयमें सूर्य अधिक बली रहता है तो पुरुषका जन्म होता है और चन्द्रमा अधिक बली रहता है तो स्त्रीका जन्म होता है। यदि दोनोंका तुल्यबल (समानबल) रहता है तो उस गर्भाधानसे नपुंसकका जन्म होता है।

सोमात्मिकाः स्त्रियः सर्वाः पुरुषा भास्करात्मकाः।
आसां चन्द्रवशात् स्त्रीणां नृणां सर्वं हि सूर्यतः॥

'संसारमें समस्त स्त्री चन्द्रमाके अंशसे और पुरुष सूर्यके अंशसे उत्पन्न होते हैं। अतः स्त्रीका शुभाशुभ चन्द्रमाके अनुसार और पुरुषका शुभाशुभ सूर्यके अनुसार होता है।'

इस प्रकार शास्त्रों और पुराणोंमें ग्रहोंकी महत्ता विस्तृतरूपसे वर्णित है।

इसी प्रकार शास्त्रों और पुराणोंमें 'काल'को ही परब्रह्म परमात्मा कहा गया है—

कालः सृजति भूतानि सकलानि हरत्यपि।
स एव कालवशगात् कालो हि भगवान् प्रभुः॥

'काल ही समस्त चराचरकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। इसलिये काल परब्रह्म परमेश्वर हैं।'

भगवान् सूर्यने भी कहा है—

'लोकानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।'
(सूर्यसिद्धान्त)

'काल भगवान्‌के दो रूप हैं—एक समस्त विश्वको उत्पन्न करनेवाला और संहार करनेवाला है, जो कि अव्यक्त, निर्गुण, निराकार और अनन्त है। दूसरा कालात्मक अर्थात् निमेष, पल, दिन, महीना, वर्ष, युग इत्यादि व्यवहारार्थ गणना करने योग्य है, जो कि व्यक्त सगुण और साकार है।'

ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता महर्षियोंने आकाशस्थ नक्षत्र (भगोल) के तुल्य बारह विभागोंको ही मेषादि नामसे बारह राशियाँ कही हैं। ये मेषादि राशियाँ कालपुरुषके मस्तकसे लेकर चरण (पैर) तक क्रमसे अवयव (अङ्ग) हैं।

ग्रहोंमें पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र—ये शुभ (सुधारश्मि) और क्षीण चन्द्र, मङ्गल और शनि—ये पाप (विषरश्मि) तथा सूर्य तीक्ष्णरश्मि है।

गर्भाधान अथवा जन्म-समयमें जिस अङ्गविभाग (राशि) में शुभग्रह रहता है, वह पुष्ट (विकारहीन) तथा जिस अङ्गविभाग (राशि) में पापग्रह रहता है, वह विकृत होता है।

कहा भी है—

शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिवस्तिगुह्यसंज्ञानि
ऊरू जानू जङ्घे चरणाविति राशयोऽजाद्याः।
कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत् प्रसवकाले
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टान् सोपद्रवांश्चापि॥

'मेषादि राशियाँ कालपुरुषके सिर इत्यादि अङ्ग होते हैं। कालपुरुषका मेष सिर, वृष मुख, मिथुन दोनों हाथ, कर्कराशि हृदय, सिंह पेट, कन्या कटि (कमर), तुला वस्ति (नाभि और लिङ्गके बीचका स्थान—पेडू), वृश्चिक लिङ्ग, धनु ऊरू (जाँघ), मकर जानु (ठेहुन), कुम्भ जङ्घा (घुटनाके नीचेका भाग) और मीन दोनों पैर होते हैं। इनका प्रयोजन यह है कि जन्मके समयमें जो राशि शुभग्रहसे युक्त अथवा दृष्ट हो, वह कालपुरुषके जिस अङ्गकी हो, मनुष्यका वह अङ्ग अत्यन्त पुष्ट होता है और यदि राशि पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो, उस राशिके अङ्गमें पीड़ा, घाव इत्यादि होता है। यदि मिश्रग्रह (शुभाशुभ ग्रह) से दृष्ट या युक्त हो, तो उनके बलादिके तारतम्यसे उस-उस अङ्गमें अच्छा या बुरा फल समझना चाहिये।'

इस प्रकार सूर्यादि ग्रह ही कालभगवान्‌के अवयव अन्तरङ्ग हैं। यथा—

आत्मा रविः शीतकरस्तु चेतः
सत्त्वं धराजः शशिजोऽथ वाणी।
ज्ञानं सुखं चेन्द्रगुरुर्मदश्च
शुक्रः शनिः कालनरस्य दुःखम्॥
कालनरस्यो गगनौकसैर्बलिभिर्बलवन्तः।
दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीतः शनेः स्मृताः॥

अर्थात् 'कालभगवान्‌के सूर्य आत्मा, चन्द्रमा मन, मङ्गल सत्त्व, बुध वाणी, गुरु ज्ञान और सुख हैं तथा शुक्र मद (कंदर्प) और शनि दुःख हैं। जन्म-समयमें ये सूर्यादि ग्रह बलवान् हों तो प्राणियोंके आत्मादि बलवान् होते हैं। अतः सूर्य आदि छः ग्रहोंके प्रबल होनेसे शुभ और शनिका प्रबल होना अशुभ (विपरीत) माना गया है। क्योंकि शनि दुःखरूप है; वह जितना निर्बल रहता है उतना दुःख अल्प होता है।'

इसी प्रकार सूर्यादि ग्रह भी कालभगवान्‌की सत्त्व आदि प्रकृति हैं। यथा—

गुरुशशिरवयः सत्त्वं रजः सितज्ञौ तमोऽर्कसुतभौमौ ।
एतेऽन्तरात्मनि स्वां प्रकृतिं जन्तोः प्रयच्छन्ति ॥

'बृहस्पति, चन्द्रमा और सूर्य—ये तीन ग्रह सत्त्वगुणी हैं। शुक्र और बुध—ये दोनों रजोगुणी हैं। शनि और मङ्गल—ये दोनों तमोगुणी हैं। ग्रह अपनी प्रकृतिके अनुसार मनुष्योंकी प्रकृतिको बनाते हैं।'

एते ग्रहा बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम् ।
कुर्युर्देहं नियतं बहवश्च समागता मिश्रम् ॥

'गर्भाधानकालमें इन ग्रहोंमें जो ग्रह बलवान् रहता है, वह अपने स्वरूपके समान ही गर्भस्थ जीवका स्वरूप बनाता है। यदि कई ग्रह बलवान् हों, तो उन सभीके मिश्रित स्वरूपके सदृश अर्भक (बालक) का स्वरूप होता है।'

ग्रहोंके द्वारा ही प्राणियोंके पूर्व और अन्तिम जन्मकी भी स्थिति ज्ञात होती है। यथा—

गुरुरुडुपतिशुक्रौ सूर्यभौमौ यमज्ञौ
विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः ।
दिनकरशशिवीर्याधिष्ठितत्र्यंशनाथात्
प्रवरसमनिकृष्टास्तुङ्गह्रासादनूके ॥

(बृहज्जातक २५ । १४)

'प्राणियोंके जन्म समयमें सूर्य और चन्द्रमामें जो बलवान् हो, वह यदि गुरुके त्र्यंश (द्रेष्काण) में हो तो जातकको पूर्वजन्ममें देवलोकवासी, यदि चन्द्र और शुक्रके त्र्यंशमें हो, तो पितृलोकवासी (चन्द्रलोकवासी), यदि सूर्य अथवा *मङ्गलके त्र्यंशमें हो तो मर्त्यलोकवासी और यदि शनि या* बुधके त्र्यंशमें हो, तो नरकलोकवासी समझना चाहिये। उक्त त्र्यंशपति ग्रह अपने उच्चस्थान, समस्थान या नीचस्थानमें हों, तो उक्त लोकोंमें भी जातकको यथाक्रम उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणीका समझना चाहिये। इसी प्रकार जीवके मरणकालमें भी उक्त त्र्यंशपतिकी स्थितिके अनुसार देवलोक, पितृलोक, मर्त्यलोक अथवा नरकलोकमें अन्तिम जन्म समझना चाहिये।'

इस प्रकार चराचर प्राणियोंके जन्म, स्थिति और मरणसम्बन्धी सुख-दुःख सूर्यादि ग्रहोंके आधारपर ही वेद-वेदाङ्गोंमें वर्णित हैं।

यमराजके कुत्ते

ऋग्वेदमें आया है—

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥

(ऋग्वेदमं० १० । १४ । १०)

हे अग्निदेव ! प्रेतोंके पालक यमराजके दोनों कुत्तोंका उल्लङ्घन करके इस प्रेतको ले जाइये और ले जा करके यमके साथ जो पितर प्रसन्नतापूर्वक विहार कर रहे हैं, उन उत्तम पितरोंके पास पहुँचा दीजिये; क्योंकि ये दोनों कुत्ते देवशुनी सरमाके लड़के हैं और इनकी दो नीचे और दो ऊपर चार आँखें हैं।

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥

(ऋग्वेदमं० १० । १४ । ११)

हे राजन् ! यम आपके घरकी रखवाली करनेवाले आपके मार्गकी रक्षा करनेवाले श्रुति-स्मृति-पुराणोंके विद्वानोंद्वारा ख्यातिप्राप्त चार आँखवाले अपने कुत्तोंसे इसकी रक्षा कीजिये तथा इसे नीरोग बनाइये।

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥

(ऋग्वेदमं० १० । १४ । १२)

यमके दूत ये दोनों कुत्ते लोगोंके पीछे लगे हुए सर्वत्र घूमते हैं। बहुत लंबी नाकवाले ये लोगोंके प्राण लेते हैं और दूसरोंके प्राणोंसे तृप्त होते हैं, बड़े बलवान् हैं। वे दोनों कुत्ते सूर्यके दर्शनके लिये हमें प्राण दें।

ज्योतिषमें पुनर्जन्म और परलोक

(लेखक—राजज्योतिषी पं० श्रीमुकुन्दवल्लभजी मिश्र, ज्योतिषाचार्य)

इस देहधारी जीवका मरणोपरान्त पुनर्जन्म होना ध्रुव सत्य है । योगेश्वर प्रभु श्रीकृष्णने अपने श्रीमुखसे वीर अर्जुनके प्रति उपदेश करते हुए कहा है—'अर्जुन ! जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है, और मरनेवालेका पुनर्जन्म भी निश्चित है ।' (गीता २ । २७)

ज्योतिःशास्त्रके प्रवर्तक पराशरादि महर्षियों तथा वराहमिहिरादि आचार्योंने भी मरणोत्तर इस जीवका पुनर्जन्म कहाँ होगा;—इस बातका योग-दृष्टिसे जो निर्णय किया है, उसका दिग्दर्शन कराया जाता है । सर्वप्रथम पूर्वजन्मकालीन लोकस्थानके विषयमें ज्योतिःशास्त्रकी दृष्टिसे विचार करते हैं । आचार्य वराहमिहिर (बृहज्जातक ५ । १४)के अनुसार—गुरु, चन्द्र, शुक्र, सूर्य, मङ्गल, शनि, बुध—ये ग्रह क्रमशः देवलोक, पितृलोक, तिर्यक्लोक (मर्त्यलोक) एवं नरकलोक—इनसे आये हुए प्राणियोंको सूचित करते हैं । इसे देखनेकी रीति यह है कि जन्मकालमें सूर्य और चन्द्र—इन दोनोंमेंसे जो अधिक बली हो, वह जिस द्रेष्काणमें हो, उस द्रेष्काणका स्वामी गुरु हो तो वह प्राणी देवलोकसे आया है—ऐसा समझना चाहिये । यदि चन्द्रमा या शुक्र उक्त द्रेष्काणके स्वामी हों तो पितृलोकसे, यदि सूर्य एवं मङ्गल उक्त द्रेष्काणके पति हों तो तिर्यक् (मर्त्य)-लोकसे और यदि शनि या बुध उक्त द्रेष्काणपति हों तो प्राणी नरकलोकसे आया है,—ऐसा समझे । अब 'पूर्वजन्ममें प्राणी किस प्रकारका था'—इस विषयमें विचार करते हैं । यदि उक्त लोकोंसे आये हुए प्राणियोंको सूचित करनेवाले ग्रह अपने उच्चके गम्भीर-स्थानोंमें स्थित हों तो प्राणी अपने अतीत (पूर्वजन्म) में देवादिलोकोंमें भी श्रेष्ठ था । यदि वही ग्रह अपने उच्च-नीचके मध्यमें स्थित हों तो उन प्राणियोंको वहाँ देवादि लोकमें भी मध्यम श्रेणीका समझें । यदि वही ग्रह नीचके गम्भीर-स्थानोंमें स्थित हों तो देवादि लोकमें भी वह नीच श्रेणीका था—ऐसा समझना चाहिये ।

मरणोपरान्त जीवकी गतिके सम्बन्धमें ज्ञानका विषय अत्यन्त गहन है । यद्यपि भौतिक-ज्ञान-विज्ञान इस युगमें इस योग-दृष्टिगम्य रहस्यकी भले ही कोई उपेक्षा करे, तथापि योगानुभवगम्य इन सैद्धान्तिक तत्त्वोंकी सत्यता इस अनुसंधानकी अपेक्षा रखती है । मरणानन्तरगति-स्थान बताने विषयमें पूर्वोक्त आचार्य (बृहज्जातक २५ । १५)के विचार प्रस्तुत हैं—

जिसके जन्म-लग्नसे षष्ठ-अष्टम-सप्तम स्थानोंमें ग्रह स्थित हों, उनमेंसे जो बलवान् हो, उसका जो पूर्वोक्त कथित लोक है, उस लोकको (गति, अर्थात्) मरनेपर प्राणी जाता है । यदि षष्ठ, अष्टम, सप्तम इन स्थानोंमें ग्रह न हों तो छठे, आठवें इन दोनों भावोंमें जिन द्रेष्काणोंका उदय हो, उन दोनों द्रेष्काणोंके स्वामियोंमें जो बली हो, उसका जो पूर्वोक्त देवादि लोक कहा गया है, वह उस लोकमें जाता है ।

भारतीय दर्शनोंमें मानव-जीवनका चरम लक्ष्य माना गया परब्रह्म आत्मसाक्षात्कार ही है । मरणोपरान्त गति-सम्बन्धी ज्ञानका निर्णय करते समय भारतीय दर्शनके मुख्य विषयको भी चिरंतन आचार्योंने अछूता नहीं छोड़ा । इस विषयमें पूर्वोक्त आचार्यके अनुसार यदि उच्च राशिमें स्थित होकर गुरु लग्नसे छठे, केन्द्र या आठवें स्थानमें स्थित हो तो वह प्राणीको मुक्त करता है । अथवा मीन राशि शुभ ग्रहसे युक्त होकर लग्नमें स्थित हो तथा इन योगोंमें अन्य ग्रह निर्बल हों तो उस प्राणीको मोक्ष-लाभ होता है ।

गुरुरुच्चो भवनषडष्टकण्टकस्थे पञ्चांशके [illegible]।
[illegible] सह [illegible] [illegible] ॥

'जिसके जन्म-समयमें बलवान् गुरु [illegible] होकर [illegible] लग्नमें प्राप्त हो, और तीन या चार ग्रह केन्द्रमें हों तो वह प्रभावको प्राप्त करता है ।' इस विषयमें [illegible] प्रकार जन्म-लग्नसे शुभगति-अशुभगतिका ज्ञान होता है, उसी प्रकार मरणकालिक लग्नसे भी देखना चाहिये—ऐसा ज्योतिःशास्त्रके अनुभवी कुछ विद्वानोंका कहना है ।

लग्नमें अथवा स्थानगत केवल शुभग्रह ही हों तो मरणोत्तर शुभगति प्राप्त होती है । यदि [illegible] शुभग्रह [illegible] ग्रह-स्थिति हो, मरणमें अशुभ ही [illegible] लोकोंमें जाता है । जन्म और मरण दोनों कालकी यदि [illegible] अशुभ हों तो अधोगति (नरकलोकादि) होती है ।

(१) कुण्डलीमें कहींपर भी यदि उच्च (कर्कराशि) का बृहस्पति स्थित हो, तो जातककी अन्त्येष्टि धूमधामसे होती है तथा मृत्युके पश्चात् उत्तम कुलमें जन्म होता है।

(२) लग्नमें उच्चराशिका चन्द्रमा हो तथा कोई पापग्रह उसे न देखते हों तो जातककी सद्गति होती है तथा वह अपने पीछे कीर्ति-कथाएँ छोड़ जाता है।

(३) अष्टमस्थ राहु जातकको पुण्यात्मा बना देता है तथा मरनेके पश्चात् वह राज्यकुलमें जन्म लेता है, ऐसा विद्वानोंका कथन है।

(४) अष्टम भावपर मङ्गलकी दृष्टि हो तथा लग्नस्थ भौमपर नीच शनिकी दृष्टि हो तो जातक रौरव नरक भोगता है।

(५) अष्टमस्थ बुधपर गुरुकी दृष्टि हो तो जातक मृत्युके पश्चात् वैश्यकुलमें जन्म लेता है।

(६) अष्टम भावपर मङ्गल और शनि—इन दोनों ग्रहोंकी पूर्ण दृष्टि हो तो जातक अकाल मृत्युसे मरता है।

(७) अष्टम भावपर शुभ-अथवा अशुभ किसी भी प्रकारके ग्रहकी दृष्टि न हो और न अष्टम भावमें कोई ग्रह स्थित हो तो जातक ब्रह्मलोक प्राप्त करता है।

(८) लग्नमें गुरु-चन्द्र, चतुर्थ भावमें तुलाका शनि एवं सप्तम भावमें मकर राशिका मङ्गल हो तो जातक जीवनमें कीर्ति अर्जित करता हुआ मृत्यु-उपरान्त ब्रह्मलीन होता है।

(९) लग्नमें उच्चका गुरु चन्द्रको पूर्ण दृष्टिसे देख रहा हो, एवं अष्टमस्थान ग्रहोंसे रिक्त हो तो जातक जीवनमें सैकड़ों धार्मिक कार्य करता है तथा प्रबल पुण्यात्मा एवं मृत्युके उपरान्त सद्गतिका अधिकारी होता है।

(१०) अष्टम भावको शनि देख रहा हो तथा अष्टम भावमें मकर या कुम्भ राशि हो तो जातक योगिराज-पद प्राप्त करता है तथा विष्णुलोक प्राप्त करता है।

(११) यदि जन्म-कुण्डलीमें चार ग्रह उच्चके हों तो जातक निश्चय ही श्रेष्ठ मृत्युका वरण करता है, एवं पीछे अक्षयकीर्ति-पट स्थापित कर देता है।

(१२) एकादश भावमें सूर्य-बुध हों, नवम भावमें शनि तथा अष्टम भावमें राहु हो, तो जातक मृत्युके पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है।

विशेष योग

(१) द्वादशभाव शनि, राहु या केतुसे युक्त हो, फिर अष्टमेशसे युक्त हो अथवा षष्ठेशसे दृष्ट हो तो मरनेके बाद दुर्गति होगी—यों समझना चाहिये।

(२) गुरु लग्नमें हो, शुक्र सप्तममें हो, कन्याराशिका चन्द्रमा हो एवं धनुलग्नमें मेषका नवांश हो तो जातक मृत्युके पश्चात् परमपद प्राप्त करता है।

(३) अष्टमभावको गुरु, शुक्र और चन्द्र—तीनों ग्रह देखते हों तो जातक मृत्युके पश्चात् श्रीकृष्णके चरणोंमें स्थान प्राप्त करता है, ऐसा आर्षमुनियोंका कथन है।

भगवद्भक्तका महत्त्व

मद्भक्तियुक्तो मर्त्यश्च स मुक्तो मद्गुणान्वितः। मद्गुणाधीनबुद्धिर्यः कथाविष्टश्च संततम्॥
मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः। सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च॥
न वाञ्छति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम्। ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने॥
इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम्। स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि च न वाञ्छति॥

श्रीभगवान् कहते हैं—मुझमें भक्ति रखनेवाला मनुष्य मेरे गुणोंसे सम्पन्न होकर मुक्त हो जाता है। उसकी बुद्धि मेरे गुणोंका अनुसरण करने लगती है। वह सदा मेरी कथा-वार्तामें लगा रहता है। मेरा गुणानुवाद सुननेमात्रसे वह आनन्दमें मग्न हो उठता है। उसका शरीर पुलकित हो जाता है और वाणी गद्गद हो जाती है। उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगते हैं और वह अपनी सुधि-बुधि खो बैठता है। मेरी सेवाके सिवा [illegible] चार प्रकारकी मुक्ति, ब्रह्माका पद अथवा अमरत्व कुछ भी पानेकी अभिलाषा वह नहीं करता। इन्द्र एवं मनुके उत्तम पद तथा स्वर्गके राज्यका सुख—ये सभी परम दुर्लभ हैं किंतु मेरा भक्त स्वप्नमें भी इनकी इच्छा नहीं करता।

(हिंदी-भागवत, [illegible])

रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०, बी० लिट्०)

शीर्षकस्थ शास्त्रभित वाक्यका तात्पर्य गवेषणीय है । विचारणीय है कि पुनर्जन्म होता ही क्यों है । भगवद्-दर्शनसे पराङ्मुख जीव इस भवार्णवमें निरन्तर जन्मता है और मरता है । भगवान्‌के दिव्यरूपका दर्शन तथा उनमें सात्त्विक भक्ति ही जीवको मुक्ति देनेमें समर्थ होती है । 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'—यह शास्त्रका सर्वथा सत्य वचन है । फलतः ज्ञानकी प्राप्ति मुक्तिकी साधिका है—इस सार्वभौम सिद्धान्तमें किसी प्रकारकी विप्रतिपत्ति नहीं है ।

पूर्वोक्त वाक्यका सामान्य अर्थ है कि 'रथपर स्थित वामनके दर्शन करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता ।' आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको जगन्नाथपुरीमें जो रथयात्रा होती है और श्रीकृष्ण रथपर चढ़कर अपनी ससुरालमें जो जाते हैं, उन्हें देखनेके लिये लाखों मनुष्योंकी भीड़का रहस्य इसी वाक्यमें अन्तर्निहित है । जगन्नाथजी वामनके प्रतिनिधि माने जाते हैं और रथस्थ जगन्नाथजीका दर्शन मुक्तिका साधक होता है—इसी भावनासे प्रेरित होकर श्रद्धालु जनता रथयात्राके उत्सवमें सम्मिलित होती है । यह तो हुआ इसका भौतिक तात्पर्य ।

इस वाक्यका आध्यात्मिक तात्पर्य बड़ा गम्भीर है । वामन छोटे रूपमें पड़ता-पड़ता इतना विशाल होता है कि वह समस्त ब्रह्माण्डको तीन ही पगोंमें नाप डालता है । इस प्रकार वह ब्रह्मका प्रतिनिधि है, जो 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' है । ब्रह्म अणुसे भी अणुतर है तथा महत्से भी महीयान् है । रथ इस शरीरका ही बहुचर्चित प्रतीक है । रथ बड़ा ही विशद प्रतीक है—नाना इन्द्रियोंके द्वारा परिचालित मनके द्वारा निगृहीत शरीरका । कठोपनिषद्के इस सुन्दर रूप-कल्पना बड़ी प्रख्यात है—

> आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
> बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
> (१ । ३ । ३)

फलतः रथस्थ वामनका अर्थ है—शरीरके ऊपर स्थित आत्मा, जो रथी (अर्थात् रथके स्वामी) की तरह इसका नियन्त्रण करता है तथा उचित कार्योंमें लगाता है । रथ-रूपक यहाँ इस विशेष तात्पर्यसे प्रयुक्त है कि जिस प्रकार सारथि लगामके द्वारा कुमार्गसे बचाकर सुमार्गमें ले जाता है, उसी प्रकार परमात्मा इसको नियन्त्रित करता है । वामनके दर्शनका अर्थ है—'आत्माका साक्षात्कार आत्माके सच्चे अर्थका ज्ञान ।' कहना नहीं होगा कि आत्माके साक्षात्कारके लिये पुनर्जन्मका विधान नहीं है । फलतः वह जीवन्मुक्त हो जाता है और पुनः इस संसारके बन्धनमें कभी नहीं पड़ता ।

धर्मकी महत्ता

धर्मसे अर्थ, अर्थसे काम और कामसे धर्मरूप सुख उत्पन्न होते हैं । धर्मसे ही ऐश्वर्य, एकाग्रता और उत्तम स्थिति प्राप्त होती है । मित्रवरो ! धर्मका यदि सेवन किया जाय तो वह मनुष्यकी महान् अपनी रक्षा करता है । इसमें संदेह नहीं कि धर्मसे वैराग्य और ब्रह्मज्ञान भी प्राप्त हो सकते हैं । अब मनुष्योंके पुण्यक्षीण होकर मर जाते हैं, तब उनकी बुद्धि इस लोकमें धर्मकी ओर लगती है । हजारों जन्मोंके बाद दुर्लभ मनुष्य-जीवनको पाकर जो धर्मका आचरण नहीं करता, वह निश्चय ही भीतरसे वञ्चित है । जो लोग कुलीन, दरिद्र, कुरूप, रोगी, दूसरोंके सेवक और मूर्ख हैं, उन्होंने पूर्व-जन्ममें धर्म नहीं किया है—ऐसा मेरा मत है । जो दीर्घायु, शूरवीर, पण्डित, भोग-सामग्रीसे सम्पन्न, धनवान्, नीरोग और रूपवान् हैं, उन्होंने पूर्वजन्ममें अवश्य ही धर्मका अनुष्ठान किया है । ब्राह्मणो ! इस प्रकार धर्मका सेवन करनेवाले मनुष्य शुभ गतिको प्राप्त होते हैं और अधर्मका सेवन करनेवाले पशु-पक्षियोंकी योनिमें जाते हैं ।

'रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते'

(लेखक—श्रीफणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय)

श्रीविवेकानन्द स्वामीजीका कथन है कि मनुष्य पार्थिव विषयभोगकी लालसासे निवृत्त हो; क्योंकि प्रार्थनासे तुष्ट भगवान् समस्त लालसाओंकी पूर्ति करते हैं। वैसे जीवको बारंबार जन्म ग्रहण करना पड़ता है, त्रिताप-ज्वालासे जर्जरित होना पड़ता है; अतः भगवान्‌को केवल भगवान्‌का ही अन्वेषण करना चाहिये। स्रष्टा तथा सृष्टितत्त्वको ज्ञात करनेकी चेष्टा करनी चाहिये, जो मोक्षप्रद है।

तत्त्वद्रष्टा ब्रह्मपुराणके प्रणेता महामनीषीने इन तत्त्वोंसे सम्बन्धित संदेशके विवरणके प्रसङ्गमें लिखा है—

यस्मात् सर्वमिदं प्रपञ्चरचितं मायाजगज्जायते
यस्मिंस्तिष्ठति याति चान्तसमये कल्पानुकल्पे पुनः।
यं ध्यात्वा मुनयः प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं ध्रुवं
तं वन्दे पुरुषोत्तमाख्यममलं नित्यं विभुं निश्चलम्॥

"इस प्रपञ्चमय निखिल माया-जगत्‌की जिनसे सृष्टि हुई है, जिनमें यह अवस्थान करता है और प्रलयोंमें जिनमें बारंबार विलयको प्राप्त होता रहता है, अथच जो प्रपञ्चरहित हैं, जिन परम तत्त्वका ध्यान करके मुनिगण मोक्षपद प्राप्त करते हैं; 'पुरुषोत्तम'—नामसे अभिहित नित्य निर्मल निश्चल अन्तर्यामी वे विभुव्यापी भगवान् वन्दनीय हैं।"

यह रस-गन्ध-स्पर्शमय जगत् कहाँसे आया है? तत्त्वदर्शियोंका सिद्धान्त है कि यह मायारचित है। माया कहाँ अधिष्ठित है? सर्वकारणोंका कारण ब्रह्म ही अनिर्वचनीया मायाका अधिष्ठान है। अतएव ब्रह्मका ध्यान एवं उनकी उपासनामें ही मानव-जीवनकी सार्थकता है।

सर्वदा सर्वत्र सब भावोंसे अवस्थित, निर्लिप्त, सर्वज्ञ, शाश्वत तथा अक्षर—सभी गुणोंके आदि तथा अनन्त आत्मस्वरूप वह सभीके शरीर प्रकाशित हों। ज्ञानीकी दृष्टिमें जो तत्त्व हैं, योगीके निकट जो परमात्मा हैं, भक्तोंके हृदयमें वे ही भगवान् हैं।

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'

(गीता १८।६१ पूर्वार्ध)

'ईश्वर समस्त भूत प्राणियोंके हृद्देशमें स्थित है।' हमारे शरीरस्थ हृदयमें जो स्थित हैं, वे ही आत्मा हैं। आत्मा सूक्ष्म है, इसीलिये वे 'वामन' नामसे भी अभिहित होते हैं। इसीलिये शास्त्रमें प्रसिद्ध है कि हमारा शरीर देवमन्दिर है। इस मन्दिरके देवता ही चेतन देवता हैं। चलनशक्ति-सम्पन्न होनेके कारण शास्त्रकारोंने हमारे शरीरको 'रथ'की आख्या प्रदान की है। इस शरीर या रथमध्यस्थ हृदयके देवताके दर्शन प्राप्त होनेसे जीवका पुनर्जन्म निवारित होता है। इसीलिये कहा गया है—

'रथस्थं वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते।'

आत्मदर्शन मानव-साधनासापेक्ष है। मानवेतर जीवोंमें साधना-सामर्थ्य नहीं है। इसीलिये वे आत्मदर्शनमें समर्थ नहीं होते। फिर, सभी मनुष्य मोक्षप्रद साधनमार्गका अनुसरण नहीं करते। क्यों?

गन्ध-मृग जिस प्रकार स्वनाभि-निःसृत गन्धका संधान न पाकर उस गन्धसे क्षुब्ध होकर इधर-उधर दौड़ता है, उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य भी अपने चित्स्वरूपसे भ्रान्त होकर उसकी प्राप्तिकी आशासे विषयमत्त होकर जन्म-मृत्युरूप इस संसार-प्रवाहमें आवर्तित होता रहता है। कोई-कोई भाग्यवान् पुरुष बहुजन्मार्जित पुण्यकर्मोंके प्रभावसे विशुद्धचित्त होकर, परम कृपालु किसी सिद्ध महात्माके द्वारा उपदिष्ट होकर अपने आत्माका संधान प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। सर्वशास्त्रविद् आचार्य शंकरने आत्माके अनुसंधानके प्रसंगमें कहा है—

मा भैष्ट विद्वंस्तव नास्त्यपायः
संसारसिन्धोस्तरणेऽस्त्युपायः।
येनैव याता यतयोऽस्य पारं
तमेव मार्गं तव निर्दिशामि॥
श्रद्धाभक्तिध्यानयोगान्मुमुक्षोः
मुक्तेर्हेतून् वक्ति साक्षाच्छ्रुतेर्गीः।
यो वा एतेष्वेव तिष्ठत्यमुष्य
मोक्षोऽविद्याकल्पिताद्देहबन्धात्॥

(विवेकचूडामणि ४५, ४८)

हे विद्वन्! डरो मत, तुम्हारा विनाश नहीं है। संसारसिन्धुसे तरनेका उपाय है। जिस उपायसे यतिगण

यह नहीं सोचता कि उसे एक दिन मरना ही है। अतएव मनुष्य-जन्मके परम लक्ष्य आवागमनके चक्करसे मुक्ति पानेके लक्ष्यको विस्मृत कर देता है, इससे अन्तकालमें उसी संसारका उसे स्मरण होता है। परंतु जिस महात्माको अपने लक्ष्यका स्मरण रहता है, वह परमेश्वरको सदा-सर्वदा, सब समय स्मरण करता रहता है; उसे शीघ्र ही भगवान् मिल जाते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

> अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
> तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥
> (गीता ८। १४)

'हे अर्जुन! जिस मनुष्यकी ऐसी भावना बन जाती है कि अन्य कुछ नहीं है (केवल एकमात्र परमेश्वर है) और यो समझकर जो नित्य निरन्तर मुझे स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगीको मैं सुलभतासे मिल जाता हूँ।'

नित्ययुक्त योगी किस तरह होना सम्भव है, यह विचारना है। भगवान्‌में प्रेम लगानेके लिये उनके प्रति अगाध श्रद्धा रखनी होगी। बिना श्रद्धा ईश्वरकी प्राप्ति नहीं होती, श्रद्धावान् ही भगवान्‌का प्रिय होता है। श्रद्धावान्‌को ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है, ईश्वरके प्रति श्रद्धावान बननेपर ही मनुष्य सांसारिकतासे छुटकारा पा सकता है। भगवान्‌ने श्रद्धाका महत्त्व गीतामें भली प्रकार समझाया है।

उन्होंने कहा है—'श्रद्धावान् सभी कर्मोंसे छूट जाते हैं।' 'श्रद्धावान् मुझमें लगा हुआ पुरुष इन्द्रिय संयम करके ज्ञानको प्राप्त करता है।' 'श्रद्धावान् मुझ परमेश्वरको स्मरण करता है, वह मुझसे युक्त है—ऐसा मेरा विचार है।' 'जो श्रद्धासे युक्त हो मेरी उपासना करता है, वह श्रेष्ठ उपासक है—ऐसा मेरा मत है।' 'श्रद्धावान्‌ मुझमें लगा हुआ भक्त मुझे सदा ही प्रिय है।'

इन वचनोंसे यह स्पष्ट है कि भगवान् श्रद्धावान् पुरुषपर ही कृपा करते हैं और वही भक्त ईश्वरको पा लेता है।

परंतु मनुष्य विषयासक्त रहकर उन्हींमें फँसा रहता है। जैसा कहा गया है—

> 'पतङ्गमातङ्गकुरङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च ।'

अर्थात् जैसे मस्त हाथी हथिनीके मोहमें फँस बँध जाता है, हरिण [illegible] होकर [illegible] शिकार बँध जाता है, पतंग दीपके रूपपर मोहित हो उसपर गिरता और जलकर मर जाता है, भ्रमर मधुर रसास्वादन करते करते कोमल कमलके पुटोंमें बंद हो जाता और उसे काटकर नहीं निकल पाता और मछली जिह्वाभोग (चारे) पर आसक्त हो लोहेके काँटेमें फँस जाती है, उसी तरह आसक्ति मनुष्यको सांसारिकतामें ऐसी फँसा डालती है, कि वह अपने जीवनके परम लक्ष्य ईश्वर-प्राप्तिको भूल जाता है और ईश्वराराधनसे विमुख बन जाता है। इसीलिये साधक आसक्तिसे विरक्त हो वैराग्यका अवलम्बन करते हैं। जब मनुष्यमें ईश्वरकी भावना आ जाती है, तब वह 'निर्मत्सर'—किसीके साथ किसी तरहका ईर्ष्याका भाव नहीं रखता, वह 'द्वन्द्वातीत' हो जाता है। उसपर दुःख-सुख, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि द्वन्द्वोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह 'नित्यतृप्त'—सदा संतोषी बन जाता है। वह 'निराशीः'—किसी भोगकी आशा नहीं रखता। वह 'त्यक्तसर्वपरिग्रह'—सभी प्रकारके संग्रहोंसे विमुख हो जाता है। वह 'निराश्रय'—भगवान्‌के अतिरिक्त किसीका आश्रय नहीं रखता। वह 'यतचित्तात्मा'—अपने मन और चित्तको वशमें रखता है, विचलित नहीं होने देता। वह 'ज्ञानाग्निदग्धकर्मा' ज्ञानरूपी अग्निद्वारा अपने सभी कर्मोंको भस्मीभूत कर देता है। ऐसी सद्भावना, ज्ञानज्योति या परमभक्ति जब मनुष्यमें आ जाती है, तब वह ईश्वरमय बनकर आवागमन—पुनर्जन्मसे मुक्त हो सकता है, अन्यथा नहीं।

भगवान्‌के दिव्य कर्म और जन्म जान लेनेपर भी पुनर्जन्म नहीं होता। भगवान्‌ने कहा है—

> जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
> त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥
> (गीता ४। ९)

'हे अर्जुन! जो मेरे इन दिव्य जन्म-कर्मोंको तत्त्वसे जानता है, वह देहत्यागके बाद पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता, परंतु वह मुझे प्राप्त करता है। वह [illegible] प्राप्त करता है।'

[illegible] दिव्य जन्म और कर्म है [illegible] गीतामें कहा है—

> अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
> परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

जन्म लेता है, उसको पुनर्जन्मके दुःख नहीं भोगने पड़ते हैं और वह परमेश्वरमें लय हो जाता है। जो भगवान्के उपर्युक्त दिव्य जन्म और कर्मको तत्त्वतः नहीं जानता, उसको नियमानुसार जन्म लेना ही पड़ता है; भले ही वह इच्छा करे या न करे, परवश होकर उसे पुनः जन्म लेना ही पड़ता है। ऐसी परवशता दिव्य जन्म और कर्मके रहस्यको जाननेवाले परमात्मस्वरूप बने मुक्तात्माओंकी नहीं होती। उन्हें पुनर्जन्म-धारण करनेके लिये कोई बाध्य नहीं कर सकता; क्योंकि वे स्वयं पुनर्जन्मसे मुक्त ईश्वररूप हो जाते हैं।

जहाँ मृत्यु भी मङ्गलकारी है

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

यह ध्रुव सत्य है कि जगत्में मृत्युसे बढ़कर दूसरा कोई कष्ट नहीं है। मरकर अनुभव प्राप्त करनेवाले उसी समय 'मृत्यु-कष्ट'को बतलाने तो नहीं आते, किंतु मरते समय जीवको जो कष्ट होता है, उस दृश्यको देखकर यही अनुभव किया जाता है कि कष्ट बहुत होता होगा। बहुधा अपने सगे-सम्बन्धियोंको मरते समय बहुत लोग देखते हैं। दर्शकोंको उनके कष्टको देखकर कष्टकी कुछ अनुभूति तो हो ही जाती है। शास्त्रकारोंने जन्म और मृत्युकष्टको समान माना है—

जनमत मरत दुसह दुख होई।

लेखका शीर्षक देखकर कुछ लोग सहसा आश्चर्यमें पड़ जायँगे कि यह कौन-सा स्थान है, 'जहाँ मृत्यु भी मङ्गलकारी है।' मृत्यु और वह भी मङ्गलसूचक—यह ऐसी पहेली समझमें सहसा नहीं आ सकती। जो मोक्षमें विश्वास करते हैं और पुनर्जन्म मानते हैं, उन्हें ही यह बात समझमें आ सकती है। मृत्यु मङ्गलकारी क्यों है? इसका उत्तर यही है कि जो मोक्षमें विश्वास करते हैं, उनके लिये भारतमें भगवान् शंकरकी पावन-पुरी—वाराणसी ऐसा पवित्र तीर्थ है, जहाँ मृत्यु भी मङ्गलकारी है। मृत्यु एक ऐसी घटना है, जो निश्चितरूपसे घटती है। जो जन्म लेता है, वह अवश्य मृत्युका आलिङ्गन करता है। यह अवश्यम्भावी मृत्यु काशीपुरीमें मङ्गलकारिणी बन जाती है; क्योंकि शास्त्रका आदेश और महापुरुषोंका विश्वास है कि वाराणसीमें मरनेसे 'कैवल्य'की प्राप्ति होती है।

मोक्षकी आवश्यकता

'काश्यां मरणान्मुक्तिः'—काशीमें मरनेसे मुक्ति मिलती है, यह शास्त्रवचन है। प्रश्न उठता है कि काशीमें मरनेसे यदि सभी जीव मोक्ष पा सकते हैं, तो एक दिन ऐसा भी हो सकता है कि जब सभी जीवोंका मोक्ष हो जाय और संसारकी सृष्टि ही समाप्त हो जाय। 'सम्भव है कि सभी मनुष्य एक-न-एक दिन काशीमें मृत्युके समय पहुँच जायँ और मरकर मोक्ष प्राप्त कर लें।' बात सत्य है। किंतु ऐसा सम्भव नहीं। अद्वैतवादी ब्रह्मके उपासक सृष्टिकी रचनाको लीलाका विषय मानते हैं। अन्य दार्शनिक जगत्-सृष्टि जीवोंके भोगार्थ मानते हैं। फिर भी यही सिद्धान्त ठीक है कि जगत् और जीव दोनों परमेश्वरकी महिमामात्र हैं। सभी जीवोंकी संख्या गिनी तो नहीं जा सकती, परंतु जीवोंके समूहोंकी संख्या अनन्त होनेमें कोई संदेह नहीं। भारतीय प्राचीन भूगोलके आधारपर ब्रह्माण्डके उदरका प्रमाण पचास कोटि योजन अनुमानित है। [illegible] इस ब्रह्माण्डमें जल, स्थल और आकाशमें कोई स्थान नहीं बचा, जहाँ जीव न हो। यदि किसी [illegible] काशीमें जीवको [illegible] हो तो इससे सृष्टिका अन्त नहीं आ सकता। [illegible] भी [illegible] बड़ी महिमा है और काशीमें मरनेवालोंको सायुज्य मोक्षकी प्राप्ति होती है—

[illegible]

[illegible]

[illegible] लीन हो जाता है, उसे पुनः जन्म धारण नहीं करना पड़ता। यह एक सत्य है, किंतु [illegible] है।

बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं

पुनः यह प्रश्न उठता है कि काशीमें [illegible] मुक्ति किस प्रकार होती है, [illegible]

'काश्यां मृतस्तु सायुज्यम् ।'

उपनिषदोंके अनुसार काशीके प्रत्यक्ष क्षेत्रोंमें मरनेपर 'तारकमन्त्र'के प्रभावसे पुनः गर्भवास नहीं करना पड़ता ।

मरणं मङ्गलं यत्र

'काशीमें मृत्यु मङ्गलकारी' क्यों कहा गया ? इसका उत्तर यही है कि काशीपुरीका महत्त्व बाबा विश्वनाथके द्वारा मृत्युके समय प्राप्त 'तारकमन्त्र'के प्रभावसे मोक्ष प्राप्त करना है । बिना 'सायुज्य मोक्ष'के जीवका बार-बार जन्म लेने और मृत्युको प्राप्त करनेसे छुटकारा नहीं मिलता । जबतक जीवका शरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होता, तबतक मोक्ष कैसे सम्भव है ! जीवको मोक्ष अभीष्ट है । बार-बार जन्म-मृत्युसे जीवको बड़ा कष्ट होता है । उससे छुटकारा पानेके लिये योगी, संत, महात्मा लाखों प्रयत्न करते हैं—तपस्या, यज्ञ, अनुष्ठान, दान आदि साधन करते हैं । इन प्रयत्नोंमें पूर्ण सफलतामें संदिग्धता रहती है । शास्त्रके विद्वानोंने वाराणसीमें वास करके मृत्यु प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त करना सरल है । हिंदू इसीलिये मरनेके पूर्व काशीमें आकर निवास करते हैं । काशीमें यह भी कहावत है कि 'मरते समय काशीमें जीवमात्रका दक्षिण कान ऊपरको हो जाता है, अथवा एक पार्श्वमें हो जाता है ।' इसका आधार यही है कि शिवजी जीवको उपदेश देनेके लिये उसका दक्षिण कर्ण ऊपर कर देते हैं और उसीमें 'तारकमन्त्र'का उपदेश देते हैं ।

काशीमें निवासका महत्त्व उतना नहीं, जितना मरणका महत्त्व है । अतः लिखा गया है—काशीमें मृत्यु ही मङ्गलकारी है ।

यः कश्चिद् भेदकृल्लोके स याति नरके ध्रुवम् ।
अमङ्गलं जीवनं तु मरणं यत्र मङ्गलम् ॥

श्रीभगवान्‌का दिव्यधाम एवं उसकी प्राप्ति

(लेखक—पण्डित श्री[illegible]जी शास्त्री)

'[illegible] प्रमाणं ते'—इस भगवद्वचनके अनुसार जैसे भगवान्‌का श्रीविग्रह दिव्य, चिन्मय एवं सनातन है, वैसे ही उनका धाम भी दिव्यतादि-गुणसम्पन्न है । भगवान्‌का धाम प्राकृत लोकके अन्तर्गत भी होता है, जैसे—अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन, काशी आदि । एवं प्राकृत लोकके बाहर भी, जैसे—वैकुण्ठ, गोलोक, साकेतादि । इसके अतिरिक्त भक्तोंका हृदय भी भगवान्‌का धाम माना गया है, यह बात श्रीमद्भागवतकी [illegible] श्रीधरी टीकासे प्रमाणित होती है । जैसे [illegible] कहीं भी पड़ा रहे, वह [illegible] अछूता रहता है एवं जलमें रहनेपर भी जैसे कमल जलसे असम्पृक्त रहता है, उसी प्रकार प्राकृतलोकके अन्तर्गत रहनेपर भी भगवान्‌के दिव्यधाम प्रकृतिके दोषसे अछूते ही रहते हैं । जैसे भगवान्‌के धाम विविध हैं, वैसे ही उनको पानेवाले साधक भक्त भी विविध श्रेणीके होते हैं । जो साधक चाहे जहाँ निवास करके अपने हृदयको ही भगवान्‌का धाम बनाकर उसमें भगवद्-लीलाओंका ध्यान चिन्तन—अनुशीलन करते रहते हैं एवं पाञ्चभौतिक देहत्यागके अनन्तर भी सिद्ध देहसे रहकर न तो प्राकृतलोकमें स्थित श्रीवृन्दावनादि धामोंमें रहना चाहते हैं न गोलोकमें ही [illegible] रहना चाहते हैं, किंतु अपने हृदयधाममें ही अपने आराध्यकी उपासना-सेवा करते हुए चाहे जहाँ जीवनको सफल एवं सरस बनाकर रहते हैं, वे प्रथम श्रेणीके भक्त हैं । दूसरी श्रेणीके वे हैं, जो साधनकालमें भी श्रीवृन्दावनादि धामोंमें रहकर साधना-उपासना करते हैं तथा देहावसानके अनन्तर भी सिद्ध देह पाकर वहीं रहना चाहते हैं । गोलोकमें जाना भी उन्हें इष्ट नहीं है । वे कहते हैं—'गोलोकमें तो भगवान्‌की जन्मलीला एवं बधाई-लीला नहीं होगी, अन्य लीलाएँ ही होती हैं; किंतु श्रीवृन्दावन-गोकुलादिमें तो भगवान्‌की जन्मलीला, बधाई-लीला भी होती है; अतः श्रीवृन्दावन गोलोकसे भी बढ़कर है ।' ऐसे भक्त दूसरी श्रेणीके होते हैं ।

[illegible] जो हृदयको धाम बनाकर भी संतुष्ट नहीं होते, एवं प्राकृतलोकान्तर्गत श्रीवृन्दावनादि धामोंमें भी चिरकाल रहना नहीं चाहते; किंतु गोलोकादि [illegible] दिव्य [illegible] करना चाहते हैं, वे [illegible] श्रेणीके होते हैं ।

भगवान्‌के धामको [illegible] अपने हृदयमें ही धाम बनानेका प्रयत्न करना चाहिये । जब अपना हृदय ही धाम बन [illegible] है, तब [illegible]—इस [illegible]

[सूर्य]की किरणें जिस तरह मृत्युलोककी ओर आती हैं, उसी तरह उतनी ही दूरीतक ऊर्ध्वलोककी ओर भी जाती हैं। इस सूर्यसे ऊर्ध्वकी ओर, जहाँसे 'इस सूर्यकी किरणें समाप्त हो जाती हैं; वहाँसे इस सूर्यसे भी हजारगुने बड़े सूर्यका मण्डल प्रारम्भ होता है। उस सौर-मण्डलका ऊपरी घेरा जहाँपर समाप्त होता है और जिसके बाद प्रकृतिके सभी आवरण क्रमशः समाप्त हो जाते हैं, वहाँसे परम धामकी सीमा प्रारम्भ होती है। कि जिसके विषयमें श्रीगर्गसंहिता-में लिखा है—'जहाँपर संसारका सबसे बड़ा सुख समाप्त होता है, वहाँसे परम धामके सबसे बड़े दुःखकी सीमा प्रारम्भ होती है।' अब विचार कर सकते हैं कि जहाँकी सीमाका सबसे बड़ा दुःख हमारे संसारके सबसे बड़े सुखको भी लज्जित कर रहा है, वहाँका सबसे बड़ा सुख कैसा होगा! इसीसे परम धामके विषयमें इस भौतिक मन-बुद्धिद्वारा कुछ भी विचार करना असम्भव माना गया है। वहाँका विषय अनुभवगम्य है। जब भजन करते-करते यह शरीर दिव्य हो जाता है, तब भगवत्कृपासे ही वहाँका विषय कुछ अनुभव किया जा सकता है।

चन्द्रलोक या सूर्यलोकतक चाहे २० हजार हार्सपावर या १०० लाख हार्सपावरके इंजिनवाला रॉकेट भले ही मानवको पहुँचानेमें सफल हो जाय; किंतु एक [illegible] हार्सपावरवाले इंजिनकी भी सफली बात न होगी कि वह मानवको 'परम धाम' तक ले जा सके। क्योंकि [illegible] कोई तत्त्व होगा, वहींतक रॉकेट गतिमान् हो सकते हैं। इस आकाश-तत्त्ववाले घेरेमें ही रॉकेट नहीं प्रवेश कर सकेंगे; क्योंकि वहाँपर वायु-तत्त्व भी नहीं है। अतः आगे बढ़ना तो सर्वथा असम्भव ही होगा। वहाँपर तो अनन्य चिन्तन करनेवाले भक्तको स्वयं भगवान्‌के पार्षद दिव्य विमानसे दिव्यस्वरूप प्रदान करके ले जाते हैं। जैसे अंतरिक्षगामी दशरथजी महाराजको दिव्यदेह देकर दिव्य-विमान'द्वारा लंका विजय हो जानेपर श्रीरामजीसे भेंट कर लेनेके बाद ले गये थे। परम धाममें परिकर बनकर वहाँ सेवा करनी सुलभ होती है कि जो सेवा भक्त स्वीकार करना पसंद करता है। इसीसे अनन्य भक्त मोक्ष नहीं चाहता क्योंकि मोक्षमें रावण, कुम्भकर्ण और शिशुपालकी ज्योति, जैसे भगवान्‌में सबके देखते-देखते विलीन हो गयी, वैसे ही भक्तिका आनन्द भी विलीन हो जाता है।

हम अपने भारतवर्षमें रहकर जिस तरह आकाशमें अनन्त लोक देखते हैं, ठीक उसी प्रकार अमेरिकावाले भी अपनी ओरके आकाशमें अनन्त लोक चमकते हुए देखते हैं। जिस भूलोकमें हमारा भारतवर्ष है, यह भूलोक अनन्त ब्रह्माण्डोंके ठीक मध्यमें है। अनन्त ब्रह्माण्ड उस परम धामके मध्यमें (उदरमें) ठीक उसी प्रकारसे हैं, जैसे अमरूदके फलमें हजारों बीज होते हैं। अर्थात् हमारे प्रथम ब्रह्माण्ड (भूलोक) के चतुर्दिक् अनन्त ब्रह्माण्ड हैं एवं अनन्त ब्रह्माण्डोंके चतुर्दिक् 'महावरण'के घेरेको पार करनेपर परम धाम परिव्याप्त है। उसी परम धामको नित्यधाम वैकुण्ठ, साकेत और गोलोकधाम आदि भी कहते हैं। श्रीजनकपुर, अयोध्या, काशी, चित्रकूट, अवध, नीलाचल, पंढरपुर, द्वारका, रामेश्वरम्, बद्रीनारायण, कैलास, वृन्दावन, मथुरामण्डल—ये सभी मण्डल 'परम धाम'में ही विलसित हो रहे हैं। भूतलमें भी यहाँसे इनका अवतरण होता है।

मृत्युलोकमें रहकर चाहे कोई भारतवर्षमें 'परम धाम'के प्रति निष्ठा रखकर उपासना करे और चाहे अमेरिकामें रहकर उपासना करे, दोनों ही भक्तोंका जब प्राण निकलेगा, तब उसको सीधे परम धाममें ही जाना होगा। जिस प्रकार भारत-वाला भक्त सीधे ऊर्ध्वकी ओर गमन करेगा, उसी प्रकार अमेरिकावालेको भी अपने यहाँके ऊर्ध्वलोककी ओर ही गमन करना पड़ेगा। यह [illegible] हमारे भारतवाले ऊर्ध्वलोक होकर परम धाम नहीं जायगा। रामचरितमानसमें श्रीकाकभुशुण्डिजीने बताया है कि "हमने भगवान् रामके उदरमें अनन्त ब्रह्माण्ड देखे हैं।"

चूँकि 'भगवान्'में और 'धाम'में कोई अन्तर नहीं है, अतः परम धामके हृदयमें ही अनन्त ब्रह्माण्ड ठीक वैसे ही भरे हुए एक दूसरेके आकर्षणसे टिके हुए हैं, जैसे समुद्रमें [illegible] भरे रहते हैं।

तभी तो श्रीकृष्ण भगवान्‌ने कहा है—'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।' अर्थात् 'जो मुझे सर्वत्र सबमें देखता है और सबको मुझमें देखता है, वही वस्तुतः मुझे देखता है और उससे मैं कदापि अलग नहीं किया जा सकता।'

[illegible] है और अनन्त ब्रह्माण्डोंके चतुर्दिक् परिव्याप्त है। हमारा भूलोक ही परम धामके ठीक हृदय-मध्यमें है, [illegible]

श्रीवैकुण्ठधाम और उसकी प्राप्ति

(लेखक—राष्ट्रपतिपुरस्कृत डा० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

अखिलब्रह्माण्डनायक श्रीविष्णुभगवान्‌के वैभवका वर्णन शेष और शारदा भी नहीं कर सके हैं । नेति-नेति कहकर श्रुति शास्त्रोंने भी विश्राम किया है । फिर भी वह रचना मनोरम और आकर्षक है कि मनीषि-वृन्द उसके प्रतिपादनमें सदा ही दत्तावधान रहा है ।

यह विश्वप्रपञ्च, जिसमें अनन्त ब्रह्माण्ड विद्यमान है, कितना विशाल है—इसका निर्णय आजके वैज्ञानिक भी नहीं कर सके हैं । नील गगनमें प्रकाशमान तारावलियोंको देखकर मन विस्मयसे परिपूर्ण हो जाता है । सृष्टिकी इयत्ताका पता किसीको भी नहीं । 'इयमियत्ती' कहकर अनिर्दिश्यमान इस समस्त सृष्टिमें जो परम सत्ता अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट है, वही 'विष्णु'-शब्दवाच्य है । परंतु जितनी यह सृष्टि है, उतने ही विष्णु हैं—यह उक्ति सूक्ति नहीं है । यह सृष्टि उनके एकांशमें है । यह उनकी एकपाद्-विभूति है—यह त्रिगुणमयी है ।

नामान्तर

श्रीविष्णुकी त्रिपाद्-विभूति सच्चिदानन्दमयी है । यह परमपद, परमव्योम, सनातन आकाश, दिव्य स्थान, परम-स्थान, पर-स्थान, परागति, अनामय-पद, शाश्वत-पद, महाविभूति, नित्यविभूति, ब्रह्मपुर, ब्रह्मलोक और वैकुण्ठ नामसे अभिहित है ।

अनादि

वैकुण्ठ अनादि है; क्योंकि यह कभी बनता नहीं है । नित्य होनेके कारण उसके उदय और अन्त नहीं होते । यह निर्वेदित है । छान्दोग्य उपनिषद्‌में स्पष्ट ही उसे 'नाक' (अ= नहीं+क= (नित्) बताया है ।

स्वयंप्रकाश

वैकुण्ठ जड़ प्रकृतिका बना हुआ नहीं है । यह तो चेतन है, स्वयंप्रकाश है । यह सत्त्व या शुद्ध सत्त्व है । यह [illegible] रजोगुण और तमोगुणका [illegible] नहीं है, प्रत्युत इनसे विलक्षण है । प्राकृत [illegible] जड़ है और अप्राकृत [illegible] है । जड़ पदार्थ परतःप्रकाश्य होता है और अजड़ पदार्थ होता है—स्वयंप्रकाश । वैकुण्ठ स्वयंप्रकाश सत्ता है । अतएव उसकी अनादिषड्गुणमयता स्वयंसिद्ध है । ब्रह्मतन्त्रमें इस रहस्य-का उद्घाटन करते हुए कहा गया है—

> लोकं वैकुण्ठनामानं दिव्यं षाड्गुण्यसंयुतम् ।
> अवैष्णवानामप्राप्यं गुणत्रयविवर्जितम् ॥

अर्थात् 'वैकुण्ठ-नामक श्रीविष्णुभगवान्‌का जो दिव्य धाम है, उसमें प्रकृतिके तीनों गुणोंका अस्तित्व नहीं है । वहाँ तो केवल ज्ञानादि षड्गुणका ही विलास है ।'

प्रकृतिसे परे

ऋग्वेदका एक मन्त्र है—

> प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
> तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥
> (७ । १०० । ५)

अर्थात् 'हे अणु-अणुमें व्यापक प्रभो ! आपके लीला चरितोंको जाननेवाला मैं शिपिविष्टनामक आपके नामका शंसन (गान) कर रहा हूँ । मैं बलहीन हूँ । आप बलके निधान हैं । आप इस रजोगुणसे परे (अपने दिव्य धाममें) निवास करते हैं । मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ ।'

'रजस्' शब्दका अर्थ रजोगुण है । सत्त्व और तमस्‌के बिना केवल रजोगुण नहीं रह सकता । अतः 'रजस्'का अर्थ इस प्रसङ्गमें 'प्रकृति' है । भगवान् इस प्रकृति-मण्डलसे परे दिव्य धाम है और वहाँ श्रीभगवान् निवास करते हैं ।

भगवान्‌की महिमा

श्रीभगवान्‌की [illegible] होनेके कारण दिव्य धामका [illegible] है (यथा— तद् विष्णोः परमं पदम् । ऋग्वेद १ । २२ । २०; कठोपनिषद् ३ । ९ । [illegible] अथर्ववेद ७ । २६ । ७)

अर्थात् 'हे पुरुषोत्तम ! आप महाविभूतिमें निवास करते हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।'

सनातन आकाश

यद् वाऽऽकाशं सनातनम्।

(रामायण ७।११०।१०)

अर्थात् ब्रह्माजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे प्रार्थना की कि 'हे प्रभो ! आपकी इच्छा हो तो सनातन आकाशको चलिये।'

दिव्यस्थान

दिव्यं स्थानमजरं चाप्रमेयं
दुर्विज्ञेयं चागमैर्गम्यमाद्यम्।

(महाभारत)

अर्थात् 'वह दिव्यस्थान आद्य, अजर और अप्रमेय है, अन्य उपायोंसे दुर्विज्ञेय है; किंतु आगम किंवा पाञ्चरात्र शास्त्रद्वारा सुविज्ञेय है।'

परमस्थान

एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनश्च ये।
तेषां तु परमं स्थानं यद् वै पश्यन्ति सूरयः॥

(विष्णुपुराण १।६।३९)

अर्थात् 'ब्रह्म-चिन्तक, योगाभ्यासी और एकान्तभावसे भगवदुपासक उसी परमस्थानको प्राप्त होते हैं, जिसका दर्शन नित्ययुक्त सूरि-जन किया करते हैं।'

पर-स्थान

(क) ब्रह्मणः सदनादूर्ध्वं परं स्थानं प्रकाशते।
देवाऽपि यन्न पश्यन्ति सर्वतेजोमयं शुभम्॥
अत्यर्कानलदीप्तं तत् स्थानं विष्णोर्महात्मनः।
स्थानमेतन्महाभाग ध्रुवमक्षयमव्ययम्॥

(महाभारत)

अर्थात् 'ब्रह्माजीके सदन-लोकसे परे परमस्थान है, जिसका दर्शन देवताओंको भी दुर्लभ है। यह पवित्र, सूर्य और अग्निसे भी अधिक प्रकाशमान, निर्मल, अविनाशी और सर्वव्यापी स्थान परमात्मा श्रीविष्णुका धाम है।'

(ख) योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥

(गीता ८।२८)

अर्थात् 'योगी पुरुष आद्य पर-स्थानको प्राप्त कर लेता है।'

परम धाम

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम॥

(गीता १५।६)

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'जहाँ जाकर मेरे स्वजनोंकी इस मानव-आवर्तमें पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती है, वह मेरा परम धाम है।'

परा-गति

ततो याति परां गतिम्॥

(गीता ६।४५ तथा १३।२८)

अर्थात् 'योगी तदनन्तर परा-गतिको प्राप्त कर लेता है।'

परमा-गति

स याति परमां गतिम्॥ (गीता ८।१३)

अर्थात् 'वह साधक परमा-गतिको प्राप्त कर लेता है।'

अनामय-पद

पदं गच्छन्त्यनामयम्॥ (गीता २।५१)

अर्थात् 'मुक्तात्माएँ अनामय पदको जाती हैं।'

शाश्वत पद

मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।

(गीता १८।५६)

अर्थात् 'भागवत्कृपासे भक्त श्रीभगवान्‌के अविनाशी शाश्वत पदको प्राप्त कर लेता है।'

ब्रह्मलोक

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोकः। (प्रश्नोपनिषद् १।१६)

अर्थात् 'उनको [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], निर्मल और ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।' इस लोकके वैभवके वर्णनमें उपनिषदोंने भी [illegible] पुरी, [illegible], सभा, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] आदिका उल्लेख किया है।

ब्रह्मपुर

दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येषः। (मुण्डकोपनिषद् २।२।७)

अर्थात् 'यह परमात्मा दिव्य ब्रह्मपुरमें स्थित रहता है।'

देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ।
(श्रीमद्भागवत ७ । १ । ३४)

उनका शरीर हमारे-जैसा नहीं होता, जिसमें छान्दोग्य उपनिषद्के 'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते, तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति।'(६।५।१)—इस वचनकी संगति लग सके। नित्य जीवोंके चैतन्यमय आकारमें प्राकृतभावोंका अभाव है। उनमें न भूख है न प्यास, न जरा है न मरण। ऐसा भी नहीं समझना चाहिये कि उन्हें निराकार कहना ही उचित होगा; क्योंकि 'वैकुण्ठपुरवासिनः' और 'सर्वे चतुर्बाहवः' (श्रीमद्भागवत २ । ९ । ११) आदि वचनोंसे दिव्य धामके वासियोंकी साकारताका ही प्रतिपादन हुआ है।

श्रीभगवान्‌के समस्त आयुध, वाहन, सेवक दिव्य हैं, चेतन हैं, आनन्दमय हैं। नित्यविभूतिमें श्रीभगवान्‌के आयुध पुरुषविग्रहमें श्रीभगवत्सेवोपासनामें निरत रहते हैं; अवतार-वेलामें भी दुष्टदमनातिरिक्त अवसरोंपर वे पुरुषविग्रहमें भगवदाराधनामें लीन रहते हैं—

शराश्च नानाविधाश्चापि धनुरायतमुत्तमम् ।
तथायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः ॥
(रामायण, उत्तरकाण्ड १०९ । ७)

धन्य हैं ये नित्य जीव जिनके लिये श्रुतिने यह कहा है कि 'ये परमपदका सदैव अनुभव करते हैं'—

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ॥
(ऋग्वेद १ । २२ । २०)

श्रीलक्ष्मी-नारायण भगवान्‌का सभी परिकर 'देवयु' कहलाता है—

नरो यत्र देवयवो मदन्ति । (ऋग्वेद १ । १५४ । ५)

किरीटादि विभूषण, पाञ्चजन्यादि विभूति, सुदर्शनादि आयुध, शेषमयी शय्या, अभितौजा नामक पर्यङ्क, वैनतेयादि वाहन—सभी उनके परिकरके अन्तर्गत हैं।

अचिन्त्य-रहस्य

किरीटादिकी पुरुषाकृतिताका निर्देश पाञ्चरात्र-संहिता आदि पाञ्चरात्र ग्रन्थोंमें किया गया है। वे श्रीविग्रहके अलंकाररूपमें एवं श्रीविग्रहसे पृथक् होकर परिकररूपमें रहते हैं। ऐसा अचिन्त्य रहस्य है। परिकरकी सभी विभूतियोंका आकार मानवतुल्य है। अन्यत्र केवल श्रीवत्स और कौस्तुभका है। ये दोनों अलंकरण श्रीविष्णुभगवान्‌के ही हैं, अन्य पार्षदोंके नहीं।

षोडश पार्षद

श्रुतिमें सोलह हजार मन्त्र उपासनापरक हैं। प्रत्येक मन्त्र साकार होकर भगवल्लोकमें उपस्थित रहता है। श्रीभगवान्‌के सोलह पार्षद उन्हीं सोलह हजार मन्त्रोंके सोलह प्रतीक हैं—

प्रतीच्यां दिव्यभूषणैः शङ्खपद्मगदाधरः ॥
आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ ।
पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम् ॥
(श्रीमद्भागवत ६ । ९ । २८-२९)

पार्षदोंका दिव्य व्यक्तित्व

भगवान्‌के नित्य-भक्त सूरियोंका बड़ा सुन्दर वर्णन इस प्रकार है—

सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥
सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ।
धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुजश्रियः ॥
दिशो वितिमिरालोकाः कुर्वन्तः स्वेन तेजसा ।
(श्रीमद्भागवत ६ । १ । ३४-३६)

वैकुण्ठ-प्राप्तिका साधन

परम तत्त्वकी प्राप्तिके लिये, भगवान्‌के नित्यलोकको प्राप्त करनेके लिये, यजन किया यह ही सर्वोत्तम उपाय है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥
(श्रीमद्भागवत २ । ३ । १०)

यजनका अर्थ है—पूजन, सत्कार और दान। (यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु)। भगवद्विषयक भक्तियोगसे जिससे [illegible] उत्पन्न होता है और तब साधक श्रीभगवान्‌की आराधना करता है; [illegible] एक विशिष्ट [illegible] पूजा है। दूसरे भगवान्‌को [illegible] है, वे [illegible] है। [illegible] अपना [illegible] कर देता है, [illegible] हो जाता है। यह [illegible] है। इस श्लोकका [illegible] ही इस प्रकार कह सकते हैं—

देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ।

(श्रीमद्भागवत ७ । १ । ३४)

उनका शरीर हमारे-जैसा नहीं होता, जिसमें छान्दोग्य उपनिषद्‌के 'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते, तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति।'(६।५।१)—इस वचनकी संगति लग सके। नित्य जीवोंके चैतन्यमय आकारमें प्राकृतभावोंका अभाव है। उनमें न भूख है न प्यास, न जरा है न मरण। ऐसा भी नहीं समझना चाहिये कि उन्हें निराकार कहना ही उचित होगा; क्योंकि 'वैकुण्ठपुरवासिनः' और 'सर्वे चतुर्बाहवः' (श्रीमद्भागवत २ । ९ । ११) आदि वचनोंसे दिव्य धामके वासियोंकी साकारताका ही प्रतिपादन हुआ है।

श्रीभगवान्‌के समस्त आयुध, वाहन, सेवक दिव्य हैं, चेतन हैं, आनन्दमय हैं। नित्यविभूतिमें श्रीभगवान्‌के आयुध पुरुषविग्रहमें श्रीभगवत्सेवोपासनामें निरत रहते हैं; अवतार-वेलामें भी दुष्टदमनाद्यतिरिक्त अवसरोंपर ये पुरुषविग्रहमें भगवदाराधनामें लीन रहते हैं—

शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतमुत्तमम् ।
तथायुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः ॥

(रामायण, उत्तरकाण्ड १०९ । ७)

धन्य हैं वे नित्य जीव जिनके लिये श्रुतिने यह कहा है कि 'वे परमपदका सदैव अनुभव करते हैं'—

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ॥

(ऋग्वेद १ । २२ । २०)

श्रीलक्ष्मी-नारायण भगवान्‌का सभी परिकर 'देवयु' कहलाता है—

यत्रो यत्र देवयवो मदन्ति । (ऋग्वेद १ । १५४ । ५)

किरीटादि दिव्य भूषण, पाञ्चजन्यादि विभूति, सुदर्शनादि आयुध, शेषमयी शय्या, अनिलोदा नामक पर्यङ्क, वैनतेयादि वाहन—सभी उनके परिकरके अन्तर्गत हैं।

अचिन्त्य-रहस्य

किरीटादिकी पुष्पाङ्कितताका निर्देश [illegible] और [illegible] रूपोंमें किया गया है। ये [illegible] [illegible] एवं [illegible] पृथक् होकर [illegible] रहते हैं। येन अचिन्त्य रहस्य है। [illegible] [illegible] [illegible] आकार [illegible] है। [illegible] केवल श्रीवत्स और कौस्तुभका है। ये दोनों अलंकरण श्रीविष्णुभगवान्‌के ही हैं, अन्य पार्षदोंके नहीं।

षोडश पार्षद

श्रुतिमें सोलह हजार मन्त्र उपासनापरक हैं। प्रत्येक मन्त्र साकार होकर भगवल्लोकमें उपस्थित रहता है। श्रीभगवान्‌के सोलह पार्षद उन्हीं सोलह हजार मन्त्रोंके सोलह प्रतीक हैं—

प्रतीच्यां दिशि भूताविः सहायकगदाधरः ॥
आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ ।
पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम् ॥

(श्रीमद्भागवत ६ । ९ । २८-२९)

पार्षदोंका दिव्य व्यक्तित्व

भगवान्‌के नित्य-भक्त पार्षदोंका बड़ा सुन्दर वर्णन इस प्रकार है—

सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥
सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ।
धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुजश्रियः ॥
दिशो वितिमिरालोकाः कुर्वन्तः स्वेन शोचिषा ।

(श्रीमद्भागवत ६ । १ । ३४-३६)

वैकुण्ठ-प्राप्तिका साधन

परम तत्त्वकी प्राप्तिके लिये, भगवल्लोकमें स्थितिलाभके प्राप्त करनेके लिये, यजन ही एक ही सर्वोत्तम उपाय है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

(श्रीमद्भागवत २ । ३ । १०)

यजनका अर्थ है—पूजन, सत्संग और दान। (यज देवपूजा-संगतिकरण-दानेषु)। [illegible] जिससे [illegible] उदय होता है और [illegible] श्रीभगवान्‌की आराधना करता है; [illegible] [illegible] पूजा है। [illegible] [illegible] [illegible] है, वे [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्राप्त कर लेता है, [illegible] [illegible] ही [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] इस प्रकार कर सकता है—

वैकुण्ठाधिपति भगवान् लक्ष्मीनारायण

हैं। प्रणव-युगल (ॐ श्री) से चिह्नित कपोल-युगल व्याधाओंके तापका शमन करनेवाले हैं। नासिकाएँ सौन्दर्यकी सार हैं। अमल-कमल-दलोंके समान दोनोंके नयन-युगल हैं। धनुराकृति भृकुटियाँ स्वजन-मनो-वक्रिमाका अपहरण कर रही हैं। प्रशस्त मस्तकोंपर यक्षकर्दमके ललित तिलक लगे हुए हैं। असित अलकावलियोंपर विराजमान किरीट और चन्द्रिकाकी किरणावलियाँ भक्तोंके हृदयभवनोंके गहन अन्धकारका अपहरण करके उन्हें दिव्य आलोकसे आलोकित कर रही हैं।'

साधक कहता है—

ध्यायाम्यप्राकृतौ सच्चिदानन्दमयविग्रहौ।
लक्ष्मीनारायणौ दिव्यवैकुण्ठपुरवासिनौ॥
नीलो नारायणो देवः पीताम्बरचतुर्भुजः।
शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितः॥
सुगन्धिः सरसः कान्तो माधुरीरसनिर्झरः।
दयायाः सागरोऽनन्तः स एव परमा रमा॥
लक्ष्मीर्हिरण्यवर्णा कनकाम्बरधारिणी।
कञ्जद्वयवराभीतिवैजयन्तीविभूषिता॥
परपद्मप्रकाशेन व्यापता ध्वान्तनाशिनी।
उदारा वात्सल्यदेवी श्रीः पद्मा कमलेन्दिरा॥

तत्पश्चात् यह प्रार्थना करता है—'अयि जगज्जननि! हे जगत्पितः! इहायातां भवन्तौ इहायातां भक्तपूजां स्वीकुरुताम्।'

तदनन्तर वह भक्ति-भावित हृदयसे यथाशक्ति संगृहीत सामग्रीसे श्रीयुगलका यजन करता है और श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धीय सत्ताईसवें अध्यायमें उद्धवको स्वयं भगवान् श्रीकृष्णद्वारा उपदिष्ट क्रियायोगका पालन करके 'प्रसीद भगवन्' कहकर दण्डवत् प्रणाम करता है। आराध्य दिव्य दम्पतीके चरण-नलिन-युगलोंमें सिर नवाकर यह निवेदन करता है—

'प्रपन्नं पाहि सर्वेश'

और भगवत्प्रसाद प्रसादको स्वीकार करके आनन्दका अनुभव करता है।

प्रतिदिन अनुष्ठीयमान इस प्रकारके साधनसे प्रसन्न होकर श्रीभगवान् अपना देव-दुर्लभ दर्शन देकर साधकको कृतार्थ कर देते हैं; चतुर्भुजोंसे उसकी अभिलाषाको पूर्ण कर देते हैं। किम्बहुना, माता लक्ष्मीजी उपासककी इच्छाको जानकर उसके मस्तकपर अपना वात्सल्यमय वरद करारविन्द रखकर, उसे उभय-विभूतिका साम्राज्य दे देती हैं जिससे कि वह धन्य भाग्य साधक चाहे 'इदंविभूति'[1] में रहे और चाहे तो 'अदोविभूति'[2] में रहे।

वैदिक युगसे ही यह आर्य भावना चली आ रही है कि वैष्णव व्यक्ति अपनी रक्षाका भार अपने आराध्यके चरणोंमें रखकर निश्चिन्त हो जाय। भगवान् उसे जहाँ उचित समझेंगे, रखेंगे। भक्तका तो यही सङ्कल्प होना चाहिये—

'इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण।'
(यजुर्वेद ३१। २२)

अर्थात् 'हे परम पुरुष विष्णुभगवान्! आप मेरे लिये उस दिव्य लोककी कामना कीजिये, संकल्प कीजिये, (मैं वहाँ रहूँगा) और इस लीलाविभूतिके लोकोंका संकल्प कीजिये (मैं यहाँ रहूँगा)।'

भगवान्‌के इङ्गितको समझकर उनका इस प्रकार उनके दिये हुए अधिकारको स्वीकार करके लीलाविभूतिमें ही उनका लीला-परिकर बनकर 'आधिकारिक पुरुष' बन जाता है।

अथवा

भगवान्‌के संकल्पके अनुसार [illegible] निमग्न जीवोंके उद्धारके लिये प्रयत्नशील होकर 'तारक पुरुष' बन जाता है।

अथवा

भगवान्‌के ही अभिन्नस्वरूप [illegible] हुए, [illegible] 'तारक पुरुष' बन जाता है।

और परम धन्य हैं वे [illegible]

१. [illegible] २. [illegible]

दिव्य गोलोकधाम

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

पूर्ववर्ती प्रलयकालमें करोड़ों प्रभाकरकी प्रभाके समान ज्योतिपुञ्ज प्रकाशित था। वह ज्योतिपुञ्ज निखिल सृष्टिके नियामक परमात्माका उज्ज्वल तेज तथा अनन्त विश्वका हेतु है। उस तेजके मध्य सुन्दर तीनों लोक स्थित हैं। उन तीनों लोकोंके ऊपर गोलोकधाम है, जो परमात्माकी भाँति दिव्य तथा नित्य है।

यहाँ एक अत्यन्त निर्मल एवं मनोहर सरिता प्रवाहित है, जिसके तटपर मणि, मुक्ता और अनेक प्रकारके बहुमूल्य रत्न बिखरे रहते हैं और उसकी दूसरी ओर पचास करोड़ योजन लंबा, दस करोड़ योजन चौड़ा एवं एक करोड़ योजन ऊँचा विशाल एवं मनहर पर्वत स्थित है। इस पर्वतकी चोटियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं।

इस गिरीन्द्रके मनोरम शिखरपर दस योजन विस्तृत अत्यन्त कमनीय एवं सुरम्य रासमण्डल है। इसके मध्य एक सहस्र पुष्पोद्यान, एक सहस्र कोटि रत्नमण्डप हैं और चतुर्दिक् सुरतरुकी पंक्तियाँ सुशोभित हैं। यह सुविस्तृत, सुन्दर, समतल और सुचिक्कण है। चन्दन, कस्तूरी, अगर और कुङ्कुमसे यह सजा रहता है। उसपर दही, लावा, सफेद धान और दूर्वादल बिखरे रहते हैं। रेशमी सूतोंसे गुँथे नव-चन्दन-पल्लवोंकी वन्दनवारों और कदली-स्तम्भोंसे यह घिरा है। उत्तम रत्नोंके सारभागसे निर्मित करोड़ों मण्डप और उनमें प्रज्वलित रत्नमय प्रदीप उन मण्डपोंकी नित्य नवीन शोभा बढ़ाते हैं। उनके भीतर अनन्त सौन्दर्य प्रसाधन प्रस्तुत रहते हैं। यह सम्पूर्ण रास-मण्डल अत्यन्त सुगन्धित सुमनों एवं धूपसे सदा सुवासित रहता है।

पर्वतके बाहर विरजा नामकी नदी है। उसके तटपर एक सुन्दर वन है। उसे 'वृन्दावन' कहते हैं। यह वन [illegible] क्रीड़ाका स्थान है। ये सब तीस करोड़ [illegible] सुविस्तृत क्षेत्रमें समानाकार [illegible] अन्तर्गत हैं।

इस धामकी दिव्य भूमि रत्नमयी है। इसके चतुर्दिक् रत्नमय प्राचीर है। इसके चार प्रधान द्वार हैं। प्रत्येक द्वारपर असंख्य गोप-रक्षक हैं। इसके भीतर कृष्णभक्त गोपोंके पचास करोड़, कृष्णभक्तोंके भी करोड़ और कृष्ण-पार्षदोंके लिये एक-से-एक सुन्दर, नाना प्रकारके रत्नोंसे जटित एक करोड़ आश्रम हैं। इसके अनन्तर श्रीकृष्णकी प्राणप्यारी गोपियों एवं दासियोंके भी अनेक अतिशय सुन्दर एवं सुखद भवन हैं।

इसके आगे एक अत्यन्त विशाल अक्षयवट है। उसका मूल पचास योजन और उसका ऊपरी भाग सौ योजन विस्तीर्ण है। इस वटवृक्षके सहस्रों विशाल स्कन्ध एवं अगणित शाखाएँ हैं। इसमें रत्नमय फल हैं। इस विशाल वटवृक्षकी सघन शीतल छायामें श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके प्रेमी अनेक गोपबालकोंका समूह क्रीड़ा करता है।

इससे कुछ ही दूर सिन्दूरी रंगके पत्थरोंसे निर्मित राजमार्ग है, जिसके दोनों ओर इन्द्रनील, पद्मराग प्रभृति रत्नोंसे निर्मित पंक्तिबद्ध अट्टालिकाएँ सुशोभित हैं। ये अट्टालिकाएँ भाँति-भाँतिके सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंसे सुसज्जित हैं। गोपाङ्गनाएँ रत्नोंके आभरण धारणकर इन्हीं भवनोंमें क्रीड़ा किया करती हैं।

इसके अनन्तर श्रीकृष्णकी प्राणप्रिया रासरासेश्वरी श्रीराधारानीका अत्यन्त अद्भुत एवं अनुपम सुन्दर महल है। इसके अत्यन्त विशाल एवं सुन्दर सोलह द्वार हैं। इस विशाल भवनमें एक सौ [illegible] भवन हैं। इसके चतुर्दिक् विशाल प्रासाद एवं सैकड़ों अद्भुत अलौकिक पुष्प-वाटिकाएँ हैं। श्रीराधारानीके महलके बाहर [illegible] पर्वत एवं उसके अनन्तर विरजा नदी है। श्रीकृष्णके दर्शनके लिये देवगण यहाँ आया करते हैं।

अप्राकृत आकाश अथवा परम व्योममें स्थित [illegible] धामको श्रीकृष्णने अपनी योगशक्तिसे धारण कर रखा है। यहाँ आधि, व्याधि, जरा, मृत्यु तथा शोक और भयका नाम नहीं है। यहाँ छहों ऋतुएँ सदा विद्यमान रहती हैं। प्रलयकालमें यहाँ श्रीकृष्ण रहते हैं और सृष्टिकालमें यह गोप-गोपियोंसे भरा रहता है। गोलोकसे नीचे पचास करोड़ योजन दूर दक्षिण भागमें वैकुण्ठ और वाम भागमें शिवलोक है। ये दोनों लोक भी गोलोकके समान ही मनोहर और सुखदायक हैं।

[illegible] और भी अत्यन्त आकर्षक [illegible]

स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी लिखते हैं कि इस मन्त्रमें 'ददुः' इस भूतकालिक प्रयोगको देखकर घबराना नहीं चाहिये। वेदकी सब बातें अलौकिक ही होती हैं।

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥
(अथर्व० १०।२।३०)

'(यस्याः पुरुषः)—'जिस पुरीका परमपुरुष (उच्यते)—कहा जाता रहा है अर्थात् जिसका निरूपण सर्वत्र वेद-शास्त्रोंमें किया जाता है और यहाँ भी २८ वें मन्त्रके पूर्वके मन्त्रोंमें जिस पुरुषका निरूपण किया गया है, उसको, (ब्रह्मणः तां पुरम्)—परब्रह्म (श्रीराम) की उस पुरी अयोध्याको (यः वेद, तम्)—जो कोई जानता है, उस प्राणीको (चक्षुः)—दर्शन-शक्ति अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तरिक नेत्र, तथा (प्राणः)—शारीरिक और आत्मिक बल (जरसः पुरा)—मृत्युसे पूर्व (न जहाति)—निश्चय ही नहीं छोड़ते।'

तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीरामकी उभयपादस्थित दोनों अयोध्यापुरी पवित्र अथच दिव्य हैं। त्रिपाद्विभूतिस्थ साकेतके समान ही एकपाद्विभूतिस्थ साकेत—अयोध्याका भी माहात्म्य है। इतना ही अन्तर है कि—

भोगस्थानं परायोध्या लीलास्थानं त्वियं भुवि।
भोगलीलापती रामो निरङ्कुशविभूतिकः॥
(शिवसं० पटल ५, अ० २, श्लोक ८)

'परव्योमस्थित अयोध्या दिव्य (भगवत्स्वरूप) भोगोंकी भूमि है और पृथ्वीगत यह (सबके लिये प्रत्यक्ष) अयोध्या लीलाभूमि है। इन दोनों अयोध्याओंके स्वामी श्रीराम भोग और लीला दोनोंके मालिक हैं। उनकी विभूति (ऐश्वर्य) अङ्कुशहीन (स्वतन्त्र) है।'

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः॥
(अथर्व० १०।२।३१)

वहाँकी उस पुरी (भोगस्थान पुरा अयोध्या) के नाम और रूपको स्पष्टरूपेण यह मन्त्र बताता है—

(पूः अयोध्या)—"यह (अष्टाचक्रा) पुरी अयोध्याजी है, यह आठ चक्रों अर्थात् आवरणोंवाली है; अर्थात् जिसमें आठ आवरण हैं। (नवद्वारा)-जिसमें प्रधान नवद्वार हैं। तथा जो (देवानाम्)—दिव्यगुणविशिष्ट, भक्तिप्रपत्तिसम्पन्न, यम-नियमादिमान्, परमभागवत चेतनोंसे 'सेव्या इति शेषः' सेवनीय है। (तस्यां स्वर्गः)—उस अयोध्यापुरीमें बहुत ऊँचा अथवा बहुत सुन्दर, (ज्योतिषा आवृतः)—प्रकाशपुञ्जसे आच्छादित (हिरण्ययः कोशः)—सुवर्णमय मण्डप है।"

इस मन्त्रमें अयोध्याजीका स्वरूप-वर्णन है। अयोध्यापुरीके चारों ओर कनकोज्ज्वल दिव्य प्रकाशात्मक आवरण है, जो भीतरसे निकलनेपर अष्टमावरण और बाहरसे प्रवेश करनेपर प्रथमावरण या प्रथम चक्र है।

ब्रह्मज्योतिरयोध्यायाः प्रथमावरणे शुभम्।
यत्र गच्छन्ति कैवल्याः सोऽहमस्मीतिवादिनः॥
(वसिष्ठसंहिता २६।१ साकेतसुषमामें उद्धृत)

"अयोध्याके सर्वप्रथम घेरेमें शुभ्र ब्रह्ममयी ज्योति प्रकाशित है। 'सोऽहम् सोऽहम्' कहनेवाले कैवल्यकामी पुरुष (मरनेपर) इसी ज्योतिमें प्रवेश करते हैं।"

'सोऽहं' या 'अहं ब्रह्मास्मि'वादियोंका 'सुदुर्लभ कैवल्य-परमपद' वही है। उस आवरणमें सर्वत्र दिव्य भव्य प्रकाश-मात्र रहता है।

बाहरसे प्रवेश करनेपर द्वितीय किंतु भीतरसे निकलनेपर सप्तमावरण अर्थात् सप्तम चक्र है, जिसमें प्रवहमाना श्रीसरयूजी हैं—

अयोध्यानगरी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
यस्यांशांशेन वैकुण्ठो गोलोकादिः प्रतिष्ठितः॥
यत्र श्रीसरयूर्नित्या प्रेमवारिप्रवाहिणी।
यस्यांशांशेन सम्भूता विरजादिसरिद्वराः॥
(सा० सु० १०७)

'अयोध्या नगरी नित्य है। वह सच्चिदानन्दरूपा है। वैकुण्ठ एवं गोलोक आदि भगवद्धाम अयोध्याके अंशके अंशसे निर्मित हैं। इसी नगरीके बाहर सरयू नदी हैं, जिनमें श्रीरामके प्रेमाश्रुओंका जल ही प्रवाहित हो रहा है। विरजा आदि श्रेष्ठ नदियाँ इन्हीं सरयूके अंशके किसी अंशसे उद्भूत हैं।'

साकेतके पुरद्वारे सरयूः केलिकारिणी॥ ८९॥
(हारहरसंहिता पद १, श्लो० १)

'उस अयोध्या नगरीके द्वारपर सरयू नदी क्रीडा करती रहती हैं।'

बाहरसे तीसरा और भीतरसे निकलनेपर छठा

वामी श्रीभगवदाचार्यजी लिखते हैं कि इस मन्त्रमें 'दद्दुः' स भूतकालिक प्रयोगको देखकर घबराना नहीं चाहिये। दकी सब बातें अलौकिक ही होती हैं।

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥

(अथर्व० १०। २। ३०)

'(यस्याः पुरुषः)—'जिस पुरीका परमपुरुष (उच्यते)—कहा जाता रहा है अर्थात् जिसका निरूपण सर्वत्र वेद-शास्त्रोंमें किया जाता है और यहाँ भी २८ वें मन्त्रके पूर्वके मन्त्रोंमें जिस पुरुषका निरूपण किया गया है, उसको, (ब्रह्मणः तां पुरम्)—परब्रह्म (श्रीराम) की उस पुरी अयोध्याको (यः वेद, तम्)—जो कोई जानता है, उस प्राणीको (चक्षुः)—दर्शन-शक्ति अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तरिक नेत्र, तथा (प्राणः)—शारीरिक और आत्मिक बल (जरसः पुरा)—मृत्युसे पूर्व (न जहाति)—निश्चय ही हीं छोड़ते।'

तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीरामकी उभयपादस्थित नों अयोध्यापुरी पवित्र अथच दिव्य हैं। त्रिपाद्विभूतिस्थ साकेतके समान ही एकपाद्विभूतिस्थ साकेत—अयोध्याका ी माहात्म्य है। इतना ही अन्तर है कि—

'भोगस्थानं परायोध्या लीलास्थानं त्वियं भुवि।
भोगलीलापती रामो निरङ्कुशविभूतिकः॥

(शिवसं० पटल ५, अ० २, श्लोक ८)

'परव्योमस्थित अयोध्या दिव्य (भगवत्स्वरूप) भोगोंकी भूमि है और पृथ्वीगत यह (सबके लिये प्रत्यक्ष) अयोध्या लीलाभूमि है। इन दोनों अयोध्याओंके स्वामी श्रीराम भोग और लीला दोनोंके मालिक हैं। उनकी विभूति (ऐश्वर्य) अङ्कुशहीन (स्वतन्त्र) है।'

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः॥

(अथर्व० १०। २। ३१)

प्रभुकी उस पुरी (भोगस्थान पुरा अयोध्या) के नाम और रूपको स्पष्टरूपेण यह मन्त्र बताता है—

(पूः अयोध्या)—''वह (अष्टाचक्रा) पुरी अयोध्याजी है, यह आठचक्रों अर्थात् आवरणोंवाली है; अर्थात् जिसमें आठ आवरण हैं। (नवद्वारा)-जिसमें प्रधान नवद्वार हैं। तथा जो (देवानाम्)—दिव्यगुणविशिष्ट, भक्तिप्रपत्तिसम्पन्न, यम-नियमादिमान्, परमभागवत चेतनोंसे 'सेव्या इति शेषः' सेवनीय है। (तस्यां स्वर्गः)—उस अयोध्यापुरीमें बहुत ऊँचा अथवा बहुत सुन्दर, (ज्योतिषा आवृतः)—प्रकाशपुञ्जसे आच्छादित (हिरण्ययः कोशः)—सुवर्णमय मण्डप है।''

इस मन्त्रमें अयोध्याजीका स्वरूप-वर्णन है। अयोध्यापुरीके चारों ओर कनकोज्ज्वल दिव्य प्रकाशात्मक आवरण है, जो भीतरसे निकलनेपर अष्टमावरण और बाहरसे प्रवेश करनेपर प्रथमावरण या प्रथम चक्र है।

ब्रह्मज्योतिरयोध्यायाः प्रथमावरणे शुभम्।
यत्र गच्छन्ति कैवल्याः सोऽहमस्मीतिवादिनः॥

(वसिष्ठसंहिता २६। १ सत्योपाख्यानमें उद्धृत)

''अयोध्याके सर्वप्रथम घेरेमें शुभ्र ब्रह्ममयी ज्योति प्रकाशित है। 'सोऽहम् सोऽहम्' कहनेवाले कैवल्यकामी पुरुष (मरनेपर) इसी ज्योतिमें प्रवेश करते हैं।''

'सोऽहं' या 'अहं ब्रह्मास्मि'वादियोंका 'सुरदुर्लभ कैवल्य-परमपद' वही है। उस आवरणमें सर्वत्र दिव्य भव्य प्रकाश-मात्र रहता है।

बाहरसे प्रवेश करनेपर द्वितीय किंतु भीतरसे निकलनेपर सप्तमावरण अर्थात् सप्तम चक्र है, जिसमें प्रवहमाना श्रीसरयूजी हैं—

अयोध्यानगरी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
यस्यांशांशेन वैकुण्ठो गोलोकादिः प्रतिष्ठितः॥
यत्र श्रीसरयूर्नित्या प्रेमवारिप्रवाहिणी।
यस्यांशांशेन सम्भूता विरजादिसरिद्वराः॥

(सा० सु० १०७)

'अयोध्या नगरी नित्य है। वह सच्चिदानन्दरूपा है। वैकुण्ठ एवं गोलोक आदि भगवद्धाम अयोध्याके अंशके अंशसे निर्मित हैं। इसी नगरीके बाहर सरयू नदी है, जिसमें श्रीरामके प्रेमाश्रुओंका जल ही प्रवाहित हो रहा है। विरजा आदि श्रेष्ठ नदियाँ इन्हीं सरयूके अंशके किसी अंशसे उद्भूत हैं।'

साकेतके पुरद्वारे सरयूः केलिकारिणी॥ ८९॥

(सदाशिवसंहिता पार १, अ० १)

'उस अयोध्या नगरीके द्वारपर सरयू नदी क्रीडा करती रहती है।'

बाहरसे तीसरा और भीतरसे निकलनेपर छठा

हैं और जो विशेषकर अपने सुधा-मधुर फलोंके भारी बोझसे अपनी डालियोंके रूपमें भूमिपर लोट रहे हैं। इनमेंसे कदम्बोंके नीचे दिव्य सुवर्णके गट्टे बने हुए हैं, जिनमें श्रेष्ठ रत्नोंसे पच्चीकारी की गयी है। उन वृक्षोंपर फूले हुए पञ्च प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित वल्लरी-जालका चँदोवा तना है; किन्हीं-किन्हींकी छाल सोनेकी है; मोती-जैसे पुष्पोंको वे मुकुटरूपमें धारण किये हुए हैं। उनपर फलोंके स्थानपर चिन्तामणियाँ लगी हैं और उनके पत्ते नीलमके बने सुशोभित हैं।'

(वसिष्ठसंहिता, उपासनात्रयसिद्धान्तसे उद्धृत)

× × ×

'उस वनमें पूर्व आदि चारों दिशाओंमें चार पर्वत हैं, उनके नाम क्रमशः मुझसे सुनो। वे हैं—शृङ्गारपर्वत, रत्नपर्वत, लीलापर्वत और मुक्तापर्वत। ये अपनी शोभासे दसों दिशाओंको उद्भासित करते रहते हैं। पूर्व दिशामें नीलमका बना हुआ 'शृङ्गारपर्वत' है, जिसपर दिव्य सूर्य उदित होते हैं और श्रीरामकी प्रिया श्रीआह्लादिनी देवीके चित्तको चुराते रहते हैं। दक्षिण दिशामें पीले रत्नोंका बना हुआ शोभासम्पन्न 'रत्नपर्वत' देदीप्यमान है, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण वनको उद्भासित करता रहता है और जो श्रीभूदेवीको प्रिय है। पश्चिम दिशामें लाल रत्नोंका बना हुआ तथा श्रीरामकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला 'नीलपर्वत' विराजमान है, जिसकी प्रभा श्रीलीलादेवीको प्रिय है। उत्तर दिशामें भगवती श्रीदेवीकी लीलामें सहयोग देनेके लिये चन्द्रकान्त मणियोंसे सुशोभित विशाल एवं उज्ज्वल 'मुक्तापर्वत' प्रकट है, जो विचित्र पुष्पपुञ्जोंसे सम्पन्न लतासमूहोंके वितान (चँदोवे) से सुशोभित तथा सुधाको भी मात कर देनेवाले स्वादिष्ट फलोंके बोझसे अत्यधिक झुके हुए वृक्षोंसे मण्डित है।'

(वसिष्ठसंहिता अध्याय २६)

बाहरसे जानेमें आठवाँ और भीतरसे निकलनेमें जो प्रथम आवरण है, उसमें नित्यमुक्त भगवत्-पार्षदगण रहते हैं और भगवान्‌के अनन्तानन्त अवतार भी इसीमें रहते हैं—

'मन्दिरके दक्षिणद्वारपर [श्रीरामके प्रति वात्सल्यभाव रखनेवाले श्रीहनुमान्‌जी (द्वारपालके रूपमें) विराजमान हैं। उसी द्वार-देशमें 'सान्तानिक' नामका वन है, जो श्रीहरि (श्रीराम) को प्रिय है।'

× × ×

'मत्स्य, कूर्म, अनेक वराह, अनेक नरसिंह, वैकुण्ठ, हयग्रीव, हरि, वामन, केशव, यज्ञ, धर्मपुत्र नारायणऋषि तथा उनके छोटे भाई नर, देवकीनन्दन श्रीकृष्ण, वसुदेवनन्दन बलराम, पृश्निगर्भ, मधुसूदन, गोविन्द, माधव, परात्पर वासुदेव, अनन्त, संकर्षण, इलापति, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध भगवान्‌के ये सभी व्यूह भी श्रीरामकी आज्ञामें रहकर एक साथ उनकी सेवामें उपस्थित होते हैं। श्रीराम नामसे विख्यात महेश्वर इनके तथा अन्य ईश्वरोंके द्वारा सेव्य हैं; कारण, ये इन सबको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा इनके मूल हैं। इनके बिना ये सब ऐश्वर्यहीन हैं।'

(सदाशिवसंहिता ५। २। २४–२८)

विभिन्न साम्प्रदायिक ग्रन्थोंमें आवरणस्थ निवासियोंके स्थानोंमें यत्रतत्र हेरफेर भी है, परंतु तत्तन्निवासियोंके नामोंमें हेरफेर नहीं है।

> तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
> तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥
>
> (अथर्व० १०। २। ३२)

"(तस्मिन्) उस विशाल (हिरण्यये) सुवर्णमय (कोशे) मण्डपमें (तस्मिन्) उसके अर्थात् उस मण्डपके (आत्मन्वत्) आत्माके समान (यद् यक्षम्) जो पूजनीय देव विराजमान है, (तत्) उसीको (ब्रह्मविदः) ब्रह्मस्वरूप ज्ञानवान् जन (विदुः) जानते हैं। अथवा 'ब्रह्मविदः' में दो पद हैं 'ब्रह्म' और 'विदः' तब अर्थ हुआ यह कि (विदः तत्) विद्वान् जन उसी यक्षको उसी परमोपास्य देवको, (ब्रह्म विदुः) परात्पर सनातन महापुरुष जानते हैं। जिस कोशमें वह यक्ष विराजमान है वह कोश कैसा है? तो (त्र्यरे) उसमें तीन अरे लगे हुए हैं अर्थात् सत्, चित्, आनन्द—तीन अरोंपर वह मण्डप बना हुआ है तथा (त्रिप्रतिष्ठिते) चित्, अचित् एवं ईश्वर तीनोंसे प्रतिष्ठित—आवृत है।"

इस मन्त्रमें जो 'तस्मिन्' पद आया है, वह षष्ठीके अर्थमें है। इसीसे उसका अर्थ 'उसके' किया गया है।

इस मन्त्रमें स्पष्ट ही कहा गया है कि अयोध्याके मध्यमें जो सुवर्णमय मणिमण्डप है, उसमें जो देव विराजमान हैं, उन्हींको विद्वान् लोग ब्रह्म कहते हैं। अयोध्याके मणिमण्डपमें भगवान् श्रीरामके अतिरिक्त अन्य कोई भी विराजमान नहीं है। अतः भगवान् श्रीरामजी ही ब्रह्म हैं। इसी अर्थका पद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय दो सौ अट्ठाईसमें

[हैं] और जो विशेषकर अपने सुधा-मधुर फलोंके भारी बोझसे अपनी डालियोंके रूपमें भूमिपर लोट रहे हैं। इनमेंसे [वृक्षों]के नीचे दिव्य सुवर्णके गट्टे बने हुए हैं, जिनमें [श्रे]ष्ठ रत्नोंसे पचीकारी की गयी है। उन वृक्षोंपर फूले [हु]ए पञ्च प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित वल्लरी-जालका चँदोवा [त]ना है; किन्हीं-किन्हींकी छाल सोनेकी है; मोती-जैसे [पु]ष्पोंको वे मुकुटरूपमें धारण किये हुए हैं। उनपर फलोंके [स्था]नपर चिन्तामणियाँ लगी हैं और उनके पत्ते नीलमके [ब]ने सुशोभित हैं।'

(वसिष्ठसंहिता, उपासनात्रयसिद्धान्तसे उद्धृत)

× × ×

'उस वनमें पूर्व आदि चारों दिशाओंमें चार पर्वत हैं, उनके नाम क्रमशः मुझसे सुनो। वे हैं—शृङ्गारपर्वत, [र]त्नपर्वत, लीलापर्वत और मुक्तापर्वत। ये अपनी शोभासे [चा]रों दिशाओंको उद्भासित करते रहते हैं। पूर्व दिशामें नीलमका बना हुआ 'शृङ्गारपर्वत' है, जिसपर दिव्य सूर्य उदित होते हैं और श्रीरामकी प्रिया श्रीआह्लादिनी देवीके चित्तको चुराते रहते हैं। दक्षिण दिशामें पीले रत्नोंका बना हुआ शोभासम्पन्न 'रत्नपर्वत' देदीप्यमान है, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण वनको उद्भासित करता रहता है और जो श्रीभूदेवीको प्रिय है। पश्चिम दिशामें लाल रत्नोंका बना हुआ तथा श्रीरामकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला 'नीलपर्वत' विराजमान है, जिसकी प्रभा श्रीलीलादेवीको प्रिय है। उत्तर दिशामें भगवती श्रीदेवीकी लीलामें सहयोग देनेके लिये चन्द्रकान्त मणियोंसे सुशोभित विशाल एवं उज्ज्वल 'मुक्तापर्वत' प्रकट है, जो विचित्र पुष्पपुञ्जोंसे सम्पन्न लतासमूहोंके वितान (चँदोवे) से सुशोभित तथा सुधाको भी मात कर देनेवाले स्वादिष्ट फलोंके बोझसे अत्यधिक झुके हुए वृक्षोंसे मण्डित है।'

(वसिष्ठसंहिता अध्याय २६)

बाहरसे आनेमें आठवाँ और भीतरसे निकलनेमें जो प्रथम आवरण है, उसमें नित्यमुक्त भगवत्-पार्षदगण रहते हैं और भगवान्के अनन्तानन्त अवतार भी इसीमें रहते हैं—

'साकेतके दक्षिणद्वारपर श्रीरामके प्रति वात्सल्यभाव रखनेवाले श्रीहनुमान्जी (द्वारपालके रूपमें) विराजमान हैं। उसी द्वार-देशमें 'सान्तानिक' नामका वन है, जो श्रीहरि (श्रीराम) को प्रिय है।'

× × ×

'मत्स्य, कूर्म, अनेक वराह, अनेक नरसिंह, वैकुण्ठ, हयग्रीव, हरि, वामन, केशव, यज्ञ, धर्मपुत्र, नारायणऋषि तथा उनके छोटे भाई नर, देवकीनन्दन श्रीकृष्ण, वसुदेवनन्दन बलराम, पृश्निगर्भ, मधुसूदन, गोविन्द, माधव, परात्पर वासुदेव, अनन्त, संकर्षण, इलापति, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध भगवान्के ये सभी व्यूह भी श्रीरामकी आज्ञामें रहकर एक साथ उनकी सेवामें उपस्थित होते हैं। श्रीराम नामसे विख्यात महेश्वर इनके तथा अन्य ईश्वरोंके द्वारा सेव्य हैं; कारण, ये इन सबको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा इनके मूल हैं। इनके बिना ये सब ऐश्वर्यहीन हैं।'

(सदाशिवसंहिता ५। २। २४-२८)

विभिन्न साम्प्रदायिक ग्रन्थोंमें आवरणस्थ निवासियोंके स्थानोंमें यत्रतत्र हेरफेर भी है, परंतु तत्तन्निवासियोंके नामोंमें हेरफेर नहीं है।

> तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
> तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥
>
> (अथर्व० १०। २। ३२)

"(तस्मिन्) उस विशाल (हिरण्यये) सुवर्णमय (कोशे) मण्डपमें (तस्मिन्) उसके अर्थात् उस मण्डपके (आत्मन्वत्) आत्माके समान (यद् यक्षम्) जो पूजनीय देव विराजमान है, (तत्) उसीको (ब्रह्मविदः) ब्रह्मस्वरूप ज्ञानवान् जन (विदुः) जानते हैं। अथवा 'ब्रह्मविदः' में दो पद हैं 'ब्रह्म' और 'विदः' तब अर्थ हुआ यह कि (विदः तत्) विद्वान् जन उसी यक्षको उसी परमोपास्य देवको, (ब्रह्म विदुः) परात्पर सनातन महापुरुष जानते हैं। जिस कोशमें यह यक्ष विराजमान है वह कोश कैसा है? तो (त्र्यरे) उसमें तीन अरे लगे हुए हैं अर्थात् सत्, चित्, आनन्द—तीन अरोंपर यह मण्डप बना हुआ है तथा (त्रिप्रतिष्ठिते) चित्, अचित् एवं ईश्वर तीनोंसे प्रतिष्ठित—आदृत है।"

इस मन्त्रमें जो 'तस्मिन्' पद आया है, वह षष्ठीके अर्थमें है। इसीसे उसका अर्थ 'उसके' किया गया है।

इस मन्त्रमें स्पष्ट ही कहा गया है कि अयोध्याके मण्डपमें जो सुवर्णमय मणिमण्डप है, उसमें जो देव विराजमान हैं, उन्हींको विद्वान् लोग 'ब्रह्म' कहते हैं। अयोध्याके मणिमण्डपमें भगवान् श्रीरामके अतिरिक्त अन्य कोई भी विराजमान नहीं है। अतः भगवान् श्रीराम ही ब्रह्म हैं। इसी अर्थका पद्मपुराण उत्तरखण्ड अध्याय दो सौ अट्ठाईसमें

यमेत्र सीतारामयोर्विहारस्थलमस्ति ।'

(सा० सु०, रमावैकुण्ठ पृ० २)

तात्पर्य यह कि "श्रीरसागरस्थ वैकुण्ठ, रमावैकुण्ठ, महा-ण्ठ, कारणवैकुण्ठ और विरजापार (त्रिपाद्विभूतिस्थ) आदि ण्ठ—इन पाँचों वैकुण्ठोंका तथा अन्य अनन्त वैकुण्ठोंका धार 'अयोध्या-साकेत' ही है ।' यह साकेत मूल प्रकृतिसे अखण्ड और अपरिवर्तनीय ब्रह्ममय है, विरजाके दूसरे पर स्थित है, दिव्यरत्नमण्डपवाली है । इसी अयोध्यामें सीतारामजीकी नित्य विहारभूमि है ।

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम् ।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥

(अथर्व० १० । २ । ३३)

'(ब्रह्म) सर्वान्तर्यामी श्रीरामजी (पुरम्) उसी श्रीअयोध्यापुरी-में (आविवेश) प्रविष्ट हैं अर्थात् विराजमान हैं । वह (प्रभ्राज-मानाम्) अत्यन्त प्रकाशमयी है, (हरिणीम्) मनको हरण करनेवाली है अथवा सर्वपापोंका आत्यन्तिक नाश करनेवाली है तथा (यशसा सम्परीवृताम्) अनन्तकीर्तिसे युक्त है और (अपराजिताम्) सर्वपुरियोंमें श्रेष्ठ है अर्थात् जिसकी तुलना कोई भी पुरी नहीं कर सकती ।'

प्राप्य वेदोंमें तो उपर्युक्त साढ़े पाँच मन्त्र ही हैं, परंतु पुराणोंमें, पाञ्चरात्रीय संहिताओंमें, यामलोंमें, रामायणोंमें एवं साम्प्रदायिक रहस्य-ग्रन्थोंमें अयोध्या-साकेतका इतना विस्तृत वर्णन है कि उनका संक्षिप्त संकलन भी बड़ा पोथा हो सकता है । यह लघु लेख तो स्थालीपुलाकन्यायसे संकेतमात्र है ।

नित्य कैलास

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

करुणामय भगवान् शंकरका दिव्य कैलास उन्हें त्यधिक प्रिय है । उस कैलासके शिखर मणियोंके हैं और उनपर अनेक विचित्र धातुओंके प्रतीत होते हैं । न सुन्दर शिखरोंपर लता-गुल्म फैले हैं । कैलासके कल्पवृक्षों-का तो वर्णन ही क्या किया जाय, जब कि पर्वतपर और विस्तृत वनोंमें मन्दार, पारिजात, पुन्नाग, चम्पा, शाल, ताड़, कचनार, असन, अर्जुन, आम, कदम्ब, गुलाब, अशोक, मौलसिरी, कुन्द, कुरवक, कटहल, गूलर, पीपल, ाकर, बड़, गूगल, भोजवृक्ष और केले आदिके अनेक फलों एवं सुगन्धित पुष्पोंके असंख्य वृक्ष और पौधे सुहावने लगते हैं । उनका सौन्दर्य देखकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है । इलायची और मालतीकी मनोहर लताएँ तथा कुब्जक, मोगरा और माधवीकी फैली हुई बेलें वहाँके अनुपम सौन्दर्यकी वृद्धि करती रहती हैं । वहाँ आमड़ा, सियार, महुआ और लिसौढ़ा आदि अनेक प्रकारके वृक्षों तथा पोले और ठोस बाँसोंका फैला हुआ विशाल वन बड़ा ही सुन्दर लगता है । वहाँ सुरभित वायु बहती रहती है । मयूर नृत्य करते रहते हैं और कोयलकी कूक तथा विभिन्न जातिके पक्षियोंके कलरव मनको मोह लेते हैं । उन वनोंमें वनके हाथी, हरिन, वानर, सूअर, सिंह, रीछ, साही, नीलगाय, शरभ, बाघ, कृष्णमृग, भैंसे, एकपद, अश्वमुख, भेड़िये और कस्तूरीमृग आदि पशु स्वच्छन्द सुखपूर्वक विचरण करते हैं । सरोवरोंमें कुमुद तथा विभिन्न जातियोंके सुगन्धित प्रफुल्ल कमल नेत्रोंको सुख प्रदान करते हैं । उनपर भ्रमर गुञ्जार करते रहते हैं । वनों और सरोवरोंमें, उनके तटपर चारों ओर केलेके वृक्षोंकी पंक्तियाँ बड़ी सुन्दर लगती हैं । वह नन्दा और अलकनन्दा नामक देव-सरितासे घिरा है । उनका जल अत्यन्त मधुर और निर्मल है । उनमें आदिशक्ति सतीके स्नान करनेसे उनकी पवित्रता और बढ़ गयी है तथा उनका जल सुगन्धित हो गया है ।

उससे आगे श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न वृषभ स्थित हैं, जो साक्षात् धर्म हैं । जिनके सत्य आदि चार पैर हैं । क्षमा सींग और शम उनके कान हैं । वेदध्वनि आस्तिकतारूप नेत्र हैं । उसके आगे दिन-रात और जन्म-मृत्युका सर्वथा अभाव है । उसके अनन्तर कारणब्रह्माके चौदह लोक, फिर कारण-विष्णुके चौदह लोक हैं । उसके आगे कारण-रुद्रके अट्ठाईस लोक हैं । उसके बाद कारणेशके छप्पन लोक हैं । फिर शिवगम्भित महानयं लोक है । यही नित्य कैलास है ।

इस भूतभावन भोलेनाथके कैलासमें सभी प्राणी सर्वत्र सानन्द विचरण करते हैं । वहाँ किसीसे, किसीको, किसी प्रकारका भय नहीं । सब एक-दूसरेके आत्मीय हैं ।

वह तीव्रगामी विमान उड़ता हुआ तुरंत कैलासके मनोरम शिखरपर पहुँच गया। हिमाच्छादित कैलास-शिखरकी शोभा अवर्णनीय थी। वहाँ मन्दारके वृक्ष पुष्पोंसे लदे झूम रहे थे। शुक और कोयलका मधुर कलरव सुनायी दे रहा था। वीणा और पखावजकी सुखद ध्वनि कानोंमें पड़ रही थी। वहाँ बहुत-से यक्ष दीख रहे थे। विमानके वहाँ पहुँचते ही एक भव्य-भवनसे गजचर्म ओढ़े पञ्चमुख आशुतोष शिव निकले। उनके दस भुजाएँ थीं। उनकी कर्पूरधवल अङ्गकान्ति अत्यन्त मनोहर थी। त्रिनेत्रके ललाटपर सुधांशु चमक रहा था। भगवान् शंकरके दोनों ओर गणेश और कार्तिकेय चल रहे थे। नन्दी तथा प्रधान गण, भगवान् चन्द्रमौलिके पीछे-पीछे उनकी जय बोलते चल रहे थे। इस दृश्यको देखकर भगवान् विष्णु एवं ब्रह्मासहित पार्वतीवल्लभ शंकर आश्चर्यचकित हो रहे थे।

कुछ ही देरमें वह अद्भुत विमान कैलास-शिखरसे तीव्रगतिसे उड़ता हुआ वैकुण्ठ-लोकमें पहुँच गया। वहाँका वैभव देखकर श्रीविष्णुके आश्चर्यकी सीमा न रही। ब्रह्मा और रुद्रके साथ उन्होंने पीताम्बरधारी कमलनयन श्रीहरिको पक्षिराज गरुड़की पीठपर विराजित देखा। उनके श्रीविग्रहकी कान्ति अलसीके पुष्पकी भाँति थी। दिव्य आभूषणोंसे उनकी अनुपम शोभा हो रही थी। उनकी प्रियतमा श्रीलक्ष्मीजी उनकी सेवामें उपस्थित थीं। यह अद्भुत दृश्य देखकर तीनों देवता चकित होकर विमानमें बैठ गये। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। ये तीनों लोक (स्वर्ग, कैलास एवं वैकुण्ठ) इन त्रिदेवोंके परिचित लोकोंसे सर्वथा भिन्न थे। इनके ब्रह्माण्डके नहीं थे।

इतनेमें ही पवनविनिन्दक गतिवाला वह विमान तुरंत आगे बढ़ गया। वहाँ त्रिदेवोंने अमृततुल्य मधुर जलका विस्तृत महासागर देखा। उसमें चञ्चल लहरें उठ रही थीं। उस समुद्रमें अनेक जलजन्तु सुखपूर्वक निवास कर रहे थे। उस सुखद समुद्रके बीच एक अलौकिक द्वीप था। मन्दार एवं पारिजातके वृक्षों एवं उनके पुष्पोंसे द्वीपका सौन्दर्य निखरा हुआ था। अशोक, बकुल, कुरवक, केतकी और चम्पा आदि वृक्षोंकी पुष्पित डालियाँ वायुके मन्द झकोरोंसे झूमती हुई अद्भुत सुगन्ध बिखेर रही थीं। उनमें यत्र-तत्र कोयल पञ्चम स्वरमें आलाप ले रही थी और भ्रमर गुंजार कर रहे थे। सर्वत्र दिव्य गन्धका छिड़काव हुआ था। वह द्वीप नाना प्रकारके अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक चित्रोंसे सजा हुआ था और वहाँ मणियोंकी मालाएँ झूल रही थीं।

उस द्वीपमें एक मङ्गलमय पर्यङ्क बिछा हुआ था। उसपर अनेक सुन्दर सुकोमल बिस्तर पड़े थे। पर्यङ्कका प्रकाश इन्द्रधनुषके सदृश था। पलंगपर सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी भगवती भुवनेश्वरी आसीन थीं। उनका श्रीविग्रह अरुणाम्बरसे सुशोभित था। उनके परम दिव्य अङ्गोंपर रक्त-चन्दनका लेप था और उनके सुकोमल कण्ठमें लाल रंगकी अद्भुत दिव्य माला शोभा पा रही थी। उनके नेत्र विशाल एवं लाल थे। उनका मुखारविन्द अत्यन्त सुन्दर था और उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा कोटि-कोटि विद्युत्कान्तिके तुल्य थी। उनके करकमल पाश, अङ्कुश, अभय और वरमुद्रासे शोभा पा रहे थे। अद्भुत एवं अलौकिक आभूषण उनके दिव्यतम अङ्गोंपर सुशोभित थे।

उस परमाम्बाके सहस्रों हाथ, सहस्रों मुखारविन्द एवं सहस्रों सुन्दर विशाल नेत्र थे। अनेक गायक उनके समीप बैठकर 'ह्रीं' मन्त्रका जप करते थे। नाम जपमें तल्लीन बहुत-सी सहचरियाँ उनकी स्तुति कर रही थीं। जगज्जननी छः कोनोंवाले उत्तम यन्त्रपर विराजमान थीं तथा 'भुवनेशी' 'माहेश्वरी' आदि नामोंको हृदयङ्गम करनेवाली देवकन्याएँ उनके चारों ओर बैठी थीं। महामायाकी करोड़ों विभूतियाँ उनके आस-पास विराजमान थीं। उनकी विभूतियोंके शरीर भी दिव्य अलंकारों एवं दिव्य वस्त्रोंसे सुशोभित थे। वे सभी सहचरियाँ कल्याणस्वरूपिणी महाभगवतीकी सेवामें संलग्न थीं।

यह अद्भुत दर्शन प्राप्त कर श्रीगरुडगामी भगवान् विष्णुने विचारपूर्वक निश्चय कर लिया कि ये ही सबकी आदिकारण भगवती जगदम्बिका हैं।

भारत! यहाँ एक बात समझनेकी है कि आद्याशक्ति जगदम्बिकाने अपने जिस अनुपम रूपका दर्शन ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रको कराया था, वह उनकी इच्छा

'तेपामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न
या चेति ।' (प्रश्नोपनिषद् १ । १६)

'जिनमें कुटिलता, असत्य और कपटका सर्वथा अभाव
उन्हींको यह विकाररहित पवित्र ब्रह्मलोक मिलता है ।'

संत कबीर, दादू, रैदास, दरियासाहेब, गुलालसाहेब आदि
मोंकी वाणियोंमें इस परमधामका विभिन्न रूपोंमें वर्णन है ।

परमधाम-प्राप्ति ही साधनाका परम फल है । जो मनुष्य ज्ञानतत्त्व और कर्मतत्त्वको साथ-साथ जान लेता है, वह कर्मके निष्काम अनुष्ठानसे मृत्युको पारकर तत्त्वज्ञानके प्रकाशमें अमृतका रसास्वादन करता है—अविनाशी आनन्दमय परब्रह्मको प्रत्यक्ष प्राप्त कर लेता है । परमधामकी अनुभूति साक्षात् परब्रह्म—परमात्माकी ही प्राप्ति है ।

यम और उनका लोक

(लेखक—'श्रीमण्डन' मिश्र)

भारतीय देवमण्डलमें यमका एक उच्च स्थान है । वे दक्षिण दिशाके दिक्पाल एवं मृत्युके देवता माने जाते हैं । कुछ लोगोंका मत है कि ये दोनों भिन्न हैं । दुर्गाचारके मतसे प्राणिमात्रके मारक हैं, वे ही मृत्यु हैं । वे भोगायतन देहसे जीवात्माको विमुक्त करते हैं । किंतु यम जीवमात्रको कर्मानुसार स्थान प्रदान करते हैं । दोनोंके कार्य भिन्न होते हुए दोनोंमें बहुत कुछ सादृश्यता देखी जाती है । वेदमें कई जगह यम और उनकी बहिन यमी (यमुना) को विवस्वत और सरण्युकी यमज संतति बतलाया गया है । ऋग्वेदके कई स्थानोंमें यमको 'वरुण' कहा गया है और उनका अग्निके साथ एकत्र वर्णन देखा जाता है । मृत व्यक्ति परलोकमें सबसे पहले यम और वरुणको देखता है । चित्रगुप्तके प्रसङ्गमें यह आया है कि उनकी सूचनापर मृत व्यक्तिकी अगली व्यवस्था यमराजजी कराते हैं । त्रिलोकमें मध्य दो सवितृलोक और तीसरा यमलोक है । वाजसनेय संहिताके अनुसार यम यमीके साथ उच्चतम स्वर्गमें विराजते हैं तथा उनके चारों ओर दिव्य संगीत और वीणाध्वनि होती रहती है । यम और यमीके कथोपकथनमें यमीने यमको सर्वप्रथम मरणशील बतलाया है । वे ही सबसे पहले देह त्यागकर मरण-पथके नेता हुए । ऋग्वेदमें एक उल्लू या कपोतको यमका दूत कहा गया है, परंतु उस रूपमें दो कुत्तोंका भी उल्लेख अधिक मिलता है । इनका वर्णन 'यमराजके कुत्ते' शीर्षक लेखमें किया गया है । प्रसिद्ध पाश्चात्य पंडित ब्लूमफिल्डका कहना है कि ये दोनों कुत्ते चन्द्र और सूर्यके रूपकमात्र हैं ।

मेदके यम पारसियोंके आदिशास्त्र 'अवस्ता'में यम नामसे वर्णित हैं । यूनानी पुराणोंके प्लूतो और मीनासके साथ यमकी पूर्ण सादृश्यता है । अवस्तामें इनके पिताको 'विवमहित' और वेदमें 'विवस्वत' कहा गया है । इस तरह दोनोंमें कोई पृथक्ता नहीं देख पड़ती ।

पुराणोंके अनुसार विश्वकर्माकी एक 'संज्ञा' नामक कन्या थी । रविका उसके साथ विवाह हुआ था । संज्ञाने रविको देखकर आँखें मूँद ली थीं, इसलिये रविने उसे शाप दिया कि 'तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र होगा, वह प्रजासंयम यम होगा ।'

स्मृतियोंमें यमके चौदह नाम देखनेमें आते हैं । उन्हींके अनुसार यमका तर्पण किया जाता है । यमराज ही कर्मानुसार मृत प्राणीको विभिन्न लोकोंमें भेजते हैं । इसीलिये उन्हें कभी-कभी 'धर्मराज' भी कहा जाता है । जब वे पुण्यात्माको दर्शन देते हैं, तब उनका रूप बहुत कुछ विष्णु भगवान्-जैसा होता है; किंतु पापियोंको वे बड़े भयानक रूपमें दिखायी देते हैं । पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें इसका वर्णन मिलता है । मनुष्यलोकसे यमलोक ८६००० योजन दूर है । इस महापथसे ही प्रेत यमलोक जाते हैं । इसी मार्गमें भयंकर वैतरणी नदी मिलती है । यमलोकका बड़ा सुन्दर वर्णन पुराणोंमें मिलता है । वराहपुराणके अनुसार 'उनका नगर ४००० योजन लंबा और २००० योजन चौड़ा है । इसमें कितनी ही सुन्दर अट्टालिकाएँ हैं । नगरमें विशाल राजमार्ग हैं, जिनपर अनेक प्रकारके वाहनोंका आवागमन होता रहता है । पुष्पोदका नामकी एक नदी है, जिसका जल बहुत शीतल एवं सुगन्धित है । उसमें विलास-प्रिय अप्सराएँ क्रीड़ा करती रहती हैं । कमलिनी सदा खिली रहती हैं और उनके बीच हंस विचरते रहते हैं और दूसरा प्रमुण्डक नक्षत्र है ।' विद्वानोंकी रायमें यह सब रूपक मात्र है । इसमें जिन दो कुत्तोंकी बात आती है, उनमेंसे एक मुण्डक नक्षत्र और दूसरा प्रमुण्डक नक्षत्र है ।

पापियोंकी दुःखपूर्ण यात्रा [पृष्ठ ४०५-६]

पापियोंको यमराजकी फटकार [पृष्ठ ४०८]

धर्मात्माओंकी यमपुरीकी सुखयात्रा [पृष्ठ ४११]

धर्मराजके द्वारा धार्मिकोंका सत्कार [पृष्ठ ४१[illegible]]

विद्वान् और विद्वानोंमें अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुष श्रेष्ठ हैं। ाचञ्चल बुद्धिवाले पुरुषोंमें कर्तव्यका पालन करनेवाले श्रेष्ठ हैं ीर कर्तव्य-पालकोंमें भी ब्रह्मवादी (वेदका कथन करने- ाले) पुरुष श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मवादियोंमें भी वह श्रेष्ठ कहा जाता , जो ममता आदि दोषोंसे रहित हो। इनकी अपेक्षा भी स पुरुषको श्रेष्ठ समझना चाहिये, जो सदा भगवान्‌के यानमें तत्पर रहता है।* इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके सदाचार और ईश्वरकी भक्तिरूप) धर्मका संग्रह करना ाहिये। धर्मात्मा जीव सर्वत्र पूजित होता है, इसमें संशय हीं है। तुमलोग सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न पुण्यलोकमें ाओ। यदि कोई पाप है तो पीछे यहीं आकर उसका ल भोगना।'

ऐसा कहकर यमराज उन पुण्यात्माओंकी पूजा करके न्हें सद्‌गतिको पहुँचा देते हैं और पापियोंको बुलाकर उन्हें ालदण्डसे डराते हुए फटकारते हैं। उस समय उनकी आवाज ्रलयकालके मेघके समान भयंकर होती है और उनके शरीर- ी कान्ति कज्जलगिरिके समान जान पड़ती है। उनके स्त्र-शस्त्र बिजलीकी भाँति चमकते हैं, जिनके कारण वे े भयंकर जान पड़ते हैं। उनके बत्तीस भुजाएँ हो जाती । शरीरका विस्तार तीन योजनका होता है। उनकी लाल- ाल और भयंकर आँखें बावड़ीके समान जान पड़ती हैं। े दूत यमराजके समान भयंकर होकर गरजने लगते हैं। उन्हें देखकर पापी जीव थर-थर काँपने लगते हैं और अपने- अपने कर्मोंका विचार करके शोकग्रस्त हो जाते हैं। उस समय यमकी आज्ञासे चित्रगुप्त उन सब पापियोंसे कहते हैं—'अरे ओ दुराचारी पापात्माओ! तुम सब लोग अभिमानसे दूषित हो रहे हो। तुम अविवेकियोंने काम, क्रोध आदिसे दूषित अहंकारयुक्त चित्तसे किसलिये पापका आचरण किया? पहले तो बड़े हर्षमें भरकर तुमलोगोंने पाप किये हैं, अब उसी प्रकार नरककी यातनाएँ भी भोगनी चाहिये। अपने कुटुम्ब, मित्र और स्त्रीके लिये जैसा पाप तुमने किया है, उसीके अनुसार कर्मवश तुम यहाँ आ पहुँचे हो। अब अत्यन्त दुखी क्यों हो रहे हो? तुम्हीं सोचो, जब पहले तुमने पापाचार किया था, उस समय यह भी क्यों नहीं विचार लिया कि यमराज इसका दण्ड अवश्य देंगे। कोई दरिद्र हो या धनी, मूर्ख हो या पण्डित और कायर हो या वीर—यमराज सबके साथ समान बर्ताव करनेवाले हैं।' चित्रगुप्तके ये वचन सुनकर वे पापी भयभीत हो अपने कर्मोंके लिये शोक करते हुए चुपचाप खड़े रह जाते हैं। तब यमराजकी आज्ञाका पालन करनेवाले क्रूर, क्रोधी और भयंकर दूत इन पापियोंको बलपूर्वक पकड़- कर नरकोंमें फेंक देते हैं। वहाँ अपने पापोंका फल भोगकर अन्तमें शेष पापके फलस्वरूप वे भूतलपर आकर स्थावर आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं।

(नारदपुराण, पूर्व० अध्याय ११)

पापसे बचकर धर्म-सेवन करो

मनुष्यको अपने जीवनमें पापोंसे सदा बचना चाहिये। पाप तीन साधनोंसे होते हैं—मनसे, वचनसे, ारीरसे। तीनों साधनोंको सदा पापसे बचाकर पुण्यकर्मों—धर्म-सेवनमें ही लगाये रक्खो। पाप तीन रहसे होते हैं—'कृत' (स्वयं करे), 'कारित' (दूसरोंके द्वारा करवाये) और 'अनुमोदित' (कोई दूसरा ाप करता हो तो उसका समर्थन करे)। इन तीनों तरहसे पाप-कर्म न करके स्वयं धर्मका सेवन करे, ूसरोंको सदा धर्मका सेवन करनेके लिये प्रेरणा, उत्साह तथा सहायता देता रहे और किसीके द्वारा भी ोनेवाले पापका समर्थन तो कभी करे ही नहीं, उसका यथोचित विरोध करे तथा दूसरोंके धर्म-कार्योंका ादा समर्थन कर उन्हें उत्साहित करता रहे।

---

* ब्रह्मवादिष्वपि तथा श्रेष्ठो निर्मम उच्यते । तेभ्योऽपि परो ज्ञेयो नित्यं ध्यानतत्परः ॥

(नारद०, पूर्व० ११ । १६-१७)

वे भूख-प्याससे दुखी पापी यमदूतोंद्वारा मुद्गरोंसे ताड़े जाते हैं और हाय-हाय करते हुए कहते हैं—

महता पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते।
तत्प्राप्य न कृतो धर्मः कीदृशं हि मया कृतम्॥
मया न दत्तं न हुतं हुताशने
तपो न तप्तं त्रिदशा न पूजिताः।
न तीर्थसेवा विहिता विधानतो
देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्॥
(ग० पु०)

'बड़े पुण्ययोगसे मनुष्य-शरीर पाकर भी मैंने दान, धर्म, तप, होम, देवपूजा और तीर्थसेवा नहीं की। परोपकार, गङ्गाका आश्रय और सत्सङ्ग नहीं किया। गौ-ब्राह्मण तथा दुखियोंके लिये कुछ भी नहीं किया। इसलिये हे देही! तू अपने पापकर्मोंको भोग।'

स्त्रीके लिये पति ही तीर्थ, व्रत और धर्म है; किंतु जिसने पतिकी सेवा नहीं की तथा विधवा होकर भी व्रतका सेवन नहीं किया, वह भी इसी प्रकार रोती-विलाप करती है।

यह प्रेत सत्रह दिनतक वायुके वेगसे अकेला ही विकट मार्गपर चलता हुआ अठारहवें दिन सौम्यपुरको जाता है। उस नगरमें बड़ा भारी प्रेतोंका समुदाय रहता है। वहाँ पुष्पभद्रा नामक नदी है। उस मनोहर नदीके किनारे विशाल वटवृक्ष है। वह वहाँपर विश्राम करता है और स्त्री-पुत्रादिके सौख्यका स्मरण करता है। फिर यमदूतोंद्वारा यमपुर ले जाया जाता है। दान-पुण्य न करनेके कारण वैतरणीमें डूबता जाता है। दूतोंद्वारा बार-बार खींचकर निकाला जाता है। रास्तेमें पुत्रोंद्वारा दिये मासिक पिण्डोंको हर्षपूर्वक खाता है।

शैलागमन, विचित्रपुर आदि नगरोंको लाँघता हुआ अन्तमें यमराजके मुख्य नगरमें पहुँचता है। वह चौवालीस योजनके प्रभागका है। वहाँ चित्रगुप्त, जो धर्मराजके महामन्त्री हैं, उन पापियोंकी सब जानकारी बताते हैं और फिर यमराजकी आज्ञा पाकर कहते हैं—

'अरे पापी दुराचारियो! तुमने अज्ञान धारण करके अहंकारसे दूषित हो अनेक पाप इकट्ठे किये। काम-क्रोध और पापियोंकी संगतिसे उत्पन्न पाप ही तुम्हें दुःख देने-वाले हैं। जैसे पाप किये हैं, वैसे ही यमकी यातना भोगनी योग्य है।'

यमदेवकी आज्ञा पाकर प्रचण्ड, चण्डक आदि दूत उन सब पापियोंको एक पाशमें बाँधकर घोर नरकोंमें ले जाते हैं। श्रीगरुडपुराणमें चौरासी लाख नरक बताये गये हैं, जिनमें मुख्य २१ या २८ हैं।

पापी मनुष्य अपने-अपने विभिन्न पापकर्मानुसार उपर्युक्त नरकोंमें घोर यातना भोगकर फिर शुद्ध होते हैं और भूलोकमें आकर जन्म लेते हैं। जीव मनुष्य-जन्म लेता है और मरता है, किंतु वह सत्यकी खोज न करके विषय-वासनाओंमें ही सदैव लिप्त रहता है। इसीका बुरा फल उसे भोगना पड़ता है।

मनुष्यकी कर्म-भोग-योनिका नाम ही प्रेतावस्था है। जैसा अच्छा या बुरा जीवनमें किया जाता है, उसका भुगतान अवश्य ही होता है। इसीलिये इस योनिका निर्माण किया गया। आधुनिक अश्रद्धालु दुराचारी वातावरणमें पले मानव-समाजको प्राचीन सत्साहित्यका अवलोकन करना चाहिये। हर विषय अपना अपूर्व महत्त्व रखता है। हमारे पूर्वजोंका अन्वेषण सर्वथा सत्य और सफल है, इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं। हमारा मानव-जीवन अवस्थाके सुप्रभातसे ही भगवत्-प्रेमका साधन आरम्भ कर दे तो अधोगतिका नामोनिशान ही न रहे।

सारे पापोंके नाशके लिये भगवान्‌के सोलह नामोंवाले निम्नलिखित स्तोत्रका प्रातःकाल सबको पाठ करना चाहिये—

सर्वपापनाशक श्रीविष्णुस्तोत्र

औषधे चिन्तयेद् विष्णुं भोजने च जनार्दनम्।
युद्धे चक्रधरं देवं प्रवासे च त्रिविक्रमम्॥
शयने पद्मनाभं च विवाहे च प्रजापतिम्।
नारायणं तनुत्यागे श्रीधरं प्रियसंगमे॥
दुःस्वप्ने स्मर गोविन्दं संकटे मधुसूदनम्।
जलमध्ये च वाराहं पर्वते रघुनन्दनम्॥
कानने नारसिंहं च पावके जलशायिनम्।
गमने वामनं चैव सर्वकार्येषु माधवम्॥
षोडशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥

महाभयंकर यमकिंकर यमराजकी आज्ञासे प्राणियोंकी आयु समाप्त होनेपर उन्हें लेनेके लिये आते हैं। वे उसे कालपाशमें बाँधकर पैरोंमें बेड़ी डाल देते हैं। बेड़ीकी साँकल वज्रके समान कठोर होती है। यमकिंकर क्रोधमें भरकर उस बँधे हुए जीवको भलीभाँति पीटते हुए ले जाते हैं। वह लड़खड़ाकर गिरता है, रोता है और 'हाय बाप! हाय मैया! हाय पुत्र!'—कहकर बारंबार चीखता-चिल्लाता है; तो भी दूषित कर्मवाले उस पापीको वे तीखे शूलों, मुद्गरों, खड्ग और शक्तिके प्रहारों और वज्रमय भयंकर डंडोंसे घायल करके जोर-जोरसे डाँटते हैं। कभी-कभी तो एक-एक पापीको अनेक यमदूत चारों ओरसे घेरकर पीटते हैं। बेचारा जीव दुःखसे पीड़ित हो मूर्च्छित होकर इधर-उधर गिर पड़ता है तथापि वे दूत उसे घसीटकर ले जाते हैं। कहीं भयभीत होते, कहीं त्रास पाते, कहीं लड़खड़ाते और कहीं दुःखसे करुण-क्रन्दन करते हुए जीवोंको उस मार्गसे जाना पड़ता है। यमदूतोंकी फटकार पड़नेसे वे उद्विग्न हो उठते हैं और भयसे विह्वल हो काँपते हुए शरीरसे दौड़ने लगते हैं। मार्गपर कहीं काँटे बिछे होते हैं और कुछ दूरतक तपी हुई बालू मिलती है।

जिन मनुष्योंने दान नहीं किया है, वे उस मार्गपर जलते हुए पैरोंसे चलते हैं। जीवहिंसक मनुष्यके सब ओर मरे हुए बकरोंकी लाशें पड़ी होती हैं, जिनकी जली और फटी हुई चमड़ीसे मेदे और रक्तकी दुर्गन्ध आती रहती है। वे वेदनासे पीड़ित हो जोर-जोरसे चीखते-चिल्लाते हुए यममार्गकी यात्रा करते हैं। शक्ति, भिन्दिपाल, खड्ग, तोमर, बाण और तीखी नोकवाले शूलोंसे उनका अङ्ग-अङ्ग विदीर्ण कर दिया जाता है। कुत्ते, बाघ, भेड़िये और कौए उनके शरीरका मांस नोच-नोचकर खाते रहते हैं। मांस खानेवाले लोग उस मार्गपर चलते समय आरोंसे चीरे जाते हैं। सूअर अपनी दाढ़ोंसे उनके शरीरको विदीर्ण कर देते हैं।

जो अपने ऊपर विश्वास करनेवाले स्वामी, मित्र अथवा स्त्रीकी हत्या करते-कराते हैं, वे शस्त्रोंद्वारा छिन्न-भिन्न और व्याकुल होकर यमलोकके मार्गपर जाते हैं। जो निरपराध जीवोंको मारते और मरवाते हैं, वे राक्षसोंके ग्रास बनकर उस पथसे यात्रा करते हैं। जो परायी स्त्रियोंके वस्त्र उतारते हैं, वे मरनेपर नंगे करके दौड़ाते हुए यमलोकमें लाये जाते हैं। जो दुरात्मा पापाचारी अन्न, वस्त्र, सोने, घर और खेतका अपहरण करते हैं, उन्हें यमलोकके मार्गपर पत्थरों, लाठियों और डंडोंसे मारकर जर्जर कर दिया जाता है और वे अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गसे प्रचुर रक्त बहाते हुए यमलोकमें जाते हैं। जो नराधम नरककी परवा न करके इस लोकमें ब्राह्मणका धन हड़प लेते, उन्हें मारते और गालियाँ सुनाते हैं, उन्हें सूखे काठमें बाँधकर उनकी आँखें फोड़ दी जाती और नाक-कान काट लिये जाते हैं। फिर उनके शरीरमें पीब और रक्त पोत दिये जाते हैं तथा कालके समान गीध और गीदड़ उन्हें नोच-नोचकर खाने लगते हैं। इस दशामें भी क्रोधमें भरे हुए भयानक यमदूत उन्हें पीटते हैं और वे चिल्लाते हुए यमलोकके पथपर अग्रसर होते हैं।

इस प्रकार वह मार्ग बड़ा ही दुर्गम और अग्निके समान प्रज्वलित है। उसे रौरव (जीवोंको रुलानेवाला) कहा गया है। वह नीची-ऊँची भूमिसे युक्त होनेके कारण मानवमात्रके लिये अगम्य है। तपाये हुए ताँबेकी भाँति उसका वर्ण है। वहाँ आगकी चिनगारियाँ और लपटें दिखायी देती हैं। वह मार्ग कण्टकोंसे भरा है। शक्ति और वज्र आदि आयुधोंसे व्याप्त है। ऐसे कष्टप्रद मार्गपर निर्दयी यमदूत जीवको घसीटते हुए ले जाते हैं और उन्हें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे मारते रहते हैं। इस तरह पापासक्त अन्यायी मनुष्य विवश होकर मार खाते हुए दुर्धर्ष यमदूतोंके द्वारा यमलोकमें ले जाये जाते हैं। यमराजके सेवक सभी पापियोंको उस दुर्गममार्गमें अवहेलनापूर्वक ले जाते हैं। वह अत्यन्त भयंकर मार्ग जब समाप्त हो जाता है, तब यमदूत पापी जीवको ताँबे और लोहेकी बनी हुई भयंकर यमपुरीमें प्रवेश कराते हैं।

यमपुरी और उसके पूर्व, उत्तर तथा पश्चिम—तीन शुभ-द्वार

वह पुरी बहुत विशाल है। उसका विस्तार लाख योजनका है। वह चौकोर बतायी जाती है। उसके चार सुन्दर दरवाजे हैं। उसकी चहारदीवारी सोनेकी बनी है, जो दस हजार योजन ऊँची है। यमपुरीका पूर्वद्वार बहुत ही सुन्दर है। वहाँ फहराती हुई सैकड़ों पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। हीरे, नीलम, पुखराज और मोतियोंसे यह द्वार सजाया जाता है। वहाँ गन्धर्वों और अप्सराओंके गीत और नृत्य होते रहते हैं। उस द्वारसे देवताओं, ऋषियों, योगियों, गन्धर्वों, सिद्धों, यक्षों

भयानक कष्टों और भीषण रोगोंसे पीड़ित होकर जीव उस मार्गसे यात्रा करते हैं।

कहीं धूलिमिश्रित प्रचण्ड वायु चलती है, जो पत्थरोंकी वर्षा करके निराश्रय जीवोंको कष्ट पहुँचाती रहती है; कहीं बिजली गिरनेसे शरीर विदीर्ण हो जाता है; कहीं बड़े जोरसे बाणोंकी वर्षा होती है, जिससे सब अङ्ग छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। कहीं-कहीं बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ भयंकर उल्कापात होते रहते हैं और प्रज्वलित अँगारोंकी वर्षा हुआ करती है, जिससे जलते हुए पापी जीव आगे बढ़ते हैं। कभी जोर-जोरसे धूलकी वर्षा होनेके कारण सारा शरीर भर जाता है और जीव रोने लगते हैं। मेघोंकी भयंकर गर्जनासे बारंबार त्रास पहुँचता रहता है। बाण-वर्षासे घायल हुए शरीरपर खारे जलकी धारा गिरायी जाती है और उसकी पीड़ा सहन करते हुए जीव आगे बढ़ते हैं। कहीं-कहीं अत्यन्त शीतल हवा चलनेके कारण अधिक सर्दी पड़ती है तथा कहीं रूखी और कठोर वायुका सामना करना पड़ता है; इससे पापी जीवोंके अङ्ग-अङ्गमें बिवाई फट जाती है। वे सूखने और सिकुड़ने लगते हैं। ऐसे मार्गसे, जहाँ न तो राह-खर्चके लिये कुछ मिल पाता है और न कहीं कोई सहारा ही दिखायी देता है, पापी जीवोंको यात्रा करनी पड़ती है। सब ओर निर्जल और दुर्गम प्रदेश दृष्टिगोचर होता है। बड़े परिश्रमसे पापी जीव यमलोकतक पहुँच पाते हैं। यमराजकी आज्ञाका पालन करनेवाले भयंकर यमदूत उन्हें बलपूर्वक ले जाते हैं। वे एकाकी और पराधीन होते हैं। साथमें न कोई मित्र होता है न बन्धु। वे अपने-अपने कर्मोंको सोचते हुए बारंबार रोते रहते हैं। प्रेतोंका-सा उनका शरीर होता है। उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूखे रहते हैं। वे शरीरसे अत्यन्त दुर्बल और भयभीत हो क्षुधाग्निकी ज्वालासे जलते रहते हैं। कोई साँकलमें बँधे होते हैं। किन्हींको उतान सुलाकर यमदूत उनके दोनों पैर पकड़कर घसीटते हैं और कोई नीचे मुँह करके घसीटे जाते हैं। उस समय उन्हें अत्यन्त दुःख होता है। उन्हें खानेको अन्न और पीनेको पानी नहीं मिलता। वे भूख-प्याससे पीड़ित हो, हाथ जोड़, दीनभावसे आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीमें बारंबार याचना करते और 'दीजिये, दीजिये' की रट लगाये रहते हैं। उनके सामने सुगन्धित पदार्थ, दही, खीर, घी, भात, सुगन्धयुक्त पेय और शीतल जल प्रस्तुत होते हैं। उन्हें देखकर वे बारंबार उनके लिये याचना करते हैं।

यमदूतोंद्वारा पापी जीवोंकी ताड़ना

उस समय यमराजके दूत क्रोधसे लाल आँखें करके उन्हें फटकारते हुए कठोर वाणीमें कहते हैं—'ओ पापियो! तुमने समयपर अग्निहोत्र नहीं किया; स्वयं ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया और दूसरोंको भी उन्हें दान देते समय बलपूर्वक मना किया; उसी पापका फल तुम्हारे सामने उपस्थित हुआ है। तुम्हारा धन आगमें नहीं जला था, जलमें नहीं नष्ट हुआ था, राजाने नहीं छीना था और चोरोंने भी नहीं चुराया था। नराधमो! तो भी तुमने जब पहले ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया है, तब इस समय तुम्हें कहाँसे कोई वस्तु प्राप्त हो सकती है। जिन साधुपुरुषोंने सात्त्विकभावसे नाना प्रकारके दान किये हैं, उन्हींके लिये ये पर्वतोंके समान अन्नके ढेर लगे दिखायी देते हैं। इनमें भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और चोष्य—सब प्रकारके खाद्य पदार्थ हैं। तुम इन्हें पानेकी इच्छा न करो; क्योंकि तुमने किसी प्रकारका दान नहीं दिया है। जिन्होंने दान, होम, यज्ञ और ब्राह्मणोंका पूजन किया है, उन्हींका अन्न ले आकर सदा यहाँ जमा किया जाता है। नारकी जीवो! यह दूसरोंकी वस्तु हम तुम्हें कैसे दे सकते हैं?'

यमदूतोंकी यह बात सुनकर वे भूख-प्याससे पीड़ित जीव उस अन्नकी अभिलाषा छोड़ देते हैं। तदनन्तर यमदूत उन्हें भयानक अस्त्रोंसे पीड़ा देते हैं। मुद्गर, लोहदण्ड, शक्ति, तोमर, पट्टिश, परिघ, भिन्दिपाल, गदा, फरसा और बाणोंसे उनकी पीठपर प्रहार किया जाता है और सामनेकी ओरसे सिंह तथा बाघ आदि उन्हें काट खाते हैं। इस प्रकारके पापी जीव न तो भीतर प्रवेश कर पाते हैं और न बाहर ही निकल पाते हैं। अत्यन्त दुःखित होकर करुणक्रन्दन किया करते हैं। इस प्रकार वहाँ भलीभाँति पीड़ा देकर यमराजके दूत उन्हें भीतर प्रवेश कराते और उस स्थानपर ले जाते हैं, जहाँ सबका संयमन (नियन्त्रण) करनेवाले धर्मात्मा यमराज रहते हैं। वहाँ पहुँचकर वे दूत यमराजको उन पापियोंके आनेकी सूचना देते हैं और उनकी आज्ञा मिलनेपर उन्हें उनके सामने उपस्थित करते हैं। तब पापाचारी जीव भयानक यमराज और चित्रगुप्तको देखते हैं।

यमराजके द्वारा फटकार, उपालम्भ और दण्ड-विधान

यमराज उन पापियोंको बड़े जोरसे फटकारते हैं और चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोंसे पापियोंको समझाते हुए कहते

रौरव नरक [पृष्ठ ६५९]

महारौरव नरक [पृष्ठ ६५९]

तम नरक [पृष्ठ ६५९]

निकृन्तन नरक [पृष्ठ ६६०]

असिपत्रवन नरक [पृ॰ ६६०]
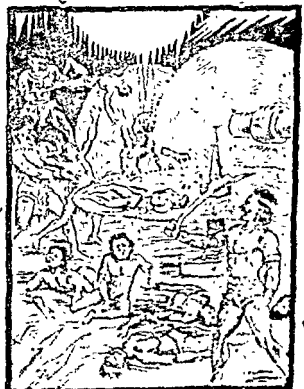
त्या तथा पृथ्वीका अपहरण करनेवाले और धरोहरको हड़प नेवाले पापी उस नरकमें डालकर प्रलयकालतक जलाये ाते हैं। तदनन्तर ३-**रौरव** नामक नरक है, जो प्रज्वलित क्रमय बाणोंसे व्याप्त रहता है। उसका विस्तार साठ हजार ोजनका है। उस नरकमें गिराये हुए मनुष्य जलते हुए णोंसे बिंधकर यातना भोगते हैं। झूठी गवाही देनेवाले नुष्य उसमें ईखकी भाँति पेरे जाते हैं। उसके बाद -**मञ्जूष** नामक नरक है, जो लोहेसे बना हुआ है। वह दा प्रज्वलित रहता है। उसमें वे ही डालकर जलाये ाते हैं, जो दूसरोंको निरपराध बंदी बनाते हैं। ५-**अप्रतिष्ठ** ामक नरक पीब, मूत्र और विष्ठाका भंडार है। उसमें ब्राह्मण- ो पीड़ा देनेवाला पापी नीचे मुँह करके गिराया जाता है। -**विलेपक** नामका घोर नरक लाहकी आगसे जलता रहता । उसमें मदिरा पीनेवाले द्विज डालकर जलाये जाते हैं। -**महाप्रभ** नामसे विख्यात नरक बहुत ऊँचा है। उसमें मकता हुआ शूल गड़ा होता है। जो लोग पति-पत्नीमें भेद ालते हैं, उन्हें वहाँ शूलसे छेदा जाता है। उसके बाद ८- **यन्ती** नामक अत्यन्त घोर नरक है, जहाँ लोहेकी बहुत ड़ी चट्टान पड़ी रहती है। परायी स्त्रियोंके साथ सम्भोग रनेवाले मनुष्य उसीके नीचे दबाये जाते हैं। ९-**शाल्मलि** रक जलते हुए सुदृढ़ काँटोंसे व्याप्त है। जो स्त्री अनेक ुरुषोंके साथ सम्भोग करती है, उसे उस शाल्मल नामक वृक्षका ालिङ्गन करना पड़ता है। उस समय वह पीड़ासे व्याकुल ो उठती है। जो लोग सदा झूठ बोलते और दूसरोंके मर्मको चोट पहुँचानेवाली वाणी मुँहसे निकालते हैं, मृत्युके ाद उनकी जिह्वा यमदूतोंद्वारा काट ली जाती है। जो ोगविलासके साथ कटाक्षपूर्वक परायी स्त्रीकी ओर देखते हैं, मराजके दूत बाण मारकर उनकी आँखें फोड़ देते हैं। ो लोग माता, बहिन, कन्या और पुत्रवधूके साथ समागम था स्त्री, बालक और बूढ़ोंकी हत्या करते हैं, उनकी भी यही शा होती है। वे चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त नरकयातनामें ड़े रहते हैं। १०-**महारौरव** नामक नरक ज्वालाओंसे परिपूर्ण था अत्यन्त भयंकर है। उसका विस्तार चौदह हजार योजन । जो मूढ नगर, गाँव, घर अथवा खेतमें आग लगाते ैं, वे एक कल्पतक उस नरकमें पकाये जाते हैं। ११-**तामिस्र** रकका विस्तार एक लाख योजन है। वहाँ सदा खड्ग, पट्टिश और मुद्गरोंकी मार पड़ती रहती है, इससे वह बड़ा भयंकर ान पड़ता है। यमराजके दूत चोरोंको उसीमें डालकर शूल, शक्ति, गदा और खड्गसे उन्हें तीन सौ कल्पोंतक पीटते रहते हैं। १२-**महातामिस्र** नामक नरक और भी दुःखदायी है। उसका विस्तार तामिस्रकी अपेक्षा दूना है। उसमें जोंकें भरी हुई हैं और निरन्तर अन्धकार छाया रहता है। जो माता, पिता और मित्रकी हत्या करनेवाले तथा विश्वासघाती हैं, वे जबतक यह पृथ्वी रहती है, तबतक उसमें पड़े रहते हैं और जोंकें निरन्तर उनका रक्त चूसती रहती हैं। १३-**असिपत्रवन** नामक नरक तो बहुत ही कष्ट देनेवाला है। उसका विस्तार दस हजार योजन है। उसमें अग्निके समान प्रज्वलित खड्ग पत्तोंके रूपमें व्याप्त हैं। वहाँ गिराया हुआ पापी खड्गकी धारके समान पत्तोंद्वारा क्षत-विक्षत हो जाता है। उसके शरीरमें सैकड़ों घाव हो जाते हैं। मित्रघाती मनुष्य उसमें एक कल्पतक रखकर काटा जाता है। १४-**करम्भवालुका** नामक नरक दस हजार योजन विस्तीर्ण है। उसका आकार कुएँकी तरह है। उसमें जलती हुई बालू, अँगारे और काँटे भरे हुए हैं। जो भयंकर उपायोंद्वारा किसी मनुष्यको जला देता है, वह उक्त नरकमें एक लाख दस हजार तीन सौ वर्षोंतक जलाया और विदीर्ण किया जाता है।

१५-**काकोल** नामक नरक कीड़ों और पीबसे भरा रहता है। जो दुरात्मा मानव दूसरोंको न देकर अकेला ही मिठाई उड़ाता है, वह उसीमें गिराया जाता है। १६-**कुड्मल** नरक विष्ठा, मूत्र और रक्तसे भरा होता है। जो लोग पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान नहीं करते, वे उसीमें गिराये जाते हैं। १७-**महाभीम** नरक अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मांस और रक्तसे पूर्ण है। अभक्ष्य भक्षण करनेवाले नीच मनुष्य उसमें गिरते हैं। १८-**महावट** नरक मुर्दोंसे भरा होता है। वह बहुतसे कीड़ोंसे व्याप्त रहता है। जो मनुष्य अपनी कन्या बेचता है, वह नीचे मुँह करके उसमें गिराया जाता है। १९-**तिलपाक** नामसे प्रसिद्ध नरक बहुत ही भयंकर बताया गया है। जो लोग दूसरोंको पीड़ा देते हैं, वे उसमें तिलकी भाँति पेरे जाते हैं। २०-**तैलपाक** नरकमें खौलता हुआ तेल भरा रहता है। जो मित्रों तथा शरणागतोंकी हत्या करते हैं, वे उसीमें पकाये जाते हैं। २१-**वज्रकपाट** नरक वज्रमयी शृङ्खलाओंसे व्याप्त रहता है। जिन लोगोंने दूध बेचनेका व्यापार किया है, उन्हें वहाँ निर्दयतापूर्वक पीड़ा दी जाती है। २२-**निरुच्छ्वास** नरक अन्धकारसे पूर्ण और वायुसे शून्य होता है। जो ब्राह्मणोंको दिये जानेवाले दानमें रुकावट डालता है, वह निश्चेष्ट करके उसमें डाल दिया जाता है। २३-**अङ्गारोपच्चय** नामक नरक दहकते हुए अंगारोंसे प्रज्वलित रहता

हैं, वे सुसज्जित विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो सदा सत्य बोलते और बाहर-भीतरसे शुद्ध रहते हैं, वे भी देवताओंके समान कान्तिमान् शरीर धारणकर विमानोंद्वारा यमराजके भवनमें जाते हैं। जो धर्मज्ञ पुरुष जीविकारहित दीन-दुर्बल साधुओंको भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे पवित्र गोदान करते हैं, वे मणिजटित दिव्य विमानोंद्वारा धर्मराजके लोकमें जाते हैं। जो जूता, छाता, शय्या, आसन, वस्त्र और आभूषण दान करते हैं, वे दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत हो हाथी, रथ और घोड़ोंकी सवारीसे वहाँकी यात्रा करते हैं। उनके ऊपर सोने-चाँदीका छत्र लगा रहता है। जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको विशुद्ध हृदयसे भक्तिपूर्वक गुड़का रस और भात देते हैं, वे सुवर्णमय वाहनोंद्वारा यमलोकमें जाते हैं। जो ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक शुद्ध एवं सुसंस्कृत दूध, दही, घी और गुड़ दान करते हैं, वे चक्रवाक पक्षियोंसे जुड़े हुए सुवर्णमय विमानोंद्वारा यात्रा करते हैं। उस समय गन्धर्वगण वाद्योंद्वारा उनकी सेवा करते हैं। जो सुगन्धित पुष्प दान करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंसे धर्मराजके नगरको जाते हैं। जो श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक तिल, तिलमयी धेनु अथवा घृतमयी धेनु दान करते हैं, वे चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल विमानोंद्वारा यमराजके भवनमें प्रवेश करते हैं। उस समय गन्धर्वगण उनका सुयश गाते रहते हैं। इस लोकमें जिनके बनवाये हुए कुएँ, बावड़ी, तालाब, सरोवर, दीर्घिका, पुष्करिणी तथा शीतल जलाशय शोभा पाते हैं, वे दिव्य घण्टानादसे मुखरित सुवर्ण और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् विमानोंद्वारा यात्रा करते हैं। मार्गमें उन्हें सुख देनेके लिये दिव्य पंखे डुलाये जाते हैं। जो लोग समस्त प्राणियोंके जीवनभूत जलका दान करते हैं, वे पिपासासे रहित हो दिव्य विमानोंपर बैठकर सुख-पूर्वक उस महान् पथकी यात्रा करते हैं। जिन्होंने ब्राह्मणोंको लकड़ीकी बनी खड़ाऊँ, सवारी, पीढ़ा और आसन दान किये हैं, वे उस मार्गमें सुखसे जाते हैं। वे विमानोंपर बैठकर सोने और मणियोंके बने हुए उत्तम पीढ़ोंपर पैर रखकर यात्रा करते हैं।

जो मनुष्य दूसरोंके उपकारके लिये फल और पुष्पोंसे सुशोभित विचित्र बगीचे लगाते हैं, वे वृक्षोंकी रमणीय एवं शीतल छायामें सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। जो लोग सोना, चाँदी, मूँगा तथा मोती दान करते हैं, वे सुवर्णनिर्मित उज्ज्वल विमानोंपर बैठकर यमलोकमें जाते हैं। भूमिदान करनेवाले पुरुष सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओंसे तृप्त हो उदय-कालीन सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंपर बैठकर देदीप्यमान शरीरसे धर्मराजके नगरको जाते हैं। जो ब्राह्मणोंके लिये भक्तिपूर्वक उत्तम गन्ध, अगर, कपूर, पुष्प और धूपका दान करते हैं, वे मनोहर गन्ध, सुन्दर वेष, उत्तम कान्ति और श्रेष्ठ आभूषणोंसे विभूषित हो विचित्र विमानोंद्वारा धर्म-नगरकी यात्रा करते हैं। दीप-दान करनेवाले मनुष्य अग्निके तुल्य प्रकाशमान होकर सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए चलते हैं। जो गृह अथवा रहनेके लिये स्थान देते हैं, वे अरुणोदयकी-सी कान्तिवाले सुवर्णमण्डित गृहोंके साथ धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जलपात्र, कुंडी और कमण्डलु दान करनेवाले मानव अप्सराओंसे पूजित हो महान् गजराजोंपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो ब्राह्मणोंको सिर और पैरमें मलनेके लिये तेल तथा नहाने और पीनेके लिये जल देते हैं, वे घोड़ोंपर सवार होकर यम-लोकमें जाते हैं। जो रास्तेके थके-माँदे दुर्बल ब्राह्मणोंको अपने यहाँ ठहराते हैं, वे चक्रवोंसे जुड़े हुए दिव्य विमानोंपर बैठकर सुखसे यात्रा करते हैं। जो स्वागतपूर्वक आसन देकर ब्राह्मणकी पूजा करता है, वह अत्यन्त प्रसन्न होकर सुखसे उस मार्गपर जाता है।

जो 'पापहरे!' इत्यादिका उच्चारण करके गौको नमस्कार करता है, वह सुखसे यमलोकके मार्गपर आगे बढ़ता है। जो शठता और दम्भका परित्याग करके एक समय भोजन करते हैं, वे हंसयुक्त विमानोंद्वारा सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं। जो जितेन्द्रिय पुरुष एक दिन उपवास करके दूसरे दिन एक समय भोजन करते हैं, वे मोरोंसे जुड़े हुए विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। जो नियमपूर्वक व्रतका पालन करते हुए तीसरे दिन एक समय भोजन करते हैं, वे हाथियोंसे जुड़े हुए दिव्य रथोंपर आसीन हो यमराजके लोकमें जाते हैं। जो नित्य पवित्र रहकर इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए छठे दिन आहार ग्रहण करते हैं, वे साक्षात् शचीपति इन्द्रके समान ऐरावतकी पीठपर बैठकर यात्रा करते हैं। जो एक पक्षतक उपवास करके अन्न ग्रहण करते हैं, वे पार्योंसे जुड़े हुए विमानोंद्वारा धर्मराजके नगरमें जाते हैं। उस समय देवता और असुर उनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। जो जितेन्द्रिय रहकर एक मासतक उपवास करते हैं, वे सूर्यके समान देदीप्यमान रथोंपर बैठकर यमलोक-की यात्रा करते हैं। जो स्त्री अथवा गौकी रक्षाके लिये युद्धमें प्राणत्याग करता है, वह सूर्यके समान कान्तिमान् शरीर

व्यासजी बोले—विप्रवरो! प्राणी अकेला ही जन्म लेता, अकेला ही मरता, अकेला ही दुर्गम संकटोंको पार करता और अकेला ही दुर्गतिमें पड़ता है। पिता, माता, भ्राता, पुत्र, गुरु, जातिवाले, सम्बन्धी तथा मित्रवर्ग—इनमेंसे कोई भी मरनेवालेका साथ नहीं देता। घरके लोग मृत व्यक्तिके शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी भाँति त्याग देते और दो घड़ी रोकर उससे मुँह मोड़कर चले जाते हैं। वे सब लोग तो त्याग देते हैं, किंतु धर्म उसका त्याग नहीं करता। वह अकेला ही जीवके साथ जाता है; अतः धर्म ही सच्चा सहायक है। इसलिये मनुष्योंको सदा धर्मका सेवन करना चाहिये। धर्मयुक्त प्राणी उत्तम स्वर्गगतिको प्राप्त होता है। इसी प्रकार अधर्मयुक्त मानव नरकमें पड़ता है; अतः विद्वान् पुरुष पापसे प्राप्त होनेवाले धनमें अनुराग न रक्खे। एकमात्र धर्म ही मनुष्योंका सहायक बताया गया है। बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञाता मनुष्य भी लोभ, मोह, घृणा अथवा भयसे मोहित होकर दूसरेके लिये न करने योग्य कार्य भी कर डालता है। धर्म, अर्थ और काम—तीनों ही इस जीवनके फल हैं। अधर्म-त्यागपूर्वक इन तीनोंकी प्राप्ति करनी चाहिये।

मुनियोंने कहा—भगवन्! आपका यह धर्मयुक्त वचन, जो परम कल्याणका साधन है, हमने सुना। अब हम यह जानना चाहते हैं कि यह शरीर किन तत्त्वोंका समूह है। मनुष्योंका मरा हुआ शरीर तो स्थूलसे सूक्ष्म—अव्यक्तभावको प्राप्त हो जाता है, वह नेत्रोंका विषय नहीं रह जाता; फिर धर्म कैसे उसके साथ जाता है?

व्यासजी बोले—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, मन, बुद्धि और आत्मा—ये सदा साथ रहकर धर्मपर दृष्टि रखते हैं। ये समस्त प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मोंके निरन्तर साक्षी रहते हैं। इनके साथ धर्म जीवका अनुसरण करता है। जब शरीरसे प्राण निकल जाता है, तब त्वचा, हड्डी, मांस, वीर्य और रक्त भी उस शरीरको छोड़ देते हैं। उस समय जीव धर्मसे युक्त होनेपर ही इस लोक और परलोकमें सुख एवं अभ्युदयको प्राप्त होता है।

किसको कौन-सी योनि मिलती है

मुनियोंने पूछा—भगवन्! आपने यह भलीभाँति समझा दिया कि धर्म किस प्रकार जीवका अनुसरण करता है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि [शरीरके कारणभूत] वीर्यकी उत्पत्ति कैसे होती है।

व्यासजीने कहा—द्विजवरो! शरीरमें स्थित जो पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज और मनके अधिष्ठाता देवता हैं, वे जब अन्न ग्रहण करते हैं और उससे मनसहित पृथ्वी आदि पाँचों भूत तृप्त होते हैं, तब उस अन्नसे शुद्ध वीर्य बनता है। उस वीर्यमें कर्मप्रेरित जीव आकर निवास करता है। फिर स्त्रियोंके रजमें मिलकर वह समयानुसार जन्म ग्रहण करता है। पुण्यात्मा प्राणी इस लोकमें जन्म लेनेपर जन्मकालसे ही पुण्यकर्मका उपभोग करता है। वह धर्मके फलका आश्रय लेता है। मनुष्य यदि जन्मसे ही धर्मका सेवन करता है तो सदा सुखका भागी होता है। यदि बीच-बीचमें कभी धर्म और कभी अधर्मका सेवन करता है तो वह सुखके बाद दुःख भी पाता है। पापयुक्त मनुष्य यमलोकमें जाकर महान् कष्ट उठानेके बाद पुनः तिर्यग्योनिमें जन्म लेता है। मोहयुक्त जीव जिस-जिस कर्मसे जिस-जिस योनिमें जन्म लेता है, उसे बतलाता हूँ; सुनो! परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य पहले तो भेड़िया होता है; फिर क्रमशः कुत्ता, सियार, गीध, साँप, कौआ और बगुला होता है। जो पापात्मा कामसे मोहित होकर अपनी भौजाईके साथ बलात्कार करता है, वह एक वर्षतक नर-कोकिल होता है। मित्र, गुरु तथा राजाकी पत्नीके साथ समागम करनेसे कामात्मा पुरुष मरनेके बाद सूअर होता है। पाँच वर्षोंतक सूअर रहकर मरनेके बाद दस वर्षोंतक बगुला, तीन महीनोंतक चींटी और एक मासतक कीटकी योनिमें पड़ा रहता है। इन सब योनियोंमें जन्म लेनेके बाद वह पुनः कृमियोनिमें उत्पन्न होता और चौदह महीनोंतक जीवित रहता है। इस प्रकार अपने पूर्वपापोंका क्षय करनेके बाद वह फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। जो पहले एकको कन्या देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर दूसरेको देना चाहता है, वह भी मरनेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म पाता है। उस योनिमें वह तेरह वर्षोंतक जीवित रहता है। फिर अधर्मका क्षय होनेपर वह मनुष्य होता है। जो देवकार्य अथवा पितृकार्य न करके देवताओं और पितरोंको संतुष्ट किये बिना ही मर जाता है, वह कौआ होता है। सौ वर्षोंतक कौएकी योनिमें रहनेके बाद वह मुर्गा होता है। तत्पश्चात् एक मासतक सर्पकी योनिमें निवास करता है। उसके बाद वह मनुष्य होता है। जो पिताके समान बड़े भाईका अपमान करता है, वह मृत्युके बाद क्रौञ्च-योनिमें जन्म लेता है और दस वर्षोंतक जीवन धारण करता है।

पश्चात्ताप तथा दानका माहात्म्य

व्यासजीने कहा—ब्राह्मणो ! जो मोहवश अधर्मका अनुष्ठान कर लेनेपर उसके लिये पुनः सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप करता और मनको एकाग्र रखता है, वह पापका सेवन नहीं करता। ज्यों-ज्यों मनुष्यका मन पाप-कर्मकी निन्दा करता है, त्यों-त्यों उसका शरीर उस अधर्मसे दूर होता जाता है। यदि धर्मवादी ब्राह्मणोंके सामने अपना पाप कह दिया जाय तो वह उस पापजनित अपराधसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। मनुष्य जैसे-जैसे अपने अधर्मकी बात बारंबार प्रकट करता है, वैसे-ही-वैसे वह एकाग्रचित्त होकर अधर्मको छोड़ता जाता है। जैसे साँप केंचुल छोड़ता है, उसी प्रकार वह पहलेके अनुभव किये हुए पापोंका त्याग करता है। एकाग्रचित्त होकर ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके दान दे। जो मनको ध्यानमें लगाता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त करता है।

ब्राह्मणो ! अब मैं दानका फल बतलाता हूँ। सब दानोंमें अन्नदानको श्रेष्ठ बतलाया गया है। धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह सरलतापूर्वक सब प्रकारके अन्नोंका दान करे। अन्न ही मनुष्योंका जीवन है। उसीसे जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति होती है। अन्नमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं; अतः अन्नको श्रेष्ठ बताया जाता है। देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं; क्योंकि अन्नदानसे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। स्वाध्यायशील ब्राह्मणोंके लिये न्यायोपार्जित उत्तम अन्नका प्रसन्नचित्तसे दान करना चाहिये। जिसके प्रसन्नचित्तसे दिये हुए अन्नको दस ब्राह्मण भोजन कर लेते हैं, वह कभी पशु-पक्षी आदिकी योनिमें नहीं पड़ता। सदा पापोंमें संलग्न रहनेवाला मनुष्य भी यदि दस हजार ब्राह्मणोंको भोजन करा दे तो वह अधर्मसे मुक्त हो जाता है। वेदोंका अध्ययन करनेवाला ब्राह्मण भिक्षासे अन्न ले आकर यदि किसी स्वाध्यायशील ब्राह्मणको दान कर दे तो वह संसारमें सुख और समृद्धिका भागी होता है। जो क्षत्रिय ब्राह्मणके धनको हानि न पहुँचाकर न्यायतः प्रजाका पालन करते हुए अन्नका उपार्जन करता है और उसे एकाग्रचित्त होकर श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दान देता है, वह धर्मात्मा है और उस पुण्यके जलसे अपने पापपङ्कको धो डालता है। अपने द्वारा उपार्जित खेतीके अन्नमेंसे छठा भाग राजाको देनेके बाद जो शेष शुद्ध भाग बच जाता है, वह अन्न यदि वैश्य ब्राह्मणको दान करे तो वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो शूद्र प्राणोंको संशयमें डालकर और नाना प्रकारकी कठिनाइयोंको सहकर भी अपने द्वारा उपार्जित शुद्ध अन्नको ब्राह्मणोंके निमित्त दान करता है, वह भी पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जो कोई भी मनुष्य श्रेष्ठ वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको हर्षपूर्वक न्यायोपार्जित अन्नका दान करता है, उसका पाप छूट जाता है। संसारमें अन्न बलकी वृद्धि करनेवाला है। उसका दान करनेसे मनुष्य बलवान् बनता है। सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेसे सब पाप दूर हो जाते हैं। दानवेत्ता पुरुषोंने जो मार्ग बताया है और जिसपर मनीषी पुरुष चलते हैं, वही अन्नदाताओंका भी मार्ग है। उन्हींसे सनातन धर्म है। मनुष्यको सभी अवस्थाओंमें न्यायोपार्जित अन्नका दान करना चाहिये; क्योंकि अन्न सर्वोत्तम गति है। अन्नदानसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है। इस लोकमें उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं और मृत्युके बाद भी वह सुखका भागी होता है।

इस प्रकार पुण्यवान् मनुष्य पापोंसे मुक्त होता है। अतः अन्यायरहित अन्नका दान करना चाहिये। जो गृहस्थ सदा प्राणाग्निहोत्रपूर्वक अन्न-भोजन करता है, वह अन्नदानसे प्रत्येक दिनको सफल बनाता है। जो मनुष्य वेद, न्याय, धर्म और इतिहासके ज्ञाता सौ विद्वानोंको प्रतिदिन भोजन कराता है, वह घोर नरकमें नहीं पड़ता और संसार-बन्धनमें भी नहीं बँधता; अपितु सम्पूर्ण कामनाओंसे युक्त हो मृत्युके बाद सुखका भागी होता है। इस प्रकार पुण्यकर्मसे युक्त मनुष्य निश्चिन्त होकर आनन्दका भागी होता है। उसे रूप, कीर्ति और धनकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने तुम्हें अन्नदानका महान् फल बतलाया। यह सभी धर्मों और दानोंका मूल है।

योगभ्रष्टकी गति (गीता ६।४१-४२)

पवित्र श्रीमानोंके घर जन्म

ज्ञानवान् योगियोंके कुलमें जन्म

हैं, जो इस जीवनमें प्राप्त होनेवाले दुःखोंसे अनन्तगुण अधिक है। यदि मनुष्यको इन नरकोंकी खबर हो तो वह अनेक ऐसे दुष्कर्मोंसे बचता है, जिनके प्रति अतिभीषण कल्पना परिणाममें अज्ञानके कारण उसे यहाँ नहीं होती। कुछ लोग तो इन नरकोंकी बात सुन उसे असत्य समझने-में ही अपना कल्याण मानते हैं। कुछ लोग यह भी तर्क करते हैं कि—'मनुष्य जब मर जाता है तब उसका शरीर तो यहाँ छूट जाता है, फिर इन दुःखोंको भोगता ही कौन है?' पर उन्हें यह मालूम होना चाहिये कि सुख-दुःख जितने मन और प्राणको होते हैं, उतने शरीरको नहीं होते। मरनेके बाद मन और प्राण तो रहते ही हैं और पार्थिव शरीर छूटनेपर जीवको आतिवाहिक या यातना-देह प्राप्त होता है। यातना-शरीर इसको इसीलिये कहते हैं कि यह इस प्रकारके उपादानोंसे बना होता है कि वह यातना-भोग ही करता रहता है। जैसे—जलती आगमें दग्ध होनेपर भी नाश नहीं होता, केवल यन्त्रणा-भोग करता रहता है। जलते हुए तेलके कड़ाहमें गिरना, कोड़ोंकी मारका पड़ना, सर्पोंके जहर-उपदंशों और कटीले पेड़-पत्तोंद्वारा क्षत-विक्षत होना, इत्यादि—ये सब कष्ट जिसे प्राप्त होकर भोगना पड़ता है, वह यातना-देह ही है। पार्थिव शरीरको जलने, गिरने, मरने, मारे जाने आदिके जो अनुभव होते हैं, वे सब कष्ट यातना-शरीरको होते हैं। शास्त्रमें हजारों नरकोंकी संख्या है। श्रीमद्भागवतमें जिन मुख्य २८ नरकोंका वर्णन है, उन नरकोंके नाम हैं—

१ तामिस्र, २ अन्धतामिस्र, ३ रौरव, ४ महारौरव, ५ कुम्भीपाक, ६ कालसूत्र, ७ असिपत्रवन, ८ सूकरमुख, ९ अंधकूप, १० कृमिभोज, ११ संदंश, १२ वज्रकंटकशाल्मली, १३ तप्तसूर्मि, १४ वैतरणी, १५ पूयोद, १६ प्राणरोध, १७ विशसन, १८ लालाभक्ष, १९ सारमेयादन, २० अवीचि, २१ अयःपान, २२ क्षारकर्दम, २३ रक्षोगणभोजन, २४ शूलप्रोत, २५ दन्दशूक, २६ अवटनिरोध, २७ पर्यावर्तन और २८ सूचीमुख। इनमें पापियोंको दीर्घकालतक यातनाशरीरसे भयानक पीड़ाएँ भोगनी पड़ती हैं।

उपर्युक्त अट्ठाईस नरक मुख्य हैं; अन्यथा साधारण नरक तो सहस्रों हैं। जितने प्रकारके दुष्कर्म हैं, उतने ही नरक हो सकते हैं, ऐसा समझा जा सकता है। यह समुचित भी है। कर्म और उसका फल, किसी वृक्षके बीज और फलके समान ही है। उसका परस्पर विच्छेद नहीं हो सकता। यातना-देहसे दुष्कर्मोंके फलभोगके पश्चात् जीव नरकसे छूटकर कर्मानुसार कीट, पक्षी, पशु और वृक्षके रूपमें नया जन्म लेता है। वह भी कर्मफल-भोग है। चौरासीके बाद यदि मनुष्य-जन्म होता है, तो उसमें भी पूर्वकर्मोंके शेष फलको इस नवीन शरीरमें भोगना पड़ता है, ताकि भावी सुधार-साधनका अवसर मिले। कर्मोंके अनुसार प्रकृतिकी व्यवस्था होती है; प्रकृति सत्, रजस् और तमस्—इन तीन भेदोंकी सम्मिश्रण होती है। तदनुसार वर्ण, रूप, जन्म, कर्म, स्वभाव, बुद्धि, श्रद्धा, धारणा, स्थान और जीवन प्राप्त होता है। पुण्यशाली पूर्वजन्मार्जित कर्मफलसे श्रेष्ठ जन्मको प्राप्त होता है। कहा है—

> प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
> शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥
> अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
> एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥
>
> (गीता ६। ४१-४२)

और पापकर्मा जीवोंके लिये भगवद्वचन है—

> प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥
>
> (गीता १६। १६)

उन्हें नरकोंमें गिरकर, यन्त्रणा भोगनेके बाद अधम गतिकी प्राप्ति होती है। भगवान् कहते हैं—

> आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
> मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥
>
> (गीता १६। २०)

'अर्जुन! वे मूढ़ मुझको न पाकर जन्म-जन्ममें आसुरी (कूकर सूकर आदि) योनिको प्राप्त होते हैं। फिर उससे भी नीच गतिको (घोर नरकोंको) प्राप्त होते हैं।'

गङ्गाधरान्धकरिपो हर नीलकण्ठ !
वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्जपाणे !
भूतेश खण्डपरशो मृड चण्डिकेश !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ २ ॥

विष्णो नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे !
गौरीपते गिरिश शंकर चन्द्रचूड !
नारायणासुरनिबर्हण शार्ङ्गपाणे !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ३ ॥

मृत्युंजयोग्रविषमेक्षण कामशत्रो !
श्रीकान्त पीतवसनाम्बुदनील शौरे !
ईशान कृत्तिवसन त्रिदशैकनाथ !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ४ ॥

लक्ष्मीपते मधुरिपो पुरुषोत्तमाद्य
श्रीकण्ठ दिग्वसन शान्त पिनाकपाणे !
आनन्दकन्द धरणीधर पद्मनाभ
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ५ ॥

सर्वेश्वर त्रिपुरसूदन देवदेव !
ब्रह्मण्यदेव गरुडध्वज शङ्खपाणे !
त्र्यक्षोरगाभरण बालमृगाङ्कमौले !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ६ ॥

श्रीराम राघव रमेश्वर रावणारे !
भूतेश मन्मथरिपो प्रमथाधिनाथ !
चाणूरमर्दन हृषीकपते मुरारे !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ७ ॥

शूलिन् गिरीश रजनीशकलावतंस !
कंसप्रणाशन सनातन केशिनाश !
भर्ग त्रिनेत्र भव भूतपते पुरारे !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ८ ॥

गोपीपते यदुपते वसुदेवसूनो !
कर्पूरगौर वृषभध्वज भालनेत्र !
गोवर्धनोद्धरण धर्मधुरीण गोप !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥ ९ ॥

स्थाणो त्रिलोचन पिनाकधर स्मरारे !
कृष्णानिरुद्ध कमलाकर कल्मषारे !
विश्वेश्वर त्रिपथगार्द्रजटाकलाप !
त्याज्या भटा य इति संततमामनन्ति ॥१०॥

इस भगवान् हरि-हरके १०८ नामवाले स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करना चाहिये। इससे यम-भय दूर होता है।

यमराजके द्वारा अपने दूतोंको उपदेश तथा चेतावनी

(श्रीमद्भागवत, षष्ठस्कन्ध, अध्याय १ से ३)

अजामिल पहले बहुत संयमी तथा सदाचारी था। पर एक बार उसने क्षणभरके लिये नेत्रोंसे विषयासक्त लोगोंकी विषय-क्रीडा देख ली, इससे उसके अंदर छिपी हुई विषयासक्ति उभड़ उठी और वह महापापी बन गया। उसने पूर्वाभ्यास-वश अपने एक पुत्रका नाम 'नारायण' रक्खा था। मरते समय उसे लेने भयानक आकृतिवाले तीन यमदूत आ गये। उसने डरके मारे व्याकुल होकर पुत्रके लिये ऊँचे स्वरसे—'नारायण' पुकारा। भगवान्के पार्षदोंने मरते समय उसे 'नारायण' नामका उच्चारण करते सुनकर, वहाँ प्रकट होकर बड़े शास्त्रार्थके बाद उसे भयानक यमदूतोंसे बलपूर्वक छुड़ा लिया। अजामिल यमदूतोंके फंदेसे छूटकर निर्भय और स्वस्थ हो गया। अपमानित यमदूतोंने आकर यमराजसे सारी घटना बताकर पूछा कि हम तो आपको ही पाप-पुण्यके निर्णयका दण्डदाता तथा सर्वोपरि शासक मानते थे। क्या आपसे भी ऊपर कोई और है?' इसपर यमराजने चराचरके स्वामी भगवान्को सर्वोपरि बताकर कहा कि 'यह सब उनके नामोच्चारणकी महिमा है।' इसके बाद उन्होंने अपने दूतोंको रहस्य बताकर जो चेतावनी दी, उसीका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है। यमराजने कहा—

“स्वयं भगवान्ने ही धर्मकी मर्यादाका निर्माण किया है। उसे न तो ऋषि जानते हैं और न देवता या सिद्धगण ही। ऐसी स्थितिमें मनुष्य, विद्याधर, चारण और असुर आदि तो जान ही कैसे सकते हैं। भगवान्के द्वारा निर्मित 'भागवतधर्म' परम शुद्ध और अत्यन्त गोपनीय है। उसे जानना बहुत ही कठिन है। जो उसे जान लेता है, वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। दूतो! भागवतधर्मका रहस्य हम बारह व्यक्ति ही जानते हैं—ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, भगवान् शंकर, सनत्कुमार, कपिलदेव, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्मपितामह, बलि, शुकदेवजी और मैं (धर्मराज)। इस जगत्में जीवोंके लिये बस, यही सबसे बड़ा कर्तव्य—परम धर्म है कि वे नाम-कीर्तन आदि उपायोंसे भगवान्के चरणोंमें भक्तिभाव प्राप्त कर लें—

प्रेत-योनि

(लेखक—श्रीविश्वनाथजी झा, कविराज)

इस संसारमें मनुष्ययोनि, पशुयोनि, तिर्यग्योनि आदि दृश्य योनियोंके अतिरिक्त अदृश्य एक प्रेतयोनि भी है। संसारमें जितने पदार्थ हैं— मनुष्य, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, अन्न-फल-मूल सब-के-सब पाञ्चभौतिक हैं। ये प्रेत भी पाञ्चभौतिक हैं; पर पार्थक्य इतना ही है कि मनुष्य-पशु-पक्षियोंमें पृथ्वीका अंशविशेष है; अतः ये स्थूल दृश्य हैं; प्रेत वायव्य हैं अर्थात् वायुप्रधान हैं। इनमें पृथ्वीका अंश नहींके बराबर है। अतः प्रेत अदृश्य एवं अत्यन्त बलवान् होता है। अदृश्य होनेके कारण यद्यपि उसका प्रत्यक्ष प्रमाण कोई नहीं दे सकता, केवल अनुमानद्वारा जाना जाता है। अथर्ववेदमें इनके निराकरणके लिये तथा मारण-प्रयोगके लिये अनेक यन्त्र-मन्त्र हैं। तन्त्रमें तो यन्त्र-मन्त्रोंकी भरमार है। आयुर्वेदमें भी 'भूतविद्या' नामका एक विभाग ही पृथक् है। पुराणोंमें 'भूतोऽमी देवयोनयः'—ऐसा लिखा है। मृत व्यक्तियोंका जब श्राद्ध होता है तो उनको प्रेत कहकर पिण्ड दिया जाता है—'प्रेतत्वविमुक्तये एष पिण्डस्तुभ्यं स्वधा ॥' ऐसा कहा जाता है। इन सभीसे प्रमाणित होता है कि प्रेतयोनि अवश्य है। इसमें अनेक विभाग हैं। आयुर्वेदके अनुसार १८ प्रकारके प्रेत हैं—जैसे प्रसूता स्त्री या नवयुवती (निःसंतान) मरती है तो 'चुड़ैल', कुमारी कन्या मरती है तो 'देवी' होती है। आदि।

इन सभीकी उत्पत्ति अपने जन्मार्जित पापोंसे, अभिचारसे, अकालमृत्युसे, ओझा-डाइनके मारण-प्रयोगसे, अन्त्येष्टि एवं श्राद्ध विधिपूर्वक तथा पवित्र न होनेसे होती है।

सुश्रुत, वाग्भट्टके बालप्रकरणमें भूतादि ग्रहोंके निवारणके लिये प्रयोग अधिक देखा जाता है।

इनको खानेकी इच्छा अधिक रहती है। इच्छा होती है कि मधुर भोजन लें, परंतु कण्ठनलिकाका छिद्र सुईके बराबर रहनेके कारण इच्छानुसार जल नहीं पी सकते तथा खा नहीं सकते, अतः क्रोध अतिशय रहता है। जरा-सा अपराध होनेपर वे बहुत बिगड़ जाते हैं और उपद्रव करने लगते हैं। अच्छी-अच्छी चीजोंपर इनका अधिकार कुछ भी नहीं रहता। यहाँतक कि उन्हें वे स्पर्श भी नहीं कर सकते, उपभोगकी तो कोई बात ही नहीं। अपवित्र वस्तुओंपर पूर्ण अधिकार रहता है। अतएव जब वे बिगड़ते हैं तो अपवित्र वस्तुओंको ही काममें लाते हैं। वे बहुत दुःखी रहते हैं। चिड़चिड़ा स्वभाव होता है। जीवितावस्थामें जिस स्वभावके रहते हैं, वही स्वभाव प्रेतावस्थामें भी रहता है। जब ये कभी-कभी शरीर धारण करते हैं, तब जीवितावस्थाके सदृश ही धारण करते हैं। इनका शरीर गलित कुष्ठ-सा रहता है। बलिष्ठ इतने होते हैं कि बड़े-बड़े वृक्षोंको उखाड़ फेंक देते हैं। अपवित्र व्यक्तियोंपर, स्त्री रही तो अपनी सौतिनपर विशेष आक्रमण करते हैं। इनका जो कुछ वक्तव्य रहता है, उसे आक्रान्त व्यक्तियोंके द्वारा प्रायः प्रकट करते हैं। यदि ब्राह्मण रहेगा तो वह अनुनय-विनयसे उपद्रव नहीं करेगा; और अन्त्यज मरकर प्रेत होगा तो वह अत्यन्त क्रूर उपद्रवकारी होगा।

जहाँ पूजा-पाठ, पुराणपाठ, गायत्री-जाप, भागवत-पारायण, देवताओंके मन्दिर होंगे, वहाँ प्रेत प्रायः नहीं जायगा। जो संध्या-वन्दन, गायत्री-जप करेंगे या गायत्रीसे शिखा बाँधेंगे, उनपर भी आक्रमण नहीं करेगा।

इनका प्रतीकार करनेके लिये गाँवमें ओझा लोग रहते हैं। गयामें श्राद्ध करनेसे भी प्रेतत्व छूटता है।

विश्वासके लिये आँखों देखी हुई बातोंको मैं लिखता हूँ—

करीब दस-ग्यारह वर्ष हुए, पं० श्रीयुत जयानन्द-कुमारजी (उस समय वे पोस्टमास्टर-जेनरल थे) के यहाँ लड़कोंका यज्ञोपवीत था, जिसमें बड़े-बड़े महान् व्यक्ति आये थे। एक महात्माजी भी थे, जिनको प्रेतसिद्ध था। इनमें एक बड़े आदमी थे, जो नित्य बेलका शरबत पीते थे; परंतु नौकर बेल लाना भूल गया, तब महात्माजीसे लोगोंने कहा। महात्माजीने प्रेतको भेजा। पहली बार बेल नहीं मिला। दुबारा आग्रहपूर्वक कहा गया तो गया और बेल लाकर दे दिया।

महात्माजीने जिनको बेल दिया था, अभी वे जीवित हैं। श्रीमद्भागवत सुननेसे अवश्यमेव प्रेतकी मुक्ति होती है।

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥
(श्रीमद्भागवत ६ । ३ । २४)

"प्रिय दूतो! भगवान्‌के नामोच्चारणकी महिमा तो देखो, अजामिल-जैसा पापी भी एक बार नामोच्चारण करनेमात्रसे मृत्युपाशसे छुटकारा पा गया। भगवान्‌के गुण, लीला और नामोंका भलीभाँति कीर्तन मनुष्योंके पापोंका सर्वथा विनाश कर दे, यह कोई उसका बहुत बड़ा फल नहीं है; क्योंकि अत्यन्त पापी अजामिलने मरनेके समय चञ्चल चित्तसे अपने पुत्रका नाम 'नारायण' उच्चारण किया। इस नामाभास मात्रसे ही उसके सारे पाप तो क्षीण हो ही गये, मुक्तिकी प्राप्ति भी हो गयी। बड़े-बड़े विद्वानोंकी बुद्धि भी भगवान्‌की मायासे मोहित हो जाती है। वे कर्मोंके मीठे-मीठे फलोंका वर्णन करनेवाली अर्थवादरूपिणी वेदवाणीमें ही मोहित हो जाते हैं और यज्ञ-यागादि बड़े-बड़े कर्मोंमें ही संलग्न रहते हैं तथा इस सुगमातिसुगम भगवन्नामकी महिमाको नहीं जानते। यह कितने खेदकी बात है।

"प्रिय दूतो! बुद्धिमान् पुरुष ऐसा विचारकर भगवान् अनन्तमें ही सम्पूर्ण अन्तःकरणसे अपना भक्तिभाव स्थापित करते हैं। वे मेरे दण्डके पात्र नहीं हैं। पहली बात तो यह है कि वे पाप करते ही नहीं; परंतु यदि कदाचित् संयोगवश कोई पाप बन भी जाय, तो उसे भगवान्‌का गुणगान तत्काल नष्ट कर देता है। जो समदर्शी साधु भगवान्‌को ही अपना साध्य और साधन—दोनों समझकर उनपर निर्भर हैं, बड़े-बड़े देवता और सिद्ध उनके पवित्र चरित्रोंका प्रेमसे गान करते रहते हैं। मेरे दूतो! भगवान्‌की गदा उनकी सदा रक्षा करती रहती है। उनके पास तुमलोग कभी भूलकर भी मत फटकना। उन्हें दण्ड देनेकी सामर्थ्य न हममें है और न साक्षात् कालमें ही। बड़े-बड़े परमहंस दिव्य रसके लोभसे सम्पूर्ण जगत् और शरीर आदिसे भी अपनी अहंता-ममता हटाकर, अकिञ्चन होकर निरन्तर भगवान् मुकुन्दके पादारविन्दका मकरन्द-रस पान करते रहते हैं। जो दुष्ट उस दिव्य रससे विमुख हैं और नरकके दरवाजे घर-गृहस्थीकी तृष्णाका बोझा बाँधकर उसे ढो रहे हैं, उन्हींको मेरे पास बार-बार लाया करो।

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥
(श्रीमद्भागवत ६ । ३ । २९)

"जिनकी जीभ भगवान्‌के गुणों और नामोंका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त उनके चरणारविन्दोंका चिन्तन नहीं करता और जिनका सिर एक बार भी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें नहीं झुकता, उन भगवत्सेवाविमुख पापियोंको ही मेरे पास लाया करो।"

"आज मेरे दूतोंने भगवान्‌के पार्षदोंका अपराध करके स्वयं भगवान्‌का ही तिरस्कार किया है। यह मेरा ही अपराध है। पुराणपुरुष भगवान् नारायण हमलोगोंका यह अपराध क्षमा करें। हम अज्ञानी होनेपर भी हैं उनके निजजन, और उनकी आज्ञा पानेके लिये अञ्जलि बाँधकर सदा उत्सुक रहते हैं। अतः परम महिमान्वित भगवान्‌के लिये यही योग्य है कि वे क्षमा कर दें। मैं उन सर्वान्तर्यामी एकरस अनन्त प्रभुको नमस्कार करता हूँ।"

प्रभु-पदकमल-रसका ग्रहण करनेवाला जन्म-मरणको नहीं प्राप्त होता

न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् ।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो जनः ॥

प्रिय ! मुकुन्दकी सेवा करनेवाला मनुष्य अन्य (संसारी) पुरुषोंकी तरह आवागमन (जन्म-मृत्यु) में कभी नहीं पड़ता। मुकुन्द-चरणारविन्दोंके आलिङ्गनके रसको स्मरण करता हुआ वह फिर उन्हें छोड़नेकी इच्छा नहीं करता; क्योंकि वह और रस (परमानन्द) का ग्रहण करनेवाला है।

प्रेत-योनि

(लेखक—श्रीविश्वनाथजी झा, कविराज)

इस संसारमें मनुष्ययोनि, पशुयोनि, तिर्यग्योनि आदि दृश्य योनियोंके अतिरिक्त अदृश्य एक प्रेतयोनि भी है। संसारमें जितने पदार्थ हैं— मनुष्य, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, अन्न-फल-मूल सब-के-सब पाञ्चभौतिक हैं। ये प्रेत भी पाञ्चभौतिक हैं; पर पार्थक्य इतना ही है कि मनुष्य-पशु-पक्षियोंमें पृथ्वीका अंशविशेष है; अतः ये स्थूल दृश्य हैं; प्रेत वायव्य है अर्थात् वायुप्रधान है। इनमें पृथ्वीका अंश नहींके बराबर है। अतः प्रेत अदृश्य एवं अत्यन्त बलवान् होता है। अदृश्य होनेके कारण यद्यपि उसका प्रत्यक्ष प्रमाण कोई नहीं दे सकता, केवल अनुमानद्वारा जाना जाता है। अथर्ववेदमें इनके निराकरणके लिये तथा मारण-प्रयोगके लिये अनेक यन्त्र-मन्त्र हैं। तन्त्रमें तो यन्त्र-मन्त्रोंकी भरमार है। आयुर्वेदमें भी 'भूतविद्या' नामका एक विभाग ही पृथक् है। पुराणोंमें 'भूतोऽमी देवयोनयः'—ऐसा लिखा है। मृत व्यक्तियोंका जब श्राद्ध होता है तो उनको प्रेत कहकर पिण्ड दिया जाता है—'प्रेतत्वविमुक्तये एष पिण्डस्तुभ्यं स्वधा॥' ऐसा कहा जाता है। इन सभीसे प्रमाणित होता है कि प्रेतयोनि अवश्य है। इसमें अनेक विभाग हैं। आयुर्वेदके अनुसार १८ प्रकारके प्रेत हैं—जैसे प्रसूता स्त्री या नवयुवती (निःसंतान) मरती है तो 'चुडैल', कुमारी कन्या मरती है तो 'देवी' होती है। आदि।

इन सभीकी उत्पत्ति अपने जन्मार्जित पापोंसे, अभिचारसे, अकालमृत्युसे, ओझा-डाइनके मारण-प्रयोगसे, अन्त्येष्टि एवं श्राद्ध विधिपूर्वक तथा पवित्र न होनेसे होती है।

सुश्रुत, वाग्भट्टके बालप्रकरणमें भूतादि ग्रहोंके निवारणके लिये प्रयोग अधिक देखा जाता है।

इनको खानेकी इच्छा अधिक रहती है। इच्छा होती है कि मधुर भोग लें, परंतु कण्ठनलिकाका छिद्र सुईके बराबर रहनेके कारण इच्छानुसार जल नहीं पी सकते तथा खा नहीं सकते, अतः क्रोध अतिशय रहता है। जरा-सा अपराध होनेपर वे बहुत बिगड़ जाते हैं और उपद्रव करने लगते हैं। अच्छी-अच्छी चीजोंपर इनका अधिकार कुछ भी नहीं रहता। यहाँतक कि उन्हें वे स्पर्श भी नहीं कर सकते, उपभोगकी तो कोई बात ही नहीं। अपवित्र वस्तुओंपर पूर्ण अधिकार रहता है। अतएव जब वे बिगड़ते हैं तो अपवित्र वस्तुओंको ही काममें लाते हैं। वे बहुत दुखी रहते हैं। चिड़चिड़ा स्वभाव होता है। जीवितावस्थामें जिस स्वभावके रहते हैं, वही स्वभाव प्रेतावस्थामें भी रहता है। जब ये कभी-कभी शरीर धारण करते हैं, तब जीवितावस्थाके सदृश ही धारण करते हैं। इनका शरीर गलित कुष्ठ-सा रहता है। बलिष्ठ इतने होते हैं कि बड़े-बड़े वृक्षोंको उखाड़ फेंक देते हैं। अपवित्र व्यक्तियोंपर, स्त्री रही तो अपनी सौतिनपर विशेष आक्रमण करते हैं। इनका जो कुछ वक्तव्य रहता है, उसे आक्रान्त व्यक्तियोंके द्वारा प्रायः प्रकट करते हैं। यदि ब्राह्मण रहेगा तो वह अनुनय-विनयसे उपद्रव नहीं करेगा; और अन्त्यज मरकर प्रेत होगा तो वह अत्यन्त क्रूर उपद्रवकारी होगा।

जहाँ पूजा-पाठ, पुराणपाठ, गायत्री-जप, भागवत-पारायण, देवताओंके मन्दिर होंगे, वहाँ प्रेत प्रायः नहीं जायगा। जो संध्या-वन्दन, गायत्री-जप करेंगे या गायत्रीसे शिखा बाँधेंगे, उनपर भी आक्रमण नहीं करेगा।

इनका प्रतीकार करनेके लिये गाँवमें ओझा लोग रहते हैं। गयामें श्राद्ध करनेसे भी प्रेतत्व छूटता है।

विश्वासके लिये आँखों देखी हुई बातोंको मैं लिखता हूँ—

करीब दस-ग्यारह वर्ष हुए, पं० श्रीयुत ब्रजानन्द-कुमारजी (उस समय वे पोस्टमास्टर-जेनरल थे) के यहाँ लड़कोंका यज्ञोपवीत था, जिसमें बड़े-बड़े महान् व्यक्ति आये थे। एक महात्माजी भी थे, जिनको प्रेतसिद्ध था। इनमें एक बड़े आदमी थे, जो नित्य बेलका शरबत पीते थे; परंतु नौकर बेल लाना भूल गया, तब महात्माजीसे लोगोंने कहा। महात्माजीने प्रेतको भेजा। पहली बार बेल नहीं मिला। दुबारा आग्रहपूर्वक कहा गया तो गया और बेल लाकर दे दिया।

महात्माजीने जिनको बेल दिया था, अभी वे जीवित हैं। श्रीमद्भागवत सुननेसे अवश्यमेव प्रेतकी मुक्ति होती है।

से गयी तो कौन बचायेगा, आदि कुतर्क अपरिहार्य थे। इसकी बहिनने अपना गर्भ-बालक धुन्धुलीको देनेका प्रस्ताव किया। वह धन चाहती थी। फलको परीक्षणके लिये गौको दे दिया।

गौसे गोकर्ण नामक बालक हुआ और धुन्धुलीकी बहिनके जो बालक हुआ, उसने वह धुन्धुलीको दे दिया। उसका नाम धुन्धुलीने धुन्धुकारी रक्खा। गर्भकालमें वस्त्रादिसे धुन्धुली अपने उदरको बढ़ा लेती थी और यह व्यक्त कर देती मानो वह गर्भवती है।

गोकर्ण महान् पण्डित और धुन्धुकारी महान् खल बना। बाल्यावस्थामें साथके बालकोंका प्राण-हरण करता, अन्धोंको कूपमें ढकेल देता, स्त्रियोंको छेड़ता एवं कुकर्माचरणमें लीन रहता था। शवके हाथसे पिण्ड लेकर भाग जाना उसका खेल था। जूआ खेलना, शराब पीकर बेहोश पड़े रहना दिनचर्या थी। सत्संगसे बचनेका ही नहीं, उसमें विघ्न डालनेका प्रयास ही उसका परम लक्ष्य था। पिता उसकी दशासे दुखी थे। एक दिन वे घर छोड़कर वनमें चले गये। माताको वह नित्य पीटता था, फलतः घरके कूपमें गिरकर एक दिन उसने भी प्राण त्याग दिये और गोकर्ण तीर्थयात्राके व्याजसे निकल गये। अब धुन्धुकारी पूर्ण स्वतन्त्र हो गया। वह पाँच वेश्याओंको घरमें रखकर नित्य कुकर्ममें रत रहता था। पशुओंकी हत्या ही उसकी आजीविका बन गयी थी। एक दिन वेश्याओंने गला घोटकर, मुखमें अंगारे डालकर नृशंसतापूर्वक उसकी हत्या कर दी और वे भाग गयीं। इस क्रूर-मृत्युसे धुन्धुकारी घोर प्रेत बना। ग्रामीणजनोंके पशुओंको, बालकोंको हवामें उड़ाकर ले जाता और फेंक देता था। गाँववाले भयभीत हो गये। धुन्धुकारीसे न जीवितावस्थामें सुख मिला, न मरकर। वे बड़े दुखी थे। वह उनके बालकोंकी आये दिन हत्या कर देता। कभी अग्नि लगा देता, कभी पत्थर बरसाया करता था। गोकर्ण यद्यपि गयामें उसे पिण्डदान कर आये थे तथापि गाँववालोंने कहा कि यह तो महान् प्रेत बन गया है। रातमें वह गोकर्णके पास भी आता। कभी अग्निके रूपमें, कभी जलके रूपमें, कभी हाथी-ऊँटके रूपमें, कभी भेड़के रूपमें उन्हें दर्शन दिये और एक समय तो साक्षात् मानवाकारमें अपने गलेकी ओर हाथ करता दिखायी दिया। गोकर्ण समझ गये कि यह बोलना चाहता है। उन्होंने तीर्थोंका पानी फेंका और धुन्धुकारीने कहा कि 'भाई गोकर्ण! मैं धुन्धुकारी हूँ, बड़े कष्टमें हूँ। मेरा किसी भी प्रकार इस योनिसे उद्धार करो।'[1]

गोकर्णने कहा कि 'इस समय मुझे विश्राम करने दो; प्रातः तुम्हारी मुक्तिका उपाय करूँगा।' गोकर्णने मध्याह्नमें सूर्यनारायणसे अपने भाईकी मुक्तिका उपाय पूछा तो आकाशवाणी हुई कि 'तुम भागवत-सप्ताह सुनाओ। इससे तुम्हारे भाईकी मुक्ति होगी—

श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु।
इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतम्॥
(माहात्म्य० ५।४१)

गोकर्णने कथारम्भ की। वायुरूपी धुन्धुकारी भी आया। वह अपनी पृथक् स्थिति नहीं रख सकता था, अतः एक पोले बाँसमें घुस गया। सात दिनमें बाँसकी सातों गाँठ टूट गयीं और धुन्धुकारीकी प्रेतयोनि छूट गयी। वह दिव्य वेश धारणकर गोकर्णके चरणोंमें गिर पड़ा और बड़ी विनती की। सब लोग यह घटना बड़े आश्चर्यसे देख रहे थे। एक प्रेतका प्रत्यक्ष उद्धार था। विश्वमें नयी क्रान्ति थी। सबने यह निश्चय हो गया कि भागवत-सप्ताहसे प्रेतयोनिका उद्धार होता है।

भूत-प्रेत-पिशाच शिवजीकी सेनामें रहते हैं। चतुर्थ स्कन्ध (५।२५)में सती-चरित्रमें वीरभद्रके साथ इनका भी उल्लेख है। भागवत-माहात्म्यमें सप्ताहके द्वारा प्रेतपीडा-नाशकी घोषणा मुक्तकण्ठसे है—

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी।
सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः॥
(५।४२)

---

[1] अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः। स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया॥
(मा० मा० ५।१७)

प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीसूर्यनारायणने उन्हें यह उपदेश दिया कि—

'श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु।
(श्रीमद्भा० मा० ५ । ४१)

सूर्यनारायणने कहा—'श्रीमद्भागवतसे मुक्ति हो सकती है; इसलिये तुम भागवतका सप्ताह-पारायण करो।' इस उपदेशके अनुसार महात्मा गोकर्णने धुन्धुकारीको श्रीमद्भागवतका सप्ताह-पारायण सुनाया। उस सप्ताह-पारायणके सुननेसे धुन्धुकारी प्रेतकी मुक्ति हो गयी। यह कथा श्रीमद्भागवत-माहात्म्य, अ० ४-५ में विस्तारके साथ वर्णित है।

श्रीसूतजी कहते हैं—

'श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंको भी दुर्लभ है। पूर्वकालमें श्रीमद्भागवतके श्रवणसे ही राजा परीक्षित्की मुक्ति हो गयी, जिसे देखकर ब्रह्माजीको भी बड़ा आश्चर्य हुआ था। उन्होंने सत्यलोकमें तराजू बाँधकर सब साधनों-को तौला। अन्य सभी साधन तौलमें हल्के पड़ गये, अपने महत्त्वके कारण भागवत ही सबसे भारी रहा। यह देखकर सभी ऋषियोंको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने कलियुगमें इस भगवद्रूप भागवतशास्त्रको ही पढ़ने-सुननेसे तत्काल मोक्ष देनेवाला निश्चय किया। सप्ताह-विधिसे श्रवण करनेपर यह निश्चय भक्ति प्रदान करता है।'

(श्रीमद्भा० मा० १ । १७–२१)

'पूर्वकालमें जिस समय वेद-वेदान्तके पारगामी और गीताकी रचना करनेवाले भगवान् व्यासदेव खिन्न होकर अज्ञान-समुद्रमें गोते खा रहे थे, उस समय आपने ही (नारदजीने) उन्हें (व्यासजीको) चार श्लोकोंमें इसका (भागवतका) उपदेश दिया था। उसे सुनते ही व्यासजी-की सारी चिन्ता दूर हो गयी थी।' यथा—

वेदान्तवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि।
परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे॥
तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम्।
तदीयश्रवणात् सद्यो निर्बाधो बादरायणः॥

(श्रीमद्भा० मा० २ । ७२-७३)

इस प्रकार देवर्षि नारदजीने सनकादि मुनीश्वरोंने भागवतकी विशिष्टता दिखायी है। वे पुनः कहते हैं—श्रीमद्भागवतके श्रवणमात्रसे मुक्ति हाथ लग जाती है—

'यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता॥'
(श्रीमद्भा० मा० ३ । २४)

'श्रीमद्भागवतके श्रवणमात्रसे श्रीहरि हृदयमें आकर विराजमान हो जाते हैं'—

'यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत्।'
(श्रीमद्भा० मा० ३ । २५)

इस ग्रन्थमें १८ हजार श्लोक और बारह स्कन्ध हैं तथा श्रीशुकदेव और राजा परीक्षित्का संवाद है।

'जिस घरमें नित्यप्रति श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वह तीर्थरूप हो जाता है और जो लोग उसमें रहते हैं, उनके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेययज्ञ इस शुकशास्त्रकी कथाका सोलहवाँ अंश भी नहीं हो सकते। फलकी दृष्टिसे इस शुकशास्त्र-कथा-की समता गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर या प्रयाग—कोई तीर्थ भी नहीं कर सकता।' (श्रीमद्भा० मा० ३ । २९, ३०, ३२)

'जो फल तप, योग और समाधिसे भी प्राप्त नहीं हो सकता, वह सर्वाङ्गरूपमें सप्ताह-श्रवणसे सहजमें ही मिल जाता है। सप्ताह-श्रवण यज्ञसे बढ़कर है, व्रतसे बढ़कर है, तीर्थसेवनसे तो सदा बड़ा है, योगसे बढ़कर है—यहाँतक कि ध्यान और ज्ञानसे भी बढ़कर है। अजी, इसकी विशेषताका कहाँतक वर्णन करें, यह तो सभीसे बढ़-चढ़कर है।' (श्रीमद्भा० मा० ३ । ५०–५२)

श्रीमद्भागवतकी इतनी महिमा क्यों कही गयी है? क्या ये रोचक वाक्य हैं? ये रोचक वाक्य नहीं, वरं यथार्थ वाक्य हैं। भागवतके इस अपूर्व और अद्भुत माहात्म्यको सुनकर कुछ लोग यह शङ्का कर सकते हैं कि 'भगवान् ही यह भागवतपुराण योगवेत्ता ब्रह्माजीके भी आदिकारण श्रीनारायणका निरूपण करता है; परंतु यह मोक्षकी प्राप्तिमें ज्ञानादि सभी साधनोंका तिरस्कार करके इस युगमें उनसे भी कैसे बढ़ गया?' इसका उत्तर स्वयं श्रीशुकदेव इस प्रकार देते हैं—'जब भगवान् श्रीकृष्ण इस धराधामको छोड़कर अपने नित्यधामको जाने लगे, तब उनके मुखार-विन्दसे एकादश स्कन्धका ज्ञानोपदेश सुनकर भी उद्धवजीने पूछा—'गोविन्द! अब आप तो अपने भक्तोंका कार्य करके परमधामको पधारना चाहते हैं, किंतु मेरे मनमें एक बड़ी चिन्ता है। इसे सुनकर आप मुझे शान्त कीजिये।

निर्विवाद सिद्ध है कि श्रीमद्भागवतके सप्ताह-श्रवणसे निश्चय प्रेतकी मुक्ति हो जाती है।

'यह प्रेतपीड़ाको नाश करनेवाली श्रीमद्भागवतकी कथा धन्य है तथा श्रीकृष्णचन्द्रके धामकी प्राप्ति करानेवाला इसका सप्ताह-पारायण भी धन्य है। जब सप्ताह-श्रवणका योग लगता है, तब सब पाप थर्रा उठते हैं कि अब यह—भागवतकी कथा जल्दी ही हमारा अन्त कर देगी। जिस प्रकार आग गीली-सूखी, छोटी-बड़ी—सब तरहकी लकड़ियोंको जला डालती है, उसी प्रकार यह सप्ताह-श्रवण मन, वचन और कर्मद्वारा किये हुए नये-पुराने, छोटे-बड़े—सभी प्रकारके पापोंको भस्म कर देता है'—

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी।
सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः॥
कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते।
अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति॥
आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम्।
श्रवणं विदहेत् पापं पावकः समिधो यथा॥
(श्रीमद्भा० मा० ५। ५३–५५)

इसलिये 'विद्वानोंने देवताओंकी सभामें कहा है कि जो लोग इस भारतवर्षमें श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं सुनते, उनका जन्म वृथा ही है'—

अस्मिन् वै भारते वर्षे सूरिभिर्देवसंसदि।
अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम्॥
(श्रीमद्भा० मा० ५। ५६)

किसी भी साधनको जबतक उस साधनके विधि-विधानपूर्वक न किया जाय, तबतक उस साधनका यथार्थ फल नहीं प्राप्त होता; इसलिये प्रत्येक साधनको साधनाके पूर्व उसके विधि-विधानका जानना अत्यावश्यक है। श्रीमद्भागवत-माहात्म्य अध्याय ६ में विधिका वर्णन है। उसे अच्छी तरह समझकर सप्ताहश्रवणका आयोजन करना चाहिये।

प्रवचनके लिये ऐसे विद्वान् ब्राह्मणको नियुक्त करना चाहिये जो विवेकी, अत्यन्त निःस्पृह, विरक्त और विष्णुभक्त हों। ऐसे लोगोंको नियुक्त नहीं करना चाहिये जो पण्डित होनेपर भी अनेक धर्मोंके चक्करमें पड़े हुए, स्त्रीलम्पट एवं पाखण्डके प्रचारक हों। वक्ताके पास ही उसकी सहायताके लिये एक वैसा ही विद्वान् और स्थापित करना चाहिये। वह भी सब प्रकारके संशयोंकी निवृत्ति करनेमें समर्थ और लोगोंको समझाने-बुझानेमें कुशल हो।

कथा-आरम्भसे एक दिन पूर्व व्रत ग्रहण करनेके लिये वक्ताको क्षौर करा लेना चाहिये तथा अरुणोदयके समय शौचसे निवृत्त होकर अच्छी तरह स्नान करे। संध्यादि अपने नित्यकर्मोंको संक्षेपसे समाप्तकर विघ्नोंके निवृत्त्यर्थ श्रीगणेशजीका पूजन करे। तदनन्तर पितृगणका तर्पण कर पूर्वपापोंकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे और एक मण्डल बनाकर उसमें श्रीहरिको स्थापित करे। फिर भगवान् श्रीकृष्णको लक्ष्य करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः षोडशोपचार विधिसे पूजन करे और उसके पश्चात् प्रदक्षिणा तथा नमस्कारादि कर इस प्रकार स्तुति करे—

संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे।
कर्ममोहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात्॥
(श्रीमद्भा० मा० ६। २७)

'करुणानिधान! मैं संसारसागरमें डूबा हुआ और बड़ा दीन हूँ। कर्मोंके मोहरूपी ग्राहने मुझे पकड़ रखा है। आप इस संसारसागरसे मेरा उद्धार कीजिये।'

इसके पश्चात् धूप-दीप आदि सामग्रियोंसे श्रीमद्भागवतकी भी बड़े उत्साह और प्रीतिपूर्वक विधि-विधानसे पूजा करे। फिर पुस्तकके आगे नारियल रखकर नमस्कार करे और प्रसन्न चित्तसे इस प्रकार स्तुति करे—

'श्रीमद्भागवतके रूपमें आप साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र ही विराजमान हैं। नाथ! मैंने भवसागरसे छुटकारा पानेके लिये आपकी शरण ली है। मेरा यह मनोरथ आप बिना किसी विघ्न-बाधाके साङ्गोपाङ्ग पूरा करें। केशव! मैं आपका दास हूँ।' (श्रीमद्भा० मा० ६। ३०-३१)

इस प्रकार दीन वचन कहकर फिर वक्ताका पूजन करे। उसे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करे और फिर पूजाके पश्चात् उसकी इस प्रकार स्तुति करे—

'शुकस्वरूप भगवन्! आप समझानेकी कलामें कुशल और सब शास्त्रोंमें पारङ्गत हैं; कृपया इस कथाको प्रकाशित करके मेरा अज्ञान दूर करें।' (श्रीमद्भा० मा० ६। ३३)

फिर अपने कल्याणके लिये प्रसन्नतापूर्वक उसके सामने नियम ग्रहण करे और सात दिनोंतक यथाशक्ति उसका पालन करे। कथामें विघ्न न हो, इसके लिये पाँच ब्राह्मणोंको और वरण करे; वे द्वादशाक्षर मन्त्रद्वारा भगवान्‌के नामोंका जप करें। फिर ब्राह्मण, अन्य विष्णुभक्त एवं कीर्तन करनेवालोंको नमस्कार करके उनकी पूजा करे और उनकी आज्ञा

बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। यह सप्ताह-पारायणकी विधि सब पापोंकी निवृत्ति करनेवाली है। इसका इस प्रकार ठीक-ठीक पालन करनेसे यह मङ्गल-मय भागवतपुराण अभीष्ट फल प्रदान करता है तथा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारोंकी प्राप्तिका साधन हो जाता है—इसमें संदेह नहीं।'

यदि प्रेतकी प्रेतत्व-मुक्तिके लिये श्रीमद्भागवतका सप्ताह-पारायण करना हो, तो मुख्य श्रोताके रूपमें किसी वैष्णव ब्राह्मणको श्रोता नियुक्तकर, उसीके द्वारा सप्ताह-यज्ञकी सारी साधना प्रेतके प्रतिनिधित्वके रूपमें सम्पन्न करानी चाहिये। संकल्प-पूजा और दान आदिकी सारी योजनाएँ, उसी नियुक्त ब्राह्मणके द्वारा पूर्ण होनी अत्यावश्यक है। यही प्रणाली शास्त्रानुकूल, विधि-विधान एवं व्यवहार-व्यवहृत है। इसी प्रकार महात्मा गोकर्णजीने अपने भाई धुन्धुकारीकी प्रेतत्व-मुक्तिके लिये किया था। इस प्रकारकी योजनासे श्रीमद्भागवत-सप्ताह-श्रवण करनेसे प्रेत प्रेतयोनिसे निस्संदेह मुक्त होकर परमपद प्राप्त करता है। यज्ञान्तमें उस नियुक्त वैष्णव ब्राह्मण श्रोताका दान-दक्षिणाके द्वारा सत्कार करना अत्युत्तम है।

'श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका परिपक्व फल है। श्रीशुकदेवरूप शुकके मुखका संयोग होनेसे अमृतरससे परिपूर्ण है। यह रस-ही-रस है—इसमें न छिलका है न गुठली। यह इसी लोकमें सुलभ है। जबतक शरीरमें चेतना रहे, तबतक इसका बार-बार पान करें। महामुनि व्यासदेवने श्रीमद्भागवतपुराणकी रचना की है। इसमें निष्कपट-निष्काम परमधर्मका निरूपण है। इसमें शुद्धान्तःकरण सत्पुरुषोंके जाननेयोग्य कल्याणकारी वास्तविक वस्तुका वर्णन है, जिससे तीनों पापोंकी शान्ति होती है। इसका आश्रय लेनेपर दूसरे शास्त्र अथवा साधनकी आवश्यकता नहीं रहती। जब कभी पुण्यात्मा पुरुष इसके श्रवणकी इच्छा करते हैं, तभी ईश्वर अविलम्ब उनके हृदयमें अवरुद्ध हो जाता है। यह भागवत पुराणोंका तिलक और वैष्णवोंका (परम) धन है। इसमें परमहंसोंके प्राप्य विशुद्ध ज्ञानका ही वर्णन किया गया है तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके सहित निवृत्तिमार्गको प्रकाशित किया गया है। जो पुरुष भक्ति-पूर्वक इसके श्रवण, पठन और मननमें तत्पर रहता है, वह मुक्त हो जाता है।' (श्रीमद्भा० मा० ६।८०—८२) जो लोग दरिद्रताके दुःखज्वरकी ज्वालासे दग्ध हो रहे हैं, जिन्हें माया-पिशाचिनीने रौंद डाला है तथा जो संसार-समुद्रमें डूब रहे हैं, उनका कल्याण करनेके लिये श्रीमद्भागवत सिंहनाद कर रहा है।

'इस असार संसारमें विषयरूप विषकी आसक्तिके कारण व्याकुल बुद्धिवाले पुरुषो! अपने कल्याणके उद्देश्यसे आधे क्षणके लिये भी इस शुककथारूप अनुपम सुधाका पान करो। प्यारे भाइयो! निन्दित कथाओंसे युक्त कुपथमें व्यर्थ ही क्यों भटक रहे हो? इस कथाके कानमें प्रवेश करते ही मुक्ति हो जाती है, इस बातके साक्षी राजा परीक्षित् हैं'—

असारे संसारे विषयविषसङ्गाकुलधियः
क्षणार्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथातुलसुधाम्।
किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे
परीक्षित्साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने॥
(श्रीमद्भा० मा० ६।१००)

अतः—

धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी।
सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः॥
(श्रीमद्भा० मा० ५।५१)

वैष्णवकी महत्ता

अवैष्णवाद् द्विजाद्विप्र चाण्डालो वैष्णवो वरः। सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्॥
ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद् गोविन्दपादपङ्कजम्। ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत्तेषां च संनिधौ॥
(ब्रह्मवै० कृ० ११।३९, ४४)

'अवैष्णव ब्राह्मणसे वैष्णव चाण्डाल श्रेष्ठ है; क्योंकि यह वैष्णव चाण्डाल अपने बन्धुगणोंसहित संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है और वह अवैष्णव ब्राह्मण नरकमें पड़ता है।' 'वैष्णवजन सदा गोविन्दके चरणारविन्दोंका ध्यान करते हैं और भगवान् गोविन्द सदा उन वैष्णवोंके समीप रहकर उन्हींका ध्यान किया करते हैं।'

'मृत्युके समय जिसका मन सत्त्वगुणमें स्थित हुआ ईश्वरचिन्तनमें लीन होता है और बुद्धि विचलित नहीं होती, उसे अगले जन्ममें सभी पूर्वजन्मोंकी स्मृति हो जाती है, जिसके कारण उसे विषयोंमें दृढ़तर वैराग्य होकर मोक्षमें प्रवृत्ति हो जाती है ।'

'यस्य अविपर्यस्तज्ञानस्य योगिनो मनः शरीरत्यागसमय एकाग्रतया ईश्वरे स्थिरं स्यात् स जन्मान्तरे जातिस्मरतां नियात् । दृढतरवैराग्यनिमित्तभूतां सकलपूर्वजन्मस्मृतिं प्राप्नुयात् । मोक्षे च प्रवर्तते ।'

(सुबोधिनी, मिताक्षरा, अपरार्क, वीरमित्रोदय, बालम्भट्टी आदिका सारांश)

और ये निश्चय ही सभी सत्य हैं । इन सभीके द्वारा आत्मशुद्धि ही इष्ट है । सांख्यदर्शन-योगदर्शनादिमें भी त्याग, तप, ज्ञान-विचारादिद्वारा जातिस्मरता प्राप्त होनेकी बात है[1]—

'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ।'
(योगदर्शन ३ । १८)

'संस्कारोंका साक्षात्कार होनेसे पूर्वजन्मकी स्मृति हो जाती है ।'

'अपरिग्रहस्थैर्ये पूर्वजन्मकथन्तासम्बोधः ।'
(योग० २ । ३९)

'अपरिग्रह (संग्रहके अभाव) का भाव स्थिर होनेपर पूर्वजन्मके वृत्तान्तका ज्ञान हो जाता है ।'

'पूर्वापरजातिस्मरणं भवेत् पूर्वापरजन्मज्ञानं भवति ।'

'पहले तथा आगेके भी जन्मोंका ज्ञान हो जाता है ।'

(व्यासभाष्य, तत्त्वविवरण, वाचस्पति, भोज, विज्ञानभिक्षु, नागोजी, नागेश, मणिप्रभा, चन्द्रिका, भास्वती आदिका सारांश ।)

हरिवंश २ । ६३ । ६७ में पारिजात वृक्षके नीचे जानेसे 'जातिस्मरता' होना लिखा है—

'यम् (पारिजातम्) आसाद्य जनः सर्वो जातिं स्मरति पौर्विकीम् ।'
(हरिवंश २ । ६४ । ६७)

इसी ग्रन्थमें १ । २१ । १७—४४ में श्राद्धद्वारा जातिस्मरता निर्दिष्ट है—

स्मृतिः प्रत्यवमर्शश्च तेषां जात्यन्तरेऽभवत् ।
(हरिवंश १ । २१ । १८)

श्रीमद्भागवतमें देवर्षि नारद, राजा नृग, असमञ्जस तथा गजेन्द्रादिको हरिभक्ति एवं योगसाधनादिसे जातिस्मरता बतलायी गयी है । यथा—

प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ।
(भागवत १ । ६ । २५)

हर्यर्चनानुभावेन यद् गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ।
(भागवत ८ । ४ । १२)

असमञ्जस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम् ।
जातिस्मरः पुरा सङ्गाद् योगी योगाद्विचालितः ॥
(भागवत ९ । ८ । १६)

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव !
स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः ॥
(भागवत १० । ६४ । २५)

ब्रह्मपुराण (गौर संस्करण) पृ० १५१० में पुराणोंके पाठमात्रसे जातिस्मरता निर्दिष्ट है—

जातिस्मरत्वं विद्यां च पुत्रान् मेधां पशून् धृतिम् ।
धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं तु लभते नरः ॥
(ब्रह्मपुराण २४५ । १२)

'(पुराणोंके पाठसे) मनुष्य पूर्वजन्मोंकी स्मृति, विद्या, पुत्रों, मेधा, पशुधन, धर्ममें रुचि, धन, कामोपभोग तथा मोक्षको भी पा लेता है ।'

महाभारत, वनपर्व ८५ । १०३-४ में तीर्थोंके श्रद्धापूर्वक माहात्म्य-श्रवण मात्रसे ही जातिस्मरता निर्दिष्ट है—

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थपुण्यं नरः शुचिः ॥
जातीः स स्मरते बह्वीर्नाकपृष्ठे च मोदते ।
मनसा तानि गच्छेत सर्वतीर्थसमीक्षया ॥
(वन० १०४

---

[1] सांख्यदर्शन २ । २ में भी 'विरक्तस्य तत् सिद्धेः ।' में यही बात कही गयी है । G. R. Ballantyn ने अनादिवासना (२ । १) की सर्वाधिक विस्तृत व्याख्यामें लिखा है— 'Vasana is the resultant impression of all the past experiences. It is which inclines to rebirth.' इन्होंने इसमें विज्ञान, अनिरुद्ध, महादेवादि सबका सार ले लिया है । वैशेषिक एवं पूर्वमीमांसामें भी इसपर सुन्दर सन्दर्भ है । विस्तारभयसे नहीं लिखा गया ।

'आकाशरूपी ब्राह्मणके देदीप्यमान दीप, क्षीरसागरके न्थनसे प्रकट हुए तथा अपने प्रकाशसे दिशाओंके विस्तार- ो प्रकाशित करनेवाले भगवती रमाके छोटे भाई, आपको मस्कार।'

तत्पश्चात् रात्रिमें मौन भोजन कर, चन्द्रस्मृतिपूर्वक यन करे। द्वितीयाको लवणरहित हविष, तृतीयाको मुन्यन्न नीवारादि), चतुर्थीको गोरस और पञ्चमीको कृशर घीयुक्त खिचड़ी) खाये। चावलकी जगह सावाँका ावल ले। दूसरे दिन देवर्षि-पितृ-तर्पण करे। फिर ाह्मणोंको दान देकर विसर्जन करे। इससे धन, पुत्र, स्त्री ादि सम्पूर्ण सुखपूर्वक जातिस्मरता मिलती है और उसके ारा सदा कल्याणका आचरण होता है—

भद्राण्यवाप्य धनपुत्रकलत्रजानि
जातिस्मरो भवति भारत भद्रकर्ता।
(भविष्यपुराण, उत्तर० ४। १३। १००)

(४)
जातिसर-तीर्थ

ध्यान देनेपर जातिस्मरताके साधनोंमें तीर्थस्नान ही र्वश्रेष्ठ दीखता है। यही बात पुराणों, स्मृतियों तथा ैयाकरणोंको भी इष्ट है—

ौचेन तपसैव च।...जातिः स्मरति पौर्विकीम्।
(मनु० ४। १४८; स्कन्दपुराण, काशी० ३८। ६९; ब्रह्मोत्तर० ।१। ९१, वायु० ३ इत्यादि)

शौचेन—तीर्थस्नानादिभिः, जातिः—स्वपूर्वजन्माभि- यक्ति—मेधातिथि धरणिधर, विश्वरूप, रामानन्दादि। जातिः स्मर्यतेऽत्र स्नानादिना—स्मृतिः।

(वाचस्पत्य कोश)

स्कान्द-सेतु-माहात्म्य एवं महाभारत, वनपर्व ८५। १०३—५ में श्रद्धापूर्वक मनसे भी तीर्थोंके गमन तथा तीर्थ- माहात्म्य-श्रवणसे भी 'जातिस्मरता' बतलायी गयी है—

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थपुण्यं नरः शुचिः॥
जातः स स्मरते जातिं नाकपृष्ठे च मोदते।
गम्यान्यपि च तीर्थानि कीर्तितान्यगमानि च॥
मनसा तानि गच्छेत सर्वतीर्थसमीक्षया।
(महाभारत, वन० ८५। १०१—५[1])

कई तीर्थों तथा सरोवरोंका नाम ही 'जातिसर-तीर्थ', 'जातिसर-ह्रद' आदि है। महाभारत, वनपर्व ८४। १२९ में आता है कि हरिहर-क्षेत्रके समीपवर्ती जातिसर-तीर्थमें स्नान करनेसे निस्संदेह जातिस्मरता प्राप्त हो जाती है—

जातिस्मरमुपस्पृश्य शुचिः प्रयतमानसः॥
जातिस्मरत्वमाप्नोति स्नात्वा तत्र न संशयः।
(महा० वन० ८४। १२८-२९, पद्मपुराण, स्वर्ग० ३८। ४६)

इसी प्रकार कोकामुख, वाराह-क्षेत्र, सूकरक्षेत्र—सोरोंमें भी संयम तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास तथा स्नानादि करनेसे जातिस्मरता निर्दिष्ट है—

कोकामुखमुपस्पृश्य ब्रह्मचारी यतव्रतः।
जातिस्मरत्वमाप्नोति दृष्टमेतत्पुरातनैः॥
(महाभारत वन० ८४। १५८; पद्म० स्वर्ग० ३८। ६८; पद्म० आदि १५८। ३८ पूना)

कृष्णवेणानदीके देवह्रदमें भी स्नान करनेसे जातिस्मरता बतलायी गयी है[1]। इसका भी दूसरा नाम 'जातिसरह्रद' या 'जातिसर-सरोवर' है।

ततो देवह्रदेऽरण्ये कृष्णवेणाजलोद्भवे॥
जातिस्मरह्रदे स्नात्वा भवेज्जातिस्मरो नरः।
(महाभा०, वनपर्व ८५। २७-२८; पद्म०, स्वर्गखण्ड १९। १७)

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें इन्द्रप्रस्थस्थित कालिन्दी- माहात्म्यके १९९ से २२२ तकके २४ अध्यायोंमें (बंगवासी, वेंकटेश्वर तथा मोर संस्करण, पूनामें यह संख्या १९५ से २१९ समझनी चाहिये।) आये हुए सभी तीर्थ जाति- स्मर-तीर्थ हैं। १९९ वें अध्यायमें आता है कि इन्द्रप्रस्थवासी एक इन्द्र क्षीणपुण्य होकर हस्तिनापुरमें शिवशर्मा तथा गुणवतीके पुत्र विष्णुशर्मा उत्पन्न हुए। वृद्धावस्थामें अपने पिता शिवशर्माके साथ विष्णुशर्मा भी भगवदाराधनके लिये

---

1. सभी श्रद्धा ही इसमें हेतु है। श्रद्धापूर्वक माहात्म्यश्रवणसे सर्वतीर्थ फल प्राप्ति होती है, यह स्पष्ट है।

कहा भी है—

[illegible] दर्शनं [illegible]
[illegible]
(वामनपुराण २१। ४, स्कन्द० [illegible])

[illegible]
(पद्म० ६। २१९। १०१)

1. यह कोई कृष्णवेणा नदीके [illegible] हुआ है।

पहुँचे। विकट राक्षस तथा उनके पिता शरभने उन्हें हृदयसे आशीर्वाद देकर अभिनन्दन किया। वहाँ स्नान करनेसे उन्हें भी अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण हो आया—

स्नात्वा कुरु क्रियाः स्वीयाः पूर्वजन्म स्मरिष्यसि ॥
प्रविष्टोऽहं सरस्तत्र पूर्वजन्मशुभाशुभम् ॥
(वही २०४ । १३०, १३२)

दस ही दिनोंमें शरभकी मृत्यु हुई और उन्हें विष्णु भगवान् स्वयं ही गरुडारूढ होकर दर्शन देते हुए वैकुण्ठ ले गये—

अथो गरुडमारुह्य वक्षसा धारयन् श्रियम्।
आजगाम स्वयं विष्णुर्नवीनघनविग्रहः ॥
दत्त्वा स्वकीयसारूप्यमारोप्य गरुडं तदा।
पितरं मम ब्रह्माद्यैर्वृतो वैकुण्ठमारुहत् ॥
(वही २०४ । १३६, ३९)

यह सब आश्चर्य देखकर शिवशर्मा (पूर्वजन्मके सुमति) भी मोक्षकी इच्छासे उस राक्षसके साथ वहीं निवास करने लग गये। एक बार उस राक्षसने कीचड़में फँसी हुई गायको देखकर उसे निकालनेके लिये ज्यों ही उसमें प्रवेश किया कि उसे एक जलहस्तीने पकड़ लिया और पेटमें पानी भर जानेसे राक्षस मर गया और देवतारूपमें परिणत हो गया; क्योंकि उसकी यही अभिलाषा थी।

इसी प्रकार इसके २०८वें अध्यायके ५७-५८ वें श्लोकोंमें विमल नामक ब्राह्मणके द्वारा इन्द्रप्रस्थ-सीमान्तर्गत यमुनातटवर्ती द्वारकातीर्थके जलके छींटोंसे सिंचन करनेसे पिशाचिनियोंको जन्मान्तरका ज्ञान होता है—

वारुतज्जलाभिमर्शात्तु सर्वेषां जन्मकर्मगाम्।
संस्मृत्य तत्पशुस्रवैव राक्षसं देहमुल्बगम् ॥
(वही २०८ । ५८)

इसी उत्तरखण्डके २११ । ४१ में एक सर्पको सोये हुए मनुष्यके सिरसे बाहर निकलने तथा वहींपर अन्य लोगोंद्वारा मार दिये जानेपर जन्मान्तर-स्मृति होती है। इसी खण्डके २१६ । ४५ श्लोकमें एक मदिराको भी इसका जल पीनेसे जन्मान्तर-ज्ञान होनेकी सुन्दर कथा है। इसीके २२१वें अध्यायमें हेमाङ्गी नामकी रानीको केवल इसी तीर्थके अन्तर्गत प्रयाग नामक तीर्थके दर्शनमात्रसे जन्मान्तर-ज्ञान होनेका उल्लेख है—

अत्र तीर्थमिदं दृष्ट्वा प्रयागं ब्रह्मनिर्मितम्।
पूर्वजन्मकृतं कर्म सा सस्मार मनस्विनी ॥
(वही २२१ । १०)

ये सभी कथाएँ बड़ी ही सुन्दर हैं। विस्तारभयसे इनका पूरा उल्लेख नहीं हो सका है। पाठक वहीं देखनेका कष्ट उठावें। इसीके क्रियायोगसार खण्डके ७वें अध्यायमें सर्वजनि नामक ब्राह्मणको भी जातिस्मरता होती है। इसी क्रियायोगसारके १३ । १०४—३१ में प्रज्ञ ब्राह्मणकी कथा है। वह जन्मान्तर-जिज्ञासासे शिवक्षेत्र जाता है और शंकरजीके दर्शन होनेपर अपना पूर्वजन्मवृत्त पूछता है—

कोऽहं तस्थौ पुरा देव किं वा कार्यं कृतं पुरा।
(१३ । १२६)

भगवान्ने इसे कठिन एवं गूढ़ प्रश्न कहा—'गुह्याद् गुह्यतरं महत्।' (१३५) पुनः उसे जन्मान्तरका 'दण्डपाणि नामक शबर' बतलाया। पूर्वजन्ममें एक वनमें सर्ववेदा नामक ब्राह्मणको भगवत्पूजार्थ पुष्प प्रदान कर वैकुण्ठसे लौटकर वह ब्राह्मण हुआ था। इसी प्रकार यहाँ अन्य भी बहुत-से जातिस्मर तीर्थोंका वर्णन है।

(५)

विश्वकी सर्वप्रथम जातिस्मरा (पूर्वजन्मस्मर्त्री) देवी पार्वती

(पराम्बा भगवती पार्वतीका पूर्वजन्म)

वेदोंसे लेकर साधारण साहित्य तकके पन्ने-पन्ने भगवती पार्वतीके शुद्ध स्नेहके निरूपणसे भरे पड़े हैं। वेदोंमें पार्वतीका अनेक रूपोंमें विशद वर्णन है। कालिकापुराण, देवीपुराण, देवीभागवत, महाभागवत आदि तथा मार्कण्डेय-पुराण, देवीमाहात्म्य आदिके वर्ण्य-विषय यही भगवती पार्वती हैं। इसी तरह स्कन्दपुराणका कौमारिकाखण्ड, माहेश्वरखण्ड, केदारखण्ड एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण तथा पद्मपुराणमें भी पार्वतीके अद्भुत स्नेहका विस्तारसे वर्णन है। शिवपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, लिङ्गपुराण एवं मत्स्यपुराणमें तो यह वर्णन पद-पद आता है। कालिदास भी इसीलिये कालिदास हैं। उन्होंने कुमारसम्भव आदिमें इनका रम्यतम चित्र खींचा है। श्रीवाल्मीकि-रामायण तथा महाभारत-अनुशासनमें भी स्कन्दजन्म विस्तारसे निर्दिष्ट है।

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा
गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा ।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं·········॥
ममात्रभावैकरसं मनःस्थितं
न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते ।
(कुमारसं० ५ । ७८, ८२)

'मीठ काह कवि कहहिं जाहि जो भावई ।'
× × × सिंधु स्वल्प सूप सो धरई ॥
महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम ।
जेहि कर मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ॥
(मानस १ । ८०)

यह कहकर सबको निरुत्तर कर दिया और अपनेको नारीश्वरके रूपमें परिणत कर डाला, जो अबतक तीयता एवं कनिष्ठिकाधिष्ठताको ही संकेत करता रहा ।

(६)

भगवान् आद्यशंकराचार्य तथा वाचस्पति आदिकी दृष्टिमें जातिस्मरताका स्वरूप

'जातिस्मरता'की विभिन्न परिभाषाओंपर अलग विचार ट किया गया है । यहाँ इस सम्बन्धमें अद्वैत न्तके अत्यन्त विरक्त आचार्योंकी सूक्ष्म समीक्षा प्रस्तुत । भगवान् शंकराचार्यने गीताभाष्य (७ । १७) । ब्रह्मसूत्रादिके भाष्यमें कई जगहोंपर अति उच्चभावयुक्त क्षा लिखी है । उन्होंने ब्रह्मसूत्र (३ । ३ । ३२) पर भाष्य करते हुए जो कुछ लिखा है, उसका भाव यह है—

"अपान्तरतमा नामके ऋषि विष्णु भगवान्के देशमें कलि एं द्वापरकी संधिमें कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ए । इसी प्रकार ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ राजा निमिके शापसे ह त्यागकर उर्वशीके पुत्ररूपमें पहेसे पुनः प्रकट हुए । नुष सनत्कुमार स्वयं ही शिवको वरदान देकर उनके व षडानन बने । इसी प्रकार उन-उन स्मृति-पुराणोंमें अनारदादिकी अनेक जन्मोंमें देहादि ग्रहणकी कथाएँ मली है । ये सभी वेद-वेदान्तोंमें निपुण थे । फिर इनका न्मान्तर होना ब्रह्मविद्याकी दुर्बलता सिद्ध करता है । सका उत्तर है कि वास्तवमें ये लोग अधिकारी पुरुष थे । ये भगवान्, सूर्य सदृशके अन्तमें उदयास्तसे मुक्त होकर नेका अनुभव करेंगे यह (छान्दोग्य ३ । ११ । १) श्रुतिमें निर्दिष्ट है । इसी प्रकार अपान्तरतमा आदिको भी समझना चाहिये । इनकी पूर्वस्मृति मुषित नहीं होती ।

"त एवैव' इत्यादि स्मृति-वचनोंसे ये साधारण जातिस्मरसे विशिष्ट भी हैं; क्योंकि ये स्वेच्छाशक्तिसे सुलभा नामकी योगिनीके समान देहग्रहण-प्रवेशादि करते हैं । शुद्ध जातिस्मरता एवं ज्ञानलब्धिके बाद कभी भी मुक्तिमें संदेह नहीं हो सकता—'स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः' (छा० ७ । २६ । २) । जातिस्मरता ज्ञानका ही एक अंश है और यदि यह शुद्ध है तो आगे बढ़कर ज्ञानाग्नि बनकर सभी कर्मोंका दाह कर देती है—'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ॥' (गीता ४ । ३७) वामदेवने भी ज्ञान होनेपर अनेक जन्मोंका स्मरण करते हुए मोक्ष पाया था—'तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूर्यश्च ।' (बृहदा० १ । ४ । १०) ।"

जातिस्मरता भी अनेक श्रेष्ठ सत्क्रियाओंका फल है । पर उसका भी परम सदुपयोग या लाभ यही है कि यह जीव अपने सभी अच्छे-बुरे लंबे कालतकके कर्मोंके अनुभव स्मरणस्वरूप—बुरे कार्यसे तो निरन्तर बचे और भले कार्य एवं आध्यात्मिकतामें विशेष तल्लीन रहे और मोक्षकी ओर सर्वात्मना अग्रसर होकर, उसे प्राप्त भी कर ले । इसीलिये पुराणोंके पाठादिसे भी शिवपुराणादिमें जातिस्मरता सुलभ होनेकी बात भी कही गयी है और तदनु ज्ञान तो सभीको हो जाता है । यह बात प्रत्येक विचारशीलको स्वीकार करनी पड़ेगी । जातिस्मर व्यक्तियोंमें बाल्यकालसे ही स्वाभाविक गाम्भीर्य एवं दार्शनिकता दृष्ट होती है । पूर्वाभ्यास भी रहता है । यह शंकराचार्य, विज्ञानयोगी आदि (गीता १७ । २)में कहते हैं । ये हल्के-फुल्के साहित्य, ड्रामा, सिनेमा, गंदे या रोचक तामसी कहानी आदि नहीं पढ़ते । भगवच्चरित्र-दर्शन, शास्त्रचर्चा, वेदान्तादि एवं वैराग्यपूर्वक ईश्वरभजन एवं सत्सङ्गमें ही प्रवृत्त रहते हैं । शास्त्रचर्चा ही गंभीरता, सात्त्विकता उनका स्वाभाविक गुण होता है।[1] [illegible]

---

1. इसका उदाहरण हरिवंश (१ । २१-२७) [illegible] ध्यानसे देखना चाहिये ।

2. [illegible]
([illegible])

में अनियमितता क्यों नहीं आती? स्वभावतः इनका नियामक कोई होना ही चाहिये। वही इस महाप्रकृतिका धारक, नियामक महत्तत्त्व है। जर्मन दार्शनिक काण्टने ठीक ही लिखा है—'अनन्त चमत्कारोंसे शोभित तारिका-खचित द्युलोक और मनुष्यके अन्तःकरणमें सदसद्विवेक-शक्तिके भाव मुझे हठात् विश्वास दिलाते हैं कि इस दृश्यमान जगत्से परे भी कोई अपूर्व शक्ति अवश्य है।'

ईश्वरके बाद आत्माकी सत्ता और नित्यताकी बात आती है। हमारे प्रमुख शास्त्रोंमें इसका बड़ा विस्तृत विवेचन मिलता है। सांख्यदर्शन कहता है—

संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात्कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥
तस्माच्च विपर्यासात् सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च॥
(सांख्यकारिका १८-१९)

यह प्रकृतिमें विकारसे जितने भी पदार्थ होते हैं, सब भोग्य हैं; अतः इनका भोक्ता भी होना ही चाहिये। हमारा शरीर भी प्रकृतिके विकार या संयोगसे उत्पन्न है, इसलिये इसका भी कोई चेतन उपभोक्ता हो। जड तो जडका उपभोग कर नहीं सकता। इसलिये चेतन जीवात्मा ही शरीरका भोक्ता है। प्रत्येक कर्मके लिये कर्ता, साधन तथा प्रेरककी आवश्यकता पड़ती है। साधन हो, किंतु कर्ता न हो तो कर्मकी सिद्धि भी नहीं हो सकती। हम यह भी देखते हैं कि मनुष्यका शरीर यन्त्रवत् नहीं चलता; इस प्रकार चलना चाहिये, इसपर नहीं, यह विवेक भी उसमें है। यह विवेक करनेवाला कौन है? मनको कौन प्रेरित करता है? जो चला गया है, उसकी याद आकर सुख-दुःखका अनुभव या भोग कौन करता है? कभी जिसका दुःख हुआ था, वह तो आज है नहीं; फिर भी स्मृति, उसके कारण अनुभूति होती है। क्यों होती है यह अनुभूति? इसको कौन भोगता है? वही, जो बीते कालमें भी था और आज भी है। वही है—आत्मा। उसके किये कर्म नष्ट नहीं होते; बादमें भी फल देते रहते हैं। सब कर्मोंका फल तुरंत ही नहीं मिल जाता; इस जन्ममें जो कर्म किये हैं, उनका भोग यहीं समाप्त नहीं हो जाता; इसीलिये और कर्म-फल भोगनेके लिये दूसरा जन्म होता है। न्यायदर्शन भी कहता है—'आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः।' (४।१।१०)

'आत्मा यदि शरीरके बाद भी रहता है, नित्य है, तो पूर्व-कर्मोंके भोगके लिये पुनर्जन्म मानना ही होगा।'

जब मनुष्य शरीर-त्याग करता है, तब इस जन्मकी विद्या, कर्म और पूर्वप्रज्ञा या वासना आत्माके साथ जाती है। इसी ज्ञान और कर्मके अनुसार नवीन जन्म होता है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः।
सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।
(योगदर्शन० २। १२-१३)

यदि कर्म अच्छे हैं तो उत्तम जाति, आयु और भोग प्राप्त होते हैं। समान साधन और परिस्थितिके बीच भी एक लड़का विद्याके क्षेत्रमें उच्च स्थान प्राप्त करता है, जब दूसरा सामान्य ही रह जाता है। यह विषमता क्यों है? यही है कि सब प्रकारकी विषमताओंका कारण पूर्वकर्म ही है। किसीमें बचपनसे ही वैराग्यकी ओर प्रवृत्ति देखी जाती है; जब दूसरे लोग खिर दिखने तक संसारके भोगोंसे चिपके रहते हैं। इसका कारण भी यही है कि पहले प्रकारके लोग पूर्वजन्ममें वैराग्योन्मुख रहे होंगे, जब दूसरे प्रकारके लोगोंमें भोगकी वासना मृत्युपर्यन्त रही होगी। दोनों अपनी पूर्वोपलब्धियोंके संस्कार इस जन्ममें भी ले आये।

मीमांसादर्शनमें भी पुनर्जन्मका समर्थन मिलता है। भेद ब्यौरेकी बातोंमें है। वे जीवात्माकी जगह 'आतिवाहिक' अर्थात् एक शरीरसे दूसरे शरीर तक ले जानेवाले देहाभिमानी देवताकी बात करते हैं। सांख्य आत्माको सर्वव्यापक मानते हुए भी एक दूसरे 'लिङ्ग' शरीरकी सत्ता मानता है। यह 'लिङ्ग' या सूक्ष्म शरीर ही एक देह छोड़ दूसरी ग्रहण करता है। न्याय तथा वैशेषिक भी आत्माको सर्वव्यापी मानते हैं और अणुरूप मनद्वारा एक शरीरसे दूसरा शरीर प्राप्त करनेकी बात कहते हैं। योग अस्मिता, इन्द्रियों और अहंकार तीनोंको व्यापक मानता है और अहंकारादिसे युक्त वासनाओंके कारण ही कर्मफलभोगकी बात करता है। तात्पर्य यह है कि शास्त्रकारोंमें विचारभेद हो, किंतु पुनर्जन्मको किसी-न-किसी रूपमें सब मानते हैं।

गीता समस्त भारतीय ज्ञानराशिका आकर है। उसमें हिंदूधर्म-सिद्धान्तकी समस्त विचारधाराओंका समन्वय हुआ है। उसमें पुनर्जन्मके विषयमें बारबार उल्लेख मिलता है। देखिये श्रीकृष्ण कहते हैं—

(Orpheus) के मतानुसार 'पापमय जीवन बितानेपर आत्मा घोर नरकमें जाता है और पुनर्जन्मके बाद उसे मनुष्य, पशु तथा कीटके शरीरोंमें रहना पड़ता है। पवित्र जीवन बितानेपर आत्मा जन्म तथा मृत्युके चक्रसे मुक्ति पा जाता है और स्वर्गको जाता है।' कैथारिस्ट (Catharist) दार्शनिक सभी प्रकारके वैवाहिक सम्बन्धों-से घृणा करते थे। इनके अनुसार 'दुष्ट आत्माको पशुओं और यहाँतक कि पत्थर-जैसे जड पदार्थकी योनि धारण करनी पड़ सकती है।' स्पिनोजा, हर्टली तथा प्रीस्टले (Spinoza, Hertly and Priestley) आत्माके अमरत्वपर विश्वास करते थे।' रूसो (Rousseau) की नित्य नरकपर आस्था नहीं थी और उसने लिखा कि 'वास्तविक जीवनका प्रारम्भ मृत्युके बाद होता है।' क्रिस्टन वुल्फे (Cristian Walfe) के कथनानुसार 'आत्मा सूक्ष्म होता है और हमारे शुभ कर्म ही हमारे वर्तमान जीवनके कारण हैं।' लेसिंग (Leceing) के विचार उपनिषदोंमें वर्णित विचारोंसे मिलते-जुलते हैं। उनका कथन है कि 'प्रत्येक आत्मा पूर्णताके लिये सचेष्ट है और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये इस धरतीपर उसे अनेक जन्म लेने पड़ते हैं।' कान्ट (Kant) के विचार भी इसी प्रकारके थे। उनके अनुसार 'प्रत्येक आत्मा मूलतः शाश्वत है।' फिक्टे (Fichte) के मतके अनुसार 'मृत्यु आत्माओंके जीवनप्रवाहमें एक विश्राम-स्थितिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ईश्वर सनातन है और एक है और वह प्रत्येक आत्मामें निवास करता है।' शेलिंग (Schelling) ने जीवन तथा मृत्युके मार्गपर आत्माकी यात्राकी एक कहानी लिखी है। वे पुनर्जन्ममें विश्वास करते थे और उनका विचार था कि 'उच्च आत्मा उच्च नक्षत्रों (तारों) में जन्म लेते हैं।' नोवालिस (Novalis) की दृष्टिमें 'जीवन है कामना और कर्म हैं उनके परिणाम। जीवन और मृत्यु एक ही वस्तु हैं और इनमेंसे होता हुआ (गुजरता हुआ) आत्मा अमरताको प्राप्त करता है।' स्लायर मेकर (Slier Maker) का भी यही दृष्टिकोण था और उसने कहा कि 'आत्मज्ञानकी प्राप्तिसे मनुष्य जन्म तथा मृत्युके चक्रसे छुटकारा पा जाता है और ईश्वरके साथ एकाकार हो जाता है।' हेगल (Hegal) के मतानुसार 'सभी आत्मा पूर्णताकी ओर बढ़ रहे हैं तथा जीवन और मृत्यु इनकी अवस्थाएँ हैं।' महान् दार्शनिक वैज्ञानिक लीबनिज (Leibnitz) ने लिखा—'प्रत्येक जीवित वस्तु अविनाशी है'········ उसके ह्रास तथा अन्तरावर्तन (invalutino) का नाम मृत्यु है और उसकी वृद्धि तथा विकासका नाम जीवन है। मरनेवाला प्राणी अपने शरीर-यन्त्रका केवल एक अंश ले लेता है और विकासकी उस तन्द्र-अवस्था अथवा उद्भवस्थितिमें लौट जाता है, जिसमें जन्मके पूर्व था। पशुओं तथा मनुष्योंका उनके वर्तमान जीवनसे पहले कोई अस्तित्व था और इस जीवनके बाद भी कोई अस्तित्व होगा, इस बातको स्वीकार करना ही होगा।' बर्कले, बोसानक्वेट, डाक्टर मैकटेगार्ट, प्राध्यापक हिस्लप और इंगे (Berkley, Bosanquet, Dr. Mactaggart, Prof. Hyslop and Inge) आत्माकी अमरतापर विश्वास करते थे।

विचारशील लेखक

पाश्चात्य दार्शनिक कवियोंमें एमर्सन, ड्राइडन, वर्ड्सवर्थ, मैथ्यू, आरनोल्ड, शेली तथा ब्राउनिंग (Emerson, Dryden, Wordsworth, Mathew, Arnold, Shelley and Browning) यह नहीं मानते थे कि 'मृत्युका नाम विनाश है।' ड्राइडनने लिखा—

'Death has no power the immortal soul to slay,
That, when its present body turns to slay,
Seeks a fresh home, and with unlessened might,
Inspires another frame with life and light.'

'इस अमर आत्माका वध करनेकी सामर्थ्य मृत्युमें नहीं है। जब मृत्यु आत्माके वर्तमान शरीरका वध करने चलती है तो आत्मा अपनी अक्षुण्ण शक्तिसे नया आवास खोज निकालता है और वो दूसरे शरीरको जीवन तथा प्रकाशसे भर देता है।'

राल्फ वाल्डो एमर्सन (Ralph Waldo Emerson) ने अपनी कवितामें कहा—

'If the red slayer thinks he slays,
Or if the slain thinks he is slain,
They know not well the subtle ways
I keep and pass and turn again.'

रहना पड़ता है, वह उनके लिये एक अज्ञात देशके समान होता है। आत्माका आवाहन करनेवाली ऐसी एक गोष्ठीमें डाक्टर मायर मरनेके बाद प्रकट हुए और अपनी स्थितिके विषयमें उन्होंने बताया कि उनके यह जाननेके पूर्व कि वे मर चुके हैं, उन्हें अपना रास्ता टटोलना पड़ा था। उन्हें यह लगा कि वे किसी अपरिचित नगरमें रास्ता भूल गये हैं। और यहाँतक कि जब उन्होंने ऐसे लोगोंको वहाँ देखा, जिनके मर जानेकी उन्हें जानकारी थी तो भी वे यही मानते रहे कि यह केवल उनकी छाया (Visions) मात्र है।

निस्संदेह उच्च आत्माओंको कोई कष्ट नहीं होता और पवित्र जीवन बितानेके कारण प्रकाशकी सहायतासे वे अपना मार्ग खोज सकते हैं। निम्न आत्मा सदैव इस जगत्में माध्यमोंकी सहायतासे नीचे आनेके लिये प्रस्तुत रहते हैं और वे स्थूल आकृतिके रूपमें प्रकट हो सकते हैं। कई बार वे अपनी हीन कामनाओंकी पूर्तिके लिये माध्यमोंका दुरुपयोग भी करते हैं। काल-अवधिका उनका ज्ञान हमारे ज्ञानसे भिन्न होता है। हमारे लिये जो ५०० वर्ष हैं, उनके लिये वे ५ सेकेण्ड हो सकते हैं। उनके शरीरोंका आकार सूक्ष्म रहता है और पाश्चात्य विद्वानोंने उसे 'एक्टोप्लाज्म' (Ectoplasm) की संज्ञा दी है। एक शरीरका भार साधारणतया १-२ या ३-४ औंस रहता है और पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने अत्यन्त सूक्ष्म तथा संवेदनशील फोटोग्राफीकी प्लेटोंकी सहायतासे उन शरीरोंके चित्र भी खींचे हैं।

पाश्चात्य देशोंमें मरणोत्तर जीवनके विषयमें अभी भी शोधकार्य चल रहे हैं और उनके इन कार्योंके परिणाम-स्वरूप नये तथ्य प्रकट हो रहे हैं। यह कहा जाता है कि भारतमें अंग्रेजीकालके एक प्रमुख प्रशासक वारेन हेस्टिंग्स (Warren Hastings) का आत्मा अभी भी कलकत्ता-स्थित अपने मकानमें आया करता है। ब्रिटिश संग्रहालयमें रात्रिके समय पहरा देनेवाले चौकीदार अभी भी संग्रहालयके कक्षोंमें कई आत्माओंको घूमते हुए देखते हैं। पेरिसके एक संग्रहालय-कक्षके चौकीदारोंका भी यही अनुभव है और उन्होंने बहुत संदेहजनक वातावरणमें घूमते हुए कई मृत राजाओं तथा रानियोंके आत्माओंको देखा है।

पाश्चात्य विज्ञान और मृत्यु

(लेखक—डॉ० श्रीभीखनलालजी आत्रेय, एम्० ए०, डी० लिट्०, अवकाशप्राप्त प्रोफेसर तथा अध्यक्ष दर्शन, मनोविज्ञान और भारतीय धर्म तथा दर्शन-विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

सन् १८८२ में इंगलैंडमें विद्वानोंकी एक समितिका निर्माण हुआ, जिसका नाम पड़ा 'ब्रिटिश सोसाइटी फार साइकिकल रिसर्च' अर्थात् 'ब्रिटेनकी आध्यात्मिक अनुसंधान करनेकी समिति'। इसमें केवल ब्रिटेनके ही विद्वानोंका सहयोग न था, बल्कि यूरोपके सभी प्रगतिशील देशोंके विद्वानों और वैज्ञानिकोंका सहयोग और सम्पर्क था। इस समितिने पिछले ८० वर्षोंमें वैज्ञानिक रीतिसे बहुत अनुसंधान किया और इस अनुसंधानके आधारपर दो विज्ञानोंको जन्म दिया, जिनके नाम हैं—'साइकिकल रिसर्च' (आध्यात्मिक अनुसंधान) और 'पैरासाइकोलोजी' (परा-मनोविद्या)। इन दोनों विद्याओंमें वैज्ञानिक रीतिसे मनुष्यका स्वरूप, उसकी अद्भुत शक्तियाँ, मृत्युका स्वरूप, मृत्युपश्चात् जीवन, परलोक, पुनर्जन्म आदि विषयोंकी गहन गवेषणा की गयी है। आज इन विषयोंपर अंग्रेजी और अन्य पाश्चात्य भाषाओंमें बहुत विशाल साहित्य छप चुका है और लिखा है, जिसमें प्राचीन भारतके बहुत-से सिद्धान्तोंका वैज्ञानिक प्रतिपादन और अनुमोदन होता है। इनमें अंग्रेजीमें प्रकाशित हुए कुछ ग्रन्थोंके नाम ये हैं—

(1) Carrington:—The Story of Psychic Science (आध्यात्मिक विज्ञानकी कहानी); Laboratory Investigation into Psychic Phenomena (प्रयोगशालाओंमें किये गये आध्यात्मिक अनुसंधान); The Psychic World (आध्यात्मिक जगत्)।

(2) Fodor, Naudor:—Encyclopaedia of Psychic Science (आध्यात्मिक विज्ञानका विश्वकोष)।

(3) Crookall:—Astral Projection (सूक्ष्मशरीरका बहिर्निष्कासन); Events on the thrashhold of Death (मृत्युके अनन्तर होनेवाली घटनाएँ); Supreme Adventure (महान् अनुभव-मृत्यु)।

(4) Stevenson:—Twenty cases suggesting Reincarnation (बीस ऐसी जीवित घटनाएँ, जो पुनर्जन्मकी ओर संकेत करती हैं)।

वैष्णवाचार्योंका परलोक और पुनर्जन्म-सिद्धान्त

(लेखक—श्रीरंगरामानुजाचार्य, व्याकरण-न्याय-वेदान्ताचार्य)

करुणावरुणालय अखिलकोटिब्रह्माण्डनायक परात्पर पूर्ण परब्रह्म परमेश्वर प्रलयके अन्तमें जगत्-निर्माणके लिये संकल्प करते हैं:—'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' (छा० ६ । २ । ३)। तदनन्तर पञ्चमहाभूतादिके निर्माणोत्तरकरण कलेवरशून्य जीवोंके कर्मानुसार विभिन्न योनियोंसे सम्बन्ध कराते हैं। नित्य, अजर, अमर, अविनाशी जीवात्माको अनादि अविद्यासे होनेवाले पुण्य-पाप कर्म-प्रवाहके फलोंको भोगनेके लिये चार प्रकारके शरीरोंमें प्रवेश करना पड़ता है। वे चार प्रकारके शरीर ये हैं—(१) ब्रह्मा आदि देवोंका शरीर, (२) मानव-शरीर, (३) पशु, मृग और पक्षी आदि तिर्यक् शरीर और (४) तृण, वृक्ष, लता, गुल्म आदिका स्थावर शरीर। इन चार प्रकारके शरीरोंमें जीवात्माका कर्मफलस्वरूप प्रवेश होता है। उन-उन देहोंमें प्रविष्ट होते ही जीवात्माको देहाभिमानरूपी अविद्या तथा अस्वकीय वस्तुओंमें स्वकीयत्वाभिमानरूपी अविद्या होने लगती है। उससे [illegible]

[illegible]

[illegible] पड़ते हैं। [illegible] गोस्वामी तुलसीदासजीने विनयपत्रिकामें लिखा है—

> बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
> तातें सहौं बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक॥

सांसारिक त्रिविध तापसे मुक्त होनेके लिये शास्त्रकारोंने कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रपत्ति आदि साधनोंका प्रतिपादन किया है। पर वे सब साधन भी भगवत्कृपा होनेपर ही सफल होते हैं। अतः भगवत्कृपासे ही जीव इस विषम संसारसे मुक्त होकर परम पद पा सकता है।

अतएव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा है—

> मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥
> (गीता १८ । ५६)

अर्थात् 'मेरे प्रसादसे शाश्वत और अव्यय पद प्राप्त करता है।' उस अव्यय परमपद परलोकके सम्बन्धमें वैष्णवाचार्योंके निम्नलिखित विचार हैं—

परब्रह्म परमेश्वरकी दो विभूतियाँ हैं—भोग-विभूति और त्रिपाद्-विभूति—

> पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।
> (यजुर्वेद ३१ । ३)

अर्थात् 'एक पादमें भोग-विभूति है, जिसे संसार कहते हैं और तीन पादमें त्रिपाद-विभूति है, जिसका वैकुण्ठ, दिव्यलोक, दिव्य धाम, परम पद, परम धाम, गोलोक, साकेत आदि अनेक नामोंसे शास्त्रोंमें वर्णन मिलता है। इन दोनों लोकोंके मध्यमें विरजा नदीकी दिव्य ज्ञानमयी धारा प्रवाहित होती है—

'वैकुण्ठसीम्नि विरजां स्यन्दमानां महानदीम्।'
'विरजानदीं तां मनसात्येति।'

ये दोनों श्रुतिवाक्य विरजानदीको प्रमाणित करते हैं। विरजाके इस पार संसार और उस पार भगवान्का दिव्यलोक परम पद है। उस परम पदका क्षय कभी नहीं होता। वह सूर्य, अग्नि आदि प्राकृत प्रकाश्यमान पदार्थोंसे विलक्षण अत्यन्त देदीप्यमान है, अत्यन्त उज्ज्वल है। महाभारतमें श्रीवैकुण्ठके वर्णनमें कहा गया है—

> अत्यर्कानलदीप्तं तत् स्थानं विष्णोर्महात्मनः।
> स्वयैव प्रभया राजन् दुष्प्रेक्ष्यं देवदानवैः॥

अर्थात् 'परमात्मा श्रीविष्णुभगवान्का वह स्थान सूर्य और अग्निसे बढ़कर देदीप्यमान है। उसकी प्रभा चारों तरफ अधिकाधिक फैलती रहती है। उस प्रभाकी चकाचौंधके कारण वह परम पद देव और दानवोंको भी दृष्टिगोचर नहीं होता है।' यह परम पद स्वयंप्रकाश है, उसे प्रकाशके लिये दूसरे किसीकी अपेक्षा नहीं है।' जिस प्रकार दीप, सूर्य, मणि, अग्नि आदि स्वयं प्रकाशमान हैं, वैसे ही परम पद भी स्वयं प्रकाशता है। पर उसकी दीप्ति अपार है। अनन्त, गरुड, विष्वक्सेन आदि नित्य सूरिगण सर्वदा उस परम पदका दर्शन कर आनन्दानुभव करते हैं। यह परम पद शुद्ध-सत्त्वमय है। यहाँ रजोगुण और तमोगुणका नामोनिशान भी नहीं है। स्वामी श्रीरामानुजाचार्यने वेदार्थ-संग्रहमें तथा 'तमेव शरणं गच्छ०' इस श्लोककी व्याख्या करते हुए गीतामें, श्री[illegible] [illegible] सिद्धान्तके नित्य विभूति-परिच्छेदमें [illegible] वर्णन करते हुए निम्नलिखित श्रुतियोंका उल्लेख किया है:—

'क्षयन्तमस्य रजसः पराके'।
(ऋ० १०७ । १०० । ५)

अर्थात् 'इस रजोगुणमय प्रकृतिके ऊपर श्रीभगवान् निवास करते हैं।'

'यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात्।'
(महानारायण १ । ५)

'श्रीभगवान्का एक नित्य नव अनन्तविश्व-व्यापक दिव्यरूप अर्थात् प्रकृतिके ऊपर है। वह चक्षु आदि इन्द्रियोंसे व्यक्त नहीं होता।'

'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।'
(नारायण उत्तरता० १ । ५)

अर्थात् 'परमाकाश परम पदमें विराजमान श्रीभगवान् हृदय-गुहामें अवस्थित हैं, ऐसा जो जानता है, वह परमात्माके साथ सर्वकल्याण-गुणोंका अनुभव करता है।'

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।'
(ऋ० सं० १ । २२ । २०)

'उस विष्णुके परमपदको ज्ञानीलोग सदा देखते हैं।'

'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्।' (ऋग्वेद सं०)

'जो इसका अध्यक्ष है, वह (त्रिपाद्विभूतिरूप) परम व्योममें रहता है।'

'अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते।'
(छा० उ० ३ । १३ । ७)

'इस द्युलोकसे परे जो परम-ज्योति प्रकाशित है।'

'सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।'
(कठ उ० ३ । ९)

'मुक्तात्मा मार्गके पार श्रीविष्णुभगवान्के पदपर पहुँच जाता है।' श्रीरामानुजस्वामीने वेदार्थ-संग्रहमें इतिहास-पुराणादिके द्वारा भी परम पदको प्रमाणित किया है—

तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः।
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः॥

यहाँपर 'तमसः परमः' शब्दसे श्रीभगवान्का वह दिव्यस्थान, जो प्रकृतिके ऊपर है, सूचित होता है।

श्रीरामचन्द्रजीकी वैकुण्ठयात्राके प्रसंगमें ये श्लोक मिलते हैं—

शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतविग्रह।
अन्वगच्छन्त काकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहः॥
विवेश वैष्णवं धाम सशरीरः सहानुगः।
(वाल्मीकि० ७ । १०१ ...

अर्थात् 'अनेकविध बाण और लम्बे ... जो पुरुषरूप लेकर श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे चले ... श्रीरामचन्द्रजीके शरीर एवं अनुयायियोंके साथ ... धाममें प्रवेश कर गये।'

विष्णुपुराणके निम्नलिखित श्लोकोंमें दिव्य स्थान और दिव्य सूरियोंका वर्णन मिलता है—

एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनश्च ये।
तेषां तु परमं स्थानं यत्तत्पश्यन्ति सूरयः।
(१ । ६ । [illegible])

अर्थात् 'जो योगिजन अनन्य होकर सदा ब्रह्म... करते हैं, वे उस परम स्थानमें पहुँच जाते हैं, जिसका ... नित्य सूरियोंको होता है।'

महाभारतमें नित्यविभूति और उसकी नित्यताके विषयमें वर्णन इस प्रकार मिलता है—

दिव्यं स्थानमजरं चाप्रमेयं दुर्विज्ञेयं चागमैर्गम्यमाद्य।
गच्छ प्रभो रक्ष चास्मान् प्रपन्नान् कल्पे कल्पे जायमानः स्वमूर्त्या॥

अर्थात् 'हे प्रभो! जराहीन, अप्रमेय, दुर्ज्ञेय एवं शास्त्र... से ही विदित होनेवाले उस आदि दिव्य स्थानमें पधारने... लिये पधारिये। आप प्रतिकल्प अपने रूपसे प्रकट... आश्रित हमलोगोंकी रक्षा कीजिये।'

कालं स पचते तत्र न कालस्तत्र वै प्रभुः।

अर्थात् 'श्रीभगवान् नित्य विभूतिमें कालको ... देते हैं। काल वहाँ कुछ भी नहीं कर सकता।' ... वचनोंसे दिव्य स्थान और उसकी नित्यता सिद्ध होती है।

श्रीस्वामी रामानुजाचार्यजीने गद्यत्रयमें वैकुण्ठ... लिखा है कि—

'चतुर्दशभुवनात्मकमण्डं दशगुणितोत्तरं च आवरण... समस्तं कार्यकारणजातमतीत्य परमव्योमशब्दाभिधेये ब्रह्मादीनां वाङ्मनसागोचरे श्रीमति वैकुण्ठे दिव्यलोके।'

अर्थात् 'चौ... हुए इस ब्रह्माण्ड... दूसरेसे दसगुना ... आवरणोंको ...

नेवाले, 'परमव्योम' शब्दसे कहे जानेवाले, चतुर्मुख ब्रह्मा आदि बड़े ज्ञानियोंकी भी वाणी एवं मनसातीत, अत्यन्त ज्वल्यमान श्रीवैकुण्ठ-नामक दिव्यलोकमें श्रीभगवान् न सूरियोंके साथ विराजमान रहते हैं।'

अतएव श्रीवैकुण्ठस्तवमें लिखा है कि—

कदा मायापारे विशदविरजापारसरसि
　　परे श्रीवैकुण्ठे परमरुचिरे हेमनगरे।
महारम्ये हर्म्ये वरमणिमये मण्डपवरे
　　समासीनं शेषे तव परिचरेयं पदयुगम्॥

'हे भगवन्! वह समय कब आयेगा, जब प्रकृतिमण्डलके परसे परे, अति विस्तृत विरजा नदीके पार, 'आरंगह्रद' नसे परे, चित्र-विचित्र मणियोंसे जटित परम मनोहर पुरी श्रीवैकुण्ठ महानगरमें, अत्यन्त रमणीय, सर्वोच्च न, श्रेष्ठ मणियोंसे प्रकाशित रत्नमणि-मण्डपमें सहस्रफण-युक्त शेषशय्यापर नित्य मुक्तोंसे सम्मिलित हो, सुखसे बैठे हुए आपके दोनों चरणकमलोंकी परिचर्या करूँगा।'

विष्वक्सेनसंहितामें लिखा है कि—

वैकुण्ठे तु परे लोके श्रीसहायो जनार्दनः।
उभाभ्यां भूमिनीलाभ्यां सेवितः परमेश्वरः॥
महायोगी जगद्धाता दिव्यसिंहासनोपरि।
दिव्यसंस्मरणोपेते शेषाहिफणमण्डिते॥
पञ्चोपनिषदाम्नातदिव्यमङ्गलविग्रहः।
अप्राकृततनुर्देवो नित्याकृतिधरो युवा॥
नित्यातीतो जगद्धाता नित्यैर्मुक्तैश्च सेवितः।

इस प्रकार ऊपर जीवके सम्बन्धमें जो लिखा गया है वह परम वैदिक सिद्धान्तानुयायी समस्त वैष्णवोंका मान्य है। उसीसे वैष्णवाचार्योंका पुनर्जन्म-सिद्धान्त सुस्पष्ट हो जाता है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी और पारलौकिक श्रेय

(लेखक—श्रीमाधवजी गोस्वामी)

प्राचीन भारतीय धर्मसाधनाके इतिहासमें जहाँ हमारे बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ताओंने, ऋषि-मुनियोंने, युगावतारोंने एवं महान् आचार्यप्रवरोंने परलोक एवं पुनर्जन्मके विषयमें विपुल प्रमाणमें अध्ययन तथा अनुशीलन किया है, वहाँ आजके कुछ विज्ञानवादी अनुसंधानकर्ता सज्जन भी इस निष्कर्षपर पहुँच सके हैं कि विश्वका एवं प्राणिमात्रके जीवनका सुचारु रूपसे सम्यक् संचालन करनेवाली कोई विराट् शक्ति अवश्य है, जो समग्र जगत्का सुनियन्त्रित रूपमें परिचालन करती है।

प्राचीन धर्मशास्त्रोंमें, वेदोंमें, श्रीमद्भागवत-गीतादि ग्रन्थोंमें हमारे पूर्वपुरुषोंने एक सर्वथा मौलिक एवं उदार दृष्टिकोणसे परलोक तथा पुनर्जन्मका समीचीन विचार करके, उसे जनसमाजके सम्मुख रखा है। यद्यपि आजके भौतिकवादी लोग भले ही ईश्वरकी सत्ता, महत्ता एवं परलोकपर विश्वास न रखकर केवल प्रत्यक्ष पदार्थोंको ही सत्य मानें; किंतु आधुनिक वर्तमानपत्रोंमें भी कई बार हम पुनर्जन्मके वृत्तान्त पढ़ते हैं, जिनसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्यका अपने पूर्व कर्मोंको भोगनेके लिये पुनर्जन्म होना—एक ध्रुव सत्य है और इस सनातन सत्यको जगत्का कोई भी प्राणी मेटनेके लिये सर्वथा शक्तिमान् नहीं है।

भारतके विभिन्न आचार्यों एवं विचारकोंकी भाँति सोलहवीं शतीमें अवतरित भगवान् श्रीवल्लभाचार्यचरणोंने भी अपनी विचारधारामें 'परलोक'पर विचार किया है, आपकी विचारधाराके अनुसार सृष्टिको पुष्टि, प्रवाह तथा मर्यादा—इन तीन विभागोंमें बाँटकर अपने-अपने अधिकारानुसार जीवोंकी विभिन्न गतियोंका भी निर्देश किया गया है। जिन लोगोंकी केवल प्रवाहमार्गमें ही अभिरुचि रहती है, वे बार-बार इस संसारमें जन्म लेकर, संसारके अनेक दुःखोंको भोगते हुए, अहंता-ममताके भँवरमें डूबकर अपनी क्षणिक तथा नाशवान् इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिये जन्म-मरणके चक्करमें पड़े रहते हैं। ऐसे जीवोंके लिये न कोई परलोक है, न कोई ध्येय है और न कोई जीवनका अन्तिम या चरम लक्ष्य ही है। और जो मर्यादामार्गीय जीव होते हैं, वे स्वर्गसुखकी लालसासे जीवनमें अनेक धर्मकार्य—दान, पुण्य, व्रत, तीर्थ, यज्ञादि करके, इनसे प्राप्त पुण्य करके स्वर्गसुखोंका उपभोग करते हैं; किंतु 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।'—इसके अनुसार 'पुनरपि जन्म' होनेपर पुनः मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं।'

और जो पुष्टि-सृष्टि है, वह भगवान्में निरोध प्राप्त करके सेवा, स्मरण-कीर्तनसे 'रसो वै सः'—इस श्रुतिप्रतिपादित स्वरूपमें दृढ़ आसक्तिद्वारा भगवल्लीलामें प्रविष्ट होती है। किंतु इसका यह मतलब नहीं है कि भगवद्भक्ति करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता। बड़े-बड़े महापुरुषोंको भी जगत्-हितार्थ अपने जीवनके अवशिष्ट कार्योंको पूरा करनेके लिये एवं लोक-कल्याणके लिये पुनर्जन्म ग्रहण करना ही पड़ता है।

जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यजीके अनन्य भक्त ८४ वैष्णवों-की वार्तामें भी इस बातका उल्लेख उपलब्ध होता है कि आपके सेवक स्थानेश्वरनिवासी रामानन्द पण्डितने कुछ वैष्णवोंका अपराध किया था, जिससे आचार्यचरण उनपर बहुत ही अप्रसन्न हुए और उसी समय आपने उनका त्याग किया। पीछेसे उनकी अवस्था अत्यन्त विकल हो गयी। उन्हें अपनी देह, कर्तव्य, भगवत्सेवा, आचार-विचार—किसी भी बातका अनुसंधान न रहा। एक दिन किसी हलवाईकी दूकानपर गरमागरम जलेबियाँ बनती देख उन्हें इच्छा हुई। थोड़ी जलेबी लेकर भगवान् श्रीनाथजीको उन्होंने भोग लगाया। पर देखिये, भक्तका यह आर्तनाद सुनकर कृपालु श्रीनाथजीने वहाँसे मीलों दूर जतीपुराके मन्दिरमें राजभोगके समय जलेबियाँ आरोगीं। जब महाप्रभुने भगवान्के मुखमें जलेबीका टूक देखा तो पूछा—'बाबा! आज हमने तो यह सामग्री सिद्ध नहीं की, तब आपने यह कहाँसे आरोगी?' तब प्रभु बोले—'तुम्हारे अनन्यसेवक रामानन्दने आरोगायी है।' महाप्रभु बोले, 'उसका तो त्याग किया है; इसलिये आपको उसके हाथका नहीं लेना चाहिये।' तब श्रीनाथजी मुस्कुराकर बोले—'तुमने भले ही उसका त्याग किया, किंतु मैंने तो श्रावण शुक्ला एकादशीकी मध्यरात्रिको श्रीमद्गोकुलमें यमुना तटपर साक्षात् प्रादुर्भूत होकर तुमसे कहा था कि तुम कलिप्रवाहमें बहते हुए जीवोंको शरणमें लोगे, उन्हें किसी भी कालमें मैं नहीं छोड़ूँगा। अतः मैंने अपना वचन निभाया है।' अहा! भगवान्की वाणीसे आचार्यचरण भावविभोर हो उठे और कुछ जन्मोंके अन्तरायके बाद रामानन्द पण्डितका अखण्डलीलामें प्रवेश हुआ।

इस प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभुकी दृष्टिसे भक्तिमार्गमें शरणागत होनेके पश्चात् भी जो अपराध करता है, उसे अवश्य ही उस अपराधका फल मिलता है और जब अनेक जन्मोंका अन्तराय दूर होकर उस जीवकी परिशुद्धि होती है, तभी भगवान्की परम आनन्दमयी उस अखण्ड लीलासृष्टिमें वह भगवान्के नित्यानन्दका अमन्द आस्वाद लेता हुआ अपने जीवनके सर्वोत्कृष्ट परम चरम लक्ष्यको प्राप्त करता है।

आज समग्र जगत्में जो सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा अनेक तरहकी उथल-पुथल एवं अशान्ति मची हुई है, उसका मुख्य कारण यही है कि लोगोंकी ईश्वर, धर्म, संस्कृति, मानवता, सदाचार, ब्राह्मण, आचार्य एवं संतोंमें श्रद्धा कम होती जा रही है और मानव परलोक तथा पुनर्जन्मसे अपना विश्वास खोने लगा है। अतः देशमें, विश्वमें सच्ची शान्ति तभी होगी, जब लोग ईश्वरकी महत्ताको मानते हुए अपने पारलौकिक उत्थानकी ओर आगे बढ़ेंगे। भगवान् सभी प्राणियोंको ऐसी ही सद्बुद्धि दें एवं सबमें विश्वबन्धुत्वकी भावनाएँ उत्पन्न हों, यही एकमात्र सच्चे हृदयकी कामना है। सर्वे भवन्तु सुखिनः।

सबमें नित्य भगवान्‌को देखूँ

जड-चेतन सबमें देखूँ नित बाहर-भीतर श्रीभगवान।
करूँ प्रणाम नित्य नत-मस्तक-मन, तजकर सारा अभिमान॥
करूँ सभीकी यथायोग्य शुचि सेवा उनमें प्रभु पहचान।
करूँ समर्पण उन्हें उन्हींकी वस्तु विनम्र सहित-सम्मान॥
राग-कामना-ममता सारी प्रभु-चरणोंमें पाकर स्थान—
नित्य करातीं रहें मधुरतम प्रेम-सुधा-रसका ही पान॥

सिख गुरु श्रीगुरु गोविन्दसिंहद्वारा प्रस्तुत दशम ग्रन्थमें पुनर्जन्म-सिद्धान्त

(लेखक—प्रोफेसर श्रीलालमोहर उपाध्याय, एम्० ए०, 'हिंदी' रिसर्चस्कॉलर, पी-एच्० डी०)

सभी भारतीय विचारकोंके सदृश गुरुगोविन्दसिंहजीने दशम-ग्रन्थमें जीवात्माके पुनर्जन्मपर अपना विश्वास प्रकट किया है। स्वयं वे अपना पुनर्जन्म ईश्वरकी प्रेरणासे दुष्टोंके संहारके निमित्त स्वीकार करते हैं। संत गुरुगोविन्दसिंहने इसका वर्णन विचित्र नाटकमें पूर्णरूपसे किया है, जिसपर स्वतन्त्र रूपसे एक वृहद् शोध-निबन्ध-पत्र तैयार किया जा सकता है। जीवात्मा अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये बार-बार जन्म लेता है। पुनर्जन्मके सिद्धान्तका मूल ही यही है। जो जैसे कर्म करते हैं, वैसी योनि भी प्राप्त करते हैं। मानव-योनिको पाकर उत्तम कर्मोंके द्वारा आवागमन-बन्धनोंसे मुक्त होना ही जीवका मुख्य धर्म कहा गया है। जीवके आवागमनसे छूटनेका एक ही मार्ग है—सांसारिक विषय-वासनाओंसे विरक्त होकर शुभ कर्मोंको निष्काम सम्पन्न करना। मुक्ति पाकर जीवकी क्या गति होती है, इसपर भारतीय विचारकोंमें अनेक सम्प्रदायगत विचार हैं। संत गुरुगोविन्दसिंहने जीवात्माका मूल-स्रोत परमात्माको ही माना है। सारी योनियाँ उसीसे उत्पन्न हुई हैं—

जैसे कच्छ मच्छ केते उन कउ करत भच्छ,
जैसे अच्छ वच्छ हुइ सपच्छ उड जाहिंगे।
जैसे नभ बीच अच्छ पच्छ कउ करैंगे भच्छ,
जैसे प्रतच्छ हुए बचाइ खाए जाहिंगे।
जलके बनाइ सबै काल ही चबाहिंगे।
तेज जिउँ अँधेरमें अंधेर जैसे तेज लीन,
ताही ते उपज सबै ताही मे समाहिंगे॥

(विचित्रनाटक पृष्ठ ४१)

इस आवागमनके चक्रसे छुटकारा पानेके लिये मनुष्यको शुभ कर्मोंमें रत होना चाहिये। आवागमनसे छुटकारा पानेके लिये बहुत लोगोंने वैराग्यको अत्यधिक महत्त्व तथा सांसारिक बन्धनोंको बिल्कुल मिथ्या मानकर उनके प्रति उदासीन होनेका संदेश दिया है। परंतु मध्यकालके संत भक्तोंने सांसारिक कर्मोंका भी महत्त्व समझा है। गृहस्थ रहते हुए भी ईश्वरकी भक्ति की जा सकती है, इसपर उनका अटल विश्वास था। वे लोग अधिकांशतः गृहस्थ ही थे। संत गुरुगोविन्दसिंह भी लौकिक जीवनके उत्तरदायित्वोंका निर्वाह आवश्यक मानते हैं। संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हुए भी जन्म-जन्मान्तरके हेर-फेरसे मुक्त हुआ जा सकता है, यही उनका दृढ विचार था। वे स्वयं कहते हैं—

छत्री के पूत हौं बामन को नहि कै तपु आवत है जु करौं।
अरु अउर जंजार जितो गृहको, तुहि त्याग कहा चित तामै धरौं॥
अब रीझ के देहु वहै हमको, जोउ हौं बिनती करजोर करौं।
जब आउकी अउध निदान बनै, अति ही रनमै तब जूझ मरौं॥

(अकालस्तुति छंद-संख्या ८८)

बाह्य आडम्बरों, कुव्यापारों तथा अन्य सभी प्रकारके दिखावोंकी उन्होंने कटु आलोचना की है। शुष्क ज्ञान, तीर्थ, व्रत, तप, उपवास, स्नान-मंजन ईश्वर-प्राप्तिमें कभी सहायक नहीं हो सकते। भगवान्‌की निश्छल भक्ति ही इस जन्म-मरणके भयको हटा सकती है—

तीरथ ध्यान दया दम दान, सुसंजम नेम अनेक बिसेखै।
बेद पुरान कतेब कुरान जमीन जमान सबान के पेखै॥
पउन अहार जती जत धार सबै सुबिचार हजारक देखै।
श्रीभगवान भजे बिनु भूपति, एक रती बिनु एक न लेखै॥

(कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्रीदशम गुरुग्रन्थ छन्द-संख्या २४।८९)

नीरस शुष्क मन्त्र-पाठमात्र मनुष्यके लिये [illegible] नहीं—

[illegible]

([illegible] २४)

इतना ही नहीं बिना [illegible] दुर्लभ है—

[illegible]

बिना सरन ताकी नहीं और ओट ।
लिये जन्म केते पड़ भजे कोट ॥

(विचित्रनाटक, छन्द-संख्या ६२, पृष्ठ १०)

इस तरह हम देखते हैं कि संत गुरुगोविन्दसिंहने दशम ग्रन्थमें परलोक एवं पुनर्जन्ममें पूर्णतः विश्वास प्रकट किया है ।

रामस्नेही-मतमें जीवात्माकी स्थिति एवं गति

(लेखक—श्रीश्रीपुरुषोत्तमदासजी शास्त्री महाराज, श्रीखेड़ापा रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य)

गुरु कूँ वंदन कीजिये, मुख सूँ कहिये राम ।
रामदास सो शिष जन, पावे आदू धाम ॥

जीवात्माकी स्थिति एवं उत्पत्ति

इस नश्वर संसारमें आकर प्राणी अपने आद्य-धाम अर्थात् जहाँसे वह उत्पन्न हुआ है, उस स्थानको भुला देता है । इसी कारण वह आध्यात्मिक पथसे विमुख होकर अधिकतर भौतिकवादकी ओर ही अग्रसर होता है । ऐसे समयमें प्राणीको यह ज्ञान करानेके लिये कि 'तू कहाँसे आया है ? किधर जा रहा है ? और तुझे किस दिशामें जाना चाहिये ?'—

कौन दिसा सूं आविया, कहो कौन दिस जाय ।
रामदास अब भूलग्या, इहाँ पड़े हैं आय ॥

इस भूलकी चिन्ता किसे होगी ? जो इस जीवात्माका स्वामी (पिता) है, उसे ही तो इसकी चिन्ता होगी—

बालक करत कुसंगत लागया, चेत अचेते नाहीं ।
माता पिता करे रुखवाली, निजर बालका माहीं ॥

पर हम सभी जीवोंको परमात्माका ही बालक कैसे मान लें ? इसलिये कि महात्माओंने लिखा है—

सभी जीव का एक पीव है, जुदा जुदा मत जाणो ।
आपा उलट आप में देखो, आपा मद्य मिटाणो ॥
चारूँ वरण आतमा माँई, एक बाप का जाया ।
रामदास एको घर आव्या, एकण संत समाया ॥

इससे स्पष्ट है कि यह जीव परमेश्वरका ही अंश है । अतः इसका आदू (आदि) स्थान भी परमात्माका ही आदिस्थान अर्थात् वैकुण्ठधाम ही है । कुमार्गपर जाते हुए प्राणियोंको देखकर परमपिताने उन्हें सही पथ-प्रदर्शन करानेके लिये अपने ही निज-अवतारस्वरूप संत-महात्माओं-को पृथ्वीपर जन्म लेनेकी आज्ञा दी—

संत रूप हुय साहिब आया, देह धार अरु संत कहाया ॥
तुम जावो संसार में, जनम धरो धर जाय ।
अनत हंस कूँ संग ले, आण मिलो मो माँय ॥

जब भगवान्ने आज्ञा दी तो आज्ञाको शिरोधार्य करना सेवकका प्रथम कर्तव्य है ही—

परम धरम यह नाथ हमारा ।
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा ॥

इस प्रकार राम महाराजकी आज्ञाको अङ्गीकार कर श्रीरामदासजी महाराजने इस पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया तथा सभी प्राणियोंको रामभजनका उपदेश दिया—

राम भजो रे प्राणिया, मूंडे मति भाई ।
सुमिरण बिन छूटो नहीं, जम द्वार जाई ॥

जो प्राणी आपके ऐसे सदुपदेशको हृदयङ्गम कर राम मन्त्रका जाप करते हैं, वे आगे लिखे जानेवाले मार्ग गमनकर प्रभुके चरणोंमें निवास करते हैं तथा भगवान् भी भक्तके इच्छानुसार सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य एवं सायुज्य—इन चारों मुक्तियोंमेंसे उसे कोई मुक्ति प्रदान कर देते हैं—

चारों मुक्ति विष्णु के संगा, साधु निरख उरप अनभंग ॥
बैठ सिंघासन प्रभु, गोदी मे है दास ।
इच्छा सोई लीजिये, स्वयं प्रकाश प्रकाश ॥

महात्माओंका गमन-मार्ग

मुक्ति अर्थात् मोक्षका वही अधिकारी है, जो कि गुरु महाराजद्वारा निर्दिष्ट सन्मार्गपर चलता है और उनके निर्देशानुसार राममन्त्रका जाप करता है । महात्माओंने मन्त्र जपनेके लिये ऊँच-नीचके भेद भावको सर्वथा वर्जित किया है । उनके विचारानुसार भजनके लिये घरका त्याग करना भी जरूरी नहीं है । जरूरी है तो केवल भगवान्के स्मरण का है—

इमि भाँति कारण नहिं कोई। सब ही का हरि पक्षो होई॥
छोटे बड़े नीच कुण ऊँचा। राम कहत सबही नर सूचा॥

पाव टोप कारण नहिं, घर वन कारण नाहि।
जन्म सिंवरे राम कूँ, मिले राम पद माँहि॥

इस प्रकार भजन-साधन करनेवाले महात्माओंके देह-त्यागके समय उनके गमन-मार्गका वर्णन श्रीदयालजी महाराजने 'परची' नामक ग्रन्थमें किया है। प्रस्तुत वर्णन पूज्य-पाद प्रातःस्मरणीय श्रीरामदासजी महाराजके परलोक-गमनके समनन्तर लिखा गया है। यह वर्णन अर्चिरादि ग्रन्थोंके आधारपर लिखा गया है; क्योंकि श्रीदयालजी महाराजका मत है कि भगवान् और उनके सभी भक्तोंके गमनमार्गमें कुछ भी अन्तर नहीं होता—

यह अर्चिरादि ग्रन्थ के माहीं, भगवद्भक्त दूसरा नाहीं॥

गमनमार्ग (सूर्यमार्ग) वर्णनमेंसे उपयुक्त स्थल ही यहाँपर लिखे जा रहे हैं—

मधुबन मुग चढ़ताँ दिवस, अद्भुत भो आख्यान।
षोडस हिलमिल पारसद, लाये दिव्य विमान॥

रम राम धुनि ररर होई, दशवें द्वार समापति सोई।
अद्य दिव्य तनु नमो जनेश्वर, यो तनु तजि भज मिल परमेश्वर॥
दिव्य शिरोमणि यान विराजे, तेज पुंज दर्शण दर्साजे।
[illegible] तन मह सूर सु पंथा, उत्सव भात्र बधावे संता॥
[illegible] सदिन वरुण पग वंदन, रामदास धिन दर्श निकंदन।
[illegible] हि लोकपाल मिल जेता, साथ मिलाप हर्ष मन लेता॥
सुर विमान से नभ सब छाया, वासव आदि बधावण आया।
[illegible] कहो दर्शण यहाँ दीजे, अपनो जाणि इच्छा में लीजे॥
[illegible] मे शंकर पुनि आइक, ऊमा परिकर संग मिलाइक।
[illegible] मन तन के सारा, भाय बधाय पंथ सुन्य पग॥
[illegible] मंडल आइक, दरस परस मिल भाव बधाइक।
[illegible] करहिं, मंगल गुरु जीव सुर तरिहं॥
[illegible] मिल सुर लीन्हा, रामदास मिन कारज कीन्हा।
[illegible] ब्रह्मलोक पधारे, ब्रह्मादिक गननादिक सारे॥
[illegible] और जन ही, कह्यो विरंची आनन्द तब ही।
[illegible] ध्रुवलोक पधारे, सनकादिक ता संग सिधारे॥
[illegible] पार पर पाता, आगे उनको पंथ अगाता।
[illegible] पे पर पाता, अगम छेदा जन आगम॥

इस प्रकार सूर्यमार्गसे गमन करके श्रीरामदासजी महाराज अपने आदू-धाममें परम पिताकी सेवामें उपस्थित हो गये।

अनत हंस कूँ संग ले, आण निवाए शीश।
तुम्हें कह्या सो मैं किया, सुणो पिता जगदीश॥
(बालबोध, रामदासजी म०)

पापी पुरुषोंका गमन-मार्ग

सूर्यमार्ग जितना आनन्दप्रद है, उससे भी विशेष कष्ट-प्रद यह निरय-पथ है। पापीजनोंकी अधोगतिके मार्गका वर्णन श्रीदयालजी महाराजने 'ग्रन्थ चित्रामण'में बहुत विस्तारसे किया है। उनमेंसे उदाहरणके रूपमें कुछ पंक्तियाँ नीचे लिखी जा रही हैं—

क्षम सब पूरा भया आज, कोप्यो तबे जमपुर राज।
लावो दुष्ट पापी बन्द, पेसे कह्यो काल निकन्द॥
जीव ने पकड़ मोकम काल, लेकर चाल्या तब तत्काल।
बंधत छेदत मार मचाय, बिलखत जीव हा हा खाय॥
कठन सु पंथ अंत कलर, महा अंधार तहाँ नहिं सूर।
छयासी सँस जोजन वाट, तहाँ नहीं कोइ जिसको घाट॥
जोजन दश सँस डसंन, चालत जीव दुःख अर्तन।
जोजन एक बालू पंथ, जोजन अष्ट आग पुर्वंत॥
पचे सँस जोजन पंथ, महा अंधार जीवन अंत।
जोजन अष्ट आद हजार, तहाँ दुःख सहन मार्के मार॥
वैतरणी स ता पंथ माँय, तामें जीव पहुँचे जाय।
जोजन सत ता परमाण, भारत बके दूत निदान॥
जमपुर सँस जोजन फेर, भयानक दूत तहाँ जिर घेर।
दिक्षण द्वार दुष्टी जेव, जाय्यो नहिं मार्ने सेव॥
इत्यादि

पुनर्जन्म

पुनर्जन्मका अर्थ है—दुबारा जीवन प्राप्त करना। इस शब्दकी रचनासे एवं इसकी व्युत्पत्तिसे ही यह स्पष्ट है। ज्ञात है कि जीवात्मा पुनः अर्थात् दुबारा या और भी जन्म लेता है। जीवात्माके पुनर्जन्म लेनेमें [illegible] मुख्य निम्न कारण हैं—

(१) भगवान्की आज्ञासे, (२) पुण्य पाप [illegible] कारोबार, (३) पुण्यका फल भोगनेके लिये, (४) पापका फल भोगनेके लिये, (५) बदला लेनेके लिये, (६) [illegible]

चुकाने (प्रत्युपकार करने) के लिये, (७) अकाल मृत्यु हो जानेसे, या (८) अपूर्ण साधनको पूर्ण करनेके लिये।

इनका विवेचन निम्न प्रकार है—

(१) भगवान्‌की आज्ञासे—ऊपर लिखे हुए सूर्य-मार्गसे गमन करनेवाले महात्माओंको जरूरत पड़नेपर भगवान् उन्हें पृथ्वीपर जन्म लेनेकी आज्ञा फरमाते हैं, तब ही वे महात्मा पृथ्वीपर अवतरित होते हैं।

> तुम जाओ संसार में, जन्म धरो धर जाय।
> अनत हंस फूँ संग ले, आण मिलो मो माँय॥
>
> (बालबोध, राम०)

इस आज्ञाका पालन कर श्रीरामदासजी महाराजने अवतार ग्रहण किया।

(२) पुण्य क्षय हो जानेपर—संसारमें पुण्यकर्म करनेवाला व्यक्ति जब अपने कर्मसे स्वर्ग-सुख भोगनेका अधिकारी बन जाता है, तब उसे देवता बनाकर स्वर्गमें भेज दिया जाता है। पर जब उसके वे पुण्य कर्म पूर्ण हो जाते हैं, तब उसे पुनः मृत्युलोक या नरकमें जाना पड़ता है—

> धर्मी जीव धर्मके मारग, सुरग लोक ले देवे।
> बैठ विवाण देवता होर्इ, सुरग तणा सुख लेवे॥
> सुख भुगताय फेर ले पुण, पकड़ जन्म ले आवे।
> साहिब बिना परत नहिं छूटे जीव जूण बहु पावे॥
>
> (अंग अनुभवराम)

(३) पुण्यका फल भोगनेके लिये—किसी समय ऐसा कोई विशेष पुण्य हो जाता है, जिसे भोगनेके लिये मृत्यु-लोकमें ही पुनः जन्म लेना पड़ता है—

> खीर सुखाई साध कूँ, देखो पुन्य प्रताप।
> शालभद्र दूजे जनम, भूपत नमी आप॥
>
> (मानविचार, अंग पारखाल)

यह प्रसङ्ग बिना पूरे दृष्टान्तके समझमें नहीं आ सकता; अतः संक्षेपसे यह दृष्टान्त निम्न प्रकार है —

एक गरीब माता पुत्र थे। बालकने एक दिन कहीं पर खीर देख ली। माताने खीर खिलानेका पूरा हठ किया। माताने दूध, चावल, शक्कर आदि वस्तुएँ माँगकर खीर बनायी। माता खीर बालकको देकर पानी लाने चली गयी। तत्काल एक भूखे महात्मा भिक्षाके लिये वहाँ आ गये। बालकने आधी खीर देनेके विचारसे अपनी थाली उड़ेल दी, जिससे सारी खीर एक साथ खप्परमें चली गयी। महात्मा चले गये। माताके द्वारा खीरकी बात पूछे जानेपर बालकने कहा—'खीर बढ़िया थी, मैंने खा ली'। कालान्तरमें माता-पुत्र दोनोंकी मृत्यु हो गयी। इस पुण्यके प्रभावसे वही बालक दूसरे जन्ममें श्यालभद्र नामक नगरसेठ बना। माता भी वहाँ फिर माता बनी। वहाँ इन्हें अपार धन प्राप्त हुआ। एक समय इस नगरमें बहुमूल्य साड़ियोंका एक व्यापारी साड़ियाँ लेकर राजाके पास गया। राजाने कीमत प्रति साड़ी सवा लाख रुपया सुनकर लेनेसे इन्कार कर दिया। निराश होकर लौटते समय उस सेठकी माताद्वारा वह व्यापारी बुलाया गया और उसकी सब साड़ियाँ खरीद ली गयीं। सेठकी स्त्रीका यह नियम था कि जिस वस्त्रको एक बार पहन लिया, उसे दुबारा नहीं पहनती। दूसरे दिन वही साड़ी पहनकर मेहतरानी राजाके यहाँ काम करने गयी। राजाने आश्चर्यचकित हो उस साड़ीके मिलनेका कारण पूछा। ज्ञात हो जानेपर राजाने सेठको बुलाने हेतु सेवक भेजा। माताने सेठसे कहा 'राजाने बुलाया है।' 'राजा क्या है?' 'वे हमारे स्वामी हैं।' 'तब तो मैं वहाँ कोई स्वामी नहीं है, वहाँ रहूँगा'। सेठकी सभी बातें सुनकर राजा स्वयं सेठके यहाँ पधारे। अँगूठी खो जानेपर सेठने अपने यहाँसे अनेक अमूल्य अँगूठियाँ राजाको दे दीं। राजा लज्जित होकर चला गया। दूसरे दिन श्यालभद्र [illegible] अपने बहनोईके साथ जंगलमें तपस्या करने चला गया। इस तरह पूर्व पुण्यके प्रभावसे अपार धन भी मिला और अन्तमें भजन करनेका अवसर भी।

(४) पापका फल भोगनेके हेतु—पापोंका दण्ड भोगनेके लिये प्राणी नरकमें जाता है और बादमें चौरासी लाख योनियोंके चक्करमें पड़ता है—

> नरक कुंड गुजरान कर, पुरा किया गुनाह।
> चौरासीमें गमदरा, बदला दिया बनाय॥
> दरगम जग का जीव भटका, नव द्वारा के माहि [illegible]॥
>
> ([illegible])

इस चक्करमें कौन पड़ता है?

> हरिका नाम न सुमरियो, सत्य धरंता पद।
> जोनि जोनि फिर भटकते, सुख दुख भुगते देह॥

(५) बदला लेनेके लिये—यह प्रसङ्ग श्रीरामदासजी महाराजके ग्रन्थ 'श्रीहरदेव रावारी कथा'में इस प्रकार लिखा है—

एक राजकुमारकी समीपस्थ तपस्वीसे गाढ़ मित्रता हो गयी। महात्मा काशी जानेको रवाना हो गये तो राजकुमार भी हठ करके साथ चला। तब राजाने सवा सेर सोना एक लकड़ीमें भरकर साथ में दे दिया। एक दिन रास्तेमें ठहरनेके समय एक सेठके यहाँ विश्राम किया। रात्रिमें उस सेठने लकड़ीमेंसे सोना निकालकर उसके स्थानपर कंकड़ भर दिये। राजकुमारने काशी पहुँचकर भोजन करनेके लिये ब्राह्मणों तथा संतोंको निमन्त्रण दिया, पर लकड़ी देखकर बड़ा चिन्तित हुआ और कहा—

> वाके गृहे अवतरूँ जाई, बहुत भाँति भुगताऊँ ताई।
> एक बदला बारस करण अनेका, दाम दाम भुगताऊँ एका॥

ऐसा सोचकर काशीमें करवत लेकर उस कुमारने उसी सेठके यहाँ पुत्र-रूपमें जन्म लिया, जिसके यहाँ रात्रिमें ठहरे थे। बड़ा हो जानेपर पुत्रका विवाह किया गया। एक अलग सुन्दर महल बनवाकर पति-पत्नी ऊपर चढ़ने लगे। दोनों ऊपर चढ़कर एक साथ नीचे गिरकर मृत्युको प्राप्त हुए। सेठ इससे बड़ा दुखी हुआ। तब उन्हीं महात्माने (जो कि कुँवरके साथ थे) कहा—

> मेरे साथ कुँवर जो होई। तेरे गृहे अवतर्यो सोई॥
> तैं उनको सब धन छिनायो। अपनो बदलो लेवण आयो॥

इस प्रकार राजकुमारने अपना पूरा बदला ले लिया।

(६) बदला चुकानेके लिये—उपर्युक्त ग्रन्थमें निम्नलिखित प्रसङ्ग भी हैं—

> दूजों कियो द्विज अवतारा। जनमत धनको कियो बधारा॥
> अपनो बदलो श्वान चुकायो। सुख दुख अपनो करतब पायो॥

एक समय दो कुत्ते गङ्गास्नानार्थ साथ-साथ रवाना हुए। एक दिन किसी नगरमें भूखसे व्याकुल होकर दोनों अलग-अलग भोजनकी तलाशमें गये। पहला श्वान एक गरीब ब्राह्मणके घरमें गया और वहाँ रक्खी हुई थालीमेंसे रोटी खाने लगा। ब्राह्मणने देखकर कुछ भी नहीं किया। दूसरा श्वान एक सेठके घरमें घुसा, जहाँपर बिना कुछ नुकसान किये ही लाठीसे उसे अधमरा कर दिया गया। मिलनेपर पहले श्वानने इसका कारण पूछा, तब दूसरे श्वानने कहा—

> मित्र [illegible] सब भुगताई। मैं तो करवत लेसूँ भाई॥
> [illegible] सेठ [illegible]। [illegible]॥

यह सुनकर पहलेने भी कहा—

> ब्राह्मण सत्त कहा कूँ तोकूँ। दीन्हो नहीं कछु दुःख मोकूँ॥
> मैं भी करवत लेसूँ भाई। ब्राह्मण गृहे अवतरूँ जाई॥
> पुत्र होय कर सुख भुगताऊँ। फल दायक ऐसे मन चाऊँ॥

ऐसा निश्चय करके दोनोंने काशीमें करवत ली। दूसरा श्वान तो सेठके यहाँ उत्पन्न हुआ और जन्मते ही सदा रोगी बनकर नाना प्रकारसे खर्च कराया। बड़ा होनेपर वह कभी केश खींचता, कभी-कभी पत्थर मारता। अन्तमें उसने एक दिन लाठीसे सेठका मस्तक फोड़ दिया। इस प्रकार उसने अपना बदला लिया। पहला श्वान उसी ब्राह्मणके यहाँ पैदा हुआ। ब्राह्मणको बड़ा लाभ होने लगा। कई लोग जिनपर ऋण था, पर दे नहीं रहे थे, उन्होंने स्वतः ही रुपये ला दिये। कई नये यजमान हुए। पुत्रने भी पिताकी आज्ञाका पालन कर तथा धन लाकर उसे अनेक प्रकारसे सुख दिया। इस तरह इस श्वानने भी अपने प्रति किये हुए उपकारका बदला दूसरा जन्म लेकर चुकाया।

(७) अकालमृत्युसे ही प्रायः प्रेत (भूत) की योनि हुआ करती है। इस योनिमें गये हुए प्राणी प्रायः दूसरे लोगोंको कष्ट दिया करते हैं—

> परधन मुवो पुत्र इक ताको। प्रेत योनिमें दुखी भयो सो॥
> घाऊ बाऊ पे माथा नाई। मायों प्रेत प्रेर गुरु भाई॥

प्रेत उद्धारका उल्लेख भी निम्न प्रकार है—

> एक मास तेरह दिवस, रहे देवल [illegible]।
> भूत इक्यासी तारिया, सतगुरु [illegible]॥

इनसे प्राप्त होनेवाली बाधाओंको भी रामस्नेही प्रभावसे दूर किया जा सकता है—

> [illegible] जन औलिया [illegible], भैरवा भूत [illegible]।
> रामप्रताप तें [illegible] नहीं, [illegible]॥

(८) अपूर्ण साधनको पूर्ण करनेके लिये—पहले जन्ममें [illegible] महाराज ([illegible]) का साधन पूर्ण नहीं हुआ था। अतः दूसरे जन्ममें [illegible] पूर्ण किया। इसका उल्लेख [illegible] महाराजने [illegible] किया है।

इस प्रकार [illegible] पुनर्जन्म अवश्य होता है। [illegible]

करनेका उपदेश रामस्नेही-सम्प्रदायद्वारा दिया जाता है। इसके लिये इस मनुष्य-शरीरमें ही प्रयत्न किया जाना चाहिये; क्योंकि अन्य किसी भी योनिमें प्राणी अपना उद्धार नहीं कर सकता। जब पुनर्जन्म मिट जाता है तो जीवको परमानन्दकी प्राप्ति होती है। पुनर्जन्म मिट जानेपर जीवात्मा जिस स्थानमें जाता है, वह कैसा है?—

जनम मरण व्यापै नहीं, दुख सुख संता नाँहि।
रामदास जहाँ मिल रह्या, राम पुरुष के माँहि॥

पुनर्जन्म और परलोक

(लेखक—रामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य प्रधानपीठाधीश्वर सिंथल श्रीश्रीभगवद्दासजी शास्त्री महाराज)

पुनर्जन्मका अर्थ है—एक शरीरका त्याग करके दुबारा जन्म लेना। इसके अनेक कारण होनेपर भी, प्रधानतः अपने शुभाशुभ कर्मोंकी वासना ही मुख्य कारण है।

आशीर्वाद, शाप, भगवदाज्ञा आदिसे भी जन्म धारण किये जाते हैं। संतोंके द्वारा प्रदत्त आशीर्वादसे सुन्दरदासजीका जन्म; शापसे पुराणोंमें जय-विजय, गज ग्राह; भगवदाज्ञासे इतिहासप्रसिद्ध कारक संत—जिनका संत-मतानुसार संतोंकी वाणीमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

अमर लोक सूँ अहदि आया, हंसा कारण आप पठाया।
अमर लोक सूँ धाम सिंहासन माँहि बिराजै॥
तेज पुंज परकास, बजै अनहदके बाजै।
हरि रामा हरिहि अनन्ता अंतर कला कबीरै।
…………………………………………

शुभाशुभ कर्मवासनासे तो सम्पूर्ण चराचर जीव जन्म लेते ही हैं। श्रीदयालजी महाराजने इस प्रकार वर्णन किया है—

दोष पदारथ त्याग मन, शुद्ध मन त्यागी होय।
राखा जब लग बासना, जन्म धरत है सोय॥
जब लग रोजन जोग जिन, शील धारणा शून।
मना मन की बासना, अंत धरावै जून॥
जब लग बासना ना भया, जब लग जन्म अनेक।
रामा सूक्षम जन्म का, कहै संत बिवेक॥

यहाँपर 'वासनाओंके कारण' ही संतोंने अपनी वाणीमें पुनर्जन्म होनेका दिग्दर्शन कराया है। संयम, ज्ञान तथा भाव-भजनकी गति एक होनेपर एवं [illegible] सिद्धि होनेपर पूर्वजन्मका ज्ञान होता है।

वेद-पुराण-इतिहास तो परलोक और पुनर्जन्मकी घटनाओंसे भरे हुए हैं। इसी प्रकार संतमतमें भी संतोंके द्वारा अपने एवं दूसरोंके पुनर्जन्म तथा पूर्वजन्मकी प्रत्यक्ष घटनाएँ तथा बातें बतायी गयी हैं।

नागर ब्राह्मण रामकिशनजी जूनागढ़में निवास करते थे। बड़ोदा, अहमदाबादमें भी इनकी दुकानें थीं। ये दण्डी स्वामीके शिष्य थे। एक दिन रामकिशनजीने सत्संगमें सभीको एक पंक्तिमें बैठे हुए देखकर दण्डी स्वामीजीसे निवेदन किया कि 'महाराज! उपदेश अवश्य दें; किंतु [illegible] दूर रखावें तो अच्छा।' दण्डी स्वामीने रामकिशनजीके मनकी बातको जानते हुए कहा—'तुमने भक्तिका तत्त्व नहीं पहचाना है। अतः यह त्रुटि हो गयी है; इसलिये तुम्हें जन्मधारण करना पड़ेगा—भगवान् जाति-अभिमान नहीं रखते, वे गर्वापहारी हैं।' तब तो रामकिशनजी रोते हुए दण्डी स्वामीके चरणोंमें पड़कर प्रार्थना करने लगे—'महाराज! मेरा जन्म जहाँ-कहीं भी हो, मैं सदा आपके साथ रहूँ। इसलिये आपके वंशमें ही मेरा जन्म हो।'

इस प्रार्थनापर दण्डी स्वामीको भी भक्तका एवं जन-हितका ध्यान करके जन्म धारण करनेकी स्वीकृति देनी पड़ी। समयानुसार दोनोंने ही शरीर त्यागा। अनन्तर जोधपुर राज्यान्तर्गत बीकोकोरमें दण्डी स्वामीने शरीर धारण किया, जिनका नाम श्रीरामदासजी हुआ। इन्हीं श्रीरामदासजीके यहाँ उन्हीं रामकिशनजीने वि० सं० १८१५ मार्गशीर्ष शुक्ला ११ के दिन अवतार लिया। यहाँपर इनका नाम श्रीदयालजी रक्खा गया। बड़े होनेपर जब आप अहमदाबाद पधारे, तब वहाँपर रामकिशनजीके पद सुनाने तो आगे उनकी अगली पंक्ति पढ़ते ही पहली आरम्भ कर देते तथा पूर्वजन्मका संचित धन एवं उसका परिवार खोजकर बता दिया। श्रीअर्जुनदासजीने इसका वर्णन [illegible] इस प्रकार किया है—

ते नगर मेंहता जूनागढ माही। तिन्है इष्ट धारे दंडी मत्त ताही ॥
नित प्रति नेमं करे दर्शं स्वामी। रही मत्त ऐसी धरे चित्त थामी ॥
एक बारं बहु भीर मारी। तहाँ संत गेही मिले वर्णं चारी ॥
दर्शन हर्षं मना आनि भिन्नं। महाराज दंडी प्रति कीन्हों प्रसन्नं ॥
दर्शं दीजै रखो दूर नाथा। द्विजां शूद्र भेळा बने नाहि बाता ॥
वत-ऐसी तबै बोल स्वामी। नहीं भक्ति चीन्ही पडी तोहि खामी।
सर्व-व्यापी तुम्हें नाहि जानी। धरो जन्म यामें भई एम बानी ॥
प्राणप्यारा तुम्हां नाहि जीऊँ, तुम्हें अंश आऊँ कृपामृत पीऊँ।
....

रामकृष्ण तन त्याग कर, मुरधर प्रगटे आण।
माता सुन्दर-कूख भल, धाल लियो अवतार।
रामदास पितु पाय धिन, जीवाँ कारण उधार ॥

पुनर्जन्ममें दण्डी स्वामी ही रामदासजी बने, जिन्होंने प्रसिद्ध सींथल 'रामस्नेही'-सम्प्रदायाचार्य श्रीहरिरामदासजी महाराजसे वि० सं० १८०९ में राममन्त्रकी दीक्षा ग्रहण की। इन्हीं रामदासजी महाराजके दयालदासजी हुए, जो पूर्वजन्ममें रामकृष्णजी नामक नागर ब्राह्मण थे। श्रीरामदासजी महाराजके द्वारा संस्थापित रामस्नेही प्रधानस्थान 'खेडापा' है, जहाँपर अनेक संतोंने राम-भजन करके इहलोकका परित्याग करके परलोक (परमधाम) को प्राप्त किया है। साधना-भेदसे लोकोंके भी कई भेद हैं; जैसे साकेतलोक, गोलोक, पर-लोक, परमधाम, स्वर्गलोक आदि। यह संक्षिप्त पूर्वजन्म और पुनर्जन्मका विवरण दिया है[1]।

—⊰○⊱—

विश्वमें पुनर्जन्म-सिद्धान्तकी व्यापकता

(श्रीरामनाथजी 'सुमन' द्वारा संकलित)

१–हिंदूधर्ममें पुनर्जन्म-सिद्धान्तका एक प्रधान स्थान है। वेद वेदाङ्ग, दर्शन, स्मृति, पुराण सर्वत्र इसे देखा जा सकता है। चार्वाक-दर्शनके अतिरिक्त और सब दर्शन इसे मानते हैं।

२–बौद्ध और जैन-धर्म भी अपने-अपने ढंगसे इसे संशोधित रूपमें स्वीकार करते हैं।

३–प्राचीन मिस्रमें भी प्रेतात्मा और पुनर्जन्मका सिद्धान्त माना जाता था।

४–प्राचीन यूनानके थेल्स, एम्पिडाक्लीज, पिरिथाइडिस, प्लेटो तथा पैथागोरस इत्यादि दार्शनिक इसे स्वीकार करते हैं।

५–रोमन भी इसे मानते थे, जैसा कि सिसरो, वर्जिल तथा ओविडकी रचनाओंमें प्रकट है।

६–पुराने यूरोपकी अनेक जातियोंमें पुनर्जन्मका विश्वास प्रचलित था।

७–अमेरिकाके आदिनिवासी रेड इण्डियन तथा जापानी, चीनी, तिब्बती और बर्मी लोग भी इसे मानते हैं।

८–ब्रिटेनके प्राचीन निवासियोंमें यह विश्वास प्रचलित था।

९–सीरियन सम्प्रदाय 'बार्डिसिनीज'का एक सूक्ष्म शरीरमें विश्वास था।

१०–संस्कृतके अनेक महाकवियोंके अलावा, अंग्रेजीके टेनीसन, ब्राउनिंग, वर्ड्सवर्थ इत्यादि कवियों तथा इमर्सन-सरीखे चिन्तकोंकी रचनाओंमें भी इसका प्रतिपादन मिलता है।

११–मैक्समूलर कहते हैं कि 'मानवजातिके सर्वोत्तम चिन्तकोंने पुनर्जन्म-सिद्धान्तको स्वीकार किया है।'

१२–जोसेफसके अनुसार यहूदी भी इसे मानते थे।

१३–ईसाने इसे स्वीकार करते हुए अपने शिष्योंसे कहा था—'जान बैपटिस्ट वस्तुतः एलिजा है।'

१४–प्लेटो, फिक्टे, शेलिंग तथा हेगेल इत्यादि जर्मन दार्शनिक इसे स्वीकार करते हैं।

१५–कान्ट, ह्यूम, मैकटैगर्ट इत्यादि यूरोपीय दार्शनिक भी पुनर्जन्ममें विश्वास करते हैं।

१६–इस प्रकार इस्लामके सिवा प्रायः सभी धर्म, मत, किसी न किसी रूपमें पुनर्जन्म मानते हैं।

---

१. विशेष जानकारीके लिये 'पूर्वजन्म' देखें। पता—[illegible]

इस्लामधर्म और परलोक

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

आत्मा क्या है और इसके रहस्यपूर्ण गुण क्या हैं ? शरियत (इस्लामधर्मके शास्त्रवाक्य) हमें सामान्य जनोंपर प्रकट करनेकी आज्ञा नहीं देता। इस कारण इस्लामके सबसे बड़े प्रचारकके द्वारा भी आत्मा (रूह) के गुणोंपर सुस्पष्ट प्रकाश नहीं डाला गया है तथापि गुप्तरूपसे कुछ आत्मीय श्रेष्ठ पुरुषोंको इस सम्बन्धमें कुछ बताया गया है। उनमें निम्नलिखित पुरुषोंके नाम प्रख्यात हैं—

१. हजरत अबूबकर सिद्दिक
२. ,, ऊमर फारुख
३. ,, उस्मान गनी
४. ,, अली मुर्तुजा
५. ,, इमाम हसन
६. ,, इमाम हुसेन
७. ,, सलमान कुरानी
८. ,, अबू हुरेरा

इनमें अली मुर्तुजाके सम्बन्धमें महान् नबीकी घोषणा है—'मैं ज्ञानका सुदृढ़ दुर्गमय नगर हूँ और अली इसका सदर द्वार है।'

वर्तमान समयके आध्यात्मिक गुरुओंने भी अपने महान् नबीका अनुकरण करके अपने विशिष्ट प्रिय शिष्योंको ही आत्माके सम्बन्धमें कुछ बताया है।

आत्माके सम्बन्धमें इस्लामधर्मके ग्रन्थ कुरानशरीफमें अल्लाहकी वाणी है—'लोग तुमसे रूहके सम्बन्धमें पूछेंगे तो उनसे कहना कि रूह मेरे मालिककी आज्ञासे उत्पन्न हुई है।'

कुरानशरीफके एक अंशसे विदित होता है कि जगत् दो प्रकारका है—'आलमे-खल्क' और 'आलमे-अमर।'

आलमे-खल्कमें मापनीय और विभाजनीय वस्तुएँ होती हैं; किंतु मनुष्यका आत्मा अमापनीय और अविभाजनीय गुणोंसे पूर्ण है। उसे सृष्टि पदार्थोंसे निर्मित जगत्में सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

कुछ दार्शनिक, रूहको कदीम (अनन्त, सनातन और सर्वशक्तिमान्) मानते हैं; किंतु इस्लाम इसे स्वीकार नहीं करता।

कुछ दूसरे दार्शनिक रूहको गुणात्मक वस्तु मान[illegible] हैं; किंतु गुणात्मक वस्तु किसी दूसरे पदार्थपर नि[illegible] करेगी; पर आत्मा शरीरमें स्वामीकी भाँति रहता है। [illegible] किसीकी सहायता अपेक्षित नहीं। इस कारण इस्लाम [illegible] भी स्वीकार नहीं करता।

तीसरे वर्गका कथन है कि आत्मा हृदय और [illegible] निर्मित है। अतएव वह शारीरिक पदार्थ है; किंतु [illegible] मापनीय एवं विभाजनीय होता है, इस कारण इसे [illegible] स्वीकार नहीं किया जा सकता।

आत्मा (रूह) दो प्रकारका होता है—
१—रूहे-हैवानी (जीवात्मा)
२—रूहे-इन्सानी (परमात्मा)

'रूहे-हैवानी' जानवरोंसे लेकर मनुष्योंतकमें होती है [illegible] लेकिन रूहे-इन्सानी केवल मनुष्यमें ही होती है। [illegible] रूहके सम्बन्धमें कुरानशरीफमें खुद अल्लाह फरमाते हैं— 'उसने अपनेमेंसे निकालकर आत्माको हजरत आदमके शरीरमें प्रविष्ट कराया।'

रूहे-इन्सानीमें ज्ञान प्राप्त करनेकी योग्यता है और [illegible] सृष्टिके स्वामी अल्लाह-अकबरके दर्शनका सुख प्राप्त कर सकता है। ज्ञानहीन पशु, जो ज्ञानी पशु (मनुष्य) से पृथक् है, उसे यह रूह नहीं प्राप्त होती। यह न तो कोई पदार्थ है और न किसी दूसरे पदार्थपर निर्भर रहने[illegible] है। यह ईश्वरीय प्रकृतिका एक वायु सम्बन्धी तत्त्व है [illegible] उसके गुण रहस्य समझने कठिन हैं। वाणीसे उसका [illegible] सम्भव नहीं। शरियतमें उसकी व्याख्या न करनेका [illegible] है। उसका विचार एवं व्याख्या ईश्वरीय ज्ञानके [illegible] उस पथपर चलनेवाले सत्पुरुष कर सकते हैं।

इस ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये सरलतासे तीन [illegible] आवश्यकता पड़ती है—

१. इरादा (विश्वास)।

२. [illegible] (अल्लाह और अपने नबीसे [illegible] करना तथा उनकी आज्ञानुकूल पथ प्रदर्शन करना) [illegible]

३. रियाज़त (अपनी उद्योग तथा सद्गुरुसे [illegible] त्याग और आध्यात्मिक ज्ञान)।

इन मार्गोंसे जो निरन्तर प्रयत्न करता रहे और सोत्साह अल्लाहकी ओर बढ़ता रहे, उसकी जिज्ञासा और प्रीति देखी जाय तो उसे अल्लाहकी ओरसे मार्ग-दर्शन होता जाता है और अन्ततक वह अल्लाह तक पहुँच जाता है। कुरानशरीफमें अल्लाहकी प्रतिज्ञा है—

'जो मुझे प्राप्त करनेके लिये उद्योग-रत रहते हैं, उन्हें मार्ग दिखाकर अपनेमें मिला लेता हूँ।'

साधक जबतक रियादत (क्रियात्मक उद्योग) पूरा नहीं कर लेता, तबतक उसपर परम आत्माके गुणोंको प्रकट करना बुद्धिमानीकी बात नहीं; क्योंकि प्रारम्भमें यह विषय बड़ा दुरूह प्रतीत होता है और भ्रम भी उत्पन्न हो जाता है। अतएव जीहाद (धर्मयुद्ध) में सफलता प्राप्त करनेसे पूर्व उनका ज्ञान आवश्यक है।

इस जगत्में मनुष्यका अस्तित्व उसके साकार शरीरके रूप उसकी मृत्युके साथ ही समाप्त हो जाता है। जीवकी जिसमें मृत्यु होती है, वह महान् अल्लाहकी सृष्टिका उत्पन्न किया हुआ प्राणी है, जिसे 'मलकुल मौत' या 'अजरायल' कहते हैं। इसका नाम तो लोग जानते हैं किंतु इसका ज्ञान दीर्घकालिक आध्यात्मिक साधन (सूफीइज्म) पर निर्भर है।

चिकित्सा-विज्ञान एवं मानसिक दर्शनके मुसल्मान दार्शनिकोंके मतानुसार पशु-शरीरके हृदयका मांसखण्ड रूहे-हैवानीका बैटरी है। यह रूह न स्वतन्त्र है और न इसकी कोई स्वतःस्थिति है। वह एक गरमी है, जो पशुकी आन्तरिक शारीरिक क्रियाओंका परिणाम है। इस चिनगारी या रूहे-हैवानीसे पशुके शरीरमें प्रगति होती है। उसके मस्तिष्कमें पहुँचनेपर गरमी कम हो जाती है और पञ्चेन्द्रियाँ अपनी-अपनी शक्ति प्राप्त करती हैं।

रूहे हैवानी अपनी साधारण स्थितिमें रहनेपर शरीरके विभिन्न भागोंपर शासन करती है और सर्वशक्ति-सम्पन्न होनेसे इससे दैवी-जगत्का प्रकाश प्राप्त करनेमें समर्थ होती है। किंतु किसी भी कारणसे अपनी साधारण स्थिति न रहनेपर वह उस प्रकाशको प्राप्त करनेकी शक्तिसे वञ्चित हो जाती है।

जैसे स्वच्छ दर्पणके सम्मुख आनेवाली प्रत्येक वस्तुका प्रतिबिम्ब दीखता है, किंतु यदि दर्पणपर मैल जम जाय, वह घिस जाय या उसपर धब्बा पड़ जाय तो किसी वस्तुका प्रतिबिम्ब उसपर नहीं पड़ेगा; इस कारण वस्तुका अभाव नहीं हो जायगा। कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति यही कहेगा कि दर्पणकी सामान्य स्थिति नहीं रही। इसी प्रकार जब जीवकी रूहे-हैवानी सामान्य स्थितिमें नहीं रहती, तब उसमें जीवके अवयवोंकी गतिशीलता लानेकी शक्ति नहीं रह जाती और वह दैवी-जगत्का प्रकाश पानेमें असमर्थ हो जाता है। जीवकी मृत्यु यही है। इस दशामें रूहे-हैवानी मर जाती है और भविष्यमें उसकी कोई स्थिति नहीं रह जाती।

यह तो साधारण जीवकी मृत्युकी बात हुई। किंतु पहले कहा जा चुका है कि मनुष्यमें रूहे-हैवानीके अतिरिक्त एक और रूह होती है, जिसे रूहे-इन्सानी कहा जाता है। रूहे-हैवानी एक प्रकारकी गरमी या चिनगारी है। उसका आकार होता है; किंतु रूहे-इन्सानीका कोई आकार नहीं होता।

वह एकाकी है और उसका विभाजन नहीं होता। उसमें एकाकी और अविभाजनीय परमात्माका ज्ञान प्राप्त करनेकी क्षमता है। विभाजनीय वस्तु अविभाजनीय परमेश्वरका ज्ञान प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं।

आप इसे इस प्रकार समझें कि रूहे-इन्सानी सवार है और रूहे-हैवानीके शरीर तथा अङ्ग उसके वाहन हैं। रूहे-हैवानीकी सामान्य स्थिति नष्ट होते ही मनुष्यका शरीर मृत्युको प्राप्त हो जाता है; किंतु रूहे-इन्सानी उसके बाद भी रहती है। उसका नाश नहीं होता। सिर्फ उसकी सवारी नष्ट हो जाती है। सवारीके नष्ट होनेसे सवारका नाश नहीं होता।

यह शरीररूपी सवारी रूहे-इन्सानीरूपी सवारको अल्लाहो-अकबरका ज्ञान और प्रेम प्राप्त करनेके लिये ही मिली है। परमात्माके सम्बन्धमें यदि हम ज्ञान और प्रेमको आनन्दरूप मानें, तब शरीर समाप्त हो जानेपर सवारी और सम्बन्ध नष्ट हो जायँ तो आत्माके बननेमें भी कोई क्षति नहीं होगी; अपितु वह उससे छुटकारा पाकर एक प्रकारसे मोक्ष और निजात्मे युक्त हो जायगा। इस प्रकार मृत्युके सम्बन्धमें इस्लाम धर्मके महान् उपदेशका कथन है—

'विश्वासकर्ताके लिये मृत्यु एक बहुमूल्य उपहार है।'

किंतु यदि इसके सर्वथा विपरीत आखेटके पूर्व ही सवारी और अस्त्रास्त्र नष्ट हो जायँ तो आखेटकके लिये बड़े ही दुःख और चिन्ताकी बात होगी।

मान लीजिये, आपके हाथ या पैरमें लकवा मार दिया या वह अङ्ग काट दिया गया या सारा शरीर लकवाग्रस्त होकर निष्क्रिय हो गया। ऐसी स्थितिमें इसे शारीरिक मृत्यु कहेंगे। इससे आपके अपनेपनकी मृत्यु नहीं हो जाती। आपका यह अपनापन तो बना ही रहता है।

आप इसे दूसरी तरह समझिये। आपके सम्मुख साठ वर्षके एक वृद्ध महानुभाव हैं। आप प्रत्यक्ष देखते हैं कि उनकी बाल्यकालकी कोमल और आकर्षक काया तथा यौवनका बलशाली सुगठित शरीर अब नहीं रहा। पर वे अब भी हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आपका अपनापन आपका प्राकृतिक शरीर नहीं, अपितु यह [illegible] और दूसरी वस्तु है। यह आपके शरीरके नष्ट होनेसे [illegible] नहीं होता, बल्कि बना ही रहता है। सदा कायम [illegible] है। आपका यह अपनापन ही गोपनीय रहस्य है। [illegible] स्पर्श सम्भव नहीं। यह अनश्वर और सत्य वस्तु है। [illegible] ईश्वरीय अंशका वायु-तत्त्व है, जिसे हम रूह [illegible] कहते हैं।

महान सूफी दार्शनिक मौलाना जलालुद्दीन कहते हैं—

ज़ौकि मर्गम हमचु जाँ खुश आमदस्त।
मर्गमन दर ज़ां, चंद अन्दराज़म:

'मृत्यु मुझे जीवन-सा प्रिय है। मेरी मौतमें बिना [illegible] हुए पुनर्जीवन सम्मिलित है अर्थात् मृत्युके बाद तत्काल ही मुझे फिर पुनर्जीवन प्राप्त हो जायगा।'

[शाहमुहम्मद वलीउल्ला आज़मके अनूदित लेखसे [illegible]

भारतीय दर्शनमें आत्माके साधक तर्क

(लेखक—मुनि श्रीनथमलजी)

[प्रेषक—श्रीकमलेशजी चतुर्वेदी]

किसी भी भारतीय व्यक्तिको आमके अस्तित्वमें कोई संदेह नहीं है; क्योंकि वह प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष-सिद्ध वस्तुके विषयमें कोई संदेह नहीं होता। जिन देशोंमें आम नहीं होता, उन देशोंकी जनताके लिये आम परोक्ष है। परोक्ष वस्तुके विषयमें या तो हमारा ज्ञान ही नहीं होता, यदि सुन या पढ़कर ज्ञान होता है तो वह साधक-बाधक तर्कोंकी कसौटीसे कसा हुआ होता है। साधक प्रमाण बलवान् होते हैं तो हम परोक्ष वस्तुके अस्तित्वको स्वीकार कर लेते हैं और बाधक प्रमाण बलवान् होते हैं तो हम उसके अस्तित्वको नकार देते हैं।

भारतमें जैसे आम प्रत्यक्ष है, वैसे ही आत्मा प्रत्यक्ष होता तो भारतीय दर्शनका विकास आज अन्यथा ही हुआ होता। आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है। उसपर चिन्तन-मनन, मनन और दर्शन भारतमें इतना हुआ है कि आत्मवाद भारतीय दर्शनका प्रधान अङ्ग बन गया। यहाँ अनात्मवादी भी रहे हैं; किंतु आत्मवादियोंकी तुलनामें आटेमें नमक जितने ही रहे हैं। अनात्मवादियोंकी संख्या भले कम रही हो, उनके तर्क कम नहीं रहे हैं। उन्होंने आत्म-अनात्मपर आत्माके [illegible] तर्क प्रस्तुत किये हैं। उनके विरोधमें आत्मवादियों[illegible] आत्माके साधक तर्क प्रस्तुत किये गये। संक्षेपमें उनका [illegible]करण इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) स्वसंवेदन—आत्मा अनुभवसे [illegible] अस्तित्व सिद्ध होता है। 'मैं हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ'— यह अनुभव शरीरको नहीं होता; किंतु जिसे होता है, वह [illegible] शरीरसे भिन्न है।

शंकराचार्यके शब्दोंमें—'सर्वो ह्यात्मास्तित्वं प्रत्येति न नाहमस्मीति।'—सबको यह विश्वास होता है कि 'मैं [illegible]' पर विश्वास किसीको नहीं होता कि 'मैं नहीं हूँ।'

(२) अत्यन्ताभाव—इस तर्कके निरूपणके अनुसार [illegible] और अचेतनमें त्रैकालिक विरोध है। जैन आगमोंके अनुसार [illegible] न कभी ऐसा हुआ है, न हो रहा है और न होगा कि जीव अजीव बन जाय और अजीव जीव बन जाय।'

(३) उपादानकारण—इस तार्किक नियमके अनुसार जिस वस्तुका जैसा उपादानकारण होता है, वह उसी रूपमें परिणत होती है। अचेतनके उपादान चेतनमें नहीं बदल सकते।

(४) सत्-प्रतिपक्ष—जिसके प्रतिपक्षका अस्तित्व नहीं है, उसके अस्तित्वको तार्किक समर्थन नहीं मिल सकता। यदि चेतन नामक सत्ता नहीं होती तो न चेतन=अचेतन—इस अचेतन सत्ताका नामकरण और बोध ही नहीं होता।

(५) बाधक प्रमाणका अभाव—अनात्मवादी—आत्मा नहीं है; क्योंकि उसका कोई साधक प्रमाण नहीं मिलता। आत्मवादी—आत्मा है, क्योंकि उसका कोई बाधक प्रमाण नहीं मिलता।

(६) सत्का निषेध—जीव यदि न हो तो उसका निषेध नहीं किया जा सकता। असत्का निषेध नहीं होता; जिसका निषेध होता है, वह अवश्य होता है।

निषेधके चार प्रकार हैं—

१. संयोग।

२. समवाय।

३. सामान्य।

४. विशेष।

मोहन घरमें नहीं है—यह संयोग-प्रतिषेध है। इसका अर्थ यह नहीं कि मोहन है ही नहीं, किंतु 'वह घरमें नहीं है' इस 'गृह-संयोग' का प्रतिषेध है।

खरगोशके सींग नहीं होते—यह समवाय-प्रतिषेध है। खरगोश भी होता है और सींग भी; इनका प्रतिषेध नहीं है। यहाँ केवल 'खरगोशके सींग'—इस समवायका प्रतिषेध है।

दूसरा चाँद नहीं है—इसमें चन्द्रके सर्वथा अभावका प्रतिपादन नहीं, किंतु उसके सामान्य-मात्रका निषेध है।

मोती घड़े-जितने बड़े नहीं हैं—इसमें मुक्ताका अभाव नहीं; किंतु 'उन घड़े-जितने बड़े'—यह जो विशेषता है, उसका प्रतिषेध है।

[illegible] नहीं है, इसमें आत्माका निषेध नहीं होता। इसमें किसीके साथ होनेवाले संयोगका निषेध है।

(७) इन्द्रिय प्रत्यक्षका वैफल्य—यदि इन्द्रिय गोचर नहीं होने मात्रसे आत्माका अस्तित्व नकारा जाय तो प्रत्येक सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट (दूरस्थ) वस्तुके अस्तित्वका अस्वीकार करना होगा। इन्द्रिय-प्रत्यक्षसे मूर्त-तत्त्वका ग्रहण होता है। आत्मा अमूर्त-तत्त्व है, इसलिये इन्द्रियाँ उसे नहीं जान पातीं। इससे इन्द्रिय-प्रत्यक्षका वैकल्य सिद्ध होता है, आत्माका अनस्तित्व सिद्ध नहीं होता।

(८) गुणद्वारा गुणीका ग्रहण—चैतन्य गुण है और चेतन गुणी। चैतन्य प्रत्यक्ष है, चेतन प्रत्यक्ष नहीं है। परोक्ष गुणीकी सत्ता प्रत्यक्ष गुणसे प्रमाणित हो जाती है। भौंहरेमें बैठा आदमी प्रकाशको देखकर सूर्योदयका ज्ञान कर लेता है।

(९) विशेष गुणद्वारा स्वतन्त्र अस्तित्वका बोध—वस्तुका अस्तित्व उसके विशेष गुणद्वारा सिद्ध होता है। स्वतन्त्र पदार्थ वही होता है, जिसमें ऐसा त्रिकालवर्ती गुण मिले, जो किसी दूसरे पदार्थमें न मिले। आत्मामें चैतन्य नामक विशेष गुण है। वह दूसरे किसी भी पदार्थमें व्याप्त नहीं है, इसीलिये आत्माका दूसरे सभी पदार्थोंसे स्वतन्त्र अस्तित्व है।

(१०) संशय—जो यह सोचता है कि 'मैं नहीं हूँ' वही जीव है। अचेतनको अपने अस्तित्वके विषयमें कभी संशय नहीं होता। 'यह है या नहीं' ऐसी ईहा या विकल्प चेतनके ही होता है। सामने जो लम्बा-चौड़ा पदार्थ दीख रहा है, 'वह खंभा है या आदमी'—यह विकल्प सचेतन व्यक्तिके ही मनमें उठता है।

(११) द्रव्यकी त्रैकालिकता—जो पहले पीछे नहीं है, वह मध्यमें नहीं हो सकता। जीव एक स्वतन्त्र द्रव्य है, वह यदि पहले न हो और पीछे भी न हो तो वर्तमानमें भी नहीं हो सकता।

(१२) संकलनात्मक ज्ञान—इन्द्रियोंका अपना अपना निश्चित विषय होता है। एक इन्द्रिय दूसरी इन्द्रियके विषयको नहीं जान सकती। इन्द्रिय ही ज्ञाता हो, उनका प्रवर्तक आत्मा ज्ञाता न हो तो सब इन्द्रियोंके विषयोंका संकलनात्मक ज्ञान नहीं हो सकता। [illegible] स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्दको जानता हूँ—इस प्रकार संकलनात्मक ज्ञान किसे होगा? [illegible] स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द—इन पाँचोंको जान रहा हूँ, ऐसा ज्ञान होता है।

(१३) स्मृति—इन्द्रियोंके नष्ट हो जानेपर भी उनके द्वारा जाने हुए विषयोंकी स्मृति रहती है। [illegible]

कोई वस्तु देखी, कानने कोई बात सुनी, संयोगवश आँख फूट गयी और कानका पर्दा फट गया, फिर भी दृष्ट और श्रुतकी स्मृति रहती है।

संकल्पनात्मक ज्ञान और स्मृति मनके कार्य हैं। मन आत्माके बिना चालित नहीं होता। आत्माके अभावमें इन्द्रिय और मन—दोनों निष्क्रिय हो जाते हैं। अतः दोनोंके ज्ञानका मूलस्रोत आत्मा है।

(१४) ज्ञेय और ज्ञाताका पृथक्त्व—ज्ञेय, इन्द्रिय और आत्मा—ये तीनों भिन्न हैं। आत्मा ग्राहक है, इन्द्रिय ग्रहणके साधन हैं और पदार्थ ग्राह्य है। लोहार संडासीसे लोहपिण्डको पकड़ता है। लोहपिण्ड ग्राह्य है, संडासी ग्रहणका साधन है और लोहार ग्राहक है। ये तीनों पृथक्-पृथक् हैं। लोहार न हो तो संडासी लोहपिण्डको नहीं पकड़ सकती। आत्माके बिना इन्द्रिय और मन अपने विषयको ग्रहण नहीं कर पाते।

(१५) पूर्व संस्कारकी स्मृति—नवजात शिशुके हर्ष, भय, शोक आदि होते हैं। उनका कारण पूर्वजन्ममें किये हुए आहारके अभ्यासमें ही होता है। जिस प्रकार युवकका शरीर बालक-शरीरकी उत्तरवर्ती अवस्था है, वैसे ही बालकका शरीर पूर्वजन्मके बादमें होनेवाली अवस्था है। यह ए… प्राणिकी अवस्था है। इनका जो अधिकारी है, वह अ… देही है।

वर्तमानके सुख-दुःख अन्य सुख-दुःखपूर्वक होते हैं। सुख-दुःखका अनुभव वही कर सकता है, जो पहले इनका अनुभव कर चुका है। नव-शिशुको जो सुख-दुःखका अनु… होता है, वह भी पूर्व-अनुभवयुक्त है। जीवनका मोह और मृत्युका भय पूर्वबद्ध संस्कारोंका परिणाम है। यदि पूर्वजन्मे इनका अनुभव न हुआ होता तो नवोत्पन्न प्राणियोंमें ये… वृत्तियाँ नहीं मिलतीं।

इस प्रकार भारतीय आत्मवादियोंने बहुसंख्यक युक्तियोंसे आत्मा और पुनर्जन्मका समर्थन किया है।

जैनधर्मका कर्मवाद

(लेखक—पं० श्रीचैनसुखदासजी न्यायतीर्थ)

'कर्म'को समझनेके लिये 'कर्मवाद'को समझनेकी जरूरत है। 'वाद'का अर्थ सिद्धान्त है। जो वाद कर्मोंकी उत्पत्ति, स्थिति और उनकी रस देने आदि विविध विशेषताओंका वैज्ञानिक विवेचन करता है, वह 'कर्मवाद' है। जैन-शास्त्रोंमें कर्मवादका बड़ा गहन विवेचन है। कर्मोंके सर्वाङ्गीण विवेचनसे जैन शास्त्रोंका एक बहुत बड़ा भाग सम्बन्धित है। कर्म स्कन्ध परमाणु समूह होनेपर भी हमें दीखता नहीं। आत्मा, परलोक, मुक्ति आदि अन्य दार्शनिक तत्त्वोंकी तरह यह भी अत्यन्त परोक्ष है। उसकी कोई भी विशेषता इन्द्रिय-गोचर नहीं है। कर्मोंका अस्तित्व प्रधानतया आप्त-प्रणीत आगमके द्वारा ही प्रतिपादित किया जाता है। जैसे आत्मा आदि पदार्थोंका अस्तित्व सिद्ध करनेके लिये आगमके अतिरिक्त अनुमानका सहारा लिया जाता है, वैसे ही कर्मोंकी सिद्धिमें अनुमानका आश्रय भी लिया गया है।

इस कर्मवादको समझनेके लिये सचमुच तीक्ष्ण बुद्धि और अध्यवसायकी जरूरत है। जैन-ग्रन्थकारोंने इसे समझानेके लिये ज्ञान-ध्यानका गणितका उपयोग किया है। अवश्य ही यह गणित लौकिक गणितसे बहुत भिन्न है। जहाँ लौकिक गणितकी समाप्ति होती है, वहाँ इस अलौकिक गणितका प्रारम्भ होता है। कर्मोंका ऐसा सर्वाङ्गीण वर्णन शायद ही संसारके किसी वाङ्मयमें मिले। जैन दर्शनको ठीक समझनेके लिये कर्मवादको समझना अनिवार्य है।

कर्मोंके अस्तित्वमें तर्क

'संसारका प्रत्येक प्राणी परतन्त्र है'। यह पौद्गलिक (भौतिक) शरीर ही उसकी परतन्त्रताका द्योतक है। इस… से अभाव और अभियोगोंका यह प्रतिभास निरन्तर बना रहता है। यह अपने आपको सदा पराधीन अनुभव करता है। इस पराधीनताका कारण जैन शास्त्रोंमें अनुसार कर्म है। जगत्में अनेक प्रकारकी विषमताएँ हैं। आर्थिक और सामाजिक विषमताओंके अतिरिक्त जो प्राकृतिक विषमताएँ हैं, उनका कारण मनुष्यकृत नहीं हो सकता। जब सबमें एक-सा आत्मा है, तब मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट और वृक्ष-लतादिके विविध शरीरों और उनके सुख-दुःख आदिका कारण क्या है? कर्मके बिना कोई अन्य …

हो सकता। जो कोई इन विषमताओंका कारण है, वही 'कर्म' है—कर्मसिद्धान्त यही कहता है।

'सबको जीवनकी सुविधाएँ समानरूपसे प्राप्त हों और सामाजिक दृष्टिसे कोई ऊँच-नीच नहीं माना जाय'—मानव-समाजमें यह व्यवस्था प्रचलित हो जानेपर भी मनुष्यकी व्यक्तिगत विषमता कभी कम नहीं होगी। यह कभी सम्भव नहीं है कि मनुष्य एक-से बुद्धिमान् हों, एक-सा उनका शरीर हो; उनके शारीरिक अवयवों और सामर्थ्यमें कोई भेद न हो। कोई स्त्री, कोई पुरुष और किसीका नपुंसक होना दुनियाँके किसी क्षेत्रमें बंद नहीं होगा। इन प्राकृतिक विषमताओंको न कोई शासन बदल सकता है और न कोई वाद या समाज। ये सब विविधताएँ तो साम्यवादकी चरम सीमापर पहुँचे हुए देशोंमें भी बनी ही रहेंगी। इन सब विषमताओंका कारण प्रत्येक आत्माके साथ रहनेवाला कोई विजातीय पदार्थ है और वह पदार्थ 'कर्म' है।

कर्म आत्माके साथ कबसे हैं और कैसे उत्पन्न होते हैं ?

आत्मा और कर्मका सम्बन्ध अनादि है। जबसे आत्मा है, तबसे ही उसके साथ कर्म लगे हुए हैं। प्रत्येक समय पुराने कर्म अपना फल देकर आत्मासे अलग होते रहते हैं और आत्माके राग-द्वेषादि भावोंके द्वारा नये कर्म बँधते रहते हैं। यह क्रम तबतक चलता रहता है, जबतक आत्मा-की मुक्ति नहीं होती। जैसे अग्निमें बीज जल जानेपर बीजकी परम्परा समाप्त हो जाती है, वैसे ही राग-द्वेषादि विकृत भावोंके नष्ट हो जानेपर कर्मोंकी परम्परा आगे नहीं चलती। कर्म अनादि होनेपर भी सान्त हैं। यह व्याप्ति नहीं है कि जो अनादि हो, उसे अनन्त भी होना चाहिये। नहीं तो, बीज और वृक्षकी परम्परा कभी समाप्त नहीं होगी।

यह पहले कहा है कि प्रतिक्षण आत्मामें नये-नये कर्म आते रहते हैं। कर्मबद्ध आत्मा अपने मन, वचन और कायकी क्रियासे ज्ञानावरणादिक आठ कर्मरूप और औदारिकादि चार शरीररूप होकर योग्य पुद्गल स्कन्धोंका ग्रहण करता रहता है। आत्मामें कषाय हो तो वह पुद्गल स्कन्ध कर्मबद्ध आत्माके चिपट जाते हैं—ठहरे रहते हैं। कषाय (राग-द्वेष) की तीव्रता और मन्दताके अनुसार कर्मोंके साथ ठहरनेकी काल-मर्यादा कर्मोंका 'स्थितिबन्ध' कहलाता है। कषायके अनुसार ही वे फल देते हैं। यही 'अनुभवबन्ध' या 'अनुभागबन्ध' कहलाता है। योग कर्मोंको लाते हैं और आत्माके साथ उनका सम्बन्ध जोड़ते हैं। कर्मोंमें नाना स्वभावोंको पैदा करना भी योगका ही काम है। कर्म स्कन्धोंमें, जो परमाणुओंकी संख्या होती है, उसका कम-ज्यादा होना भी योगहेतुक है। ये दोनों क्रियाएँ क्रमशः 'प्रकृतिबन्ध' और 'प्रदेशबन्ध' कहलाती हैं।

कर्मोंके भेद और उनके कारण

कर्मके मुख्य आठ भेद हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। जो कर्म ज्ञानको न प्रकट होने दे, वह ज्ञानावरणीय; जो इन्द्रियोंको पदार्थोंसे प्रभावान्वित नहीं होने दे, वह दर्शनावरणीय; जो सुख-दुःखका कारण उपस्थित करे अथवा जिससे सुख-दुःख हो वह वेदनीय; जो आत्माभरण न होने दे, वह मोहनीय; जो आत्माको मनुष्य, तिर्यञ्च, देव और नारकके शरीरमें रोक रक्खे, वह आयु; जो शरीरकी नाना अवस्थाओं आदिका कारण हो, वह नाम; जिससे ऊँच-नीच कहलावे, वह गोत्र और जो आत्माकी शक्ति आदिके प्रकट होनेमें विघ्न डाले, वह अन्तराय कर्म है।

संसारी जीवके कौन-कौन-से कार्य किन-किन कर्मोंके आस्रवके कारण हैं—यह जैन-शास्त्रोंमें विस्तारके साथ बतलाया गया है। उदाहरणार्थ—ज्ञानके प्रकाशमें बाधा देना, ज्ञानके साधनोंको छिन्न-भिन्न करना, प्रशस्त ज्ञानमें दूषण लगाना, आवश्यक होनेपर भी अपने ज्ञानको प्रकट न होने देना आदि अनेकों कार्य ज्ञानावरणीय कर्मके आस्रवके कारण हैं। इसी प्रकार अन्य कर्मोंके आस्रवके कारणोंको भी जानना चाहिये। जो कर्म आस्रवसे बचना चाहते हैं, वह उन कर्मोंसे विरक्त रहें, जो किसी भी कर्मके आस्रवके कारण हैं। तत्त्वार्थसूत्रके छठे अध्यायमें आस्रवके कारणोंका जो विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है, वह द्रष्टव्य करने योग्य है।

कर्म आत्माके गुण नहीं

कुछ दार्शनिक कर्मोंको आत्माका गुण मानते हैं। पर जैन-मान्यता इसे स्वीकार नहीं करती। अगर गुण-स्वरूप कर्म आत्माके गुण हों तो वे कभी उसके बन्धनके कारण नहीं हो सकते। यदि [illegible] गुण [illegible] ही उसे बाँधने लगें तो कभी उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। [illegible]

मूल वस्तुसे भिन्न होता है; बन्धनका विजातीय होना जरूरी है। यदि कर्मोंको आत्माका गुण माना जाय तो कर्मनाश होनेपर आत्माका नाश भी अवश्यम्भावी है; क्योंकि गुण और गुणी सर्वथा भिन्न-भिन्न नहीं होते। बन्धन आत्माकी स्वतन्त्रताका अपहरण करता है; किंतु अपना ही गुण अपनी ही स्वतन्त्रताका अपहरण नहीं कर सकता। पुण्य और पाप नामक कर्मोंको यदि आत्माका गुण मान लिया जाय तो इनके कारण आत्मा पराधीन नहीं होगा; और यह तर्क एवं प्रतीति सिद्ध है कि ये दोनों आत्माको परतन्त्र बनाये रखते हैं—इसलिये ये आत्माके गुण नहीं; किंतु सर्वथा भिन्न द्रव्य हैं। ये भिन्न द्रव्य पुद्गल हैं। यह रूप, रस, गन्ध और स्पर्शवाला एवं जड है। जब राग-द्वेषादि विकृतियोंके द्वारा आत्माके ज्ञानादि गुणोंको घातनेका सामर्थ्य जड पुद्गलमें उत्पन्न हो जाता है, तब यही 'कर्म' कहलाने लगता है। यह सामर्थ्य दूर होते ही यही पुद्गल दूसरी पर्याय धारण कर लेता है।

कर्म आत्मासे कैसे अलग होते हैं ?

आत्मा और कर्मोंका संयोग सम्बन्ध है। इसे ही जैन-परिभाषामें 'एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध' कहते हैं। संयोग तो अस्थायी होता है। आत्माके साथ कर्म-संयोग भी अस्थायी है। अतः इसका विघटन अवश्यम्भावी है। खानसे निकले हुए स्वर्णपाषाणमें स्वर्णके अतिरिक्त विजातीय वस्तु भी है। वही उसकी अशुद्धताका कारण है। जबतक वह अशुद्धता दूर नहीं होती, उसे सुवर्णत्व प्राप्त नहीं होता। जितने अंशोंमें यह विजातीय संयोग रहता है, उतने अंशोंमें सोना अशुद्ध रहता है। यही हाल आत्माका है। कर्मोंकी अशुद्धताको दूर करनेके लिये आत्माको बलवान् प्रयत्न करने पड़ते हैं। इन्हीं प्रयत्नोंका नाम 'तप' है। तपका प्रारम्भ अहिंसासे होता है। बाह्य तपोंको जैन-शास्त्रोंमें कोई महत्त्व नहीं दिया गया है। आभ्यन्तर तपकी शुद्धिके लिये जो बाह्य तप अनिवार्य हैं, वे स्वतः ही हो जाते हैं। तपोंका जो अन्तिम भेद 'ध्यान' है, वही कर्मनाशका कारण है। शुक्लध्यानकी निश्चल पर्याय ही 'ध्यान' है। यह ध्यान उन्हींको प्राप्त होता है, जिनका आत्मोपयोग शुद्ध है। शुद्धोपयोग ही मुक्तिका साधन अथवा मुक्तिका स्वरूप है। आत्माकी पाप और पुण्य प्रवृत्तियाँ उसे संसारकी ओर खींचती हैं। जब इन प्रवृत्तियोंसे वह उदासीन हो जाता है, तब नये कर्मोंका आना रुक जाता है। इसे जैन-शास्त्रोंकी परिभाषामें 'संवर' कहा गया है। संवर—हो जानेपर जो पूर्वसंचित कर्म हैं, वे अपना रस देकर आत्मासे अलग हो जाते हैं और नये कर्म आते नहीं; तब आत्माकी मुक्ति हो जाती है। एक बार कर्मबन्धनसे आत्मा अलग होकर फिर कभी कर्मोंसे लिप्त नहीं होता। मुक्तिका प्रारम्भ है; पर अन्त नहीं है। वह अनन्त है। मुक्ति ही आत्माका चरम पुरुषार्थ है। इसकी प्राप्ति अभेदरत्नत्रयसे होती है। जैन-शास्त्रोंमें कर्मोंके नष्ट होनेका अर्थ है—आत्मासे उनका सदाके लिये अलग हो जाना। यह तर्कसिद्ध है कि किसी पदार्थका कभी नाश नहीं होता; उसका केवल रूपान्तर होता है। पदार्थ पूर्व पर्यायको छोड़कर उत्तर-पर्याय ग्रहण कर लेता है। कर्म-पुद्गल कर्मत्व-पर्यायको छोड़कर दूसरी पर्याय धारण कर लेते हैं। उसके विनाशका यही अर्थ है—

'सतो नाश्यन्तसंक्षयः।' ([illegible])

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।' (गीता)

'नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गल-भावतोऽस्ति।' (स्वयम्भू [illegible])

आदि जैन-अजैन महान् दार्शनिक सत्के विनाश और असत्के उत्पादका स्पष्ट विरोध करते हैं। जैसे साबुन आदि रासायनिक पदार्थोंसे भौतिक वस्त्रका मैल नष्ट हो जाता है अर्थात् दूर हो जाता है, वैसे ही आत्मासे कर्म दूर हो जाते हैं। यही कर्मनाश, कर्ममुक्ति अथवा कर्मभेदनका अर्थ है। जैसे आगकी रासायनिक विविध प्रक्रियासे सोनेसे विजातीय पदार्थ उससे पृथक् हो जाता है, वैसे ही तपसे कर्म दूर हो जाता है।

सबको उनका हिस्सा देकर खाओ

जो कुछ है, मिलता है, तुमको उसमें सबका हिस्सा जान।
करते रहो नित्य उसमेंसे यथायोग्य सबको ही दान॥
फिर जो बचा हुआ खाओगे, होगा वह शुचि सुधा समान।
उससे यहाँ-वहाँ पाओगे तुम निश्चित सुख शान्ति महान॥

जैनधर्ममें आत्मा, पुनर्जन्म और कर्म सिद्धान्त

(लेखक—श्रीकैलाशचन्द्रजी शास्त्री)

'आत्मा', 'पुनर्जन्म' और 'कर्मसिद्धान्त'—ये तीनों परस्परमें अनुस्यूत हैं। आत्माका स्वतन्त्र अस्तित्व माननेपर शेष दोनोंको भी मानना ही पड़ता है। जैनधर्ममें आत्माका स्वतन्त्र अस्तित्व है। छः द्रव्योंमें एक 'जीव' या 'आत्मा' नामका भी द्रव्य है।

जैनदर्शन एक 'द्रव्य' नामका पदार्थ ही मानता है और उसे इस रूपमें मानता है कि उसके माननेपर उसे अन्य किसी पदार्थके माननेकी आवश्यकता नहीं रहती। गुण और पर्यायोंके आधारको 'द्रव्य' कहते हैं। वे गुण और पर्याय द्रव्यके ही आत्मस्वरूप हैं; अतः वे किसी भी दशामें द्रव्यसे जुदे हो नहीं सकते। द्रव्यके परिणत होनेकी दशाको पर्याय कहते हैं। 'पर्याय' सदा बदलती रहती है। अन्य दर्शन किसीको नित्य और किसीको अनित्य कहते हैं; किंतु जैनदर्शन कहता है—

आदीपमाव्योमसमस्वभावं
स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु।
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यत्
इति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः॥

यह बात नहीं है कि आकाश नित्य हो और दीपक अनित्य हो, दीपकसे लेकर आकाशपर्यन्त सभी एक स्वभाववाले हैं; कोई भी वस्तु उस स्वभावका अतिक्रमण नहीं कर सकती; क्योंकि सभीपर स्याद्वाद अर्थात् अनेकान्त स्वभावकी छाप लगी हुई है। जो जैनशास्त्रोंको नहीं मानते, वे ही किसीको नित्य और किसीको अनित्य कहते हैं।

जैनदर्शन 'स्याद्वादी' या 'अनेकान्तवादी' है। स्याद्वादमें 'स्यात्' शब्द 'अनेकान्त' रूप अर्थका वाचक है। अतएव स्याद्वादका अर्थ अनेकान्तवाद कहा जाता है। अपेक्षा-भेदसे एक ही वस्तुमें परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले अनेक धर्म पाये जाते हैं। जैसे प्रत्येक वस्तु द्रव्यरूपसे नित्य और पर्याय-रूपसे अनित्य प्रतीत होती है। इसीको 'अनेकान्तवाद' कहते हैं।

द्रव्य छः हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमेंसे एक जीव द्रव्य चेतन है, शेष पाँच द्रव्य अचेतन या जड हैं। आचार्य कुन्दकुन्दने जीव या आत्माको अरूप, अगन्ध, अव्यक्त, अशब्द, अरस, चैतन्यस्वरूप और इन्द्रियोंके द्वारा अग्राह्य कहा है। यह आत्मद्रव्यका यथार्थ स्वरूप है। संसारी आत्माका स्वरूप द्रव्यरूपसे तो वही है, जो आत्मद्रव्यका यथार्थ स्वरूप है; किंतु उसके साथ कर्मकी उपाधि लगी है; अतः संसारी आत्मा भी चैतन्यस्वरूप है, कर्ता है, भोक्ता है, अपने शरीरके बराबर परिमाणवाला है और कर्मोंसे संयुक्त होनेके कारण मूर्तिक है।

जैनधर्ममें जीवके दो प्रकार हैं—'संसारी' और 'मुक्त'। प्रारम्भमें सभी जीव संसारी होते हैं और संसारके बन्धनसे छूटनेपर ही मुक्त होते हैं। अनादि नित्यमुक्त जीव जैनदर्शनमें कोई नहीं है। प्रत्येक जीवकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता है और मुक्त होनेपर भी उसकी वह स्वतन्त्र सत्ता बनी रहती है; क्योंकि सत्का कभी नाश नहीं होता और असत्की कभी उत्पत्ति नहीं होती। जैनदर्शनकी मान्यताके अनुसार प्रत्येक संसारी जीव अनादिकालसे कर्मबन्धनसे बद्ध है। यह कर्मबन्धन उसीकी अनादि भूलका परिणाम है; किसी दूसरेने उसे नहीं बाँधा है। आचार्य कुन्दकुन्दने जीवके गुणोंका कथन करते हुए उसके एक 'प्रभुत्व' गुणका भी कथन किया है। जीव बन्ध और मोक्षका स्वामी स्वयं है। उसका बन्ध किसी अन्यके कर्तृत्वका परिणाम नहीं है और न बन्धनसे मुक्ति ही किसी अन्यके कर्तृत्वका परिणाम है; वह स्वयं ही अपनी करनीसे बद्ध होता है और स्वयं ही अपनी करनीसे मुक्त होता है।

कर्मसिद्धान्त

कर्मबन्धनके सम्बन्धमें भी जैनदर्शनकी अपनी एक विशेष मान्यता है। कर्मके दो प्रकार हैं—'भावकर्म' और 'द्रव्यकर्म'। जीवके राग-द्वेषरूप विकार भावोंको भावकर्म कहते हैं। जैनदर्शनकी मान्यताके अनुसार इस लोकमें सर्वत्र पौद्गलिक कर्मवर्गणाएँ भरी हुई हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म हैं। ये कर्मवर्गणाएँ जीवके राग-द्वेषरूप परिणामोंका निमित्त मिलनेपर स्वयं ही उस जीवकी ओर आकृष्ट होती हैं और जीवके साथ बद्ध हो जाती हैं। इनको द्रव्यकर्म कहते हैं। जीवके राग-द्वेषरूप भावोंके अनुसार इन द्रव्यकर्मोंमें अनुभागबन्ध और स्थितिबन्ध होता है। [illegible]

शक्तिको अनुभागबन्ध कहते हैं और आत्माके साथ कर्मरूपसे ठहरनेकी शक्तिको स्थितिबन्ध कहते हैं।

बन्धके चार प्रकार हैं—प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध। इनमेंसे आदिके दो बन्ध योगसे और अन्तके दो बन्ध कषायके निमित्तसे होते हैं। मन, वचन और कायसे युक्त जीवकी जो शक्ति कर्मोंको आकृष्ट करनेमें निमित्त होती है, उसे 'योग' कहते हैं और क्रोधादिरूप भावोंको 'कषाय' कहते हैं। योगकी उपमा हवासे और कषायकी उपमा गोंदसे दी जाती है। तथा कर्मकी उपमा धूलसे दी जाती है। जैसे हवाकी तीव्रता और मन्दताके अनुसार धूल उड़ती है, वैसे ही जीवकी मानसिक, वाचनिक और कायिक प्रवृत्तिकी तीव्रता और मन्दताके अनुसार जीवके प्रति कर्मरजका आकर्षण होता है। तथा, जैसे उड़ी हुई धूल दीवारपर लगे हुए पानी या चिपकनेवाली गोंद आदिकी चिपकाहटके अनुसार चिपक जाती है, वैसे ही योगसे आकृष्ट हुए कर्मपरमाणु जीवके कषायरूप भावोंकी तीव्रता या मन्दताके अनुसार जीवके साथ अधिक या कम स्थिति और अनुभागको लिये हुए बँध जाते हैं।

जैसे भोजनका एक भाग पाचनयन्त्रमें जाकर रस, रुधिर आदि सप्तधातुरूपमें परिणत हो जाता है, वैसे ही जीवके प्रति आकृष्ट हुए कर्मपरमाणु भी आठ कर्मोंमें विभाजित हो जाते हैं—

१. ज्ञानावरण कर्म—जो कर्म जीवके ज्ञानगुणको ढकता है।

२. दर्शनावरण कर्म—जो कर्म जीवके दर्शन-गुणको ढाकता है।

३. मोहनीय कर्म—जो कर्म जीवको मोहित करके उसके श्रद्धा आदि गुणोंको विकृत करता है।

४. अन्तराय कर्म—जो कर्म जीवके वीर्य आदि गुणोंका घातक है।

५. वेदनीय कर्म—जो कर्म जीवको सुख-दुःख देता है।

६. आयुकर्म—जो कर्म जीवको मनुष्य आदिके शरीरमें अमुक आयुतक रोके रखता है और मृत्यु नहीं होने देता।

७. नामकर्म—जो कर्म जीवके शरीरादिका निर्माण करता है।

८. गोत्रकर्म—जिस कर्मके उदयसे नीच या उच्च कुलमें जन्म होता है। इन आठ कर्मोंके भी अवान्तर बहुतसे भेद-प्रभेद हैं।

जब किसी बद्ध कर्मकी स्थिति पूरी होती है तो वह अपना फल देता है और देकर छूट जाता है। इस तरह द्रव्यकर्मके उदयसे भावकर्म होते हैं और भावकर्मसे द्रव्यकर्मका बन्ध होता है। पूर्वबद्ध कर्म ही नवीन कर्मबन्धमें निमित्त होते हैं। इस तरह संसारकी प्रक्रिया तबतक चलती है जबतक इस बन्धसे छुटकारा नहीं मिल जाता। इस जीव पुद्गल कर्मचक्रका वर्णन आचार्य कुन्दकुन्दने अपने 'पञ्चास्ति-काय' नामक ग्रन्थमें इस प्रकार किया है—

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी॥१२८॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा॥१२९॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा॥

'यहाँ जो संसारी जीव है, उसके अनादि बन्धनरूप उपाधिके वश स्निग्ध (राग-द्वेषरूप) परिणाम होते हैं। परिणामसे पुद्गलपरिणामात्मक नवीन कर्मोंका बन्ध होता है। उस कर्मके उदयसे नरक आदि गतियोंमें जाना पड़ता है। गतिमें जन्म लेनेपर शरीर मिलता है, शरीरमें इन्द्रियाँ होती हैं, इन्द्रियोंसे वह विषयोंको ग्रहण करता है। विषयोंके ग्रहणमें जो विषय रुचते हैं, उनमें राग करता है और जो विषय नहीं रुचते, उनमें द्वेष करता है। राग-द्वेषसे पुनः स्निग्ध परिणाम होते हैं। इस तरह जीव संसारचक्रमें भ्रमण करता रहता है। यह परम्परासे कालचक्रमें अनुस्यूत जीव और पुद्गलका परिणामरूप कर्मबन्ध किन्हीं जीवोंका तो अनादि अनन्त है और किन्हीं जीवोंका अनादि सान्त है। अर्थात् बहुतसे जीव तो ऐसे हैं, जो कर्मबन्धनको काटकर मुक्त हो जाते हैं और बहुतसे जीव ऐसे हैं जिनका इस बन्धनसे कभी भी छुटकारा नहीं होता। आचार्य कुन्दकुन्दने अपने समयप्राभृतमें यह उपदेश दिया है।'
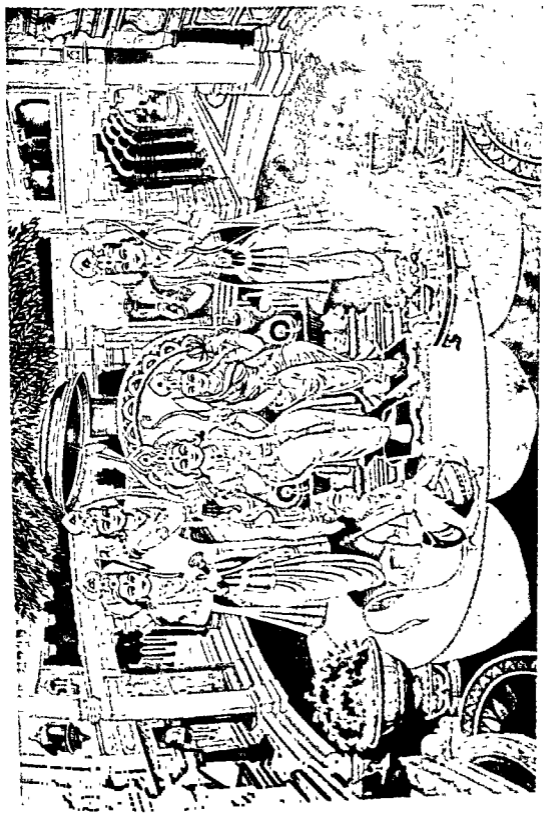
साकेतविहारी भगवान् श्रीराम

एक आदमी शरीरमें तेल मर्दन करके धूलभरे स्थानमें व्यायाम करता है और सर्वाङ्गमें धूलसे लिप्त हो जाता है। यदि वह तेल मर्दन किये बिना व्यायाम करता है तो उसका सर्वाङ्ग धूलसे लिप्त नहीं होता। अतः धूलसे लिप्त होनेका कारण न तो उस स्थानका धूल-भरा होना है, न उस पुरुषका व्यायाम करना है; किंतु उसका कारण है उसके शरीरका तेलसे लिप्त होना। इसी तरह मिथ्यादृष्टि जीव कर्मपुद्गलोंसे भरे हुए इस लोकमें मानसिक, वाचनिक और कायिक क्रियाओंको करते हुए राग-द्वेषरूप भावोंको करता है और कर्मरूपी धूलिसे बँध जाता है। इसी बातको टीकाकार अमृतचन्द्राचार्यने इस प्रकार कहा है—

न कर्मबहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्म वा
न नैककरणानि वा न चिदचिद्वधो बन्धकृत्।
यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः
स एव किल केवलं भवति बन्धहेतुर्नृणाम्॥

'कर्मयोग्य पुद्गलोंसे भरा यह लोक कर्मबन्धका कारण नहीं है; हलन-चलनरूप क्रिया भी बन्धका कारण नहीं है; अनेक इन्द्रियाँ आदि भी बन्धका कारण नहीं हैं और न चेतन-अचेतनका घात ही बन्धका कारण है; किंतु आत्मा जब रागादि भावोंके साथ एकताको प्राप्त करता है, केवल वही बन्धका कारण है।'

जैनदर्शनमें पौद्गलिक परमाणुओंके बन्धमें कारण उनके 'स्निग्ध' और 'रूक्ष' गुणको कहा है। किंतु आत्मामें तो स्निग्ध और रूक्ष गुण नहीं है, तब उसका कर्मपरमाणुओंके साथ बन्ध कैसे होता है? इस प्रश्नके समाधानमें राग-द्वेषको ही स्निग्ध और रूक्षगुणका स्थानापन्न कहा है। इन्हींका निमित्त पाकर आत्मा कर्मपरमाणुओंसे बद्ध होता है।

ये कर्म बँधनेके बाद जब उनका उदयकाल आता है तो स्वयं ही अपना फल देते हैं। जैसे शराब पीनेसे नशा होता है और दूध पीनेसे पुष्टि होती है; शराब या दूध पीनेके बाद उनका फल देनेके लिये किसी दूसरे फलदाताकी आवश्यकता नहीं होती, उसी तरह कर्म भी जीवपर अपना अच्छा या बुरा प्रभाव डालते हैं। कर्म तो जीवकी ही [illegible] परिणाम हैं। जीवके परिणामोंके अनुसार ही वे शुभाशुभरूप होकर तदनुसार ही फल देते हैं। उदाहरणके लिये यदि किसीने नरक-गतिका बन्ध किया तो मरते समय उसके परिणाम खराब होंगे और वह मरकर नरक-गतिमें जन्म लेगा; किंतु यदि नरक-गतिका बन्ध करनेके पश्चात् उसके परिणाम सँभलते हैं और वह शुभ कार्योंमें लगता है तो नरक-गतिमें तो उसे अवश्य जाना पड़ेगा किंतु अधिक दुःखवाले नरकोंमें न जाकर कम दुःखवाले नरकमें जायगा। जैन-कर्मसिद्धान्तके अनुसार आगामी भवकी आयुका बन्ध करके ही जीव मरता है और मरते ही दूसरा जन्म धारण कर लेता है।

जो दर्शन आत्माको व्यापक मानते हैं, उनके मतानुसार तो आत्माका गमन सम्भव नहीं है; किंतु जैनदर्शन आत्माको शरीर-परिमाण मानता है। जिस प्राणीके शरीरका जितना आकार होता है, उसके आत्माका भी उतना ही आकार होता है। जैसे दीपकका प्रकाश स्थानके अनुसार संकुचित या विस्तृत होता है, वैसे ही आत्मा भी शरीरके अनुसार संकुचित या विस्तृत होता है।

अतः शरीर-परिमाण होनेसे मृत्युके बाद आत्मा उस शरीरको छोड़कर दूसरा शरीर धारण करनेके लिये गमन करता है और पूर्वबद्ध कर्मके अनुसार नया जन्म धारण करता है। जन्म-मरणकी यह परम्परा तबतक चालू रहती है, जबतक मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती।

मुक्त होनेपर न तो आत्माका अभाव हो जाता है और न उसके स्वाभाविक ज्ञानादि गुणोंमें ही कोई कमी आती है। प्रत्युत जैसे सुवर्ण अग्निमें तपकर शुद्ध और निर्मल हो जाता है तथा उसका पीतता-गुण निखर उठता है, उसी तरह ध्यानरूपी अग्निमें तपकर आत्मा शुद्ध और निर्मल हो जाता है तथा उसके गुण परिपूर्ण होकर चमक उठते हैं और शुद्ध-बुद्ध यह परमात्मा अनन्तकालतक अपने स्वाभाविक गुणमें निमग्न रहता है। न वह किसीका इष्ट करता है और न अनिष्ट करता है। उसे संसारके झंझटोंसे कोई प्रयोजन नहीं है। वह एक आदर्श है, उसको सम्मुख रखकर हम उसके द्वारा निर्दिष्ट मार्गपर चलकर उसके ही-जैसे शुद्ध-बुद्ध निर्मल निर्विकार [illegible] बनकर संसारचक्रसे छूट सकते हैं।

चेतन है और अचेतन । रूप या आकारकी दृष्टिसे पुद्गल मूर्त है, अन्य अमूर्त । जीव आत्माका ही पर्याय है। प्रत्येक जीव अपने प्रकृत रूपमें अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्यादि गुणोंसे परिपूर्ण होता है । पुद्गल अथवा कर्मके परमाणु-पुञ्जसे वेष्टित होकर उसकी प्रकृति विकृत हो जाती है, जिसके फलस्वरूप नाना शरीर धारण करके वह संसारमें भ्रमण करता है ।

पुद्गल द्रव्य संसारका भौतिक आधार है । पृथ्वी, जल, वायु आदि इसीके स्थूल रूप हैं । इसका सबसे सूक्ष्म रूप 'परमाणु' कहलाता है । अनेक परमाणु मिलकर स्कन्ध बनाते हैं । इसके अन्तर्गत वह सभी कुछ आ जाता है, जो इन्द्रियग्राह्य है । तारे, आलोक, छाया आदि सूक्ष्म पुद्गलके ही रूप हैं, जिसके अणु सदा परिस्पन्दन करते हैं और क्रमानुसार संयुक्त-वियुक्त होते रहते हैं । परिणामस्वरूप उसके विभिन्न आकार-प्रकार बना करते हैं । संसारमें पुद्गल-परिमाण सदैव स्थिर रहता है। जीव तथा पुद्गलकी स्थिति लोकाकाशमें है। इससे रहित स्थान 'अलोकाकाश' कहलाता है । पुद्गलवाद जैन-दर्शनकी एक विशेषता है । यह न्याय-वैशेषिक-दर्शनके अणु-सिद्धान्तसे भिन्न है ।

आरम्भमें हम यह देख चुके हैं कि जैन-दर्शनका कर्मवाद तत्त्वतः इतर दर्शनोंसे साम्य रखता है, परंतु जैन-दर्शन जहाँ जीवको कर्ता और भोक्ता स्वीकार करनेके साथ-साथ उसे ज्ञाता भी मानता है, वहाँ सांख्यका पुरुष केवल ज्ञाता और भोक्ता निरूपित किया गया है, कर्ता नहीं । इस दृष्टिसे जैन-मतानुसार जीवका स्वरूप अन्य मतोंसे भिन्न है ।

जैन-मत संसारकी सृष्टि, उसका पालन तथा संहार करनेवाले ईश्वर या परमात्मा-जैसी किसी शक्तिकी सत्ता नहीं स्वीकार करता । तब यह प्रश्न स्वाभाविक है कि जीवके लिये उपयुक्त शरीरका निर्माण किस प्रकार होता है तथा संसारमें उसके सुख-दुःखादि भोगोंकी व्यवस्था कैसे होती है ? इन प्रश्नोंके उत्तरमें जैन सिद्धान्तका कथन है कि औदारिक आदि शरीर, वचन, इन्द्रिय, मन तथा श्वासोच्छ्वास—ये सब पुद्गल द्रव्यके उपकार हैं । अर्थात् जीवके लिये शरीरादिकी रचना पुद्गलसे ही होती है । इन्द्रियजन्य सुख-दुःखकी अनुभूति, शरीरका स्थिर रहना तथा नाश होना—ये पुद्गलके फल हैं—

> शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ।
> सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ।
>
> (तत्त्वार्थ सूत्र ५ । १९-२०)

जीव तथा पुद्गल चिरकालसे साथ-साथ वर्तमान हैं । जीवके परिणामका निमित्त पाकर पुद्गल ही कर्म-रूप अवस्था धारण करता है तथा कर्मके उदयका निमित्त पाकर जीव भी तद्रूप-अवस्था धारण कर लेता है—

> जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति ।
> पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमइ ॥
>
> (समयसार, कर्म अधिकार, गाथा ८०)

इस प्रकार पुद्गलद्वारा ही जीवका बंध होता है। मिथ्या दर्शन, कषाय अथवा राग-द्वेषके कारण जीवात्माके सत्-पथसे विचलित होते ही पुद्गलके अनन्त परमाणु उससे संयुक्त हो जाते हैं और उसके चतुर्दिक् एक प्रकारके कार्मिक शरीरका निर्माण कर देते हैं । परम विशुद्ध, निर्मल आत्माका स्वरूप आच्छन्न हो जाता है । 'समयसार' बंध अधिकारमें कहा गया है कि जैसे स्फटिकमणि स्वयं शुद्ध है; वह अपने आप ललाई आदि रंगरूप धारण नहीं कर लेती; परंतु अन्य लाल-काले द्रव्योंद्वारा उसमें रंग-रूपका परिणमन हो जाता है; उसी भाँति आत्मा स्वयं शुद्ध है; वह स्वयं रागादिरूप भावोंसे नहीं परिणमित होता, वह सांसारिक कर्मके निमित्तसे रागादिक भावोंसे परिणमित हो जाता है—

> जह फलिहमणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं ।
> रंगिज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादीहिं दव्वेहिं ॥
> एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमाईहिं ।
> राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहिं दोसेहिं ॥
>
> ([illegible])

कर्मके भेद

जैनदर्शनमें कर्मके आठ भेद माने गये हैं—

१—ज्ञानावरण, २—दर्शनावरण, ३—वेदनीय, ४—अन्तराय, ५—मोहनीय, ६—आयु, ७—नाम और ८—गोत्र ।

और द्रव्यके साथ संयुक्त होनेकी अवस्था 'आश्रव' है । आश्रवसे ही कार्मिक शरीर बनता है । हिंसा, अदत्तदान, असत्य, परिग्रह और मैथुन—ये आश्रवके पाँच द्वार हैं । पुष्पदन्तका कथन है कि 'पञ्चेन्द्रिय-सुखोंके कारण असंख्य कर्मोंका आश्रव होता है'—

पंचेंदिय सुहि मणु धोयंतहु तहु आसवइ कम्मु अतवंतहु।
(महापुराण ७ । १३ । १३)

आश्रवके कारण जीवका बन्ध होता है । आत्माकी श्रद्धा, चारित्र और क्रिया-गुणोंकी विकारी अवस्था ही 'बन्ध' है । जब जीव अपने अनन्त ज्ञानादि जैसे स्वाभाविक गुणोंके स्मरणद्वारा कर्म-बन्धनसे मुक्त होनेकी चेष्टा करता है, तभी कर्मके आगम अथवा आश्रवमें बाधा पड़ती है । आश्रवका निरोध ही 'संवर' है—आश्रवनिरोधः संवरः । संवरद्वारा आश्रवके समस्त द्वार अवरुद्ध हो जाते हैं तथा नवीन कर्मोंका आगम रुक जाता है । मुक्तिकी दिशामें यह प्रथम पग है । गुप्ति, समिति, मुनिधर्म, अनुप्रेक्षा, परिषह तथा व्रत-चारित्र संवरके कारण हैं । अतः संवर आत्माकी वह स्वच्छता है, जिसके द्वारा वह पुद्गलसे अपनी रक्षा करता है । ऋषभदेवने इसे चिरकालतक धारण किया था ।

संवरद्वारा नवीन कर्मोंका आगम रोकनेके साथ ही यह भी आवश्यक है कि संचित कर्म क्षय होकर आत्मा निर्मल बने । कार्मिक शरीरका विघटन तथा संचित कर्मोंका क्षय 'निर्जरा' कहलाता है । निर्जराकी उपलब्धि तपसे होती है । मन, इन्द्रिय-समूह तथा कायके तपन और निग्रहसे 'तप' होता है । जैनधर्मकी प्राचीन व्यवस्था द्वादशाङ्ग ही 'तप' है । बाह्य-अन्तरङ्ग भेदसे १२ तप इस प्रकार हैं—बाह्य तप—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस-परित्याग, विविक्तशैयासन तथा कायक्लेश । अन्तरङ्ग तप—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग तथा ध्यान । प्रथमोक्त बाह्य तप आभ्यन्तरिक शुद्धिके कारण होते हैं ।

तप-निर्जराद्वारा जीव अनावरित होकर परम शुद्ध एवं निर्मल हो जाता है । वह अपने प्राकृत गुणोंसे दीप्तिमान् हो जाता है । निरन्तर आराधना तथा तल्लीनता-द्वारा वह परमात्मपदको प्राप्तकर मोक्षके चरम बिंदुपर स्थिर हो जाता है ।

अन्नदान न करनेके कारण ब्रह्मलोकमें जानेके बाद भी अपने मुर्देका मांस खाना पड़ा

विदर्भदेशके राजा श्वेत बड़े अच्छे पुरुष थे । राज्यसे वैराग्य होनेपर उन्होंने अरण्यमें जाकर दीर्घ-कालतक तप किया और तपके फलस्वरूप उन्हें ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई। परंतु उन्होंने जीवनमें कभी भी किसीको भोजन-दान नहीं किया था। इससे वे ब्रह्मलोकमें भी भूखसे पीड़ित रहे । ब्रह्माजीने उनसे कहा —'तुमने किसी भिक्षुकको कभी भिक्षा नहीं दी। विविध भोगोंसे केवल अपने शरीरको ही पाला-पोसा । फिर तप किया । तपके फलसे तुम मेरे लोकमें आ गये । तुम्हारा मृत शरीर धरतीपर पड़ा है, वह पुष्ट था अक्षय कर दिया गया है । तुम उसीका मांस खाकर भूख मिटाओ । अगस्त्य ऋषिके मिलनेपर तुम इस घृणित भोजनसे छूट सकोगे ।'

उन्हीं श्वेत राजाको ब्रह्मलोकसे आकर अपने शवका मांस खाना पड़ता था । यह अन्नदान न देनेका दुष्परिणाम है । फिर एक दिन उन्हें अगस्त्य ऋषि मिले, तब उनको इस अत्यन्त घृणित कार्यसे छुटकारा मिला ।

अतएव यहाँ अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान अवश्य करना चाहिये । यहींका दिया हुआ ही—परलोकमें या पुनर्जन्म होनेपर प्राप्त होता है । यह आवश्यक नहीं है कि कोई इतने परिमाणमें दान करे । जिसके पास जो हो, उसीमेंसे यथाशक्ति कुछ दान किया करे ।

राजा श्वेत हुए अति वैभवशाली मर्यादित [illegible] ।
पर न किया था कभी उन्होंने जीवनमें भोजनका दान ॥
क्षुधा भयानकसे पीड़ित, वे आते [illegible] [illegible] [illegible] ।
धरतीपर, खाते स्वमांस अपने ही [illegible] घृणित [illegible] ॥

एकेन्द्रिय जीव

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय—इन पाँचों स्थावर कायोंके जीव 'अमैथुनिक' हैं। इनके एक इन्द्रिय होनेके कारण 'एकेन्द्रिय' कहलाते हैं। चैतन्यका न्यूनतम विकास यहाँ रहता है। वैसे कुछ वनस्पतियोंमें चैतन्यका विकास काफी विकसित है। उनकी संवेदन-शक्ति आश्चर्यजनक है; किंतु एक इन्द्रिय होनेके कारण इनमें अभिव्यक्तिकी क्रिया बिल्कुल नहीं है। ये जीव अनुकूल संयोग मिलते ही अपने आप स्वयं पैदा हो जाते हैं। इनमें मानसिक और वाचिक शक्तिका सर्वथा अभाव रहता है।

द्वीन्द्रिय आदि

द्वीन्द्रिय (दो इन्द्रियवाले), त्रीन्द्रिय (तीन इन्द्रियवाले), चतुरिन्द्रिय (चार इन्द्रियवाले), अमनस्क पञ्चेन्द्रिय (पाँच इन्द्रियवाले) जीव भी ऐसी योनियोंमें उत्पन्न होते हैं, जो अमैथुनिक हैं। इनके कई प्रकार हैं। कुछ त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीव अंडेमें पैदा जरूर होते हैं; किंतु अंडेमें रहकर शरीर नहीं बनाते और न उनके कोई पालनेवाले माता-पिता होते हैं। कुछ जीवोंके पालनेकी प्रक्रिया हम देखते हैं, वह केवल संज्ञा मात्र है। निश्चित संतानोत्पत्तिका यहाँ कोई क्रम नहीं है। इनमें वाचिक शक्तिकी सत्ता तो विद्यमान है, मानसिक शक्तिका अभाव है। मनके अभावमें वाणीका विकास भी अधिक नहीं हो पाता।

पुद्गलवादका रहस्य

(लेखक—मुनि श्रीबुद्धमल्लजी साहित्य-परामर्शक)

पुद्गलका स्वरूप

जैन-मतानुसार यह लोक षड्द्रव्यात्मक है। लोकके घटक उन छः द्रव्योंके नाम हैं—

१. धर्मास्तिकाय।

२. अधर्मास्तिकाय।

३. आकाशास्तिकाय।

४. काल।

५. पुद्गलास्तिकाय।

६. जीवास्तिकाय।

इनमें पाँच द्रव्य अमूर्त हैं; केवल एक पुद्गलास्तिकाय ही मूर्त है। संक्षेपमें इसे केवल 'पुद्गल' भी कहा जाता है। यह एक जैन पारिभाषिक शब्द है। बौद्ध-दर्शनमें भी इस शब्दका प्रयोग हुआ है; परंतु वह इससे सर्वथा पृथक् 'चेतना-सन्तति' के अर्थमें हुआ है। जैनागमोंमें भी क्वचित् पुद्गल-युक्त आत्माको पुद्गल कहा गया है[1], परंतु मुख्यतया मूर्त द्रव्यके अर्थमें ही इसका प्रयोग हुआ है। व्युत्पत्तिगत अर्थमें पूरण-गलनधर्मा होनेके कारण इसे 'पुद्गल' कहा जाता है। भावात्मक आधारपर इसकी परिभाषा की जाती है। जो स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णवान् होता है, वह पुद्गल है[2]। न्याय-वैशेषिक आदिने जिसे भौतिक तत्त्व कहा है और वैज्ञानिक जिसे मैटर (Matter) शब्दसे पहचानते हैं, जैनोंने उसी द्रव्यको 'पुद्गल' नामसे अभिहित किया है।

पुद्गलके प्रकार

जैनागमोंमें पुद्गल द्रव्यके दो प्रकार बताये गये हैं। परमाणु पुद्गल और नोपरमाणु पुद्गल (स्कन्ध)। अन्यत्र इसके चार प्रकार भी बताये गये हैं। स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु। जहाँ दो भेद किये गये हैं, वहाँ स्कन्ध, देश और प्रदेशको नोपरमाणु पुद्गलमें ही समाविष्ट कर लिया गया है। मूलतः परमाणु ही वास्तविक पुद्गल समझना चाहिये। शेष भेद तो परमाणुओंके ही विभिन्न अवस्थाओंपर आधृत हैं।

निर्विभागी पुद्गलको 'परमाणु' कहा जाता है। यह पुद्गलका सबसे छोटा अंश होता है। जिसके होनेके कारण उसे अच्छेद्य, अभेद्य, अग्राह्य और अदाह्य कहा जाता है।

१. भगवती ८। १०। ३६१। [illegible]

२. तत्त्वार्थसूत्र ५-[illegible]। [illegible]

१. [illegible]

४. [illegible]

५. [illegible]

आसुरी सम्पत्ति (गीता अध्याय १६)

राजा श्वेतका निज शव-भक्षण [पृष्ठ ४६९]

१. औदारिक-वर्गणा—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जीवोंके स्थूलशरीरके निर्माणमें काम आने योग्य पुद्गल-समूह ।

२. वैक्रिय-वर्गणा—दृश्य-अदृश्य, छोटा-बड़ा, हल्का-भारी आदि विभिन्न क्रियाएँ करनेमें समर्थ शरीरके योग्य पुद्गल-समूह ।

३. आहारक-वर्गणा—योग-शक्तिजन्य शरीरके योग्य पुद्गल-समूह ।

४. तैजस-वर्गणा—ऊष्मा, तेज या वैद्युतिक पुद्गल-समूह ।

५. कार्मण-वर्गणा—जीवोंकी सत्-असत् प्रवृत्तियोंसे आकृष्ट होकर कर्मरूपमें परिणत होने योग्य पुद्गल-समूह ।

६. श्वासोच्छ्वास-वर्गणा—जीवोंके श्वास और उच्छ्वासमें प्रयुक्त होने योग्य पुद्गल-समूह ।

७. भाषा-वर्गणा—वचनरूपमें परिणत होने योग्य पुद्गल-समूह ।

८. मनोवर्गणा—चिन्तनमें सहायक बनने योग्य पुद्गल-समूह ।

उपर्युक्त वर्गणाओंके अवयव क्रमशः अधिकाधिक सूक्ष्म और अधिकाधिक प्रचयवाले होते हैं । ये वर्गणाएँ परस्पर सर्वथा भिन्न नहीं हैं; अतः प्रत्येक वर्गणाके पुद्गलोंकी वर्गणान्तर-परिणति सम्भव है । प्रथम चार वर्गणाओंके पुद्गल-स्कन्ध अष्टस्पर्शी अर्थात् शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध, लघु, गुरु, मृदु और कर्कश—इन आठों स्पर्शोंसे युक्त होते हैं । कार्मण, भाषा और मनोवर्गणाके पुद्गल-स्कन्ध चतुःस्पर्शी, अर्थात् शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध—इन चार स्पर्शोंसे युक्त होते हैं । श्वासोच्छ्वास-वर्गणाके पुद्गल-स्कन्ध चतुःस्पर्शी और अष्टस्पर्शी—दोनों ही प्रकारके होते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुद्गलका जैविक संसारके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है । पुद्गल-वर्गणाओंको ग्रहण किये बिना किसी भी जीवका कोई भी कार्य एक क्षणके लिये भी चल नहीं सकता । सुख-दुःखानुभूतिसे लेकर श्वासोच्छ्वासतककी उसकी प्रत्येक क्रिया पुद्गल-प्रभावित है । यहाँतक कि सब क्रियाओंका अधिष्ठान उसका स्थूल या सूक्ष्म शरीर भी पुद्गल-सम्भूत है ।

हमारे शरीरसे प्रतिक्षण प्रतिबिम्बात्मक पुद्गलोंका प्रक्षेप होता रहता है । हमारे प्रत्येक चिन्तनमें जो मनोवर्गणाके पुद्गल ग्रहण होते हैं, वे तदनुकूल आकृतियोंमें परिणत होकर अगले ही क्षण वहाँसे मुक्त होकर आकाश-मण्डलमें फैल जाते हैं । हमारी प्रत्येक ध्वनि या शब्द पहले भाषा-वर्गणाके पुद्गलोंके रूपमें ग्रहण होते हैं, उसके पश्चात् ही यदि वे तीव्र प्रयत्नसे उत्सृष्ट हुए हों तो अतिसूक्ष्म कालमें ही लोकान्ततक ऊर्मियोंके रूपमें फैलते चले जाते हैं । उपर्युक्त सभी प्रकारके पुद्गल-स्कन्ध असंख्य कालतक उसी रूपमें ठहर भी सकते हैं । उपयुक्त साधन उपलब्ध हों तो हजारों वर्ष पूर्वके व्यक्तियोंकी आकृतियाँ, उनका चिन्तन और शब्द आज भी पकड़े जा सकते हैं ।

जैन-चिन्तकोंने हजारों वर्ष पहले पुद्गल या परमाणुविषयक जो अन्वेषण किया था, वह बहुत मौलिक और महत्त्वपूर्ण है । आजके विज्ञानकी अन्वेषणाओंको उससे बहुत कुछ मार्ग-दर्शन मिल सकता है ।

मरनेके समय रोगी क्या करे ?

मृत्युके समय होश रहे तो रोगीको रोगमें 'तप'की तथा मरणमें 'मुक्ति'की दृढ़ भावना करनी चाहिये । वैराग्यपूर्वक घरका, जगत्का चिन्तन छोड़कर भगवन्नामका मन-ही-मन जप-स्मरण करना चाहिये । वृत्ति लग सके तो भगवान्के जिस रूपमें रुचि हो, उसका ध्यान करना चाहिये । सम्भव हो तो भगवान्का कोई सुन्दर चित्र सामने रखकर उसे देखते रहना चाहिये । घरवालोंको श्रीमद्भगवद्गीताका आठवाँ-पंद्रहवाँ अध्याय, रामचरितमानसका अयोध्याकाण्ड अथवा भगवन्नामकी ध्वनि सुननी चाहिये, जिससे मन भगवान्में ही लग जाय ।

परिवारके स्नेहीजनोंसे घरकी बात, उनके सुख-दुःखकी बात, जगत्के किसी भी विषयकी चर्चा रोगीके सामने नहीं करनी चाहिये, न सुननी चाहिये ।

...ास मुक्त हो जाय और श्वासोच्छ्वास भी बंद हो जाय, ...र भी प्राणी जीवित रहेगा। ओज-आहार और आयुष्य-...के अभावमें शरीर, इन्द्रियाँ आदि सब स्वस्थ होते हुए ...प्राणी अपनेको मृत्युके पंजेसे मुक्त नहीं कर सकता। ...घंटोंतक श्वास और हृदयकी गति बंद रहनेवाले मनुष्य ...जीवित पाये जाते हैं। इससे हम अच्छी तरह अनुमान ...गा सकते हैं कि जीवन धारण करनेवाली शक्ति दूसरी ही ...है नहीं। इस विश्लेषणके आधारपर हम यह भी कह ...सकते हैं कि श्वास और हृदय-गतिका पुनः संचालन करने-...ला विज्ञान मस्तिष्ककी रुकी हुई विद्युत्-तरङ्गोंको पुनः ...लित करनेमें सफल हो भी जाय, फिर भी वह प्राणीको ...त्युसे बचा सके, यह सम्भव नहीं लगता।

...सामान्यतः प्राणियोंके तीन शरीर होते हैं—'औदारिक' ...जस' और 'कार्मण'। स्थूल पुद्गलोंसे निष्पन्न शरीर 'औदारिक' कहलाता है। जो तेजोमय है, वह 'तैजस' शरीर है। जो कर्मजन्य शरीर है, वह 'कार्मण' है। जैन-दर्शनके अनुसार मृत्युका वस्तुतः अर्थ है—आत्माका औदारिक शरीरसे विलग हो जाना। तैजस और कार्मण शरीर सूक्ष्म होते हैं और मृत्युके बाद भी वे आत्माके साथ जाते हैं। मृत्युके बाद आत्मा ऋजु या विग्रह गतिसे अपने गन्तव्य—जहाँ उसे फिर जन्म लेना है, वहाँ पहुँच जाता है। वर्तमान भव और अगले भवके अन्तरालमें वह लम्बे समयतक भटकता नहीं। वहाँतक पहुँचनेमें उसे अधिक-से-अधिक चार समय लगता है, जो कि एक क्षणका शतांश भी नहीं। वहाँ पहुँचते ही सबसे पहले आत्मा इसी कार्मण शरीरके द्वारा ओज-आहारको ग्रहण करता है, जो कि उसके समूचे जीवनका आधार होता है, फिर अन्यान्य इन्द्रियोंका। जैन-दर्शनके अनुसार संक्षेपमें प्राणीके जन्म और मृत्युकी यही प्रक्रिया है।

अन्तराल गति

(लेखिका—साध्वी श्रीमती कनकप्रभाजी)

जीवन एक अथाह सागर है। उसके दो तट हैं—जन्म और मृत्यु। जो व्यक्ति मृत्यु-तटपर पहुँचकर भी पुनः ...की ओर आकर्षित हो जाता है, वह डूबता-उतराता हुआ एक दिन जन्मके तटपर पहुँच जाता है और वहाँसे फिर मृत्युकी गोदमें सो जाता है। जन्म-मरणकी यह परम्परा अनादिकालसे चली आ रही है और अनन्त कालतक चलती रहेगी। कुछ व्यक्ति इस परम्पराके धागोंको काटकर दोनों ...के पार जाते हैं; लहरोंका तीव्र आघात उनको ...[illegible] नहीं कर सकता, इसलिये वे जन्म-मरण अर्थात् ... संसारसे अतीत हो जाते हैं। संसार-परिभ्रमणके हेतु ...कर्मबन्धनसे मुक्त होनेके कारण वे 'मुक्त' कहलाते हैं। जो ...अनवरत कर्म-बन्धनके हेतुओंका संग्रह करनेमें तत्पर ...रहते हैं, वे इस परम्पराको और अधिक कसते चले ...जाते हैं।

जो व्यक्ति आत्मवादको स्वीकार करके चलता है, जन्म-मरणकी परम्परामें आस्था रखता है, उसके लिये आत्माका ...[illegible] सहज ही स्वीकृत हो जाता है। आत्मा एक ...शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है, इसीका नाम ...[illegible] है। आत्मा अमर है, इसलिये उसकी मृत्यु होनेका प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ मृत्युका सम्बन्ध शरीर-परित्याग और जन्मका सम्बन्ध नये शरीरके स्वीकार करनेसे है। अवस्थान्तर-प्राप्तिका यह क्रम जैन-दर्शनके अनुसार पर्याय-परिवर्तन कहलाता है।

संचित कर्मोंका फल भोगनेके लिये आत्मा एक जन्मसे दूसरे जन्ममें जाता है। कर्मोंका फल एक जीवनमें भी भोगा जा सकता है। पर जो कर्म लंबे समयकी स्थितिके बद्ध हैं, वे अल्प आयुमें भोगे नहीं जा सकते। क्योंकि [illegible] फल दिये बिना आत्मासे अलग नहीं होते; अतः कर्मोंकी स्थितिसे ही व्यक्तिके पुनर्जन्मकी परम्परा चलती है।

जन्म और मृत्युके बीचकी स्थिति स्पष्ट है; क्योंकि इस समय प्राणी सबके सामने है। किंतु मृत्युके बाद अन्तरालका समय अस्पष्ट रहता है, अतः उसके बारेमें जिज्ञासाका होना सहज ही है। मृत्युके अनन्तर ही आत्मा अपने पूर्व शरीरको छोड़कर दूसरे निर्दिष्ट शरीरको [illegible] लिये गति करता है। इस समय वह [illegible] और कोई भी [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] ही होती है।

पुनर्जन्म और मोक्ष

(लेखक—मुनि श्रीशुभकरणजी)

जैन-आगम-साहित्य 'जातिस्मृति'की घटनाओंका भण्डार है, जिसमें अनेक व्यक्तियोंका उल्लेख है, जिन्हें पूर्व-जन्मकी स्मृति हुई थी। कथा-साहित्यमें भी इसके प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं। 'जातिस्मृति'का अर्थ है—पूर्वजन्मकी स्मृति। वह समनस्क आत्माओंको होती है, मनरहित प्राणियोंको नहीं। यह कोई विशेष ज्ञान नहीं है; किंतु फिर भी पूर्वकालीन स्मृतिके जागरणसे सामान्य मनुष्योंके लिये विशिष्ट ही है, जिसमें व्यक्ति अपनी पूर्व-परिचित सभी घटनाओंका उल्लेख कर देता है। इसकी सम्भाव्यता उसी विचारकी चेष्टा, तर्क और खोजमें है। इससे वर्तमान जन्म पूर्व-जन्मसे असम्बन्धित नहीं रहता। यह शृङ्खला लम्बी है, किंतु इसका आदि पकड़ा नहीं जा सकता। आत्माकी उत्पत्तिको स्वीकार करनेसे ही वह पकड़ा जा सकता है।

जड और चेतन—ये दो पूर्ण स्वतन्त्र पदार्थ हैं। दोनोंका स्वभाव विसदृश है। एकीभूत होनेपर भी वे समान नहीं हो सकते। जड सदा जड रहता है और चेतन सदा चेतन। चेतन अपने स्वभावसे भिन्न स्वभावको ग्रहण नहीं करता और वह भी वैसा ही रहता है। एक दूसरे आपसमें संक्रान्त होनेपर स्वभावका परित्याग नहीं करते। दोनों पहले भी थे, हैं और रहेंगे। आत्माकी अमरता, अजरता और शाश्वततामें आस्तिकवादी परम्परा एकमत है। शाश्वत आत्माका आदि-बिन्दु किसी भी व्यक्तिके द्वारा उपलब्ध नहीं कराया जा सकता। गीतामें श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—'तू, मैं और ये राजादि पहले भी थे, आज भी हैं और भविष्यमें भी रहेंगे। शरीर-वियोजनसे आत्माका विनाश नहीं होता। विद्वान् व्यक्ति मरे और मरनेवालोंकी चिन्ता नहीं करते।' फलितार्थकी दृष्टिसे [illegible] आत्माका केवल बाह्य आकार परिवर्तित होता है। [illegible] आकार-परिवर्तन ही 'पुनर्जन्म' है।

अन्य विचारकोंकी दृष्टिमें भी पुनर्जन्मका स्वीकरण है और [illegible] रहा है। प्राचीन मिस्रका इतिहासवेत्ता हेरोडोटस लिखता है कि [illegible] प्रथम जाति है, जिसने इस सिद्धान्तको निकाला कि आत्मा अमर है।' प्राचीन धर्म-ग्रन्थ [illegible] [illegible] है कि 'यह नश्वर संसारमें कोई [illegible] मरता है।' [illegible] [illegible] के शब्दोंमें—'पहले आत्मा [illegible] जाता है, वहाँपर उसका न्याय होता है। उसके पश्चात् वह पुनः लौट आता है।' अफलातूनने कहा है—'पशुसे उन्नति करते-करते मनुष्ययोनि मिलती है।' यहूदी धर्मकी प्रसिद्ध पुस्तक रूहरमें लिखा है—'संसारमें जितने आत्मा हैं, वे जन्म-जन्मान्तरके चक्रमें पड़ते हैं।' सेन्ट अगस्टाईनका विचार है—''मेरे अतिरिक्त और भी ईसाई मानते हैं कि 'क्या माताके गर्भमें आनेके पूर्व मैं विद्यमान नहीं था?' वह स्वयं ही उत्तर देता है कि 'हाँ मैं विद्यमान था।''' यूरोपीय विद्वान् सर वाल्टर स्काटने अपनी १७ फरवरी १८२८ की डायरीमें लिखा है कि 'जब मैं भोजन कर रहा था तो मुझे यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं इस संसारमें पहले भी आ चुका हूँ।'

'पुनर्जन्म'का अर्थ है—नया जीवन। जहाँ जीवन नहीं है, वह निर्वाण, मुक्ति या मोक्ष है। मोक्षमें पुनर्जन्मका कारण नहीं है। कार्यका निर्माण कारणपर आधारित है। पुनर्जन्मका कारण है—कर्म। कर्मको माया, प्रकृति, बन्धन, अविद्या, अज्ञान आदि नामसे अभिहित किया गया है। 'अज्ञानकी गाँठ खुलनेका नाम मोक्ष है। लिङ्ग और शरीरकी [illegible] अवस्था मोक्ष है। नित्य सुख है जहाँ, वहाँ मोक्ष है।' इस प्रकार 'मोक्ष'की व्याख्या विविध प्रकारसे की गयी है। उनसे यह ध्वनित होता है कि 'मुक्तात्माका पुनर्जन्म नहीं होता।' पुराणोंमें तथा गीतामें अनेक स्थानोंपर—'पुनर्जन्म न विद्यते'—यह पढ़नेको मिलता है। मुक्तिके अभावमें पुनर्जन्मका प्रभाव टलता नहीं है। उसे रोकना है तो कर्म-बन्धको रोकना होगा।

कर्म विजातीय तत्त्व है। वह जड अतएव [illegible] है। इसलिये वहाँ [illegible] आवर्तन नहीं होता। फिर आत्माके साथ इसका सम्बन्ध है, वही आत्मा कर्मोंका आकर्षण करता है। कर्म-प्रकृतिके तीन भेद हैं—[illegible] [illegible] इन तीनोंकी जो [illegible] है, वह [illegible] करती है और [illegible] [illegible] कर्म दोनों ही [illegible] [illegible] होता है। आत्मा [illegible] [illegible] है। वह आत्मासे [illegible] रहता है। [illegible] है— आत्मा [illegible] और [illegible] [illegible]

जैसी पूजा, वैसा फल

भूत-पूजन, पितृ-पूजन, देव-पूजन, भगवत्-पूजन (गीता ९।२५)

[illegible] (गीता ९।२२)

औदारिक शरीर सबसे स्थूल होता है। आगेके शरीर क्रमशः सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर होते हैं।

मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके औदारिक-शरीर होता है। वैक्रिय शरीर नैरयिक और देवोंके होता है तथा तिर्यञ्चों और मनुष्योंके भी हो सकता है। आहारक-शरीर केवल चतुर्दश पूर्वधारी मुनिराजोंके ही हो सकता है। तैजस और कार्माण शरीर चारों गतियों (मानव, तिर्यञ्च, देव, नारकी) के जीवोंके होता है।

औदारिक, तैजस और कार्माण शरीरोंमें सभी छः संस्थान—[आकार (१) समचतुरस्र, (२) न्यग्रोध-परिमंडल, (३) सादि, (४) कुब्ज, (५) वामन, (६) हुंडक)] पाये जाते हैं। वैक्रियमें समचतुरस्र और हुंडक दो संस्थान पाये जाते हैं। आहारक शरीरमें एक समचतुरस्र संस्थान पाया जाता है।

औदारिक, तैजस और कार्माण शरीरोंमें सभी छः (१) वज्र, ऋषभ, नाराच, संहनन, (२) ऋषभ, नाराच, (३) नाराच, (४) अर्ध-नाराच, (५) कीलिका, (६) सेवार्त्त संहनन (शरीर और अस्थियोंकी मजबूती) पायी जाती है। आहारक-शरीरमें एक वज्र, ऋषभ, नाराच, संहनन पाया जाता है। वैक्रिय-शरीरमें कोई संहनन नहीं होता।

...कर्मोंको क्षयकर मोक्ष प्राप्त करना औदारिक-शरीरका प्रयोजन है। नाना प्रकारके रूप बनाना वैक्रिय-शरीरका प्रयोजन है। संशय-निवारण आहारक-शरीरका प्रयोजन है। संसारमें परिभ्रमण करते रहना तैजस और कार्माण-शरीरका प्रयोजन है।

औदारिक-शरीरका विषय रुचक द्वीपतक है। वैक्रिय-शरीरका विषय असंख्यात द्वीप समुद्रतक है। आहारक-शरीरका विषय ढाई द्वीपपर्यन्त है। तैजस और कार्माणका विषय चौदह राजू परिमाण है।

एक औदारिक-शरीरका यदि अन्तर पड़े तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम। वैक्रिय-शरीरका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल। आहारक-शरीरका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन। तैजस और कार्माण शरीरका अन्तर कभी नहीं पड़ता।

औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्माण—ये चारों शरीर लोकमें सदा पाये जाते हैं। आहारक शरीर उत्कृष्ट छह मासतक नहीं भी पाया जाता।

कार्माण-शरीरको 'कर्म शरीर' और शेष शरीरोंको 'नो-कर्म-शरीर' भी कहा जाता है।

तैजस और कार्माण शरीर प्रवाहरूपी अपेक्षासे जीवके साथ अनादिकालसे हैं। जब कि बाकीके तीनों शरीरोंका सम्बन्ध अस्थायी है।

इस प्रकार जैन-साहित्यमें शरीरोंके विषयमें जो कुछ कहा गया है, उसका सार संक्षेपमें यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस वर्णनसे परलोक और पुनर्जन्मके विषयकी सभी भ्रान्तियाँ दूर हो जानी चाहिये; क्योंकि यह वस्तु कुछ विज्ञानसम्मत भी है।

जैसी पूजा, वैसा फल

करता जो भूतोंकी पूजा वह भूतोंको ही पाता।
पितरोंका पूजक निश्चय ही पितृ-लोकमें है जाता॥
विधिपूर्वक देवोंका पूजक देवलोकको ही पाता।
भगवत्पूजक पुण्यवान भगवच्चरणोंमें ही जाता॥

यज्ञशिष्ट भोजनसे पाप-नाश

सुर-ऋषि-पितर-मनुज सब जीवोंको उनका हिस्सा देकर।
बचा हुआ जो खाता वह ही पापमुक्त पाता ईश्वर॥
पर जो निजके लिये पकाता, बिना दिये ही है खाता।
वह अघभोजी निश्चय ही यमदूतोंसे पीड़ा पाता॥

पृ० ६१—

आयु पूर्ण होनेके पहले वहाँसे निकल नहीं सकते हैं। उनके कटे हुए शरीरके टुकड़े पारेकी तरह मिलकर फिर एक शरीररूप बन जाते हैं। नरकोंमें स्त्रियाँ नहीं होती हैं। उनका जन्म बिलोंकी छतके अधोभागमें होता है। उस समय वे चमगादड़ोंकी तरह औंधेमुँह लटकते हुए जन्मते हैं और नीचे जमीनपर गिरते हैं। जन्म लेनेके बाद ही अपना मार-काटका काम शुरू कर देते हैं। सभी नारकियोंका रूप बड़ा भयंकर होता है। नरकोंमें आपसकी मार-काटका ही दुःख नहीं होता, अन्य भी असहनीय दुःख होते हैं। वहाँ कितने ही बिलोंमें ऐसी भयानक गरमी पड़ती है कि जिस गरमीसे लोहेका गोला भी गलकर पानी हो जाय। कितने ही बिलोंमें ऐसी प्रचण्ड ठंड पड़ती है कि जिससे लोहेके गोलेके खण्ड-खण्ड हो जायँ। प्यास उन नारकियोंको इतनी अधिक लगती है कि सब समुद्रोंका पानी पी जायँ, तब भी प्यास बुझे नहीं, परंतु उनको बिंदुमात्र भी जल मिलता नहीं है। भूख उनको इतनी प्रचण्ड लगती है कि सारे संसारका अनाज खा जायँ, परंतु उन्हें कणमात्र भी अनाज मिलता नहीं है। वहाँकी भूमिका स्पर्श ही इतना दुःखदायी है कि जैसे बिच्छुओंने डंक मारा हो। ये सब दारुण दुःख नारकियोंको उम्रभर भोगने पड़ते हैं। वहाँ क्षणभर भी सुख नहीं है। घोर पापोंका फल भोगनेके लिये प्राणियोंको इन नरकोंमें जाना पड़ता है।

इसके विपरीत जो पुण्यात्मा होते हैं, वे देवलोकमें जाकर सुख भोगते हैं। जिस मनुष्यलोकमें हम रहते हैं, वह 'मध्यलोक' कहलाता है। उससे नीचे 'अधोलोक' है—उसमें नरक हैं। मध्यलोकसे ऊपर 'ऊर्ध्वलोक'में देवोंका निवासस्थान है। वहाँ देव किसी पृथ्वीपर नहीं रहते हैं। वे सब विमानोंमें रहते हैं। इससे भी बहुत ऊपर 'स्वर्गलोक' है। वह हमारे नेत्रगोचर नहीं है। वहाँ उत्तम श्रेणीके देवोंका निवास है। उससे भी ऊपर 'अहमिन्द्रलोक' है, जहाँ उनसे भी उत्कृष्ट देव रहते हैं। कुछ निम्नश्रेणीके देव अन्यत्र भी रहते हैं। स्वर्ग १६ माने गये हैं। एक-एक स्वर्गके दायरेमें बहुत-से विमान होते हैं, जिन सबका स्वामी उस स्वर्गका एक इन्द्र होता है। उन सब विमानोंके वासी सब देव उस इन्द्रकी आज्ञामें रहते हैं। अलग-अलग स्वर्गोंके अलग-अलग इन्द्र होते हैं और हर एक स्वर्गके इन्द्रसे भिन्न होते हैं। हर एक स्वर्ग मानो एक-एक देश है और बहुत-से विमान उस देशमें अलग-अलग प्रदेश या नगर हैं। एक-एक विमानमें अनेक वाटिकाएँ, महल और उपवन होते हैं। विमानोंकी लंबाई-चौड़ाई काफी विस्तृत होती है। उन देवोंके अलग-अलग राजा अलग-अलग इन्द्र कहलाते हैं। जैसे मनुष्यलोकमें राजा, मन्त्री, पुरोहित, सेना, प्रजा आदि होते हैं, वैसे ही देवलोकमें भी होते हैं। वहाँके राजाको 'इन्द्र' कहते हैं और प्रजाके लोग 'देव' कहलाते हैं। इन इन्द्रादि देवोंका शरीर बहुत सुन्दर होता है। उनके शरीरमें हाड़, मांस, रक्त, धातु, मज्जा, मल, मूत्र, पसीना नहीं होते हैं। उनको निद्रा नहीं होती, बुढ़ापा नहीं होता और किसी प्रकारका रोग नहीं होता। उनको प्यास नहीं लगती। वे खाते कुछ नहीं। बहुत वर्षोंमें कभी भूख लगती है तो उसी क्षण उनके कण्ठोंमें अपने-आप अमृत झर पड़ता है। उससे वे तृप्त हो जाते हैं। वहाँ किसी प्रकारका उनको शारीरिक दुःख नहीं होता है। इसी प्रकारकी वहाँ सुन्दर देवियाँ होती हैं, जिनके साथ वे देव नाना प्रकारके भोग-विलास करते हैं। वे देवियाँ वहाँ केवल भोगविलासके लिये ही होती हैं। उनके गर्भ धारण नहीं होता है। देवों और देवियोंकी उत्पत्ति वहाँ किसी स्थानविशेष (जिसे उपपाद-शय्या कहते हैं) से होती है। पैदा होनेके थोड़े ही समय बाद वे जवान हो जाते हैं और फिर उम्रभर जवान ही बने रहते हैं। उन सबकी कोई निश्चित आयु होती है। देवियोंकी आयु देवोंसे कम होती है। आयु समाप्त होनेके बाद इन्द्रादिकों भी अन्य योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। इसलिये मनुष्यादिकी तरह वे भी संसारी जीव ही हैं। एक प्रसिद्ध पुरातन जैनाचार्य समन्तभद्रस्वामीने कहा है—

> श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्बिषात्।
> कापि नाम भवेदन्या सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम्॥

अर्थात्—'धर्मके प्रतापसे कुत्ता भी देव हो जाता है। देवयोनिमें जन्म लेता है और पापके प्रभावसे देव भी मरकर कुत्तेकी योनिमें जाता है। इसलिये प्राणियोंके लिये धर्मके अतिरिक्त अन्य कौन बड़ा सहायक हो सकता है?'

इन स्वर्गलोकसे ऊपर एक 'अहमिन्द्र लोक' भी है, जिसमें [illegible]

पुनर्जन्म

(मूल—लामा अनागारिक गोविन्दजी)

[अनुवादक—श्रीश्यामसुन्दरजी त्रिपाठी]

(प्रस्तुत लेख लामा अनागारिक गोविन्दकी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि वे आफ दि व्हाइट क्लाउड्स' पर आधारित है। टोमो गेशे रिम्पोचे लेखकके गुरु थे; वृद्धावस्थाको प्राप्त होनेपर उन्होंने समाधिके द्वारा अपने शरीरका त्याग किया था। फिर सिक्किमके एक नगर गैंगटोकमें अपनी भविष्य-वाणीके अनुसार पुनर्जन्म धारण किया। प्रस्तुत लेखमें लामा अनागारिक गोविन्दने इस घटनाका वर्णन करते हुए पुनर्जन्मपर अपने विचारोंको अभिव्यक्त किया है। —अनुवादक)

टोमो गेशे रिम्पोचेने मृत्युके समय अपने शिष्योंसे प्रतिज्ञा की थी कि वे एक निश्चित अवधिके भीतर दूसरा शरीर धारण करके अपने मठको लौट आयेंगे। कुछ समय उपरान्त उनकी यह प्रतिज्ञा सत्य सिद्ध हुई। जहाँतक मेरा विचार है, मेरे गुरुदेवका पुनर्जन्म उसी घरमें हुआ, जिसमें एक बार तो अपनी प्रथम तिब्बत-यात्राके समय और दूसरी बार इस महान् संतसे मिलनेके उद्देश्यसे की गयी यात्राके दौरान, एक मेहमानके रूपमें मैं टिक चुका था। यह घर गैंगटोकमें था, जिसके स्वामी ऐन्चे काजी थे। मुझे उन्हींके द्वारा टोमो गेशेके पुनर्जन्म और ल्हासाकी महान् राजकीय देववाणियोंके आधारपर उनकी खोजका समाचार ज्ञात हुआ।

यह जानते हुए कि ऐन्चे काजी एक ईमानदार और धार्मिक पुरुष हैं, मैं भी इस घटनाकी सत्यताकी पुष्टि करता हूँ। इस घटनाकी साक्षीके रूपमें ली गौतमी (जिनकी ...) भी उस समय मेरे साथ थीं। यद्यपि ऐन्चे काजीको इस बच्चेके पिता होनेका गर्व प्राप्त था, फिर भी उन्होंने इस घटनाको दुःखित होकर सुनाया; क्योंकि इस बच्चेके जन्मके कुछ बाद ही उनकी पत्नीका देहान्त हो गया था* और कुछ ही वर्षों बाद जब यह बात प्रकट हुई कि उनके पुत्रके रूपमें दूसरे और किसीने नहीं, बल्कि टोमो गेशेने ही पुनर्जन्म धारण किया है, तब उन्हें अपनी इस इकलौती संतानको भी त्याग देना पड़ा। इस घटनाका सबसे रोमाञ्चक प्रमाण यह है कि जब उस बालकने स्वयं प्रसन्नतापूर्वक अपने पूर्व जन्मके मठको लौट जानेके लिये उत्सुकता प्रकट की, तब अपने पुत्रकी प्रसन्नताको ध्यानमें रखते हुए विवश होकर पिताने अपने इकलौते पुत्रके त्यागका निश्चय कर लिया और उसे 'डुगकर गोम्पा' ले जानेकी स्वीकृति देनी पड़ी।

सिक्किमके महाराजाने स्वयं भी बालकके पिताने यह अनुरोध किया कि वे बच्चेकी उत्तम नियतिके सम्बन्धमें हस्तक्षेप न करें; क्योंकि ल्हासाकी महान् देववाणीके द्वारा यह पहले ही संकेत किया जा चुका था, जिसकी पुष्टि उस बालकके वचनों और व्यवहारसे भी हो गयी थी। वह बालक सदासे ही आग्रह करता था कि वह सिक्किमी न होकर तिब्बती है। जब उसके पिताने उसे 'पू-चुंग' कहकर पुकारा, जिसका अर्थ 'छोटा बेटा' होता है, तो उसने इसका विरोध किया और उसने कहा कि उसका नाम 'जिग्मे' है, जिसका अर्थ 'निर्भीक' होता है। यह वही नाम था, जिसका उल्लेख ल्हासाकी देववाणीने भी किया था कि 'टोमो गेशे' का पुनर्जन्म इसी नामसे होगा।

राजकीय देववाणीके द्वारा इस बातको इतना अधिक महत्त्व दिये जानेसे यह प्रकट होता है कि टोमो गेशेके पुनर्जन्मका कितना अधिक महत्त्व है। [illegible] देववाणीने न केवल उस दिशाका ही निर्देश किया, जिस ओर पुनर्जन्म होनेकी सम्भावना थी, बल्कि उस नगर और मकानका विस्तृत वर्णन भी दे दिया, जहाँ यह जन्म होने वाला था। इस सभी प्रकारके विस्तृत वर्णनसे यह बात स्पष्ट हो गयी थी कि यह नगर [illegible] ही हो सकता है। [illegible]

* तिब्बतमें यह विश्वास प्रचलित है कि [illegible] [illegible] मृत्यु हो जाती है। मुझे [illegible] [illegible]

बौद्धमतानुसार परलोक, कर्मफल-भोग

(लेखक—पं० श्रीछेदीजी 'साहित्यालंकार')

बौद्धधर्ममें अहिंसा-एवं सत्यको सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। कोई भी अनात्म एवं अनीश्वरवादी अहिंसापर बल नहीं दिया सकता है। यह सदैव हिंसक ही रहेगा। परलोक एवं कर्मफलपर विश्वास रखनेवाले ही अहिंसक हो सकते हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि बौद्धधर्ममें परलोक तथा पुनर्जन्म आदिको स्थान ही नहीं, वरं सर्वप्रथम स्थान दिया जाता है।

'धम्मपद' (धर्मपद) नामक ग्रन्थमें तथागत बुद्धने अनेक स्थानोंपर स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य, सद्गति, दुर्गति आदिका स्पष्ट शब्दोंमें उल्लेख किया है। यहाँ मैं कुछ बुद्ध-वचनोंको यथाशक्यसे उद्धृत कर रहा हूँ। ये सभी वाक्य 'धम्मपद' नामक ग्रन्थसे ही लिये गये हैं—

'हे भिक्षु! ध्यान कर और सावधान रह। अपने चित्तको भोगोंकी ओर न ले जा, ताकि तुझे बेपरवाहीके बदले नरकमें लोहेका गोला न निगलना पड़े और जलते समय न चिल्लाना पड़े कि हाय! यह दुःख है।'

(धम्मपद व० ३७१)

'जो मिथ्या भाषण करता है, नरकको जाता है·····।'

(वचन ३०६)

'अच्छा आदमी इस दुनियामें भी खुश रहता है और परलोकमें भी खुश रहता है। उसे दोनों लोकोंमें सुख मिलता है।'

(वचन १८)

'न आकाशमें, न समुद्रमें, न पहाड़ोंकी गुफाओंमें, न तमाम दुनियामें कोई ऐसी जगह है, जहाँ मनुष्य बुरे कर्मोंके फलसे बच सकता है।' (वचन १२७)

'पापी मनुष्य इस लोकमें और परलोकमें दुःख उठाता है। वह दोनों लोकोंमें कष्ट पाता है। जब वह अपने किये हुए बुरे कर्मोंको विचारता है तो उसे दुःख होता है और जब वह पापके रास्तेमें गुजरता है तो और भी अधिक दुःख उठाता है।' (वचन १७)

'कितने ही लोग फिर जन्म लेते हैं। पापी नरकको जाते हैं, पुण्यात्मा स्वर्गको जाते हैं। जो सांसारिक बाधाओंसे मुक्त हैं, वे 'निर्वाण पद' पाते हैं।' (वचन १२६)

'ज्ञान बिना ध्यान नहीं और ध्यान बिना ज्ञान नहीं। जो ज्ञान और ध्यान दोनों रखता है, वह 'निर्वाण'-के समीप है।' (वचन ३७२)

'इस शरीरके बनानेवालेको ढूँढ़नेमें मुझे अनेक जन्म लेने पड़े; क्योंकि उसका पता न पाया। और बार-बार जन्म लेना दुःखदायी है। किंतु हे शरीरकर्ता! अब तुझे देख लिया है। तू अब इस शरीरको फिर बना नहीं पायेगा। शरीरकी तमाम हड्डियाँ टूट गयी हैं, शहतीर टूट गयी है; चित्त निर्वाणके समीप पहुँचकर सारी वासनाओंको नष्ट कर चुका है।' (वचन १५३-१५४)

'कृपण लोग देवलोकमें नहीं जाते। केवल मूर्ख लोग ही उदारताकी प्रशंसा नहीं करते। बुद्धिमान् आदमी उदारतामें खुश रहता है और उसीके द्वारा परलोकमें सुख पाता है।' (वचन १७७)

'दुनियाँ अँधेरी है। बहुत कम आदमी इसमें देख पाते हैं। बहुत कम लोग जालसे छूटी हुई चिड़ियोंके समान स्वर्गमें जाते हैं।' (वचन १७४)

भगवान् बुद्धने सम्पूर्ण धम्मपदमें पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक, लोक-परलोक आदिका उल्लेख किया है और स्वर्गको अच्छा एवं नरकके भयसे बचनेका भी आदेश दिया है। मेरी दृष्टिमें इतने ही उदाहरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि बौद्धमतानुसार कर्मफलभोगका स्पष्ट रूपसे प्रतिपादन किया गया है। उपर्युक्त वचनोंमें ऐसे वचन ऐसे भी हैं, जिनमें निर्वाण अर्थात् मुक्ति पानेका जिक्र किया गया है—

बौद्धधर्मके 'अङ्गुत्तरनिकाय' नामक ग्रन्थमें भगवान् बुद्धके अनेकों कथनोंकी व्याख्याएँ लिखी हैं। उन कथनोंकी व्याख्याओंसे भी पूर्णतः प्रमाणित हो जाता है कि पुनर्जन्म होता है और कर्मफलभोग भी निश्चित ही है।

हमने प्रेतोंका आवाहन किया और तुलादण्ड धीरे-धीरे उठने लगा। प्रो० क्रुक्सके आश्चर्यकी सीमा न रही। वह दण्ड इतना उठा, जितना होम-सरीखे दस-बीस जन भी मिलकर नहीं उठा सकते थे। इससे सिद्ध हो गया कि वास्तवमें प्रेत नामकी कोई अदृश्य शक्ति अवश्य है। इस संकेतसे प्रो० क्रुक्सने परलोक-सम्बन्धी विषयका वैज्ञानिक अध्ययन किया और अपनी जाँचको प्रकाशित किया, जिसमें और वैज्ञानिक इस विषयका अनुसंधान करें और परलोकविद्याको विज्ञानोंमें स्थान मिल सके। पहले तो प्रो० क्रुक्सकी हँसी उड़ायी गयी, पर फिर और भी विचारक इस विषयपर गम्भीरतासे सोचने लगे। कई प्रकार वैज्ञानिकोंने विज्ञानके नियमोंके अनुसार इस विषयकी छानबीन करनेके लिये एक परिषद् बनायी। यह परिषद् सन् १९१९ में बनी थी और इसका नाम 'परान्वेषण परिषद्' (Society for Psychical Research) रखा गया था। इस परिषद्की देख-भालमें मेस्मरिज्म, तथा भिन्न विधियोंसे प्रेतोंसे सम्बन्धके प्रयोग और हिप्नोटिज्म आदिके अनेक प्रयोग किये जाने लगे। भूत-प्रेतों आदिका नाम कर जनताको छलनेवाले लोगोंका पर्दाफाश भी किया गया। पर धीरे-धीरे इन्होंने इतना काम किया कि आज पाश्चात्य जगत्में परलोक-अन्वेषण पर्याप्त मात्रामें हो चुका है। इस विषयपर साहित्य भी उपलब्ध है। बुद्धिवादी लोग भी परलोकको मानते हैं।

इस विषयकी खोजबीनकी दृष्टिसे प्रो० विलियम क्रुक्सने एक देहाती लड़कीका मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया, जो कुछ दिनसे एक विचित्र मूर्च्छा-रोगसे पीड़ित थी। उसे '[illegible]बाधा' नामक रोग कहा गया था। इस लड़कीका नाम [illegible]—कुमारी कुक। उन्होंने एक महीनेतक उस कन्याको अपनी प्रयोगशालामें रखा। इस लड़कीके स्थूलशरीरपर केटी किंग नामक किसी औरतका प्रेतात्मा आया करता था। विलियम क्रुक्स साहबने प्रेतात्माका पूरा परिचय प्राप्त किया। उस प्रेतात्माको क्रुक्स साहबका व्यवहार इतना पसंद आया कि वह उस लड़कीके शरीरको मूर्च्छित कर उनसे [illegible] करता था। प्रेतात्मा-लड़की अजीब प्रकारसे [illegible] करने लगी, आत्माके साथ बात [illegible], उनके [illegible] वस्तुओंको उठा लाती और विविध तमाशे दिखाती। [illegible] पुस्तक 'परलोक-विद्या-सम्बन्धी अनुसंधान' (Researches in Spiritualism) में ऐसे अनेक [illegible] दिये हैं। उस प्रेतात्माके मरनेके पहलेकी कथा भी इस पुस्तकमें दी है।* परलोक-सम्बन्धी ज्ञानकी यूरोपमें यह प्रारम्भिक कृति है।

उपर्युक्त संक्षिप्त इतिहाससे यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य देशोंके लोग भी परलोक-विद्यामें रुचि रखते हैं। भारतवर्षमें तो परलोक-विषयमें बहुत पुराना विश्वास चला आता है। यों भूत-प्रेतों, चुड़ैल-डाकिनोंके नामपर यहाँ छल-छद्म भी काफी चला है और भोले-भाले लोग पर्याप्त ठगे जाते रहे हैं; किंतु वैज्ञानिक दृष्टिसे अब परलोक-विद्या मनोविज्ञानकी एक शाखा मान ली गयी है। ये लोग इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि 'इन्द्रियातीत संसार अत्यन्त विस्तृत है। जितना कुछ हमें पाँच इन्द्रियोंसे गोचर होता है, उसकी अपेक्षा समस्त वस्तुकी सत्ता अनन्त, अपरिमित और असीम है। उसको जाननेके लिये हमें भीतरी इन्द्रियों और सूक्ष्म शरीरोंकी शिक्षा और विकासकी आवश्यकता है।' हमारे यहाँ योगसाधनद्वारा परलोक-विद्याकी प्राप्ति कोई नयी बात नहीं है।

हिंदू-धर्मकी यह मान्यता है कि ब्रह्माण्डमें मुख्य १४ लोक हैं। ऊपरके लोकमें सत्-आत्मा रहते हैं, जिसे 'स्वर्ग' कहते हैं। नीचे एक नरकलोक है, जिसमें दुष्ट और भूत-प्रेत इत्यादि दुष्ट आत्मा नरकका दुःख भोगते रहते हैं। मध्यमें मनुष्यलोक है, जिसमें मनुष्य सत्कर्मद्वारा अगले जन्ममें स्वर्ग या नरकमें जानेका अधिकारी होता है। आत्माको परलोकमें रहकर अपने पाप पुण्योंका फल भोगकर अवशिष्ट कर्मोंसे मनुष्य-लोकमें आना पड़ता है। भारतीय विचारकोंके अनुसार सूर्य, चन्द्र या तारोंमें भी एक एक सृष्टि है। ये भिन्न भिन्न लोक हैं। [illegible] हैं। सभीमें जीवके निवासका विधान है। अच्छे या बुरे कर्मोंके अनुसार जीव उनमें पहुँचता है, सुख-दुःखका अधिकारी बनता है। परलोकमें रहनेवाले आत्माओंकी शक्ति साधारण मनुष्यकी अपेक्षा अधिक रहती है। [illegible] जबतक इस पृथ्वीलोकमें स्थूलशरीरमें रहता है, तबतक उसकी शक्ति कम रहती है, किंतु जब वह स्थूलशरीरको छोड़कर सूक्ष्म होकर पितृलोकमें जाता है, तो उसकी [illegible] बढ़ जाती है। पितृलोकमें निवास करनेवाले आत्मा बड़े शक्तिशाली और [illegible] होते हैं, [illegible] है और [illegible] ही प्रकट कर देते हैं। [illegible]

* [illegible]

Please? या Please tell me your name?) कटोरी थोड़ी-थोड़ी देर बाद एक-एक अक्षरपर जायगी, अक्षरपर जाकर हर बार बीचमें जरा देरके लिये रुकेगी, फिर गोलेमें लिखे अक्षरोंतक पहुँच-पहुँचकर अपना नाम सूचित करेगी। फिर आप पूछिये, (Which disease brought your death?) (आप किस रोगसे मरे थे?) वह आत्मा रोगका नाम भी इसी प्रकार एक एक अक्षरपर जाकर सूचित करेगी। प्रायः ये आत्मा भटकनेवाले, दुखी और असन्तुष्ट होते हैं, जिनका मोक्ष नहीं होता या जिन्हें कुछ दिनके लिये नरककी यन्त्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं। इसलिये उत्तर आता है—Murder, heartfailure या Suicide (हत्या, हृदयगति रुकनेसे मृत्यु या आत्महत्या)। इस प्रकार मरनेवाले व्यक्ति भूत-प्रेतकी योनिमें बहुत दिनोंतक दुखी भटकते रहते हैं और अपने दुःखकी करुण कहानी कहना चाहते हैं।

फिर आप उस प्रेतात्मासे उस-सम्बन्धी सारी जानकारी पूछिये। वह जल्दी-जल्दी सब कुछ बतलाता जायगा। कोई ५ मिनिट बाद आप अपने विषयमें भूत, भविष्य या वर्तमान-के बारेमें उससे कोई भी प्रश्न कीजिये। आपको कुछ-न-कुछ उत्तर मिलेगा। अक्सर इनकी बहुत-सी बातें सत्य होती हैं। बीते हुए युगके विषयमें कही गयी बातें, तो प्रायः शत प्रतिशत ठीक मिली हैं, पर भविष्यको बतानेमें अक्सर थोड़ी बहुत गल्ती रह जाती है। यदि आत्मा किसी बड़े महापुरुषका है, तो वह बहुत कुछ ठीक बातें बता देता है। यदि किसी छोटी उम्रके लड़केका है तो भविष्यवाणियाँ कुछ असत्य भी हो जाती हैं।

कई बार ये प्रेतात्मा खोयी हुई चीजोंका पता, परीक्षामें पास या फेल होना, व्यापारकी तेजी या मन्दी, विवाह, या पुत्र-पुत्री होनेकी सम्भावना भी बता देते हैं। एक बार एक व्यक्ति मेरे पास आये, जिनकी पत्नीकी सोनेकी जंजीर कहीं खो गयी थी। बड़े परेशान थे कि कौन चोर घरमें घुसकर चुरा ले गया। प्रेतात्माको बुलाकर पूछनेपर इस प्रकार बातचीत चली—

'क्या सोनेकी जंजीर इस घरसे बाहर है?'
उत्तर मिला—'नहीं!'
'सोनेकी जंजीर किस कमरेमें है?'
उत्तर मिला—'बायवाले कमरेमें।'
'उत्तर, दक्षिण, पश्चिम, पूर्व, किस दिशामें?'
उत्तर मिला—'पूर्वमें!'
'पूर्वमें तो एक बड़ा सन्दूक है। वह जंजीर दिखायी नहीं देती?'

उत्तर आया—'Behind box' (सन्दूकके पीछे)।
'जंजीर कौन चुराकर ले गया था?'
उत्तर आया—'Rats' (चूहे)।

सन्दूकके पीछे खोज-बीन की गयी। उसके पीछे कई चूहोंके बिल थे। उन्हीं बिलोंमेंसे एकके पास वह जंजीर पड़ी हुई थी।

प्रेतात्मा प्रायः सर्वज्ञ होते हैं। वायुमें ईथरके माध्यमसे एक क्षणमें ये दुनियाके किसी भी कोनेमें जाकर नयी-नयी जानकारियाँ दे सकते हैं। उनसे सैकड़ों प्रश्न पूछे जा सकते हैं। लेकिन यदि प्रेतात्मा जाना चाहता हो, तो वह कहेगा 'I am going. I am going' 'मैं जा रहा हूँ। मैं जा रहा हूँ'—ऐसे बताकर मुखे द्वारकी तरफ कटोरी भागनेकी कोशिश करेगी। आप अँगुलियाँ बहुत ही हल्केसे रखा किये रहें, तो वह कटोरी दौड़कर द्वारके बाहर निकल जायगी।

एक बार एक व्यक्तिने अपने पुत्रको एक हजार रुपये देकर बैंकमें जमा कराने भेजा। संयोगसे लड़का न लौटा। पाँच बज गये, पर लड़का वापस न आया। उन्हें भय हुआ कि कहीं किसी चोरने तो उसे नहीं पकड़ लिया है! जेब तो नहीं कट गयी! हत्या तो नहीं हो गयी है! चारों ओर दौड़-धूप की, पर लड़का लापता। बड़ी चिन्ता हुई। वह भागा-भागा मेरे पास आया। तत्काल प्रेतात्माओंका आवाहन किया गया। उनसे बातचीत इस प्रकार हुई।

'लड़का जीवित है?'
उत्तर—'हाँ!' (Yes)
'क्या वह इसी शहरमें है?'
उत्तर—'नहीं' (No)
'लड़का किस शहरमें है?'
उत्तर आया—'देहली' (Delhi)
'क्या उसके पास रुपया है?'
उत्तर आया—'हाँ' (Yes)
'उसके पास पूरा रुपया है?'
उत्तर—'नहीं!' (No)

…ते हैं; अन्यथा किन्हीं उच्चलोकके अपने सम्बन्धित आत्माओंसे भी सहायता मिल जाती है; परंतु उनकी शक्ति सीमित होती है। सातवें लोकके आत्मा नीचेके छः लोकोंमें जानेको स्वतन्त्र हैं, पर वे ऊपर (दिव्य धाम) नहीं जा सकते। इसी प्रकार अन्य लोकोंके आत्माओंके लिये भी नियम है कि वे ऊपर नहीं जा सकते, नीचे जा सकते हैं। यदि आपके चक्रका संरक्षण कोई नीचेके लोकके आत्माके हाथमें है तो वह ऊपरके आत्मापर शासन नहीं कर सकता। इसीसे चक्रपर अधिक बलवान् आत्मा आकर, झूठ बोलकर आपको धोखा दे सकते हैं और हानि पहुँचा सकते हैं। हमारे एक परिचित कर्मकाण्डी ब्राह्मण महानुभावके घरमें इसी प्रकार आकर चालीस आत्माओंने डेरा लगा दिया और उनके घरको तहस-नहस कर दिया।

यदि चक्रकर्त्ता भक्तिभाव एवं शुद्धविचारके महानुभाव हैं, तो ऐसी जगह 'ब्रह्मराक्षस'के आनेकी आशंका बनी रहती है; क्योंकि पवित्र चक्रपर उसको चैन मिलता है। ब्रह्मराक्षस वे मृत ब्राह्मण होते हैं जो किसी सिद्धिमें असफल होकर मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। इनपर वे ही चक्रकर्त्ता शासन कर सकते हैं, जो इनकी असफल सिद्धिसे अधिक बल रखते हों, अर्थात् शक्तिशाली सिद्ध हों या श्रीप्रभुके विशेष कृपापात्र हों। ये ब्रह्मराक्षस साधारण चक्र-संरक्षकोंसे नहीं रुकते तथा बिना बुलाये आ जाते हैं और मनचाहा करनेमें समर्थ होते हैं। इनमें अच्छे स्वभावके भी होते हैं, बुरेके भी। बुरे स्वभाववालोंसे घोर विपत्तिका सामना करना पड़ जाता है और इनसे बचाना हर-किसीकी सामर्थ्यसे बाहर होता है। इसीसे विनम्र निवेदन है कि प्लैंचेट आदिकी विद्या जितनी आसान है, उतनी ही भयावह भी है। इसलिये सोच-समझकर इस ओर लगना चाहिये। सर्वसाधारणको सचेत करनेकी दृष्टिसे ही यह लेख लिखा है। इस बारेमें किसी प्रकारका पत्र-व्यवहार नहीं किया जायगा।

मृतात्माका आवाहन क्या सत्य है ?

एक सज्जन पूछते हैं—'मृतात्माओंका आवाहन किया जाता है। आत्मा आते हैं। बात करते हैं। यह कहाँतक सत्य है ?'

इसका उत्तर है कि मृतात्मा आ सकते हैं, आते हैं। बिना बुलाये भी स्वेच्छासे, किसी भी वासना या ममताको लेकर, उनमेंसे जिनकी शक्ति हो, वे प्रकट दिखायी भी दे सकते हैं। [illegible], प्लैंचेट तथा माध्यम द्वारा भी बात कर सकते हैं। यह वास्तवमें सत्य है। परंतु मृतात्माओंको बुलाने, बात करने-करानेके जितने प्रसङ्ग कहे-सुने जाते हैं, वे सब सत्य ही हों—ऐसी बात नहीं है। इसमें विभिन्न कारणोंसे बहुत छल-फरेब चलता है। पैसे कमाने, ठगने, अन्य स्वार्थ साधन करने, अपनी महत्ता दिखलाने, नाम-यश प्राप्त करने या किसीको डरा-धमकाकर छिपे तौरपर वैर लेने आदिके लिये मिथ्या ढोंग रचे जाते हैं। विदेशोंमें ऐसे बहुत-से जालसाज लोगोंपर मुकदमे चलाये जाकर उन्हें सजा दी गयी है। अब भी ऐसे लोग पकड़े जाते हैं (श्री Simeon Edmunds लिखित 'Spiritulism, a critical survey' नामक पुस्तकका 'Fraud' शीर्षक अध्याय देखिये।) मुझे तो अपने देशके ही प्रसिद्ध आत्मा-आह्वानकारी कुछ सज्जनोंकी जालसाजीका प्रमाण मिला है। परंतु सभी मिथ्यावादी हैं, ऐसी बात भी नहीं है। कई जगह तो उनके अपने मस्तिष्ककी कमजोरी, प्रबल भावना, मानसिक [illegible] दुर्बलता आदिके कारण भी धोखा हो जाता है। समझा जाता है—आत्माका आना, पर वस्तुतः होती है—केवल अपने या दूसरेके मस्तिष्ककी कल्पना ही। इसलिये यह सर्वथा अनुभूत सत्य है कि 'आत्मा आते हैं और बात भी करते हैं।'

चौथी विधि भी सरल तथा बहुप्रचलित है ।

एक एकान्त कमरा प्रयोगके लिये चुन लिया जाता है। कमरेको जलद्वारा पवित्र कर धो लिया जाता है। इस प्रयोगमें एक बालक या बालिकाको चुना जाता है, जिसकी आयु १०–१२ वर्षके लगभग हो। जिस मृत व्यक्तिकी आत्माका आवाहन करना हो, उसकी तस्वीर कमरेमें रख दी जाती है।

कमरेमें धूप-दीप तथा अगरबत्तियाँ जलाना आवश्यक है। एक स्वच्छ दरीपर लड़का प्रयोगकर्ता तथा दर्शक बैठ जाते हैं। बालकके सामने वर्णमालाका पट्ट रख दिया जाता है। तत्पश्चात् सभी व्यक्ति मृत-आत्माका ध्यान करते हैं। जब प्रेतात्मा आता है तो वह बालकके माध्यमद्वारा प्रयोगकर्ताके प्रश्नोंका उत्तर वर्णमालाके पट्टकी सहायतासे देता है। बालक भावावेशमें अपनी अँगुलियोंको पट्टपर रखता जाता है और इन शब्दोंको जोड़कर प्रश्नोंके उत्तर प्राप्त किये जाते हैं।

अन्तिम विधि यह है कि आत्मा किसी माध्यमद्वारा आता है और अपना संदेश देता है। माध्यमके शरीरमें उस आत्माका कुछ समयके लिये प्रवेश होता है और वह जिज्ञासु व्यक्तियोंके प्रश्नोंका उत्तर देता है।

आत्माओंसे साक्षात्कार-सम्बन्धी प्रयोग भारतमें ही नहीं वरं विदेशोंमें भी हो रहे हैं। भूत-प्रेतोंके अस्तित्वमें अंग्रेज लोग भी बहुत विश्वास करते थे। द्वितीय महायुद्धके समय एक ब्रिटिश वैमानिक भूत कतिपय अन्य वैमानिकोंके साथ जर्मनीपर बम-वर्षा करता रहता था। इसकी चर्चा ब्रिटिश वायुसेनाके एयर मार्शल लार्ड डाउडिंगने भी अपने एक लेखमें की थी। परलोकगत आत्माओंके चित्र भी खींचे जा सकते हैं। प्रत्यक्ष दर्शन, उनसे बात-चीत करना, उनका स्पर्श करना आदि भी सम्भव है।

इंगलैंड और अमेरिकाकी कई आध्यात्मिक संस्थाएँ परलोक-विषयमें रुचि ले रही हैं। प्रेतात्माओंका अस्तित्व तर्कसे कम, पर श्रद्धा विश्वास धारण करनेसे सहज सिद्ध किया जा सकता है।

सर आर्थर कानन डायल, डी० एम० लिथ, सर आलिवर लाज एवं पीज आदि परलोक-विषयमें रुचि रखनेवाले विद्वान् हुए हैं।

साधकको विश्वास तथा धैर्यपूर्वक उपर्युक्त प्रयोगोंको करना चाहिये।

आत्मा जड़-जगत्से परे है।

भौतिकवादका अन्धानुकरण कर हम आध्यात्मिक तर्कोंकी उपेक्षा नहीं कर सकते।

अच्छी संतानके लिये क्या करे

हो सके तो गर्भाधानके समय सावधान रहकर पति-पत्नी दोनों सत्-संतान—पुत्र या कन्या-(जिसकी इच्छा हो) की प्राप्तिके लिये मनमें दृढ़ संकल्प करें।

जिस प्रकारकी वीर, धीर, भक्त, ज्ञानी, योगी, उदार आदि भावोंकी संतान अपेक्षित हो, उसी प्रकारके पुरुषों या स्त्रियोंके चित्र जिस कमरेमें गर्भिणी स्त्री रहती और सोती हो, उसमें लगायें।

गर्भकालमें स्त्री पुरुष-सहवास कभी न करे। ईश्वरनिन्दा, लड़ाई, कलह, विवाद, दुःख, शोक, विषाद, भय, क्रोध, हिंसा, असत्य, चोरी, छल, निन्दा-चुगली आदिसे सर्वथा बचे।

उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, पुराण, श्रीरामायण आदिकी कथाएँ, भगवल्लीलाएँ रोज सुने-पढ़े। सदा प्रसन्न रहे। सेवा-शुश्रूषा, सात्त्विक कर्म, सात्त्विक बात-चीत करे। सात्त्विक सादा भोजन करे। तामसिक वस्तुएँ—मांस, अण्डे, मछली, मद्य, प्याज-लहसुन तथा जूठन कभी न खाय। शारीरिक श्रम करे, पर ऐसा श्रम न करे जो गर्भविघातक हो।

रोज बड़ोंको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करे। हो सके तो प्रतिदिन भगवान्‌की पूजा करे। विष्णुसहस्रनाम आदिका पाठ करे।

महात्माओंकी सेवामें लग गया। मैं बालोचित चाञ्चल्यसे दूर रहकर उन महात्माओंकी सेवामें लगा रहता। मेरे स्वभावसे वे मुनिजन बहुत प्रसन्न हो गये। इस प्रकार उनकी सेवा, उच्छिष्ट भोजन तथा सम्पर्कके द्वारा उनके समीप बैठकर नित्य प्रेम ज्ञान-वैराग्ययुक्त उनके मुखसे हरिकथा सुनते-सुनते मेरा हृदय शुद्ध हो गया। चातुर्मास्यके अन्तमें चलनेके समय उन्होंने उस दिव्य ज्ञानका मुझे उपदेश भी कर दिया, जिससे विश्व मायामय एवं तदनन्तर भगवद्रूप दीखने लग जाता है।

'कुछ दिनोंके बाद सर्पदंशसे मेरी माताकी मृत्यु हो गयी। मैं चलते-चलते एक सघन वनमें पहुँचकर पीपल-वृक्षके नीचे बैठकर भगवान्का ध्यान करने लगा। मेरा मन जम गया तथा प्रभुके क्षणिक दर्शन हुए। पुनः आकाशवाणी हुई कि 'तुम शीघ्र ही अब ब्रह्माजीके पुत्ररूपसे उत्पन्न होकर मेरा सदा दर्शन कर सकोगे।' शरीर छूटनेपर मैं भगवत्पार्षद-देह धारण कर, कल्पान्तमें मैं ब्रह्माजीके हृदयमें प्रवेश कर गया। पुनः हजार चतुर्युगी (१४ मन्वन्तर जितनी लंबी अवधिकी रात्रि) बीतनेपर सृष्टिके आरम्भमें मरीचि आदि ऋषियोंके साथ ब्रह्माजीकी गोद (उत्संग) से मैं प्रकट हुआ। भगवान्के द्वारा यह वीणा भी प्राप्त हुई, जिसके सहारे मैं अनवरत हरिनाम-यशका कीर्तन करता सर्वत्र अव्याहत गतिसे विचरता हुआ चलता हूँ।' (भागवत १। अध्याय ५-६)

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें यह कथा दूसरे रूपमें है। चित्ररथ गन्धर्वोंका राजा पुत्रहीन था। वसिष्ठजीने उसे शिवमन्त्र-की दीक्षा दे दी और शिवोपासनामें दत्तचित्त होकर वह पुष्कर क्षेत्रमें तप करने लगा। पूरे १०० वर्षके बाद उसे भगवान् शंकरके दर्शन हुए। भगवान्ने उसे वर माँगनेको कहा। उसने एक वैष्णव पुत्र पानेकी लालसा व्यक्त की। तब उसे एक बालक हुआ (यही नारदजी थे)। यह बालक ही उपबर्हण कहलाया—

उपशब्दोऽधिकार्थश्च पूज्ये च बर्हणः पुमान्।
पूज्यानामधिको बालस्तेनोपबर्हणाभिधः॥
(ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० १२।४५)

''उप' उपसर्ग अधिकका वाचक है और पुंलिङ्ग 'बर्हण' शब्द पूज्यके अर्थमें प्रयुक्त होता है। पूज्योंमें भी अधिक पूज्य होनेके कारण यह बालक तदनुसार 'उपबर्हण' कहलाया।'

आगे चलकर उपबर्हणके मरने-जन्मनेकी कथाका बड़ा ही विस्तार है।

(३)

जुआरीसे राजा बलि कैसे हुआ ?

प्राचीन कालमें देवब्राह्मण निन्दक एक प्रसिद्ध जुआरी था। वह महापापी तथा व्यभिचार आदि अन्य दुर्गुणोंसे भी दूषित था। एक दिन कपटपूर्वक जुएमें उसने बहुत धन जीता। फिर अपने हाथोंसे पानका स्वस्तिकाकार बीड़ा बनाकर तथा गन्ध और माला आदि सामग्री लेकर एक वेश्याको भेंट देनेके लिये वह उसके घरकी ओर दौड़ा। रास्तेमें पैर लड़खड़ाये। पृथ्वीपर गिरा और मूर्छित हो गया। जब होश आया, तब उसे बड़ा खेद और वैराग्य हुआ। उसने अपनी सारी सामग्री बड़े शुद्ध चित्तसे वहीं पड़े हुए एक शिवलिङ्गको समर्पित कर दी। बस, जीवनमें उसके द्वारा यह एक ही पुण्यकर्म सम्पन्न हुआ।

कालान्तरमें उसकी मृत्यु हुई। यमदूत उसे यमलोक ले गये।

यमराज बोले—'ओ मूर्ख! तू अपने पापके कारण नरकोंमें यातना भोगने-योग्य है।' उसने कहा—'महाराज! यदि मेरा कोई पुण्य भी हो तो उसका विचार कर लीजिये।' चित्रगुप्तने कहा—'तुमने मरनेके पूर्व थोड़ा-सा गन्धमात्र भगवान् शंकरको अर्पित किया है। इसके फलस्वरूप तुम्हें तीन घड़ीतक स्वर्गका शासन—इन्द्रका सिंहासन प्राप्त होगा।' जुआरीने कहा—'तब इसका मुझे पहले पुण्यका ही फल प्राप्त कराया जाय।'

अब यमराजकी आज्ञासे उसे स्वर्ग भेज दिया गया। देवगुरु बृहस्पतिने इन्द्रको समझाया कि 'तुम तीन घड़ीके लिये अपना सिंहासन इस जुआरीके लिये छोड़ दो। पुनः तीन घड़ीके बाद यहीं आ जाना।' अब इन्द्रके जाते ही जुआरी स्वर्गका राजा बन गया। उसने सोचा कि 'चलो, अब भगवान् शंकरके [illegible] कोई [illegible] नहीं।' इसलिये अनुरक्त होकर उसने [illegible] (इंद्रासन के हेतु) दान करना प्रारम्भ किया। [illegible] अगस्त्यजीको दे दिया। [illegible] [illegible] विश्वामित्रजीको दे डाला। कामधेनु [illegible]

इस सैरन्ध्री कुब्जाने पूर्वजन्ममें कौन-सा ऐसा दुष्कर तप किया था कि जिसके फलस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्ण उसपर रीझ गये; क्योंकि उनकी प्रसन्नताका लेश तो देवताओंके लिये भी अति दुर्लभ है ?'

इसपर देवर्षि नारदजीने कहा कि 'बहुत पहलेकी बात है। त्रेतायुगमें शूर्पणखा भगवान् रामको पञ्चवटीमें देखकर इनमें आसक्त होकर मूर्च्छित-सी हो गयी थी । पर जब उसने देखा कि रामका स्नेह तो उसपर तनिक भी नहीं हो रहा है। वे उससे परम विरक्त तथा निर्विण्ण-से हो रहे हैं और उनका एकमात्र स्नेह सीताकी ओर ही है, तो वह सीताजीको खानेके लिये झपट पड़ी । इधर लक्ष्मणजीने भी तत्काल उसके नाक-कान काट डाले । फलतः वह रावणके पास आयी और उसने सीताको चुरानेकी प्रार्थना की। राम-लक्ष्मणको अकेले पाकर पुनः वह वनमें विवाह करनेके लिये प्रार्थना करने आयी[1]। पर उसकी एक भी न चली । अन्तमें जब रावण मार डाला गया और सीतासहित राम भी बीचमें जब उसपर न रीझे तो वह पुष्कर क्षेत्रमें निराहार रहकर शिवके (मृत्युंजय-त्र्यम्बक) स्वरूपका ध्यान करती हुई तपस्या करने लगी। जब प्रभुने दर्शन देकर उससे वर माँगनेको कहा तो उसने रामको पतिरूपमें कामना की। इसपर भगवान् शंकरने भविष्यद् द्वापरमें कृष्णरूपसे उन्हें प्राप्त करनेका उसे वर दे दिया। वही शूर्पणखा द्वापरमें चलकर कुब्जा हुई—

> सैव शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी ।
> अनूद्भूतमथुरायां तु कुब्जा नाम महामते ॥
> महादेववरेणापि श्रीकृष्णस्य प्रियाभवत् ।
>
> (गर्गसंहिता, मथुराखण्ड ११ । १०-११)

'इच्छानुसार रूप बदलनेकी सामर्थ्य रखनेवाली वही शूर्पणखा नामकी राक्षसी, हे महाप्राज्ञ! मथुरामें कुब्जाके रूपमें बनी । देवाधिदेव महादेवके वरदानसे ही वह श्रीकृष्णकी प्यारी बनी ।'

(२)

यह श्रीलोमशरामायण एवं गर्गसंहिताके अनुसार रामराज्यकी कैकेयी-दासी मन्थरा ही द्वापरमें कृष्णावतार (कंस-सैरन्ध्री) कुब्जा हुई । संक्षेपमें वह कथा इस प्रकार है—

रामराज्यमें विघ्न उत्पन्न करनेपर अयोध्यावासियोंने श्रीलोमशजीसे पूछा—'प्रभो ! यह मन्थरा ही केवल रामविरोधिनी क्यों है ? पशु-पक्षी तथा जड वृक्ष तक भगवान् रामके प्रेमी हैं ।'

इसपर लोमशजीने उत्तर दिया—'यह मन्थरा जन्मान्तरमें प्रह्लादकी पौत्री तथा विरोचनकी पुत्री थी । उस समय भी इसका नाम मन्थरा ही था । इसका छोटा भाई बलि जब माताके गर्भमें ही था, तब देवताओंने छलपूर्वक ब्राह्मणका रूप धारण कर विरोचनसे उसकी आयु ब्राह्मणोंको दान दे देनेकी प्रार्थना की । अतः विरोचनने अपना शरीर त्याग दिया । दैत्य निराश्रित हो गये । वे मन्थराकी शरणमें गये । मन्थराने उनको रक्षाका आश्वासन दिया । उत्साहित होकर शंबर, मय, बाणादि दैत्य युद्धार्थ निकले, पर वे देवताओंसे हार गये । तब मन्थराने क्रुद्ध होकर पाशके द्वारा समस्त देवताओंको बाँध लिया । नारदजीने देवताओंकी विपत्ति वैकुण्ठस्थित भगवान् नारायणके समक्ष निवेदित की । भगवान्‌की प्रेरणासे इन्द्रने मन्थराको मारकर बेहोश कर दिया और वह कुब्जा-सी हो गयी । वहाँ दैत्यस्त्रियोंने भी पीछे उसका बड़ा उपहास किया । वही मरकर उसी रूपमें काश्मीरमें उत्पन्न हुई और स्वर्ग लेनेके लिये कैकेयीकी दासी बनकर उसने रामको विघ्न डाला । उसे ही भगवान्‌ने अपना भक्तोंके कारण कृष्णावतारमें कुब्जा होनेका वरदान दिया ।' (लोमशरामायण पूर्वार्द्ध अध्याय ७ से १५ तक)

पद्मपुराण तथा महाभारत, वनपर्व अध्याय २७६ । ९-१० के अनुसार दुन्दुभी गन्धर्वी ही मन्थरा हुई—

> तेषां समक्षं गन्धर्वीं दुन्दुभीं नाम नामतः ।
> शशास वरदो देवो गच्छ कार्यार्थसिद्धये ॥
> पितामहवचः श्रुत्वा गन्धर्वी दुन्दुभी ततः ।
> मन्थरा मानुषे लोके कुब्जा समभवत् तदा ॥
>
> (महा०, वन० २७६ । ९-१०)

'प्रभुके सामने ही वरदानी देवता ब्रह्माजीने दुन्दुभी नामक गन्धर्वीको आदेश दिया—तुम [illegible]

---

1. इसके अनुसार वाल्मीकिरामायणकी 'अयोमुखी' भी यही है।
2. यह पूरा ग्रन्थ अभी 'अप्रकाशित' ही है।

1. [illegible]
[illegible]
([illegible])

उन दोनोंकी दुःस्थिति देखकर दयालु भगवान् वहाँ प्रकट हो गये और वेदशिराको अगले जन्ममें कालिय होकर स्वचरणलाभका तथा अश्वशिराको काकभुशुण्डि होनेका आश्वासन दिया—

साक्षात् काकभुशुण्डोऽभूद् योगीन्द्रो नीलपर्वते ॥
रामायणं जगौ यो वै गरुडाय महात्मने ॥
(गर्गसंहिता, वृन्दावनखं० १० । १५-१६)

'अश्वशिरा तब नीलपर्वतपर साक्षात् योगिराज काकभुशुण्डिके रूपमें जन्मे, जिन्होंने महात्मा गरुडको रामायणकी कथा सुनायी थी।'

काकभुशुण्डिकी अन्य अनेक जन्मान्तरोंकी कथा मानसके उत्तरकाण्डमें है, जो पाठकोंको ज्ञात ही है। योगवासिष्ठके भुशुण्डाख्यानमें काकजन्मवृत्त अन्य प्रकारसे है।

(७)

पूतना पूर्वजन्ममें कौन थी ?

भागवतमें लिखा है—'पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना।' (१० । ६ । ३५) 'पूतना संसारके बालकोंकी हत्या करनेवाली एवं उनका रुधिर पान करनेवाली राक्षसी थी।' 'पूतना बालघातिनी'। (१० । ६ । २) 'पूतना बालघातिनी थी।' 'विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहम्।' (१० । ६ । ८) 'उसे बालकोंको मारनेवाला हौआ समझकर' 'बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्।' (१० । ६ । ६) (बच्चोंको खोजती हुई यह बालिकाओंके लिये हौआ रूप बनी हुई पूतना) इत्यादि। अतः यह बालकोंको लगनेवाली एक भूतनी या राक्षसी है[१]। यह प्रायः नित्य है और इस कथाका तात्पर्य [illegible] है।

आनन्दरामायण, पूर्णकाण्ड, अध्याय ५। ३१, ३७ में लिखा है कि जब भगवान् श्रीराम सभक्त अयोध्यावासियोंके साथ स्वधाम चलने लगे, तब सीताजीके निन्दक धोबी तथा कैकेयीकी दासी मन्थराकी इच्छा न देखकर, इन्हें कुशके साथ भीतर भेज दिया। ये लोग प्रभुके साथ न गये। अतः कृष्णावतारमें यह रजक ही रजक हुआ और मन्थरा ही पूतना हुई—

तदा रामस्तं रजकं मन्थरां प्रेषयत्पुरीम्।
कुशेन सहवेगेन समाहूयाश्य सादरम्॥
पूर्ववैरमनुस्मृत्य नाऽग्रे यातामधर्मिणौ।
कृष्णावतारे तावेव रजको रजकोऽभवत्॥
मन्थरा पूतना जाता हतौ तौ पूर्ववैरतः॥
(आनन्दरामायण, पूर्णं० ५ । ३३-३५)

'तब श्रीरामने उस धोबीको (जिसने जानकीजीपर राक्षसके घरमें रहनेका आरोप लगाया था) तथा मन्थराको अपने बड़े पुत्र कुशके साथ शीघ्र अयोध्या लौटा दिया। उसी धोबीने मथुरामें (श्रीकृष्णावतारके समय) पुनः धोबीके रूपमें जन्म लिया और मन्थरा ही पूतना हुई तथा दोनों ही पूर्वजन्मके वैरके कारण श्रीकृष्णके द्वारा मारे गये।'

आदिपुराणके १८वें अध्यायमें लिखा है कि पूतना पूर्वजन्ममें कालभीरु नामक ऋषिकी कन्या 'चारुमती' थी। यह कक्षीवान् नामक महर्षिकी पत्नी थी। पतिके परदेश जानेपर यह एक शूद्रसे संसक्त हुई तथा पतिके वापस आने एवं सदुपदेश देनेपर भी निरन्तर दुराचार करती रही। अन्तमें कक्षीवान्ने उसे राक्षसी हो जानेका शाप दे दिया—

त्वं पापिष्ठा मां नूनं परपुंसि रता [illegible]।
भवतु राक्षसी [illegible] ॥
[illegible] ॥
(आदिपुराण १८ । [illegible])

[illegible] पूतना [illegible]

१. भागवत १० । ६ । ८ की टीकामें तथा भक्तिरसायनमें यह कहा है कि भगवान्ने पूतनावधके समय उसके जन्मान्तर [illegible] अपने नेत्र मूँद लिये।

२. [illegible]

३. आनन्दरामायणके अनुसार कुशकी राजधानी कुशावती, [illegible] आदि [illegible] गयी। यथा—

[illegible] कुशं [illegible]।
[illegible]॥
(आनन्दरामायण, पूर्णं० ५ । ११)

१. [illegible]

रामराज्यकी पुनर्जन्म-सम्बन्धी एक घटना—कुत्तेका न्याय

(लेखक—आचार्य श्रीमलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

भारतीय जनताकी दृष्टिमें रामायणकालीन दो महान् य उदाहरित हैं । उनकी समझमें 'राम-रावण' के युद्धके समान न तो कोई दूसरा युद्ध हो सकता है और न तो पहले हुआ । उसी प्रकार न तो रामराज्यके समान न्यायप्रिय दूसरा कोई राज्य होगा और न हुआ । किसी राज्यसे रामराज्यकी तुलना करना भी व्यर्थ ही है । अपनी प्रजाको राम-राजाने कितना सुख पहुँचाया, उसे यहाँ प्रकट नहीं किया जा सकता । आदिकविने रामराजाके प्रजा-रञ्जनसम्बन्धी कार्योंके उल्लेखमें एक अत्यन्त विचित्र घटनाका वर्णन उपस्थित किया है । इस वर्णनसे अवगत होता है कि राजा रामके राज्यमें मानव ही नहीं, किंतु पशुओं और पक्षियोंके प्रति आदर, स्नेह और न्याय करनेकी सहज प्रथा थी । राजा राम पशुओं और पक्षियोंके प्रति अपनी न्यायप्रियता अक्षुण्ण रखते थे ।

एक दिन राजा रामने अपने भाई लक्ष्मणसे कहा—'भाई लक्ष्मण ! देखो, राजदरबारके बाहर कोई न्याय प्राप्त करनेके लिये आया तो नहीं है ?' लक्ष्मण आज्ञा पाते ही तुरंत बाहर गये और चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा, उनको वहाँ कोई दुखिया दीख न पड़ा । लक्ष्मण राजमहलमें वापस आकर रामसे बोले—'प्रभो ! बाहर ऐसा कोई भी मानव नहीं है, जो क्षुब्ध हो या दुखी हो और जो कुछ निवेदन करनेके लिये आया हो ।' लक्ष्मणजीके वचनसे राजा रामको संतोष नहीं हुआ । राजा रामने लक्ष्मणसे पुनः कहा—'लक्ष्मण ! मुझे विश्वास है कि नीति और दण्ड-न्यायपद्धतिसे शासन करनेपर प्रजा सर्वदा सदाचार-तत्पर रहती है और उसे किसी प्रकारका कष्ट नहीं मिलता । ऐसा रहते हुए, तुम प्रजाके हित-चिन्तनमें सर्वदा संलग्न रहना । एक बार पुनः बाहर जाकर किसी भी अनाथ, अपराधी या न्यायार्थीका पता लगाओ । कोई भी ऐसा प्राणी यहाँसे निराश न जाय ।'

रामकी आज्ञा पाते ही लक्ष्मण पुनः बाहर गये । परंतु इस बार राजभवनके बाहर कोई भी मानव नहीं दिखायी दिया । फिर लक्ष्मणने देखा कि एक कुत्ता दुःखी-मन वहाँ बैठा है । लक्ष्मणको देखते ही वह कुत्ता उठ बैठा और दुःखी-मनकी भावनाको व्यक्त करते हुए जोर-जोरसे रोने लगा । कहा जाता है कि उन दिनों राजा और राजघरानेके लोग तथा विद्वान् लोग पशु और पक्षियोंकी भाषा जानते थे । पशुओंकी भाषाके ज्ञाता लक्ष्मणने कुत्तेसे रोनेका कारण पूछा—'हे सारमेय ! तुम्हारा क्या कार्य है ! निडर होकर कहो ।' लक्ष्मणका आश्वासन प्राप्त करके कुत्ता बोला—'प्रभो ! समस्त जीवोंके रक्षक, प्रशस्त कर्म करनेवाले राजा रामसे मुझे कुछ निवेदन करना है ।' कुत्तेकी बात सुनकर लक्ष्मणजी तुरंत राजसभामें पहुँचे और राजा रामसे उन्होंने कुत्तेकी कामना सुना दी । राजा रामने उसी समय कुत्तेको राजसभामें बुलाया और रामकी आज्ञा पाते ही लक्ष्मण बाहर आकर कुत्तेको बुला लाये । राजसभामें प्रवेश करनेके पूर्व लक्ष्मणने कुत्तेसे कहा था कि 'सारमेय ! राजा रामके सम्मुख जो कुछ कहना, सत्य-सत्य कहना ।' लक्ष्मणकी बात सुनकर कुत्तेने कहा—'नाथ ! देवमन्दिर और राजभवन तथा ब्राह्मण, अग्नि, इन्द्र, वरुण, सूर्य आदिके निवास-स्थानपर मेरे-जैसे कुत्तोंको नहीं जाना चाहिये । मैं राजा रामके महलमें कैसे जा सकता हूँ ! राजा शरीरधारी स्वयं धर्मका अवतार माना जाता है । राजा राम तो सर्वोपरि हैं । प्रजाके रक्षक, नीतिज्ञ और सत्यवादी, समदर्शी हैं । वही चन्द्र, सूर्य, पवन और अग्नि हैं । हे लक्ष्मण ! आप तुरंत राजा रामसे मेरे लिये आज्ञा प्राप्त कीजिये; बिना उनकी आज्ञाके मैं राजसभामें नहीं जा सकता ।' लक्ष्मण तुरंत राजभवनमें वापस गये और राजा रामसे बोले—'प्रभो ! राजभवनके बाहर एक कुत्ता है । वह आपसे कुछ निवेदन करना चाहता है । प्रतीक्षा कर रहा है । यदि आज्ञा हो तो उसे राजभवनमें बुला लूँ ।' लक्ष्मणका कथन सुनकर रामने तुरंत लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण ! तुरंत उस सारमेयको भीतर ले आओ । उसे मुझसे न्याय प्राप्त करनेका पूरा अधिकार प्राप्त है । प्रजाका कोई भी जीव हो, उसको मुझसे निवेदन करने और न्याय प्राप्त करनेका समान ही अधिकार है ।' लक्ष्मणजी कुत्तेको राजसभामें ले गये । राजा रामके पास पहुँचते ही वह कुत्ता भयभीत हो गया ।

श्रीरामने कुत्तेसे पूछा—'सारमेय ! तुम्हें जो कुछ कहना है, भय त्यागकर कहो ।' कुत्तेके सिरपर चोट थी । उसने

श्रीब्रह्माजी, धर्मराज और चित्रगुप्त

[पृष्ठ ५१२]

भगवान्‌के शरण होनेपर मायासे छुटकारा

(श्लोक ७ । १४)

[illegible] और उस यमद्वितीया-व्रतके प्रभावसे वह उत्तम [illegible] प्राप्त हुआ।

यह सुनकर राजा युधिष्ठिर भीष्मजीसे बोले—पितामह! [illegible] मनुष्योंको धर्मराज और चित्रगुप्तजीका पूजन [illegible] करना चाहिये? यह मुझसे कहिये।

भीष्मजी बोले—राजन्! यमद्वितीयाके विधानको [illegible]। एक पात्रपर धर्मराज और चित्रगुप्तकी मूर्ति [illegible] लिखे और उनकी पूजाकी कल्पना करे। वहाँ [illegible] दोनोंकी प्रतिष्ठा कर सोलह प्रकारकी सामग्रीसे श्रद्धा-भक्तियुक्त नाना प्रकारके पकवानों, मिठाइयों, फल-फूल-पान तथा दक्षिणादि सामग्रियोंसे धर्मराज और चित्रगुप्त-का पूजन करना चाहिये। फिर बार-बार नमस्कार करे, स्तुति करे। इस प्रकार पूजन करके दावात-कलमकी पूजा करे, कथा श्रवण करे, वक्ताको यथाशक्ति दक्षिणा दे। बहिनके घर भोजन करे और उसके लिये धन आदि पदार्थ दे। इस प्रकार भक्तिके साथ यमद्वितीयाका व्रत करने-वाला पुत्रोंसे युक्त होता और मनोवाञ्छित फल पाता है।

(यमद्वितीया-कथाके आधारपर)

भगवान् श्रीव्यास और कीड़ेका संवाद

(लेखक—श्रीलक्ष्मीकान्तजी त्रिवेदी)

भगवान्के इस निखिल प्रपञ्चमें उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्य युगानुसार हुआ ही करते हैं, परंतु कलि-युगमें अधम मनुष्योंका बाहुल्य हो जाता है। गोस्वामीजी-ने कहा है—

ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं॥

भगवान् श्रीरामके अवतारके विषयमें संदेह होनेपर काकभुशुण्डिने देवी पार्वतीजीसे ऐसा कहकर अपना रोष प्रकट किया था।

इस पापबहुल कलियुगमें प्रायः ऐसे ही मनुष्य सर्वत्र [illegible] हैं, जो न ईश्वरके अवतारपर, न धर्मपर, न पितृगणोंके [illegible] और न इतिहास-पुराणोंके पठन-पाठनपर ही विश्वास करते हैं। यद्यपि इन मनुष्योंके मध्य भी कभी-कभी ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं, जो उनको विस्मयमें डालनेवाली होती हैं, जैसा कि पुनर्जन्मकी घटनाएँ जो प्रायः 'कल्याण'के अङ्कोंमें प्रकाशित होती रहती हैं—फिर भी उन मनुष्योंके हृदयमें इन नहीं अङ्कुरित होता; क्योंकि वे श्रद्धा और [illegible] रहित होते हैं। पुनर्जन्म तो सभीका होता है; [illegible], जातिस्मरता किसीको ही प्राप्त होती है। हमारे [illegible] ऐसी बहुत-सी घटनाएँ हैं, जिनको पढ़ने या [illegible] मनुष्यकी धर्मपर, ईश्वरके अवतारपर, पुनर्जन्मपर, [illegible], नाना लोकोंकी सत्तामें और सत्कर्म करनेमें विश्वास होता है। यहाँ कुछ कथाओंका उल्लेख किया [illegible] रहा है—

(१)
जातिस्मर कीड़ा

शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजी युधिष्ठिरसे कहते हैं—हे राजन्! प्राचीन कालका वृत्तान्त है। एक समय भगवान् व्यास कहीं जा रहे थे। मार्गमें उनकी दृष्टि एक कीड़ेपर पड़ी, जो गाड़ीकी लीकमें बड़ी तेजीसे भागा जा रहा था। वे कीटके निकट आकर पूछने लगे—'कीट! तू क्यों इतनी आतुरतासे भागा जा रहा है? आज तुझपर कौन-सा भय आ गया है?' कीटने कहा—'भगवन्! देखिये न, यह बैलगाड़ी कितनी तेजीसे चली आ रही है। मुझे भय है कि यहाँ आकर यह मुझे कुचल न डाले।' व्यासजीने कहा—'कीट! तू तो अधम तिर्यक् योनिमें उत्पन्न हुआ है। तेरा तो मर जाना ही अच्छा है। बता तो किस पापके कारण तू इस तिर्यक् योनिमें उत्पन्न हुआ है?' कीटने कहा—'भगवन्! पूर्वजन्ममें मैं एक धनी शूद्र था। सदा ब्राह्मणोंका अपमान करता था। मैं बड़ा कंजूस तथा सूदखोर था। [illegible] मित्र पशुओंका अपहरण किया करता था। मैंने कभी दान और सत्कर्म नहीं किया। सदा अपने कुटुम्ब और [illegible] पोषण करता था। [illegible] और [illegible] करता था। हाँ, मैं अपनी बूढ़ी [illegible] सेवा करता था और एक बार अपने घरपर आये हुए अतिथिका सत्कार किया था। इसी पुण्यके कारण मेरी [illegible] नहीं [illegible] रही है।' व्यासजीने कहा—'कीट! अब तुझे मेरा दर्शन

[illegible] पु० ६१—

पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया। इससे उन्होंने हमें तिर्यक् योनिमें जानेका शाप दे दिया। अतः हे गुरो! वे ही हम चारों ब्राह्मण-कुमार हैं, जो अब पक्षी होकर शार्ङ्गीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। हमारी माता महाभारतके युद्धमें मारी गयी है। गुरो! अब हमें आज्ञा दीजिये। हम विन्ध्य पर्वतकी मनोहर कन्दरामें निवास करेंगे।' मार्कण्डेयजीने कहा—'हे जैमिनि! तुम वहाँ जाओ। वे वेदज्ञानसम्पन्न पक्षी तुम्हें उपदेश करेंगे।' तब महर्षि जैमिनि वहाँ गये और पूर्वज्ञानकी स्मृतिसे सम्पन्न उन पक्षियोंने उनके सारे संदेह निवारण कर दिये।

(मार्कण्डेयपुराण)

इस प्रकार हमारे धर्मग्रन्थों तथा इतिहास-पुराणादिके स्वाध्यायसे पता लगता है कि पशु-पक्षीतक भी जातिस्मर होते हैं और उन्हें भी पूर्वजन्मका ज्ञान होता है। ऐसे ही लोगोंके सत्य प्रमाणोंसे पुनर्जन्म ठीक-ठीक निश्चय होता है। हमारा भारत तो सदासे ही अध्यात्मज्ञान-सम्पन्न रहा है। दुर्भाग्यका विषय है कि इस कलिकालमें वह ज्ञान क्षीण हो चला है और मानव दानव बनता जा रहा है। भगवान् रक्षा करें।

पुनर्जन्मका सिद्धान्त हिंदुत्वका दीपस्तम्भ

(लेखक—श्रीगुरुजी श्रीमाधव सदाशिव गोळवलकर)

[प्रेषक—श्रीमाधव']

हिंदूके लिये जीवन लक्ष्यहीन कदापि नहीं है। पर उसका लक्ष्य कोई ऐसी महानता नहीं है, जो धन, पद, नाम अथवा ख्यातिसे नापी जाय। उसके सामने तो एक ही लक्ष्य है, अर्थात् अपनी वास्तविक प्रकृति—अन्तर्वर्ती देवत्वकी स्फुल्लिंग, उसमें निवास करनेवाले परम सत्यकी अनुभूति, जो मनुष्यको स्थायी परम आनन्दकी अवस्थातक ले जाती है। किंतु मनुष्यका जीवनकाल बहुत छोटा है। इतने अल्पकालमें वह इस सर्वश्रेष्ठ अवस्थातक कैसे पहुँच सकेगा? वह तो इस शरीरके विषयमें भी पूर्णतया नहीं जानता, यद्यपि वह जीवनपर्यन्त इसका उपयोग करता है। ऐसी दशामें वह सर्वव्यापक अविनाशीको कैसे जान सकता है, जो शरीरमें अन्तर्भूत है। कार्य-कारणका नियम सिखाता है कि हमारी प्रत्येक क्रिया 'कारण'का विशेष परिणाम होती है। यह कार्य-कारणका चक्र वृद्धिगत होना, [illegible] होना और परा अवस्थाको प्राप्त होना है। इसलिये [illegible] यह वर्तमान सत्ता उसके वास्तविक अस्तित्वकी पूरी [illegible] नहीं है। मनुष्यमें विशिष्ट एवं सहज प्रेरणा इस बातकी रहती है कि वह विस्तार करे और अपनी दिव्य प्रकृतिको व्यक्त करे। वह तबतक बार-बार जन्म लेता रहेगा, जबतक उसमें अपनी सभी दिव्य आत्माके विषयमें अज्ञानता शेष भी रहेगा तथा यदि वह प्रामाणिकतासे प्रयत्न करता रहेगा तो प्रत्येक जन्ममें अधिकाधिक प्रगति करता जायगा।

उस परम सत्यके साथ अपनी एकताकी अनुभूतिके लिये यह पुनर्जन्मका सिद्धान्त मानव आत्माके लिये एक बहुत ही बड़ी आशा है। यह तो हिंदुत्वका ही दीपस्तम्भ है, जो इस अमर आत्माके प्रकाशको निर्दिष्ट करता है कि इस वर्तमान जीवनके साथ ही सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता, अपितु हमारे सामने एक जीवनके पश्चात् दूसरा जीवन अर्थात् अनन्त मार्ग पड़ा हुआ है, कार्योंके करनेके लिये और अपने लक्ष्यतक पहुँचनेके लिये। इस विशाल मानव-समाजमें यह हिंदू ही है, जो आशा और विश्वासकी दीपिकाको ऊँचा उठाये हुए है। हमारे सभी दर्शन हमारी तथा प्राचीन अथवा अर्वाचीन सभी शास्त्रोंमें यही सत्य अन्तर्हित है। ['विचार-नवनीत' से संकलित]

नित्य सुखमय परम धामकी प्राप्ति

जन्म-मरणके व्यथ घोरका तबतक कभी न होगा अंत।
जबतक मानव नहीं भजेगा श्रद्धायुत मनसे भगवंत॥
दुःखयोनि भोगोंका मोह छुड़ाकर भजन बनाता संत।
पा जाता फिर हमसे मानव सुखमय नित्य परम-धाम अनंत॥

देवता लोग असंतुष्ट होकर अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, महामारी, युद्ध, हत्या-लूट आदि सङ्कटोंकी वर्षा कर रहे हैं। अन्न, दूध-घी, तेल-गुड़ आदिका भाव बीसों गुणा बढ़कर भी उनका प्राप्त होना कठिन हो गया है। लोग हाहाकार मचाते हुए बुरी हालतमें जीवन-यापन करते हुए अकाल काल-कवलित हो रहे हैं।

ऐसी नारकीय दुःखद स्थितिसे मुक्त होना हो, लोक-परलोकको सुख-शान्तिमय बनाना हो तथा उपर्युक्त चौरासी लाख योनिके अवर्णनीय सङ्कटोंसे सदाके लिये त्राण पाना हो तो मनुष्यमात्रको, खास करके भारतके पचास करोड़ हिंदुओंको अपने प्रतापी प्रातःस्मरणीय पूर्वज—मनु, पृथु, ध्रुव, धर्मवीर, हरिश्चन्द्र, नारद, भृगु, दधीचि, मार्कण्डेय, व्यास, पाण्डव, विक्रमादित्य, प्रताप, शिवाजी आदिका पवित्र पदानुसरण कर 'कार्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि' का सुदृढ़ व्रत लेकर निम्नलिखित बातोंको तत्काल दृढ़तापूर्वक आचरणमें लाना आवश्यक है।

(१) जन्म-मरणके दुःखसे बचना हो तो मन और इन्द्रियोंको वशमें करे। विषय-विकार उत्पन्न करनेवाली वस्तुओं तथा व्यसनोंसे चित्तको हटा ले। जगन्नियन्ता श्रीहरिकी शरणागति ग्रहण करे। उनके आज्ञास्वरूप वेद-शास्त्र और वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार आचरण करे। कुतर्की तथा नास्तिक लोगोंसे दूर रहे। प्रभुका दर्शन प्राप्त करनेके लिये ध्रुव-प्रह्लादके आदर्शोंका तन्मय होकर अनुकरण करे।

(२) घास-तृण खाकर विश्वके लोगोंको पोषण प्रदान करनेवाली सर्वदेवमयी, जगज्जननी गोमाता तथा उनके वंशकी सेवा-पूजा तथा पालन-पोषण और रक्षण करता रहे। गाँव-गाँवमें गोशाला खोले तथा सुविधानुसार घर-घरमें गाय पाले। देशमें सर्वत्र पूर्णरूपसे गोवंशकी हत्या कानूनके द्वारा बंद करानेकी भरपूर चेष्टा करे।

(३) इहलोकमें सब प्रकारसे सुखी, सुरक्षित रहने तथा मृत्युके पश्चात् मोक्ष-प्रभुपदकी प्राप्तिके लिये देशके शासनको श्रीरामचन्द्रजीके, धर्मराज युधिष्ठिर, पृथु, विक्रमादित्य-जैसे अत्यन्त न्यायी और धर्मनिष्ठ पुरुषोंके हाथमें देनेकी भरपूर चेष्टा करे, जिससे धर्मराज्य अथवा रामराज्यका दर्शन हो और प्रजा सब प्रकारकी विपत्तियोंसे त्राण पाकर धर्मानुष्ठानमें लगे।

(४) आबादी घटानेके लिये परिवारनियोजन-जैसी धर्मविरुद्ध योजनाओंको बंद करके इन्द्रियसंयमपूर्वक बढ़ती हुई प्रजाकी रक्षाके लिये कुटीर, उद्योग तथा परती जमीनको कृषियोग्य बनाकर अधिक अन्न-उत्पादनकी चेष्टा करनी चाहिये।

(५) घूस-रिश्वत लेनेवालों और चोरबाजारी करनेवालोंको कठोर दण्ड देकर भ्रष्टाचार बंद करना चाहिये।

(६) समयपर वृष्टि हो सके, इसके लिये विधिपूर्वक यज्ञ-याग, हवन-होम आदि शुद्ध गायके घीके द्वारा करवाना चाहिये, जिससे देवगण प्रसन्न होकर समयपर जलवर्षण करें और धन-धान्यकी वृद्धिसे प्रजा सुखी हो सके।

(७) सिनेमा मनोरञ्जन प्रदान करनेके स्थानमें चोरी-लूट, व्यभिचार-अनाचार आदि दुर्गुणों और नाना प्रकारके व्यसनोंको बढ़ावा दे रहा है। इसलिये सिनेमाको सदाके लिये बंद कर देना चाहिये।

(८) आजकल हिंदूजातिके आचार्य, विद्वान् तथा श्रीमन्त लोगोंकी शिथिलताके कारण ईसाई-मुसल्मान आदि विधर्मी बड़े जोर-शोरसे हिंदूधर्मके विरुद्ध मिथ्या आक्षेप करके हिंदुओंको ईसाई-मुसल्मान बना रहे हैं। इसको रोकनेके लिये हिंदुओंको जागना चाहिये और जिन गरीबोंको फुसलाकर तथा सुविधा देकर धर्मच्युत किया जा रहा है, उनकी सेवा-सुविधा करते हुए धर्मान्ध अन्य धर्मियोंको मुँहतोड़ जवाब देकर हिंदूजातिकी रक्षा करनी चाहिये।

(९) राष्ट्रभाषाके पदसे अंग्रेजीको हटा देना चाहिये और वह स्थान मातृभाषा तथा हिंदीको देना चाहिये। साथ ही विश्वकी सारी भाषाओंकी जननी संस्कृतका सार्वभौम प्रचार होना चाहिये। दुनियाकी सभी भाषाएँ अपूर्ण हैं, केवल संस्कृत ही परिपूर्ण है; क्योंकि वह देव-भाषा है। हिंदूमात्रको शान्ति और सुख प्रदान करनेवाली देवभाषा संस्कृतको अत्यन्त उत्साहसे [illegible] चाहिये। संस्कृतकी पाठशालाओं और विद्यालयोंको [illegible] भारतीय हिंदू संस्कृतिके अनुरूप बनाना चाहिये, जिससे [illegible] हो तथा [illegible] उत्पन्न हो।

तात्पर्य यह है कि हिंदुओंकी [illegible] लिए गयी है। [illegible]

[illegible]

हमें आशा है कि [illegible]

इसके पहले ब्रह्माके अहंकारमें, इसके पहले विष्णुके चित्तमें, इसके पहले शंकरके हृदयमें, इसके पहले शक्तिके कण्ठमें, इसके पहले श्रीकृष्णके भालमें, इसके पहले श्रीरामके मस्तकमें। रामके मस्तककी किसीको खबर नहीं।

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं॥

इन पूर्वजन्मोंको नहीं समझा और फिर संसारकी वासना रह गयी तो मस्तकसे भालमें, भालसे कण्ठमें, कण्ठसे हृदयमें, हृदयसे चित्तमें और चित्तसे अहंकार-बुद्धिवाले मनमें पड़कर शून्याकाशद्वारा वाग्दान वातावरणमें, कामाग्निद्वारा अधःपतित होकर कर्म-मल-चक्रमें जन्म-मरण होता रहता है। 'निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।'

निर्मम-निरहंकार हो जाय तो बस, मुक्ति।

आठ चिरंजीवी

(लेखक—योगाभ्यासी श्रीमदनमोहनजी वानप्रस्थी)

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥
सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
जीवेद्वर्षशतं सोऽपि सर्वव्याधिविवर्जितः॥
(आचारमयूख)

अर्थात् 'अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम और मार्कण्डेय—इन आठों चिरंजीवोंकी जो मनुष्य प्रातःकाल श्रद्धापूर्वक स्तुति करता है, वह सब रोगोंसे मुक्त होकर सुखपूर्वक सौ वर्षकी आयुको प्राप्त होता है तथा सदा-सर्वदा नीरोग रहता है।'

इसपर तार्किक कहते हैं कि 'अश्वत्थामाने उत्तराका गर्भपात करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। द्रौपदीके सोते हुए पाँच पुत्रोंका वध किया—ऐसे दुष्टात्माको चिरंजीव कहना अनुचित है। बलिने गर्दभकी योनि प्राप्त की; व्यासका जन्म शूद्रासे हुआ; विभीषणने वंशका क्षय किया; परशुरामने क्षत्रियोंका विनाश किया—ऐसे दोषयुक्त पुरुष स्मरण करनेके योग्य नहीं हैं।' इसपर आस्तिक संत समाधान करते हैं कि "महाभारत, अनुशासनपर्वमें सावित्री-स्तोत्रमें वर्णन है कि ये आठ चिरंजीवी दिव्य मुनि हैं। इस लोकमें इनमें प्रत्येक मुनि सात-सात प्रकारसे शान्ति और कल्याणकारी दिक्पाल कहे गये हैं। ये जिस दिशामें हैं, उस ओरको मुख रखनेवालेकी शरणागतके समान रक्षा की जाती है। ये लोगोंको पवित्र करनेवाले हैं। इनका कीर्तन करनेवाला यदि संतानकी कामना करता है तो उसको संतानकी प्राप्ति होती है। निर्धन धन पाता है और धर्म, अर्थ, कामकी सिद्धि प्राप्त करता है। जो प्रभुकी शरणमें चले जाते हैं, वे घोर पातकी होनेपर भी पापसे मुक्त होकर दिव्य स्वरूपको प्राप्त होते हैं।

विभीषणके लिये 'गोपालसहस्रनाम'में उल्लेख आया है कि 'लङ्काधिपकुलध्वंसी विभीषणवरप्रदः।'—श्रीभगवान् रावणका नाश करते हैं और विभीषणको वरदान देते हैं। भगवान् भक्त-पुण्यात्माको सदैव वरदान दिया करते हैं। अतः विभीषण सब तरहसे दोष-मुक्त होकर भी अमरताको प्राप्त हुए। मानसमें भी वर्णन आया है कि जब विभीषण भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें पहुँचकर प्रार्थना करते हैं—

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। मागा तुरत सिंधु कर नीरा॥
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥
(५। ४८। ४-५)

सारांश यह है कि जिस मनुष्यको किसी प्रकार भी श्रीभगवान्‌का संसर्ग प्राप्त हो जाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर परम विशुद्ध अमरत्वको प्राप्त करता है। ऐसी ही कृपा भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामापर करके उसे अमरत्व प्रदान किया। महाभारत, शान्तिपर्वमें दर्शाया है कि बलिने दान करके इन्द्रासन प्राप्त किया, पर इन्द्रने सब असुरोंसहित राजा बलिपर विजय करके ब्रह्माजीसे हाथ जोड़कर पूछा कि 'हे भगवन्! दान करते हुए जिसका धन कभी कम नहीं हुआ, उस बलिको मैं नहीं पा रहा हूँ। उसका पता मुझसे बताइये।' इसपर ब्रह्माजीने कहा—'अब वे [illegible] बलि किसी उजड़े हुए मकानमें ऊँट, गधा, बैल अथवा घोड़ा होगा।' इन्द्र बोले—'हे ब्रह्मन्! यदि मैं [illegible]

गीता, गङ्गा, गायत्री, गयाश्राद्ध और गोसेवासे प्रेतत्व-मुक्ति

(लेखक—आचार्य श्रीगदाधर रामानुजम् 'फलाहारी')

भगवत्कृपासे जीवको परम दुर्लभ मनुष्ययोनि प्राप्त हुई है। इसमें सत् साधन करनेपर इहलोकमें सुख-शान्ति और मृत्युके उपरान्त श्रीवैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास आदि दिव्यलोकोंकी प्राप्ति होती है। नहीं तो, कर्मानुसार पशु-पक्षी, कीट पतंगादि स्थूलशरीरमय चौरासी लक्ष योनियोंका भ्रमणचक्र निरन्तर चलता रहता है।

जैसे उपर्युक्त दृष्ट योनियाँ जीवको कर्मानुसार प्राप्त होती हैं, वैसे ही प्रेतादि सूक्ष्म अदृष्ट योनियाँ भी हैं, जिनमें आहार निद्रादि शारीरिक आवश्यकता-पूर्तिकी प्रबल आकाङ्क्षा होती है, किंतु पञ्चतत्त्वमय स्थूलशरीरके अभावमें उक्त वस्तुओंकी प्राप्ति हो नहीं सकती। क्षुधा-पिपासा-वस्त्र आदिके अभावसे दुःखित होकर प्रेत-जीव इधर-उधर भटकते रहते हैं। यही भ्रमित दुर्गतिप्राप्त जीव जब सम्बन्धियों, इष्ट-मित्रों और परिचित जनोंको दिखायी देते हैं या किसी प्रकारका उपद्रव करते हैं, तब सबको भयकी अनुभूति होती है और तब 'इनका उद्धार कैसे हो ?' यह प्रश्न सम्मुख आता है। एक महात्माके कथनानुसार—'भूत-प्रेतोंकी भी सात्त्विक, राजसिक, तामसिक—तीन श्रेणियाँ होती हैं, जो अपने-अपने गुण-स्वभावानुसार कार्य करते हैं। इनकी भी अन्य योनियोंकी तरह कर्मानुसार आयु-मर्यादा निश्चित रहती है। इसके पूर्व यदि शास्त्रलिखित कोई उपाय किया जाय तो इन्हें शीघ्र मुक्ति मिल जाती है, नहीं तो, अवधि-समाप्तिपर स्वयं ही योनिमुक्त हो जाते हैं।'

आधुनिक शिक्षित समुदाय विज्ञानकी दुहाई देकर भूत-प्रेतोंको केवल मिथ्या भ्रम मानता है। चिकित्सा-विज्ञान इन्हें मानसिक व्याधियोंके रूपमें गणना करता है। किंतु हमारे सनातन प्रमाण-ग्रन्थ हैं। उनमें 'अकाल-मृत्यु, दुष्कर्म, मृत्युके उपरान्त प्रेतकल्याणार्थ किये जानेवाले संस्कारोंके अभाव या उनके विधिवत् न होने आदि कारणोंसे (इत्यादि) जीवको उक्त योनियोंमें भटकना पड़ता है।' इन शब्दोंमें ऐसा वर्णन है, वहाँ प्रेतत्वमुक्तिके विविध उपाय भी बताये गये हैं। श्रीमद्भागवत-माहात्म्यका धुन्धुकारी-प्रसंग 'उदाहरण' लोकप्रसिद्ध है।

गीतापाठ, गङ्गास्नान, गायत्रीजप, गयाश्राद्ध और गो-सेवा—प्रेतत्वमुक्तिके सर्वोत्तम सुगम उपाय हैं। उक्त साधनोंके द्वारा किस प्रकार प्रेतत्वसे मुक्ति मिली, ऐसी कुछ घटनाएँ यहाँ दी जा रही हैं, जो सिद्ध महात्मा वैकुण्ठवासी स्वामी श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी महाराजके जीवनकालकी और आजसे करीब सत्तर वर्ष पूर्वकी हैं। उक्त सत्य घटनाएँ स्वामीजीके उत्तराधिकारी वै० वा० स्वामी श्रीनिवासाचार्यजी एवं अन्य सम्बन्धित सज्जनोंके मुखसे सुनी हुई हैं।

(१)

श्रीमद्भगवद्गीता

भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे निकली हुई दिव्य अमृतवाणी है, जिसके श्रवणमात्रसे परम दुर्लभ मोक्षकी प्राप्ति होती है।'.........नगरसे बाहर एक स्थान है, जिसके सम्बन्धमें ऐसा प्रसिद्ध था कि इसमें कुछ दुर्गति-प्राप्त आत्माओंका निवास है। समीपमें ही एक अन्य स्थान था, जिसका मालिक स्वामीजीका अनन्य भक्त था। उसने एक दिन दुःखित होकर सम्मुखके स्थानमें होनेवाली घटनाओंके सम्बन्धमें बताया कि 'किस प्रकार रात्रिमें वहाँ-पर विविध छाया-आकृतियाँ उभरती हैं और विलीन हो जाती हैं। विभिन्न पशु-पक्षियोंकी आवाजें आती हैं और फिर पत्थर गिरने लगते हैं। पहले तो यह सब उस मकान-तक ही सीमित था, किंतु अब तो समीपके सब लोग इससे भयभीत हैं। लोगोंने रात्रिमें इस ओर आना भी छोड़ दिया है। आदि.........।' यह सुनकर आपने उस भक्तके यहाँ निवास किया तो मध्यरात्रिके बाद आपने स्वयं देखा कि उपर्युक्त सभी घटनाएँ यथार्थमें घटित होती हैं। दूसरे दिन स्थानीय १८ पण्डितोंको बुलाकर १८ दिनोंके लिये गीतापाठका आयोजन उस स्थानके सामने शुरू करा दिया, जिसमें छः विद्वान् एक साथ बैठकर चार घंटा दिन और चार घंटा रात्रि—इस प्रकार गीताजीका पाठ करते थे। पूर्णाहुति-में गीता अध्याय ११ श्लोक ३६ से ४६ तकका हवन, ब्राह्मण-भोजन हुआ और १२ पाठोंपर—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।

ने चतुर्भोर, उन्माद, मानसिक व्याधि बतायी; उनकी चिकित्सा हुई, फायदा नहीं हुआ। जब स्वामीजीसे इसकी मुक्तिका उपाय पूछा गया, तब उन्होंने रोगिणीको स्वयं देखकर ही उपाय बतानेके लिये कहा। उसके ऊपर जिस समय आवेश आया, उस समय स्वामीजीको बुलाया तो रोगिणीने दूरसे ही उनको देखकर प्रथम साष्टाङ्ग प्रणाम किया और फिर एकदम निढाल होकर गिर गयी और अस्पष्ट वाणीमें कुछ बड़बड़ाने लगी। स्वामीजीने उसको 'विष्णुसहस्रनाम'का एक पाठ सुनाया और ········की पत्नीका नाम लेकर पूछा कि 'क्या तुम वही हो? तुम तो बड़ी धार्मिक भगवद्भक्त पतिपरायणा स्त्री थी। तुम्हारी यह गति कैसे हुई?' इसके उत्तरमें प्रारब्धको ही उसने कारण बताते हुए कहा कि 'देहान्तके समय मेरा मन सांसारिक वस्तुओं तथा कार्योंमें रह गया था। अब आप महात्मा हैं, मेरी मुक्तिका उपाय कीजिये। आपके इस पाठसे मुझे बड़ी शान्ति मिली है।'

स्वामीजीने उसके श्वसुर, सास, पति—सबको सम्बोधित करते हुए कहा कि 'इसका गयाश्राद्ध करवा दो। गयाश्राद्धसे निश्चय ही इसकी मुक्ति हो जायगी।' परिवारवालोंने विधिवत् गयाश्राद्ध करवाया। अन्तिम पिण्डदानके दिन स्वप्नमें आकर उसने बताया कि 'अब मैं मुक्त होकर भगवद्धामको जा रही हूँ।'

(५)

गोसेवा

एक व्यक्तिने बहुत ही अल्प मूल्यपर पूर्वबंगालमें एक जूट प्रेस खरीदा, जिसके सम्बन्धमें ऐसा प्रसिद्ध था कि जो भी व्यक्ति यह प्रेस लेगा, उसको कोई आर्थिक लाभ तो होगा ही नहीं, साथ ही उसको लेते ही कुछ अमङ्गल भी हो जायगा। बात भी सत्य थी। फिर भी, इतनी बड़ी सम्पत्ति अल्प मूल्यमें मिल रही है, जानकर उन्होंने प्रेस खरीद लिया। प्रेस लेनेके बाद कई प्रकारकी शारीरिक, मानसिक विपत्तियाँ आयीं। जगन्नाथ-रथयात्राके लौटकर जब स्वामीजी कलकत्ता पधारे और उनके यहाँ ठहरे तो उन्होंने स्वामीजीसे उपर्युक्त सब बातें बतायीं और एक दिन स्वामीजीको प्रेस दिखानेके लिये भी उस स्थानपर ले गये। गङ्गातटपर सुरम्य स्थानपर विस्तृत जगहमें प्रेस देखकर स्वामीजीने कहा कि 'तुम्हारे ऊपर भगवान्‌की कृपा है, जो ऐसा स्थान अनायास ही प्राप्त हो गया है। अब इसको बेचनेका विचार छोड़कर ऐसा उपाय करो, जिससे इसका अमङ्गल दूर हो जाय। वह उपाय है—'गो-सेवा'। यहाँपर यथाशक्ति अच्छी गायें रक्खो। कुछ गायोंका दूध स्वयं अपने उपयोगमें न लाकर उनके बछड़ोंको ही पीने दो। प्रेमपूर्वक उनके चारा-दाना आदिकी सुव्यवस्था करो और स्थानके मध्यमें भगवान् श्रीगोपालकृष्णका सुन्दर छोटा-सा मन्दिर बनवा दो। इस कारखानेके सभी अमङ्गल स्वयमेव दूर हो जायँगे।'

उन्होंने ऐसा ही किया। भगवत्कृपा और गोसेवासे जो कारखाना 'भूतहा प्रेस'के नामसे प्रसिद्ध था, उसमें सुख-शान्ति और समृद्धिका निवास हो गया। पहले जो लोग उसमें काम करनेको तैयार नहीं थे, कहा करते थे कि उसकी मशीनोंको रात्रिमें भूत चलाते हैं; उसी स्थानपर गोसेवाके प्रभावसे नयी-नयी मशीनें लगने लगीं और उस कारखानेसे स्वामीको पर्याप्त लाभ मिलने लगा।

'गीता, गङ्गा, गायत्री, गयाश्राद्ध एवं गोसेवासे निश्चय ही प्रेतत्वसे मुक्ति मिलती है।' ऐसा शास्त्र-वचन है और एक सिद्ध महात्माके जीवनमें घटित उपर्युक्त घटनाएँ इस सत्यका ज्वलन्त प्रमाण हैं। आज भी यदि श्रद्धा, भक्ति और विश्वासके साथ ऐसे कार्योंमें गीतापाठ, गायत्रीजप, गङ्गास्नान, गया-श्राद्ध और गोसेवा की जाय तो निश्चय ही मुक्ति मिलती है। किंतु उपर्युक्त सात्त्विक कार्य होना चाहिये—आधिकारिक, श्रद्धासम्पन्न, शुद्ध सदाचारी [illegible] के द्वारा निःस्वार्थभावसे!

'गीता' वाणी कृष्णकी [illegible] [illegible]।
'गङ्गा' [illegible] पावन [illegible] [illegible]।
पावन [illegible] महान मंत्र, 'गायत्री' [illegible]।
'गयाश्राद्ध'की [illegible] मन [illegible] [illegible]।
'गोसेवा' भी पुण्य है, [illegible] [illegible] [illegible]।
साधन हैं ये मुक्तिके, [illegible] [illegible] [illegible]॥

ने कनुप्रदोष, उन्माद, मानसिक व्याधि बतायी; उनकी मैं चिकित्सा हुई, फायदा नहीं हुआ । जब स्वामीजीसे इसकी मुक्तिका उपाय पूछा गया, तब उन्होंने रोगिणीकी स्थिति देखकर ही उपाय बतानेके लिये कहा । उसके स्वजनोंने जिस समय आवेश आया, उस समय स्वामीजीको बुलाया तो रोगिणीने दूरसे ही उनको देखकर प्रथम साष्टाङ्ग प्रणाम किया और फिर एकदम निढाल होकर गिर गयी और अस्पष्ट वाणीमें कुछ बड़बड़ाने लगी । स्वामीजीने उसको विष्णुसहस्रनाम'का एक पाठ सुनाया और'''''''की संबंधियोंका नाम लेकर पूछा कि 'क्या तुम वही हो ? तुम तो बड़ी धार्मिक भगवद्भक्त पतिपरायणा स्त्री थी । तुम्हारी यह गति कैसे हुई ?' इसके उत्तरमें प्रारब्धको ही उसने कारण बताते हुए कहा कि 'देहान्तके समय मेरा मन सांसारिक वस्तुओं तथा कार्योंमें रह गया था । अब आप महात्मा हैं, मेरी मुक्तिका उपाय कीजिये । आपके इस पाठसे मुझे बड़ी शान्ति मिली है ।'

स्वामीजीने उसके श्वसुर, सास, पति—सबको सम्बोधित करते हुए कहा कि 'इसका गयाश्राद्ध करवा दो । गयाश्राद्धसे निश्चय ही इसकी मुक्ति हो जायगी ।' परिवारवालोंने यथाविधि गयाश्राद्ध करवाया । अन्तिम पिण्डदानके दिन स्वप्नमें आकर उसने बताया कि 'अब मैं मुक्त होकर भगवद्-धामको जा रही हूँ ।'

(५)

गोसेवा

एक व्यक्तिने बहुत ही अल्प मूल्यपर पूर्वबंगाल-में एक जूट-प्रेस खरीदा, जिसके सम्बन्धमें ऐसा प्रसिद्ध था कि जो भी व्यक्ति यह प्रेस लेगा, उसको कोई आर्थिक लाभ तो होगा ही नहीं, साथ ही उसको लेते ही कुछ अमङ्गल भी हो जायगा । बात भी सत्य थी । फिर भी, इतनी बड़ी मशीन अल्प मूल्यमें मिल रही है, जानकर उन्होंने प्रेस खरीद लिया । प्रेस लेनेके बाद कई प्रकारकी शारीरिक, [illegible] आयीं । जगन्नाथ-यात्रासे लौटकर जब [illegible] कलकत्ता पधारे और उनके यहाँ ठहरे तो उन्होंने [illegible] उपर्युक्त सब बातें बतायीं और एक दिन स्वामी-जीको प्रेस दिखानेके लिये भी उस स्थानपर ले गये । गङ्गा-तटपर सुरम्य स्थानपर विस्तृत जगहमें प्रेस देखकर स्वामीजी-ने कहा कि 'तुम्हारे ऊपर भगवान्‌की कृपा है, जो ऐसा स्थान अनायास ही प्राप्त हो गया है । अब इसको बेचनेका विचार छोड़कर ऐसा उपाय करो, जिससे इसका अमङ्गल दूर हो जाय । वह उपाय है—'गो-सेवा' । यहाँपर यथाशक्ति अच्छी गायें रक्खो । कुछ गायोंका दूध स्वयं अपने उपयोगमें न लाकर उनके बछड़ोंको ही पीने दो । प्रेमपूर्वक उनके चारा दाना आदिकी सुव्यवस्था करो और स्थानके मध्यमें भगवान् श्रीगोपालकृष्णका सुन्दर छोटा-सा मन्दिर बनवा दो । इस कारखानेके सभी अमङ्गल स्वयमेव दूर हो जायँगे ।'

उन्होंने ऐसा ही किया । भगवत्कृपा और गोसेवासे जो कारखाना 'भूतहा प्रेस'के नामसे प्रसिद्ध था, उसमें सुख-शान्ति और समृद्धिका निवास हो गया । पहले जो लोग उसमें काम करनेको तैयार नहीं थे, कहा करते थे कि उसकी मशीनोंको रात्रिमें भूत चलाते हैं; उसी स्थानपर गोसेवाके प्रभावसे नयी-नयी मशीनें लगने लगीं और उस कारखानेके स्वामीको पर्याप्त लाभ मिलने लगा ।

'गीता, गङ्गा, गायत्री, गयाश्राद्ध एवं गोसेवासे निश्चय ही प्रेतत्वसे मुक्ति मिलती है ।' ऐसा शास्त्र-वचन है और एक सिद्ध महात्माके जीवनमें घटित उपर्युक्त घटनाएँ इस सत्यका ज्वलन्त प्रमाण है । आज भी यदि श्रद्धा, भक्ति और विश्वासके साथ ऐसे प्राणोंमें गीतापाठ, [illegible], गङ्गास्नान, गया-श्राद्ध और गोसेवा की जाय तो निश्चय ही मुक्ति मिलती है । किंतु उपर्युक्त धार्मिक कार्य होना चाहिये—आधिकारिक, [illegible] [illegible] के द्वारा निःस्वार्थभावसे !

'गीता' [illegible]
'गङ्गा' [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

(३) 'व्यासभाष्य'के मतानुसार—

धारणा-ध्यान-समाधिके अभ्यासमे सकाम कर्मोंका त्याग करके चित्तके बन्धनका निराकरण किया जाता है। बन्धनके कारणको शिथिल करनेपर, नाड़ियोंमें संयम करके चित्तके उनमें आवागमन करनेके मार्गका ज्ञान किया जाता है और इस प्रकार चित्त-बन्धके कारणोंके शिथिल हो जानेपर और नाड़ियोंमें चित्तके परिभ्रमण करनेके मार्गका ज्ञान हो जानेपर योगी अपने शरीरसे इन्द्रियोंसहित चित्तको निकालकर दूसरे प्राणीके शरीरमें प्रविष्ट कर सकता है।

'तत्त्ववैशारदी' एवं 'योगवार्तिक' आदि ग्रन्थोंमें भी परकाय-प्रवेशकी यही प्रक्रिया दी हुई है।

(४) 'योगवासिष्ठ'के मतानुसार—

रेचक प्राणायामके अभ्यासरूप युक्तिसे मुखद्वारा १२-१२ अङ्गुल परिमित देशमें प्राणको चिरकालतक स्थिर रखनेपर योगी अन्य शरीरमें प्रवेश कर सकता है।

(५) शौनकऋषिके कथनानुसार—

सुपुष्पादिसप्तसूक्तानि जपेच्चेद्विष्णुमन्दिरे।
मार्गशीर्षेऽयुतं धीमान् परकायं प्रवेशयेत्॥
निवर्तध्वं जपेत् सूक्तं परकायाच्च निर्गतः।

परकाय-प्रवेश एवं कायोद्गमनकी सिद्धिके लिये सुपुष्पादि सूक्त एवं 'निवर्तध्वम्'से प्रारम्भ होनेवाले सप्तसूक्तोंका जप करना चाहिये। शौनकऋषिके कथनानुसार परकाय-प्रवेशकी साधना मार्गशीर्ष मासमें प्रारम्भ की जानी चाहिये और ग्यारह मासोंके अनन्तर परकाय-प्रवेशकी सिद्धि प्राप्त होती है।

(६) शंकराचार्यके कथनानुसार—

'सौन्दर्य भास्कर'के कथनानुसार भगवान् शंकराचार्य ने हृदयमें 'पद्माभिधानाख्य'के अनुसार ध्यान करनेसे भी परकाय-प्रवेशकी सिद्धि होती है।

(७) भगवान् शंकराचार्यके कथनानुसार द्वितीय विधि—

भगवान् शंकराचार्यके कथनानुसार निम्न यन्त्रके द्वारा 'सौन्दर्यलहरी'का ८७ क्रमाङ्कका श्लोक नित्यकी एक सहस्र बार जपनेपर परकायप्रवेशकी सिद्धि प्राप्त होती है। यन्त्र निम्न है—
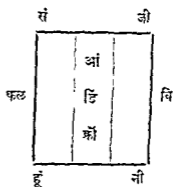
(८) तन्त्रमतानुसार—

तन्त्रशास्त्रवेत्ता परकाय-प्रवेशकी साधना तत्त्वसाधन-की प्रक्रियासे भी मानते हैं। प्रातःवेलामें आकाशतत्त्वके उदय होनेकी स्थितिमें १२ घण्टेतक सततरूपसे आकाशतत्त्व-का संयम करना पड़ता है। आकाशतत्त्वमें स्थापित आनेपर खेचरीमुद्राकी साधना करनी पड़ती है। खेचरी-मुद्राकी सिद्धि होनेपर परकाय-प्रवेशकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

(९) पाश्चात्य विधिके अनुसार—त्रिकुटीपर त्राटक करनेकी विधि—

परकाय-प्रवेशकी साधनाके लिये भ्रूमध्यमें त्राटक करते हुए यह भावना करनी पड़ती है कि 'मैं एवं मेरा सूक्ष्मशरीर इस स्थूलशरीरसे बाहर आ रहा है।' अपनी प्रबल इच्छाशक्तिसे नियमित रूपसे प्रतिदिन यह भावना करते हुए ध्यान करनेसे यथासमय सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरसे प्रोद्गमित हो जाता है और सूक्ष्मशरीरके स्थूलशरीरसे बहिर्गमनकी क्रिया सम्पन्न हो जानेपर [illegible] प्रकार अपना सूक्ष्मशरीर अपने स्थूलशरीरमें प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार किसी भी प्राणीके शरीरमें प्रविष्ट किया जा सकता है।

(१०) पाश्चात्य विधिके अनुसार—निद्राकृतिका संयमन—

पाश्चात्य परामनोवैज्ञानिकोंके कथनानुसार [illegible] [illegible] साधनाका अभ्यास करनेपर भी सूक्ष्मशरीरका स्थूलशरीरसे प्रोद्गमन होता है।

साधक [illegible] यह [illegible] है कि 'मैं आज अमुक स्थान देखूँगा या अमुक [illegible] कि मैं [illegible] अमुक स्थानपर जाऊँगा या अमुक [illegible] करूँगा।'

(३) 'व्यासभाष्य'के मतानुसार—

धारणा-ध्यान-समाधिके अभ्याससे सकाम कर्मोंका त्याग करके चित्तके बन्धनका निराकरण किया जाता है। बन्धनके कारणको शिथिल करनेपर, नाड़ियोंमें संयम करके चित्तके उनमें आवागमन करनेके मार्गोंका ज्ञान किया जाता है और इस प्रकार चित्त-बन्धके कारणोंके शिथिल हो जानेपर और नाड़ियोंमें चित्तके परिभ्रमण करनेके मार्गका ज्ञान हो जानेपर योगी अपने शरीरसे इन्द्रियोंसहित चित्तको निकालकर दूसरे प्राणीके शरीरमें प्रविष्ट कर सकता है।

'तत्त्ववैशारदी' एवं 'योगवार्तिक' आदि ग्रन्थोंमें भी परकाय-प्रवेशकी यही प्रक्रिया दी हुई है।

(४) 'योगवासिष्ठ'के मतानुसार—

रेचक प्राणायामके अभ्यासरूप युक्तिसे मुखद्वारा १२-१२ अङ्गुल परिमित देशमें प्राणको चिरकालतक स्थिर रखनेपर योगी अन्य शरीरमें प्रवेश कर सकता है।

(५) शौनकऋषिके कथनानुसार—

सुपुण्यादिमहासूक्तानि जपेच्चेद्विष्णुमन्दिरे।
मार्गशीर्षेऽयुतं धीमान् परकायं प्रवेशयेत्॥
निवर्तध्वं जपेत् सूक्तं परकायाच्च निर्गतः।

परकाय-प्रवेश एवं कायोद्गमनकी सिद्धिके लिये सुपुण्यादि महासूक्त एवं 'निवर्तध्वम्'से प्रारम्भ होनेवाले महासूक्तोंका जप करना चाहिये। शौनकऋषिके कथनानुसार परकाय-प्रवेशकी साधना मार्गशीर्ष मासमें प्रारम्भ की जानी चाहिये और ग्यारह मासोंके अनन्तर परकाय-प्रवेशकी साधना सम्पन्न होती है।

(६) श्रीशंकराचार्यके कथनानुसार—

श्रीशंकर भास्करके कथनानुसार भगवान् शंकराचार्य-के ग्रन्थ 'प्रपञ्चसारादि'के अनुसार ध्यान करनेसे भी परकायप्रवेशकी सिद्धि होती है।

(७) भगवान् शंकराचार्यके कथनानुसार द्वितीय विधि—

भगवान् शंकराचार्यके कथनानुसार निम्न यन्त्रके साथ 'सौन्दर्यलहरी'का ८७ क्रमाङ्कका श्लोक नित्यप्रति एक सहस्र बार जपनेपर परकायप्रवेशकी सिद्धि प्राप्त होती है। यन्त्र निम्न है—

सं जी
फल आं ह्रिं क्रौं वि
हूं नी

(८) तन्त्रमतानुसार—

तन्त्रशास्त्रवेत्ता परकाय-प्रवेशकी साधना तत्त्वसाधन-की प्रक्रियासे भी मानते हैं। प्रातःवेलामें आकाशतत्त्वके उदय होनेकी स्थितिमें १२ घण्टेतक सततरूपसे आकाशतत्त्व-का संयम करना पड़ता है। आकाशतत्त्वमें स्थापित होनेपर खेचरीमुद्राकी साधना करनी पड़ती है। खेचरी-मुद्राकी सिद्धि होनेपर परकाय-प्रवेशकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

(९) पाश्चात्त्य विधिके अनुसार—त्रिकुटीपर त्राटक करनेकी विधि—

परकाय-प्रवेशकी साधनाके लिये भ्रूमध्यमें त्राटक करते हुए यह भावना करनी पड़ती है कि 'मैं एवं मेरा सूक्ष्मशरीर इस स्थूलशरीरसे बाहर जा रहा है।' अपनी प्रबल इच्छाशक्तिसे नियमित रूपसे प्रतिदिन यह भावना करते हुए ध्यान करनेसे यथासमय सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरसे प्रोद्गमित हो जाता है और सूक्ष्मशरीरके स्थूलशरीरसे बहिर्गमनकी क्रिया सम्पन्न हो जानेपर [illegible] अपना सूक्ष्मशरीर अपने स्थूलशरीरमें प्रविष्ट हो सकता है, [illegible] प्रकार किसी भी प्राणीके शरीरमें प्रवेश किया जा सकता है।

(१०) पाश्चात्त्य विधिके अनुसार—निद्रास्थितिमें संयमन—

पाश्चात्त्य परलोकविज्ञानवेत्ताओंके कथनानुसार [illegible] निद्रावस्थाकी साधनाका अभ्यास करनेपर भी सूक्ष्मशरीरका स्थूलशरीरसे प्रोद्गमन होता है।

[illegible] साधनाकालमें यह निश्चय भी करना है कि 'मैं आज अमुक स्वप्न देखूँगा या अमुक स्थानमें [illegible] अमुक स्थानपर जाऊँगा या अमुक कार्य करूँगा।'

श्रीशंकराचार्यका परकाया-प्रवेशके लिये शरीर-त्याग

नहीं खाना पीया तो भूखा-प्यासा मर जायगा, इसलिये उसे [illegible] नामक गाँवके पं० हुकमचन्दकी पत्नी ब्राह्मणी, जो [रसू]लपुर जाटानमें ही आयी हुई थी, उसके द्वारा खानेका [प्रब]न्ध कर दिया। वर्षोंतक बराबर यह ब्राह्मणी ही उसे [अप]ने हाथोंसे रोटी बनाकर खिलाती रही। अब न तो [वह] जाटोंके घरोंकी रोटी खाता था और न मिट्टीकी हाँडीका [औटा] हुआ दूध पीता था। बड़ी ही पवित्रताका ध्यान [रख]ता था। वह बड़ा ही उदास-सा रहा करता था। [य]दि मिट्टीकी हाँडीके बदलेमें पीतलके बरतनोंमें दूध औटा-[क]र दिया जाता था तो उसे वह पी लिया करता था।

एक दिन लगभग चार वर्षके पश्चात् जसवीरकी माँ [श]ककली जाटनी उसे अपने साथ लेकर अपने मैके जा [रही] थी। मार्गमें वह स्थान पड़ता था, जहाँ कि शोभारामके [बरा]तमें रथसे गिरकर उसकी मृत्यु हुई थी; वहाँसे दो [रास्ते] जाते थे। एक तो ग्राम बहेड़ीको और दूसरा रास्ता [ग्रा]म परईको। जसवीर लड़केने अपनी माँसे कहा—'माँ! मैं [जब] शोभाराम था, तब मैं यहाँपर रथसे गिरा था। हमारे [घ]रका रास्ता तो उधर (बहेड़ी ग्रामकी ओर संकेत [कर]के कहा) को है। माँ बच्चेकी बातको यों ही झूठी [ब]ताकर उसका हाथ पकड़कर अपने मैके परईको चल दी।

मार्च सन् १९५८ की बात है कि केन कोआपरेटिव [सो]साइटीका कामदार श्रीजगन्नाथप्रसाद, जो बहेड़ी-[निवा]सी था, एक दिन अपने किसी कार्यवश उसी [ग्रा]म रसूलपुर जाटानमें गया। वहींपर यह गिरधारीसिंह[का] लड़का जसवीर बच्चोंके साथ खेल रहा था। उसने जो [साम]नेसे आते हुए उस बहेड़ीनिवासी कामदार [जगन्ना]थको देखा तो उसे तुरंत पहचान लिया। उसने [जगन्ना]थको जोरसे आवाज देकर पुकारा। जगन्नाथने [चकि]त होकर देखा कि मुझे यहाँ कौन पुकारता है, पर [उसे] अपना कोई परिचित व्यक्ति दिखायी नहीं दिया। [उस]ने घर वहाँसे आगेको चल दिया।

[तब] लड़के जसवीरने पुनः पुकारा—'अरे जगन्नाथ! यहाँ सुन, [मैं] पुकारता हूँ।' जगन्नाथ यह सुनकर उसके पास [गया] तो जसवीरने जगन्नाथसे राम राम की। जगन्नाथसे [कहा]—'जगन्नाथ! तू मुझे मेरे गाँव बहेड़ी ले चल।' जगन्नाथने [इस]से कभी देखा नहीं था और न उसे जानता था। [त]ो जगन्नाथने उससे कहा—'तू कौन है और तू किसका [है]?' इसपर जसवीरने जगन्नाथको अपनी शुरूसे लेकर अबतककी सारी घटना सुना दी। जगन्नाथने आश्चर्यचकित होकर पूछा—'तू फिर यहाँपर कैसे आ गया?' तो उसपर जसवीरने कहा—'गिरकर मरनेके बाद मुझे और कोई खाली जगह नहीं मिली। मैं इस शरीरको खाली देखकर इसमें घुस गया।'

जगन्नाथ अपने गाँव बहेड़ी गया तो उसने पूरी-की-पूरी घटना गाँववालोंको सुनायी। गाँवमें जिसने भी सुना, वही आश्चर्यचकित रह गया। लड़केके ताऊ-चाचा आदि सभी घरवाले गाँव रसूलपुर जाटान गये। लड़के जसवीरने तुरंत सबको पहचान लिया। सबको नाम ले-लेकर 'राम-राम' किया। लड़केके सम्बन्धियोंने उससे अनेकों प्रश्न किये। उसने बड़े संतोषजनक उत्तर दिये। बहेड़ीसे आनेवाले उन ग्रामीणोंमेंसे एक व्यक्तिने, जो कि उसी रथमें सवार था, जिस रथमेंसे गिरकर शोभारामकी मृत्यु हुई थी, बालक जसवीरसे पूछा—'मेरा नाम क्या है?'

जसवीरने कहा—'मैं तुम्हारा नाम तो भूल गया हूँ, किंतु मुझे इतना अवश्य याद है कि जिस समय मैं उस रथसे गिर गया था तो तुमने ही मुझे उस समय अपनी गोदमें लिटाये रक्खा था।' यह सुनकर वह आश्चर्यचकित हो गया। उसने सबके सामने यह स्वीकार किया कि वास्तवमें मैंने ही इसे रथमेंसे गिरनेपर रथमें लिटाया और इसे अपनी गोदमें लिटाये रक्खा था।' वे जसवीर लड़केको लेकर बहेड़ी ग्राममें गये तो मोदाना [illegible]' स्टेशनपर आकर जसवीरसे आगे-आगे चलनेको कहा गया। लड़का सीधा अपने घरपर आ गया। उसने सबको घरवालोंका नाम ले-लेकर पुकारा और सबको राम-राम किया। उसने उस समय यह भी हठ किया—'मैं अब अपने घर यहींपर रहूँगा। मैं वापस नहीं जाऊँगा।' उसने सबको पहचाना और सब बातें ठीक-ठीक बतायीं।

अब जसवीर दोनों जगह रहता है। कभी अपने पहले जन्मके घर अपने बाल-बच्चोंमें बहेड़ी चला जाता है, तो कभी रसूलपुर जाटान गाँवमें आ जाता है। हमें रसूलपुर जाटानमें जाकर उससे मिलनेका सुअवसर प्राप्त हुआ था और हमने स्वयं उससे प्रश्नोत्तर करके उपर्युक्त सारी बातोंको उसके मुँहसे सुना था।

भगवान् शंकराचार्य तथा आद्य [illegible] परकाया-प्रवेशकी घटनाएँ हुई हैं, पर वे तो योगी थे। जसवीर लड़का तो योगी नहीं था, पर [illegible]

नहीं खाता-पीता तो भूखा-प्यासा मर जायगा, इसलिये उसे निवास नामक गाँवके पं० हुकमचन्दकी पत्नी ब्राह्मणी, जो रसूलपुर जाटानमें ही आयी हुई थी, उसके द्वारा खानेका प्रबन्ध कर दिया। क्योंकि बराबर यह ब्राह्मणी ही उसे अपने हाथोंसे रोटी बनाकर खिलाती रही। अब न तो कसाईर जाटोंके घरोंकी रोटी खाता था और न मिट्टीकी हाँडीका औटा हुआ दूध पीता था। बड़ी ही पवित्रताका ध्यान रखता था। वह बड़ा ही उदास-सा रहा करता था। यदि मिट्टीकी हाँडीके बदलेमें पीतलके बरतनोंमें दूध औटा-कर दिया जाता था तो उसे वह पी लिया करता था।

एक दिन लगभग चार वर्षके पश्चात् जसवीरकी माँ शकुन्तली जाटनी उसे अपने साथ लेकर अपने मैके जा रही थी। मार्गमें वह स्थान पड़ता था, जहाँ कि शोभारामके रथमें रथसे गिरकर उसकी मृत्यु हुई थी; वहाँसे दो रास्ते जाते थे। एक तो ग्राम वहेड़ीको और दूसरा रास्ता ग्राम परईको। जसवीर लड़केने अपनी माँसे कहा—'माँ! मैं जब शोभाराम था, तब मैं यहाँपर रथसे गिरा था। हमारे घरका रास्ता तो उधर (वहेड़ी ग्रामकी ओर संकेत करके कहा) को है। माँ बच्चेकी बातको यों ही झूठी समझकर उसका हाथ पकड़कर अपने मैके परईको चल दी।

मार्च सन् १९५८ की बात है कि केन कोआपरेटिव सोसाइटीका कामदार श्रीजगन्नाथप्रसाद, जो वहेड़ी निवासी था, एक दिन अपने किसी कार्यवश उसी ग्राम रसूलपुर जाटानमें गया। वहींपर वह गिरधारीसिंह जाटका लड़का जसवीर बच्चोंके साथ खेल रहा था। उसने जो अपने सामनेसे आते हुए उस वहेड़ीनिवासी कामदार जगन्नाथको देखा तो उसे तुरंत पहचान लिया। उसने जगन्नाथको जोरसे आवाज देकर पुकारा। जगन्नाथने चकित होकर देखा कि मुझे यहाँ कौन पुकारता है, पर उसे अपना कोई परिचित व्यक्ति दिखायी नहीं दिया। इसलिये वह वहाँसे आगेको चल दिया।

लड़केने जसवीरने पुनः पुकारा—'अरे जगन्नाथ! यहाँ सुन, मैं मैं पुकारता हूँ!' जगन्नाथ यह सुनकर उसके पास गया तो जसवीरने जगन्नाथसे राम राम की। जगन्नाथसे कहा—'जगन्नाथ! तू मुझे मेरे गाँव वहेड़ी ले चल।' जगन्नाथने इसे पहले कभी देखा नहीं था और न उसे जानता था, इसलिये जगन्नाथने उससे कहा—'तू कौन है और तू किसका लड़का है?' इसपर जसवीरने जगन्नाथको अपनी मृत्युसे लेकर अबतककी सारी घटना सुना दी। जगन्नाथने आश्चर्यचकित होकर पूछा—'तू फिर यहाँपर कैसे आ गया?' तो उत्तरमें जसवीरने कहा—'गिरकर मरनेके बाद मुझे और कोई खाली जगह नहीं मिली। मैं इस शरीरको खाली देखकर इसमें घुस गया।'

जगन्नाथ अपने गाँव वहेड़ी गया तो उसने पूरी-की-पूरी घटना गाँववालोंको सुनायी। गाँवमें जिसने भी सुना, वही आश्चर्यचकित रह गया। लड़केके ताऊ-चाचा आदि सभी घरवाले गाँव रसूलपुर जाटान गये। लड़के जसवीरने तुरंत सबको पहचान लिया। सबको नाम ले-लेकर 'राम-राम' किया। लड़केके सम्बन्धियोंने उससे अनेकों प्रश्न किये। उसने बड़े संतोषजनक उत्तर दिये। वहेड़ीसे आनेवाले उन ग्रामीणोंमेंसे एक व्यक्तिने, जो कि उसी रथमें सवार था, जिस रथमेंसे गिरकर शोभारामकी मृत्यु हुई थी, बालक जसवीरसे पूछा—'मेरा नाम क्या है?'

जसवीरने कहा—'मैं तुम्हारा नाम तो भूल गया हूँ, किंतु मुझे इतना अवश्य याद है कि जिस समय मैं उस रथसे गिर गया था तो तुमने ही मुझे उस समय अपनी गोदमें लिटाये रक्खा था।' यह सुनकर वह आश्चर्यचकित हो गया। उसने सबके सामने यह स्वीकार किया कि वास्तवमें मैंने ही इसे रथमेंसे गिरनेपर रथमें लिटाया और इसे अपनी गोदमें लिटाये रक्खा था।' वे जसवीर लड़केको लेकर वहेड़ी ग्राममें गये तो 'मोहना सिंह' स्टेशनपर आकर जसवीरने आगे आगे चलनेको कहा गया। लड़का सीधा अपने घरपर आ गया। उसने सबको यथोचित नाम ले-लेकर पुकारा और सबको राम राम किया। उसने उस समय यह भी हठ किया—'मैं अब अपने घर रहूँगा। मैं वापस नहीं जाऊँगा।' उसने सबको पहचाना और सब बातें ठीक-ठीक बतायीं।

अब जसवीर दोनों जगह रहता है। कभी अपने पहले जन्मके घर अपने बाल-बच्चोंमें वहेड़ी चला जाता है, तो कभी रसूलपुर जाटान गाँवमें आ जाता है। हमें रसूलपुर जाटानमें जाकर उससे मिलनेका सुअवसर प्राप्त हुआ था और हमने स्वयं उससे प्रश्नोत्तर करके उपर्युक्त सारी बातें उसके मुँहसे सुना था!

भगवान् शंकराचार्य तथा [illegible] ऐसी [illegible] घटनाएँ हुई हैं, [illegible] किंतु [illegible] सुनने भी ऐसी नहीं [illegible] [illegible]

यमदूत-दर्शन

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

अभी सन् १९६७ की बात है कि हम हापुड़ 'सनातनधर्म-सम्मेलन'में गये हुए थे। वहाँ हम हापुड़के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता एवं भूतपूर्व यू० पी० विधान परिषद् (लैजिस्लेटिव कौंसिल) के सदस्य माननीय बाबू श्रीलक्ष्मीनारायणजी बी० ए० से भेंट करनेके लिये उनके मकानपर गये। आपसे जिस समय हमारी बातें होने लगीं तो हमने कुछ शास्त्र-पुराणोंके सम्बन्धकी सत्य घटनाएँ आपके सामने रक्खीं। सहसा बाबू श्रीलक्ष्मीनारायणजीने कहा—

"भक्त रामशरणदासजी! मैं विशेष तो आपके शास्त्र-पुराणोंकी बातोंको जानता नहीं हूँ; कारण कि मैंने शास्त्र-पुराणोंको देखा ही नहीं है। मैं तो बहुत कालतक राजनीतिमें रहा हूँ। जितनी मुझसे बन सकी है, मैंने निःस्वार्थ-भावसे देशकी सेवा की है। मैंने अपने जीवनमें एक-दो ऐसी घटना अवश्य देखी है कि जिन्हें अपनी आँखोंसे देखकर मुझे भी कुछ शास्त्र-पुराणोंमें श्रद्धा हुई।"

"क्या देखी है आपने अपने जीवनमें आश्चर्यजनक घटना?" मैंने उनसे पूछा।

उन्होंने बतलाया—"मैंने जो महान् भयंकर विशालकाय ... वाले दो व्यक्ति देखे थे, वे भूत थे या वे यमराजके भेजे हुए दूत थे, यह तो मैं नहीं जानता; पर आज भी यदि मुझे उनका भूलसे भी कभी स्मरण हो जाता है तो मैं बड़ा भयभीत हो जाता हूँ।

"यह सन् १९२७-२८ की बात है। मैं उस समय मेरठमें काम करता था। सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता श्रीमहावीर त्यागीके बड़े भाई प्रो० धर्मवीर त्यागी उस समय मेरठ कॉलेजमें गणितके प्रोफेसर थे। प्रोफेसर धर्मवीर त्यागी अकस्मात् बीमार हो गये। उन्हें बराबर हिचकियों-पर-हिचकियाँ आती रहती थीं। मेरठके डाक्टर करौलीका इलाज चल रहा था। जब हालत बहुत बिगड़ गयी तो इनकी देख-रेख करनेकी बड़ी आवश्यकता पड़ी। इनके पास आदमियोंकी कमी थी, इसलिये हमलोग हापुड़से इनकी देख-भाल करनेके लिये मेरठ गये। प्रोफेसर साहब उस समय चौधरी श्रीरघुवीरनारायणसिंहजी असौड़ेवालोंके मकानपर लिसाड़ी बाजारमें, उस मकानकी ऊपरकी दूसरी मंजिलमें थे। हमें इनकी देख-भाल करनेका जो काम सौंपा गया, हम करने लगे। दो-तीन दिनके पश्चात् प्रो० साहबकी हालत पहलेसे और भी ज्यादा बिगड़ गयी। डा० करौली जब प्रोफेसर साहबको देखनेके लिये आये तो उन्होंने हम लोगोंको सावधान करते हुए कहा—'आजकी रात प्रोफेसर साहबके लिये बड़े खतरेकी है। इनकी देख-भाल करनेकी आज बड़ी आवश्यकता है।'

"यह सुनकर अब तो सभीको बड़ी चिन्ता हुई। हमारी सबकी ड्यूटी लगा दी गयी कि आज रातको इनकी बराबर देख-भाल की जाय। हम सबकी ड्यूटी तीन-तीन घंटेकी थी। मेरी ड्यूटी धर्मवीरसिंह त्यागीकी धर्मपत्नीके साथ रात्रिके १ बजेसे ३ बजेतककी लगायी गयी थी।

ड्यूटीके समय मुझे लघुशङ्काकी हाजत हुई। उन दिनों आजकी बिजली तो थी नहीं। रोशनीके लिये मैं अपने हाथमें लालटेन लेकर और पहनजीसे कहकर बाहर आ गया। बाहर आकर लघुशङ्का करनेके लिये ज्यों ही नालीपर बैठा, देखा कि दो भयंकर विशालकाय व्यक्ति खड़े हुए हैं, जो छः फुटसे भी अधिक लंबे हैं। उनका सारा शरीर बड़ा काला है और वे बड़े बलवान् हैं। उनकी लाल-लाल आँखें हैं। उन्हें देखकर मैं डर गया। थर-थर काँपने लगा। जल्दीसे भागकर अंदरके कमरेमें घुस गया। इस समस्त जीवनमें अबसे पहले कभी ऐसे विशालकाय काले मुजद्र न तो कभी देखे थे और न उस दिनके बाद कभी फिर आजतक देखे हैं। बादमें वे दोनों वहींसे उसी समय अदृश्य हो गये।

"इसके आश्चर्यजनक घटना यह हुई कि ठीक उसी समयसे प्रोफेसर धर्मवीर त्यागीकी भारत होना प्रारम्भ हो गया। डा० करौली भी यह देखकर बड़े चकित हुए।"

पुनर्जन्मकी विदेशी घटनाएँ

(लेखक—डा० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

ईसा और पुनर्जन्म

आधुनिक ईसाईधर्म पुनर्जन्मके सिद्धान्तको नहीं मानता। फिर भी प्राचीन ईसाइयोंके सम्प्रदाय इसमें आस्था रखते थे। सेंट जानकी बाइबिल (११वाँ अध्याय) में एक ध्यानाकर्षक वचनावली मिलती है, जिसकी पुनर्जन्म-को माने बिना संतोषप्रद व्याख्या की ही नहीं जा सकती।

फिर कुछ आधुनिक विद्वानोंने यहाँतक प्रश्न किया है कि 'क्या हजरत ईसा पिछले जन्ममें एलीसियस थे ?' एक विद्वान् लिखते हैं—"मुझे निश्चित रूपसे ज्ञात है कि वह (जीसस) पिछले जन्ममें एलीसियस और जीससके 'गुरु जान दि बैप्टिस्ट एलीजा' थे।" जीससके रूपमें एलीसियसके अवतारकी भविष्यवाणी कई सौ साल पहले की जा चुकी थी, क्योंकि उन्हें परमात्माकी एक दैवी योजनाको पूरा करनेके लिये जन्म लेना था।

यह भविष्यवाणी ईसासे ८ वीं शताब्दी पूर्व एसाइयाहकी पुस्तक (७-१४) में की गयी है—'इसलिये भगवान् तुम्हें एक निशानी देंगे। देखो—एक कुमारी गर्भ धारण करेगी और एक बेटेको जन्म देगी और उसका नाम इमैनुएल रखेगी।'

क्राइस्ट (ईसा) के जन्मकी घटनाका उल्लेख करते हुए सेंट मैथ्यूने कहा—'पैगंबरकी भविष्यवाणीमें प्रभुके द्वारा जो कुछ कहा गया था, वह पूरा होनेके लिये अब यह सब कुछ किया गया है। देखो, एक कुमारी गर्भ धारण करेगी और एक बेटेको जन्म देगी और लोग उसे इमैनुएलके नामसे पुकारेंगे, जिसका अर्थ होगा कि भगवान् हमारे बीचमें आ गये हैं।' (मैथ्यू १-२२, २३)

क्राइस्टके विवादपूर्ण अवतारके अतिरिक्त भी, हमारे पास ईसाई-मतावलम्बियोंके कुछ पुनर्जन्म-सम्बन्धी उदाहरण हैं। हालाँकि ईसाई-मतमें इस सिद्धान्तके लिये कोई स्थान नहीं है।

नीचे विदेशोंके पुनर्जन्म-सम्बन्धी कुछ प्रमाण दिये जाते हैं—

(१)
क्यूबानिवासी महिलाकी घटना
राचाले ग्राण्ड

इस समय न्यूयार्कमें रहनेवाली क्यूबानिवासी २६ वर्षीया राचाले ग्राण्ड (Rachale Grand) को यह अलौकिक अनुभूति हुआ करती थी कि वह अपने पूर्वजन्ममें नर्तकी थी और यूरोपमें रहती थी। उसे अपने पहले जन्मके नामकी स्मृति थी। खोज करनेपर पता चला कि यूरोपमें आज से ६० वर्ष पूर्व स्पेन देशमें उसके विवरणकी एक नर्तकी रहती थी। राचालेकी कहानीका अधिक आश्चर्यजनक अंश यह था, जिसमें उसका कथन है कि 'उसके वर्तमान जन्ममें भी वह जन्मजात नर्तकी ही है और उसने बिना किसीके मार्ग-दर्शन अथवा अभ्यासके हावभावयुक्त नृत्य सीख लिया था।'

(२)
स्विट्जरलैण्डकी घटना
गैब्रियल उराइब

एक आश्चर्यजनक घटना १२ वर्षके गैब्रियल उराइब (Gabriel Uribe) नामक स्विट्जरलैण्डवासीकी है। वह स्विस (Swiss) रहन-सहनमें बहुत असंतुष्ट और बेचैन था। उसका अधिक लगाव गहरे रंगके लोगोंकी ओर था।

अपने यूरोपके प्रवासमें एक बार वह स्पेन गया। वहाँके अल्कान्तेन शिरागने उसकी उद्विग्न मनःस्थितिको शान्त कर दिया। उसने अपने-आपको अपने पूर्वजन्मके कोलम्बियानिवासी एक राजनीतिज्ञ यू राफेल (U Raphael) के रूपमें देखा। उसमें अपने पूर्वजन्मकी पत्नी सिक्स्टा तुलिया (Sixta Tulia) तथा अपने कुटुम्ब और मित्रोंकी भी स्मृति उदित हो गयी। १९१४ में बोगोटा में एक कुल्हाड़ेसे यू राफेलकी हत्या कर दी गयी थी। हत्यारेने उसके शरीरपर एक जबरदस्त प्रहार किया था। अधिक विस्मय तो इस बातका है कि राफेलके सिरमें जहाँ कुल्हाड़ेका प्रहार हुआ था, गैब्रियलके खोपड़ीका वह भाग पूरी तरहसे उभरा हुआ नहीं दिखायी देता।

जा रहा था तो वह सबसे आगे-आगे चल रहा था। एक घरकी ओर संकेत करते हुए वह चिल्लाया—'यही मेरा घर है।' पूछताछ करनेपर पता चला कि 'वह घर हीगिरो और उसकी पत्नी शिदज़ुका था। इन दोनोंके टोजो नामका एक पुत्र था, जो तेरह वर्ष पूर्व चेचकसे मर गया था।' कटसूगोरोने यह भी बताया कि उस घरके आसपास बहुत परिवर्तन हो गये हैं। उसने बताया कि 'पहले सड़कके उस पार तम्बाकूकी दूकान नहीं थी।' यह बात भी बिल्कुल सच निकली। इससे यह सिद्ध हो गया कि कटसूगोरो ही पिछले जीवनमें टोजो था।

(६)
परिचित मार्गोंकी पुनर्यात्रा
एक फौजी सिपाही

"......मैं अंग्रेजी फौजका एक सिपाही रहा हूँ। फौजमें भर्ती होनेके बाद ही हमारे रेजीमेंटको आदेश मिला कि वह पूर्वीय देशोंकी ओर कूच करे। मैं कभी विदेश नहीं गया था। हमलोग जब अपने निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचे तो हमलोगोंको ऐसे स्थानपर जानेका आदेश मिला, जहाँ अंग्रेज फौजोंने कभी कदम भी नहीं रखा था। हमारे अधिकारी भी बहुत परेशानीमें थे; क्योंकि किसी नक्शेके अभावमें वे यह समझ ही नहीं पा रहे थे कि किस रास्तेसे आगे बढ़ें। और भी सब इस देशसे सर्वथा अपरिचित थे। न जाने मेरे हृदयमें कैसी प्रेरणा उठी। मैं सीधा अपने अफसरोंके पास गया, जो परामर्श कर रहे थे और बोला—'क्षमा कीजियेगा, यदि आप आज्ञा दें तो मैं आपको इस अपरिचित प्रदेशके मार्गोंके बारेमें बता सकता हूँ। मैं यहाँकी एक-एक इंच भूमिके बारेमें जानता हूँ।'

"अधिकारीगण मेरी ओर आश्चर्यसे देखने लगे। बोले—'क्या मतलब?' मैंने उत्तर दिया—'मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसका कारण मैं नहीं जानता। लेकिन इतना निश्चित है कि मैं इस स्थानसे भली प्रकार परिचित हूँ।'

"मुझे स्वयं आश्चर्य है कि क्यों हर वस्तु मुझे जानी-पहचानी हुई लग रही थी। एक पहाड़ीकी ओर संकेत करते हुए अधिकारियोंसे यह भी कहा कि 'यदि वे ठीक इसी पगडंडी चले जाएँ तो चोटीपर उन्हें एक चौकोर मकान मिलेगा, जिसकी छत सफेद पत्थरकी है।' मेरी बातकी सत्यता जाननेके लिये वे मेरे बताये रास्तेपर गये और उन्हें निर्दिष्ट स्थानपर वैसा ही मकान मिला। इसका आश्चर्य उन्हें भी था और मुझे भी। फिर उन्होंने मुझे मार्ग-निर्देशक मान लिया। मैंने हमेशा उस प्रदेशके सारे मार्गोंके बारेमें सही-सही बताया। किंतु इस बातसे मैं स्वयं अपनेसे भय खाने लगा।"

यह सिपाही कभी उस जगह नहीं गया था, जहाँके मार्गोंके बारेमें उसने फौजको सही-सही बताया था। उसके साथी और फौजी अधिकारियोंका मत है कि 'यह सिपाही अपने गत-जीवनमें उस प्रदेशमें रहा होगा।'

इस प्रकारकी घटनाओंका अध्ययन करते समय शोधकर्ताको चाहिये कि अधिक-से-अधिक साक्षियोंसे प्रमाण एकत्रित करे। उसे यह भी चाहिये कि वह पुनः जन्म लेनेका दावा करनेवाले व्यक्ति तथा उसके वर्तमान और गत-जन्मके परिवारोंके लोगोंके बयानोंका भी सतर्कतासे अध्ययन करे।

(७)
फ्रांसकी घटना
कुमारी थिरीज गे

तीन महीनेकी बच्ची थिरीज गे (Therese Gay) ने एक दिन अपनी माँ (मदाम रेनरीट गे) तथा पिताको चौंका दिया। बात यह हुई कि उसने अपने जीवनमें जो पहला शब्द मुँहसे निकाला था, वह था—'अब्रू-पाह'। (Abroo-pah) माता-पिता इससे चकित; क्योंकि उन्हें इस शब्दका अर्थ समझमें ही नहीं आया। बादमें उन्हें पता चला कि यह संस्कृतका शब्द 'अरूपा' है, जिसका अर्थ है—रूपरहित।

तीन सालकी अवस्थामें इस लड़कीने अंग्रेजी शब्द बोलना शुरू कर दिया, [illegible] शब्दोंसे परिचित [illegible] थे। कुछ दिनों बाद उसने [illegible] शुरू किया। [illegible] [illegible] [illegible] है और [illegible]

'जमींदार' (Landlord) नामकरण हो गया है; क्योंकि उसने सेनाके पड़ावके निकटकी कुछ भूमिपर अपना अधिकार जताया है, जो पूर्वजीवनमें उसकी सम्पत्ति थी। यह उन सैकड़ों व्यक्तियोंमेंसे एक व्यक्तिकी घटना है, जो अपने पूर्वजन्मकी स्मृतिका दावा करते हैं।

(१०)

आस्ट्रिया देशका प्रमाण

एलेक्जैण्ड्रिना सैमोना

डा० कारमेलो सैमोना और उनकी पत्नी एडेलाके एक पुत्री थी। उसका नाम था—एलेक्जैण्ड्रिना सैमोना। पाँच वर्षकी उम्रमें १५ मार्च सन् १९१० को पैलेरमो सिटी, सिसिलीमें उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्युके तीन दिन बाद माँने एक स्वप्न देखा, कि उसकी मृत पुत्रीका पुनर्जन्म होगा।' माँको इस स्वप्नपर विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि एक शल्यक्रियाके परिणामस्वरूप उसे अब यह आशा नहीं रह गयी थी कि वह अब और संतानोंको भी जन्म देगी। परंतु २२ नवम्बर सन् १९१० को माँने जुड़वा बालिकाओंको जन्म दिया। एक बालिकाकी आकृति मृत बालिकाकी आकृतिसे बिल्कुल मिलती-जुलती थी; इसलिये उसका भी नाम एलेक्जैण्ड्रिना रखा गया। सुविधाके लिये हम यह कह लें कि मृत पुत्रीका नाम एलेक्जैण्ड्रिना प्रथम तथा नवजात पुत्रीका नाम एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय था। दोनोंमें कुछ समानताएँ बहुत महत्त्वपूर्ण थीं। एक समानता यह थी कि दोनों ही शान्तिप्रिय, स्वच्छ और अकेलेमें रहकर स्वयंसे ही खेलना पसंद करती थीं। एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय और प्रथममें कुछ शारीरिक समानताएँ भी थीं। दोनोंके चेहरे तो मिलते ही थे, दोनोंकी बायीं आँखोंमें अधिरक्तताका लक्षण था और दाहिने कानोंसे स्राव हुआ करता था। दोनों ही बायें हाथसे सारा काम करती थीं और दोनोंको ही दर्जीनके कपड़ोंको तह करके सँभालकर रखनेमें बहुत आनन्द मिलता था। इसी प्रकार दोनों ही बालिकाओंको पनीरसे चिढ़ थी तथा अपने हाथोंको साफ रखनेका शौक था।

जब एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय दस वर्षकी हुई तो उसे इस बातका ज्ञान हुआ कि वह मनरियल (Monreale) नामक स्थानपर कभी गयी थी। उस स्थानपर एलेक्जैण्ड्रिना द्वितीय पहले कभी नहीं गयी थी। फिर भी, उसने कहा कि 'वह [illegible] एक महिलाके साथ मनरियल गयी थी और वहाँ उसे लाल कपड़े पहने हुए पुजारी मिले थे।' माँको स्मरण हो आया कि एलेक्जैण्ड्रिना प्रथमकी मृत्युके कुछ मास पूर्व वह उसे (एलेक्जैण्ड्रिना प्रथमको) लेकर मानरियल गयी थी। साथमें एक महिला भी थी जिनके माथेपर मस्से सींग थे। वहाँ उनकी वे भेंट यूनानी पुजारियोंसे हुई थी, जिनके नीले कपड़ोंको लाल रंगकी वस्तुओंसे अलंकृत किया गया था।'

शारीरिक समानता, आदतोंकी अभिन्नता तथा एलेक्जैण्ड्रिना प्रथमके जीवन-कालकी घटनाओंकी स्मृतिके कारणोंसे डा० सैमोना तथा उनके मित्रोंको विश्वास हो गया कि एलेक्जैण्ड्रिना प्रथमने ही द्वितीयके रूपमें पुनः जन्म लिया है।

(११)

ब्राजीलके पॉलो लोरेन्ज (Paulo Loreng) का प्रमाण

'माँ, अब तुम मुझे अपने पुत्रके रूपमें स्वीकार करो। मैं अब तुम्हारा पुत्र बनकर जन्म लूँगी।' यह संदेश दिया था श्रीमती इडा लोरेन्जको उनकी मृत पुत्री इमिलिया लोरेन्जने, जिसकी मृत्यु विषसेवनके परिणामस्वरूप हो गयी थी। यह विचित्र संदेश माँको प्रेतात्मासे सम्पर्क स्थापित करनेवाली एक सभामें मिला था।

'इमिलिया लोरेन्जका जन्म ४ फरवरी सन् १९०२ को हुआ था। उनके पिताका नाम था—एफ० वी० लोरेन्ज। जबतक वह जीवित रही, वह हमेशा यह शिकायत करती रही कि उसने लड़की होकर क्यों जन्म लिया। उसने अपने भाई-बहनोंसे कई बार यह कहा कि 'यदि वास्तवमें पुनर्जन्म होता है तो मैं पुत्र होकर जन्म लेना पसंद करूँगी।' उसने विवाह करनेसे इनकार कर दिया और कहा कि 'मैं अविवाहित ही रहकर मरना चाहती हूँ।' इसकी तीन साल निराशापूर्ण घटनाओंके कारण उसने कई बार आत्महत्या करनेका प्रयत्न किया। अन्तमें १२ अक्टूबर सन् १९२१ को वह विष खाकर मर गयी।

'इमिलियाकी मृत्युके [illegible] बाद [illegible] प्रेतात्माओंसे सम्पर्क स्थापित करनेवाली बहुत-सी सभाओंमें गयी। एक सभामें उसे एक आत्मा ([illegible]) ने यह संदेश दिया कि आत्महत्या करनेके कारण उसे बहुत पश्चात्ताप है और अब वह परिवारमें एक पुत्रके

"उसकी माँने कहा कि इस बचीका नाम 'मार्गारेट केम्पथोर्न (Margaret Kempthorn) था, जो एक किसानकी इकलौती बची थी। कहानी कहनेवालीकी माँ उन दिनों उस फार्मपर दूध बेचनेके कामपर नियुक्त एक नौकरानी थी।

"जब मार्गारेट लगभग ५ वर्षकी बची थी, तभी एक बार उस नौकरानी तथा अन्य एक महिलाके साथ पहाड़ीसे भागकर नीचे उतरते समय एक महिलाका पैर एक खरगोशके गड्ढेमें जा पड़ा था। सब गिर पड़नेसे वह लड़की सबके नीचे आ गयी। उसकी टाँग बुरी तरह टूट गयी थी, जो फिर ठीक न हो सकी और वह दो महीनेके बाद मर गयी। उस वृद्धा महिलाने रोगमस्त तीक्ष्णताके साथ मुझे बतलाया—'मेरी माँ कहा करती थी कि इतनी दुखी लड़की होकर भी उसने जीवित रहनेके लिये बहुत संघर्ष किया और वह अन्तिम शब्द कहती हुई मरी कि 'मैं मरूँगी नहीं।''

"उसे यह पता नहीं था कि वह फार्म कहाँ था, परंतु मण्डी (Market) के स्थानका नाम येओविल (Yeovil) था। उस घटनाका समय पूछनेपर उसने वह चित्र नीचे उतारा। उसकी पिछली तरफ एक कागजका टुकड़ा चिपका हुआ था, जिसपर लिखा था—मार्गारेट केम्पथोर्न, जन्म २५ जनवरी, १८३०, मृत्यु ११ अक्तूबर, १८३५। और मार्गारेटकी मृत्युके दिन ही मेरे पिताकी माँका जन्म मार्लेम्बूरोमें हुआ जो यहाँसे मीलों दूर है। मेरा स्वयंका जन्म दिन है २५ जनवरी।"

(१३)
कनाडाकी एक महिला

अब कनाडाकी एक महिलाकी पुनर्जन्मसम्बन्धी असाधारण घटनाका अवलोकन कीजिये—

"मैं तथा मेरा पति कनाडाके आन्टारियो (Ontario) प्रान्तमें मोटरमें जा रहे थे। जैसे-जैसे हम 'स्मिथ फाल्स' (Smith's Falls) के निकट पहुँचने लगे, मैंने उस नगरका वर्णन करना आरम्भ कर दिया।

"मेरा पति यह जानता था कि इससे पहले मैं कभी कनाडा नहीं गयी थी। इसलिये तब तो यह और भी आश्चर्यचकित हो गया, जब मैंने मुख्य बाजारके एक नाकाका वर्णन किया—"इसके एक कोनेमें डेसजारडिंग्स (Desjardings) की किरानेकी दूकान है और दूसरे नुक्कड़पर 'रायल बैंक आफ कनाडा'की एक शाखा।' जब हमारी गाड़ी बाजार पहुँची तो हमारे आश्चर्यकी सीमा न रही कि उसके एक कोनेमें बैंक था और दूसरेमें किरानेकी दूकान। मेरे पतिने गाड़ी रोकी और किरानेकी दूकानमें प्रवेश किया। पूछनेपर ज्ञात हुआ कि आजसे तीस वर्ष पहले इस दूकानके आखिरी मालिकका नाम डेसजारडिंग्स था।"

(१४)
इटलीकी एक लड़की

"जब मैं छोटी लड़की थी तो एक बार सर्वप्रथम मैंने इटलीकी यात्रा की। जैसे ही रेलगाड़ी चली, मैं उत्तेजित और बेचैन हो उठी। डिब्बेके भीतर और बाहर घूमने तथा अधिकांश समय गलियारेमें रहनेके कारण मेरे परिवारवाले खीझ गये। मैं चुप हो गयी और खिड़कीके किनारे एक छोटेसे चौड़े स्टूलपर बैठ गयी। मैं यह अनुभव करती थी कि हमारी रेलगाड़ी धीरे-धीरे ऊँचाईपर चढ़ रही थी। मैं सहसा बोल उठी—'दाहिनी तरफकी अगली नुक्कड़की पहाड़ीपर एक गिरजाघर दिखायी देगा और वहाँ यही एकमात्र भवन है। अँधेरा होनेसे वह वातावरणपर हावी है। आस-पास कोई गाँव नहीं है।' और शीघ्र ही वह सामने आ गया।

"मैं पुनः कहने लगी—'फिर आगे घाटी और एक नाला दिखायी देगा, जिसके किनारे ऊँचे और काले रंगके पेड़ उगे हुए हैं। उसके आगे चाँदी-रंगके पत्तोंवाले पेड़ोंका झुंड पहाड़ीके किनारे दिखायी देगा।' परंतु चाँदीसे पत्तेवाला क्यों? मैं आश्चर्य करने लगी; क्योंकि वृक्षोंके सम्बन्धमें मेरा ज्ञान बहुत अल्प था। मैंने इसके पूर्व जैतूनके वृक्षोंको नहीं देखे थे। जैसे ही वे दिखायी देने लगे, मुझे बतलाया गया कि वे जैतून थे।

"मुझे पुनः कभी भी ऐसा अनुभव नहीं हुआ जैसा इस समय हुआ था कि मैं एक ऐसे देशमें भ्रमण कर रही हूँ, जिसे मैं अच्छी प्रकारसे जानती हूँ, यद्यपि मैंने अपनी आँखोंसे इसके पूर्व इसे कभी नहीं देखा था।

"उसके बाद मैंने कुछ बोध किसीके साथ मैं [illegible] देखने लगी थी। इंग्लैण्ड एक भयंकर विश्व युद्धकी [illegible] थे। कुछ वर्षोंमें इसका अनुभव किया और

बरामदेमें किताबें रखनेका एक बक्सा रक्खा हुआ था। उसे यह भी अच्छी तरह याद है कि उसकी चाचीने उसे वह पेंसिल उठा लेनेको कहा, जो बक्सेमेंसे गिर गयी थी।

कुएँमें गिरना

उसे यह भी याद था कि उसने मन्दिरके अहातेमें बैठी फल भी खाया था। मन्दिरके आँगनके बीचोंबीच बेरीका एक पेड़ था, जिससे वह फल गिरा था। अपने पहले बापके बारेमें उसका कहना था कि वह मोटर-बस चलाता था और जब भी घर आता था, टमाटर और शक्कर लाता था।

रूबी अपनी पहली मौतका जिक्र जब भी करती थी तो उसके माता पिता बड़ी उलझनमें पड़ जाते थे। उसका कहना था कि फसलकी कटाईमें हाथ बँटानेके बाद जब वह घर लौटी तो कुएँपर अपने पैर धोने गयी। अचानक उसका पैर फिसला और वह कुएँमें गिर पड़ी। उसने हाथ ऊपर करके शोर भी मचाया, परंतु किसीने सुना नहीं।

रूबीके पुराने माता-पिता श्री और श्रीमती पुंचीनोनाको ढूँढ़ निकालना मुश्किल नहीं था। उनका बेटा करुणासेना १९५६ में मरा था। उन्होंने उसके कुएँमें डूब जानेकी घटना और दूसरी बातें भी सच बतायीं और कहा कि लड़कीकी सारी बातें बिल्कुल सच हैं।

उसके बाद जाँच-पड़ताल करनेवाले अद्भयवाला मेंदराम मन्दिर गये। मन्दिरके पुजारीने बताया कि 'लड़कीने मन्दिरके बारेमें जो कुछ कहा है, वह सच है।' उन्होंने किताबें रखनेका बक्सा भी दिखाया और अहातेके बीचों-बीच बेरीका पेड़ भी।

(१८)

लंकाकी एक और घटना—जयसेना

नवम्बर १९६२ में सुगोगोडाके श्री और श्रीमती जयसेनाके घर एक लड़का पैदा हुआ। दो वर्षकी उम्रसे ही बच्चेने कहना शुरू किया—'तुम मेरी असली माँ नहीं हो। मेरी असली माँ बेयनगोडामें रहती है।' ऐसी बातोंसे उसकी माँ दुःखी तो जरूर हुई, परंतु अप्रैल १९६५ तक उसने इन बातोंकी गम्भीरताको नहीं समझा।

एक दिन जयसेना-परिवारके लोग अपने मित्रोंसे मिलने जा रहे थे। २४ मीलके सफरके गुजरते ही बच्चा मोटरपर खड़ा होकर चीखने लगा—'यहाँ, यहाँ मेरी माँ रहती है।'

माँने बच्चेकी सचाईकी तह तक पहुँचनेकी ठान ली। लौटते समय उन्होंने एक कार ली और यहाँ आये। यहाँ आते ही बच्चा गाड़ीसे उतरने लगा—'मेरी माँ यहीं रहती है।'

बच्चा श्रीमती सेनेविरत्नेके घरकी ओर भागा जा रहा था। पड़ोसके लोगोंने उसे पकड़कर कारतक पहुँचाया। उसके माँ-बापको पता चला कि पाँच साल पहले यहाँसे आदमीका बच्चा खो गया था।

शाम हो चुकी थी। इसलिये जयसेनाने सेनेविरत्नेको परेशान नहीं करना चाहा। बच्चेसे फिर यहाँ लानेका वादा करके उसे वापस ले आये। बादमें बच्चेके मामा वसुदेवामा सेनेविरत्नेसे मिले। उन्होंने उनसे सब कुछ बताया और बच्चेको पहचाननेके लिये लानेका दिन निश्चित हुआ।

उसे कुछ मिठाईकी गोलियाँ दी गयीं कि वह असली माँको दे दे। कार धीरे-धीरे जा रही थी और जब एक सड़कसे मुड़ी तो बच्चेने खड़े होकर ड्राइवरसे कहा—'उधर नहीं, यहाँ चार्ली मामा रहते हैं। मेरा घर दूसरी सड़कपर है।'

फिर बच्चेसे कहा गया कि 'वह आगे-आगे चले।' वह सीधे अपने घर पहुँचा और भीड़को चीरता हुआ श्रीमती विनी सेनेविरत्नेके पैरोंपर उसने मिठाइयाँ [illegible] दिया। वह ऐसे मिला, जैसे कोई अपने घरवालोंसे बहुत दिन बाद मिल रहा हो। बच्चेने अपने भाईको भी पहचान लिया और उसे असली नामसे पुकारते हुए अपनी असली माँको याद दिलाया कि 'एक बार उसके भाईने जो [illegible] था।' उसने चाचा चार्लीके [illegible] बात भी की और चलके अपने खेलोंकी तरफ इशारा किया।

इन बातोंसे श्रीमती सेनेविरत्ने हक्का-बक्का रह गयीं। उन्होंने माना कि पहले उन्हें यह संदेह था, परंतु अब यह मान गयीं कि १९६०में उनका जो बच्चा खो गया था, वही जयसेनाका बेटा है।

ये दो मामले बौद्ध देशोंके हैं। बौद्धोंमें पुनर्जन्मकी सम्भावनाएँ मानी जाती हैं। [illegible] भूतकी लाश, आदमीके भाव और [illegible] एक जन्मके बाद दूसरे जन्ममें आदमी इनमेंसे कोई कुछ भी हो सकता है।

और गेलियनको उनके माता-पिता अपनी दिवंगत बेटियोंका पुनर्जन्म मानते हैं। जोआना (११ वर्षकी) और जैक्लीन (६ वर्षकी) नार्थवरलैंडके अपने गाँव हैक्सममें, जहाँ यह परिवार उस समय रहता था, एक दूसरीका हाथ थामे चर्चकी ओर जा रही थीं कि वे एक मोटरकारके नीचे आ गयीं।

जुड़वाँ बच्चोंके बाप श्रीपोलकने कहा—'मैंने रोमन कैथलिक धर्म अङ्गीकार कर लिया है। इसलिये मुझसे कहा जाता है कि मैं पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं कर सकता। लेकिन मेरी पत्नी और मैं इतने दिनोंसे जो कुछ देख और सुन रहे हैं, उसके कारण मैं अब यह बात मान नहीं सकता।'

लड़कियोंकी मौतके बाद जब श्रीमती पोलक दुबारा गर्भवती हुई तो श्रीपोलकको विचित्र आभास होने लगा कि उनकी बेटियाँ उनके पास वापस आ रही हैं। वे नहीं चाहते थे कि इसपर विश्वास करें और उनकी पत्नी तो यह सुनना भी नहीं चाहती थी। लेकिन गर्भावस्थाके दिन पूरे होते होते यह भावना बहुत ही प्रखर हो गयी और उन्होंने अपनी पत्नीकी डाक्टरी परीक्षा करायी।

पुराने निशान

डाक्टरने कहा कि 'इस बातकी बिल्कुल कोई सम्भावना नहीं है कि यह एकसे ज्यादा बच्चेको जन्म दे; क्योंकि उसे एक ही हृदयकी धड़कन और एक ही शिशुके हाथ-पैरका पता चला है।' एक सप्ताह बाद जुड़वाँ शिशुओंका जन्म हुआ।

श्री और श्रीमती पोलकका ध्यान आकर्षित करनेवाली पहली चीज थी कि जेनीफरके माथेपर दायीं ओरकी तरफ ऊपरसे नाकतक एक पतला इंच लंबा असामान्य सफेद निशान था। दोनों लड़कियोंमें छोटी जैक्लीनके भी ऐसा ही निशान था, जो तीन साल पहले गिर पड़नेका परिणाम था। जेनीफरके निशान साधारणतया कठिनाईसे दिखायी पड़ते थे; किंतु सर्दियोंमें ये साफ दिखायी देने लगते थे। यही बात जैक्लीनके विषयमें भी थी।

जेनीफरके बायें कूल्हेपर लगभग एक शिलिंगके आकारका भूरा जन्मचिह्न भी है। यह स्वरूप, रंग, आकार और स्थितिके विचारसे जैक्लीनके चिह्नसे एकदम मिलता-जुलता है। दूसरी समानताएँ जेनीफरके बढ़नेके साथ-साथ उभरने लगीं। यह लिखनेमें स्वाभाविक रुचि लेने लगी और कलम या पेंसिलको अपने दायें हाथकी बीचकी अँगुलियोंमें थामनेकी और पहली अँगुलीसे चलानेकी उसे विचित्र आदत पड़ गयी।

गेलियन, जो जोआनासे मिलती-जुलती है, पर उसकी समानताएँ इतनी स्पष्ट नहीं हैं। वे ऐसी चीजें हैं, जिन्हें माता-पिता ही आसानीसे देख सकते हैं। उदाहरणके लिये छोटे बच्चोंके प्रति उसका वही व्यवहार और उनके लिये वही प्यार, उसी तरह अपनी बहनको हाथ थामकर घुमाना, वैसी ही दुबली-पतली, वही स्वभाव और ढंग।

'डैडी, देखो !'

गेलियनको जेनीफरका चेहरा प्यारसे दोनों हाथोंमें लिये यह बताते देखा गया कि जैक्लीनको गिरनेपर कैसे-कैसे चोट आयी थी। वह जो कुछ बता रही थी, वह सब सही था। एक मौकेपर जब श्रीपोलकने संयोगसे पुराने खिलौनोंके एक पार्सलको, जो उन्होंने जोआना और जैक्लीनकी मौतके बाद अलग रख दिया था, निकाला तो गेलियनने गुड़ियोंके धुले कपड़े निचोड़नेवाला रिंगर छीन लिया और बड़े आवेशमें बोली—'डैडी, देखो, यह मेरा रिंगर है।' असलमें यह जोआनाको दिया गया था।

इसी तरह जब जेनीफरने जैक्लीनकी गुड़िया देखी तो वह भी चिल्ला पड़ी—'यह मेरी है।' जैक्लीन इस गुड़ियाको ठीक 'मेरी' के ही नामसे पुकारती थी, हालाँकि जेनीफरने यह गुड़िया इससे पहले कभी नहीं देखी थी।

पहचान

एक और अवसरपर श्रीपोलक कुछ पेंटिंग कर रहे थे और उन्होंने अपने कपड़ोंको बचानेके लिये ऊपरसे अपनी पत्नीका एक पुराना कोट पहन लिया। श्रीमती पोलकने यह कोट उस दिन अस्पतालके बाद, जिस दिन दोनों लड़कियाँ दुर्घटनाग्रस्त हुई थीं, फिर कभी नहीं पहना।

श्रीपोलक कहते हैं—'जब जैनीफरने मुझे यह कोट पहने देखा तो उसने कहा—'तुम मम्मीका यह कोट क्यों पहन रहे हो, जो वह स्कूल जाते समय पहनती थी ?'

श्रीपोलक आश्चर्यमें पड़ गये; क्योंकि यह वही कोट था, जिसे पहनकर श्रीमती पोलक जैक्लीनको स्कूल लेने जाती थीं।

विचित्र प्यार

इस्माइल सदैव अपने पुराने कुटुम्ब तथा सगे-सम्बन्धियोंके विषयमें विचार करता रहता है। कभी-कभी यह उनके माता-पिताके लिये समस्या बन जाती है। एक समय जब इस्माइलका पिता, मेहमत अल्तिनक्लिश कुछ तरबूज ले आया। तब इस्माइलने इच्छा प्रकट की कि उनमेंसे सबसे बड़ा तरबूज उसकी लड़की गुलशरीनके लिये भेजा जाय। जब उसके पिताने ऐसा करनेसे इन्कार कर दिया, तब वह बुरी तरहसे रोने लगा। वास्तवमें मेहमत अधिक धनी नहीं है और वह इस्माइलके पहले जन्मके परिवारके लिये उपहार नहीं भेज सकता। कभी-कभी इस्माइल अपने माता-पिताके साथ एक वयस्क व्यक्तिकी तरह व्यवहार करता और उसके माता-पिता उसमें अपने अन्य बालकोंकी अपेक्षा अधिक समझदारी पाते। वह डटकर राकी पीता है और अलबैत भी खूब राकी पीनेके लिये कुख्यात था।

इस्माइलका एक पिछले हिसाबको तय करना

एक मेहमत नामक कुल्फी-मलाई बेचनेवाला एक बार निकट जिया गया। इस्माइलने उसे पुकारा और उससे पूछा कि 'क्या वह उसे पहचानता है ?' जब कुल्फी-मलाई बेचनेवालेने स्पष्टतः इन्कार कर दिया, तब इस्माइलने कहा कि 'तुम मुझे भूल रहे हो। मैं अलबैत हूँ। पहले तुम कुल्फी-मलाई नहीं बेचते थे, बल्कि तरबूज और साग बेचा करते थे।' उस मनुष्यने इस परिवर्तनको स्वीकार किया और लड़केसे बहुत देर बात करनेके पश्चात् उसने निश्चय किया कि वह अलबैत ही है, जो अब फिरसे पैदा हुआ है। जब इस्माइलने अपने पिताको कुल्फी-मलाईका दाम देते हुए देखा तब वह बीचमें बोल उठा—'कुल्फी-मलाईका दाम मत दीजिये पिताजी! इसे पहले ही मेरे तरबूजके दाम देने हैं।' मेहमतने अलबैतका यह फर्ज स्वीकार किया।

यह एक वास्तविकता है अथवा धोखा ?

क्या इस्माइलका उदाहरण एक धोखा है ? कौन जाने। किंतु व कल्प ही कुछ विचार मनमें उठते हैं।

प्रथमतः हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि यह घटना एक मुस्लिम परिवारकी है और वे लोग पुनर्जन्ममें विश्वास नहीं रखते। द्वितीय यह कि इस्माइलके परिवारवालोंने इस घटनाको प्रकाशित करनेका प्रयत्न नहीं किया। इसके विपरीत वे इसके विरुद्ध प्रयत्नशील रहे। उन्हें इस घटनासे कोई आर्थिक लाभ नहीं हुआ। वास्तवमें मेहमत अल्तिनक्लिशने इनके विषयमें सब पूछताछको, अपने समय तथा धनपर अवाञ्छित हस्तक्षेपके रूपमें देखा है। इसके अतिरिक्त वे तथा उसके परिवारके लोग इस बातसे भी सदैव भयभीत रहते हैं कि बालक किसी समय भी अपने पुराने परिवारमें वापस जा सकता है। क्या यह भी सम्भव है कि मेहमत अल्तिनक्लिशने इस बालकके साथ एक धोखा-धड़ी करनेके लिये साझेदारी कर ली हो; क्योंकि उसने अलबैत सुजुलमसका नाम करते हुए उसके परिवारकी बहुत-सी जानकारी इकट्ठी कर ली थी। इस सम्भावनाको भी अस्वीकार करना होगा; क्योंकि स्वतन्त्र गुप्तचरोंकी जानकारीके अनुसार कुछ ऐसे तथ्योंकी जानकारी मेहमतको नहीं थी, जिनका उल्लेख अलबैतके सम्बन्धमें इस्माइलने किया था। न ही इसका विवेचन 'प्रच्छन्न स्मृतियों' पर कर किया जा सकता है; क्योंकि यह सम्भावना अलबैतके परिवारके सदस्योंकी पहचानके साथ जुड़े हुए भावनात्मक पक्षका कोई उत्तर नहीं देती।

(२२)

पिछले जन्मके हत्यारेका नाम बतानेवाला बालक नेकाती उनलकास्किरोन

नेकाती उनलकास्किरोन जब उत्पन्न हुआ तब उसके माँ-बापने उसका नाम 'मलिक' रखा था; किंतु केवल दो ही दिन बाद उसकी माँ [illegible] सपना आया कि नव जात शिशु अपना नाम 'मलिक'के बदले 'नेकाती' रखनेके लिये हठ कर रहा है। उनके निकट-सम्बन्धियोंमें [illegible] नामक एक बालक पहले ही मौजूद था और इस अन्धविश्वास-के कारण कि दो बच्चोंका नाम एक ही रख देना उनके लिये अशुभ हो सकता है, उन्होंने 'मलिक'का नाम 'नेकाती' रख दिया।

जब नेकाती बोलने चालने लगा तो वह अपने पिछले जन्मकी घटनाएँ दूसरोंको बताने लगा। उसने कहा कि [illegible] नाम [illegible] युवक था, [illegible] और उसकी हत्या कर दी गयी थी। जब वह और बड़ा हुआ तो उसने और भी कई बातें बतायीं कि [illegible] शादी हो चुकी थी और [illegible] थे। वह अपने [illegible]

(२४)
ड्रूज-परिवार

कौरनेलमें एक ड्रूज-परिवारकी ही मिसाल लीजिये। ड्रूज धर्म ईस्वी १०१७ में शुरू हुआ। फातिमिद, खलीफा-अल-हकीमने जेरुसलेमके गिरजाघरको तबाह करके अपनेआपको पैगंबर घोषित कर दिया था। इस घटनाके बाद वह रहस्यमय ढंगसे गायब हो गये। उनके अनुयायियोंने घोषित किया कि वे मरे नहीं हैं और वे महेदीके रूपमें वापस आयेंगे।

ड्रूज धर्ममें यह ऐतिहासिक घटना पुनर्जन्मकी धारणाको आधार प्रदान करती है। लेकिन अल-हकीमके उत्तराधिकारियोंने उनके उन अनुयायियोंके साथ दुर्व्यवहार किया, जो यह विश्वास करते थे कि अल-हकीम निश्चय ही वापस आयेंगे। इन अनुयायियोंको दूसरे मुस्लिम गुटोंको, जो ड्रूजको अपने धर्मका अंश नहीं मानते, प्रायः अत्याचारका शिकार बनना पड़ा। लेकिन ड्रूज-पंथ अपनेको इस्लामका ही एक अंश और मुहम्मदको खुदाका पैगंबर मानता है।

(२५)
अहमद एलावर

अहमद एलावरने पुनर्जन्ममें आस्था रखनेवाले ऐसे ही एक परिवारमें २१ दिसम्बर १९५८ को लेबनानके कोरनैल गाँवमें जन्म लिया। जब वह केवल दो वर्षका हुआ था, उसने पिछले जन्मकी बातें शुरू कर दीं। उसने अपने माता-पिता और दादी-दादासे कहा कि मैं पासवाले गाँव खिरबी-का रहनेवाला हूँ। वह प्रायः 'महमूद' और 'जमील' का नाम लिया करता था। उसने अपने पिछले जीवनकी कुछ सनसनीखेज घटनाएँ भी बतायीं और उस जीवनकी अपनी सम्पत्तिका विस्तृत विवरण भी दिया।

अहमद एलावरके पिताने लड़केकी बातोंकी तरफ कोई खास ध्यान नहीं दिया, बल्कि उसने ऐसी ऊटपटाँग बातोंके लिये उसे डाँटा भी; पर माता धैर्यसे उसकी बातें सुनती, अतः वह उससे ही अपनी बातें कहता, परंतु माँ कोई छानबीन नहीं करती।

महत्त्वपूर्ण घटना

दिन गुजरते गये। अहमद धीरे चलने लगा। वह [illegible] अपनी माँसे कहता—
'माँ! देखो, अब मैं अपने पैरों चल सकता हूँ।'

बेटेकी ऐसी विचित्र बातें माँको चकरा देतीं। वह एक दुर्घटनाका किस्सा भी सुनाया करता था कि किस तरह एक आदमीके पैरोंपरसे ट्रक गुजर गया था, जिससे उसके पैर बेकार हो गये थे। क्या इन दोनों घटनाओंका आपसमें कोई सम्बन्ध हो सकता है?

आखिरकार कुछ लोगोंके आग्रहपर वे लोग अहमदको लेकर खिरबी गये। माता-पिता भी राजी हो गये। वहाँ पता चला कि अहमदकी बतायी हुई घटनाएँ इब्राहीम बोहमजी नामक एक २३ वर्षीय नौजवानके जीवनसे पूरी तरह मेल खाती हैं।

इब्राहीम बोहमजी रीढ़के क्षयरोगसे मरा था और मौतसे पहले कई वर्षोंतक वह चलने फिरनेसे लाचार था। शायद इसीलिये अहमदकी भावना ऐसी थी, मानो उसे एक बहुत लंबे समयके बाद पैर मिले हों। यह भी पता चला कि इब्राहीम बोहमजीको जमील नामकी एक खूबसूरत लड़कीसे बहुत प्यार था; परंतु मृत्युने उनकी शादी नहीं होने दी।

छानबीनसे मालूम हुआ कि ऐसी ट्रक दुर्घटनाका शिकार, जिसका अहमदने बार-बार जिक्र किया था, सईद बोहमजी हुआ था। वह इब्राहीमका पड़ोसी और गहरा दोस्त था। उसकी मौतसे इब्राहीमको गहरा सदमा पहुँचा था। शायद इसीलिये वह बार-बार ट्रक-दुर्घटनाका जिक्र किया करता था और ट्रकोंसे डरा करता था।

अहमदको इब्राहीमके घर ले जाया गया। वहाँ उसे कई फोटो दिखाये गये। उसने उनमेंसे कइयोंको पहचान लिया। इब्राहीमकी बहन हुदाने उससे पूछा—'क्या तुम मुझे पहचानते हो?' अहमदने तुरंत उत्तर दिया—'तुम मेरी बहन हो' और फिर एक तस्वीरकी ओर इशारा कर कहा—'तुम, तुम हुदा हो।' यह सुनकर सभी लोग हैरान हो गये।

अहमद अपने पहले घर [illegible] जानेको कहता था। उसने यह भी कहा कि 'मेरे पास एक शाटगन और एक बंदूक थी।'

पता चला कि इब्राहीम शिकारका शौकीन था और उसके पास एक शाटगन और एक बंदूक थी।

यहाँ भी, यही प्रश्न उठता है कि क्या अहमदके रूपमें इब्राहीम बोहमजीका पुनर्जन्म हुआ है? [illegible] धर्मशास्त्री लोगोंने अलग-अलग उत्तर दिये हैं, [illegible] [illegible] ही होता आया है।

झुंझलाहटसे खीझकर उसे एक चपत लगा दी। बच्चेने उसका प्रतिवाद करते हुए कहा—'माँ! मुझे मारो मत। मैं अपने गाँव इतरानी वापस चला जाऊँगा। मैं उस गाँवका रहनेवाला भजनसिंह हूँ। मेरी पत्नी है, तीन भाई हैं, माँ है और एक लड़की है। मेरा घर है, कुआँ है, बगीचा है और खेत है।'

अपने चार सालके लड़केकी ऐसी अनर्गल बातें सुनकर भगवती देवी आगबबूला हो गयी। अच्छी मार पिटाईसे वह लड़का उस समय चुप हो गया।

परंतु जैसे-जैसे वह बड़ा होने लगा, उसने अपने सहपाठियोंको यह बतलाना आरम्भ किया कि उसकी पत्नी तथा परिवार है। इसके कारण वह शीघ्र ही अपने सहपाठियोंमें उपहासका विषय बन गया।

सहसा एक दिन उसने अपने दादा ठाकुर नेत्रपालसिंहको भी यही कहानी सुनायी। इस कहानीने ठाकुरके मनमें एक कौतूहल जाग्रत् कर दिया। तब उसने इतरानीके एक व्यक्तिसे यह पूछताछ की कि 'क्या वहाँ कोई भजनसिंह नामका व्यक्ति भी था?' उस व्यक्तिके विचारमें वहाँ उस नामके एक सज्जन थे।

शीघ्र ही उसके दादा इतरानी गये और वहाँ उन्हें यह पता चलते देर नहीं लगी कि वहाँ भजनसिंह नामका एक व्यक्ति अवश्य था, जो अपनी पत्नी तथा एक पुत्रीको छोड़कर सन् १९५१में ही ज्वरसे चल बसा था।

मुनेशका जन्म सन् १९५१में वीरेन्द्रपालसिंहकी पत्नीसे हुआ था। मुनेशके रूपमें भजनसिंहका पुनर्जन्म हुआ है। नेत्रपाल ठाकुर साहबने भजनसिंहके परिवारसे सम्पर्क स्थापित करके मुनेशके दावेके विषयमें बतलाया। भजनसिंहके परिवारने इस विषयमें रुचि लेना आरम्भ कर दिया। तब भजनसिंहका भाई तथा बहनोई ठाकुरके साथ नौंदगरी आये, जहाँ मुनेशने उन्हें बहुत आसानीसे पहचान लिया। दोनों व्यक्ति भजनसिंह तथा मुनेशकी आकृति और व्यवहारके आश्चर्यजनक साम्यसे बहुत प्रभावित हुए। उनके इतरानी लौटनेके समय आनेपर मुनेश अपने भाईसे चिपट गया और उसे पीछे छोड़ दिये जानेके लिये वह तैयार नहीं था। अन्तमें ठाकुर नेत्रपालसिंहके उसे कुछ ही दिनोंमें इतरानी ले जानेका वचन देनेपर ही लड़का शान्त हुआ।

भजनसिंहकी विधवा स्त्रीके पास संवाद पहुँचना

बहुत शीघ्र ही यह समाचार भजनसिंहकी विधवा पत्नी अयोध्यादेवीके पास पहुँच गया, जो सिगरा ग्राममें अपने पिताके घरपर रह रही थी। आश्चर्य तथा जिज्ञासासे भरकर वह अपनी भावजके साथ नौंदगरीके लिये चल पड़ी। वे दोनों ही लंबी तथा दुबली-पतली थीं और दोनों एक-जैसे कपड़े पहने हुए थीं। दोनों ही उसी प्रकार परदेमें थीं, जिस तरह कि जनतामें अपनी पहचानको छिपाये रखनेके लिये भारतीय महिलाएँ घूँघट काढ़ा करती हैं। जब वे नौंदगरी पहुँचीं तो गाँववाले इकट्ठे हो गये और मुनेशको वहाँ बुलवाया गया।

मुनेश इन महिलाओंको वास्तवमें जानता है अथवा नहीं, इस बातकी परीक्षा करनेके लिये उसके ताऊने उससे पूछा कि 'क्या तुम अपनी माँको पहचानते हो?' मुनेशने उत्तर दिया कि 'इनमें उसकी माँ नहीं है और ये दोनों उसकी पत्नी तथा उसकी भावज हैं।' अचानक लड़केने अयोध्यादेवीका हाथ पकड़ लिया। उस विधवाने सबके सामने उस लड़केको एक ओर करते हुए पूछा—'हमारे जीवनके किसी ऐसे विशिष्ट प्रसङ्गका वर्णन करो, जिससे मुझे यह विश्वास हो सके कि तुम मेरे पति हो और इस रूपमें तिरसे तुमने जन्म लिया है।' किसी भी प्रकारकी तनिक-सी भी हिचकिचाहटके बिना मुनेशने कहा—'जब मैं आगरासे अपनी इन्टरमीडियटकी परीक्षा देकर इतरानी वापस लौटा था तो मुझे पता चला कि मेरी माँ और तुम्हारे बीच झगड़ा हुआ है। मैंने तुम्हें मनानेके लिये [illegible] था। मथानी टूट गयी थी और तुम्हारी [illegible] पास हो गया था।' उसने अपनी आश्चर्यजनक [illegible] अपने दाम्पत्य-जीवनकी कई ऐसी घनिष्ठ बातें भी बतायीं, जो भारतमें पति तथा पत्नीके बीच गोपनीय [illegible] रहती हैं, जिन्हें कोई भी अन्य व्यक्ति जान नहीं सकता था। उसकी इन बातोंको सुनकर अयोध्यादेवीको विश्वास हो गया और उसने [illegible] अपने [illegible] [illegible] पड़ी।

मुनेशका इतरानी-गमन

इतरानी पहुँचकर मुनेशने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नाम लेकर [illegible] [illegible]। [illegible] शीघ्र ही यह विश्वास हो गया कि [illegible] [illegible]

'जी हाँ, मेरे तीन भाई थे और उनमेंसे एकने मुझे गोलीसे मार डाला।'

यह बातचीत दिल्लीमें एक गुप्ता और उनके बेटे गोपालकी है।

गोपालका जन्म १९५६में हुआ था। बातचीतके दौरान उसने कहा कि 'वह मथुराका रहनेवाला है और पिछले जन्ममें उसके 'सुख-संचारक कंपनी' नामक एक दवाओंकी दूकान थी।'

गोपालके माता-पिताने इन बातोंको पहले तो कोरी बकवास समझा; किंतु बादमें बच्चेकी बार-बारकी रटको देखकर एक दिन पिताने अपने कुछ मित्रोंसे इसकी चर्चा की। उन्होंने कहा—'सम्भव है कि बच्चा जो कुछ कहता है, वह ठीक हो; क्योंकि कुछ साल पहले मथुरामें 'सुख-संचारक कंपनी'के मालिक श्रीशक्तिपाल शर्मा गोलीसे मारे तो गये थे।' इसलिये गोपालके पिता मथुरा गये और वहाँ आसानीसे ही शक्तिपाल-के परिवारसे मिलकर उन्होंने सचाईका पता लगाया।

जब श्रीशक्तिपालके परिवारको यह मालूम हुआ कि दिल्लीमें एक लड़का पिछले जन्ममें शक्तिपाल होनेका दावा करता है, तो शक्तिपालकी पत्नी और भाभी दिल्ली आयीं और गोपालसे मिलीं। गोपालने दोनोंको पहचान लिया। उसने भाभीसे तो बात की, परंतु पत्नीसे एक शब्द भी नहीं कहा।

जाँचसे पता चला कि वह अपनी पत्नीसे बहुत नाराज था। 'मैंने इससे पाँच हजार रुपये माँगे थे, पर इसने देनेसे इन्कार कर दिया और कहा कि कंपनीमें जाकर लो। मैं वहाँ गया और मेरे छोटे भाईने मुझे गोलीसे मार डाला।'

श्रीशक्तिपाल शर्माकी विधवाने इस बयानकी तसदीक की।

मेरी दूकान—

इसके बाद गोपालको मथुरा ले जाया गया कि देखें वह पिछली चीजोंको पहचानता है या नहीं। द्वारकाधीश मन्दिरके पास उससे कहा गया कि वह स्वयं आगे-आगे चलकर 'अपने घर' का रास्ता बताये। लड़का जैसे ही 'सुख-संचारक कंपनी'के पास पहुँचा, उसने जोरसे पुकारकर कहा—'यह रही मेरी दूकान'।

फिर पेंचदार गलियोंसे होता हुआ वह श्रीशक्तिपालके घरके सामने खड़ा हो गया। उसने कहा—'यह मेरा घर है। मैं ऊपरवाले कमरेमें रहता था।' घरमें उसने शक्तिपालकी बेटीको पहचाना। उसे एक एलबम दिया गया, जिसमें लगे हुए शक्तिपालके सभी फोटोग्राफोंमें उसने अपने फोटो बताया।

फिर उससे वह जगह पूछी गयी, जहाँ उसे गोली मारी गयी थी। कहा जाता है कि उसने दुबारा कंपनीमें जाकर ठीक वही जगह बतायी, जहाँ शक्तिपालको गोली मारी गयी थी। उसने पूरी घटनाका वर्णन किया कि वह दूकानमें किस जगह और किस तरह खड़ा था और गोली किस दिशासे आयी थी और उसके कहाँ लगी थी।

शक्तिपालके बेटेने गोपालके बयानोंकी तसदीक की।

स्वार्थ नहीं—

यह धोखाधड़ीका मामला नहीं लगता; क्योंकि लड़केके माता-पिताने इस घटनाका न किसी प्रकार प्रचार किया था और न उन्हें इससे कोई आर्थिक लाभ ही हुआ था। धोखाधड़ीके पीछे कोई स्वार्थ होना ही चाहिये।

न इस मामलेको हम स्मृतिकी गिनती या तोड़-मरोड़ ही कह सकते हैं; क्योंकि बच्चेके हर बयानकी तसदीक हुई। फिर हमारे पास इन बातोंका क्या उत्तर है कि उसने पहुँच-की चीजें न सिर्फ यहीं सही पहचान लीं, बल्कि [illegible] लोगोंके साथ उसका व्यवहार भी ठीक वैसा ही रहा जैसा कि शक्तिपालका था। क्या कोई और [illegible] है?

जीवनभर हृदयसे भगवान्‌का स्मरण करो

जैसे कर्म किये जीवनभर जैसे मनमें रहे विचार।
अन्तकालमें भाव मनुजका होता उसके ही अनुसार॥
तदनुसार ही सद्गति, दुर्गति होती उसे प्राप्त अनिवार।
अतः रहो अविरल ही मनुज [illegible] भगवत्स्मृतिमें [illegible]॥

बहुत प्रसन्न हुए। अब यह प्रश्न यहाँपर बहुत महत्त्वपूर्ण स्थितिमें आ जाता है कि जीवात्माको पुनः उसी शरीरमें वापस आनेमें केवल घंटोंका समय लगा; किंतु उस जीवको वर्षों प्रतीत हुआ। मुझे यह प्रतीत होता है कि यह समयान्तर केवल अनुभवसे ही अधिक और कम ज्ञात होता है।

(२)

बालक करीम उल्लाह

भारत और पाकिस्तानका बँटवारा १९४७ में हुआ था। बँटवारेके बाद बरेलीमें एक मुस्लिम परिवारमें पुनर्जन्म-सम्बन्धी घटना घटी। बरेलीमें ही एक प्रतिष्ठित मुसलमान श्रीइकराम अली हैं। उनके दो लड़के बताये गये हैं। एक पाकिस्तानमें हैं और दूसरे भारतमें ही रह गये। भारतमें (बरेलीमें) रहनेवाले लड़केका नाम श्रीमोहम्मद फारूक था। मोहम्मद फारूककी मृत्यु १९५४ ईस्वीमें हुई और उनका जन्म उसी सन्‌में बरेलीमें ही एक मुसलमान-परिवारमें हुआ। इस घटनाका रहस्य तब मिला, जब मुस्लिम अध्यापक रहमतुल्लाह अन्सारी ईद मिलने अपने पाँचवर्षीय पुत्रके साथ श्रीइकराम अलीके यहाँ पहुँचे। श्रीइकराम अलीके यहाँ अन्सारी साहब बच्चोंको पढ़ाते थे और ईदके दिन वे अपने बच्चेके साथ मिलने गये। उस मकानमें, जिसमें इकराम अली साहब रहते थे, पहुँचकर श्रीअन्सारीके पञ्चवर्षीय बालकने सबको अचम्भेमें डाल दिया और अनेक मौलवियोंको अपने मजहबके विरुद्ध पुनर्जन्म-सिद्धान्तकी ओर आकृष्ट कर दिया। बालकने अपने पूर्वजन्ममें, जब वह मोहम्मद फारूकके नामसे श्रीइकराम अलीका लड़का था, अपने समस्त सामानोंको पहचाना और अपने पूर्वजन्मकी बीबी श्रीमती फातिमा बेगमको भी पहचाना। उनसे बातें भी उसी रूपमें कीं और उसने कई ऐसे रहस्योंको भी उद्घाटित किया, जिन्हें केवल दिवंगत मोहम्मद फारूक और श्रीमती फातिमा बेगम ही जानती थीं। उसने एक संदूक और अपने भाईके पास पाकिस्तानमें अपने द्वारा भेजे गये पाँच हजार रुपयेका भी रहस्य बताया। उसने यह भी कहा था कि उसका निजी हिसाब बैंकमें तीन हजार रुपयेका था। जब भावावेशमें आकर उस बालकको फातिमा बेगमने अपनी गोदमें बैठाना चाहा, तो उस बालकने कहा—'तुम मेरी बीबी हो फातिमा! मैं तुम्हारा शौहर रहूँगा।' और वह बालक फातिमा बेगमकी गोदीमें नहीं बैठा। यह समाचार कई पत्रोंमें छपा था। वाराणसीके 'संसार'में (३।७।५९) में भी छपा था। इस घटनासे मृत्यु और पुनर्जन्मके ठीक दिनाङ्कका पता तो नहीं चला; किंतु वर्षका पता तो चल ही गया। मोहम्मद फारूक १९५४ में मरे थे और उसी सन्‌में उनका उसी बरेली नगरमें जन्म हो गया था।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णजीने जो घोषणा की है, उसका साधारण अर्थ यदि यही मान लिया जाय कि मरनेके बाद जीवात्माको तुरंत दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है तो दूसरा शरीर धारण करनेमें समयका कितना व्यवधान पड़ता है? इसका उत्तर 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' की साधारण व्याख्यासे नहीं मिल सकता। आचार्योंने बहुत प्रकारसे इस श्लोककी व्याख्या उपस्थित की है। बृहदारण्यक उपनिषद्‌में पुनर्जन्मकी व्याख्या विशेषरूपसे की गयी है। जैसे भोजन करनेके बाद उसे पचानेमें कुछ समय लगता है और पचनेके बाद पुनः भोजन करनेकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मरनेके बाद जीवको 'कर्मविपाक'के लिये कुछ समयतक रुकना पड़ता है। कर्मविपाक एक ऐसा पवित्र और सत्य सिद्धान्त है कि उसकी सत्यता और निश्चयतामें किसीको व्यावहारिक रूपसे संदेह नहीं होना चाहिये। कुछ उपनिषदों और अन्यान्य ग्रन्थोंमें पुनर्जन्मके विषयमें यह लिखा है कि मरणोत्तर जीवात्माको कर्मानुसार सूक्ष्मशरीर, स्थूलशरीर, लिङ्गशरीर आदिमें अपने कर्मोंके फल भोगने पड़ते हैं। जीवके लिये जन्म और मरण—दो ही अवस्थाएँ हों, नहीं है। इन दोनों अवस्थाओंके बीच प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय अवस्थाएँ भी बितानी पड़ती हैं। इस प्रसङ्गमें भारतीय पुराणग्रन्थों और उपनिषदोंमें विशेष उल्लेख प्राप्त होते हैं। मैंने यहाँ कुछ प्रमुख उन घटनाओंके उल्लेखका प्रयत्न किया है, जिनमें व्यक्तियोंद्वारा अपनी स्मृतिके आधारपर पुनर्जन्मके उल्लेख हुए हैं।

(३)

साढ़े तेरह महीने बाद पुनर्जन्म

'[illegible]' नामक एक [illegible] पत्रिकाने श्रीमधुसूदन [illegible] एक [illegible] पुनर्जन्म [illegible] घटनाका [illegible] किया है। उस [illegible] यही प्रदर्शित किया है कि उस [illegible]

था। संयोगसे समाचारकी तिथि फट जानेके कारण यहाँ उसका निर्देश नहीं किया जा रहा है। घटनाका विवरण निम्न प्रकारसे है—"शाहजहाँपुरका चारवर्षीय बालक अवधेश, जो स्वयंको पूर्वजन्मका कोटाहारका जागीरदार गजेन्द्रसिंह बताता है, प्राप्त सूचनाके अनुसार कोटाहारस्थित भवनमें स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहजीकी विधवाका मेहमान है। उस बालक अवधेशका जन्म 'सिंपुरा' गाँवके एक ठाकुर परिवारमें हुआ है। बताया जाता है कि उसने अपनी माँको, अपने पिछले जन्मकी कथा सुनाते हुए कहा कि, 'उसे उसके पुराने कोटाहार-स्थित भवनमें रहनेका अवसर दिया जाय।' उल्लेखनीय है कि स्वर्गीय गजेन्द्रसिंह कोटाहारके प्रभावशाली जागीरदार थे। एक मामलेके सिलसिलेमें अदालतमें सुनवाई जारी थी कि उसके निर्णय सुनाये जानेके पूर्व देहली अस्पतालमें उनकी मृत्यु हो गयी। उक्त बालकके हठ तथा पूर्वजन्मके वृत्तान्तकी चर्चा स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहकी पत्नी तक पहुँची तो उन्होंने बालकको अपने पास बुलाया। वहाँ पहुँचनेपर उस बालकने अपने पूर्वजन्मके घरकी प्रत्येक वस्तुको पहचान लिया और अपने परिवारके प्रत्येक सदस्यको, उनके नामोंसे पुकारने लगा। बालककी अनेक बातोंसे उसके कथनकी पुष्टि हो चुकी है। बालकका आचरण स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहके समान देखकर रानी साहिबाने ब्राह्मणोंको भोज तथा गरीबोंको दान देकर हर्ष मनाया।

"पूर्वजन्मकी विविध बातोंमें, उक्त बालक अवधेश उस दुःखद परिस्थितिका भी वर्णन करता है, जिसमें स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहकी दुःखद मृत्यु हुई थी। दूसरी बात यह भी बताते हैं कि 'एक बार शेरका शिकार करते समय वह अपने एक हाथको खो बैठा था।' कहा जाता है कि उक्त बालकने रानी साहिबाको उनके अपने सम्बन्धकी अन्य कितनी ही बातें बतायीं।" ('संसार' वाराणसी)

(५)

बालक लवकुश

यह समाचार भी अन्य पत्रोंके साथ वाराणसीके 'संसार' (२४-९-६१) में प्रकाशित था। "आगरा, ताजगंजके अन्तर्गत कुँआखेड़ाके लवकुश नामक एक बालक (ढाई वर्षीय बालक) के द्वारा अपने पूर्वजन्मकी बातें बताकर गाँववालोंको आश्चर्यचकित कर देनेका समाचार मिला है। इस बालकको देखनेके लिये सैकड़ों गाँववाले नित्य आ रहे हैं। समाचारोंके अनुसार उक्त बालकने अपने पूर्वजन्मके पाटूपुराका नाम बताया, जो कुँआखेड़ासे एक मीलकी दूरीपर है। साथ ही उसने अपने परिवार और अपने नामके बारेमें सारी बातें बतायीं, जो सही साबित हुईं।

"लड़केने बताया कि उसका पूर्वजन्मका नाम 'शिवचरण' है तथा उसको एक रातको कुछ व्यक्तियोंने सोते हुए खत्म कर दिया। स्मरण रहे कि लगभग ढाई साल पूर्व पाटूपुरा गाँवमें शिवचरणसिंहका खून हुआ था, जिसमें मारनेवालोंका अभीतक पता नहीं चल पाया है।

"इसके अलावा बालकने बताया है कि मेरे कुछ रुपये घरके एक कोनेमें एक स्थानपर एक डिब्बेमें गड़े हुए हैं। जिसकी गाँववालोंने जाँच की तो बताये हुए स्थानपर रुपये डिब्बेमें गड़े हुए मिले।" ('संसार' २४-९-६१)

प्रारब्ध नहीं बदल सकता

प्रारब्धका न तो फल भुगताये बिना नाश होता है, न प्रारब्ध बदल सकता है। परंतु मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र होनेके कारण यदि सम्यक् प्रकारसे शास्त्रोक्त देवाराधन, सेवा, भगवदाराधन आदि प्रबल कर्म करे तो तुरंत नवीन प्रारब्धका निर्माण हो सकता है और वह प्रारब्ध फलदानोन्मुख पहले प्रारब्धके बीचमें अपना फल दे देता है। जैसे—फलदानोन्मुख प्रारब्धमें पुत्र-प्राप्तिका योग नहीं है, पर यदि पुत्रेष्टि-यज्ञ विधिपूर्वक सम्पन्न हो जाय तो नवीन प्रारब्धके निर्माणसे पुत्र-प्राप्ति हो सकती है। इसी प्रकार अन्यान्य विषयोंके लिये भी समझना चाहिये। प्रबल शाप-वरदानसे भी तुरंत नया प्रारब्ध बन सकता है। वास्तवमें उत्तम तो यही है कि भौतिक प्राप्ति-पदार्थ-परिस्थितियोंके लिये प्रारब्ध-निर्माणका प्रयत्न न कर भगवान्‌का निष्काम भजन करना और प्रत्येक अनुकूल-प्रतिकूल भोगमें भगवान्‌का मङ्गल विधान मानकर नित्य प्रसन्न रहना चाहिये। संसारमें प्रत्येक स्थितिमें समता और भगवान्‌में अनन्य ममता करनी चाहिये।

"जवाब सुनकर मैं सन्नाटेमें आ गया। सोचा, शायद यह बक रहा है। इसलिये फिर पूछा—'तुम्हारा नाम?' 'लोग मुझे बालमुकुन्द कहते हैं और समझते हैं कि मैं यहाँ नौकर हूँ। पर मेरा नाम गंगाधर है। मैं इस होटलका मालिक हूँ।'

"मेरे पैर थर-थर काँप रहे थे। मैंने मुँह-हाथ जल्दी-जल्दी धोया और दफ्तर लौट आया। उस समय रातके ९ बजे थे और मेरे सोनेका प्रबन्ध दफ्तरके ही एक कमरेमें किया गया था। इसी रातको १२ बजे लौटना था। मैं स्टेशन पहुँचा। साथमें मेरे दफ्तरका चपरासी और मेरे एक क्लर्क मित्र स्टेशन आये। जब हम स्टेशन पहुँचे तो मैं यह देखकर चकित रह गया कि बालमुकुन्द भी वहाँ मौजूद था। मैंने उससे बहुत कम बातें कीं। इतनेमें ट्रेन आ गयी। जब गाड़ी चलने लगी तो उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। वह बोला—'अच्छा, जल्दी ही मिलूँगा।'

"मैंने दोस्तके कानमें कहा—'शायद गंगाधर फिर पैदा हो गया है। तुम इस लड़केपर नजर रखना और मुझे इसके बारेमें खबर भेजते रहना।' इन २० वर्षोंमें मेरी शादी हो चुकी थी। मेरी पत्नी गर्भवती थी। प्रसूतिगृहमें भर्ती की गयी। इसके सात दिनों बाद मैं लड़केका बाप बना। मुझे रोज अस्पताल जाना पड़ता। दो-तीन दिन बाद जब मैं अस्पतालसे एक शामको घर लौटा तो मैंने अपने नाम दरवाजेपर एक लिफाफा पड़ा पाया। खोलकर पढ़ा तो मुझे ऐसा लगा कि जैसे किसीने मेरे गालपर भरपूर तमाचा मार दिया हो। पत्रमें बालमुकुन्दकी मृत्युका समाचार था। पाँच वर्ष बिना किसी महत्त्वपूर्ण घटनाके बीत गये और मैं धीरे-धीरे बालमुकुन्द और गंगाधरको भूलने लगा; पर कभी-कभी बालमुकुन्दका चेहरा अचानक मेरे सामने आ जाता और तब मुझे ऐसा महसूस होता जैसे मेरे सीनेमें किसीने लात मार दी है।

"मेरा लड़का मोहन जब पाँच सालका था, एक दिन मेरी पत्नीने उससे पूछा—'बेटा! तू डाक्टर बनेगा?' 'नहीं।' 'तो वकील बनेगा?' 'नहीं।' 'जज बनेगा?' 'नहीं।' 'तो क्या करेगा?' 'मैं होटल चलाऊँगा माँ!'—वह बोला। उस समय मैं लिख रहा था। उत्तर सुनते ही मेरी कलम छूट गयी। पर मैंने अपनेको संयत कर लिया और देवी-देवताओंको मनाने लगा। एक दिन मैं दफ्तरसे लौटा और खाना खाने बैठा तो मैंने देखा कि पत्नीने टमाटरका साग बनाया है। साग देखकर मोहन चिल्लाया—'बाबूजी टमाटरका साग नहीं खाते। उन्हें अच्छा नहीं लगता।' मैंने झपटकर उसका मुँह पकड़ लिया और कहा—'मोहन! ऐसा नहीं कहते।'

'क्यों, पहले तो तुम टमाटरका साग नहीं खाते थे।'

'कब?' 'पहले, बहुत साल पहले।'

"आगे उससे बात करनेकी मेरी हिम्मत नहीं थी। मैंने फिर एक बड़ी गलती की। मैंने अपनी पत्नीको अलग बुलाकर कहा—'मैं एक होटलमें खाना खाता था। वहाँका मालिक गंगाधर ही हमारे यहाँ पैदा हो गया है।' और दूसरे दिनसे ही मोहनको बुखार आने लगा। एक हफ्ताह बाद मोहन मर गया। उसके अन्तिम समयमें मैंने उससे पूछा था—'मोहन! तुम मुझे छोड़कर कहाँ रहोगे?'

"वह मुस्कराकर बोला था—'अब नहीं मिलूँगा।' तबसे मोहनके पुनर्जन्मकी कोई सूचना मुझे फिर नहीं मिली।"

(२)

बालक सत्यनारायण

(प्रेषक—श्री[illegible])

यह इसी वर्षके गत मास फाल्गुनकी है। राजस्थानके जिला बूँदी तहसील केशवरायपाटनके ग्राम [illegible] भवानीशंकरके बड़े लड़केका विवाह था। बारात उसी [illegible] ग्राम गेंदोलीमें आयी थी। भवानीशंकरके एक छोटा लड़का और है—जिसका नाम सत्यनारायण है। जब [illegible] बड़े भाईकी बारात गेंदोलीमें आयी थी, सत्यनारायण [illegible] वर्षका था। सत्यनारायणने उससे कुछ ही दिनों पहले बोलना आरम्भ किया था। एक दिन वह अपने पिता भवानीशंकरके साथ [illegible] मोटर [illegible] था। वहाँ [illegible] देखकर [illegible] (मटर) [illegible] है। [illegible] है।' [illegible] कि लड़का [illegible] है। [illegible] दिया। कुछ दिनों [illegible]

यह पेशाब है या दस्त आता है ?' उसने कहा कि 'मैं जैसा पानी लेकर पेशाब करने जाती थी, वैसे ही अब भी करती हूँ।' पूछनेपर उसने बतलाया कि 'मैं दर्जिन हूँ। मेरा घर छिटुहनी मौजेमें है।' तथा घरभरका नाम बतलाया और वहाँ जानेका आग्रह करने लगी। घरवाले निहायत परेशान हुए और मजबूर होकर एक दिन घरवाले उसे लेकर छिटुहनीको चले। बलरामपुर डाकखानेसे उस जन्ममें उसका पता देता था। वहाँसे वह खुद रास्ता बतलाती हुई गयी। रास्तेमें धुमाह गाँव पड़ा। लोगोंने धोखा देना चाहा कि यही छिटुहनी गाँव है। उसने कहा—नहीं, यह छिटुहनी नहीं, बल्कि धुमाह है और रास्ता बतलाती हुई छिटुहनी पहुँची। गाँवके बाहर घरवालोंने छोड़ दिया और कहा कि 'अपने घर हो चल।' वह सीधे अपने पूर्वजन्मके घरके दरवाजेपर जाकर खड़ी हो गयी। गाँवमें जो मिला, सबको पहचाना। उस समय उसके पूर्वजन्मका पति धोखे घरपर नहीं था। बहू ससुरालमें थी। जेठ नूरे पहले ही मर चुका था। उसकी [illegible] वहाँ बाहर गयी हुई थी। उसने सब बातें बतलायीं। उसने देवर, बड़े लड़के और देवरानीको पहचाना। कुरान-शरीफ जहाँ रखती थी, बतलाया। चाँदीके रुपये रखे हुए थे उनके तथा उनकी संख्याके बारेमें बतलाया। घरवालोंने कहा—'पैसा खर्च हो गया।' जेवर जो-जो था, उसके बाबत उसने पूछा तो उन लोगोंने बतलाया कि 'जेवर सब मौजूद है।' वह उस औरतको नहीं पहचान सकी, जिसको उसके मरनेके बाद उसका पति लाया है। उसके घरके उत्तर पास ही एक बाग है। पेड़ोंका नाम बतलाया। एक दिन उसकी [illegible]ने माथेके ऊपर करछुलसे मारा था, घाव हो गया था, वह [illegible] दिखलायी। वहाँ रुकना चाहती थी, लेकिन लोग उ[illegible]

आये। बार-बार निगमके घरवालोंसे कहती कि 'कपड़ा लाओ, जो दोनों लड़के हैं, उनके लिये सीकर दूँगी।' यह दो सालके अंदरकी बात है। उस लड़कीके पास बड़ी भीड़ हर समय जमा रहती। सरकारी अस्पताल, जिस अस्पतालमें निगम कम्पाउण्डर थे, के डाक्टर रघुवीरसिंहने रोका कि 'इतनी भीड़ न होने दो। ज्यादा बोलनेसे लड़की पगली न हो जाय।'

लेखक उसे देखनेके लिये नवम्बर सन् १९६६ में निगमके घर गया। घरके बाहर बड़ी भीड़ लगी थी, लेखकमें कोई योग्यता नहीं है; किंतु गजटेड[illegible] व्यक्ति समझकर या जो कुछ लोगोंका ख्याल हो, लोग प्रतीक्षा करते हैं; इसलिये निगमको जब मालूम हुआ तो लड़कीको लेकर बाहर आये। उस समय भीड़ इतनी थी कि उतनी भीड़में कुछ पूछना अनुचित लगा। फिर निगमसे कहा गया। वे लड़कीको लेकर मेरे घर आये। लेखक, लेखककी स्त्री और घरवालोंने एक-एक बात पूछी। सब बात सही साबित हुई। उस लड़कीको अब भी पूर्ववत् सब बातें याद हैं। माधुरी निगमका तबादला बलरामपुरसे चौदह मील दूर मधुरा बाजारमें हो गया है। यह यहींपर है। उस लड़कीके पूर्वजन्मके पति घोले एवं देवर रमजान छिटुहनीमें मौजूद हैं। दिनमें बलरामपुर बाजारमें घूमकर [illegible] पान करते हैं।

नोट—जबसे यह घटना लड़कीके [illegible] हुई है, सुना गया है कि उस जन्मके पति घोले एवं देवर रमजानको मुसलमान लोग कहते हैं कि 'तुम मुसलमान होकर इस बातको क्यों तसलीम करते हो!' वे कहते हैं—'जो सच्ची बात है, क्यों न तसलीम करें।'

(४)

श्रीअवधेशप्रसाद मिश्र

(प्रेषक—श्रीकमलेशप्रसाद मिश्र [ए० आर० के०])

जिला सीतापुरमें तहसील सिधौलीसे उत्तर दो मीलकी दूरीपर ग्राम हरिपुर (हीरपुर) के निवासी श्रीअवधेशप्रसाद मिश्रका जन्म संवत् १९७० वि०में श्रीपुत्तूलालजी मिश्रके घरमें हुआ था। उस समय स्व० पुत्तूलाल मिश्र [illegible]पुर (जो कि लखनऊसे सीतापुर जानेवाली रेलवे लाइनपर एक स्टेशन है) के सरकारी चिकित्सालयमें [illegible] थे। श्रीअवधेशप्रसाद मिश्र, जो कि अभी मौजूद हैं, मेरे सगे चाचा हैं, आयु वह दो या तीन वर्षकी

हुई और टूटी-फूटी बोली बोलने लगी [illegible] बातें करने लगे। उनका कहना था कि [illegible] फैजाबादके [illegible] ([illegible]) [illegible] अस्पतालमें थे। उनका नाम [illegible] था। उनके [illegible] उनकी [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible]

वह स्वयं ही गलियोंके रास्ते चौराहेपर पहुँच गया। इसी चौराहेके पास पं० लक्ष्मीचंदका मकान था। इसे दूसरे मकानमें ले जाया गया। कहने लगा कि 'यह हमारा घर नहीं है। यह तो पटवारीका घर है।' वास्तवमें ही वह पटवारीका घर था। धीरे-धीरे चलकर उसने पं० लक्ष्मीचंदका मकान जा पकड़ा। स्वयं उसमें घुस गया। वहाँ पचासों स्त्रियाँ, लड़कियाँ—इकट्ठी हो रही थीं। लक्ष्मीचंदकी सब लड़कियोंको बारी-बारीसे पहचानकर बतलाया। लक्ष्मीचंदकी स्त्रीको देखकर कहा—'यह मेरी माँ है।' परंतु उनसे दूर ही रहा। पूछा गया लड़केसे—'तुम अपनी माँसे दूर क्यों हो?' लड़का कहने लगा—'मेरी माँने मुझे कुछ दिया तो है ही नहीं।' ज्यों ही उसे पाँच रुपयेका नोट दिलाया गया, वह लक्ष्मीचंदकी स्त्रीकी गोदमें जा बैठा और 'माँ-माँ' कहने लगा। अन्य बातें पूछनेपर बताया कि 'मैं ९ वर्षतक बराबर पीपलपर प्रेत बनकर रहा हूँ। (लक्ष्मीचंदके मकानके पास ही यह पीपलका पेड़ है।) मैं उस समय प्रेतावस्थामें कुएँमें घुसकर पानी पी लेता था और घरमें घुस रोटी खा लिया करता था।' एक नौकर, जो लक्ष्मीचंदके यहाँ बहुत पहले रहता था, उसके बारेमें पूछने लगा कि 'अमुक नामका नौकर जो यहाँ रहता था, वह कहाँ है?' उसे भी उसने स्वयं ही भीड़में पहचाना। अपने पूर्वजन्मके भाइयोंको भी पहचाना। अब यह लड़का खेड़ी गाँवमें, जहाँ यह पैदा हुआ है, रहना नहीं चाहता। इसे बलात्कारसे दो बार गाँव खेड़ी ले जाया गया; परंतु वहाँ जानेपर इसने खाना नहीं खाया। कहता रहता है—'मैं तो ब्राह्मणका लड़का हूँ और यह जाट है। मैं जाटके यहाँका कच्चा खाना, कच्चे बर्तन ([illegible]) का दूध नहीं पीऊँगा।' चार-पाँच दिन इसे कच्चे बर्तनमें दूध पिलाते रहे और अन्तमें जब परेशान हो गये तो तंग आकर इसे सिकारपुर पं० लक्ष्मीचंदके पास भेज दिया गया। अब यह पहले जन्मके माता-पिता [illegible] के पास सिकारपुरमें ही है। इसने स्कूलमें पढ़ने जाना प्रारम्भ कर दिया है। स्कूलमें रहते-रहते मास्टरों [illegible] कई प्रतिष्ठित गाँवके लोगोंके सामने भी लड़केसे [illegible]। उपर्युक्त बातें बतलानेके अतिरिक्त अन्य और भी बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें बतलायीं। पं० लक्ष्मीचंद, उनके लड़के तथा अन्य लोगोंसे पहचाननेवाली बातें सच्ची सिद्ध हुईं।

इस घटनासे जहाँ पुनर्जन्मका सिद्धान्त सत्य प्रतीत होता है, वहाँ ९ वर्षतक पीपलपर प्रेत बनकर रहना एक अपूर्व बात है। सबको पहचानना इस बातका प्रमाण है कि यह अवश्य ही पीपलपर प्रेत बनकर रहा है। किस-किस समय गाँवमें ९ वर्षतक क्या-क्या होता रहा, ऐसी भी सभी बातें यह लड़का बताता है। पं० लक्ष्मीचंदका कहना है कि '१४ वर्ष हुए मेरा लड़का सोमदत्त ३॥ वर्षका मर गया था। उस समय कैलाशवती, प्रकाशवती और विष्णुदत्त थे और सरला, रविदत्त सोमदत्तके मरनेके पश्चात् पैदा हुए थे।' अब कैलाशवती, प्रकाशवती तथा विष्णुदत्तको तो पहचान लिया सो ठीक है, परंतु पश्चात्के पैदा होनेवाले सरला तथा रविदत्तको भी पहचान लिया; क्योंकि यह लड़का (सोमदत्त) मरनेके पश्चात् पीपलपर ९ वर्षतक रहना बतलाता है, ऐसी दशामें सबको पहचानना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। सोमदत्तका आत्मा पीपलपर बैठा सब कुछ देखता रहता था।'

हम स्वयं अलीपुर खेड़ी गाँव पहुँचे तो हमें मालूम हुआ कि घटना अक्षर-अक्षर बिल्कुल सत्य है। लड़का वीरसिंह अपने पूर्वजन्मके माता-पिता पं० लक्ष्मीचंदके साथ रहता है। लक्ष्मीचंदजी आजकल नैनीतालमें गये हैं, तो यह भी उनके साथ ही गया हुआ है। वे इसे अपने पास पुत्र मानकर रखते हैं और [illegible] भी चला आता है। हमने लड़केके [illegible] श्रीगीताप्रसाद [illegible] तथा और भी बहुत-से [illegible] बातें कीं, जिनसे घटना बिल्कुल सत्य सिद्ध हुई।

× × ×

(३)

ठाकुरसाहबका लड़का

पिलखुवा, हमारे स्थानपर सुप्रतिष्ठित विद्वान् शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीबिहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थजी पधारे थे। उन्होंने अपने मुखसे प्रसंगवशात् पूर्वजन्मके सम्बन्धकी श्रीरामनाम जपने, श्रीगङ्गास्नान करने और दानपुण्य करनेकी अद्भुत महिमाकी एक अपनी घटना सुनायी थी। वह सत्य घटना संक्षेपमें यह है—

"उझानी जिला बदायूँमें एक जगह है। एक बार कुछ राजपूत लोग, जो उझानीके पासके ही किसी गाँवके रहनेवाले थे, आये थे। वे अपने गाँवसे श्रीभगवती भागीरथीका स्नान करनेकी दृष्टिसे सपरिवार जा रहे थे। उनकी अपने घरकी सवारी थी, उसीमें बैठकर वे लोग आये थे। अपने गाँवसे चलकर जब उझानी आये तो उझानीके चौराहेपर वे विश्राम करनेकी दृष्टिसे कुछ देरके लिये रुक गये। बिल्कुल सड़कके पास उन दिनों कुछ कंजर लोग रहा करते थे। उन कंजरोंकी वहाँपर झोंपड़ियाँ पड़ी हुई थीं। इन ठाकुर लोगोंके साथमें इनका एक छोटा बालक था, जिसकी आयु लगभग ५ वर्षकी थी। वह ठाकुरोंका बालक उन अपने घरवालोंके पाससे चलकर उन सामने-वाले कंजरोंके पास उनकी झोंपड़ियोंमें पहुँच गया। उसने वहाँपर जाकर उन कंजरोंके सामने उनमेंकी एक कंजरीका नाम लेकर पुकारा। कंजरकी उस स्त्रीको उस बालकके इस प्रकार बिना जाने-पहचाने अपना नाम लेकर पुकारनेपर बड़ा आश्चर्य हुआ। कंजरकी स्त्रीने उस बालकसे पूछा—'अरे, तू किसको पुकारता है? तू कौन है?' इसपर उस ठाकुरके लड़केने कहा—'क्या तू मुझे नहीं जानती? क्या तू मुझे भूल गयी?' कंजरीने कहा—'मैं तुझे नहीं जानती कि तू कौन है और कहाँका रहनेवाला है?'

ठाकुरके लड़केने कहा—'मैं तेरा पति हूँ। तू मेरी स्त्री है।' उस कंजरीको एक छोटेसे बच्चेके मुखसे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि 'यह छोटा-सा ४-५ वर्षका बच्चा है और मैं इतनी बड़ी आयुकी स्त्री हूँ। फिर भी यह मुझे अपनी स्त्री कैसे बताता है!'

कंजरीने कहा—'अरे, तू मेरा पति कैसे बनता है! मैं तो तुझे जानती भी नहीं हूँ कि तू कौन है। मेरा पति तो कभीका मर गया है। अब मेरा पति कहाँसे आया! तू यह क्या कहता है!'

उत्तरमें उस बालक ठाकुरके लड़केने कहा—'तुझे पता नहीं कि तेरे पतिका नाम मोहनसिंह कंजर था!'

कंजरीने कहा—'हाँ, मेरे पतिका नाम मोहनसिंह कंजर था, पर तू कोई मोहनसिंह कंजर थोड़े ही है। वह तो मर गया!'

ठाकुरके लड़केने कहा—'मैं ही तेरा पति मोहनसिंह कंजर हूँ।'

लड़केने बताया कि 'मैं पहले जन्ममें तेरा पति मोहनसिंह कंजर था और अब मैंने इन ठाकुरोंके घरमें आकर जन्म ले लिया है।' लड़केने वहाँपर बैठे हुए सब कंजरोंको भी पहचान लिया। उसने उस समाजकी और सब बातें भी बतानी प्रारम्भ कर दीं और बहुत-सी गुप्त बातें भी, जो उससे पूछी गयीं, उसने उन्हें बतायीं। उसकी बतायी हुई सभी बातें सत्य थीं, उन्हें सुनकर सभी कंजरोंने और कंजरियोंने स्वीकार किया। इसलिये उन्होंने झटसे उस बालकको अपनी गोदमें उठा लिया।

इधर जब उन ठाकुरोंने देखा कि हमारा बच्चा यहाँपर खेल रहा था और अब देखते-देखते वह किधर भाग गया तो उन्होंने अपने उस बच्चेकी तलाश की। सामने कंजरोंकी झोंपड़ियोंकी ओर जो उनकी दृष्टि गयी तो देखा वह बच्चा कंजरोंके पास है। कंजर उसे अपनी गोदमें उठाकर बड़े प्रेमसे खिला रहे हैं। ठाकुर लोग भागे हुए वहाँपर गये और जाकर उन कंजरोंसे अपने बालककी माँग की। कंजरोंने कहा—'नहीं, यह तो हमारा मोहनसिंह कंजर है। हम इसे अपने पास रक्खेंगे।'

ठाकुरोंने उन कंजरोंको बहुत कुछ समझाने-बुझानेका प्रयत्न किया कि किसी प्रकार यह हमारे बालकको हमें लौटा दें, पर वे सब समझानेपर भी उस बालकको ठाकुरोंको देनेके लिये तैयार नहीं हुए। अब तो ठाकुरोंमें और उन कंजरोंमें आपसमें बड़ी खींचा-तानी और [illegible] हो गयी।

जब झगड़ा बहुत बढ़ गया, [illegible] और [illegible] नहीं, तो इस बातकी ठाकुरोंने थानेमें जाकर पुलिसमें सूचना दी कि 'हमारे बालकको कंजरोंने ले लिया है। नहीं दे रहे हैं। उनसे हमारा बालक हमको दिलवाया जाय।' पुलिस घटनास्थलपर पहुँच गयी। उसने उन कंजरोंसे उस लड़केको उन ठाकुरोंको

किसी कियाके ऐसे ही बिजलीमें फूँक देनेकी योजना की गयी है। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ते आदिमें तथा और भी कई जगह, सुनते हैं, यह कार्य प्रारम्भ भी हो चुका है।

दाह-संस्कारमें तनिक भी कमी रहनेसे मृतक आत्माको अगले जन्ममें कितना दुष्परिणाम भोगना पड़ता है, इसकी ये आजके पाश्चात्त्य सभ्यताके रंगमें रँगे लोग तनिक भी परवा नहीं करते हैं। सनातनधर्मानुसार दाह-संस्कार न करनेसे क्या-क्या भयंकर दुष्परिणाम भोगने होते हैं; शास्त्रोंमें आयी पुनर्जन्मकी बातें अक्षर-अक्षर सत्य कैसे हैं और आशुतोष भगवान् श्रीशंकरकी उपासनासे पुत्र-प्राप्ति और मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति कैसे होती है;—इस सम्बन्धकी एक बिल्कुल सत्य घटना नीचे दी जा रही है।

मार्च सन् १९६० की बात है। हम मुजफ्फरनगर गये हुए थे। एक दिन सहसा काली नदीके किनारे देव-मन्दिरोंके दर्शन करते हुए किसी संतके सत्सङ्गकी तलाशमें घूम रहे थे। अकस्मात् एक जगह एक तख्तपर विराजमान, गीताका पाठ करते हुए संत दृष्टिगोचर हुए। संतजीको सारी गीता कण्ठस्थ थी और उन्होंने उपनिषद् भी खूब देखे थे। आप योगाभ्यासी भी थे। शुभ नाम था—श्रीस्वामी मदनानन्द सरस्वती। प्रसङ्ग चलनेपर महाराजजीने कहना प्रारम्भ किया—

"मेरा जन्म जिला कानपुरके तहसील देरापुरमें संवत् १९४२में हुआ था। मैं जातिका दुबे ब्राह्मण था। हमारी माताजीके चार लड़कियाँ हुईं; पर उनके लड़का कोई नहीं हुआ। यह लड़का न होनेके कारण दिन-रात लड़के होनेकी चिन्तामें निमग्न रहा करती थीं। किसी संतके बतानेके अनुसार उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके लिये आशुतोष भगवान् श्रीशंकरकी शरण ली। हमारे गाँवके बाहर एक भगवान् श्रीशंकरजीका मन्दिर था। हमारी माताजीने पुत्र-प्राप्तिके निमित्त उन्हींकी पूजा-आराधना करना प्रारम्भ कर दिया। भगवान् शंकर बड़े ही दयालु हैं। उन्होंने हमारी माताजीकी प्रार्थना सुनी। पर जहाँ शास्त्रानुसार चलकर श्रीशंकर-पूजन करनेसे श्रीशंकर भगवान् प्रसन्न हुए, जहाँ उनकी कृपासे पुत्रप्राप्तिका शुभ अवसर हाथमें आया, वहाँ अकस्मात् एक कार्य शास्त्रविरुद्ध होनेके कारण एक घोर अनर्थ भी हो गया।

"बात यह हुई कि इसी दरम्यान अकस्मात् हमारे पूज्य बाबा श्रीरामगुलाम दुबेजीका स्वर्गवास हो गया। आपकी आयु उस समय लगभग ९० वर्षकी थी। शरीर पूरा होनेपर उन्हें मृतक-घाट अर्थात् श्मशान-भूमिमें ले जाया गया। हमारे उधर शास्त्रानुसार प्रथा है कि सूर्यास्त होते समय मुर्दा नहीं फूँका जाता है। सूर्यास्तके समय मुर्दा फूँकना पाप माना जाता है। इसलिये सब कोई सूर्यास्त होनेसे पहले ही मुर्दा फूँक देते हैं। हमारे घरवालोंने अज्ञानतावश यह शास्त्रविरुद्ध कर्म कर डाला। 'सूर्यास्त हो रहा है, इस समय नहीं फूँकना चाहिये' इस बातकी तनिक भी परवा न कर सूर्यास्तके समय ही दाह-संस्कार कर डाला।

"इस दाहकर्म-संस्कार करनेका घोर दुष्परिणाम यह हुआ कि जो अब उन्हीं बाबाको मुझ पोतेके रूपमें आकर आजतक भोगना पड़ रहा है। अर्थात् मेरी एक आँखसे मुझे हाथ धो बैठना पड़ा।

"बात यह हुई कि एक दिन रात्रिमें हमारी माताजीसे बाबाजीने स्वप्न-दर्शन देकर कहा—'तुमलोगोंने हमारा दाहकर्म सूर्यास्तके समय कर दिया, इसलिये हमारा क्रियाकर्म भ्रष्ट हो गया। शंकर-पूजनसे तुम्हारे पुत्र होगा। हम ही तुम्हारी कोखसे पुत्र बनकर जन्म लेंगे; किंतु सूर्यास्तके समय हमारा दाहकर्म करनेके कारण हमारा एक नेत्र जाता रहा। अब हम तुम्हारे एक नेत्रवाले पुत्र होंगे।'

"माताजीने यह स्वप्न देखा और उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बाबाकी यह भविष्यवाणी सबको सुनायी। स्वप्नके कुछ दिनों पश्चात् ही मेरी माताजीके गर्भ रहा। स्वप्नकी भविष्यवाणीके अनुसार मैं एक आँखवाला पुत्र उत्पन्न हुआ।

"माताजीको मेरी एक आँख न होनेका बड़ा कष्ट रहा। जब मैं आगे जाकर कुछ बड़ा हुआ, बोलने लगा तो मैं सबके सामने बाबा होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण देने लगा। मैं सबको यह बताने लगा कि 'यह मेरी लाठी है, जिसे मैं पूर्वजन्ममें बूढ़ा होनेके कारण लेकर चला करता था। यह मेरा अंगरखा है, जिसे मैं पहना करता था। अमुक-अमुक हमारे रिश्तेदार हैं।' ये सब बातें बतानेपर भी हमारी माताजीने हमारी बातोंपर कोई ध्यान नहीं दिया। आगे चलकर हम बड़ी-बड़ी विचित्र बातें बताने लगे। पूर्वजन्ममें जब हम बाबा थे, उस समयके गाड़े हुए रुपये बताकर सबके सामने निकाल कर दिखाये। यह देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये।"

(३)

ठाकुरसाहबका लड़का

पिलखुवा, हमारे स्थानपर सुप्रतिष्ठित विद्वान् शास्त्रार्थ-महारथी पं०श्रीबिहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थजी पधारे थे। उन्होंने अपने मुखसे प्रसंगवशात् पूर्वजन्मके सम्बन्धकी श्रीरामनाम जपने, श्रीगङ्गास्नान करने और दानपुण्य करनेकी अद्भुत महिमाकी एक अपनी घटना सुनायी थी। वह सत्य घटना संक्षेपमें यह है—

"उझानी जिला बदायूँमें एक जगह है। एक बार कुछ राजपूत लोग, जो उझानीके पासके ही किसी गाँवके रहनेवाले थे, आये थे। वे अपने गाँवसे श्रीभगवती भागीरथीका स्नान करनेकी दृष्टिसे सपरिवार जा रहे थे। उनकी अपने घरकी सवारी थी, उसीमें बैठकर वे लोग आये थे। अपने गाँवसे चलकर जब उझानी आये तो उझानीके चौराहेपर वे विश्राम करनेकी दृष्टिसे कुछ देरके लिये रुक गये। बिल्कुल सड़कके पास उन दिनों कुछ कंजर लोग रहा करते थे। उन कंजरोंकी वहाँपर झोंपड़ियाँ पड़ी हुई थीं। इन ठाकुर लोगोंके साथमें इनका एक छोटा बालक था, जिसकी आयु लगभग ५ वर्षकी थी। वह ठाकुरोंका बालक उन अपने घरवालोंके पाससे चलकर उन सामनेवाले कंजरोंके पास उनकी झोंपड़ियोंमें पहुँच गया। उसने वहाँपर जाकर उन कंजरोंके सामने उनमेंकी एक कंजरीका नाम लेकर पुकारा। कंजरकी उस स्त्रीको उस बालकके इस प्रकार बिना जाने-पहचाने अपना नाम लेकर पुकारनेपर बड़ा आश्चर्य हुआ। कंजरकी स्त्रीने उस बालकसे पूछा—'अरे, तू किसको पुकारता है ? तू कौन है ?' इसपर उस ठाकुरके लड़केने कहा—'क्या तू मुझे नहीं जानती ? क्या तू मुझे भूल गयी ?' कंजरीने कहा—'मैं तुझे नहीं जानती कि तू कौन है और कहाँका रहनेवाला है ?'

ठाकुरके लड़केने कहा—'मैं तेरा पति हूँ। तू मेरी स्त्री है।' उस कंजरीको एक छोटेसे बच्चेके मुखसे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि 'यह छोटा-सा ४-५ वर्षका बच्चा है और मैं इतनी बड़ी आयुकी स्त्री हूँ। फिर भी यह मुझे स्त्री कैसे बनाता है ?'

कंजरीने कहा—'अरे, तू मेरा पति कैसे बनता है ? मैं तो तुझे जानती भी नहीं हूँ कि तू कौन है। मेरा पति तो कभीका मर गया है। अब मेरा पति कहाँसे आया ? तू यह क्या कहता है ?'

उत्तरमें उस बालक ठाकुरके लड़केने कहा—'तुझे पता नहीं कि तेरे पतिका नाम मोहनसिंह कंजर था ?'

कंजरीने कहा—'हाँ, मेरे पतिका नाम मोहनसिंह कंजर था, पर तू कोई मोहनसिंह कंजर थोड़े ही है। वह तो मर गया ?'

ठाकुरके लड़केने कहा—'मैं ही तेरा पति मोहनसिंह कंजर हूँ।'

लड़केने बताया कि 'मैं पहले जन्ममें तेरा पति मोहनसिंह कंजर था और अब मैंने इन ठाकुरोंके घरमें आकर जन्म ले लिया है।' लड़केने वहाँपर बैठे हुए सब कंजरोंको भी पहचान लिया। उसने उस समयकी और सब बातें भी बतानी प्रारम्भ कर दीं और बहुत-सी गुप्त बातें भी, जो उससे पूछी गयीं, उसने उन्हें बतायीं। उसकी बतायी हुई सभी बातें सत्य थीं, उन्हें सुनकर सभी कंजरोंने और कंजरियोंने स्वीकार किया। इसलिये उन्होंने झटसे उस बालकको अपनी गोदमें उठा लिया।

इधर जब उन ठाकुरोंने देखा कि हमारा बच्चा यहाँपर खेल रहा था और अब देखते-देखते वह किधर चला गया तो उन्होंने अपने उस बच्चेकी तलाश की। सामने कंजरोंकी झोंपड़ियोंकी ओर जो उनकी दृष्टि गयी तो देखा वह बच्चा कंजरोंके पास है। कंजर उसे अपनी गोदमें उठाकर बड़े प्रेमसे खिला रहे हैं। ठाकुर लोग भागे हुए वहाँपर गये और जाकर उन कंजरोंसे अपने बालककी माँग की। कंजरोंने कहा—'नहीं, यह तो हमारा मोहनसिंह कंजर है। हम इसे अपने पास रखेंगे।'

ठाकुरोंने उन कंजरोंको बहुत कुछ समझाने-बुझानेका प्रयत्न किया कि किसी प्रकार यह हमारे बालकको हमें दे दें, पर वे बहुत समझानेपर भी उस बालकको ठाकुरोंको देनेके लिये तैयार नहीं हुए। अब तो ठाकुरोंमें और उन कंजरोंमें आपसमें बड़ी खींचातानी और [illegible] हो गयी।

जब झगड़ा बहुत [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] गयी, तो इस बातकी ठाकुरोंने थानेमें जाकर पुलिसको सूचना दी कि 'हमारे बालकको कंजरोंने छिपा लिया है। [illegible] [illegible] हैं। [illegible] हमारा बालक हमको दिलवाया जाय।' पुलिस [illegible] पहुँच गयी। उसने उन कंजरोंसे उस लड़केको उन ठाकुरोंको

देनेके लिये कहा और उन्हें धमकाया भी, समझाया भी, फिर भी वे कंजर लड़केको देनेके लिये तैयार नहीं हुए।

पुलिस उस ठाकुरोंके बालकको कंजरोंसे अपने कब्जेमें लेकर उन्नावीके सुप्रतिष्ठित रईस रायबहादुर श्रीव्रजलाल भदावरजीके सामने ले गयी। ठाकुर लोग और वह कंजर भी वहाँपर पहुँच गये। ज्यों ही वह ठाकुरोंका ५ वर्षका बालक श्रीभदावरजीके सामने पहुँचा तो उसने जाते ही सबसे पहले भदावरजीको पहचान लिया। उसने उनका शुभ नाम लेकर कहा कि 'भदावरजी ! राम राम।'

रायबहादुर श्रीव्रजलाल भदावरजीको उस छोटेसे बालकके मुखसे ये शब्द सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने चकित होकर उस बालकसे पूछा—'भाई तू कौन है ? हमें तू पहले कभी आजतक नहीं मिला है; फिर तू हमें कैसे जानता है ? तैंने हमें कहाँपर देखा है ?' इसपर उस बालकने कहा—'रायबहादुर साहब ! मैं पूर्वजन्मका आपका कंजर हूँ। मेरा नाम मोहनसिंह है और मैं जब कंजर था तो उस समय आपके घरपर आकर आपकी कोठीके लिये खसके पर्दे बनाया करता था।'

माननीय रायबहादुर साहबने जब ये बातें सुनीं तो वे दंग रह गये। उस बालककी बतायी सभी बातें अक्षर-अक्षर बिल्कुल सत्य थीं। उन्होंने उस बालककी बातोंसे पुष्टि की कि मोहनसिंह कंजर हमारी कोठीके लिये खसके पर्दे बनाया करता था। रायबहादुर साहबने उन कंजरोंको समझा बुझाकर उस बालकको उन कंजरोंसे उन ठाकुरोंको दिलवा दिया।

माननीय रायबहादुर श्रीव्रजलाल भदावरजीने मुझे बताया कि 'इस कंजरका कंजरसे धनाढ्य ठाकुरोंके घरमें जन्म लेनेका कारण यह है कि जब यह पूर्वजन्ममें मोहनसिंह कंजर था तो उस समय यह इतना संयमी था और इतना सात्त्विक था कि कभी भी मांस नहीं खाता था। मांस-मछली, अंडे मुर्गे बिल्कुल दूर रहता था। यह किसी भी जीवको कभी न वे मारता था और न शिकार खेलता था। यह श्रीगङ्गाजीमें बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखता था। कंजर होकर भी यह श्रीगङ्गा स्नान करनेके लिये जाया करता था। नित्य श्रीरामनामका जप किया करता था। इसने गरीब होकर भी अपनी खून पसीनेकी गाढ़ी कमाईका पैसा-पैसा जोड़कर ४०० रुपये इकट्ठे किये थे और ये रुपये मुझे देकर मेरेद्वारा एक कुआँ भी बनवाया था कि जिससे सब लोग उस कुएँका पानी पीकर अपनी प्यास बुझा सकें। इसी श्रीरामनामके जप श्रीगङ्गाके स्नान करनेसे, कुआँ बनवाने और जीवोंपर दया करने आदि पुण्योंके प्रतापसे इसे ऐसा जन्म प्राप्त हुआ है।'

कर्म रहते जीवकी मुक्ति नहीं

कर्म तीन प्रकारके हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। जो नये कर्म कामना-अहंकारसे किये जाते हैं, वे 'क्रियमाण' हैं; वे संचितमें चले जाते हैं, जैसे खेतसे अनाज आया और अन्नके कोठारमें रक्खा गया। 'संचित' उनका नाम है, जो अनन्त जन्मोंके अच्छे-बुरे कर्म फल बिना भुगताये पड़े हैं और जिनमें नये कर्म जमा हो रहे हैं। उस संचित कर्मराशिमेंसे एक जन्ममें फल भुगतानेके लिये जो कर्म पृथक् हो जाते हैं और जन्मसे पहले ही जिनका फल निर्माण हो जाता है, उन फलदानोन्मुख कर्मोंको 'प्रारब्ध' कहते हैं। जबतक नये कर्म बनते रहते हैं और जबतक संचित कर्मोंका नाश नहीं हो जाता, तबतक जीव बन्धन-मुक्त नहीं हो सकता; उसे कर्मफल-भोगके लिये बार-बार सत्-असत् योनियोंमें जन्म धारण करना और स्वर्ग-नरकादि लोकोंमें जाना-आना पड़ता ही है। अहंकार, कामना न रहनेपर नवीन कर्म संचितमें नहीं जाते और ज्ञानकी अग्नि अथवा भगवान्‌की शरणागतिसे संचितकी कर्मराशि जल जाती है, तब जीव मुक्त हो जाता है, अतएव अहंकार-कामनाका त्याग करके भगवच्छरणागतिपूर्वक 'सब कुछ भगवान् ही है' ऐसा मानते हुए भजन करना चाहिये। मनुष्य-जीवनका यही चरम और परम ध्येय है।

मृतात्माओंके द्वारा—आवेशद्वारा और प्रकट होकर संवाद देना

(लेखक—श्रीनिरंजनदासजी 'धीर')

(१)
मृत व्यक्तिके और्ध्वदैहिक कर्मोंकी आवश्यकता
(प्रेत-संवाद)

मेरे एक विभागीय कर्मचारीकी धर्मपत्नीकी दिल्लीके एक अस्पतालमें कन्याको जन्म देकर मृत्यु हो गयी और नवजात कन्या भी चल बसी। जैसा प्रायः शिक्षितवर्गमें होता है, दाह-संस्कारसे ही अन्त्येष्टि कर्मकी इतिश्री हो गयी। पतिदेव तथा बच्चे रो-धोकर शान्त हो गये और अपने साधारण दैनिक व्यापारोंमें लिप्त हो गये। एक गढ़वाली सेवक उनके परिवारमें था। पहले वह गृहिणीकी देख-रेखमें भोजन बनाता था। अब हमारे मित्रको उधर ध्यान देना पड़ा और काम चलने लगा।

छुट्टीका दिन था। भोजनोपरान्त विश्राम करके हमारे मित्र कर्मचन्दजी पत्र लिख रहे थे कि गढ़वाली सेवक वमन करके काँपने लगा। उसकी मुखाकृति बदल गयी और वह मृत महिलाकी भाषा तथा रीति-ढंगसे बोलने लगा, जिसको सुनकर श्रीकर्मचन्दजी समीप आये। उस समय सभीने ऐसा अनुभव किया कि उनकी पत्नी गढ़वाली सेवकके माध्यमसे बात कर रही है। उसने कहा कि 'आपने न तो मेरे नामसे और न अपनी कन्याके नामसे वस्त्रका दान किया। हम दोनों वस्त्रहीन हैं। मुझे बड़ा संकोच होता है और मैं एक वटवृक्षके नीचे पड़ी हूँ। जब कोई व्यक्ति इधर आता दृष्टिगोचर होता है तो मैं वृक्षकी ओटमें हो जाती हूँ। अतएव आप मेरे लिये और बच्चीके लिये एक-एक जोड़ा वस्त्र किसी वस्त्रहीनको अथवा निर्धन ब्राह्मणको हमारे नामसे दे दें।' श्रीकर्मचन्दजी स्वीकारोक्तिके पश्चात् आवेश समाप्त हो गया और गढ़वाली साधारण अवस्थामें आ गया। वस्त्र दो-चार दिनोंमें ही दे दिये गये।

कुछ समय पश्चात् गढ़वालीको फिर आवेश हुआ और उसने कहा कि 'वस्त्र तो मिल गये हैं किंतु हम सन्तुष्ट नहीं हो सके; क्योंकि हमारी गति नहीं हुई।' पतिने उत्तर दिया कि 'जैसा पण्डितने कहा था, मैंने क्रिया-कर्म करा दिया था, पर मैं क्या करूँ।' पत्नीने कहा कि 'उस पण्डितको कर्मकाण्डका ज्ञान नहीं था। मेरे लिये हरद्वारमें अमुक नामधारी पण्डितसे, जो भीमगोडाकी बस्तीमें रहते हैं, जैसा वे कहें, कराओ।' इन्होंने कहा,—'अच्छा।' आवेश समाप्त हो गया।

हरद्वारमें एक रायसाहबसे इनका परिचय था। इन्होंने उनको पत्र लिखा कि 'कृपया भीमगोडाकी बस्तीमें अमुक पण्डितजीका पता लेकर सूचना दें तो मैं हरद्वारमें आकर उनसे मिलूँ; क्योंकि उनसे मुझे विशेष काम है।' पत्र मिलनेपर रायसाहबने अपने भृत्यको इस नामके पण्डितजीका पता लगानेके लिये भेजा, जिसने आकर कहा कि 'इस नामके पण्डित भीमगोडा बस्तीमें नहीं हैं।' यही उत्तर श्रीकर्मचन्दजीको मिल गया। दो-तीन दिन पीछे जब गढ़वालीको आवेश हुआ तो उसने रायसाहबका नकारात्मक उत्तर पत्नीको बताया तो वे बोलीं कि 'पण्डितजी वहीं रहते हैं। वे सारा दिन एकान्तमें किवाड़ बंद किये रहते हैं। चार बजेके पीछे मिल सकते हैं। उनके घरका दरवाजा टूटा-फूटा है और किवाड़ोंपर नीला पालिश हो रहा है।' इस विवरणके पहुँचानेके पश्चात् रायसाहबका पत्र आया कि 'पण्डितजी मिल गये हैं। और वे उचित कर्मकाण्ड करानेको सहमत हो गये हैं।' श्रीकर्मचन्द हरद्वार गये और उन पण्डितजीसे कर्मकाण्ड कराकर आ गये तो गढ़वालीके माध्यमसे उनकी पत्नीने कहा कि 'अब उनको प्रेतयोनिसे छुटकारा मिल गयी है।' पूछनेपर उसने बताया कि 'वह हरद्वारके समीप ही अन्तरिक्षमें है; किंतु सामान्य जीवके लिये अदृश्य है। अब वह स्वप्नमें एक बार आ जायगी, उस समय उसको देख पाओगे और उसीसे अनुरोध करेंगी कि 'मुझसे पुत्र-कन्या दोनों भी पास हैं। अब दूसरा विवाह न करना।'

[illegible]

बता दिया कि 'बक्सकी चाबी उस सम्बन्धीकी कमीजकी जेबमें है, जो वहाँ टँगी है।' इनके पुत्रने बक्स खोलकर कम्बल निकालकर ताला बंद करके ताली वहीं रख दी।

जब भी यह आती, अपने बच्चोंसे ऐसे ही वात्सल्य तथा प्रेमसे बातें करती और उनको अच्छी शिक्षा देती और यदि कोई उनकी वस्तु खो जाती तो बता देती कि कहाँ और किसके पास है।

इनके पतिदेव दूसरा विवाह करना चाहते थे,जो इनकी मृतपत्नीकी इच्छाके विरुद्ध था। इसलिये ये चाहते थे कि यह न आया करे। अतः इन्होंने गढ़वाली भृत्यको निकाल दिया और दूसरा रसोइया रख लिया।

यह सच्ची घटना है और श्रीकर्मचन्दजीने स्वयं मुझे बतायी थी। इस विवरणसे सिद्ध होता है कि प्रसव आदि अशुद्ध अवस्थामें मृत्युसे मृत व्यक्तिको परलोकमें कष्ट उठाना पड़ता है,जो शास्त्रोक्त कर्मोंके द्वारा दूर किया जा सकता है।

(२)

मृत व्यक्तिका सशरीर प्राकट्य

हम भारतवासियोंके लिये, मृत्युके पश्चात् भी आत्माका अस्तित्व रहता है—ऐसा सत्य है कि जिसके लिये किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं समझी जाती; क्योंकि भारतीय विचारधाराका मूल कर्मफल तथा पुनर्जन्ममें दृढ़ विश्वास है।

पश्चिमके विज्ञानवेत्ताओंको इस सिद्धान्तकी सत्यताको प्रमाणित करनेके लिये वर्षों अपनी वैज्ञानिक विधिसे खोज तथा घटनाओंका अध्ययन करना पड़ रहा है और अभी भी दुर्भाग्यवश सब लोगोंने इसको नहीं माना है। पहले तो यह निर्णय करना ही एक समस्या थी कि मानवका व्यक्तित्व क्या है ? क्योंकि उनके समक्ष 'आत्मा' नामकी वस्तुके अस्तित्वका प्रमाण तथा उनके सूक्ष्मशरीरके अस्तित्व तथा गुण और शक्तिका ही कोई ज्ञान नहीं था। वे केवल मनसे परिचित थे और उसीको सर्वेसर्वा मानते थे। आधुनिक समयमें भी अधिकतर पश्चिमीय वैज्ञानिक चार्वाकके सिद्धान्तके ही अनुयायी हैं कि 'स्थूलदेहके भस्मीभूत होनेपर कुछ नहीं रहता। इसलिये खाना-पीना, मौज उड़ाना ही जीवनका लक्ष्य है।'

पाश्चिमीय सभ्यताके पुजारी हमारे देशवासी भी, जो इस सिद्धान्तमें विश्वास रखते हों, उनको इस तथ्यका ज्ञान होना चाहिये कि पश्चिमीय विज्ञानवेत्ताओंने भी सहस्रों अकाट्य प्रमाण एकत्रित किये हैं कि 'मानवका व्यक्तित्व मृत्युके पश्चात् भी वैसा ही विद्यमान रहता है, जैसा जीवनमें था।' किंतु ये प्रमाण अनुमानके रूपमें हैं और पश्चिमीय भाषाओंकी अनगिनत पुस्तकोंमें पड़े हैं। केवल प्रत्यक्ष ही ऐसा प्रमाण है, जिससे सत्यताको मानना अनिवार्य है। ऐसे सज्जनोंके विचारके लिये कतिपय ऐसी घटनाओंका उल्लेख किया जाता है, जिनमें मृत व्यक्तियोंको साक्षात् सशरीर देखा गया है। द्रष्टाके वचनकी सत्यतापर अविश्वासका कोई कारण नहीं। यह असम्भव घटना कैसे हो सकती है, इसका भी एक सैद्धान्तिक उत्तर है। किंतु यह विषय दूसरा है; समय मिलनेपर इसपर भी प्रकाश डाला जा सकता है। ये विचित्र घटनाएँ इस प्रकार हैं—

(३)

मृत पत्नीका प्रकट होकर बात करना

लुधियानाके निवासी आर्यसमाजी विचारोंके एक सज्जन पूर्वी अफ्रीकाकी राजधानी नैरोबी नगरमें जाकर बस गये और व्यापारद्वारा अपार सम्पत्तिके मालिक हो गये। उनकी प्रिय पत्नी अपने सगे-सम्बन्धियोंसे मिलने पंजाब आयी तो उसको भयानक हृदय-रोगका आक्रमण हो गया। सूचना मिलनेपर उसके पति व्यक्तिगत हवाई जहाज लेकर उसको एक डाक्टरके निरीक्षणमें अपने घर नैरोबी उसी वायुयानद्वारा ले गये, जहाँ अपने परिवारवालोंके अतिरिक्त दो नर्सों द्वारा उसकी कई मास बड़े प्रेमसे सेवा-शुश्रूषा होती रही। रोग घातक होनेसे उस महिलाकी मृत्यु हो गयी।

यह महिला सनातनधर्मी थी। उसने अपने पतिसे प्रार्थना की थी कि 'मृत्युके पश्चात् उसकी अस्थियाँ श्रीगङ्गाजीमें विसर्जित की जायँ और उसकी गति सनातन-धर्मकी विधिके अनुसार करा दी जाय।' उसके पतिने आर्यसमाजी होते हुए भी उसकी इच्छाको पूर्ण करनेका वचन दे दिया था।

पत्नीकी मृत्युके पश्चात् नैरोबीसे वे भारत आये, अस्थि-विसर्जन तथा अन्य उचित कर्मकाण्ड पूरे विधि-विधानसे कराये गये। यहाँतक कि गयामें जाकर पिण्ड-

की सद्गतिके लिये श्राद्ध भी करा दिया और फिर वे अपने देश चले गये।

कुछ समय पश्चात् उनको एक अविज्ञात रोग हो गया और नैरोबीके डाक्टरोंने उनको रोगके निदान तथा उपचारके लिये लन्दन जानेका परामर्श दिया। वे वायुयानद्वारा वहाँ पहुँचे और विशेषज्ञोंद्वारा जाँच करायी तो उन्होंने निर्णय दिया कि जिस घातक रोगका संदेह था, वह नहीं है। यह कष्ट शीघ्र-साध्य है।

रात्रिको वे अपने होटलके कक्षमें, जिसके किवाड़ उन्होंने बंद कर लिये थे, सोने जा रहे थे। प्रकाश बंद करके लेटे ही थे कि उनको ऐसा लगा कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस कमरेमें है। उन्होंने प्रकाश किया तो अपनी मृतपत्नीको सशरीर विद्यमान देखकर वे ठिठक गये और कुछ बोल न सके। उनकी पत्नी बोली कि 'आजके डाक्टरोंके निदानसे मेरे मनको शान्ति मिली है।' उसने बताया कि 'मेरी इच्छाके अनुसार जो कर्मकाण्ड आपने मेरे लिये कराये थे, मुझे ज्ञात हैं और जो स्वर्णकी अँगूठी आपने दक्षिणामें दी थी, वह भी मैंने देखी थी। मैं आपके इन कर्मोंसे परम संतुष्ट हूँ और मैं यहाँ आपके साथ ही आयी हूँ। अमेरिकामें पिछले दिनों मोटर-दुर्घटनासे मैंने ही अपने दूसरे पुत्रके जीवनकी रक्षा की थी।' और भी कई रहस्यकी बातें बतलायीं, जो उस पत्नीके अतिरिक्त किसीको ज्ञात न थीं। पतिसे जब वह विदा माँगने लगी तो पतिने उसे गलेसे लगाया। उस समय उसका शरीर वैसा ही था, जैसा जीवनमें था। फिर वह वहीं अन्तर्धान हो गयी। इन सज्जनकी स्वयं लिखित पुस्तक 'रूहोंकी दुनिया' उर्दू भाषामें है। यह वृत्तान्त उसीपर आधारित है।

(४)
ललिताबाई आजगाँवकर

मराठी भाषाके 'पुरुषार्थ' नामक मासिक पत्रके जून [illegible] के अङ्कमें एक विचित्र घटना प्रकाशित हुई थी, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

बम्बई-नगरनिवासी डाक्टर श्रीआजगाँवकरकी धर्म-पत्नी ललिताबाई सनातन-धर्मावलम्बी थीं। वे प्रतिमास पूर्णिमाका व्रत रखकर उपवास किया करती थीं। यह क्रम वर्षोंसे चला आ रहा था। कर्मवश उनको कैंसरका रोग हो गया। व्रतका क्रम रोगी-दशामें भी चलता रहा। अन्तमें उनकी मृत्यु भी पूर्णिमाके दिन ही हुई।

ललिताबाईके भ्राता श्रीसामन्तजी भी बम्बईमें रहते थे। इन बहिन-भाईमें बड़ा प्रेम था। मृत्यु तथा दाह-संस्कारके दूसरे दिन, ललिताबाई श्रीसामन्तके समक्ष सशरीर प्रकट हुई। इस असम्भव घटनाको देखकर भाई ठिठक गया। उसने यह देखनेके लिये कि वह स्वप्न तो नहीं देख रहा, अपने शरीरकी चुटकी काटी। जब उसने अपने-आपको पूर्णरूपसे सजग तथा चेतन पाया तो उसने अपनी प्रिय बहिनका स्वागत किया और हाथ पकड़कर पलंगपर बैठा लिया। उसका हाथ जीवित मनुष्यकी भाँति उष्ण था। ललिताबाईने कहा—'कल मेरा पूर्णिमाका उपवास था। मृत्यु हो जानेके कारण मैं पारण नहीं कर पायी। अब तुम मुझे एक काफीका कप बना दो तो मैं पारण कर लूँ।' उसका भाई घरमें उस समय अकेला ही था। उसको पता नहीं था कि दूध कहाँ रखा है। ललिताबाईने बता दिया। काफी तैयार करके जब कप ललिताबाईके हाथमें दिया तो उसने देखकर अपने भाईको लौटा दिया और उससे कहा कि 'इसको तुम पी लो। तुम्हारे पीनेसे ही पारण हो जायगा।' भाईके काफी पीनेके पश्चात् बहिन अन्तर्धान हो गयी। इस सशरीर प्राकट्यके पश्चात् जो कुछ हुआ, वह इससे भी अधिक विचित्र है, जिसके लिखनेके लोभको मैं संवरण नहीं कर सकता।

श्रीसामन्तजीकी पत्नीके कोई संतान नहीं थी, यद्यपि उसकी आयु चालीस वर्षकी हो गयी थी। डाक्टर बनर्जीने कई बार परीक्षा करके यह निर्णय किया था कि इस महिलाकी बच्चेदानी इतनी संकुचित है कि उसमें गर्भ रह ही नहीं सकता। मृत्युके पूर्व भी भाईके निःसंतान होनेका ललिताबाईको दुःख था। मृत्युके पश्चात् उसने स्वप्नमें आकर अपने भाईसे कहा कि 'मैं प्रभुसे भाभीको संतान देकर धन्य बना देनेके लिये प्रार्थना किया करती हूँ।' फिर अब एक मास उसका मासिकधर्म बंद रहा तो ललिताने स्वप्नमें अनुरोध किया—'अब भाभीकी एक बार फिर डाक्टरसे परीक्षा करावें।'

इस बार डाक्टर महोदय यह देखकर आश्चर्यमें पड़ गये कि केवल यही नहीं हुआ कि अत्यन्त संकुचित बच्चे

दानीका परिमाण साधारण हो गया है, अपितु उसमें गर्भ भी स्थापित हो चुका है। यह विज्ञानकी दृष्टिसे चमत्कारी घटना थी। लल्लिताबाईने फिर अपने माईको सूचना दी कि 'वे स्वयं ही भाभीके गर्भसे जन्म लेंगी।' उचित समयपर वैसा ही हुआ। डाक्टर भट्ट, जिन्होंने अपनी पुस्तकमें इस विचित्र घटनाका उल्लेख किया है, लिखते हैं कि 'इन सभी बातोंकी सत्यता इस कन्याके माता-पिताने स्वयं प्रमाणित की थी और कन्याको भी, जिसका नाम लल्लिताबाई ही रक्खा गया, देखा था।

(५)

मृत मित्रसे बातचीत

कैमिल्लो फ्लेमोरिऑ (Camillo Flammorion) फ्रांस देशके प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे और राज्यकी ज्योतिर-वेधशालाके अध्यक्ष थे। उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम था 'यूरानिया' (Urania)। इसमें अपने एक घनिष्ठ मित्रके, जिनको वे स्पैरोके नामसे पुकारते थे, मृत्युके पश्चात् मिलनेका वृत्तान्त लिखा है। वे कहते हैं— मेरा पाँव अभी अन्तिम सीढ़ीपर ही था कि जो दृश्य मैंने देखा, उससे मेरा पैर वहीं जम गया'। भयत्रस्त होकर मेरे कण्ठसे एक चीख उठी, किंतु कण्ठमें ही रुका गयी। मैं पैरिसमें जैसा उसको जीवित छोड़कर गया था, उसकी मुखाकृति तथा शरीर ठीक वैसे-का-वैसा था और वह छतकी मुँडेरपर बैठा था। मैंने कहा 'स्पैरो!' तो वह मेरी चिर-परिचित अपनी कोमल वाणीमें बोला कि 'क्या तुमको मुझसे भय लगता है?' वह मेरी ओर देखकर मन्द-मन्द मुसकरा रहा था। मैं उसको देखता ही रह गया। फिर मैंने कहा— 'क्या तुम सचमुच विद्यमान हो? मैं तुम्हारी भली प्रकार देख-भाल कर लूँ?' मैंने अपने हाथोंसे उसके मुख, शरीर, बालोंको स्पर्श किया तो मुझे यही लगा कि वह जीवित है। मेरे मुखसे आश्चर्यके उद्रेकसे निकला कि 'यह तुम्हीं हो।' फिर मैं उसके समीप ही मुँडेरपर बैठ गया और चिर बिछुड़े मित्रोंमें प्रेमालाप होने लगा। स्पैरोने अपने परलोकके अनुभव सुनाये और वहाँके जीवनपर प्रकाश डाला। उसने बताया कि 'जो आत्माएँ इस लोकमें सचेत हो जाते हैं, वे काल तथा दूरी (Time and Space) के बन्धनसे मुक्त होते हैं। उनके सूक्ष्म होनेके कारण शरीर स्थान नहीं घेरते। मनुष्य अपने प्रारब्धसे अपने कर्मोंसे स्वर्ग बनाता है। आत्माका लक्ष्य प्राकृत संसारकी मोहमायासे निकलना है। तब इसका अध्यात्मजीवनमें प्रवेश होता है। मनुष्यमात्रका परम पुरुषार्थ मुक्ति तथा परमानन्दकी प्राप्ति है।' यह वार्तालाप पर्याप्त समयतक चलता रहा। फिर स्पैरो वहीं अदृश्य हो गया।

(६)

रोजाली

इंगलैंडके विज्ञानवेत्ताओंकी प्रसिद्ध 'साइकिक रिसर्च सोसाइटी'के विख्यात कार्यकर्ता थे श्रीहैरी प्राइस (Harry Price)। उन्होंने इस सोसाइटीके पचास वर्षके कार्यकी समीक्षापर एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम था— 'फिफ्टी ईयर्स आफ् साइकिक रिसर्च'। इस पुस्तकमें एक छोटी बालिकाके, जिसका नाम रोजाली था, सशरीर प्राकट्य का बड़ा हृदयग्राही वृत्तान्त है। इस घटनाकी हैरी प्राइस महोदयने स्वयं वैज्ञानिक ढंगसे जाँच की थी।

रोजाली एक धनी-मानी महिलाकी पुत्री थी। उसके पिताकी मृत्यु प्रथम महायुद्धके आरम्भमें ही हो गयी थी। उसकी विधवा माताके लिये स्नेहकी पात्री एक यह बच्ची ही रह गयी थी, जिसका देहान्त अपने पिताकी मृत्युके पाँच वर्ष पश्चात् हो गया। उसकी माताको इससे कल्पनातीत दुःख हुआ। वह सदा अपनी प्यारी पुत्रीको स्मरण करती रहती और उसको देखनेके लिये छटपटाती। वह 'सीऐंस' (मृत आत्माओंसे वार्तालाप करनेके मण्डल) में जाने लगी। उसको इस बातका विश्वास हो गया कि मेरी प्यारी पुत्री परलोकमें सूक्ष्मशरीरसे विद्यमान है। उसको देखे तो कैसे? क्योंकि स्मरण और ध्यानका फल यह हुआ कि मृत्युके चार वर्ष पीछे उसने एक रात्रिको रोजालीकी प्यारी वाणीमें 'माँ'का शब्द सुना, जिसके श्रवणसे उसको निश्चय हो गया कि 'उसकी पुत्री यद्यपि अदृश्य है, पर है विद्यमान।' वह प्रतिदिन उसकी वाणी सुननेके लिये आतुर रहती। शनैः-शनैः रोजालीका प्राकट्य भी होने लगा। पहले धूएँके रूपमें, फिर स्थूलशरीरकी आकृतिमें और अन्तमें एक रात्रिको उसने प्रकट होकर अपनी माताका हाथ पकड़ लिया। माँ—वियोगिनी माँके सुख-संतोषकी सीमा नहीं थी।

अब रोजाली दिनके समय भी सीऐंसके मण्डलमें बुलानेपर सशरीर प्रकट हो जाती।
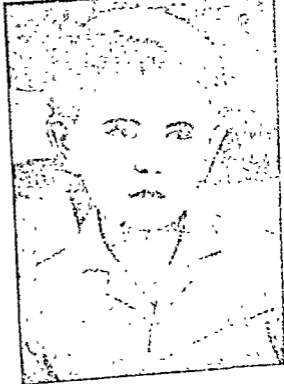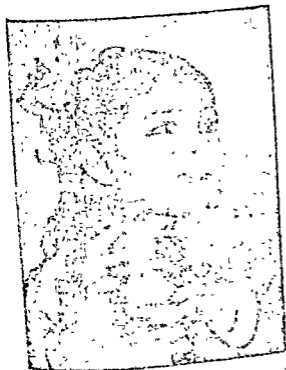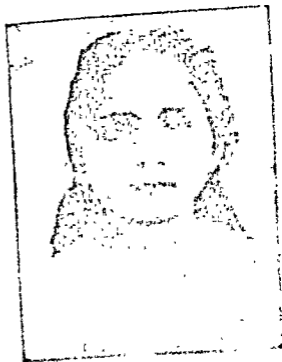
गोपाल [पृष्ठ ५५८]

डेबिय कैकिन [पृष्ठ ५७७]

दक्षिण अफ्रिकाकी जोन पर्वे [पृष्ठ ५९५]

जेरुसलमका डेविड मॉरिस [पृष्ठ ६००]

रोजालीकी माता श्रीहैरी प्राइससे परिचित थी। जब इनको इस विचित्र घटनाका पता चला तो इन्होंने रोजालीकी माताने इसकी वैज्ञानिक ढंगसे जाँच करनेके लिये अनुमति तथा सहयोगके लिये प्रार्थना की, जिसके स्वीकार किये जानेपर एक दिन निश्चित हुआ। उस दिन रोजालीकी माताके घरपर 'सीऐंस' चक्र आयोजित किया गया। हैरी प्राइसने खिड़कीके किवाड़ बंद करके मोहरें लगा दीं। सीऐंसकी प्रणालीके अनुसार प्रकाश मन्द कर दिया गया और रोजालीका आवाहन करते ही वह प्रकट हो गयी। कन्याके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था। हैरी प्राइसने उसकी माताकी अनुमति लेकर उसके शरीरको हाथोंसे स्पर्श किया। उसने कन्याके वक्ष, मुखपर हाथ फेरा तो जीवित व्यक्तिकी भाँति उष्ण था। उसका श्वास चल रहा था, जिसके कारण वक्ष गतिमय था। उसने सारे शरीरपर हाथ फेरा। नाड़ीकी गति देखी, जो ८० थी। हृदयके स्पन्दनको वक्षसे कान लगाकर सुना तो स्पन्दन स्पष्ट प्रतीत हुआ। अब प्राइस महोदयने कन्याका रूप-रंग देखनेके लिये प्रकाश अधिक तीव्र किया तो उसके चमकते हुए नैन और गोल कपोल, पतली नासिकासे उसकी मुखाकृति बड़ी ही सुन्दर लगी। इन्होंने कन्यासे कुछ प्रश्न किये, जिनका उसने बालसुलभ अपरिचितसे संकोचके कारण उत्तर न दिया। किंतु जब उससे पूछा गया कि 'तुम मातासे प्यार करती हो' तो उसने बड़े प्यारसे कहा—'हाँ'। तब उसकी माताने उसको छातीसे चिपटा लिया और पंद्रह मिनटमें कन्या अदृश्य हो गयी। अब प्रकाश कर दिया गया। खिड़कीके किवाड़की मोहरें ज्यों-की-त्यों थीं। इससे सिद्ध हुआ कि रोजाली न कहींसे आयी थी और न कहीं गयी। वहीं उसका प्रादुर्भाव हुआ और वहीं लीन हो गयी।

इस प्रमाणित घटनासे यह सिद्ध होता है कि माताके प्रगाढ़ प्रेम तथा नित्य-नियमित ध्यानने परलोकगत कन्याको सशरीर प्रकट करा दिया। यह घटना अभूतपूर्व हो सकती है; किंतु असम्भव नहीं। सर्वशक्तिमान् लोकमहेश्वर श्रीभगवान्‌को भी प्रगाढ़ प्रेम, सतत चिन्तन, ध्यान तथा हृदयकी तड़पसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर भक्तोंकी इच्छाकी पूर्ति करनी पड़ती है, तो एक मृत कन्याका प्राकट्य भी, यदि उसमें ऐसा करनेकी शक्ति हो तो, सम्भव है।

(७)

लेबिब कॅकिन

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

प्रेतावेशमें रहकर भी पुनर्जन्मकी घटनाओंकी व्याख्या की जाती है।

पुनर्जन्मका दूसरा विश्लेषण है, किसी व्यक्तिका अस्थायी रूपसे अपने व्यक्तित्वको किसी प्रेतात्माके समक्ष समर्पित कर देना। निम्नलिखित घटनाके संदर्भमें अब हम इस अनुमान-न्यायकी प्रक्रियाका अवलोकन करें।

लेबिब केकिन (Lebbi Kakin) नामक एक युवतीको अपने शयन-कक्षमें हर सायंकालको एक दृश्य (Vision) दिखायी देता था, जिसमें वह एक बहता हुआ झरना देखा करती थी और एक व्यक्ति, जो अपने नामसे जामा दादोरा जेकोस (Jama Dadora Jecose) कहा करता था, उसके सामने प्रकट हो जाता था। वह उससे एक अपरिचित भाषामें बोलना प्रारम्भ कर देता था, जिसे वह युवती बिना समझे दोहरा दिया करती थी। यद्यपि वह व्यक्ति सदा अपना मुँह ढके रखता था तो भी उन दोनोंमें एक सम्बन्धकी भावना क्रमशः बढ़ती गयी और वे आपसमें प्रेम करने लगे।

यह क्रम दो-तीन महीनेतक चलता रहा और एक दम बंद हो गया। कुछ वर्षोंके अन्तरके बाद वह व्यक्ति स्वप्नमें उस महिलाके सामने प्रकट हुआ। उस महिलाने स्वप्न देखा कि 'उसकी उस व्यक्तिसे समुद्रके किनारे भेंट हुई है और उसने एक बार पुनः उसकी भाषा सीखना आरम्भ कर दिया है।' उसने स्वप्नके बाद [illegible] निश्चित करनेका प्रयत्न कर लिया, परंतु वह उस भाषाको कभी भी सीख नहीं सकी। उस महिलाका विचार था कि यद्यपि उसने वर्तमान जीवनमें [illegible] न [illegible] तो भी [illegible] धारणा थी कि वह अपने पूर्व [illegible] [illegible] है। [illegible] करती है।

(८)

मानव-जन्मका संस्कार प्रेत-योनिमें भी

(लेखक—श्रीउमाशंकरसिंहजी)

मानव-जीवनका संस्कार अमिट होता है । आत्मा चाहे जिस योनिमें जन्म ले, पूर्व-संस्कारके अनुसार ही उसका स्वभाव बनता है । अतः वर्तमान जन्मका संस्कार ही भावी जीवनका स्वभाव होता है । इसलिये पूर्व-संस्कारके अनुसार ही प्रेतात्माओंका स्वभाव भी मनुष्योंसे मिलता-जुलता होता है । वे भी अपना कल्याण चाहते हैं तथा उनके हृदयमें भी हर्ष-विषादकी लहरें उठती-गिरती हैं ।

हमारे समाजमें बहुधा ऐसी घटनाएँ घटती रहती हैं, जिनसे उपर्युक्त बातोंकी पुष्टि होती है । ऐसी ही दो सत्य घटनाएँ यहाँ दी जा रही हैं—

(क)

प्रेतने आत्मकल्याण किया

ब्रह्मपुर (शाहाबाद) क्षेत्रमें 'गरहथा' नामक एक छोटा-सा गाँव है । वहाँसे दो मीलकी दूरीपर 'योगियाँ' है, जिसमें बहुत पहले एक कथावाचक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे । एक दिन वे गरहथामें हरि-कथा सुनाने आये थे । वहीं रात हो गयी । दूसरे दिन अन्यत्र जाना था । अतः रातको दस बजे लोगोंके आग्रहके विरुद्ध भी वे अपने गाँव (योगियाँ) के लिये अकेले ही रवाना हो गये । हाथमें पोथी एवं एक लालटेनके अलावा उनके पास विशेष कोई सामान नहीं था । योगियाँ एवं गरहथाके बीचमें एक 'कृतसागर' नामक प्रसिद्ध तालाब है । पण्डितजी जब उस तालाबके पास आये तो अकस्मात् एक प्रेत सामनेसे उनका मार्ग अवरुद्ध करने लगा । डरकर वे वहीं बैठ गये, तब प्रेत भी उनके पास आकर खड़ा हो गया । पण्डितजीके यह पूछनेपर कि 'भाई ! तुम कौन हो और मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो मुझे तंग कर रहे हो ?' प्रेतने रो-रोकर अपनी रामकहानी सुनायी—''पण्डितजी ! मैं प्रेत हूँ । मानव-जीवनमें मैं एक ग्वाला था । एक दिन अपने कुटुम्बियोंके यहाँसे लौट रहा था तो अचानक मार्गमें नदीमें बाढ़ आ गयी थी । गाँव आनेके लिये नदी पार करने लगा तो डूब गया । तबसे मैं पानीका प्रेत (बुड़वा) बनकर यहीं इस तालाबमें रहता हूँ । मैंने मनुष्य-जीवनसे लेकर आजतक किसीका कुछ भी बिगाड़ा नहीं है । मनुष्य-जन्मकी साधुता ही मुझे चैनसे रहने देती है । परंतु उस जन्मकी एक चूक इस योनिमें भी खटकती है । यदि पूर्वका अभ्यास होता तो मैंने डूबते समय 'हरिनाम' लिया होता, जिससे मेरा कल्याण हो जाता । पर ऐसा नहीं हो सका ।' यों कहते-कहते वह सिसकियाँ भरने लगा और पुनः बोला—''अब मेरा कल्याण आप ही कर सकते हैं । यदि कृपा हो तो मैं आपके साथ रहकर नित्य 'हरि-कथा' सुनूँ । हरि-कथासे मेरा उद्धार हो जायगा ।'' उसकी दशा देखकर पण्डितजीको भी दया आ गयी और उसको अपने साथ रहनेकी उन्होंने स्वीकृति दे दी ।

वह बहुत दिनोंतक पण्डितजीके साथ रहकर उनकी पोथी ढोते फिरता था । उसे केवल पण्डितजी ही देखा करते । दूसरोंके लिये वह अदृश्य था । अपने परम प्रयाणसे एक दिन पहले वह कथामें उपस्थित हो गया और तरह-तरहसे पण्डितजीको धन्यवाद देते हुए उनके चरणोंसे लिपट गया । फिर यह कहते हुए कि 'हरिनाम-श्रवण एवं हरिकथाके प्रभावसे मेरी प्रेतयोनि छूट रही है । मेरा भी कल्याण हो गया ।' वह अदृश्य हो गया ।

(ख)

प्रेतकी पुण्य-याचना

घटना बहुत पुरानी नहीं है और है यह बिल्कुल सत्य । मेरे गाँवके श्रीरामसिंहासन साहु बहुत दिनोंसे व्यापार करते आ रहे हैं । पहले वे यहाँ घोड़ेसे व्यापार करते थे; अब कपड़ा आदिकी दूकान है । एक दिन वे घोड़ा लादनेके लिये (घोड़ेपर सामान लेने) अपने साथियोंके साथ बहुत दूर एक बड़ी बस्तीमें गये । दोपहरके समय सभी लोग रास्तेमें पड़नेवाली एक नदीके किनारे भोजन करने बैठे । इनमें एक 'भोला' नामक आदमी था, जो स्वभावका भी भोला था । वह अपना खाना थालीमें रखकर नदीमें जल लेने गया । लौटकर देखा कि 'उसका खाना एक कुत्ता खा रहा है और

उसके साथी देख-देखकर हँस रहे हैं।' मनमें यह सोच-कर कि 'खाना तो कुत्तेने जूँठा कर ही दिया, उसे खदेड़ने-मलेसे क्या लाभ ?'—भोलाने कुत्तेको सारा खाना खिला दिया और थाली मलकर रख ली। इस तरह वह उस दिन भूखा रहा। उसके इस भोलेपनका साथियोंने खूब मजाक उड़ाया।

सामान लेकर लौटते समय संध्या हो जानेके कारण एक गमीरके गाँवमें वे लोग ठहर गये। संयोगसे वे लोग एक ऐसे आदमीके द्वारपर ठहरे, जिसके घरमें एक आदमी 'ब्रह्मदुखी' था। घरका मालिक उदास एवं चिन्तित बैठा था। उसे देखकर व्यापारियोंने उदासीका कारण पूछा तो उत्तर मिला—'क्या करें भाई! हमारे घरमें एक आदमी ब्रह्मपीड़ित है।' मजाकमें ही व्यापारियोंने ब्रह्मदुख झाड़नेके लिये भोलाको उस आश्रयदाताके घर जानेको कहा। आश्रयदाता भी भोलाको तान्त्रिक व्यक्ति समझकर अपने घर चलनेके लिये आग्रह करने लगा। भोला तो बेचारा भोला था ही, अपने भोलेपनमें ही उसके घर चला गया। आँगनमें बैठे ब्रह्मराक्षससे पीड़ित व्यक्तिने जब भोलाको देखा तो जोरसे हँसकर कहा (उस समय वह प्रेतावेशमें था, अतः प्रेत ही बोल उठा)—'क्या जी, तुम्हीं आये हो! अच्छा, मैं तो इसके घरसे चला जाऊँगा, पर मेरी एक शर्त मानो तब।' भोलाने शर्त पूछी तो उत्तर मिला 'तुम आजकी अपनी कमाई मुझे दे दो तो मैं इसे सदाके लिये छोड़कर इसके घरसे चला जाऊँ।' भोला जब इस बातको नहीं समझ सका तो प्रेतने उसे कुत्तेको खाना खिलानेकी बात याद दिलायी और कहा कि—

'मनुष्यकी सच्ची कमाई यही है। इससे तुम्हें अक्षय पुण्य मिला है। यदि किसी ब्राह्मणद्वारा मेरे नाममें इस पुण्यके अर्पणका संकल्प कर दो तो मैं यहाँसे चला जाऊँ।'

भोलाने उसी समय एक ब्राह्मणको बुलाकर अपना पुण्य प्रेतको दान कर दिया। फिर तो सदाके लिये गृहस्वामीको प्रेतपीड़ासे छुटकारा मिल गया!

यमराजके दर्शन करके लौट आये

[मृत्युके पश्चात् लौटे हुए लोगोंकी घटनाएँ]

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

(१)
भाँगरी मनिहारिन

नवम्बर, सन् १९५७ में कानपुरमें श्रीसर्ववैदिकशाखा-सम्मेलन हुआ था। उस अवसरपर काशीके विद्वान् पं० श्रीमदनबिहारी मिश्रजी, अध्यापक श्रीगोयनका संस्कृत महाविद्यालयसे हमारी कुछ परलोक-सम्बन्धी बातें होने लगीं। आपने अपनी पूरी जाँच की हुई परलोकसम्बन्धी घटना सुनायी। वह इस प्रकार है—

गम्भीरा स्टेशनसे (जिला वाराणसी) तीन कोस दक्षिण ओर मधुपुर नामक एक ग्राम है। उसी ग्राममें भौंरी नामक एक मुसलमान स्त्री थी, जो चौकरी चूड़ियाँ बेचनेवाले मुसलमान मनिहारकी पत्नी थी। एक बार उस मुसलमान भाँगरीके पड़ोसकी एक स्त्री सांघातिक रोगसे पीड़ित थी। भाँगरी उसकी बीमारीका समाचार सुनकर उस स्त्रीको देखनेके लिये उसके मकान गयी। उस बीमार स्त्रीको देखनेके पश्चात् ज्यों ही लौटकर वह अपने घर वापस आयी त्यों अचानक ही उसकी मृत्यु हो गयी। अपने घरसे उस बीमार स्त्रीके पास जानेसे पहले वह बिल्कुल ही अच्छी थी। उसे किसी भी प्रकारका कोई रोग नहीं था।

भाँगरी मुसलमान थी। उसे मुसलमानी प्रथाके अनुसार दफनानेकी क्रिया करनी आरम्भ कर दी गयी। उसे दफनानेके लिये गाँवसे बाहर जंगलके कब्रिस्तानमें एक गड्ढा भी खोद लिया गया और भाँगरीके शवको चारपाईपर लेटाकर ले दिया गया। जब उसे कब्रमें दफनानेके लिये रखा जाने लगा तो वह एकाएक जीवित हो गयी। उसके मुखसे एकदम कुछ अस्पष्ट शब्द निकले। उसने अपने हाथके [illegible] अपने मुखसे कपड़ा हटानेके लिये कहा। जब उसके मुखसे कपड़ा हटाया गया तो सब लोगोंने बड़े ही आश्चर्यके साथ देखा कि उसका [illegible] बिल्कुल [illegible] [illegible]

दिया है, जिससे उसके कुछ केश भी जल गये थे। बादमें जबतक भाँगरी जीवित रही तबतक वे केश बराबर जले रहे। यह त्रिशूलका निशान भी बराबर मरनेतक इसी प्रकार बना रहा। लोगोंने इसका कारण पूछा तो उन्हें भाँगरीने बताया—

"मैं बिल्कुल ठीकठाक थी। मुझे कोई रोग नहीं था। एकाएक मेरे सामने दो व्यक्ति आये। वे मुझे पकड़कर अपने साथ कहीं बहुत दूरपर ले गये। वे मुझे जहाँ ले गये, वहाँ पहुँचकर मैंने देखा कि एक बहुत बड़ी सभा लगी हुई थी। एक ऊँचे आसनपर एक बड़ा ही तेजस्वी व्यक्ति बैठा हुआ था। उस तेजस्वी व्यक्तिने उन दोनों व्यक्तियोंको, जिन्होंने मुझे उसके सामने ले जाकर उपस्थित किया था, बहुत ही फटकारा कि 'तुम इसे यहाँपर क्यों ले आये हो? इसकी मृत्यु अभी नहीं थी। इसकी तो आयु अभी चौदह वर्ष और बाकी है। तुम्हें तो हमने इसके पड़ोसकी जो स्त्री बीमार है, उसको लानेके लिये भेजा था। यह स्त्री बड़ी पापात्मा है। जब यह अपनी आँखोंसे अपनी दोनों लड़कियोंके मरनेका दुःख देख लेगी, तब मरेगी। तुमलोगोंने इसे व्यर्थ कष्ट दिया है; इसलिये इसके हितकी दृष्टिसे त्रिशूलसे इसके सिरको दाग दो, ताकि इसे अब जीनेके बाद यहाँपर आनेकी बात याद रहे। यह पापोंसे बचे।' उन्होंने मुझे झटसे त्रिशूलसे दाग दिया। इसी कारण ये मेरे सिरके केश जल गये हैं और मेरे सिरपर उनका लगाया त्रिशूलका निशान लगा हुआ है।"

भाँगरीकी बतायी हुई चारों ही बातें सत्य सिद्ध हुईं। सिरमें यमदूतोंद्वारा लगाया चिह्न जीवनभर रहा। जिस समय भाँगरी जीवित हुई थी, उसी समय उसके पड़ोसकी बीमार स्त्रीका देहावसान हो गया। १४ वर्षके भीतर ही सचमुच भाँगरीके सामने उसकी दोनों लड़कियाँ मरीं। उनके मरनेका घोर दुःख इसे अपनी आँखोंसे देखनेको मिला। १४ वर्ष पूरेकर वह १५वें वर्षमें मर गयी।

(२)

श्रीरखामलजी

सन् १९५४ की बात है। [illegible] हमारे स्थानपर उदासीन संत स्वामी श्रीरामेश्वरचन्द्रजी महाराज [illegible] पधारे थे। एक दिन उन्होंने कथाके बीच प्रसङ्गमें अपने घरकी एक परलोक-सम्बन्धी घटना सुनाते हुए कहा—

"सन् १९४६ की बात है। हमारे पिताजी, जिनका शुभनाम श्रीरखामलजी था, नानकाना साहबमें रहा करते थे। वहाँपर हमारा अपना घर था। हमारे पिताजी नित्य प्रति प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें ही उठ जाया करते थे; किंतु एक दिन वे ब्राह्ममुहूर्तमें नहीं उठे। इससे चिन्तित होकर घरके हमलोग पिताजीके कमरेमें उन्हें देखनेके लिये गये। वहाँ जाकर देखा कि पिताजी पलंगपर पड़े सो रहे हैं। हमने उन्हें जोरसे आवाज देकर पुकारा। वे बोले नहीं। हमने उन्हें पासमें जाकर समीपसे देखा और उनके शरीरके अपना हाथ लगाया। उस समय उनका शरीर ऐसा था कि जैसा कोई मुर्दा होता है। हम सब बहुत घबराये। तुरंत दौड़े हुए डाक्टरके पास गये और डाक्टरको अपने साथ बुलाकर लाये। डाक्टरने पिताजीको गौरसे देखा और कहा कि 'इन्हें अत्यधिक कमजोरी है।' उस समय पिताजीका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ था। वे बिल्कुल पीले पड़ गये थे।

"कुछ देरके पश्चात् पिताजीको धीरे-धीरे होश हुआ। होशमें आनेपर उन्होंने हमें बताया—'प्रातःकाल लगभग पाँच बजे दो यमके दूत मुझे लेनेके लिये आये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि 'तुम हमारे साथ चलो।' मैं उन दोनों यमदूतोंके साथ चला गया। दूर जानेपर मैंने देखा कि एक बहुत बड़ा मैदान है, वहाँपर एक मनुष्य बैठा हुआ है। उसने मुझे देखते ही उन दोनों यमदूतोंसे कहा—'इसे यहाँपर क्यों लाये। हमने तुम्हें इसे लानेके लिये कब कहा था? यह तो दूसरा रखामल अरोड़ा है, जो इनके बिल्कुल पड़ोसमें ही रहता है। तुम वहाँसे जाओ और उसी रखामल अरोड़ाको ले आओ। इन्हें अभी ले जाकर वापस कर आओ।' वे दोनों यमदूत मुझे वहाँसे अपने साथ लाकर यहाँपर छोड़ गये। तबसे मेरे शरीरमें बिल्कुल ही शक्ति नहीं रही।'"

हमने यह घटना कहाँतक सत्य है, यह जाननेके लिये तुरंत अपने नौकरोंके द्वारा रखामल अरोड़ाका पता लगाया। मालूम हुआ कि रखामल अरोड़ा रातको बिल्कुल स्वस्थ थे। उन्हें किसी प्रकारका कोई रोग भी नहीं था। ग्यारह बजेके सोये थे, किंतु उनका ५।१५ बजे प्रातःकाल शरीर पूरा हो गया।

(३)

सागवाली अहीरिन

हमारे पिलखुवाके पास एक गाँवकी बुढ़िया थी अहीरिन। वह बेर-कचरिया या साग आदि बेचकर अपना निर्वाह करती थी। हमारी माताजीसे उसका बड़ा स्नेह था। जब भी वह कभी कोई फल बेचने आती थी तो हमारे घर अवश्य आती थी। एक दिन वह अकस्मात् मर गयी। घरवालोंने उसे मरा समझकर, बाँसोंकी अर्थीपर कसकर, श्मशानघाट ले जाकर, लकड़ियोंपर रख दिया। ज्यों ही आग लगानेकी तैयारी हुई, वह हिलने लगी और बोल पड़ी। सबको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। जीवित होनेपर उसने परलोक-सम्बन्धी अपना अनुभव बताया। हमने भी उसे अपने स्थानपर बुलाकर माताजीके सामने सुना। उसने बताया—

'मैं बीमार नहीं थी, ठीक थी। मेरे सामने बड़ी-बड़ी डरावनी सूरतवाले दो काले-काले आदमी आकर खड़े हो गये और मुझे पकड़कर अपने साथ ले गये। मैंने वहाँपर देखा कि एक बहुत बड़ा दरबार लगा हुआ है। एक सुन्दर सिंहासनपर एक बहुत बूढ़ा व्यक्ति बैठा हुआ है, जिसके बिल्कुल सफेद चाँदी-जैसे बाल हैं। उसके हाथमें बहुत बड़ी बही है और कागजके ढेर लगे हुए हैं। उसने मुझे अपने सामने खड़ी देखकर उन दूतोंसे कहा—'अरे! तुम इसे क्यों ले आये? इसे अभी नहीं। इसे जल्दीसे नीचे डालो। तुम इसे भूलसे ले आये हो।' उन्होंने जल्दीसे मारकर यहाँ छोड़ दिया। यमदूतोंकी लगी मार आज भी मेरे शरीरमें कष्ट पैदा करती रहती है।'

(४)

श्रीविश्वम्भरनाथजी बजाज

दिल्लीके दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' में ता० २० दिसम्बर, सन् १९५७ को यह समाचार छपा था—

"मुरैना। इस बातपर विश्वास होना कठिन है; किंतु घटना यह सत्य है कि यहाँके एक व्यवसायी विश्वम्भरनाथ बजाज, जिनकी आयु ७५ वर्ष है और जो कई दिनोंसे बीमार चले आ रहे थे, अभी १६ तारीखको पहले तो उनका देहान्त हो गया; किंतु कुछ देर बाद वे फिर जीवित हो उठे। उसी समय उनके बजाय एक दूसरे व्यक्तिका देहावसान हो गया।

"घटना इस प्रकार बतायी जाती है कि १६ ता० को श्रीविश्वम्भरनाथकी दशा बिगड़ने लगी। धीरे-धीरे जीवनके सभी लक्षण उनके शरीरसे लुप्त हो गये। उनकी नाड़ीकी गति बंद हो गयी। श्वास बंद हो गया। शरीर पूर्णतया ठंडा हो गया। इसपर उनके कुटुम्बियोंने उन्हें मृत समझकर भूमिपर उतार लिया और अन्त्येष्टि-क्रियाकी तैयारियाँ करने लगे। किंतु लगभग आध घंटेके बाद ही वे अचानक उठ बैठे और आश्चर्यमें पूछने लगे कि 'यह सब क्या हो रहा है?' उन्होंने लोगोंको यह आश्वासन देते हुए कि 'मैं मरा नहीं हूँ।' आगे बताया कि 'कुछ लोगोंने उन्हें उठाकर आकाशमें एक दिव्य पुरुषके सामने रख दिया, जो एक वृषभपर आरूढ़ था। उस दिव्य पुरुषने वाहकोंको फटकारते हुए कहा कि 'इस आदमीको शीघ्र ही पृथ्वीपर छोड़ आओ। मैंने इसे नहीं, बल्कि दूसरे व्यक्तिको बुलाया था।' इसपर वह वापस उन्हें यहाँ छोड़ गये। उन्होंने यह घटना सुनायी ही थी कि लोगोंको थोड़ी देर बाद यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि श्रीविश्वम्भरनाथमें चेतना उत्पन्न होनेके ठीक समय नगरके एक दूसरे व्यवसायी श्रीगयाप्रसाद, जो ४० वर्षकी आयुके थे और जिनका स्वास्थ्य पूर्णतया ठीक था, हृदयगतिके रुक जानेसे अचानक मर गये। इस दैवी घटनाकी चर्चा नगरके कोने-कोनेमें हो रही है।"

(५)

जानकी खटिकिन

'श्रीमारुतिसंजीवन' मासिक अङ्क १० अक्टूबर, सन् १९५६ में यह घटना इस प्रकार छपी है—

"अभी पूरे पचीस वर्ष नहीं हुए, इसी [illegible] एक महिला जानकी नामकी थी, जो जातिकी खटिक थी, बीमार हुई और महीनों पड़ी रहकर एक दिन मरणासन्न अवस्थामें पृथ्वीपर लिटा दी गयी। [illegible] उसका प्राणान्त हो गया। इसी जानकी [illegible] थी और अपने नामकी [illegible] उत्तराधिकारिणी [illegible] सीताराम नामक [illegible] थी। उन दिनों [illegible] मंदिर था। इस [illegible] अधिकांश जनताको [illegible] कहकर ही पुकारते हैं।

मृत्युके उपरान्त उसे श्मशान ले जानेके लिये लोगोंने [illegible] उसकी अर्थी [illegible] [illegible] हुआ [illegible] और [illegible] लोगोंकी [illegible]

निकल गया। लोग अर्थी बाँध रहे थे कि उसमेंसे जनुकियाकी बुरी तरहसे जोरसे चीखनेकी आवाज आयी। लोग इस आश्चर्यको देखने दौड़कर पहुँचे। उसे रोते देखकर पूछा तो 'उसने कमरमें बुरी तरह चोट लगने और बड़ी दूर ऊँचेसे पटक देनेकी चर्चा करते हुए बताया कि 'यहाँसे दो काले आदमी मुझे घसीट कर ले गये थे। मैं रोती-चिल्लाती रही; पर उन्होंने तनिक भी दया नहीं दिखायी। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा—एक बूढ़े बाबा सफेद दाढ़ीवाले बैठे थे—तख्तपर। उनके पास ढेर-के-ढेर बस्ते रक्खे थे। उनके सामने पहुँची तो उन्होंने देखते ही उन ले जानेवाले लोगोंसे कहा—'इसे क्यों लाये हो? दूसरी जनुकिया है, उसे लाओ।' यह सुनकर उन लोगोंने मुझे वहाँसे पटक दिया, इससे मेरी कमर टूट गयी। मैं बच भी गयी तो अधमरी हो गयी।' उसकी ये सब बातें सुनकर सब लोग अपना-अपना तर्क और बुद्धिमानी बघारने लगे, पर दो घंटेके पश्चात् स्थानीय एक दूसरी बुढ़िया जनुकिया नामकी लोध राजपूतनी मर गयी। उस घटनाके पश्चात् जनुकिया चटकिन दस वर्षसे भी अधिक जीवित रही।"

(६)
श्रीरुद्रदत्त

'नवभारत टाइम्स' दिल्ली (९ । १ । १९६०) लिखता है। "नैनीताल ८ जनवरी। गढ़वाल जिलेमें रानाघाटके पास सुंदी ग्रामका निवासी रुद्रदत्त मृत घोषित किये जानेके कुछ देर बाद पुनः जीवित हो उठा। उसके सगे सम्बन्धी रोते हुए विलाप कर रहे थे और उसकी अन्तिम क्रियाकी तैयारी की जा रही थी। इतनेमें मृत व्यक्तिमें पुनः जीवनके चिह्न दिखायी दिये। उसने आँखें खोलीं। अपने सम्बन्धियों और ग्रामवासियोंको परलोकयात्राके अनुभव सुनाये। रुद्रदत्तने कहा कि 'मुझे श्रीहनुमान्‌जीका मन्दिर बनानेका दैवी आदेश मिला है।' रुद्रदत्त काफी समयसे बीमार था। अब वह अच्छा हो गया है और उसने परलोकमें मिले दैवी आदेशके अनुसार एक श्रीहनुमान्‌जी महाराजका मन्दिर बनाना शुरू कर दिया है।"

(७)
तुलसी बुआ

'प्रभात' दैनिक, मेरठ ता० ४ मार्च, सन् १९६१ में छपी घटना इस प्रकार है—

"कानपुर। मौतको उन्होंने ठगा या या मौतने उन्हें—यह तय करना तो कठिन है, लेकिन अन्तमें भी तुलसी बुआको मरना ही पड़ा। तुलसी बुआ यहाँसे, चालीस मील दूर स्थित एक ग्रामकी निवासिनी थीं। अपने धर्मप्रेम तथा पूजा-पाठके लिये विख्यात थीं। विगत १४ फरवरीको रातके १० बजे उनका देहान्त हो गया और दूसरे दिन प्रातः जब उन्हें चितापर रक्खा गया तो वे उठकर बैठ गयीं और बोलीं कि 'यमदूत मुझे भगवान्‌के सामने ले गये तो वे बोले कि अभी इसका समय नहीं हुआ है। इसपर यमदूत मुझे वापस भेज गये।' उन्होंने यह भी बताया कि 'भगवान्‌के सिंहासनपर इतनी चमक थी कि मुझे उनकी झलकतक नहीं दीख पायी।' तुलसीदेवीको, जो उस क्षेत्रमें बुआजीके नामसे विख्यात हैं, बाजे-गाजेके साथ घर लाया गया। समाचार-पत्रोंमें यह भी खबर छपी थी कि स्वर्गसे लौटी इस देवीके दर्शनोंके लिये हजारोंकी भीड़ उस गाँवमें पहुँचने लगी। तुलसी बुआ एक तख्तपर बैठी रामनाम जपती रहती थीं और कभी-कभी दर्शनार्थियोंपर आशीर्वाद भी छिड़क देती थीं। ठीक शिवरात्रिके दिन उन्होंने सहसा कहा कि 'अब मेरा अन्तकाल आ गया है।' और तत्काल उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। उनकी अन्त्येष्टिमें हजारों लोग शामिल हुए।"

सर ऑकलैंड गेड्डीजका अनुभव

(लेखक—श्री निरंजनदासजी धीर)

मृत्यु क्या है? स्थूलशरीरसे सूक्ष्मशरीरका सदाके लिये अलग हो जाना। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार (अन्तःकरण) सूक्ष्मशरीरका वह भाग है, जिसका मनुष्य जीवित अवस्थामें भी हर समय प्रयोग करता है। मानवका व्यक्तित्व सूक्ष्मशरीर, जिसमें अन्तःकरण है, रहता है। वो मृत्युके पश्चात् भी वैसा ही रहता है। सूक्ष्मशरीर काल तथा आकाश (Time and Space) के बन्धनसे मुक्त होता है। जहाँ प्राण काम नहीं कर सके है। इन मन्तव्योंकी सत्यताकी पुष्टि सर ऑकलैंड गेड्डीज (Sir Auckland Geddes) के उस निबन्धसे होती है, जो उन्होंने २६ जनवरी १९३७ को रायल मेडिकल सोसाइटीके अधिवेशनमें पढ़ा था, जिसमें उन्होंने हुए ...

कीका अनुभव है। इस रोगीको ठीक मृत्युके द्वारसे ...क्लिद्वारा लौटाया गया था। सर औकलैंडने बताया ...''उस व्यक्तिको एक प्रकारका विषूचिका रोग हो गया ...। वह कई घण्टोंसे वमन तथा अतिसारसे आक्रान्त ...। रोगकी तीव्र व्यथा तथा उसके विषके प्रभावसे उसकी ...विनी-शक्ति जाती रही और वह निश्चेष्ट होकर पड़ ...ा। उसने अपनी आर्थिक स्थितिका मूल्याङ्कन किया, ...ससे सिद्ध होता था कि उसकी चेतना सजग थी।

"अचानक उसने अनुभव किया कि उसकी एक चेतना ...) उसकी दूसरी चेतना (ख) से पृथक् हो रही है और ...(ख) चेतना भी वही है। उसका अहंकार मैं (क) ...नाके साथ था और (ख) उसका शरीर था। फिर ...सने अनुभव किया कि (क) चेतना (ख) शरीरसे बाहर ...जो (ख) शरीरको देख रही है, जो बिगड़ना आरम्भ ...गया था। शनैः-शनैः उसने यह अनुभव किया कि ...ह केवल समीपकी वस्तुएँ ही नहीं देख रहा है, वरं ...समें अपने घरको भी देख रहा है; यहाँतक कि ...यर्लैंड तथा अन्य स्थानमें, जहाँ उसका ध्यान जाता, वही स्थान उसकी दृष्टिके समक्ष होता। उसको बताया गया कि काल तथा स्थान (Time and Space) के बन्धनसे वह मुक्त है। जिसका अर्थ था कि 'अब' (वर्तमान) और 'यहाँ' ही रह गये हैं। अब वह अपने परिचित लोगोंको पहचानने लगा; किंतु उसके चारों ओर रंगदार प्रकाश जमा हुआ प्रतीत होता था। जब डाक्टरने कहा कि 'रोगी तो हो चुका' तब उसने ये शब्द तो सुन लिये, किंतु वह उत्तर नहीं दे सकता था; क्योंकि वह (ख) शरीरसे बाहर था। डाक्टरने तब कैम्फरका इंजेक्शन लगा दिया, जिससे हृदयमें शक्तिका संचार हुआ और वह गतिशील हो गया तो (क) को खींचकर (ख)में डाल दिया गया। इस घटनासे उसको महान् दुःख हुआ और उसे क्रोध आया; क्योंकि वह इस कौतुकको तथा वह कहाँ है और क्या देख रहा है, समझने लगा था। रोगीने बताया कि 'यह उसका अनुभव स्वप्नवत् नहीं था, जिसको भुलाया जा सके। यह उसकी सजग चेतनाका प्रत्यक्ष अनुभव था।' सर औकलैंडका कथन है कि 'यह अनुभव कृत्रिम नहीं था। सोलहों आने सत्य है।'

श्रीबालावक्सजी

[पुत्रप्राप्ति]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

यह सच्ची सत्य घटना मैंने अपनी पूजनीय माता श्रीबाला-...र्देके श्रीमुखसे सुनी थी, जो मुझे आज भी ज्यों-की-त्यों ...द है।

पञ्जाना हाड़ौती प्रान्तमें देहलनपुर नामकी तहसील ...है। झालावाड़, कोटा राज्योंमें रही, अब वृहत् ...राजस्थानमें है।

इसी देहलनपुर तहसीलमें मेरे पितामह पू० माला-...रामजी कारकूनके पदपर नियुक्त थे। अवस्था अधिक ...हो जानेपर भी पितामहीके कोई पुत्र—संतान न होनेसे दोनों ...बड़ा उदास रहते थे। उन्होंने पुत्र-प्राप्तयर्थ दान-पुण्य, ...अनुष्ठान आदि किये-कराये; किंतु सफलता नहीं मिली। ...इससे पू० पितामही खिन्न रहने लगीं। [illegible]

[illegible]

जाते हैं।' कोई कहता—'पुत्र-प्राप्तिके हेतु पहले बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया जाता था। अब साधारण नरसे क्या होता है? माना कि कलियुगमें [illegible] सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, पर इसमें अटल श्रद्धा भी तो होनी चाहिये।'

इधर यह चर्चा चल रही थी; उधर [illegible] पूर्ण कर दी गयी थी। अब केवल अर्घ्य उठाना ही शेष था। [illegible]

[illegible]

भूत-प्रेत कुछ भी यदि हो जाय, तो इस धर्मपरायण घरानेमें कलङ्क लग जाय।' कोई कहता—'मरणके उपरान्त जीवित होना असम्भव है। यह किसी अज्ञात कारणसे हलचल हुई जान पड़ती है।'

इतनेमें ही शवके उठनेकी विशेष चेष्टा' देखकर घरनी लोगोंने उसको उठानेमें सहारा दिया। अब पितामही उठकर बैठ गयीं; मानो गहरी निद्रासे जागी हों। धीरे-धीरे उन्होंने बोलना शुरू किया—

''मुझे यमदूत ले गये और यमराज चित्रगुप्तजीके सामने खड़ा कर दिया। वह स्थान मुझे स्वर्णपुरी-सा जान पड़ा। रत्नजटित स्वर्णके ऊँचे सिंहासनपर चित्रगुप्तजी विराजमान थे। उनके सम्मुख लंबे पन्नोंका साहूकारी बही खाते-जैसा एक बड़ा भारी पोथा रक्खा था। दूसरे ऐसे ही सिंहासनपर यमराजजी विराजमान थे, जिनका श्याम वर्ण, बड़े-बड़े लाल नेत्र और मोटा शरीर था। उनकी आज्ञासे पोथेके पन्ने उलटकर मेरे पाप-पुण्यका हिसाब देखते हुए चित्रगुप्तजी बोले—'इसकी तो अभी बहुत आयु भोगना शेष है। इसने जो भगवदाराधन, व्रत-अनुष्ठानादि किये हैं, उनके फलस्वरूप इसको एक धर्मात्मा पुत्रकी प्राप्ति होगी।'

यह सुन यमराजने दूतोंसे कहा—'तुमने बड़ी भूल की है। अब इसे शीघ्रातिशीघ्र इसके स्थानपर ले जाओ। नहीं तो इसके शवको जला देनेपर इसका आत्मा इधर-उधर भटककर शेष आयु बितायेगा और इसकी जगह उसी मुहल्लेकी इसी नामकी दूसरी महिलाको शीघ्र लाओ।'

मैंने कर जोड़ धर्मराजसे सानुनय निवेदन किया—'दयानिधान! अब मैं मृत्युलोकमें घर जाकर क्या करूँगी! मुझ निपूतीका कोई मुँह देखना भी पसंद नहीं करेगा। पुत्र-रत्नरूपी प्रकाशके बिना घरमें अन्धकार दिखायी देगा। मैं अशान्त और पहले-जैसी रुग्ण बनी रहूँगी। मुझे कुछ दिनोंके पश्चात् तो फिर आपके दरबारमें आना ही पड़ेगा। इसलिये अब आ गयी हूँ, तो वापस न भेजा जाय।'

मेरी प्रार्थना सुन धर्मराज बोले—'देवी, तुम्हारी मृत्यु-घड़ी अभी आयी नहीं है। दूत भूलसे तुमको यहाँ ले आये हैं। अभी भजनपर सुखपूर्वक जीवित रहो। भगवान्‌की तीर्थयात्रा करनेसे तुम्हारे धर्मशील, भगवद्भक्त और मातृ-पितृ-भक्त पुत्र उत्पन्न होगा।'

'यह वरदान सुन प्रसन्नतापूर्वक मैंने अपने घर जाना स्वीकार कर लिया। किंतु, एक प्रार्थना पुनः की कि—'कृपासागर! मुझे कोई निशानी दीजिये। इसके बिना वहाँ मेरी बातपर कोई विश्वास नहीं करेगा। लोग मुझे भूत-प्रेतकी संज्ञा देकर मेरे पास नहीं आयेंगे। मेरा जीवन दूभर हो जायगा।'

तब उन्होंने मुझे लोहेके चने निशानीके रूपमें दिये। फिर तत्काल मुझे यहाँ लाया गया। यह देखो, मेरी मुट्ठियोंमें लोहेके चने मौजूद हैं।''

इतना कहते हुए दादीजीने सबको वे लोहेके चने दिखाये, जिन्हें देखकर उपस्थित जनोंको विस्मयके साथ विश्वास हुआ।

यह संवाद थोड़ी देरमें ही सारे नगरमें बिजलीकी भाँति फैल गया, जिसे सुनकर नगर-निवासी एवं दूर-दूरके लोगोंके समूह बड़ी उत्सुकतासे इस अनोखे दृश्यको देखनेके लिये आने लगे। रक्षार्थ भवनके द्वार बंद कर लेने पड़े। तब भी बाहरसे प्रश्नावलीकी झड़ीसे सारा वातावरण गूँज उठा। सही बात बताकर बड़ी कठिनाईके साथ भीड़को वहाँसे हटाया गया।

सत्य समाचार जानकर सबको पूरा विश्वास हो गया कि 'सचमुच ही हमारे पुराणोंमें वर्णित यमलोक है, यमराज हैं, चित्रगुप्त हैं और वहाँ जीवोंके पाप-पुण्यका न्याय होकर कर्मोंके अनुसार दण्ड दिया जाता है।' इस प्रकार आपसमें वार्तालाप करते हुए वे अपने भवनोंको गये।

उसी समय सबने देखा-सुना कि ज्यों ही पितामहीको पुनः चैतन्य हुआ, त्यों ही पड़ोसकी एक महिलाकी मृत्यु हो गयी और यों धर्मराजकी बात सत्य प्रमाणित हुई। तत्काल इस ताजी घटनाको देख जनताका यमलोकके अस्तित्वपर और भी दृढ़ विश्वास जम गया।

पूज्य पितामहीके कथनमें पुराणवर्णित वैसे किसी नरक-नदीकी चर्चा नहीं आयी, जिसमें पापी जीवोंको रखकर भाँति-भाँतिके कष्ट दिये जाते हैं और पुण्यात्माओंको सुख। जान पड़ता है—पुण्यवती होनेसे उन्हें सीधे उत्तम मार्गद्वारा यमालयमें ले जाया गया होगा और उनके [illegible] नरक दिखाये भी नहीं होंगे। सुना जाता है—[illegible] कई पीढ़ियोंमें अन्नदान-भोजन तथा [illegible]

वश नहीं रहा। यह भी एक-कारण हो सकता है।

इस घटनाके कुछ दिनों पश्चात् श्रीधर्मराजका वरदान सिद्ध हुआ। पू० पितामह-पितामहीने पुत्र-कामनाके हेतु सम्पूर्ण भक्ति-भावनाके साथ, श्रीजगन्नाथपुरीकी तीर्थ-यात्रा की। वहाँ सविधि यात्रा पूरी कर भवनपर लौटनेके बाद दयासिन्धु श्रीहरिकी महती कृपासे मेरे पिताजीने जन्म ग्रहण किया।

श्रीधर्मराजके वरदानके अनुसार पिताजी अपने जीवनमें बड़े धर्मशील, भगवत्परायण, मातृपितृ-भक्त, दानी एवं साधुसेवी रहे, जिसके कारण उनका स्वर्गवास मुक्ति-प्रदायिनी काशीजीमें हुआ।

उनका जन्म-वृत्तान्त सुनकर उन लोगोंके विस्मयकी सीमा नहीं रही, जो व्रत-अनुष्ठानादिके द्वारा अथवा भगवान्‌की आराधनासे मनोकामना सिद्ध होनेमें संदेह करते थे, एवं धर्मराजके वरदानकी बात असत्य मानकर हँसी उड़ा रहे थे। अब तो उनके पास पश्चात्तापके सिवा हँसी उड़ानेका कोई उपाय नहीं रहा।

जीव अपने कर्मानुसार विभिन्न योनियोंमें जन्म लेकर कर्मोंका फल भोगता है। यही हमारी आर्य-संस्कृतिका शाश्वत सत्य निश्चित सिद्धान्त है। इसपर पूरा विश्वास करना ही अभीष्ट है।

आजका मानव अविश्वासी बन, भगवान्‌को भूलकर स्वार्थ, व्यभिचार, अत्याचार, हिंसा, चोरी-डकैती, ईर्ष्या, द्रोह, असत्य, बेईमानी आदि अनेक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त हो, खुशियाँ मना रहा है। अपने दुर्लभ जीवनका इस प्रकार दुरुपयोग कर दिनोंदिन उसका ह्रास करनेमें जरा भी लज्जित नहीं होता है। यह निश्चित ही उसे अधोगतिमें डालनेवाली भयंकर भूल है। इसे शीघ्रातिशीघ्र त्यागना होगा, तभी संसारके मानवका सभी भाँतिसे भला हो सकता है। यह अकाट्य सत्य है।

(४)

अन्नदान करनेवाली बुढ़िया माई

(प्रेषक—श्रीज्योतिनारायणजी तिवारी)

पंद्रह वर्ष पूर्वकी बात है—मेरी माताजी बीमार पड़ीं। तीन दिनोंतक मूर्च्छित मृतकवत् रहीं। चौथे दिन उनको होश आया और वे अच्छी हो गयीं। अब वे, जो भी भूखा उनके द्वारपर आता, उसको खुले हाथों अन्न देने लगीं। उनसे पूछा तो उन्होंने बताया—"तीन दिनकी बेहोशीमें मैं स्वर्ग गयी थी। वहाँ बहुत प्रकारकी खान-पानकी सामग्री थी। मैं माँगती तो मुझे देवदूत कहते—'तुमने अन्नदान किया ही नहीं, तो तुमको कहाँसे मिलेगा।' इसके बाद धर्मराजने कहा कि 'इसकी आयु अभी है।' अतः मुझको छोड़ दिया गया। छोड़ते ही मैं होशमें आ गयी। तबसे अन्नदान करती हूँ।"

अन्य धर्मावलम्बी भी सद्गतिके लिये 'गयापिण्ड' चाहते हैं

अंग्रेजी राज्यमें कलकत्तेमें ब्रिटिश तथा पश्चिमीय देशोंके सैकड़ों व्यापारी-संस्थान (फर्म) थे, जो प्रायः आयात-निर्यातका व्यापार करते थे। उनके साथ बाजारके व्यापारियोंसे क्रय-विक्रयका सौदा करानेवाले सैकड़ों बड़े-बड़े प्रतिष्ठित भारतीय फर्म थे, जो कमीशनपर मध्यस्थका काम करते थे। एक अंग्रेज फर्म था—श्रीएण्ड्रयू यूल कम्पनी (Andrew Yule Co.), जो अब भी है। उनके मध्यस्थका काम करनेवाला था—कलकत्तेका प्रसिद्ध 'अटिया' फर्म।

इस अटिया फर्मके यहाँके दिवंगत हो जानेपर स्व० श्रीकन्हैयालाल अटिया गयाश्राद्ध कराने गये थे। वहाँ चतुर्दशीकी रात्रिको इन्हें उपर्युक्त ईसाई फर्मके दिवंगत श्रीयूल (Yule) साहेब दिखायी दिये और इन्होंने इनसे अपने लिये पिण्डदान करनेका अनुरोध किया और दूसरे दिन [illegible] पिण्डदान किया गया।

एक मृत पारसी आत्माने एक सज्जनसे कहकर अपने लिये गयामें पिण्डदान करवाकर सद्गति प्राप्त की थी।

'कल्याण'में भूत-प्रेत-चर्चा क्यों ?—प्रेतयोनि कभी न मिले इसलिये !

एक सज्जन लिखते हैं—'कल्याण' तो परमार्थ-पथपर ले जानेवाला आध्यात्मिक पत्र है । इसमें भूत-प्रेतोंकी चर्चा नहीं होनी चाहिये और न प्रेतावेश या प्रेतोंके उपद्रव आदिकी घटनाएँ ही छपनी चाहिये ।' पत्र-लेखक महोदय 'कल्याण'के प्रेमी हैं और उन्होंने जिस दृष्टिकोणसे पत्र लिखा है, वह सर्वथा आदरणीय है । 'कल्याण' उनका तथा उन्हीं-जैसे प्रेमी बन्धुओंका नित्य कृतज्ञ है । वास्तवमें 'कल्याण'का उद्देश्य भगवान्‌की ओर प्रवृत्त करना ही है । प्रेत-चर्चा करना या प्रेतोंमें आस्था उत्पन्न करना 'कल्याण'का कदापि लक्ष्य नहीं है । न 'कल्याण' प्रेत-पूजाका प्रचार चाहता है । इसीलिये इस विशेषाङ्कमें प्रेतोंके सम्बन्धमें आयी हुई घटनाओंमेंसे बहुत थोड़ी-सी ही दी गयी हैं । सब दी जातीं तो विशेषाङ्क उन्हींसे भर जाता । ये भी इसीलिये दी गयी हैं कि 'प्रेतयोनि सत्य तथ्य है, कल्पना या वहममात्र नहीं है ।' यह सर्वथा सत्य है कि प्रेतावेशके नामपर ढोंग, ठगी, बदमाशी बहुत चलती है और उससे सावधान ही रहना चाहिये । कहीं जान-बूझकर धोखा नहीं भी दिया जाता तो वहाँ मानस-दुर्बलता या हिस्टीरिया आदिकी बीमारीको प्रेतबाधा मान लिया जाता है । तथापि तथ्य तो है ही । और संसारके मनुष्य त्रिगुणमयी सृष्टिके हैं । उनमें तमोगुणी भी हैं ही । ऐसे कर्म भी प्रायः बहुत लोगोंसे हो जाते हैं, जिनके फल-स्वरूप प्रेतयोनि भोगनी पड़ती है । प्रेतयोनि अत्यन्त यातना-मयी है । इसमें मनुष्योंको न जाना पड़े और वे धर्ममार्गपर चलें तथा अन्ततः अध्यात्मपथारूढ़ होकर भगवान्‌को प्राप्त करें, इसी उद्देश्यसे प्रेत-चर्चा भी आवश्यक समझकर की जाती है । प्रेतयोनिके सम्बन्धमें संक्षेपमें नीचे लिखी बातें जाननेकी हैं—

प्रेतयोनि सत्य है

प्रेतयोनि होती है । यह वायुप्रधान शरीर होता है । प्रेत सभी एक-सी शक्ति, बुद्धिवाले नहीं होते । मनुष्योंकी भाँति विभिन्न जातियोंके प्रेत, कम ज्यादा शक्ति-सामर्थ्यवाले, अच्छे-बुरे स्वभाववाले, शान्त-अशान्त प्रकृतिवाले, तमोगुणप्रधान होनेपर भी सत्त्व, रज या सत्त्वकी न्यूनाधिकतावाले होते हैं और उसीके अनुसार उनके आचरण होते हैं । इस लोकके-जैसी ही उनकी आकृति प्रकृति होती है । वहाँके अनुसार ही उनमें राग-द्वेष, अपना पराया, ममता, हिंसा आदि होते हैं और वे तदनुसार ही शक्तिभर भला-बुरा करना चाहते हैं । शक्ति होती है तो शक्तिके अनुसार हित-अहित करते भी हैं । सत्त्वस्वभावके प्रेत भी होते हैं; परंतु अधिकांशमें वे पापात्मा, द्वेष-हिंसा-परायण ही होते हैं । वे प्रायः अनवरत अत्यन्त अशान्त तथा दुःखी रहते हैं । प्रेत नीचे लिखे कारणोंसे अधिकतर होते हैं ।

प्रेतयोनि क्यों मिलती है ?

१—संसारमें किसी प्राणी-पदार्थके प्रति प्रबल द्वेष या वैर होनेपर या अत्यन्त आसक्ति या ममता होनेपर प्रेतयोनि प्राप्त होती है । किसीसे द्वेष रखकर मरनेवालेको बड़ी पीड़ा-दायक प्रेतयोनि मिलती है । (अतः किसीसे द्वेष न रखे । किसीका अपराध हो गया हो तो मृत्युसे पहले उससे क्षमा माँग ले । अपने मनसे द्वेष निकाल दे ।)

२—जिनका अन्त्येष्टि संस्कार, शास्त्रोक्त पिण्डदान, तिलाञ्जलि, श्राद्धादि शास्त्रविधिसे नहीं होते, उनको प्रेतत्वकी प्राप्ति होती या उनके प्रेतयोनिमें निवासकी अवधि बढ़ जाती है ।

३—जो यहाँ भूत-प्रेतोंकी पूजा करते हैं, तामसी साधन करते हैं, तामस खान-पान तथा आचार-व्यवहार करते हैं, वे प्रायः प्रेत होते हैं ।

४—शराबखोर, चोरी-डकैती करनेवाले, हत्याकारी, व्यभिचारी, शास्त्रविरुद्ध आचरण करनेवाले तथा अधर्मके प्रचारक प्रेत होते हैं ।

५—जो आत्महत्या करते हैं, वे प्रेत होते हैं ।

६—जिसकी किसीके द्वारा हत्या कर दी गयी हो, वह जीव भी मारनेवालेसे बदला लेनेकी प्रबल भावनासे प्रेत होता है ।

इनके सिवा और भी कई कारण प्रेतत्व प्राप्तिके होते हैं । इन सभी कारणोंसे बचना चाहिये तथा परलोकोंसे बचानेकी चेष्टा करनी चाहिये । प्रेतत्वसे बचा देना या प्रेत-योनिसे छुड़ा देनेका प्रयत्न करना सत्कार्य, मित्र-बन्धुओंका कर्तव्य तो है ही, महान् पुण्यका कार्य भी है ।

प्रेतयोनिसे छूटनेके उपाय

प्रेतत्व निवारणके लिये तर्पण, श्राद्ध आदि विधि बड़ी लगन-आदर करने चाहिये । जो श्राद्धके अधिकारी हैं, वे ही तर्पणादिके भी उत्तराधिकारी हैं । पुत्र इसलिये उत्तराधिकारी नहीं कि वह पुत्र है, इसलिये है कि वह पिण्डदान, श्राद्ध करके अपने पितृ-पितामह आदिका उद्धार करता है ।

प्रेतत्व निवारणके लिये श्रीमद्भागवत सप्ताह, विष्णु-

सहस्रनामके पाठ, गायत्री-पुरश्चरण, भगवन्नाम-कीर्तन, द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रका जप, गयाश्राद्ध, तीर्थश्राद्ध आदि परमावश्यक हैं। यथायोग्य इनका प्रयोग करना चाहिये।

कौन प्रेत नहीं होते ?

प्रेतत्वसे बचनेके लिये सदाचारी, सत्कर्मपरायण, शास्त्रविधिको जाननेवाले, माता-पिता-गुरुजनोंके पूजक, प्राणि-मात्रका हित चाहनेवाले तथा भगवान्‌का भजन करनेवाले बनना चाहिये। निरन्तर भगवान्‌के नाम-जप तथा भगवत्स्मरणका अभ्यास करना चाहिये। भक्त कभी प्रेत नहीं होता।

प्रेतका आवेश कब-कहाँ होता है ? और उससे बचनेके उपाय

प्रेतोंका आवेश होता है—यह सत्य है; परंतु वे प्रायः उन्हींमें आविष्ट होते हैं या उन्हींको पीड़ा दे सकते हैं, जो अपवित्र, अनाचारी हों। नियमित संध्या, अग्निहोत्र तथा गायत्री-जप करनेवाले, पवित्र आचरण करने तथा पवित्र खान-पानवालोंको प्रेत पीड़ित नहीं कर सकते। प्रेतयोनिमें जीव अतृप्त वासनाओंसे जलता रहता है। अतएव—

१—अशुद्ध स्थानमें, खुली जगह मिठाई खाते समय, एकान्तके अन्धकारमें, स्त्रियोंके नग्न स्नान करनेकी स्थितिमें, तालाब आदिके किनारे, पीपल, बड़, ताड़-खजूर आदिके नीचे, सुनसान जगहमें, पेड़के नीचे, श्मशान-भूमिमें, समाधि या कब्रके पास, कुएँ-बावड़ीके तटपर और चौराहेपर मल-मूत्रका त्याग करनेपर वहाँके निवासी प्रेतोंका आवेश हो सकता है। इनसे बचना चाहिये।

२—जो महल, पुराने दुर्ग किले—बहुत दिनोंसे निर्जन पड़े हैं, उनमें रात्रि या दिनमें भी अकेले नहीं जाना चाहिये और न उनमें रात्रि-निवास करना चाहिये। उनमें रहना ही हो तो पहले हवन-पूजन, श्रीमद्भागवतका पाठ, रामायण सुन्दरकाण्ड पाठ कराकर तब रहना चाहिये।

३—जिन स्थानोंमें प्रेतोंका वास किया जाता है, [illegible]

४—कभी कोई अद्भुत आकृति दीख ही जाय या मनुष्यके रूपमें ही कोई दीखे और उसके प्रेत होनेकी सम्भावना हो तो भगवन्नाम या गायत्री-मन्त्रका जप करने लगना चाहिये। उससे स्वयं नहीं बोलना चाहिये। वह बोले तो नम्रतासे उचित उत्तर देना चाहिये। अपने पास कोई वस्तु हो और वह माँगे तो उसे दे देनी चाहिये।

५—किसी भी दशामें डरना नहीं चाहिये। डर लगता ही हो तो उच्चस्वरसे भगवन्नाम लीजिये। उन मङ्गल-भयहारी सर्वसमर्थ प्रभुको पुकारिये। भय स्वयं भाग जायगा। लेकिन घबराकर भागिये मत।

६—कोई प्रेत, देवता आदि आपसे कुछ अनुचित करनेको कहे, कोई अपवित्र वस्तु दे या माँगे, कोई ऐसा धन या पदार्थ दे जो आपका नहीं है तो नम्रतापूर्वक, किंतु दृढ़तासे अस्वीकार कर दीजिये। उनकी बात स्वीकार करनेमें हानि होनेकी सम्भावना है। वह धमकावे तो भी अस्वीकार करनेमें ही हित है।

७—जो प्रेत-पूजक, तन्त्र-मन्त्र, टोना-टोटका करनेवाले लोग हैं, किसी बाधाके निवारणके लिये इनकी सहायता लेना आवश्यक हो तो लेनी चाहिये। किंतु चमत्कार देखनेके कुतूहलवश अथवा कुछ सीखने, कुछ लाभ उठानेकी आशासे इनसे परिचय मत बढ़ाइये। इनसे अलौकिककी आशा प्रायः परिचितोंकी हानि अधिक हुआ करती है।

८—अशुद्धावस्थामें, रातमें, धूप [illegible] या मिठाई खाकर बिना कुल्ला किये कहीं मत जाइये। अपने शरीर, वस्त्र, कमरेको, अपने रहनेके स्थानको शुद्ध रखिये।

९—प्रेतसिद्ध करके उनसे कुछ भी काम लेनेकी कभी भी न इच्छा कीजिये, न ऐसी विद्या ही सीखिये।

१०—जो भगवान्‌की शरण ले लेता है, भगवान्‌का भजन करता है, उसे किसीका भय नहीं है। देवता भी उसका अपकार नहीं कर सकते। अतः भगवान्‌की शरण लीजिये, उनका स्मरण, पूजन तथा [illegible] मनुष्यको निर्भय कर देता है।

[illegible]

लिये करना चाहिये; माँगनेपर तो तुरंत कर देना चाहिये। अनुचित पापकी माँग हो तो न मानिये। प्रेतबाधा-निवारणके लिये नीचे लिखे उपाय करने चाहिये। इनसे लाभ होता देखा गया है।

जिस कमरे या मकानमें वह व्यक्ति रहता हो, जिसको प्रेतबाधा हो, उस कमरे या मकानमें अखण्ड भगवन्नाम-कीर्तन किया जाय।

गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित जल (माँजे हुए शुद्ध बर्तनमें शुद्ध कूपजल या गङ्गाजल डालकर ११ बार गायत्रीमन्त्र बोलते हुए उसमें दाहिने हाथकी तर्जनी अँगुली फिराकर) उस मकानमें या कमरेमें सर्वत्र छिड़क दें। थोड़ा-थोड़ा, प्रातः-सन्ध्या दोनों समय उस व्यक्तिको पिला दें और उसके बिछौनोंपर छिड़क दें। उसके कानमें गायत्री-मन्त्र सुनावें। गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित गङ्गाजल नहाते समय उसके मस्तकपर थोड़ा-सा डाल दें।

श्रीमद्भगवद्गीताका यह श्लोक उसको बार-बार सुनावें और कई प्लेटोंपर लिखकर दीवालपर टाँग दें—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥
(११। ३६)

इसके द्वारा (उपर्युक्त रीतिसे) अभिमन्त्रित जल भी रोगीको पिलाना चाहिये। नीचे लिखा यन्त्र मङ्गलवारके दिन भोजपत्रपर लाल चन्दनसे लिखकर और उसके नीचे उपर्युक्त गीताका श्लोक लिखकर रोगीके (पुरुष हो तो दाहिने हाथमें, स्त्री हो तो बायें हाथमें) ताँबेके तावीजमें डालकर, धूप देकर बाँध दें और प्रतिदिन गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित जल उसपर छिड़कते और उसे पिलाते रहें।

२४	३१	२	७
६	३	२८	२७
३०	२५	८	१
४	५	२६	२९

ऐसे और भी बहुत-से मन्त्र-यन्त्र भी हैं, जो प्रेतबाधा-निवारणके सफल साधन हैं। परंतु इनके जानकार बहुत कम मिलते हैं और आजकल तो अधिकांश ठगोंपर यह चलती है। कुछ वर्ष पहले हमारे एक मित्र प्रेतबाधासे पीड़ित थे। वे इन मन्त्र-तन्त्रवालोंसे बुरी तरह ठगे गये थे। अतएव मन्त्र-यन्त्रका प्रयोग वे ही लोग कर सकते हैं, जो इस विषयमें पूरा ज्ञान रखते हों तथा जो सर्वथा निःस्पृह हों। व्यवसायियों तथा विज्ञापनबाजोंसे सावधान रहना चाहिये।

आयुर्वेदमें भी प्रेतबाधाकी चिकित्सा बतलायी गयी है। उसमें ऐसे विशेष धूपों तथा अञ्जनोंका उल्लेख है, जिनसे प्रेतपीड़ा मिट जाती है। उनका उपयोग हानिकर नहीं है, परंतु उसमें भी जानकारीकी जरूरत तो है ही। ऐसे कई 'देवस्थान' भी माने जाते हैं, जहाँ जानेपर प्रेतबाधा दूर होती है, पर इनमें भी ठगी न चलती हो, ऐसी बात नहीं है। अतः कौन-सा स्थान, कितने अंशमें ठीक है, यह जानना बहुत कठिन है।

महामृत्युञ्जयके जप, श्रीहनुमानचालीसा एवं बजरंगबाणके पाठसे भी प्रेतबाधा दूर होती है।

प्रेतोपासना या प्रेतसेवा कभी न करे। प्रेतोंसे काम उठानेका कभी प्रयत्न न करे। यह सब तामसी है। इसका फल परमार्थपथसे च्युति और प्रेतत्वकी या अधोगतिकी प्राप्ति ही है।

घोर प्रेत कौन होता है?

भूत-प्रेतकी पूजा करता, करता जो तामस व्यवहार।
अंडे-मांस-शराब उड़ाता, चोरीका करता व्यापार॥
रखता मनमें वैर-द्वेष मद, करता जो हिंसा, व्यभिचार।
होता घोर प्रेत वह, पाता असहनीय यातना अपार॥

पुनर्जन्ममें योनिपरिवर्तन

(१)

लड़कासे लड़की

हीराकुँवरिका जन्म सितम्बर सन् १९१९में हुआ था। उनके पिता बाबू श्यामसुन्दरलाल, स्टेशन मास्टर हल्द्वानी आर० के० आर० सन् १९२२ ई० के अगस्तमें अपनी पत्नी और कन्या हीराकुँवरिके साथ तीर्थयात्रा करनेके लिये मथुरा गये हुए थे। उन्होंने मथुरासे गोकुल जानेके लिये एक नाव की। गोकुलमें जिस समय वे उस स्थानसे होकर गुजर रहे थे जिसे यात्री लोग प्राचीन 'नन्दमहल' कहते हैं तो यह छोटी-सी बालिका जबरदस्ती नौकरकी गोदीसे उतर पड़ी। इसी ऐतिहासिक महलके समीप एक छोटा-सा मकान था, जिसके दरवाजेपर एक बूढ़ी स्त्री बैठी हुई थी। बालिका मकानके अंदर तेजीके साथ घुसती चली गयी और उसकी माँ भी उसके साथ-साथ चल दी। वहाँपर वह लड़की बातें करने लगी, मानो वह लड़का है। उसका पहला सवाल उस तख्तीके बाबत था, जिसपर वह लिखा करती थी। उसने अपनी कलमके बारेमें भी पूछा, जिसे वह तख्तेके नीचे छोड़ गयी थी। दूसरी चीज जिसके बारेमें उसने पूछा, वह चौकी थी, जिसके ऊपर वह लिखनेके लिये बैठा करती थी। इन प्रश्नोंको सुनते ही वह बुढ़िया रोने लगी। तब उस बालिकाने बुढ़ियासे कहा कि 'हमारी माँको पान दो और सुपारी हमारे पीतलके सरौतेसे काट लो।' इसके बाद उसने अपनी माँसे कहा कि 'तुम चली जाओ, क्योंकि मैं अपने घर आ गयी हूँ, किंतु जानेके पहले पान ले लो।' हीराकुँवरिकी माँने नौकरको इशारा किया और उसने झट उस बालिकाको मकानसे खींचकर बाहर निकाल लिया।

इसके बाद सब लोग यमुनाजीकी ओर चले गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने कछुओंको चने और लाई चुगायी। कछुओंको देखकर हीराकुँवरिने कहा—'तुमने पहले मुझे डुबो दिया था और इस बार फिर वही करनेके लिये आये हो।' यह सुनते ही जो बुढ़िया साथमें आयी थी, वह फिर फूट-फूटकर रोने लगी। आगे और पूछनेपर उस बालिकाने वह स्थान भी बतलाया, जहाँपर वह नहाते समय फिसल पड़ी थी और डूबकर मर गयी थी। बुढ़ियाने बालिकाकी सारी बातोंका समर्थन किया और कहा कि 'करीब चार साल हुए मेरा एक बारह वर्षका लड़का इसी स्थानपर डूब गया था।'

(२-३)

दो अद्भुत घटना

(लेखक—[illegible])

१.

मैं पिछले जन्ममें स्कूलमास्टर था, फिर गौ बनी और अब एक लड़की हूँ।

दिल्लीके दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' में ८ जनवरी, १९६६ में यह 'पुनर्जन्मसम्बन्धी' घटना इस प्रकार छपी थी—

'[illegible]। [illegible] वर्षीया पुत्री [illegible] अपने पहले जन्मके [illegible] समाजमें [illegible] पैदा कर दी है। [illegible] कथा सुननेके लिये [illegible]। [illegible] कथा सुनकर [illegible] पूछा—'माँ! क्या गुजर गयी हो?' [illegible] उत्तर दिया—'मुझे कुछ याद नहीं।' लड़कीने कहा—'[illegible] याद नहीं, किंतु मुझे तो अपने [illegible] कथा याद है।'

[illegible] इस प्रकार [illegible] है। [illegible]

वरित एक अँगूठी उठा ली। यह अँगूठी उसकी दादीको विशेषरूपसे पसंद थी।

२.

श्री ऊ नू ने एक दूसरा उदाहरण एक नर्तकी बल्ब्यान (Balbyan) का भी दिया। उसने कभी बताया था कि पिछले जन्ममें वह औंगबाला (Aungbala) नामका एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ नर्तक था।

उसे औंगबालाके व्यक्तिगत जीवनकी भी जानकारी थी। औंगबाला उसके जन्मसे बहुत पहले मर चुका था। वह यह भी कहती थी कि उसके शरीरका चिह्न औंगबाला-का आपरेशन होनेके कारण ही बन गया है। जब औंगबालाकी शल्यक्रिया हो रही थी, तभी वह मर गया था।

पुराना निशान

भूतपूर्व प्रधानमन्त्रीने एक डा यीन (Daw Yin) नामकी वृद्धाका भी उदाहरण दिया। डा यीनने अपनी बड़ी बहनकी मृत्युके बाद उसके पतिसे विवाह कर लिया था। उसकी बहनकी मृत्यु एक *सिस्टीके असफल* आपरेशनके कारण हो गयी थी।

बादमें डा यीनने एक पुत्रीको जन्म दिया। उस पुत्रीके गलेमें आपरेशनका निशान था। जब यह पुत्री बड़ी हुई तो वह अपनी मृत मौसीके जीवनकी घटनाओंका सही विवरण बताने लगी। उसे यह भी याद था कि डा यीन अपनी मृत बहनके बच्चोंको दण्ड दिया करती थी।

वह उन बच्चोंसे (जो इस जन्ममें उसकी मौसीकी संतान थे) वैसा ही व्यवहार करने लगी, जैसे माँ अपने बच्चोंके साथ करती है।

आलोचना

पुनर्जन्मकी घटनाओंपर शोधकार्य करनेवाले परामनो-वैज्ञानिकको नीम हकीम कहकर पुकारा गया है और उनके शोधकार्योंको अन्धविश्वास कहा गया है। इन घटनाओंके प्रकाशित होनेके कारण आलोचना कम होने लगी है और लोगोंकी रुचि इस ओर हुई है। पुनर्जन्मकी अनेकानेक घटनाएँ प्रकाशमें आ रही हैं। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक अब यह मानने लगे हैं कि पुनर्जन्म वैज्ञानिक खोजका एक उपयुक्त विषय है। इस प्रकारकी घटनाओंमेंसे एक हम नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं—

(६)

लङ्काकी घटना

ग्नानातिल्लेका बैडेविथाना (Gnanatilleka Baddewithana) का जन्म मध्य लङ्कामें हेदुनवेवा (Hedunawewa) के निकट १४ फरवरी, सन् १९५६ को हुआ था। जब वह एक वर्षकी बच्ची थी, तभीसे वह दूसरे माता-पिताके बारेमें बताने लगी थी। दो वर्षकी आयुमें उसने अपने गत जीवनके बारेमें स्पष्ट संकेत किया। उसने कहा कि उसके माता-पिता, दो भाई और बहुत-सी बहनें किसी दूसरे स्थानपर हैं। पहले तो उसने अपने पूर्वजन्मके निवासका स्थान ठीक-ठीक नहीं बताया, लेकिन जब कुछ गाँववाले तालावाकेले (Talawakele) नामक स्थानसे होते हुए उसके घर आये, तब उसने कहा कि उसके माँ-बाप तालावाकेलेमें रहते हैं। उसने कहा कि वह अपने पिछले जन्मके माँ-बापको देखना चाहती है। उसने पूर्वजन्मके अपने घरके बारेमें कुछ विस्मयकारक जानकारी दी और परिवारके लोगोंके नाम भी बताये। इस बातकी खबर कैण्डी नामक स्थानके पियादस्सी थेरा (Piyadassi Thera) और श्री एच॰ एस॰ निस्सांका (Mr. H. S. Nissanka) के पास पहुँची। उन दोनोंने इस बच्चीके द्वारा बतायी हुई बातोंके आधारपर एक परिवारको ढूँढ़ निकाला। खोज करनेपर पता चला कि बच्चीके द्वारा बतायी गयी बातें बिल्कुल सच हैं। ९ नवम्बर, सन् १९५४ को इस परिवारमें तिल्लेकेरत्ने (Tillekeratne) नामके एक लड़केकी मृत्यु १२ वर्षकी अवस्थामें ९ नवम्बर, सन् १९५४ को हो गयी थी।

अभी ही (सन् १९६० में) ग्नानातिल्लेकाके परिवारवाले उसे तालावाकेले ले गये। ग्नानातिल्लेकाने वहाँके बहुत-से व्यक्तियोंको ठीकसे पहचान लिया। लेकिन जिस जगह उसने अपने 'पुराने' मकानके बारेमें बताया था, वहाँ पहुँचनेपर पता चला कि मकान गिर चुका था और उसका 'पुराना' परिवार तिल्लेकेरत्ने (जिसे वह अपने पूर्वजन्मका रूप बताती थी) की मृत्युके थोड़े ही दिन बाद दूसरी जगह चला गया था। इस प्रकार ग्नानातिल्लेका पहली बार तालावाकेले गयी तो उसके 'घरके' और 'पुराने' परिवार एक दूसरेसे नहीं मिल सके।

तिलकेरत्ने औराद कालेजमें पढ़ता था, जो कि ताम्बावालेसे १२ मील दूर स्थित हटनमें है। इस कालेजके तीन अध्यापक जब ग्नानातिल्लेकासे मिले तो उसने ठीक तरहसे पहचान लिया और इस कालेजकी कुछ घटनाएँ भी सुनायीं। सन् १९६१में ग्नानातिल्लेकाको दुबारा तालावाकेले लाया गया। सिंहलकी सेरा, भीनिरंगांका, श्री डी० सी० गुणतिलकाकी उपस्थितिमें तिलकेरत्नेके पहलेके सम्बन्धियों और परिचितोंको बुलाया गया। ग्नानातिल्लेकाने हर व्यक्तिके कानमें पूछा गया—'क्या तुम इसे जानती हो?' ग्नानातिल्लेकाने तिलकेरत्नेके परिवारके सात लोगोंको ठीकसे पहचान लिया। इसके अलावा उसने दूसरे दो लोगोंको भी पहचाना।

दूरदर्शन, दूरानुभूति, भविष्यकथन

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

दूरदर्शन (Clairvoyance)

पुनर्जन्मकी घटनाओंकी एक व्याख्या 'दूरदर्शनकी शक्ति' कहकर भी की जाती है। इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके माध्यमका उपयोग किये बिना देख लेना, अथवा इन्द्रियोंकी पहुँचकी सीमासे अतीत वस्तुओंको अनुभव कर लेना 'दूरदर्शन' कहलाता है।

घटनाओंकी दूरवीक्षण-प्रणाली (Television) से दूरदर्शन (Clairvoyance) की तुलना की जा सकती है। इसमें अनुभव करनेवाला व्यक्ति टेलीविजनके परदेके समान ही दूरकी वस्तुओं तथा घटनाओंकी प्रतिच्छायाको पकड़ लेता है। दूरदर्शन एक स्वप्नके रूपमें भी हो सकता है और जाग्रत् अवस्थामें दृश्य देखनेके रूपमें भी इसकी परिणति हो सकती है।

दूरदर्शन—पूर्वचेतावनी

(१)

(प्रेसीडेंट लिंकन)

प्रेसीडेंट लिंकनने अपनी हत्याके थोड़े ही पहले एक स्पष्ट स्वप्न देखा था, जिसमें उन्होंने अपनी मृत्युको पहलेसे देख लिया था। जिन परिस्थितियोंमें लिंकनने यह स्वप्न बतलाया और जिस ढंगसे यह लिपिबद्ध कर लिया गया, वे इस घटनाको एक असाधारण महत्त्व प्रदान करते हैं।

अब्राहम लिंकनने दिखाये हुए अपने इस असामान्य अनुभवकी बात जिस समय कही थी, उस समय व्हाइट हाउसमें चार-पाँच लोग उपस्थित थे। श्रोताओं में से एक उनकी पत्नी अपने कुछ मित्र मिसेज मार्श ली (Lee) के धार्मिकमतोंके सम्बन्धमें उल्लेख करती रहते थे। प्रेसीडेंटकी पुत्री कुछ अस्वाभाविक गम्भीर होती थी और ये म्लान दिखायी देते थे। उनकी पत्नीके पूछने पर उन्होंने अपने स्वप्नकी बात कह दी। अमेरिकाके कोलम्बिया जिलेके मार्शल वार्ड हिल लेमन (Ward Hill Lamon) ने लिंकनके ही शब्दोंको इस प्रकार लिपिबद्ध किया है। वह सज्जन उक्त सभामें उपस्थित थे और उन्होंने घटनाके विवरणको उसी रात्रिको लिपिबद्ध कर लिया था।

'लगभग दस दिन पहलेकी बात है कि मैं बहुत देरसे सोया। मैं किसी आवश्यक पत्र भेजनेकी प्रतीक्षा कर रहा था''''' जल्दी ही मैं स्वप्न देखने लगा। मेरे चारों ओर मृत्यु-सा सन्नाटा प्रतीत होता था। तभी मैंने सुबक-सुबककर रोनेकी आवाज सुनी। ऐसा लगता था, मैंने बहुत-से लोग रो रहे हों। मैं सोचने लगा और अपना बिस्तर छोड़कर सीढ़ियोंसे उतरकर नीचे घूमने लगा। दुःखद सिसकियोंने वातावरणके सन्नाटेको भंग कर दिया था परंतु शोक मनानेवाले दिखायी नहीं दे रहे थे। मैं एक कमरेसे दूसरे—प्रत्येक कमरेमें गया; परंतु कोई भी जीवित व्यक्ति दिखायी नहीं दिया; परंतु उन कमरोंसे गुजरते समय वह शोकपूर्ण दुःखद ध्वनि सतत आती रही। सभी कमरोंमें प्रकाश था। प्रत्येक वस्तु मेरी देखी हुई थी; परंतु वे सब लोग हैं कहाँ, जो इतने दुःखी हैं, मानो उनके हृदय विदीर्ण हो रहे हैं।

मैं विस्मित और सशंक था। इस सबका क्या अभिप्राय है? इसकी रहस्यपूर्ण तथा दुःखद स्थितिका कारण जाननेका निश्चय करके मैं लगातार घूमता रहा, जबतक मैं पूर्वी कक्षतक नहीं पहुँच गया। मैं उसमें प्रविष्ट हो गया। वहाँ मैंने दुःखजनक आश्चर्य देखा कि एक ढँका

दस्तानेके वस्त्रोंमें लिपटा हुआ एक शव रक्खा है। इसके चारोंओर सुरक्षाके लिये सैनिक नियुक्त थे। अपार भीड़ थी। उसका चेहरा ढक दिया गया था, जिसमें कुछ तो शोक-युक्त मुद्रामें शवको निहार रहे थे और अन्य लोग बुरी तरह रो रहे थे।'

'मैंने एक सैनिकसे पूछा—'व्हाइट हाउसमें किसकी मृत्यु हो गयी है?' उसने उत्तर दिया—'प्रेसीडेंटकी। उनकी एक हत्यारेने हत्या कर दी।'

इस प्रकार ऊपर पुनर्जन्मके स्पष्टीकरणके लिये अन्यान्य विकल्प प्रस्तुत किये गये हैं।

(२)

एक युवक

इसका अर्थ है कि इन्द्रियोंकी सीमासे परे स्थित घटनाओंको जाननेकी शक्ति। यहाँ दूरदर्शनका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

'एक युवक अपने घरसे पाँच मील दूर साप्ताहिक छुट्टियाँ बिता रहा था। अचानक उसने स्वप्न देखा कि उसके घरमें आग लग गयी है। वह अर्धनिद्रित अवस्थामें गड़बड़ाते हुए उठा और अपने घरकी तरफ भागा। उसकी माँने इस स्वप्नको अर्थहीन समझकर उसे रोकनेकी चेष्टा की। परंतु युवक सीधा गाड़ीमें तेजीसे अपने घरकी ओर चल पड़ा और वहाँ जाकर स्वप्नकी घटनाको सत्य पाया। तबतक गैरेज (मोटरखाना) पूरी तरहसे जल चुका था और विनाशकारी लपटें शीघ्रतासे घरकी ओर बढ़ रही थीं। पड़ोसियोंकी सहायतासे बहुत कठिनाईसे किसी तरह घरको बचाया जा सका।'

उपर्युक्त घटना दूरदर्शनकी विशिष्टताओंका दिग्दर्शन कराती है, जो टेलिविजन (Television) के समान ही कोई वस्तु है। परामनोविज्ञान ऐसी बातोंका भी अध्ययन करता है।

(३)

कुमारी गीना बोशाँ

इसके आरम्भमें एक [illegible] बात है कि [illegible] एक २१ वर्षीय लड़की गीना बोशाँ (Miss Gina Beauchamp) तथा उसकी माँ छुट्टी [illegible] साथ लंदनके [illegible] होटलमें [illegible] कर रही थीं। वे वहाँ केन्ट (Kent) स्थित [illegible] हवाई अड्डेपर जानेके लिये अपनी घोड़ागाड़ीकी प्रतीक्षामें थीं, जहाँसे अपनी छुट्टी बितानेके लिये कोस्टा ब्रावाको हवाईजहाजद्वारा जानेका उनका विचार था।

अचानक गीना (Gina) ने अपनी माँकी ओर मुड़ते हुए कहा—'मैं नहीं जा सकती। कोई घटना होनेवाली है।'

उसकी माँके समझानेपर भी वह अपने निर्णयपर डटी रही। उसकी निराश माताने अकेली ही यात्रा जारी रक्खी और गीना घर लौट आयी।

कुछ घंटे बाद वह हवाई जहाज फ्रांसके दक्षिणमें परपीयों (Perpignon) स्थानपर दुर्घटनाग्रस्त हो गया और गीनाकी माँ अन्य ८२ सहयात्रियोंके साथ मारी गयी।

क्या यह केवल आकस्मिक संयोग था? या केवल यों ही उसकी लड़कीने हवाई जहाजसे न जानेका निर्णय कर लिया अथवा उसने भावी संकटको देख लिया था? निश्चितरूपसे इस लड़की बोशाँ (Miss Beauchamp) की घटनाको अन्य इसी प्रकारकी हजारों घटनाओंसे तुलना करनेपर यह सामान्य इन्द्रियोंकी सीमा क्षेत्रसे बाहर और ऊपरकी बात प्रतीत होती है। इसका विवेचन इसके अतिरिक्त अन्य ढंगसे नहीं किया जा सकता कि यह काल और देशके सीमाक्षेत्रसे अतीत मानसिक क्रियाकलापोंका एक निश्चित उदाहरण है।

(४)

एक सिपाही

इसे एक उदाहरणसे स्पष्ट करें—

'द्वितीय विश्वयुद्धके प्रारम्भिक कालमें एक सिपाहीको उसके घरसे लगभग ५० मील दूर एक [illegible] भर्ती कराया गया। वह सिपाही अपनी पत्नीसे प्रतिदिन [illegible] करता था। एक दिन उसकी पत्नीसे उसका कोई [illegible] नहीं [illegible]; परंतु [illegible] लगभग ८ बजे [illegible] एक [illegible] पढ़ते समय उसके हृदयमें अपने पतिसे टेलीफोनपर वार्तालाप करनेकी प्रबल ही [illegible] उत्पन्न हुई। उसकी यह इच्छा इतनी [illegible] कि उसने टेलीफोनके पास जाकर उनके [illegible] मिला। [illegible] हो [illegible] कि [illegible] अन्य [illegible] है। [illegible] उसने इस [illegible] दिन [illegible] दिन [illegible] हो [illegible] हुए। [illegible] ८ [illegible]

अनेक जन्मोंकी स्मृति

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

[illegible]के विभिन्न भागोंसे ऐसी घटनाओंकी सूचनाएँ मिली हैं, जिनमें पुनर्जन्म लेनेवाला व्यक्ति एकसे अधिक जन्मोंकी स्मृति रखनेका दावा करता है । आइये, अब एक अत्यन्त [illegible] तथा थोड़े ही काल पूर्वकी घटनाका परीक्षण करें । घटनाका विवरण इस प्रकार है—

१३ वर्षीया बालिका जोयद्वारा ९ पूर्वजन्मोंका दावा

१३ वर्षकी जोय वर्वे (Joey Verwey)को विश्वास है कि उसके दस जन्म हो चुके हैं । वह कहती है कि एक पूर्वजन्ममें उसका अन्त तब हुआ, जब उसका सिर उतार दिया गया ।

जोयने विस्तारपूर्वक अपने पूर्व-जन्मोंका विवरण देते हुए बताया कि उसके पूर्व जीवनोंका सम्बन्ध उन [illegible] वर्षोंके काल-खण्डसे है, जो पत्थरके युगसे [illegible] बाइबलके मिश्र, प्राचीन रोम, १५ वीं शताब्दीके [illegible], १७ वीं शतीके दक्षिण अफ्रीकाके जंगलोंमें रहनेवाली [illegible] तक १९ वीं शताब्दीमें समाप्त होता है ।

दक्षिण अफ्रीकाके प्रिटोरिया नगरकी इस छात्राने अपने [illegible] जीवनोंके सम्बन्धमें तभीसे बतलाना प्रारम्भ कर दिया था, [illegible] उसने बोलना सीखा ही था और वह [illegible] प्रयोग [illegible] लगी थी । कुछ ही समय पूर्व तक उसकी [illegible] [illegible] कही गयी कथाओं तथा विचित्र [illegible] [illegible] कल्पनाएँ समझा जाता था और इस कारण [illegible] करनेके लिये वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल प्रारम्भ नहीं [illegible] कि इस वर्षोंमें उसका पुनर्जन्म हुआ है, अथवा नहीं; [illegible] अब इसपर विचार किया जाने लगा है ।

[illegible] कथन है—

(१) एक डीनासर (Dinosaur—प्राचीन [illegible]) ने उसका पीछा किया था ।

(२) वह एक दासी थी और उसका सिर काट दिया [illegible] था ।

(३) वह रोममें एक स्थानपर रहती थी और रेशमी धागेसे कम्बल बुना करती थी ।

(४) ईश्वरके पुत्रके आगमनकी बात करनेवाले एक धर्म-उपदेशकको उसने पत्थर दे मारा ।

(५) वह भित्तियों तथा छतोंपर बनाये गये बड़े-बड़े चित्रोंवाले देशमें बड़ी हुई थी (उसका संकेत उस समयके इटली देशकी ओर है, जब वहाँ कला और [illegible] पुनर्जागरण हो रहा था) ।

(६) वह उन ठिगने पीले रंगके लोगोंमेंसे थी जो बचपनमें रेतमें दबे हुए अण्डोंको खोद डालते थे (यह [illegible] होपके अन्तरीपमें १७वीं शतीके जंगलियोंकी एक आदत थी) ।

(७) वह सन् १८८३ से सन् १९०० में ट्रांसवाल गणतन्त्रके तत्कालीन प्रेसीडेंट (President) स्टेफनस जोहन्स पलस (ऊमपॉल) (Stephanus Johannes Paulus or Oom Paul) [illegible] [illegible] करती थी ।

जोयके पूर्वजन्मोंके विस्तृत विवरणकी वैज्ञानिकोंद्वारा प्रामाणिकता

प्राध्यापक आर्थर ब्लेक्सले (Professor Arthur Bleksley) ने जोयसे भेंट करके [illegible] की है । यह प्राध्यापक दक्षिणी अफ्रीकाके [illegible] नगरमें [illegible] (Wittater Strand) [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] प्रवेश कर रहे हैं ।

[illegible]

हुई। पूरी खुदाईके शब्द साफ हो गये 'कुरिगालजूने बेलपुत्र भगवान् निलिबके लिये अर्पण किया।'

"डाक्टर हिलप्रेचटने इस्तम्बोलकी, जो उस समय टर्की राज्यकी राजधानी थी और वहाँके राजकीय संग्रहालयमें निप्पुरकी खुदाईमें निकली वस्तुएँ सुरक्षित थीं, यात्रा की और वहाँ संग्रहालयमें तीसरे खण्डको जोड़ा तो स्वप्नकी सारी बातोंकी सत्यता प्रत्यक्ष हो गयी।"

(४)

मिस्रदेशकी प्राचीन भाषाका शुद्ध उच्चारण

महाभारतके समयके बने हुए मिस्रदेशके प्रसिद्ध पिरामिड नामी स्तम्भ यह प्रमाणित करते हैं कि मिस्रदेश भी बहुत प्राचीनकालसे सभ्यताका केन्द्र रहा है। पुरातत्त्ववेत्ताओंने वहाँकी सहस्रों वर्ष पुराने राजाओंके समाधिस्थानों अथवा कब्रोंको खोदकर विविध भाँतिकी बहुमूल्य स्वर्णनिर्मित वस्तुएँ निकाली हैं, जिनमें विशेष भाँतिके चर्मपर लिखित ग्रन्थ भी थे, जिनको 'स्क्रोल' (Scroll) कहते हैं। ये ग्रन्थ एक विचित्र प्रकारकी लिपिमें लिखित थे, जिनको 'हाइरोग्लिफिक' कहते हैं, जिसको हमारे देशकी 'सिन्धुसभ्यता'की मोहरोंकी भाँति कोई पढ़ नहीं सकता था। किंतु विशेषज्ञोंके अथक प्रयत्नसे इस विचित्र लिपिकी कुंजी मिल गयी, जिससे इन ग्रन्थोंका तात्पर्य समझा जाने लगा। जिस भाषामें ये ग्रन्थ लिखे गये हैं, उसके बोलनेवालोंका हजारों वर्ष पूर्व लोप हो चुका था।

सन् १९३१ में ब्लॉडीवर्ड होमको एक 'रोज मेरी' नामक युवतीका पता लगा, जिसमें एक मृतात्माका आवेश होता था, जो अपना नाम 'लोना' बताता था। इस आत्मासे पूछताछ करनेपर ज्ञात हुआ कि ईसासे १३८० वर्ष पूर्व वह 'अमेनहोटप तृतीय'की रानी थी। प्राचीन शब्दोंका उच्चारण तो कुछ-कुछ पहले भी ज्ञात हो चुका था, सर्वांगीण उच्चारण 'लोना'से ही डॉक्टर होमने सीखा। लोना वह भाषा बोलती थी, जो ३३०० वर्ष पूर्व मिस्रमें प्रचलित थी। प्राचीन मिस्रसम्बन्धी विद्वानों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओंको लोनासे इससे और भी कई रहस्योंका उद्घाटन हुआ और जेनोग्लोसी (Xenoglossy) नामक पुरातत्त्वविज्ञानकी शाखाका प्रादुर्भाव हुआ। प्राचीन मिस्री बोलीके दो सौ उदाहरण लोनाने दिये, जिनका परिच्छेद तथा अनुवाद विशेषज्ञोंने किया। रोज मेरी एक साधारण अंग्रेज बाला थी, जिसको मिस्रका कोई ज्ञान नहीं था। लोनाका कहना था कि 'मैं अपने पार्थिव जीवनमें रोज मेरीसे परिचित थी।'

(५)

स्वयं कनफ्यूसियसद्वारा कूट कविताका उच्चारण

ढाई सहस्र वर्ष पूर्व चीन देशमें कनफ्यूसियस नामके एक जगद्विख्यात तत्त्ववेत्ता, विज्ञ, विद्वान् तथा धर्मशासक महात्मा हो गये हैं। उन्होंने अपने समयमें एक अति प्राचीन ग्रन्थका सम्पादन भी किया था, जिसका नाम 'शीतिकिं' था। इस प्राचीन ग्रन्थकी टीका पीछेसे कई चीनी विद्वानोंने की थी, किंतु पश्चिमी चीनी भाषाके विशेषज्ञोंका मत है कि कई कविताओंका वास्तविक अभिप्राय वे नहीं समझ सके। अमेरिकाके पूर्वदेशीय भाषाओंके प्रसिद्ध विशेषज्ञ डाक्टर वाइमाण्ट महोदय थे। उनका भी यही मत था। जार्ज वालिन्टिन न्यूयार्कमें एक मीडियम (माध्यम) था, जिसके शरीरद्वारा परलोकगामी आत्मा वार्तालाप करते थे। यह व्यक्ति स्वयं एक अशिक्षित, सरल तथा मन्दबुद्धि था।

डाक्टर वाइमान्टने एक दिन इस मीडियमसे पुराने चीनदेशकी पुरानी [illegible] सुना और अस्पष्ट सा 'कुं फू त्से' (कनफ्यूसियस) नाम सुना। यह कुछ और भी बोल रहा था जो डाक्टर महोदय समझ नहीं पा रहे थे। मीडियमके कई बार दुहरानेपर डाक्टरको ज्ञात हुआ कि कनफ्यूसियस महाराज अपने समयकी सुन्दर चीनी भाषा बोल रहे हैं, जिसकी [illegible] हो गया था। इस बातकी परीक्षा करनेके लिये कि क्या वास्तवमें यह श्रीकनफ्यूसियस महाराज ही हैं, जो मीडियमके मुखसे बोल रहे हैं, डाक्टर महोदयने 'शीतिकिं' की एक [illegible] करनेके लिये प्रार्थना की। उन्होंने स्वयं तीसरे छन्दका एक पद ही सुनाया था, जो उन्होंने पढ़ दिया।

[illegible] कविता [illegible] हुआ हो। इसका [illegible] लिखा [illegible] तथा [illegible] कर दिया। अब इस कविताको,

हुई। पूर्वकी खुदाईके शब्द स्पष्ट हो गये 'कुरिगालजूने बेलपुत्र भगवान् निलिलके लिये अर्पण किया।'

"डाक्टर हिलप्रेचटने इस्तम्बोलकी, जो उस समय टर्की राज्यकी राजधानी थी और वहाँके राजकीय संग्रहालयमें निप्पुरकी खुदाईमें निकली वस्तुएँ सुरक्षित थीं, यात्रा की और वहाँ संग्रहालयमें तीसरे खण्डको जोड़ा तो स्वप्नकी सारी बातोंकी सत्यता प्रत्यक्ष हो गयी।"

(४)

मिस्रदेशकी प्राचीन भाषाका शुद्ध उच्चारण

महाभारतके समयके बने हुए मिस्रदेशके प्रसिद्ध पिरामिड नामी स्तम्भ यह प्रमाणित करते हैं कि मिस्रदेश भी बहुत प्राचीनकालसे सभ्यताका केन्द्र रहा है। पुरातत्त्ववेत्ताओंने वहाँकी सहस्रों वर्ष पुराने राजाओंके समाधिस्थानों अथवा कब्रोंको खोदकर विविध भाँतिकी बहुमूल्य स्वर्णनिर्मित वस्तुएँ निकाली हैं, जिनमें विशेष भाँतिके चर्मपर लिखित ग्रन्थ भी थे, जिनको 'स्क्रोल' (Scroll) कहते हैं। ये ग्रन्थ एक विचित्र प्रकारकी लिपिमें लिखित थे, जिसको 'हाइरोग्लिफिक' कहते हैं, जिसको हमारे देशकी 'सिन्धुसभ्यता'की मोहरोंकी भाँति कोई पढ़ नहीं सकता था। किंतु विशेषज्ञोंके अनथक प्रयत्नसे इस विचित्र लिपिकी कुंजी मिल गयी, जिससे इन ग्रन्थोंका तात्पर्य समझा जाने लगा। जिस भाषामें ये ग्रन्थ लिखे गये हैं, उसके बोलनेवालोंका सहस्रों वर्ष पूर्व लोप हो चुका था।

सन् १९३१ में श्रीहोवर्ड ह्यूमको एक 'रोज मेरी' नामक युवतीका पता लगा, जिसमें एक मृतात्माका आवेश होता था, जो अपना नाम 'नोना' बताता था। इस आत्मासे पूछताछ करनेपर ज्ञात हुआ कि ईसासे १३८० वर्ष पूर्व यह 'फाराओह आमेनहोतप तृतीय'की रानी थी। व्यञ्जनोंका उच्चारण तो कुछ-कुछ पहले भी ज्ञात हो चुका था, स्वरोंका उच्चारण 'नोना'से ही होवर्ड ह्यूमने सीखा। नोना यह भाषा बोलती थी, जो ३३०० वर्ष पूर्व मिस्रमें प्रचलित थी। प्राचीन मिस्रसम्बन्धी विद्वानों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओंसे नोनाकी कृपासे और भी कई रहस्योंका उद्घाटन हुआ और जैनोग्लोसी (Xenoglossy) [illegible] की धारणा सुस्पष्ट हुआ। प्राचीन मिस्री बोलीके दो सौ उदाहरण नोनाने दिये, जिनका परिच्छेद तथा अनुवाद विशेषज्ञोंने किया। रोज मेरी एक साधारण अंग्रेज बाला थी, जिसको मिस्रका कोई ज्ञान नहीं था। नोनाका कहना था कि मैं अपने पार्थिव जीवनमें रोज मेरीसे परिचित थी।'

(५)

स्वयं कनफ्यूसियसद्वारा कूट कविताका उच्चारण

ढाई सहस्र वर्ष पूर्व चीन देशमें कनफ्यूसियस नामके एक जगद्विख्यात तत्त्ववेत्ता, विज्ञ, विद्वान् तथा धर्मप्रचारक महात्मा हो गये हैं। उन्होंने अपने समयमें एक अति प्राचीन ग्रन्थका सम्पादन भी किया था, जिसका नाम 'शीकिंग' था। इस प्राचीन ग्रन्थकी टीका पीछेके कई चीनी विद्वानोंने की थी, किंतु पश्चिमी चीनी भाषाके विशेषज्ञों-का मत है कि कई कविताओंका वास्तविक अभिप्राय वे नहीं समझ सके। अमेरिकाके पूर्वदेशोंकी भाषाओंके प्रसिद्ध विशेषज्ञ डाक्टर वाइमाण्ड महोदय थे। उनका भी यही मत था। जार्ज वालिंग्टन न्यूयार्कमें एक मीडियम (माध्यम) था, जिसके शरीरद्वारा परलोकवासी आत्मा वार्तालाप करते थे। यह व्यक्ति स्वयं एक अशिक्षित, सरल तथा मन्दबुद्धि था।

डाक्टर वाइमाण्टने एक दिन इस मीडियमके मुखसे चीनदेशकी मुरलीका शब्द सुना और अस्पष्ट सा 'कुँ फू त्सेः' (कनफ्यूसियस) नाम सुना। वह कुछ और भी बोल रहा था जो डाक्टर महोदय समझ नहीं पा रहे थे। मीडियम-के कई बार दुहरानेपर डाक्टरको ज्ञात हुआ कि कनफ्यूसि-यस महाराज अपने समयकी सुन्दर चीनी भाषा बोल रहे हैं, जिसको [illegible] हुए बहुत समय हो गया था। इस बातकी परीक्षा करनेके लिये कि क्या वास्तवमें यह श्रीकनफ्यूसियस महाराज ही हैं, जो मीडियमके मुखसे बोल रहे हैं, डाक्टर महोदयने 'शीकिंग'की एक लंबी कविताकी व्याख्या करनेके लिये प्रार्थना की। उनको स्वयं तीसरे छन्दका एक पद ही स्मरण था, जो उन्होंने पढ़ दिया।

मीडियमद्वारा बोलनेवाले [illegible] यह [illegible] प्रकाश हुआ है। [illegible] था, जिसको [illegible] डाक्टर महोदयने [illegible] तथा सर्वथा [illegible] पर किया। अब इस कविताके

जिसको समझनेके लिये इतना प्रबल किया गया था, एक सरल कविताका रूप धारण कर लिया। इस कार्यमें सहयोग देनेके लिये कनफ्यूसियस महाराजको बारह बार आना पड़ा था।

(६)

पुनर्जन्ममें धार्मिक मान्यताओंका स्थान

[डेविड मॉरिश]

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

पुनर्जन्म होनेकी घटनाओंमें अपनी आस्था या धार्मिक मान्यताओंका भी कुछ भाग होनेकी सम्भावना है, इसलिये भी अधिकतर घटनाएँ उन स्थानोंसे उपलब्ध होती हैं, जहाँके लोग पुनर्जन्मपर आस्था रखते हैं। अनुकूल सामाजिक वातावरण पूर्वजन्मका स्मरण दिलानेके लिये एक उपयोगी मानसिक दृष्टिकोण प्रदान करता है और प्रतिकूल परिस्थिति उस स्मरणका निवारण करती है। जिस प्रकार कलाकारको अपनी कलाके प्रदर्शनके लिये विशेष परिपार्श्वकी आवश्यकता है, उसी प्रकार यह प्रतीत होता है कि स्मृति उपलब्ध कर सकनेकी योग्यताके सम्पादनके लिये भी अनुकूल सामाजिक परिपार्श्वकी आवश्यकता है। परंतु इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि उन स्थानोंसे पुनर्जन्मकी घटनाओंके समाचार प्रकाशमें नहीं आये हैं, जहाँ पुनर्जन्मकी आस्थाकी निन्दा की जाती है। अब हम आपके समक्ष जेरूसलमकी घटनाका उदाहरण रखते हैं, जहाँ पुनर्जन्म-सिद्धान्त मान्य नहीं है।

अनेक जन्मोंकी स्मृति

पवित्र भूमि (Holy Land) की एक घटना

जेरूसलममें दाँतोंके डाक्टर सामे मॉरिस (Samme Morris) का ६ वर्षीय पुत्र डेविड मॉरिस (David Morris) अपने गत जीवनकी स्मृतिका दावा करता है। उसके कथनके अनुसार वह यहूदी शाह डेविड (King David) था, जिसे मरे हुए तीन हजार वर्ष हो चुके हैं। शाह डेविडने जेरूसलममें एक यहूदी देवालय बनवाया था, जिसकी अब केवल पश्चिमी दीवार शेष है और जिसे अब 'क्रन्दन करती हुई दीवाल' (Wailing wall) कहा जाता है।

उस लड़केकी कहानी यों प्रारम्भ हुई—एक दिन डाक्टर मॉरिस अपने जेरूसलमके अस्पतालमें कार्य कर रहे थे कि उनकी पत्नी एडना (Edna) वहाँ पहुँची और उनसे शिशु-मनोविज्ञानके विशेषज्ञसे भेंटका समय निश्चित करनेकी बात कही।

कारण बताते हुए उसने कहा कि 'मैं डेविडके विषयमें चिन्तित हूँ; क्योंकि वह आजकल स्वाभाविक ढंगसे बातचीत नहीं कर रहा है। उसे एक प्रकारकी समाधि-सी लग जाती है और वह मुँहसे लार गिराने लगता है तथा कुछ जल्दी-जल्दी बड़बड़ाता है। वह अन्य बच्चोंसे तथा घर लौटनेपर आपसे तो स्वाभाविक बातचीत करता है, पर मेरी धारणा है कि वह जान-बूझकर मुझे तंग करनेके लिये ऐसा करता है और यदि मैं उसे दण्ड देती हूँ तो उसके लार टपकने लगती है तथा बड़बड़ानेकी क्रिया बढ़कर स्थिति और भी अधिक खराब हो जाती है। उसे किसी विशेषज्ञके पास ले चलना चाहिये, अन्यथा बच्चा मानसिक दृष्टिसे विकृत हो जायगा।'

डाक्टर मॉरिसने अपने सचिवको उस दिनके सारे अन्य कार्य स्थगित करनेकी बात कही और अपनी पत्नीके साथ उसने घरकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ उसने देखा कि डेविड उनके निवास-कक्षमें प्लास्टिक तथा लकड़ीके टुकड़ों आदिको मिलाकर एक दुर्ग बना रहा है। श्रीमती मॉरिसने क्रोधमें उसे झिड़कते हुए कहा कि 'मैंने इसे कितनी ही बार केवल अपने ही कमरेमें खेलनेके लिये कहा है। यह कमरेमें बिछे इस समूचे नये गलीचेका सत्यानाश कर डालेगा।'

परंतु उसके पतिका ध्यान अपने बच्चेद्वारा निर्मित उस ढाँचेकी ओर था, जो आश्चर्यजनक ढंगसे उसे परिचित-सा लग रहा था। उसने अपनी स्मरणशक्तिपर बल दिया और सहसा एक चौड़े घनके प्रहारके समान उसके मस्तिष्कमें कौंध गया कि यह तो ठीक असली पवित्र देवालय (Original Holy Temple) का नमूना (Model) है। उसने कुछ सप्ताह पूर्व राष्ट्रीय संग्रहालयका भ्रमण करते समय पुरातत्त्ववेत्ताओंद्वारा खींचा गया एक रेखाचित्र देखा था, पर इस छोटे बच्चे डेविडने तो उसे नहीं देखा, इसलिये वह इसे कैसे ज्ञात हुआ!

डाक्टर झुककर अपने मौन बच्चेके पास बैठ गया और धीमी आवाजमें पूछा—'डेविड, बेटा! क्या बना रहे हो! यह कोई दुर्ग है या रेलवे स्टेशन ?' बच्चेने एकाग्रतासे चढ़ी हुई आँखोंके साथ उसकी ओर देखा। उसके अधरोंसे शब्दोंका एक निर्झर-सा फूट पड़ा, जो केवल बड़बड़के समान सुनायी देता था। उसमेंसे केवल एक शब्द 'आ' को डाक्टर मॉरिस समझ सके, जिसका यहूदी भाषामें अर्थ है—'देवालय'। बच्चा उसके द्वारा निर्मित भवनकी एक दीवारकी ओर बराबर अङ्गुलिनिर्देश करता रहा।

डाक्टर मॉरिसने शीघ्रतासे कहा—'जल्दी करो, टेप रेकार्डर लाओ।' उसकी पत्नी शीघ्रतासे इसे लानेके लिये दौड़ी, साथ ही यह भी सोचती जाती थी कि बच्चेके अस्वाभाविक व्यवहारका रेकार्ड किया हुआ नमूना मानसिक-चिकित्सकके समक्ष उपस्थित करनेपर दुःख भी नहीं होगा। टेप रेकार्डकी मशीनके चालू होते ही उस नन्हे डेविडके स्पष्ट तथा उच्च स्वरमें उच्चरित वाक्य टेपपर अङ्कित होने लगे। उसमें 'आ' शब्दको वह बार-बार बोल रहा था। अचानक बच्चा उठा, अपने नन्हेसे पाँवकी ठोकर मारी और लकड़ीके उन चौकोर टुकड़ोंको उसने बिखेर दिया। वह विचित्र प्रकारसे हँसा और तेजीसे भागकर अपने कक्षमें प्रविष्ट हो गया।

श्रीमती मॉरिसने शिकायत की कि 'देखिये, वह कितना अधिक उत्तेजित हो जाता है।' 'डेविड, जल्दी यहाँ आओ। शरारती लड़के! जल्दीसे इन टुकड़ोंको बटोरो, नहीं तो ठीकसे पेश न आनेपर आज आइसक्रीम नहीं मिलेगी…।'

डाक्टर मॉरिसने टेपकी रीलको निकाला और सीधे राष्ट्रीय संग्रहालयकी ओर गाड़ी चला दी। उसके पुराने मित्र तथा इस समयके राष्ट्रीय संग्रहालयके प्राचीन पाण्डुलिपि-विभागके प्रमुख डाक्टर ज्वी हरमन (Dr Zvi Hermann) ने अपने कोलाहलभरे कार्यालयमें इनका स्वागत किया। डाक्टर हरमन पवित्र देश इसराइल (Holy Land) के इतिहासके सर्वोच्च अधिकृत जानकार व्यक्ति हैं। साथ ही प्राचीन शिलालेखों और चमड़ेपर लिखी हुई प्राचीन पाण्डुलिपियोंको पढ़ सकनेवाले एक प्रसिद्ध विशेषज्ञ हैं। डाक्टर मॉरिसने डाक्टर हरमनकी टेप मशीनपर उस टेपको चढ़ाकर मशीनको चालू करनेवाले बटनको दबा दिया।

ध्वनिविस्तारक (Loud Speaker) से डेविडकी ध्वनि निकलते ही उन्होंने आश्चर्यचकित स्वरसे कहा—'अरे सुनिये!' उन्होंने बार-बार उस टेपको विभिन्न गतियों तथा ऊँची-नीची ध्वनिमें तबतक सुनाया, जबतक डाक्टर हरमनने कुछ सोचते हुए अपने होंठ भींचकर तेजीसे लिखना आरम्भ नहीं कर दिया।

उसने कहा कि 'यह ध्वनि प्राचीन हिब्रू (यहूदियोंकी भाषा) के समान सुनायी देती है। हमारी वर्तमान भाषासे उसके बहुत-से शब्द मिलते-जुलते हैं। इसी कारण हम प्राचीन पाण्डुलिपियोंको आसानीसे पढ़ लेते हैं; परंतु उसका शब्द, रूप, विभक्तियाँ, उच्चारणशैली तथा व्याकरण बहुत ही भिन्न है। फिर भी मेरे विचारसे मैंने इसे पढ़ लिया है और यह इस प्रकार है—'हमने एक बादशाह अपनी प्रजासे कह रहा है कि मेरे कहे अनुसार चलो। मैं तुम्हें गौरवकी ओर ले चलूँगा।'

डाक्टर हरमनने जिज्ञासा की कि 'इसे आपने कहाँसे रेकार्ड किया। यह किसी नाटकमें अभ्यास करनेवाले पेशेवर कलाकारकी ध्वनि-सी प्रतीत होती है। शाह डेविड और देवालयके निर्माणका विरोध करनेवाले गुटके संघर्षसे इतिहासकार भलीभाँति परिचित हैं। विरोधियोंने इसके निर्माणका कार्य पूरा होनेसे पूर्व ही इस योजनाका त्याग करनेके लिये उसे बाध्य कर दिया था। इस कार्यको उसके उत्तराधिकारी शाह सोलोमनने पूरा किया था। यह नाटकके लिये एक अच्छा विषय है, परंतु मुझे यह पता नहीं था कि हमारे कलाकार पुरानी हिब्रू भाषाके भी जानकार हैं। वास्तवमें मुझे आजतक ऐसा व्यक्ति नहीं मिल सका जो इतनी सरलता और अधिकारपूर्ण ढंगसे इसे बोल सके, जैसा कि यह कलाकार। परंतु यह है कौन ?'

एक गद्देदार कुरसीमें धँसते हुए डाक्टर मॉरिसने उत्तर दिया—'मेरा बेटा।'

डाक्टर हरमन दौड़कर पानी ठंडा करनेकी मशीनकी ओर लपके और पानीका एक भरा हुआ गिलास लेकर लौटे—'ऐसा लगता है कि तुम पूरा थकान्त हो। लो, यह पानी पी लो। लगता है, तुम यह सब गम्भीरतासे नहीं कर रहे हो। क्या मामला नहीं क्या है !'

यह सब उस घटनाका विवरण है, जो १९६४ में घटी। उस समय इस शरीरमें डेविडकी आयु केवल तीन वर्षकी थी और उसका आत्मा तीन हजार वर्ष पुराना था।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन

डाक्टर मॉरिसने बताया कि प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक

प्राध्यापक एफ्रेम एयूर्बैच (Ephraim Auerbach) तथा डाक्टर ज्वी हरमन (Zvi Hermann) को मैंने घर-पर मैंने रोक कर रक्खा, ताकि वे काफी समयतक कई बार लड़केका निरीक्षण कर सकें और उसकी बड़बड़को लेखबद्ध करें तथा उसके व्यवहारकी कारण-मीमांसा कर सकें। इन वैज्ञानिकोंने देखा कि उसके कक्षकी खिड़कियाँ बंद कर देनेपर तो अपनी आयुके अन्य बच्चोंके समान वह व्यवहार करता है और खिड़कियोंको खोल देनेपर वह अन्तर्लीन होने लगता है। उन्होंने यह भी देखा कि उसकी अन्तर्लीनताकी स्थिति उस समय जल्दी-जल्दी आती थी, जब कि वायुकी गतिकी दिशा उत्तर-पूर्वसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर रहा करती थी। पवित्र नगरी (जेरूसलम) के एक मानचित्रपर वायुलहरियोंकी दिशाकी खोज की गयी। उनके शोध-प्रयत्नोंसे पता चला कि डाक्टर मॉरिसका रेहाविया क्वार्टर (Rehavia Quarter) जैसे सुन्दर क्षेत्रमें स्थित निवास माउन्ट मोरिया (Mount Moriah) की दक्षिण-पश्चिम दिशामें दो मीलकी दूरीपर है। यह स्थान पुराने जेरूसलममें ईश्वरके प्रथम देवालय तथा शाह डेविडके दुर्गका स्थान था। वैज्ञानिकोंने तथ्योंको लिपिबद्ध कर दिया, परंतु वे कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सके।

माता-पिता भयभीत हैं

बादमें डाक्टर हरमनने टेपको एक बड़े लिफाफेमें बंद करके, उसे चिपकानेके फीतेसे चिपकाते हुए कहा—'देखो, सामे! यदि हम इस सारी सामग्रीका प्रचार करते हैं तो तीव्रतासे एकके पश्चात् एक तीन बातें होंगी—

(१) प्रथमतः तुम्हें और मुझे दोनोंको विकृत मस्तिष्कका समझकर मानस-चिकित्सककी जाँचके लिये बंद कर दिया जायगा।

(२) बच्चेको असंतुलित मस्तिष्कवाले बच्चोंकी किसी संस्थामें भरती करनेके लिये ले लिया जायगा, और

(३) तुम्हारी पत्नी भयानक रूपसे घबरा जायगी।

एक अन्धे रामायणी बालककी कथा

(प्रेषिका—सुश्री सु० कुमारी)

कोई पचीस-छब्बीस साल पहलेकी बात है। हमारे शहरमें एक व्यक्ति आया, जो जातिका लोदी था और उसके साथ उसका एक ५-६ वर्षका बच्चा था। उसे लेकर वह घर-घर फिरता था। यह बच्चा रामायण बोलता था और लोग सुन-सुनकर कुछ पैसे दे देते थे। इस प्रकार उसने बालकको जीविकाका साधन बना रक्खा था।

हमने जब सुना तो उसको अपने घर बुलाया। उन दिनों माँ पर्दा करती थीं, इसलिये अकेले बालकको गोदमें उठाकर माँके बैठकके कमरेमें ले आये। बालक देखनेमें अन्धा था; उसका रंग गेहुँआ था। वह जन्मान्ध था और उसके पैर पतले और कमजोर थे, जिससे वह चल नहीं पाता था। जैसे ही उसको गोदमेंसे नीचे उतारने लगे और उसके पैर गलीचेसे छुए, वह एकदम चिल्ला उठा—'इसे हटा दो।' जब गलीचा हटा दिया तो नीचे फर्शपर ही बैठ गया और बैठे-बैठे अपने पाँव आगे-पीछे हिलाता रहा। हम सब भी वहीं बैठे थे। हमारे यहाँके राज्यगुरु भी वहीं थे।

सबसे पहले गुरुजीने प्रश्न किया कि 'क्या तुम रामायण बोलते हो?' उसके 'हाँ' करनेपर कहा कि 'बोलो तो!' उसने कहा कि 'पहले रामायण मेरे हाथमें दो।' उसके हाथमें रामायण दी तो उसने पहले बड़ी भक्तिपूर्वक सिर झुकाया। फिर थोड़ी देर कुछ ध्यान किया। फिर उसने रामायण गुरुजीके हाथमें दे दी और कहा कि 'बताओ—कहाँसे बोलें?' गुरुजी रामायण बीचसे खोलकर एक आधी चौपाई बोले, वहींसे उसने बोलना शुरू कर दिया। वह बोलता गया और गुरुजी मिलाते गये; रामायणसे एक-एक शब्द मिलता गया। इसी प्रकार रामायण बंद करके फिर दूसरी जगहसे दूसरे प्रसङ्गसे चौपाई बोले। वहींसे वह बालक ठीक-ठीक बोलता गया; यानी उसको सारी रामायण कण्ठस्थ थी, चाहे कहींसे भी पूछो। इसके बाद उसने 'गीतगोविन्द' तथा रावणकृत 'शिव-ताण्डवस्तोत्र' भी सुनाये, जो कि अक्षरशः ठीक थे।

फिर उससे पूछा कि 'यह कहाँ था? क्या था?' तो उसने इतना ही कहा कि 'मेरा चीमटा रह गया है, उसको मैं गाड़ आया हूँ। वह मुझे मँगा दो।' जब पूछा कि 'कहाँ रक्खा है वह चीमटा? तो उसने बताया कि 'मार्कण्डेय-आश्रममें है।' फिर पूछा कि 'कहाँपर है,

मार्कण्डेय-आश्रम, तो हम तुम्हींको वहाँ पहुँचा दें !' फिर उसने ठीकसे जवाब नहीं दिया। बात ही टाल गया कि 'दिल्ली दूध पी गयी और मेरा बाप मुझे घर-घर घुमाता है और तंग करता है।' पता नहीं, उसने जान-बूझकर नहीं बताया था, या फिर उसे स्मरण ही न रहा हो।

बादमें सुना कि वह सवेरे चार बजे उठ जाता है और दीवालकी तरफ मुँह करके बैठ जाता है तथा बड़ी देरतक कुछ पाठ किया करता है। उसका यह नित्य नियम है, जबसे उसने बैठना और बोलना सीखा।

उस समयके बाद फिर उन लोगोंका कोई पता नहीं लगा। ऐसा भी सुना कि वह लड़का ग्यारह सालका होकर मर गया। परंतु ठीक-ठीक कुछ पता नहीं लगा। यह पुनर्जन्मकी आँखों-देखी घटना है, इससे कर्मभोग और पुनर्जन्मपर विश्वास कैसे न करें !

एक हजार वर्षोंतक प्रेतयोनिमें रहनेवाले मुसलमान पीर सुलेमान

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुवा)

एक हजार वर्षोंतक प्रेतयोनिमें रहनेवाले मुसलमान पीर सुलेमानने, जिसे अभी सिक्खोंके पूज्य संत राड़ेवाले श्रीईश्वर-सिंहजी महाराजकी कृपासे ५ अगस्त सन् १९६८ को एक सिख-परिवारमें मनुष्ययोनि प्राप्त हुई है, छात्र मनमोहनसिंहके शरीरमें प्रवेश करके जो परलोकसम्बन्धी आश्चर्यजनक अपनी स्वयंकी आँखों-देखी घटनाओंका वर्णन किया है, वह जहाँ बड़ा रोमाञ्चकारी है, वहाँ हमारे शास्त्र-पुराणोंकी परलोक-सम्बन्धी सभी बातोंको सर्वथा सत्य प्रमाणित करनेवाला भी है। पूज्य संतजी महाराजकी सेवामें हर समय रहनेवाले मास्टर श्रीराजेन्द्रसिंहजीने हमें बताया कि हमने छात्र मनमोहनसिंहको अपनी एकान्त कोठरीमें बैठाकर मनमोहनसिंहके शरीरमें स्थित एक हजार वर्षके मुसल्मान पीर प्रेतसे परलोकसम्बन्धी प्रश्न किये और उसने हमें जो उत्तर दिये, वह ज्यों-के-त्यों इस प्रकार हैं—

श्रीराजेन्द्रसिंहजी—'तुम्हारा क्या नाम है ?'

प्रेत—'मेरा नाम सुलेमान है।'

'तुम कहाँके रहनेवाले हो ?'

'मैं ईरानका रहनेवाला मुसल्मान हूँ।'

'तुम हिंदुस्तान देशमें कैसे आये ?'

'हम मुसल्मान बादशाह नादिरशाह अब्दालीके साथ, जब वह हिंदुस्थानको लूटनेके लिये हिंदुस्थानमें आया था तो उसके साथमें आये थे। वह नादिरशाह तो इस हिंदुस्थानको लूटकर अपने मुल्कको वापस चला गया और मैं यहीं हिंदुस्थानमें रह गया। यहाँ मैंने एक औरतसे शादी कर ली और मैं जिला सहारनपुरके मुगलखेड़ा नामक एक गाँवमें रहने लगा। मेरे उस औरतसे दो लड़के और दो लड़कियाँ हुईं। इस प्रकार मेरे चार बच्चे हुए। मेरे नजदीक ही उन दिनों एक हिंदू तपस्वी रहा करता था, जो इस समय मनमोहनसिंहके रूपमें आपके सामने बैठा है। वह तपस्वी गण्डे-तागे, तावीज आदिका काम करता था और पाखण्ड भी करता था। मेरी एक नौजवान बड़ी खूबसूरत लड़की थी, जिससे उस तपस्वी साधुने अपने नाजायज ताल्लुकात पैदा कर लिये। उन नाजायज ताल्लुकातका मुझे पता चल गया। मैंने उस समय बहुत कोशिश की कि किसी प्रकार इनके नाजायज ताल्लुकात टूट जायँ। खुद भी मैंने बहुत समझाया-बुझाया और उस वक्तकी हुकूमतके जरिये भी ताल्लुकात तुड़वानेकी बड़ी कोशिश की, लेकिन मुझे कामयाबी नहीं मिली। मेरे दिलपर इस बातका ऐसा गहरा असर हुआ, मैंने उस वक्त अपने उस खुदावन्दतालासे यह दुआ की कि मैं इससे इसका बदला किसी प्रकार जरूर लूँ। इसी ख्यालमें मैं कुछ दिनोंके बाद मर गया।'

'सुलेमान ! तुम अपने मरनेके वक्तकी सारी हकीकत बताओ। तुम कैसे मरे और उस समय तुम्हारे साथ कैसे गुजरी ?'

'जब मेरे मरनेका वक्त आया, तब मेरी आँखोंसे आँसू निकलने लगे। मेरी जबान एकदम बंद हो गयी। मुझे उस समय चार यमराजके दूत लेने आये थे। वे आकर मेरे इर्द-गिर्द खड़े हो गये और मुझे बुरी तरहसे मारने-पीटने लगे। वे चारों दूत बड़ी भयंकर डरावनी सूरतके दिखायी दिये। मैं उन्हें देखकर बहुत डर गया। मैं इशारे करता था, लेकिन मुझसे उस समय अपनी जबानसे बोला नहीं जाता था। उन दूतोंके स्थूलशरीर नहीं थे, इसलिये वे किसीको दिखायी नहीं देते थे। बस, वे सिर्फ मुझे ही दिखलायी देते थे। मुझे मरते वक्त बहुत ज्यादा तकलीफ हुई,

जैसे एक झाड़ी, जिसमें कोई पत्ता न हो, उसमें लंबे-लंबे नुकीले काँटे लगे हुए हों,उसके ऊपर बारीक मलमलका कपड़ा डाल दिया जाय और उसे बड़ी बेरहमीसे खींचा जाय तो उस कपड़ेका एक-एक धागा हो जायगा, यही मिसाल उस समयके मेरे आत्माकी है। मुझे मरते वक्त इतना घोर दुःख हुआ कि मैं उसे बता नहीं सकता।'

'यमराजके दूत जब तुम्हें धर्मराजके सामने ले गये तो उस समय रास्तेमें तुम्हारे साथ क्या गुजरी ?'

'जब उन यमराजके दूतोंने शरीरसे मेरे प्राण निकाले तो मेरे आत्माको, मेरी रूहको जिसका सूक्ष्मशरीर होता है और वह आम लोगोंको नजर नहीं आता, उसको वे मारते-पीटते ले गये। करीबन एक वर्षका समय लगा होगा। तब मुझे धर्मराजके सामने ले जाकर पेश किया।'

'अब तुम यह बताओ कि जब तुम्हें धर्मराजके सामने पेश किया गया, उस समय तुम्हारे साथ क्या गुजरी ?'

'धर्मराजके पास पहुँचनेपर चित्रगुप्त नामके फरिश्तेने मेरी जिंदगीके जितने भी पुण्य-पाप थे, सबका सारा हिसाब-किताब धर्मराजको बताया। धर्मराजने सब देख-सुनकर मुझे यह सजा सुनायी कि तुम्हारे पापकर्मोंके फल-स्वरूप तुम्हें अब कुम्भीपाक नरकमें डाला जायगा और उस नरक-भोगके बाद तुमको एक हजार वर्षतकके लिये प्रेतयोनि मिलेगी। तुम्हारा यह प्रेतयोनिका एक हजार वर्षका समय पूरा हो जायगा, उस वक्त तुम्हें जिसने तुम्हारी लड़कीके साथ नाजायज ताल्लुकात पैदा किये थे और जिससे तुमने उस समय बदला लेनेकी इच्छा की थी और जिसके लिये खुदासे प्रार्थना की थी, वही तुम्हें फिरसे मनुष्यके रूपमें मिलेगा। तब तुम उससे अपना बदला ले सकोगे। फिर तुमको और उसको कोई महापुरुष मिलेंगे। वे तुम दोनोंका कल्याण करेंगे।'

'कुम्भीपाक नरकमें तुमने क्या देखा ?'

'कुम्भीपाक नरक तकरीबन एक हजार योजनसे भी ज्यादा बड़ा है। एक योजन करीबन चार कोसका होता है। वह एक हजार योजन लंबा और एक हजार योजन चौड़ा है। उसका मुँह करीब ९ इंच होता है। उस ९ इंच मुँहसे पापी जीवको कुम्भीपाक नरकमें डाल देते हैं और उस पापी जीवकी जबतक सजा पूरी नहीं हो जाती, उसे उसी नरकमें रहना पड़ता है।'

'उस कुम्भीपाक नरकमें क्या-क्या तकलीफें हैं ?'

'उस कुम्भीपाक नरकके अंदर गंदगी, टट्टी, पेशाब, खून, पस, पीक, आग तथा और भी ऐसी-ऐसी बहुत-सी दुःख देनेवाली वस्तुएँ हैं कि जिनके द्वारा उस पापी जीवको बड़ी-बड़ी तकलीफें दी जाती हैं। कभी तो उसे पकड़कर नरककी आगमें जलाया जाता है, कभी गंदगी अर्थात् टट्टीके कूएँमें डुबो दिया जाता है। जो परस्त्रीगामी होते हैं, उन्हें पकड़कर आगमें तपायी हुई स्त्रीसे चिपटा दिया जाता है। बड़ी-बड़ी मार पड़ती है और भी तरह-तरहकी घोर यातनाएँ दी जाती हैं। इस प्रकार उस पापीको अपने किये हुए पापोंका फल भुगताया जाता है। समय पूरा होनेपर फिर उस जीवको कुम्भीपाक नरकसे निकालकर दूसरी योनियोंमें डाल दिया जाता है।'

'तुम्हारा कुम्भीपाक नरकसे निकालनेके बाद क्या किया गया ?'

'मुझे कुम्भीपाककी घोर यातनाएँ भोगनेके बाद निकालकर यह प्रेतयोनि दे दी गयी। प्रेतयोनि मिलनेपर मैं अपने गाँव, मुगलखेड़ामें जहाँ मेरी कब्र बनी हुई है और मेरा मजार है, वहाँ जाकर रहने लगा। मेरी मजारपर पूजा करने-वाले जो लोग आते थे, मैं उन सबको देखता था, लेकिन मुझे कोई नहीं देख पाता था। मेरे साथ पाँच पीर और भी रहते थे। उनमेंसे एक प्रेतकी उम्र पौने तीन हजार और दूसरेकी तीन हजार, तीसरेकी साढ़े तीन हजार वर्ष है, चौथेकी पाँच हजार वर्षकी है और पाँचवेंकी उम्र चार युगकी है। वह पिछले कलियुगका प्रेत बना हुआ है।'

'जिस प्रेतकी उम्र चार युगोंकी है, उसका कल्याण कैसे होगा ?'

'कोई महापुरुष उसका उद्धार करेगा। नहीं तो, कलि-युगके आखीरमें जब कल्किभगवान् अवतार लेंगे, तब वे उसका कल्याण करेंगे।'

'तुम इस मनमोहनसिंहके शरीरमें कैसे आये ?'

'मेरी प्रेतयोनिसे छुटकारा होनेके लिये एक हजार वर्ष पूरे होनेमें कुछ समय बाकी था तो यह लड़का मनमोहनसिंह, जो उस समय तपस्वी था और जिसका मेरी लड़कीसे नाजायज ताल्लुक हो गया था तो एक दिन अचानक आकर इसने मेरे मजारपर पेशाब कर दिया। मैंने इसे बड़े गौरसे देखा तो इसके आत्माको मैंने पहचान लिया कि यह तो वही तपस्वी

है कि जिसने मेरी लड़कीसे अपने नाजायज ताल्लुकात पैदा किये थे और मैंने यह तै कर लिया कि मैं अब इससे अपना बदला अवश्य लूँगा। मैंने झटसे इसे पकड़ लिया और मैं इसके शरीरके अंदर दाखिल हो गया। मैंने और बहुतोंको पकड़-पकड़कर मार दिया था; पर इसे इसलिये नहीं मारा कि इसके द्वारा मेरा उद्धार होना था। अब सात सालसे मैं इस लड़के मनमोहनसिंहके शरीरके अंदर रहता हूँ और अब वह समय आ गया है कि जो मैंने इसे खूब सताकर इससे अपना बदला भी ले लिया है और अब हमें संतजीका मिलाप हो गया है और अब हम दोनोंका ही कल्याण होनेवाला है।'

'इन्सानका कल्याण कौन-से भजनसे हो सकता है?'

'अपने-अपने गुरुका दिया हुआ भगवान्का नाम जपनेसे इन्सानका कल्याण हो जाता है।'

'धर्मराज कैसा था?'

'धर्मराज बहुत ही खूबसूरत था और उसके सफेद लंबी दाढ़ी थी और उसके सिरपर भी केश थे और धर्मराज बड़े रोबवाला और जलालवाला था और उसका सूक्ष्म और बड़ा दिव्य शरीर था और उसमें अपने शरीरको पलटनेकी भी ताकत है।'

'प्रेतोंकी क्या खुराक है और प्रेत क्या-क्या खाते-पीते हैं?'

'प्रेत हड्डियाँ चूसते हैं और खून पीते हैं और गंदगी खाते हैं और टट्टी खाते हैं और लकड़ीके बुझे हुए कोयले खाते हैं। यही उनकी खुराक है।'

'तुम प्रेतलोग कहाँपर रहते हो?'

'हम खण्डहरोंमें रहते हैं और पेड़ोंके ऊपर लटकते हैं। खूब चीखते हैं, चिल्लाते हैं, पुकारते हैं; लेकिन हमारी कोई आवाज नहीं सुनता। हमें भूख-प्यास भी खूब लगती है और हमलोग बहुत ही दुखी रहते हैं।'

'प्रेतयोनि क्यों मिलती है? तुम्हें प्रेत-योनि क्यों मिली?'

'मुझे प्रेतयोनि इसलिये मिली कि मेरे पाप तो थे ही, मैं भी अपनी सारी जिंदगी गंडे-तावीज, झाड़े-फूंकेका काम करता था और भूत-प्रेतोंको निकालता था और झूठ-सच बोलकर लोगोंसे पैसे लूटता था। इसी काले इल्मकी वजहसे मुझे यह प्रेतयोनि मिली। मेरी जिंदगीमें मेरे कर्म सब बड़े गंदे थे और मैंने दूसरोंकी औरतोंसे अपने बड़े नाजायज ताल्लुकात पैदा कर रक्खे थे। और भी मैंने बड़े-बड़े कुकर्म और बड़े-बड़े घोर पाप किये थे, जिसके कारण मुझे कुम्भीपाक नरकमें जाना पड़ा और अपने किये हुए पापोंका फल इस प्रकारसे भोगना पड़ा और फिर मुझे यह एक हजार वर्षके लिये प्रेतयोनि मिली जिसके कष्ट मैं अब इस समय भोग रहा हूँ।'

'क्या तुम प्रेतोंको, भूतोंको कथा-कीर्तनमें, सत्संगमें शान्ति प्राप्त होती है?'

'प्रेत या भूतयोनियोंको सत्संगमें और कथा-कीर्तनमें आनेका हुक्म नहीं है। अगर कथा-कीर्तनमें, सत्संगमें भूत-प्रेत आयेंगे तो उन्हें आग लग जाती है और शरीर जलने लगता है। जहाँपर कथा-कीर्तन होता है और जहाँपर सत्संग होता है, वहाँसे भूत-प्रेत एकदमसे भाग जाते हैं। यदि कोई प्रेत किसी मनुष्यके शरीरके अंदर प्रवेश कर जाय और फिर वह आदमी यदि किसी महापुरुषकी शरणमें चला जाय तो उस महा-पुरुषकी दया-दृष्टिसे और उनकी दयालुतासे उसके लिये यह वचन हो जाय कि तुम सत्संग-कथा-कीर्तन सुनो तो तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी तो उसे सत्संग-कथा-कीर्तन सुननेसे अवश्य शान्ति प्राप्त होती है।'

यह सब प्रेतसे किये गये मास्टर श्रीराजेन्द्रसिंहजीके प्रश्नोत्तर ज्यों-के-त्यों दिये गये हैं। यह स्मरण रहे कि छात्र मनमोहनसिंहके शरीरमें रहनेपर वह मुसल्मान प्रेत कुरानकी आयतें बोलता था, जब कि छात्र कुरानका एक अक्षर भी नहीं पढ़ सकता। और भी बहुतसे प्रश्नोत्तर हैं कि जो कभी फिर सामने रक्खे जायँगे।

बोलो सनातन धर्मकी जय!
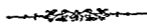
परमधाम

निर्गुण-निराकार स्वरूपके एकत्व तथा उसकी सर्वव्यापकता समझमें आनेवाली बात है, परंतु विविध विचित्र रूपोंमें प्रकट त्रिगुणातीत सगुण-साकारका एकत्व तथा उसकी सर्वव्यापकताकी बात समझमें नहीं आती। पर यह परम सत्य है कि वह सगुण-साकार तत्त्व नित्य अनेक होते हुए ही नित्य एक है और एक देशमें होते हुए ही सर्वत्र है। वह सबमें और उसमें सब हैं—इस अचिन्त्य, अनिर्वचनीय परमरहस्यका ज्ञान भगवत्कृपासाध्य ही है।

भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण अयोध्यानिवासियोंसे एक ही साथ पृथक्-पृथक् मिले। भगवान् श्रीकृष्ण रासमण्डलमें सहस्र-सहस्र कृष्णरूपमें प्रकट थे। क्या यह भगवान्की माया थी ? जादू था ? नहीं, यह वास्तवमें भगवान्की स्वरूप-स्थिति है। वे एक रहते हुए ही अनन्त स्थानोंमें, अनन्त भक्तोंके सामने पृथक्-पृथक् स्थित रहकर उनकी पूजा-अर्चना स्वीकार करते हैं। एक ही समय, एक ही साथ परस्पर-विरोधी गुणधर्मोंका आश्रय उनका स्वरूप है—'अणोरणीयान् महतो महीयान्।' वे ही एक भगवान् विभिन्न नित्य दिव्य लीलारूपोंमें लीलायमान हैं। सत्यस्वरूप, सत्यसंकल्प भगवान्का कुछ भी असत्य नहीं है। लीलाके अनुरूप ही उनके अनादि-अनन्त विभिन्न दिव्य नित्यलोक हैं—उनमें सृष्टि-प्रलयका कोई संस्पर्श नहीं है। इन सत्य दिव्यलोकोंकी भाँति ही इनकी विभिन्न-विचित्र रचना, वहाँकी प्रत्येक अणु-महान् वस्तु, प्रत्येक स्थान, प्रत्येक पार्षद-परिकर, प्रत्येक निवासी, वहाँके नद-नदी, वृक्ष-लता, गिरि-कूट, सर-सागर तथा वहाँकी सभी लीलाएँ भी सत्य दिव्य हैं। सभी भगवत्स्वरूप हैं। इसी प्रकार वे एकदेशीय होनेपर भी सर्वदेशीय तथा सर्वदेशीय होनेपर भी एकदेशीय हैं; क्योंकि सब भगवत्स्वरूपकी ही अभिव्यक्ति है।

वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास, देवीद्वीप या मणिद्वीप आदि सभी दिव्य परमधाम हैं। पृथक्-पृथक् होते हुए ही वे नित्य एक ही दिव्य परमधामके स्वरूप हैं। परमधाम कोई महाविशाल, अतिविस्तृत प्राकृतिक महाद्वीप, लोक, देश या स्थानविशेष नहीं है। जैसे भगवान् प्रकृतिसे, प्रकृतिजनित तीनों गुणोंसे तथा सभी आवरणोंसे अतीत एवं प्राकृतिक पाञ्चभौतिक आकार—शरीरसे अतीत निजस्वरूपभूत गुण-देह हैं, वैसे ही उनके ये धाम तथा धामगत पदार्थमात्र भी भगवत्स्वरूप ही हैं।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
(गीता ६। ३०)

जहाँ भगवान्की नित्य दिव्य व्यक्त लीला है, वहीं दिव्य 'रस' और 'भाव'का प्रकाश है। 'रस'-स्वरूप भगवान् देव हैं और 'भाव'-स्वरूपा उनकी अभिन्न-तत्त्व ह्लादिनी देवी हैं। भगवान् शक्तिमान् हैं, ह्लादिनी शक्ति हैं। दोनोंका नित्य अविनाभाव-सम्बन्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण और प्रेममयी श्रीराधा, भगवान् श्रीविष्णु और भगवती श्रीलक्ष्मीजी, भगवान् श्रीराम और देवीशिरोमणि श्रीसीताजी, भगवान् श्रीशंकर और उनकी प्रिया सतीशिरोमणि श्रीसती देवी शक्तिमान् और शक्तिस्वरूप हैं। श्रीदेवी-स्वरूपमें विपरीत लीला है। वहाँ शक्तिका स्वामित्व है, शक्तिमान्की परवशता है; पर वहाँ भी है—वही अभिन्न शक्ति-शक्तिमान् तत्त्व ही। ये सभी एक ही नित्य दिव्य लीलाके नित्य स्वरूप हैं, परम सत्य हैं, महात्माओं तथा संतोंके द्वारा अनुभूत, उपलब्ध और सेवित हैं।

जैसे एक ही भगवान्के प्रत्येक स्वरूपमें उस एककी प्रधानता तथा अन्यान्य सभी रूपोंकी गौणरूपसे विद्यमानता है, वैसे ही उनके प्रत्येक दिव्यलोकमें उस एककी प्रधानता तथा अन्यान्य लोकोंकी गौणरूपसे विद्यमानता है। उनमें कोई श्रेष्ठ और कनिष्ठ नहीं है। सभीमें नित्य एकत्व, समत्व तथा श्रेष्ठत्व है। भक्त अपने भावानुसार एकको सर्वोपरि सर्वश्रेष्ठ देखता तथा दूसरोंको उससे कनिष्ठ देखता है—उन दिव्य लोकोंका तथा भक्तहृदयका यह अनुपमेय अनन्य-वैचित्र्य सदा ही आह्लादजनक है, पर वैसे यह नित्य अभेदमें ही भेद-दर्शन है।

जहाँ 'वैकुण्ठ'की प्रधानता है, वहाँ गोलोक, साकेत, कैलास, देवीद्वीप आदि उसमें गौणरूपसे विद्यमान हैं और चतुर्भुज 'भगवान् विष्णु' ही वहाँ सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ 'गोलोक'की प्रधानता है, वहाँ वैकुण्ठ, साकेत, कैलास, देवीलोक गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'मुरलीमनोहर द्विभुज भगवान् श्रीकृष्ण' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ 'साकेत'की प्रधानता है, वहाँ वैकुण्ठ, गोलोक, कैलास, देवीद्वीप गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'धनुर्धर भगवान् श्रीराम' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। जहाँ 'कैलास'का प्राधान्य है, वहाँ

वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, देवीद्वीप गौणरूपसे विद्यमान हैं और 'कर्पूरगौर भगवान् श्रीशंकर' ही सर्वोपरि प्रधान देव हैं। इसी प्रकार भगवती श्रीदेवीजी तथा देवीलोककी प्रधानतामें कैलास, वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत आदि गौणरूपसे विद्यमान हैं। दिव्य गणपति तथा दिव्य सूर्यलोकके लिये भी ऐसा ही समझना चाहिये। पर यह केवल समझानेकी ही बात या कोई 'अर्थवाद' नहीं है। वास्तवमें यह नित्य परम सत्य है।

प्रत्येक दिव्यलोक—परमधाम उसके प्रधान भगवत्-स्वरूपकी महत्ताको घोषित करता हुआ उस रूपकी आराधना करनेवालोंकी निष्ठाको पुष्ट तथा संतुष्ट करता है और उन भक्तोंके तत्त्वज्ञानमें तनिक भी त्रुटि न रहनेपर भी उनको नित्य-नित्य लीलानन्द-महासुधार्णवमें निमग्न रखता है।

वास्तवमें भगवान्‌के स्वरूपका रहस्य भगवान् ही जानते हैं। भगवान्‌की दृष्टि भगवान्‌से अभिन्न है और उनकी दृष्टिमें जो कुछ है। वही सत्य है। उनकी दृष्टिमें, ऐसा ही विश्वास होता है कि उनके अपने सिवा कुछ है ही नहीं।

मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवत्प्राप्ति

(कर्मानुसार गतियोंके भेद)

मनुष्य-जीवनका एकमात्र पवित्र उद्देश्य या परम ध्येय है—जन्म-मृत्युके चक्रसे नित्यमुक्ति। इसीको मोक्ष, आत्मसाक्षात्कार, तत्त्वज्ञान, बोध, भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम-की प्राप्ति कहते हैं। अनन्य तीव्र इच्छाके साथ उपयुक्त साधन करनेपर मनुष्य इसी जन्ममें अपने इस महान् ध्येयको प्राप्त कर सकता है। इसीलिये उसको मानवजन्म मिला है। पर वह कर्म करनेमें स्वतन्त्र है—साधनानुकूल कर्म भी कर सकता है और इसके सर्वथा प्रतिकूल भी। कर्मानुसार ही फल प्राप्त होता है। मनुष्य साधना करके मुक्त भी हो सकता है; सत्कर्म करके विपुल भोगमय स्वर्गकी प्राप्ति भी कर सकता है; असत्-कर्म करके घोर यन्त्रणामय नरकोंमें भी जा सकता है और पशु, पक्षी, कीट-पतंग तथा जड वृक्ष-लता-पाषाण भी बन सकता है। मानव-जीवनको व्यर्थ-अनर्थके कार्योंमें खोकर अनन्तकालीन दुःखका भविष्य निर्माण कर सकता है। इसीलिये कहा जाता है कि दुर्लभ मनुष्य-जन्मका एक क्षण भी व्यर्थ-अनर्थमें न खोकर केवल भगवत्प्राप्तिके साधनमें ही लगाना चाहिये। स्वर्गके भोग-सुख मिलेंगे, तो वे भी वस्तुतः विनाशी तथा दुःखप्रद ही होंगे। कहीं कर्मके फलस्वरूप दुर्गति हो गयी, तब तो बहुत ही बुरी बात होगी। लेनेके देने पड़ जायँगे। पर वर्तमानकालमें अधिकांशमें मनुष्य ऐसा भोगासक्त हो गया है कि वह जीवनके असली उद्देश्य भगवत्प्राप्तिको भूलकर अहंता-ममता, राग-द्वेष एवं काम-क्रोध-लोभसे अभिभूत हो ऐसे ही कर्म करता है, जिनसे जीवनभर यहाँ भी अशान्ति, दुःख, भय, विषाद तथा चिन्ता आदिसे ग्रस्त-संत्रस्त रहता है और भोगोंकी प्राप्तिके लिये पापकर्ममें लगा रहनेके कारण मृत्युके बाद आसुरी योनियोंको तथा नरकोंकी घोर यन्त्रणाओंको प्राप्त होता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

> आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
> मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥
> (१६। २०)

'(ऐसे लोगोंको) मेरी (भगवान्‌की) प्राप्ति तो होती ही नहीं, वे मूढ पुरुष जन्म-जन्ममें आसुरी योनि (राक्षस, पिशाच, भूत-प्रेत या कुत्ते, सूअर, गधे आदि) को प्राप्त होते हैं; फिर उससे भी अति नीच गतिमें अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं।'

दुर्लभ मनुष्य-जीवनका यह कितना अवाञ्छनीय दुष्परिणाम है!

कर्मानुसार मनुष्य निम्नलिखित गतियोंको प्राप्त होता है—

(१) अहंता-राग-द्वेषसे सर्वथा रहित जीवन्मुक्त पुरुष अथवा इस भावके साधनसे सम्पन्न पुरुष, मरनेपर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते। सूक्ष्म-कारण शरीर नष्ट हो जाते हैं। यह 'सद्योमुक्ति' है।

(२) भगवान्‌की भक्तिमें ही जीवन समर्पण कर देने-वाले भक्तको भगवान्‌के दिव्य पार्षद स्वयं आकर ज्योतिर्मय, स्वप्रकाश सच्चिदानन्दमय भगवत्स्वरूप नित्य परमधाम—वैकुण्ठ, गोलोक, साकेत, कैलास आदिमें दिव्य विमान-द्वारा ले जाते हैं। वह वहाँ उस दिव्य धाममें सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि आदि भगवत्-स्वरूपताको प्राप्त

करके अचिन्त्य-अनिर्वचनीय भगवत्स्थितिमें रहता है। पर, प्रेमी साधक इस स्थितिको भी स्वीकार नहीं करते; वे साक्षात् सेवारूप बनकर नित्य भगवत्-सेवापरायण ही रहते हैं। देनेपर भी उपर्युक्त सालोक्यादिको ग्रहण नहीं करते।* यही पराभक्ति या प्रेमाभक्तिको प्राप्त पुरुषका भगवत्सेवामें नित्य प्रवेश है।

ये दोनों ही परम गति हैं। यही मानव-जीवनकी परम सफलता है। यही अनादिकालसे भटकते हुए जीवका उससे मुक्त होकर, नित्य सत्य परमानन्द-स्वरूपको प्राप्त होना है।

(३) निष्काम भावसे परमार्थ साधन करनेवाले ब्रह्मवेत्ता पुरुष देवयान—उत्तरायण या अर्चिमार्गसे दिव्य देवलोकोंमें देवताओंके द्वारा ले जाये जाकर, वहाँ अभ्यर्थित होते हुए ब्रह्मलोकमें पहुँच जाते हैं और वहाँ ब्रह्माजीके साथ ही मुक्त हो जाते हैं। संसारमें उनका पुनरावर्तन नहीं होता। यह 'क्रममुक्ति' है।

(४) सकाम भावसे शास्त्रोक्त सत्कर्म करनेवाले पुरुष पितृयान—दक्षिणायन या धूममार्गसे दिव्य चन्द्रलोक-तक जाते हैं, यही भोगमय प्रकाशमय स्वर्गधाम है। इसके सहस्रों रूप हैं। पुण्यात्मा पुरुष इस जरा-व्याधिरहित स्वर्गमें देव-भोग-सुख प्राप्त करते हैं और पुण्य क्षीण होनेपर पुनः मर्त्यलोकमें लौट आते हैं।

(५) ज्ञान-विज्ञानरहित मोहग्रस्त भोगासक्त पाप-परायण मनुष्य मरनेके बाद वायुके सहारे चलनेवाले (वायुप्रधान) दूसरे शरीरको धारण कर लेते हैं, जो रूप, रंग और अवस्था आदिमें ठीक पहले (मृत) शरीरके जैसा ही होता है। यह शरीर माता-पिताके द्वारा उत्पन्न नहीं होता। यह कर्मजनित होता है और यातना-भोगके लिये ही मिलता है। तदनन्तर शीघ्र ही उसे दारुण पाशसे बाँधकर घोर भयंकर-आकृति क्रूरकर्मा यमदूत डंडोंसे पीटते तथा बड़ी बुरी तरह यातना देते हुए दक्षिण दिशामें यमलोककी ओर खींचकर ले जाते हैं।† वहाँ कर्मानुसार उसके लिये नरकादि यन्त्रणा-भोगकी व्यवस्था होती है।

(६) जो न तो मुक्त होते हैं, न देवयान पितृयान मार्गसे जाते हैं और न नरकोंमें ही जाते हैं—ऐसे प्राणी कर्मानुसार यहीं मच्छर, मक्खी, जूँ, लिक्षा, घुन आदिकी योनिको प्राप्त करते हैं।

कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि मनुष्य मरते ही तत्काल यहीं दूसरे मनुष्य-शरीरको अथवा पशु-पक्षी-तिर्यक् या वृक्ष-पाषाण आदिके शरीरको प्राप्त हो जाता है, अन्य लोकोंमें नहीं जाता। शाप-वरदानसे या प्रबल वासनायुक्त तत्काल पुनर्जन्मदायक कर्मोंके कारण ऐसा होता है। कई योगभ्रष्ट पुरुष भी मरनेपर तुरंत मनुष्य-शरीर प्राप्त करते हैं। इसके भी नियम हैं।

वैसे साधारणतः मरते ही दूसरा वायुप्रधान देह मिल जाता है, जिसे 'आतिवाहिक देह' कहते हैं; क्योंकि सूक्ष्म-शरीरधारी जीवको किसी आश्रयभूत शरीरकी आवश्यकता होती है। इसीसे कहा गया है कि जैसे जोंक अपना अगला पैर अगले पत्तेपर रख देती है तब पिछलेको छोड़ती है अथवा पुराना वस्त्र त्यागते ही नवीन वस्त्र जैसे पहन लिया जाता है, वैसे ही मरते ही 'आतिवाहिक शरीर' मिल जाता है। तत्पश्चात् समयपर कर्मानुसार सुख-भोगार्थ 'देवादि शरीर' या पीड़ा भोगनेके लिये 'यातना-शरीर'की प्राप्ति होती है।

इन सब बातोंपर विचार करके मनुष्यको अपने जीवनके वास्तविक एकमात्र परम तथा चरम ध्येय भगवत्प्राप्तिके साधनमें ही प्रवृत्त रहना चाहिये और वास्तवमें अहंता-राग-द्वेष-अभिनिवेशरूप अविद्यासे मुक्त होकर ब्रह्मस्वरूपता या भगवान्‌के दिव्य परमधामको प्राप्त कर लेना चाहिये। इसमें जरा भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। भगवत्कृपासे प्राप्त मनुष्यशरीर-रूप सुअवसर भविष्यमें भयानक दुःख देनेवाले व्यर्थ-अनर्थके कार्योंमें चला न जाय। शरीर क्षणभङ्गुर है; अतः किसी स्थितिविशेषकी प्रतीक्षा न कर भजनपरायण हो ही जाना चाहिये। नामरूपके अभिमान तथा राग-द्वेषसे छूटनेपर ही मनुष्य परम पद या भगवान्‌को प्राप्तकर सफलजीवन हो सकता है; केवल संत-महात्मा, भक्त-प्रेमी या ज्ञानी कहलानेमात्रसे नहीं। कहलायें चाहे नहीं, पर बनें अवश्य।

---

* सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥
(श्रीमद्भा० ३।२९।१३)

† वाय्वग्रसारी तद्रूपं देहमन्यं प्रपद्यते।
तद्विधं यातनार्थं न मातापितृसम्भवम्।
तत्प्रमाणवयोऽवस्था संस्थानैः प्राक्तनं यथा॥
ततो दूतो यमस्याशु पाशैर्बध्नाति दारुणैः।
दण्डप्रहारसम्भ्रान्तं कर्षते दक्षिणां दिशम्॥
(मा० पु० १०।१४-१५

कहे कोई भी ज्ञानी मुक्त भागवत योगी संत ।
राग-द्वेष-अहंता रहते कभी न होगा भवका अंत ॥
राग-द्वेष-मुक्त हो जाओ, कहलाओ फिर भले असंत ।
हो जाओगे सहज स्वयं तुम 'चिन्मय परमानन्द' अनन्त ॥

मनुष्य मरनेके बाद पुनः मनुष्य ही होता है—यह भ्रान्त है । वह कर्मानुसार मोक्ष या परमधामको हो सकता है, देवता या राक्षसयोनिमें जा सकता है, मनुष्य भी बन सकता है और पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, वृक्ष-पाषाण भी । अतएव मनुष्यको सावधानीके साथ सदा-सर्वदा ऐसे ही भजनरूप कर्म करने चाहिये, जिससे मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्की ही प्राप्ति हो । यही मानवका एकमात्र धर्म है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥
(श्रीमद्भा० १ । २ । ६)

प्रार्थनाकी अद्भुत शक्ति

(लेखक—प्रो० श्रीहेमेन्द्रनाथ बनर्जी)

प्रार्थना असम्भवको सम्भव बना सकती है ?

जनवरी १९६५में मेरे मस्तिष्कसे कैंसरकी गिल्टी निकालनेके लिये तीन बार गम्भीर शल्यक्रिया की गयी । किंतु मैं जीवित बच निकली । मेरे इस अनुभवकी कहानी 'दि नाइट आइ डाइड' (The Night I Died) शीर्षकके अन्तर्गत मार्च, १९६६में प्रकाशित हो चुकी है ।

थोड़े दिन पूर्व डाक्टरोंको यह विश्वास हो गया था कि मैं पूर्णतः स्वस्थ हो गयी हूँ और अब पुनः खोपड़ीके उस भागको लगानेके लिये शल्यक्रिया की जा सकती है, जिसे उन्होंने पिछली शल्यक्रियाओंको ठीक करनेके लिये अपने स्थानसे हटा दिया था । मैं इस कठिन परीक्षासे बहुत डरती थी । अस्तु, मेरे पति श्रीह्यू (Hugh) ने आवश्यक सामर्थ्य जुटानेके लिये प्रार्थना करनेमें मेरी सहायता की । हमने मेरे अस्पताल रहनेकी अवधिमें तीन छोटी बच्चियोंकी देख-भालका प्रबन्ध कर दिया और मैंने अपने-आपको इसके लिये तैयार कर लिया ।

डाक्टरोंने चतुर्थ शल्यक्रियाको सफल घोषित कर दिया और हम घावके भरनेकी प्रतीक्षा करने लगे । परंतु किसी कारणसे मेरा शरीर प्लास्टिककी उस प्लेट (Plate) को सहन नहीं कर पा रहा था, जिसे मेरी खोपड़ीमें तारके साथ लगाया गया था । सिरमें उस स्थानपर एक तरल पदार्थ-सा इकट्ठा होने लगा और इस स्थितिके कारण मुझे भयंकर सिरदर्दका सामना करना पड़ा । मेरे सिरकी यातनाओंका अन्त तभी हुआ, जब डाक्टरोंने एक बहुत बड़ी सुई, जिसे मैं घोड़ेवाली सुई (Horse Needle) कहती थी, उस तरल पदार्थको खींचनेके लिये उसमें घुसा दी । अब घावके टाँकोंके जल्दी ठीक न होनेके कारण एक नयी समस्या उत्पन्न हो गयी । शल्यक्रियाओंके इन विविध प्रयोगोंके कारण मेरी त्वचा बहुत ही मुलायम और जलसिक्त हो गयी थी और ठीक ही नहीं हो पाती थी ।

एक शनिवारको मुझे बहुत असह्य पीड़ा होने लगी । यह सब देखकर डाक्टर बहुत चिन्तित हुए । उन्हें आशा थी कि अबतक घाव भरना आरम्भ हो गया होगा । डाक्टरने कहा—'हमें इसे कम-से-कम एक सप्ताह और देना चाहिये और तब सम्भवतः तुम्हें घर जानेकी अनुमति मिल सकेगी ।' मैंने पूछा कि 'यदि उस समयतक भी टाँके न भरे और तरल पदार्थ बहता रहा तब ?' उसने उत्तर दिया कि 'उस स्थितिमें उस कष्टकारक प्लेटको हटानेके लिये पुनः शल्यक्रिया करना आवश्यक हो जायगा ।'

डाक्टरके जाते ही मेरे पति आ गये और मुझे अपनी भुजाओंमें ले लिया । मैं निराश होकर रोने लगी ।

मैंने रोते हुए कहा कि 'अब और शल्यक्रिया नहीं कराऊँगी ।' पहले ही एक वर्षमें चार बार करा चुकी हूँ, अब उसे सहन नहीं कर पाऊँगी ।'

मेरे शान्त एवं सुहृद् पतिने मुझे विश्वास और प्यारभरे शब्दोंमें ढाढस बँधाया । हम दोनोंने मिलकर भगवान्से प्रार्थना की कि 'वह हमपर अपनी दया-दृष्टि डालें तथा अपनी करुणासे मेरा सिर ठीक कर दें ।'

मृत्यु, परलोक और और्ध्वदैहिक कृत्य

(लेखक—शास्त्रार्थ-महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी शास्त्री)

वेदका वेदत्व केवल इस विशेषतापर निर्भर है कि जो रहस्य प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान आदि किसी भी प्रमाणद्वारा वेद्य न हो, उस रहस्यको जो प्रकट करे, तादृश प्रमाणको 'वेद' कहते हैं। इसलिये आस्तिक समाजकी यह गर्वोक्ति शास्त्रसिद्ध है कि 'शास्त्रप्रमाणिका वयम्' अर्थात् 'हम शब्द (वेद) को प्रमाण माननेवाले—आस्तिक हैं।'

यह बात युक्तिसङ्गत भी है। बहुतसे ऐसे विषय हैं, जिनतक मानवकी पहुँच नहीं हो सकती है। जैसे उदाहरणार्थ 'मृत्युके बाद क्या गति होगी ?'—यह रहस्य मानव-बुद्धिका विषय नहीं। जो मर जाते हैं, वे लौटकर कुछ कहने नहीं आते और जिन्हें मरना है वे उसका स्वयं क्या अनुमान कर सकते हैं ! इसी प्रकार 'परलोक क्या है ? वह है भी या नहीं ? है तो तदर्थ हमारा अपना क्या कर्तव्य है ? परलोकगत प्राणीकी उसके जीवनसम्बन्धी भी कुछ सहायता हम कर सकते हैं क्या ?' इत्यादि अनेक प्रश्न हैं, जिनका उत्तर एकमात्र वेद ही दे सकता है। वस्तुतः वेदका आरम्भ वहाँसे होता है, जहाँ मानव-बुद्धिकी दौड़ समाप्त हो जाती है। इसलिये मृत्यु क्या है, परलोक क्या है, मृत्युके अनन्तर क्या-क्या ऐसे अनुष्ठान हैं, जिनके करनेसे परलोकगत आत्माकी सद्गति हो सकती है—इत्यादि परोक्ष विषयोंपर ही इस लेखमें वेद-शास्त्रके प्रमाणानुसार संक्षिप्त विचार किया जायगा।

मृत्यु क्या है ?

हमारा यह मानव-शरीर पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश), पञ्चकर्मेन्द्रिय (हस्त, चरण, गुदा, लिङ्ग और जिह्वा), पञ्चज्ञानेन्द्रिय (श्रोत्र, चक्षु, रसना, त्वक् और घ्राण), पञ्चप्राण (प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान), अन्तःकरण-चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) तथा अविद्या, काम और कर्म—इन २७ तत्त्वोंका संघात है, जिसे 'स्थूलशरीर' कहते हैं।

स्थूल पञ्चमहाभूत और स्थूल पञ्चकर्मेन्द्रिय—इन दस तत्त्वोंके अतिरिक्त जो शेष सत्रह तत्त्व बचते हैं, उतने संघातका नाम 'सूक्ष्मशरीर' है। मृत्युका अर्थ है—'स्थूल पञ्चमहाभूत और स्थूल पञ्चकर्मेन्द्रियोंका छूट जाना।' अतः मृत्युमें प्राणीका सर्वनाश नहीं हो जाता; किंतु केवल पूर्वोक्त दस तत्त्वोंकी निवृत्तिमात्र हो जाती है। शेष सत्रह तत्त्वोंका सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर मुक्तिपर्यन्त तथैव विद्यमान रहेंगे।

मृत्युके अनन्तर क्या गति होती है ?

यह गति सबके लिये समान नहीं है। अपने-अपने कर्मानुसार प्राप्त होती है। ज्ञानाग्निमें जिनके शुभाशुभ कर्म दग्ध हो जाते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं—'न स पुनरावर्तते।' वे फिर जन्म-मृत्युके चक्रमें नहीं पड़ते। जिनके उग्र सकाम शुभ कर्म हैं, वे स्वर्ग आदि लोकोंमें अपने शुभ कर्मोंका फल उपभोग करते हैं। जिनके उग्र पापकर्म हैं, वे नरकमें सड़ते हैं। परंतु जब भोगते-भोगते शुभ किंवा अशुभ कर्म ऐसे हलके अवशिष्ट रह जाते हैं, जो मृत्युलोकमें ही भोगे जा सकते हैं, तब स्वर्गीय प्राणी शुचि-श्रीमानोंके या योगियोंके कुलमें उत्पन्न होकर पुण्य-फल प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार नारकीय प्राणी सूकर, कूकर, कुष्ठी, निर्धनके रूपमें जन्म लेकर अपने शेष पापकर्मोंका उपभोग करते हैं।

चन्द्र-कक्षाके उपरिभागमें पितृलोक है। सूर्य-कक्षामें द्युः-स्वर्गलोक है और शनिकी अन्धकारमय कक्षामें अट्ठाईस नरक-लोकोंकी अवस्थिति है।

मृत्युके अनन्तर सूक्ष्मशरीरधारी जीवको स्वर्गोपभोगके लिये 'दिव्य शरीर'की प्राप्ति होती है, नरकोपभोगके लिये 'यातना-शरीर' प्राप्त होता है, सर्वाधम पापियोंको एक ही दिनमें जन्म और मरणका कष्ट भोगनेवाली कीट-पतङ्गादिकी 'जायस्व म्रियस्व'-गति मिलती है। जिनके न अपने शुभ कर्म हैं, न अशुभ उग्र कर्म हैं और न उनके सम्बन्धी ही और्ध्वदैहिक अनुष्ठानोंद्वारा उनकी कुछ सहायता करते हैं, वे लोकान्तरोंमें न जाकर 'वायुभूतो निराश्रयः।' रूपमें मृत्युलोकमें ही भूत-प्रेत आदि योनियोंमें परिभ्रमण करते हैं। इस प्रकार अपने-अपने कर्मोंके तारतम्यसे विभिन्न गतियाँ होती हैं।

और्ध्वदैहिक कृत्य

वेदका तीन चतुर्थांश भाग केवल परलोकहितकर

और्ध्वदैहिक' कृत्योंकी इतिकर्तव्यतासे ही भरा पड़ा है। वस्तुतः वेदोंका मुख्य विषय आपाततः परलोक ही है; क्योंकि यह विषय परोक्ष होनेके कारण मानव-बुद्धिगम्य नहीं है। उक्त सब और्ध्वदैहिक कृत्योंका संग्राहक पारिभाषिक नाम 'श्राद्ध' है। मृत पितरोंके उद्देश्यसे अपनी प्रिय भोग्य वस्तुओंको वैदिक विधिके अनुसार श्रद्धापूर्वक जो प्रदान किया जाता है, उन अनुष्ठानोंको 'श्राद्ध' कहा जाता है। यही श्राद्धका लक्षण है। यही श्राद्धकी मुख्य चार क्रियाएँ हैं—पिण्डदान, तर्पण, हवन और ब्राह्मण-भोजन।

क्या श्राद्धद्वारा मृत प्राणियोंकी तृप्ति होती है?

नास्तिकलोग प्रायः कहा करते हैं कि मृत प्राणी सत्कर्मानुसार न जाने किस लोकमें और किस योनिमें गया है। ऐसी दशामें हमारे द्वारा किये श्राद्धकी वस्तु उसे कैसे प्राप्त हो सकती है? यदि वह मरकर हाथी बन गया तो हमारा दिया सेरभर अन्न उसको कैसे तृप्त कर सकेगा? और यदि वह कीट-पतङ्ग आदि लघु शरीरधारी बन गया होगा तो सेरभर अन्नका पिण्ड उसपर भारभूत होकर उसकी मृत्युका कारण हो जायगा। साथ ही हमारी दी गयी शय्या-वस्त्र आदि वस्तुओंका भी पशु-पक्षी आदि योनियोंमें पुनर्जन्म धारण करनेवालेके लिये क्या उपयोग हो सकता है? इत्यादि-इत्यादि।

इन सब शङ्काओं और संदेहोंका एकमात्र यही कारण है कि नास्तिक अपनी प्रदत्त वस्तुओंको ज्यों-की-त्यों परलोकमें मिलनेकी कल्पना किये बैठा है; अन्यथा वेदादि शास्त्रोंके अनुसार तो पूर्वोक्त चारों श्राद्ध-कृत्योंके अनुष्ठानके उपलक्ष्यमें मृत प्राणीको सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी ईश्वरके न्यायसे 'तृप्ति' प्राप्त होती है अर्थात् वह जिस भी योनिमें पहुँचा होगा, उस योनिमें उसको तृप्त करनेवाली जो-जो स्वाभाविक वस्तुएँ होंगी, श्राद्धका फल उसी रूपमें परिवर्तित होकर मृत प्राणीकी तृप्तिका कारण होगा। 'तृप्ति' का अर्थ है—भोग्य पदार्थोंकी लालसाकी निवृत्ति। जबतक किसी भी जीवमें यह लालसा बनी रहती है, तबतक वह मोक्षका अधिकारी नहीं हो सकता। अतः जीवनकालमें अपनी साधनासे जिन प्राणियोंने लालसाकी निवृत्ति प्राप्त नहीं की है, वे मृत्युके अनन्तर भी लालसाके प्रभावमें पड़े भटकते रहते हैं। इसलिये मृत प्राणीके पुत्रादि सम्बन्धियोंका यह कर्तव्य है कि वे श्राद्धक्रियाद्वारा मृत व्यक्तिकी लालसाको निवृत्त करनेका प्रयत्न करें।

श्राद्धका भार पुत्रादिपर क्यों?

शास्त्र कहता है कि 'यदि मनुष्य अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करे तो उसके द्वारा उसकी प्राणशक्ति इतनी प्रबल हो जायगी कि मृत्युके समय बिना प्रयास उसके प्राण कपाल फोड़कर शरीरसे बाहर निकलेंगे और सूर्यमण्डलका भेदन कर ब्रह्माण्डकी परिधिको पार कर जायँगे। वह मुक्त हो जायगा।' परंतु संतान उत्पन्न करनेवाले गृहस्थोंकी वह शक्ति क्षीण हो जाती है। उनके प्राण अन्य किसी द्वारसे निकलते हैं। इसीलिये दाहसंस्कारके समय पुत्र पिताकी कपालक्रिया करता हुआ, मानो यह प्रतिज्ञा करता है कि 'मृत पिताजी! यदि आप मुझ-सरीखे पुत्रको उत्पन्न न करके अपने अखण्ड ब्रह्मचर्यको धारण करते तो आज उस ब्रह्मचर्यके ही कारण आपकी मृत्यु कपाल फूटकर होती और आप मुक्त हो जाते; परंतु आपने मेरे उत्पन्न करनेमें अपनी मुक्तिका लोभ छोड़ा है। अतः अब मेरा यह कर्तव्य है कि मैं श्राद्ध-कृत्यद्वारा आपकी उस कमीकी पूर्ति करके आपकी मुक्तिमें सहायक बनूँ।'

क्या हमें कभी मिला है?

क्या हमें पूर्वजन्मके सम्बन्धियोंद्वारा किये श्राद्धका फल इस जन्ममें मिल रहा है? आखिर हम भी तो आस्तिक पुत्रोंके पिता हो सकते हैं। हमारे लिये पूर्वजन्मके सम्बन्धी भी श्राद्ध करते ही होंगे—परंतु क्या हमें कभी यह अनुभव हुआ है कि अमुक वस्तु हमें श्राद्धके उपलक्ष्यमें प्राप्त हुई है?

इत्यादि शङ्काओंकी निवृत्तिके लिये कहा जा सकता है कि संसारमें हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि सभी जीव दो प्रकारके हैं—एक तृप्त और दूसरे अतृप्त। जैसे एक कुत्ता आँगनके एक कोनेमें शान्त बैठा रहता है। गृहस्वामी जो प्राप्त उसको प्रदान करता है, वह उसे खाकर ही संतोष कर लेता है; परंतु दूसरा कुत्ता इसके सर्वथा विपरीत इस ताकमें रहता है कि घरवालोंकी जरा-सी आँख चूके तो वह चौकेमें घुसकर रोटी उठाकर रफूचक्कर हो जाय। इसी प्रकार अधिकांश गाय, भैंस आदि—मालिक जो चारा उनके आगे डालता है, उसे खाकर ही संतोष करती हैं; परंतु

कुछ ऐसी भी होती हैं, जिनको हरे खेत खानेकी बुरी आदत होती है। गोपाल उनके गलेमें घंटी बाँधता है, मोटा लक्कड़ बाँधता है; परंतु फिर भी वे काँटोंकी ऊँची बाड़ें लाँघकर हरा खेत खाये बिना नहीं मानती हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी दो प्रकारके स्वभावके हैं—एक तृप्त, दूसरे अतृप्त। तृप्त वह है, जो अपने घरका चनाचूरी—जो भी भोजन मिलता है—उसे खाकर ही संतुष्ट रहता है। उसे अपने पड़ोसमें रहते धनीके उन छत्तीस पदार्थोंकी कभी लालसा नहीं होती। परंतु ऐसे भी जंगी जीव हैं, जो धनी-मानी हैं, दिनभर नानाविध पदार्थ चरते रहते हैं; परंतु उनकी भोगोंसे कभी तृप्ति नहीं होती। रातको सोते-सोते भी उनको खाने-पीनेके ही स्वप्न आते हैं। बस, समझ लीजिये कि जो प्राणी तृप्तकोटिके हैं, वे वे हैं, जिनके कि पूर्वजन्मके सम्बन्धी श्राद्ध-कृत्य करते हैं, जिसके फलस्वरूप उनको यह तृप्ति प्राप्त है। दूसरी कोटिके अतृप्त व्यक्ति वे हैं, जिनके पूर्वजन्मके नास्तिक पुत्र श्राद्धादि नहीं करते। वे लालसाके गर्तमें पड़े भटकते हैं।

पितरोंको दिखा दो तो हम मानें ?

यह नास्तिकोंका अन्तिम ब्रह्मास्त्र है। परंतु इन सज्जनोंको यह विदित नहीं कि स्थूलशरीर ही नेत्रका विषय है। सूक्ष्म आत्मा चर्मचक्षुओंका विषय नहीं। मरते हुए प्राणीका जीव सबके देखते-देखते निकल जाता है, परंतु वह किसीको भी दीख नहीं पड़ता। अतः जो जीव शरीरसे निकल गया है, वही श्राद्धमें आवाहन करनेपर आता है। जब वह जाता हुआ नहीं दीख पड़ा, तब वह आता हुआ कैसे दीखेगा। जातेको नास्तिक दिखा दें तो हम आतेको दिखा देंगे। योगी और दिव्य चक्षुवालोंको ही पितृदर्शन होते हैं। भगवान् रामके वनमें श्राद्ध करते समय सीता माताने निमन्त्रित ब्राह्मणोंमें दशरथजीके दर्शन किये थे। भीष्मजीने श्राद्धकालमें अपने पिता शान्तनुके हाथके दर्शन किये थे। यह इतिहास-

निकालते हैं। रोमन कैथलिक ईसाई कब्रोंपर पुष्पवाटिका लगाते हैं, दूधकी बोतलें रखते हैं, क्रॉसका चिह्न खड़ा करते हैं। आर्यसमाज अजमेरमें स्वामी दयानन्दजीके चितास्थानपर अखण्ड अग्नि जला रहे हैं। अन्यान्य सभ्य लोग भी सभा जुटाकर एक मिनट सब मौन खड़े होकर खास प्रार्थना करते हैं; श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं। ये सब विभिन्न क्रियाएँ श्राद्धकी प्रतिनिधिभूत क्रियाएँ ही हैं। यह विषय इतना विस्तृत और परिश्रमगम्य है कि जिसे एक लेख क्या किसी एक ग्रन्थमें भी पूरा-का-पूरा नहीं लिखा जा सकता।*

नरकोंसे मनुष्ययोनिमें आये हुए प्राणियोंके लक्षण

परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्मविघट्टनम्। नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम्॥
परस्वापहरणाशौचं देवतानां च कुत्सना। निकृत्या वञ्चनं नृणां कार्पण्यं च नृणां वधः॥
यानि च प्रतिषिद्धानि तत्प्रवृत्तिश्च संतता। उपलक्ष्याणि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु॥
(मार्कण्डेयपुराण १५। ३९–४१)

परनिन्दा करना, कृतघ्नता (उपकार करनेवालेका उपकार न मानना), दूसरेके गुप्त भेदको खोलना, निष्ठुरता, निर्दयता, परस्त्री या परपुरुषसेवन, दूसरेके धनका हरण करना, अपवित्र रहना, देवताओंकी निन्दा करना, छल-कपटसे मनुष्योंको ठगना, कंजूसी करना, मनुष्योंकी हत्या करना इत्यादि निषिद्ध कर्मोंमें निरन्तर लगे रहना—नरक भोगकर लौटे हुए मनुष्योंकी पहचान है।

* जिज्ञासुओंको अधिक जाननेकी इच्छा हो तो वे लेखक महोदयके 'श्राद्ध' नामक सप्रमाणात्मक ग्रन्थको उदारतासे देख सकते हैं। यह ग्रन्थ १०२ ए., कमलानगर, दिल्लीमें मिल सकता है।

महामृत्युञ्जयका चमत्कार

(लेखक—श्रीवेंकटलालजी ओझा)

मेरे जीवनमें एक समय ऐसा आया, जब मेरे सभी कार्य उलटे हो रहे थे। चारों ओर परेशानियाँ-ही-परेशानियाँ दिखायी दे रही थीं। अच्छे कार्यका भी परिणाम बुरा ही निकल रहा था। पूज्य पिताजीके आदेशसे मैं जन्मपत्रिका लेकर दैवज्ञके पास गया। उन्होंने पत्रिका देखकर कौन-सी दशा चल रही है, यह कुछ नहीं कहा। कहा बस इतना ही, कि 'यदि अपना कल्याण चाहते हो तो स्वयं 'महामृत्युञ्जय'का जप करो। तुम ब्राह्मण हो। दूसरेसे जप करानेसे तुम्हें फल नहीं मिलेगा। यदि इसके लिये तैयार हो तो मैं जप बतलाता हूँ।' अतः मैं इसके लिये तैयार हो गया। पण्डितजीके आदेशसे मैंने सं० १९९७ श्रावण शुक्ल पूर्णिमाके शुभ मुहूर्तसे महामृत्युञ्जयका जप आरम्भ किया। तत्काल फल मिलने लगा। कई उलझे हुए कार्य अनायास ही सुलझ गये। बिगड़े काम बन गये। जप बराबर चलता रहा। सं० २००१ माघ शुक्ल ११ को अचानक जब मैं एक यन्त्रको खोलकर, वापस यथास्थान बैठाकर उसका परीक्षण कर रहा था। दस अश्वबलसे चलनेवाला यन्त्र एकाएक रुक गया जब कि बिजली चालू ही थी। यन्त्र रुक जानेपर पता चला कि मेरा हाथ उसमें आ गया है। दूसरे आदमीने बिजली बंद की। यन्त्रको हाथोंसे उलटा घुमाकर हाथ निकाला गया। हथेली और अँगुलियाँ तो बच गयीं, पर अंगूठा मूलीकी तरह कटकर पतली चमड़ीके साथ लटक रहा था। मुझे किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ, न दर्द ही। पर एक व्यक्ति इसे देखकर मूर्च्छित हो गया। अस्पताल गया। पट्टी बँधाकर घर आ गया, तब कहीं दर्द चालू हुआ।

जैसे ही पण्डितजीको समाचार मिला, उन्होंने यही कहा 'अच्छा हुआ'। तब कहीं उन्होंने आकर पूज्य पिताजीको बतलाया कि 'प्राणघातक मार्केश था, जो अब टल गया है। सूलीकी पीड़ा सुईमें बदल गयी।' चार-पाँच मास मैं बहुत बीमार रहा। दुआ और दवा दोनों चलते रहे। जो कोई मिलने आता, यही कहता—'सीधे हाथका अंगूठा कटा है। अब लिखना कैसे होगा?' मैं कोई उत्तर न देकर मौन रह जाता; क्योंकि अस्पताल जानेके पहले मैंने अपने सीधे हाथसे हस्ताक्षर करके देख लिये थे। अतः हितैषियोंके निराशावादी कथनका मुझपर कोई प्रभाव नहीं हुआ। मेरा आत्मबल अक्षुण्ण रहा। शारीरिक दृष्टिसे मैं बीमार था, पर मेरा मानसिक बल अक्षुण्ण बना रहा।

डाक्टरद्वारा गलत ढंगसे पट्टी बँधनेसे मेरी अँगुलियाँ पहले तो मुड़ीं और बादमें पतली पड़ गयीं। पर सद्भाग्यसे जर्मनीसे लौटे डा० चम्पत बसु मिल गये। उनकी चिकित्सासे हाथ बच गया। अन्यथा रक्तसंचार न होनेसे हाथ सूख जाता।

भगवान् महामृत्युञ्जयकी जप-विधि बड़ी सरल है। जो इस प्रकार है—१. संकल्प, २. श्रीगायत्रीकी एक माला, ३. महामृत्युञ्जयकी पाँच माला और ४. श्रीगायत्रीकी एक माला।

महामृत्युञ्जय जप—

अथ पदन्यासः—

ॐ त्र्यम्बकं शिरसि। यजामहे भ्रुवोः। सुगन्धिम् दृशोः। पुष्टिवर्द्धनं मुखे। उर्वारुकं कण्ठे। इव हृदये। बन्धनात् उदरे। मृत्योः गुह्ये। मुक्षीय ऊर्वोः। मां जान्वोः। अमृतात् पादयोः। इति पदन्यासः।

अथ मृत्युञ्जयध्यानम्—

ॐ हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटाभातं त्रिनेत्रं भजे॥
मृत्युञ्जय महादेव त्राहि मां शरणागतम्।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः॥

अथ बृहन्मन्त्रकी पाँच माला जप—

ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं
यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्।
भूर्भुवः स्वरों जूं सः ह्रौं ॐ।

मैं तो उपर्युक्त मन्त्रका जप आज भी कर रहा हूँ। पर कुछ विज्ञजन निम्नलिखित छोटे मन्त्रके लिये भी कहते हैं—

ॐ जूं सः सः जूं ॐ।

इस प्रकार महामृत्युञ्जयके दैविक चमत्कारसे उस वि—

यन्त्र स्वयं ही रुक गया और मेरा हाथ बच गया। अन्यथा, आधा हाथ कट जानेसे मैं बेबस हो जाता। मेरा पढ़ना-लिखना ही नहीं छूट जाता, मेरा जीवन भी दूभर हो जाता, जो मृत्युसे भी अधिक भयंकर और कष्टदायक था। इसके साथ ही कोई नाड़ी कट जाती तो मृत्यु तो निश्चित ही थी। मेरा तो पुनर्जन्म ही भगवान् मृत्युञ्जयकी कृपासे हुआ।

अध्यात्म-लोकका विज्ञानात्मक आलोक

(लेखक—श्रीयुगलसिंहजी खीची, एम० ए०, बार-एट-ला, विद्यावारिधि)

सन् १९४३में जब द्वितीय महायुद्धकी ज्वाला समस्त संसारको त्रस्त कर रही थी, मुझे जयपुरके एक होटलमें अमेरिकनोंके साथ ठहरनेका सुयोग प्राप्त हुआ। यह दल जापानके विरुद्ध इस ज्वालामें कूदने जा रहा था। उसका नेता अमेरिकाके किसी विश्वविद्यालयमें भौतिक शास्त्रका प्राध्यापक था। हम दोनोंके कमरे निकट होनेके कारण परस्पर सम्पर्क स्थापित हो गया और विविध विषयोंपर वार्तालापकी नौबत शामकी चायपर आ गयी। आत्माके बारेमें चर्चा छिड़नेपर वे कहने लगे कि 'जिसे आत्मा माना जाता है, वह हमारे शरीरके परमाणुओंके संघर्षसे उत्पन्न हुई चेतना, भौतिक विज्ञानके अनुसार मानी जाती है और देहका नाश होनेपर यह नष्ट हो जाती है।' मुझसे प्रश्न करनेपर मैंने कहा कि 'भारतीय संस्कृतिके मूलमें चार मुख्य सिद्धान्त हैं—(१) आत्मा, (२) कर्मफल, (३) परलोक और (४) पुनर्जन्म।' सार यह है कि जीवात्मा अपने कर्मके अनुसार परलोकमें जाता है या भूतलपर फिर जन्म लेता है।

पाश्चात्त्य देशोंमें अधिकांश विज्ञानवेत्ताओंके कोशमें आत्माके लिये कोई स्थान नहीं है। हमारे यहाँ भी इस प्रकारके अनेक विद्वान् हैं, जो आत्मा, परमात्मा, परलोक और पुनर्जन्मको अन्धविश्वासकी बकवास बतलाते हैं। ता० २२। १०। १९६८ के 'इण्डियन एक्सप्रेस' नामक दैनिक पत्रमें 'पुनर्जन्म और उसकी स्मृति'के सम्बन्धमें कतिपय भारतीय विज्ञान-विशेषज्ञोंके तत्सम्बन्धी विचार लिखे गये हैं। एक प्रोफेसरने फरमाया कि 'हमारे यहाँके नितान्त अनपढ़ ग्रामीणोंमें पुनर्जन्मके वृत्तान्त मिले हैं और अंधविश्वासके अतिरिक्त उनका कोई आधार नहीं है।' दूसरे एक महोदयका मत था कि 'बच्चोंमें पुनर्जन्मकी स्मृति हिस्टीरिया रोगकी सूचक है।'

हमारे धर्मका मूलतत्त्व यह है कि नश्वर देहमें चेतन अमर आत्मा विद्यमान है और प्रकृतिके सारे पदार्थ अचेतन हैं। आध्यात्मिक प्रश्नोंका विचार वेदान्त करता है और विज्ञानका क्षेत्र भौतिक तत्त्व है। मनीषी बेकन के शब्दोंमें 'हम प्रकृतिके समक्ष प्रश्न प्रस्तुत करते हैं और उससे उपयुक्त उत्तर प्राप्त करते हैं।' वैज्ञानिक परिपाटीका मूल सिद्धान्त यह है कि किसी घटनाकी खोज पूर्वाग्रहरहित होकर निरीक्षण या परीक्षणद्वारा की जाय। निरीक्षणमें किसी घटनाका अवलोकन इन्द्रियोंद्वारा किया जाता है। उदाहरणके लिये सूर्य या चन्द्रके ग्रहणको हम केवल देख सकते हैं। चन्द्रमा और पृथ्वीकी गतिका ज्ञान प्राप्त होनेके कारण हम गणितशास्त्रद्वारा अगले ग्रहणका निश्चित करना बतला सकते हैं। परीक्षण प्रयोगात्मक है और घटनाएँ हमारे नियन्त्रणमें घटित की जाती हैं। उदाहरणके लिये हम प्रयोगद्वारा यह जान सकते हैं कि वस्तुका आयतन गरम करनेपर बढ़ता है और ठंड पाकर सिकुड़ जाता है। किसी धातुका गोला जो लोहेके छल्लेमेंसे होकर निकल जाता है, पर वह गरम किये जानेपर उसी छल्लेमेंसे नहीं गुजर सकता। जब ठंडा पानी डालनेपर वह शीतल हो जाता है, तब छल्लेमेंसे होकर निकल जाता है। अब विचारणीय यह है कि आध्यात्मिक समस्याओंके सुलझानेमें वैज्ञानिक प्रणाली कहाँतक सहायक हो सकती है? यह निस्संदेह है कि प्राकृतिक और आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रोंमें अवलोकनका प्रयोग होता है। जैसे कर्मोंका फल और पूर्वजन्मकी स्मृति अवलोकन और अनुभवके अन्तर्गत है।

आध्यात्मिक रहस्योंको जाननेके लिये पदे-पदे बाधाओं और समस्याओंका सामना करना पड़ता है। ऐसे रहस्य के बारेमें कहा गया है—'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' (तैत्तिरीय उप० २। ४); क्योंकि वे अचिन्त्य हैं। महाभारतके भीष्मपर्वमें अचिन्त्यकी व्याख्या इस प्रकार है—

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥
(५ । १२)

अर्थात् 'जो पदार्थ इन्द्रियातीत होनेके कारण चिन्तन नहीं किये जा सकते, उनका निश्चय केवल तर्कसे नहीं हो सकता। जो मूल प्रकृतिसे परे हैं वे पदार्थ अचिन्त्य कहलाते हैं।' इस भावको शेक्सपीयरने निज नाटक 'हेमलेट'में इस प्रकार व्यक्त किया है—

"There are more things in heaven and earth, Horatio, than are dreamt of in your philosophy."

अर्थात् 'स्वर्गमें और पृथ्वीपर ऐसे अनेक पदार्थ हैं, जिनके सम्बन्धमें दर्शन शास्त्र कल्पना तक नहीं करता।' ऐसी हालतमें प्रश्न उठता है कि 'जो पदार्थ निरीक्षण, परीक्षण या चिन्तनकी गतिसे परे हैं, उनकी जानकारी कैसे की जाय ?' प्रश्नका उत्तर यह है कि वे स्वयंवेद्य या अनुभवगम्य हैं। भर्तृहरिके शब्दोंमें स्वानुभूत्येकमानाय—अर्थात् उनके अस्तित्वका एक मात्र प्रमाण निज अनुभव है।' अनुभव पुरुषोंके अन्तःकरणमें होता है। अतएव पवित्र अन्तःकरणवाले महात्माओंका अनुमान भी प्रमाण माना गया है। आप्तपुरुषका वचन प्रमाणोंके अन्तर्गत है। प्लेटोने अपने ग्रन्थ 'रिपब्लिक' (Republic) में ऐसे पुरुषको 'आप्त' (prudent) कहा है और उसीके निर्णयको अन्तिम माना है। वही महाजन कहलाने योग्य है और उसका आचरण दूसरोंके लिये पथ-प्रदर्शक है। जैसा कि कहा गया है—'महाजनो येन गतः स पन्थाः।' सच्चा मार्ग वही है, जिसपर महाजन चलता है। श्रीयुत् ए. हक्सलेने अपनी पुस्तक (Perennial Philosophy) 'शाश्वत दर्शनशास्त्र'में संतों और महात्माओंके विचारोंको ज्ञानका मूलाधार बतलाया है।

सृष्टि दो प्रकारकी है—जड या अचेतन और चेतन। हमारे सृष्टि-विज्ञानके अनुसार चेतन सृष्टिके चार विभाग इस तरह हैं—(१) जरायुज (वह जीव, जो आवरणमें लिपटा उत्पन्न हो), (२) अण्डज (अंडेसे पैदा होनेवाले जीव), (३) स्वेदज (पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले जीव), (४) उद्भिज्ज (जो भूमि फोड़कर निकलते हैं, जैसे पेड़-पौधे)। श्री. जे. सी. बोसने अपने वैज्ञानिक यन्त्रोंसे यह सिद्ध कर दिखाया कि वनस्पतिमें चेतना है। जड-जगत् पञ्चभूतात्मक हैं और आकाशादि किसी भौतिक तत्त्वमें चेतना नहीं है। आधिभौतिक विज्ञानने उन्नति करते-करते ऐसे यन्त्रोंका आविष्कार कर दिया है, जो गणना, अनुवाद, संदेश इत्यादि कठिन कार्य सफलतापूर्वक कर रहे हैं। वैज्ञानिक अणु बम-से लाखों प्राणियोंकी हत्या कर सकता है, पर एक अणुमें भी चेतनता उत्पन्न नहीं कर सकता। अमेरिकाके विश्व-विख्यात वैज्ञानिक श्री जे. बी. राइन अपने ग्रन्थ (The Reach of the Mind)के प्रारम्भमें लिखते हैं-

"Science cannot explain what the human mind really is and how it works with the brain. No one even pretends to know how consciousness is produced."

'विज्ञान यह नहीं बतला सकता कि मानव-मन वास्तवमें क्या है और वह मस्तिष्कके साथ कैसे काम करता है। कोई वैज्ञानिक यह जाननेका दावा तक नहीं कर सकता कि चेतना कैसे पैदा होती है।'

कहा जाता है कि शरीरका चेतन होना प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। शंकरने ब्रह्मसूत्रोंपर निज शारीरक-भाष्यमें देहात्मवादका पूरी तरह खण्डन किया है। वे चेतनाका कारण आत्मा मानते हैं। धर्मी और उसका धर्म अभिन्न है। अग्नि धर्मी और जलाना या तपाना उसका धर्म है। जहाँ आग है, वहाँ यह गुण देखा जायगा। यदि शरीरका धर्म चेतना होती तो वह सदा शरीरके साथ रहती। पर मरनेपर शरीर पड़ा रहता है और उसमें चेतनाका अभाव हो जाता है। योगवासिष्ठमें देहके चेतनवत् प्रतीत होनेका कारण इस प्रकार बतलाया गया है—

अग्निसंगाद् यथा लोहमग्नित्वमुपगच्छति।
आत्मसङ्गात्तथा गच्छत्यात्मतामिन्द्रियादिकम्॥

'जैसे लोहा अग्निके सङ्गसे तपकर अग्निमय यानी प्रकाशवान् प्रतीत होता है, वैसे ही देह और इन्द्रियाँ इत्यादि आत्माके संसर्गसे आत्माके ही समान चेतन दीख पड़ती हैं।' परम योगी शंकरने प्रयोगात्मक पद्धतिसे यह प्रमाणित कर दिया कि 'जब उनके आत्माने परकायाप्रवेश किया तो उनका शरीर शवमात्र रह गया और जब वे फिर अपने देहमें आ गये तो वह चेतन हो गया।' साप्ताहिक 'हिंदुस्तान'के १७-५-१९५१के अङ्कमें भारतीय सेनामें अवसरप्राप्त अंग्रेज अफसर श्री एल० पी० फैरलका

परकायाप्रवेश और पुनर्जन्मके बारेमें रोचक लेख प्रकाशित हुआ था। वे अध्यात्मवादमें विश्वास रखते थे और किसी योगीसे आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहते थे। सन् १९३९में दैवयोगसे उन्हें एक विचित्र घटना देखनेका मौका मिला। उन्होंने देखा कि नदीमें किसी युवकका शव बहता हुआ जा रहा है और थोड़ी देरके बाद उन्होंने उसीको किनारेपर चलते-फिरते देखा। अपने अर्दलीको उसे लिवा लानेके लिये दौड़ाया। वह उसे लिवा लाया और विस्मय-विस्फारित नेत्रोंसे निवेदन किया कि नदीके तटपर एक वृद्ध साधुकी लाश पड़ी हुई है। फैरलके प्रश्नोत्तरमें उस युवकने कहा कि 'यह शव मेरा ही है और योगबलसे मैंने ही इस शरीरमें प्रवेश किया है।' कुमायूँके पहाड़ोंमें भ्रमण करते हुए फैरलको पुनर्जन्मके सम्बन्धमें एक योगीकी कृपासे प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त हुआ।

अब पुनर्जन्मकी समस्याका विवेचन किया जाता है। मनुष्य इस जन्ममें भले या बुरे जैसे कर्म करता है, तदनुसार उसे देहत्याग करनेपर अगला जन्म या लोक मिलता है। अतएव इस विश्वासका प्रभूत प्रभाव प्रत्येक पुरुषपर पड़ना स्वाभाविक है। इस विश्वासका अभाव अधोगतिका कारण होता है। समस्या यह है कि ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये जायँ कि इस युगके मानवोंपर प्रभाव पड़ सके। पूर्वजन्म और पुनर्जन्म अन्योन्याश्रय हैं और जीवात्माकी अमरतापर निर्भर हैं। आध्यात्मिक क्षेत्रमें सहस्रों अनुसंधानोंने पुनर्जन्मके दो प्रबल प्रमाण प्राप्त किये हैं—(१) पूर्वजन्मकी स्मृति और (२) जन्मजात विलक्षण प्रतिभा। सर्वप्रथम स्मृतिके सम्बन्धमें मनोविज्ञानके नियमोंके अनुसार विचार करना है। इन्द्रियोंद्वारा जो अनुभव होते हैं, वे हमारे मनोमयकोशमें जमा रहते हैं और वे इस प्रकार अन्तःकरणके संस्कार बन जाते हैं। इस जमा रहनेको धारणा (Retentiveness) कहते हैं। यही सिद्धान्त योगदर्शनके सूत्र 'अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।' (१-११) अर्थात् अनुभूत विषयका न चोरा या खोया जाना 'स्मृति' है। तात्पर्य यह है कि धारणा उसी बातकी बनी रहती है, जो अनुभवमें आ गयी है। मनोविज्ञान सिद्ध करता है कि 'बालकमें किसी अनुभवकी स्मृतिका लोप नहीं होता।' चित्तके ऐसे संस्कार किसी निमित्तको पाकर स्फुरित हो जाते हैं और इस प्रक्रियाका स्मरण या याद आ जाना (Recall) कहलाता है। तीसरी प्रक्रिया स्मृतिके स्थान, पुरुष इत्यादि किसी विषयकी पहचान है और उसे पहचान (Recognition) कहा जाता है। अनेक पत्रोंमें प्रकाशित घटनाओंकी सहायतासे पूर्वजन्मके सम्बन्धमें ये तीनों सिद्धान्त स्पष्ट किये जाते हैं।* अतएव स्मृतिका मनोविज्ञान पूर्वजन्मको सिद्ध करता है।

पुनर्जन्मके सम्बन्धमें प्रतिभाके पहलूसे विचार करना जरूरी है। ता० १०-११-१९६८ के साप्ताहिक 'संडे स्टैण्डर्ड' (Sunday Standard) के दिल्ली संस्करणमें यह समाचार छपा है कि 'अहमदाबादका एक बालक तीन वर्षकी अवस्थासे ही 'गुजराती' कहानियाँ कहने लगा और वह अब चार वर्षका है। उसका कहानी-संग्रह (The Black, Black Rain) बम्बईसे हालमें ही प्रकाशित हुआ है। लिखना-पढ़ना तो यह अब किंडरगार्टेन स्कूलमें सीख रहा है।' संसारका इतिहास प्रतिभाशाली बालकोंके विचित्र वृत्तान्तोंसे भरा हुआ है। पाश्चात्त्य जगत्में जे० एस० मिलने छः सालकी अवस्थामें यूनानी भाषाकी महान् कृतियोंको पढ़ डाला और मोजार्टने छठे सालमें ही संगीतकी रचना कर प्रख्याति प्राप्त की। हमारे देशमें अगणित प्रतिभाशाली बालकोंने अपनी गुणगरिमासे प्रसिद्धि प्राप्त की है। उनमें शंकराचार्यका नाम अग्रगण्य है। वे आठ वर्षकी अवस्थामें चारों वेदोंमें और बारह वर्षके होनेतक सब शास्त्रोंमें पारंगत हो गये और सोलह साल पूरे करनेपर उपनिषद्, वेदान्तदर्शन और गीतापर भाष्य लिख डाले। सारे भारतमें वैदिक धर्म और अद्वैतवादका प्रचार करते हुए पुरी, शृंगेरी, द्वारका और बदरीनाथमें मठोंकी स्थापना की। इन मठोंके अध्यक्ष परम विद्वान् होते हैं और 'शंकराचार्य' कहलाते हैं। आदि शंकराचार्यकी-सी प्रतिभाको 'जन्मजा सिद्धि'की संज्ञा दी जाती है। महर्षि पतञ्जलिने योगदर्शनके कैवल्यपादके प्रथम सूत्रमें जो पाँच प्रकारकी सिद्धियाँ गिनायी हैं, उनमें इस सिद्धिको प्रथम स्थान दिया गया है। पूर्वजन्ममें जीवात्मा जो ज्ञान प्राप्त करता है, वह उसके सूक्ष्म शरीरमें बना रहता है और उसका पुनर्जन्म होनेपर प्रतिभाके रूपमें प्रकट होता है। 'गीताके अध्याय १५ श्लोक ७-८ में बतलाया गया है कि 'जैसे वायु गन्धको साथ ले जाती है, उसी प्रकार जीवात्मा स्थूलशरीरको छोड़ते हुए सूक्ष्मशरीरको

* [illegible]

साथ लेता हुआ नयी देहमें जाता है ।' यही बात छठे अध्यायमें कही गयी है कि 'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।' (६ । ४३) अर्थात् जब पुरुष मतिमान् योगियोंके कुलमें जन्म लेता है तो पहले देहमें प्राप्त किये हुए बुद्धिके संस्कारोंका उसे अनायास ही लाभ मिलता है । इस प्रकार सिद्धि प्राप्त करनेमें उसका प्रयास सरल और सहज हो जाता है ।

शास्त्रोंमें पूर्वजन्मकी स्मृतिको 'जाति-स्मर' या 'जाति-ज्ञान' कहा गया है । ऐतरेयोपनिषद् (२ । ५) में और बृहदारण्यक (१ । ४ । १०) में वामदेवऋषिकी पूर्व-जन्मोंकी स्मृतिका उल्लेख है । योगदर्शनके सूत्र (३।१८) 'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ।' पर व्यास-भाष्यमें योगीश्वर जैगीषव्यको अनेक जन्मान्तरोंकी स्मृति होनी बतलायी गयी है । बुद्ध भगवान्‌की जातक कथाओंमें उनके पूर्वजन्मोंकी स्मृतिका विशद वर्णन है । भारतमें परामनोविज्ञानसम्बन्धी संस्थाओंने ऐसी अनेक घटनाओंकी खोज की है, जिनमें पूर्वजन्मोंकी स्मृति सच्ची साबित हुई है । इन घटनाओंसे यह प्रमाणित होता है कि अनेक पूर्वजन्मोंकी स्मृति धारण करनेवाला वही जीवात्मा सतत विद्यमान रहता है । इसी सिद्धान्तका वेदान्तदर्शनके सूत्र 'ज्ञोऽत एव ।' (२ । ३ । १८) में अर्थात् 'जीवात्मा जन्म-मरणसे रहित है, इसलिये वह पूर्वजन्मोंको जानता है'—प्रतिपादन किया गया है । यह अनुभवसिद्ध है कि बालकपन, जवानी और बुढ़ापेमें हमारे शरीरकी अवस्थाएँ बदलनेपर भी प्रत्येक पुरुषको लड़कपनकी कई बातें याद रहती हैं; क्योंकि वह (जीवात्मा) नहीं बदलता । शरीर शब्दकी (शॄ+ईरन्) व्युत्पत्ति बतलाती है कि वह क्षय होता जाता है और शरीर-विज्ञानके अनुसार जब धातुओंका नवीनीकरण क्षतिकी गतिसे पिछड़ने लगता है, तब बुढ़ापा और निर्बलताका आरम्भ होने लगता है । जिस प्रकार किसी कार्यालयमें पुराने कर्मचारियोंके अवसरप्राप्त होनेपर नये नौकर उनकी जगहोंपर आते रहते हैं, उसी प्रकार हमारी देहमें भी उपर्युक्त क्रम चलता रहता है ।

हमारे सामने अब यह प्रश्न आता है कि पूर्वजन्मकी स्मृतिका आश्रय कौन है ? कठोपनिषद्के श्लोक 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं ... ।' (१ । ३ । ४) अर्थात् 'तत्त्वज्ञानी ... र सूक्ष्मशरीरसे युक्त मानते हैं ।' आत्मा निर्विकार होनेके कारण संस्कारोंके विकारोंसे रहित है जैसा कि गीतामें कहा है—'सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ।' (१३ । ३२) अर्थात् 'जिस प्रकार आकाश लिप्यमान नहीं होता है, उसी प्रकार देहमें सर्वत्र स्थित आत्मा विकारोंसे निर्लिप्त रहता है ।' जैसे कागजके दो पृष्ठ होते हैं—अगला और पिछला, वैसे ही जीवात्माका अग्रिम आत्मा है और पीछे सूक्ष्मशरीर है । गीताके अध्याय ७ श्लोक ४-५ के अनुसार सूक्ष्मशरीर परमात्माकी अपरा प्रकृति और जीवरूप परा प्रकृति है । अध्याय १५ श्लोक ७ में जीवात्माको परमात्माका ही अंश बतलाया गया है, अतएव यह भी दो प्रकृतिवाला है । वेदान्तदर्शनके सूत्र 'तस्य च नित्यत्वात् ।' में जीवात्माको नित्य माना गया है । गीताके अध्याय १३ में पुरुष और प्रकृति दोनोंको 'अनादि' कहा है । इसी अपरा प्रकृतिके दो भाग हैं—स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर । स्थूलशरीरके मरनेपर—परित्याग करनेपर जीवात्माका सम्बन्ध सूक्ष्मशरीरसे बना रहता है और उसीमें पूर्वजन्मोंकी स्मृतिका निवास है । सूक्ष्मदेह प्रकृतिजन्य है, अतएव प्रकृतिके स्वरूपका आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक पहलुओंसे विवेचन करना है ।

सांख्यदर्शनके अनुसार मुख्य तत्त्व दो हैं—चित् या पुरुष और अचित् या प्रकृति । इन दोनोंके सम्पर्कसे सृष्टिकी उत्पत्ति होती है । सत्त्व, रज और तम—ये तीन प्रकृतिके गुण माने गये हैं । अतः यह त्रिगुणात्मिका कहलाती है । यह मूलप्रकृति अव्यक्त है और सूक्ष्मशरीरके बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ इत्यादि प्रकृतिसे ही उत्पन्न होते हैं । अन्तःकरण और भौतिक पदार्थ सजातीय होनेके कारण एक दूसरेको प्रभावित करते हैं । कहा भी है—'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः ।' आहार शुद्ध हो तो अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है । इसीलिये गीतामें 'आहाराः सात्त्विकप्रियाः ।' (१७ । ८) का उल्लेख है । तामसप्रिय भोजनके कारण हमारा देश अधोगतिको प्राप्त हो रहा है । सूक्ष्मशरीरका प्रत्येक तत्त्व अगोचर होता है और अनुमान ही उसका प्रमाण है । उदाहरणके लिये प्रेम, दया इत्यादि अन्तःकरणके धर्म या गुण हैं । बाहरी व्यवहारसे उनके अस्तित्वका अनुमान होता है । इस प्रकारकी मानसिक चेष्टाएँ लक्षणोंसे जानी जाती हैं । बुद्धिको 'परोक्षज्ञानफला' कहा है । अर्थात् 'दूसरेकी निगूढ़ वृत्तिका ज्ञान उसकी चेष्टाओंसे बुद्धि कर लेती है ।' सूक्ष्म-देहके आकारके बारेमें श्वेताश्वतरोपनिषद्में कहा गया है—

'बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।' (५-९) अर्थात् 'यह बालके नोकके दस हजार भाग करनेपर एक भाग-जितना सूक्ष्म है ।' स्थूलशरीरसे वियोग होनेपर जीवात्मा इसी लिङ्गदेहसे युक्त रहता है और वह योगबलसे परकायामें प्रवेश कर सकता है । यह आत्मबलसे पूर्व स्थूलशरीरमें प्रकट हो जाता है । वाल्मीकिरामायणके युद्धकाण्ड, अध्याय ११९ में यह वर्णन है कि 'सीताजीकी अग्निपरीक्षाके पश्चात् इन्द्रलोकसे दशरथजी विमानद्वारा आये और उन्होंने रामको गोदमें लिया ।' महाभारतमें भी उल्लेख है कि 'दिवंगत परीक्षित् अपने प्रिय पुत्र जनमेजयसे मिलने पूर्वदेह धारणकर आये थे ।' जीवात्मा प्रेतयोनिको प्राप्त करनेपर सूक्ष्मशरीर धारण करता है, पर वह स्थूलदेहमें भी प्रकट हो सकता है ।

इस जन्म और पूर्वजन्मोंकी स्मृतियोंका सम्भार जिस प्रकृतिसे उत्पन्न सूक्ष्मशरीरमें समाया हुआ है, उसके सम्बन्धमें आधिभौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे विचार करना है । आधुनिक अनुसंधानोंके अनुसार इस भूतलपर जो प्राकृतिक तत्त्व पाये जाते हैं, उनकी संख्या १०३ है और उनके दो भाग हैं । यथा (१) धातु—लोहा, सोना, चाँदी इत्यादि और (२) अधातु—ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन इत्यादि । 'तत्त्व' वह पदार्थ है जिसकी स्वतन्त्र इकाई (unit) है । प्रत्येक तत्त्व कणोंका समूह है । प्रातःकालमें सूर्यकी किरणें आपके कमरेमें प्रवेश करनेपर अनेक कण ऊपरको उड़ते हुए दिखायी देंगे । यदि हम सोनेके छोटे-से टुकड़ेको तोड़ते चले जायँ तो ऐसी सीमा आ जायगी जब हम अन्तिम कणको और अधिक छोटे कणोंमें नहीं तोड़ सकते । वास्तवमें भौतिक रीतियोंद्वारा इस अन्तिम सीमातक नहीं पहुँचा जा सकता; केवल ऐसा अनुमान किया जाता है । अनुमानको ही प्रमाण माननेका एकमात्र कारण यह है कि यह अन्तिम कण इतना सूक्ष्म होगा कि उसे न तो छू सकते हैं, न तोड़ सकते हैं और न किसी यन्त्रद्वारा देख सकते हैं । तत्त्वके ऐसे सूक्ष्म कणको 'परमाणु' (Atom) कहते हैं । परमाणु अकेले नहीं रहते । वे उसी तत्त्वके दूसरे परमाणुसे मिलकर उसका अणु (MOLECULE) बना लेते हैं । जब वे अन्य तत्त्वके परमाणुओंसे मिल जाते हैं तब यौगिक (Compound) अणु बनते हैं । अनुमान लगाया गया है कि यदि एक अरब परमाणुओंकी लाइन लगायी जाय तो उसकी लंबाई एक इंच होगी । इस अनुमानकी तुलना श्रुतिके इस वचनसे की जाय कि जीवात्माका लिङ्ग या सूक्ष्मदेह "अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः ।" (श्वे० ५-८) है ।

भौतिक विज्ञानकी आधुनिक प्रगतिने यह सिद्ध कर दिया है कि परमाणुको इलेक्ट्रॉन (Electron), प्रोटॉन (Proton) और न्यूट्रॉन (Neutron) में विभाजित किया जा सकता है । इस प्रकार परमाणुके इन तीन सूक्ष्म कणोंमें समस्त सृष्टिकी रचना है । सहस्रों वर्ष पहले कपिल मुनिने प्रकृतिको त्रिगुणात्मिका बतलाया और सांख्यदर्शनके सत्त्व, रज और तम गुणोंकी परमाणुके कणोंसे समानता है । कणाद मुनिने संसारमें सबसे प्रथम परमाणुको द्रव्यका अन्तिम रूप वैशेषिकदर्शनमें कहा है और उसे नित्य माना है । परमाणुकी रचनाके आधारपर ऐटम-बमकी विनाशकारी शक्तिका आविर्भाव हुआ । सूक्ष्मशरीरमें निहित स्मृतिके सम्बन्धमें कनाडाके प्रसिद्ध स्नायु-सर्जन डा० पेनफील्डके प्रयोगोंका विचित्र वर्णन अंग्रेजी मासिकपत्र 'रीडर्स डाइजेस्ट' सन् १९५८ के सितम्बर अङ्कमें प्रकाशित हुआ है । 'भौतिक विज्ञानके अनुसार मानव-मस्तिष्कमें कोषों (Cells) की संख्या दस अरब आँकी गयी है । सूक्ष्मशरीर, जिसमें स्मृति संचय है, मस्तिष्कके अन्तर्गत है । प्रत्येक कोषमें परमाणुकी रचनाके अनुसार विद्युत्-कण विद्यमान हैं । ज्ञानवाहिनी और गतिवाहिनी नाड़ियाँ इन कोषोंसे संलग्न हैं और प्रत्येक इन्द्रियके अनुभवोंकी स्मृतियोंके अलग-अलग विभाग हैं । पेनफील्डने बाल-सरीखी महीन सुईको एक महिलाके दिमागके मरे गूदेमें लगाया तो वह वर्षों पुराने जच्चाखानेके अनुभवोंको इस प्रकार बतलाने लगी, मानो वे उसी समय उसके सामने हो रहे हों । इसी प्रकार एक युवतीको अपने परिवारसहित रहनेकी पंद्रह साल पहलेकी याद ताजा हो गयी और वह अपने मकानके सामनेवाला गान सुनने लगी । इससे प्रमाणित होता है कि स्थूलशरीरके अवयव विनाशशील हैं, पर सूक्ष्मशरीर नित्य बना रहता है ।'

सारांश यह है कि जिस पुरुषको भूतकालकी घटनाओंकी स्मृति वर्तमानमें बनी रहती है, उसका अस्तित्व तीनों कालोंमें होना स्वयंसिद्ध है और यही सिद्धान्त पूर्वजन्मकी स्मृतिके आधारपर पुनर्जन्मको सिद्ध करता है । अन्तमें स्वामी विवेकानन्दके जीवनकी एक रोचक घटनाका वर्णन

किया जाता है। सन् १८९३ में शिकागोके धर्म-सम्मेलनमें भाग लेनेके बाद जब वे अमेरिकाके अनेक नगरोंमें भाषण करते हुए भ्रमण कर रहे थे, तब उनकी मुलाकात उस देशके प्रसिद्ध वक्ता और विद्वान् इन्जरसोलसे हुई। वार्तालापके दौरानमें वे कहने लगे कि 'मैं अपने इस जीवन-कालमें संसारका पूरा आनन्द लेना चाहता हूँ; क्योंकि यह जीवन ही निश्चित और सब कुछ है।' स्वामीजी बोले कि 'मैं आत्माकी अमरतामें विश्वास करता हूँ और पुनर्जन्मको मानता हूँ। इसलिये मेरे लिये जल्दबाजी करनेका कोई कारण नहीं है। सब वस्तुओं और प्राणियोंमें परमात्माकी व्यापकतामें विश्वास होनेके कारण मेरा आनन्द असीम और अनन्त है।' निज अनुभवके आधारपर श्रीशंकराचार्यने अपरोक्षानुभूतिमें कहा है—'दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत्।' (११६) अर्थात् 'जब जीवात्माकी दृष्टि ज्ञानमय हो जाती है, तब वह सारे संसारमें परमात्माको देखने लगता है।' वह एक सूफी भक्तके शब्दोंमें कह उठता है—'जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।' पुनर्जन्मका नियामक परमेश्वर है और जिसे यह दृढ़ धारणा हो जाती है, वह इस जन्ममें शुभ कर्मोंकी ओर प्रवृत्त होता है और गीताके अनुसार—'यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।' (६।२२) अर्थात् 'इस अवस्थामें स्थित हुआ पुरुष दारुण दुःखसे भी विचलित नहीं होता।'

गया-श्राद्धसे पुत्र

(लेखक—श्रीवेंकटलालजी ओझा)

गया-श्राद्ध पितरोंकी तृप्तिके लिये परमावश्यक बताया गया है। पर आजके आधुनिक वातावरण और शिक्षा-दीक्षामें पालित-पोषित लोग इसे ढोंगमात्र कहकर हँसी उड़ाते हैं। मैं एक ऐसे सज्जनको जानता हूँ, जिनको इसमें नाममात्रके लिये भी विश्वास नहीं था। घरमें श्राद्ध आदि होते थे, पर उनके लिये कोई महत्त्व नहीं था। परम्पराका निर्वाहमात्र था।

उनके कई पुत्र हुए। पर होते ही मर जाते थे। कई ज्योतिषियोंने भाग्यमें पुत्र नहीं है, कह दिया। पर सौभाग्यसे एक पण्डितजीने गया-श्राद्धका सुझाव दिया। वंशकी रक्षाके लिये विवश हो वे तैयार हुए। सबसे पहले श्मशानमें जा पितरोंको गया-श्राद्धके लिये आमन्त्रित किया और वहाँसे घर न आकर सीधे स्टेशन चले गये। पहले प्रयागमें त्रिवेणीस्नान और बादमें काशीमें गङ्गास्नान किया। पटना होते हुए पुनपुन गये। पहला पिण्डदान वहीं किया।

गयाजीमें सौभाग्यसे उन्हें उत्तम कर्मकाण्डी पण्डितजी मिल गये। उन्होंने 'कल्याण'के तीर्थाङ्कमें बतायी विधिके अनुसार गयाजीमें सभी स्थानोंपर पिण्डदान शास्त्रोक्त रीतिसे सम्पन्न करवाया।

इसके दो वर्ष बाद पितरोंकी कृपासे उनके एक पुत्र हुआ और दो वर्ष बाद और एक पुत्र हुआ। इस प्रकार आज उनके एक नहीं, दो-दो पुत्र हैं। यह सब 'गया-श्राद्ध' का ही पुण्य-प्रताप वे मानते हैं। अब तो श्रद्धा और भक्तिपूर्वक श्राद्ध करते हैं। उनका विश्वास दृढ़ हो गया है। वे अपने अनेक मित्रोंको गया-श्राद्धके लिये प्रेरितकर भेज चुके हैं।

परलोक-सुधारके साधन

[एक वीतराग ब्रह्मनिष्ठ सिद्ध संतके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश]

[नाम प्रकाशित करनेकी आज्ञा नहीं]

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

यदि तुम अपना परलोक बनाना चाहते हो और यमदूतोंकी मार और नरकके द्वारसे बचना चाहते हो तो निम्नलिखित बातोंपर अवश्य ही ध्यान दो, तभी तुम्हारा परलोक बन सकता है। अन्यथा लाख प्रयत्न करो, नहीं बन सकता।

१–भूलकर भी पूज्य गो-ब्राह्मणोंका कभी अपमान और निरादर मत करो। इन्हें कष्ट मत पहुँचाओ और जितनी बने, इनकी सेवा करो।

२–भूलकर भी कभी अपनी बेटी, जिस घरमें विवाही हो, उस घरका भोजन मत करो, पानी मत पीओ। यहाँतक कि भतीजी, भानजी जहाँ विवाही हो, उसके घरका भी खाना-पीना पाप समझो। बेटीके घरका खाने-पीनेसे तेज नष्ट हो जाता है और परलोक बिगड़ता है।

३–भूलकर भी यथेच्छाचारी नेताओंके चक्करमें फँस जाति-पाँत तोड़कर विवाह शादी मत करो। अपनी ही जातिमें सगोत्रादि बचाकर सनातन-धर्मानुसार शास्त्रानुसार विवाह करो। यदि तुमने जाति पाँत तोड़कर विवाह किया तो उनसे उत्पन्न होनेवाली संतान वर्णसंकर होगी और उनका दिया पिण्डदान, श्राद्ध-तर्पण आदि पितरोंको नहीं पहुँचेगा। परलोक बिगड़ जायगा। वर्णाश्रमधर्मके अनुसार चलो। इसीमें परम कल्याण है।

४–भूलकर भी देवमन्दिर, श्रीतुलसी-पीपल-गौ-साधु—इनका अनादर-अपमान मत करो और इन्हें अपने दाहिने हाथ करके चलो और इनका मान सम्मान करते रहो।

५–भूलकर भी पतितपावनी कलिमलहारिणी भगवती भागीरथी श्रीगङ्गा, श्रीयमुना, श्रीसरयू, श्रीत्रिवेणी आदिके समीप जाकर कोई पाप मत करो और इनमें थूको मत, साबुन तेल मलकर इनमें स्नान मत करो, मल-मूत्रका त्याग मत करो और इन्हें बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे नमन करो।

६–भूलकर भी परस्त्रीको बुरी दृष्टिसे मत देखो। परस्त्रीसे अपना कोई सम्बन्ध मत रक्खो। साधु हो तो परस्त्रीका चित्र भी मत देखो और भगवान्के भक्त हो तो परस्त्रीसे बातें करना भी पाप समझो।

७–भूलकर भी कभी मांस, मछली, अंडे, शराब मत खाओ-पीओ। प्याज-लहसुन, शलजम, बिस्कुट, बरफ, चाय, कोकोकोला, बीड़ी-सिगरेट आदिका भी त्याग करो। नहीं तो परलोक बिगड़ना अवश्यम्भावी है।

८–भूलकर भी कभी सिनेमा मत देखो। नग्न लड़कियोंके डान्स मत देखो। विषयासक्ति बढ़ानेवाले नाटक, ड्रामा, स्वाँग मत देखो। नहीं तो, मन दूषित हो जायगा और परलोक बिगड़ जायगा।

९–भूलकर भी कभी गंदे उपन्यास, अश्लील साहित्य और नास्तिकोंकी किताबें मत पढ़ो। नहीं तो बुद्धि भ्रष्ट हो जायगी और परलोक बिगड़ते देर न लगेगी।

१०–भूलकर भी कभी होटलोंका बना खाना मत खाओ। गोभक्षक तथा वर्जित जातिके हाथका बना भोजन मत करो। व्यभिचारिणी स्त्री, रजस्वला स्त्रीके हाथका बना मत खाओ। खान-पानमें पूरी-पूरी सावधानी बरतो। अपने घरका शुद्ध पवित्र चौकेका बना अन्न श्रीठाकुरजीको भोग लगा भोजन करो। हाथ-पैर धोकर, जमीनपर आसनपर बैठकर भोजन करो। अपवित्र वस्तु, जूँठी चीज मत खाओ। भोजन करके कुल्ले करो, हाथ-मुँह धोओ। खान-पानमें तनिक भी असावधानी हुई कि परलोक बिगड़ते देर न लगेगी।

११–भूलकर भी चीनीमिट्टीके पात्रोंमें, काँचके गिलासोंमें कोई भी चीज मत खाओ-पीओ। नहीं तो बुद्धि भ्रष्ट होगी और परलोक बिगड़ते देर न लगेगी।

१२–भूलकर भी दानका एक पैसा भी मत खाओ। धर्मादेका एक पैसा भी मत हड़पो। धर्मशाला, गोशाला, मन्दिरका

रुपया मत खाओ। नहीं तो परलोक बिगड़ जायगा और तुम्हें परलोकमें गिद्ध नोच-नोचकर खायँगे। संत कबीरकी यह बात याद रक्खो—

संसारीका टूकड़ा नो-नो आँगल दाँत।
भजन करे तो ऊबरे नातर फाड़े आँत॥

किसीका टुकड़ा खाना भी जब पाप बताया गया है तो जो धर्मके नामपर रुपया इकट्ठा करके डकार जाते हैं, उनकी क्या घोर दुर्दशा होगी, इसे कौन कह सकता है।

१३—भूलकर भी धर्मद्रोहियोंसे, गो-ब्राह्मण-द्रोहियोंसे, नास्तिकोंसे और पाखंडियोंसे, व्यभिचारियोंसे, नशेबाजोंसे अपना सम्बन्ध मत रक्खो। नहीं तो परलोक बिगड़नेमें देर मत समझो।

१४—भूलकर भी म्लेच्छ-आचरण मत करो; खड़े-खड़े मत मूतो और पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृतिके गुलाम मत बनो। फैशनपरस्ती मत करो। परस्त्रीका स्पर्श मत करो। चर्बीसे बने साबुन, क्रीम-पाउडरका प्रयोग मत करो और होटल-पंथी, बोतलपंथी मत बनो। विदेशी वेशभूषा मत पहनो। भारतीय पोशाक पहनो। अपनी प्राचीन भारतीय सभ्यता-संस्कृतिको अपनाओ और ऐसा कोई भी काम मत करो, जो परलोक बननेमें बाधक हो।

१५—भूलकर भी अपने शिखा-सूत्रका परित्याग मत करो और सनातनधर्मकी शरणमें रहो तथा धर्मपर दृढ़ रहो। वर्णाश्रम-धर्मानुसार चलो और यदि अनधिकार हो तो वेदमन्त्रोंका उच्चारण मत करो। श्रीरामनाम, श्रीकृष्णनामामृतका निरन्तर प्रेमसे पान करो। अधिकार न हो तो देवमन्दिरके शिखरका दर्शनकर महान् पुण्यके भागी बनो। भूलकर भी देवमन्दिरोंमें बलात् जानेका प्रयत्न मत करो और मर्यादानुसार जीवन बनाओ।

१६—भूलकर भी किसी भी जीवको किसी प्रकारका भी कष्ट मत पहुँचाओ। किसीको भी मत सताओ, मत रुलाओ। किसीको भी कभी अपशब्द मत कहो और सभीमें अपने प्रभुको देखो और इसे याद रक्खो—

जो जग सो जगदीश ईश नहिं जग से न्यारा।
करिये सब सों प्रेम, प्रेम भगवत को प्यारा॥

सबको सुख पहुँचाने तथा सबका हित करनेका प्रयत्न करो।

१७—भूलकर भी पूज्य माता-पिताका, गुरुजनोंका, बाबा-दादीका, वृद्धोंका, साधु-संतोंका, प्राज्ञ-विद्वानोंका अपमान मत करो और इनका अनादर मत करो। जहाँतक बन सके, भूदेव ब्राह्मणोंका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेसे न चूको और इसे याद रक्खो—

पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा।
मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू।
दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥

१८—भूलकर भी शास्त्रोंकी अवज्ञा मत करो और शास्त्रोक्त उपवास, व्रत, श्राद्ध, तर्पण, तीर्थयात्रा, श्रीगङ्गा-यमुनास्नान, कथा-कीर्तन, सत्सङ्ग आदिमें खूब भाग लो।

बोलो सनातन धर्मकी जय!

लोक-परलोक-सुधारके अनिवार्य उपाय

तन-इन्द्रियको वशमें रखना, करना नित्य सभी शुभ काम।
अनाचारसे बचना, करना संयम, नित सेवा निष्काम॥
मधुर-सत्य-हित वचन बोलना, त्याग झूठ-कटु-अहित तमाम।
जपना प्रभुका नाम निरन्तर जिह्वासे मनसे अभिराम॥
मनमें दया सौम्यता रखना, रखना उसपर निज अधिकार।
राग-द्वेष-भरे कर पाये नहीं, कभी यह अशुभ विचार॥
नित्य देखना प्रभुको मनमें, बाहर भी संयमें साकार।
लोक तथा परलोक सुधरनेके हैं ये उपाय अनिवार॥

हम अपना भला-बुरा स्वयं ही करते हैं

[श्रमण नारद*]

पाठकगणके सामने उस समयकी एक आख्यायिका उपस्थित की जाती है, जिस समय भारतमाता उन्नतिके शिखरपर पहुँचकर स्वर्गीय सुखका अनुभव कर रही थी। उनकी संतान हर तरहसे शान्त, सुखी, सदाचारी और स्वतन्त्र थी। धनी, मानी, उद्योगी और ज्ञानी थी। क्षमा, दया, परोपकार आदि सद्‌गुण अन्य देशोंको इन्हींसे सीखने थे। उस समय यहाँके व्यापारी सुदूर देशोंमें व्यापारके लिये जाया करते थे और विदेशी व्यापारी यहाँ आते रहते थे।

उस समय यहाँ बहुत-से बम्बई और कलकत्ता-जैसे समृद्धिशाली नगर थे और व्यापारका क्षेत्र विशाल होनेके कारण लोगोंका आना-जाना भी बहुत था।

छोटे शहरों, कस्बों और गाँवोंकी स्थिति अच्छी थी। प्रजा-जीवन सुख-शान्तिसे व्यतीत होता था।

बौद्धधर्मका यह मध्याह्नकाल था। जहाँ-तहाँ बुद्धदेवकी शिक्षाका पवित्र, शान्त और दयामय संगीत सुनायी देता था। बड़े-बड़े राजा-महाराजा और धनिक बौद्धधर्मका प्रचार करते थे। हजारों बौद्ध-श्रमण जहाँ-तहाँ विहार करते दृष्टिगोचर होते थे।

× × × ×

(१)

वाराणसीकी ओर जानेवाली सड़कपर एक घोड़ागाड़ी दौड़ी जा रही थी। घोड़े बड़ी तेजीसे बढ़े जा रहे थे। गाड़ीमें केवल दो ही व्यक्ति थे। एक मालिक और दूसरा उनका नौकर। मालिकने अपने वैभव और प्रतिष्ठाके अनुरूप मूल्यवान् वस्त्रालंकार धारण कर रक्खे थे। उनकी मुख-मुद्रासे ऐसा जान पड़ता था कि वे अपने निश्चित स्थानपर जल्दी पहुँचना चाहते हैं।

हालहीमें बरसात होनेके कारण ठंडी हवा चल रही थी। लगातारकी वृष्टिके पश्चात् बादल बिखर गये थे। सूर्यनारायणके प्रकाशसे धरती उजली हो रही थी। दिन सुहावना लगता था। वर्षाके जलसे धुलकर स्वच्छ हुए हरे-हरे पत्ते पवनकी लहरोंसे आनन्द-मग्न कर रहे थे। प्रकृतिदेवीने अपूर्व शोभा धारण कर रक्खी थी।

आगे थोड़ा-सा चढ़ाव था, अतः घोड़ोंकी चाल कुछ धीमी पड़ी। सेठने जब बाहरकी ओर दृष्टि की, तब उन्होंने एक बौद्ध-श्रमणको नीची नजर किये, सड़कके किनारेसे गुजरते हुए देखा। उनकी मुखमुद्रापर शान्ति, पवित्रता और गम्भीरता छायी थी। उनके दर्शन करते ही सेठके हृदयमें उनके प्रति पूज्यभावका उद्भव हुआ और उनके मनमें यह विचार आया—'ये कोई महात्मा लगते हैं; पवित्रमूर्ति और धर्मावतार दिखायी देते हैं। विद्वान् लोगोंने सज्जन-समागमको पारसमणिकी उपमा दी है। जैसे पारसके संयोगसे लोहा सुवर्ण बन जाता है, ठीक उसी तरह सज्जनके संगमसे भाग्यहीन भी भाग्यशाली बन जाते हैं। यदि महात्माको वाराणसी जाना हो तो मैं इन्हें अपनी गाड़ीमें बैठनेके लिये प्रार्थना करूँ। यदि इन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली तो बहुत ही उत्तम है। इनके समागमसे मुझे अवश्य लाभ होगा।' इस तरहका विचार मनमें आते ही सेठजीने गाड़ी रोक ली और महात्मा पुरुषसे प्रणाम करके उनसे गाड़ीमें बैठनेके लिये प्रार्थना की। महात्माजीको काशी ही जाना था, इसलिये वे गाड़ीमें बैठ गये और कहा—

'सेठजी! आपका मुझपर बड़ा उपकार है। बहुत समयसे चलते-चलते मैं थक गया था और आपने मुझे गाड़ीमें साथ बैठा लिया, इससे मैं आपका ऋणी हो गया। मुझ-जैसे साधुके पास आपको देने योग्य ऐसी कोई उपयुक्त वस्तु नहीं है, जिससे मैं आपका ऋण चुका सकूँ। फिर भी परम गुरु महात्मा बुद्धदेवके उपदेश-रूपी अक्षय भण्डारमेंसे जो कुछ भी मैं संग्रह कर सका हूँ, उसमेंसे आपके इच्छानुसार थोड़ा कुछ देकर मैं आपके इस ऋणभारको तनिक हलका करना चाहता हूँ।'

सेठजीको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। आनन्दसे हृदय डोलने लगा। उन्होंने श्रमणके सुबोधरूपी रत्नोंको बड़े प्रेमसे अपने हृदयमें धारण करना शुरू किया। गाड़ी आगे बढ़ रही थी। लगभग एक घंटेके बाद गाड़ी रुक गयी,

* 'श्रीगीताकृष्ण सेवा समिति' अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित 'श्रमण नारद' गुजराती पुस्तिकाका हिन्दी-रूपान्तर, संक्षिप्त [illegible]

नालेके पास पहुँची। आगे एक बड़ी बैलगाड़ी थी; इससे सेठकी गाड़ी वहाँसे आगे नहीं बढ़ सकी। वहीं रुक गयी।

वह बैलगाड़ी देवल नामक एक किसानकी थी। उसमें चावलके बोरे भरे थे और वह वाराणसी जा रही थी। संध्यासे पहले ही देवलको वाराणसी पहुँचना था, पर इस नालेपर आते ही गाड़ीके जुएकी कील निकल गयी और एक पहिया अलग हो गया। अब क्या हो ? देवल बेचारा अकेला था। उसने बहुत माथा-पची की; परंतु गाड़ी चल नहीं पायी।

सेठजीने देखा—यह बैलगाड़ी रास्ता रोके खड़ी है। उन्हें देर हो रही थी। सेठजीको गुस्सा आ गया और उन्होंने नौकरको आदेश दिया—'चल, जल्दी कर; उतर नीचे। हमलोग कबतक खड़े रहेंगे ? चावलोंके बोरोंको नीचे फेंककर गाड़ीको एक किनारे हटाकर अपनी गाड़ी चला।'

आदेश सुनते ही किसानने गिड़गिड़ाकर कहा—'सेठजी ! मैं एक गरीब किसान हूँ। दया करो। कुछ देर रुक जाओ। चावलके बोरे नीचे गिरा दिये जायँगे तो मुझे बड़ा नुकसान होगा। आप देख रहे हैं, बरसातके कारण कितना भारी कीचड़ हो रहा है। सब चावल सड़ जायँगे। कृपा करो। मैं अभी पहिया चढ़ाकर, गाड़ी आगे बढ़ाकर किनारे किये देता हूँ। फिर आप अपनी गाड़ीको खुशीसे आगे ले जाइयेगा।'

परंतु सेठने किसानकी प्रार्थनापर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया। बल्कि और भी रोषमें भरकर नौकरको डाँटा। नौकरने तुरंत सेठजीकी आज्ञाका पालन किया। चावलके बोरे नीचे फेंक दिये और गाड़ीको हटाकर अपनी गाड़ीको आगे निकाल लिया।

'अरे, इस संसारमें गरीबका सहायक कोई नहीं है।' अपने नगण्य लाभके लिये दूसरेका सर्वनाश करनेवाले धन-मदमत्तोंकी उस समय भी कमी न थी। गरीबोंके रक्षक बननेके बजाय उनके भक्षक बननेवाले अमीरोंसे यह जगत् न तो कभी खाली था और न होगा ही। हाँ, उस समय बौद्ध-धर्मके साधुओंका दयामय हाथ गरीबोंकी सहायताके लिये सदा तत्पर रहता था। वे लोग धार्मिक विवादोंमें व्यर्थ न पड़कर मनुष्यमात्रके साधारण हितकी चिन्तामें निरन्तर लगे रहते थे। वे लोग अपने मन, वचन और तनका उपयोग मुख्यतः परोपकारके कार्यमें ही किया करते थे।

सेठजीकी गाड़ी ज्यों ही आगे बढ़ने लगी कि उसी समय श्रमण नारद गाड़ीमेंसे कूद पड़े और सेठजीसे बोले—'सेठजी ! क्षमा कीजियेगा। अब मैं आपके साथ गाड़ीमें नहीं चल सकूँगा। आपने विवेकपूर्वक मुझे एक घण्टे अपने साथ गाड़ीमें बैठाया, इससे अब मेरी थकावट दूर हो चुकी है। फिर भी मैं आपके साथ चलता, किंतु अब मेरे मनमें आपके उपकारका बदला चुकानेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी है और बदला उतारनेका अच्छा अवसर भी मिल गया है।'

सेठजीने कहा—'आप गाड़ीसे उतर जायँगे तो इससे उपकारका बदला किस तरह और किसके प्रति चुकायेंगे ?'

'सेठजी'—श्रमणने कहा। 'जिस किसानकी बैलगाड़ीको उलटाकर हम आगे बढ़े हैं, वह किसान आपका बहुत निकटका सम्बन्धी है। मैं उसे आपके किसी पूर्वजका अवतार मानता हूँ। इसलिये आपके उपकारका बदला उसकी सहायता करके चुकानेके लिये उस ओर जा रहा हूँ। उसे जो लाभ होगा, वह लाभ आपको ही हुआ समझिये। इस किसानके भाग्यके साथ आपकी भलाईका बहुत गहरा सम्बन्ध है। आपने उसे जो कष्ट दिया है, मुझे लगता है कि इससे आपका बहुत नुकसान हुआ है। इसलिये मेरा यह कर्तव्य है कि आपकी भलाई करनेके उद्देश्यसे तथा इस नुकसानसे आपको बचानेके लिये मैं यथाशक्ति उसकी सहायता करूँ।'

सेठने श्रमणकी इस मार्मिक उक्तिपर कोई ध्यान नहीं दिया। उन्हें वे व्यवहारमें अकुशल बुद्धिवाले, बहुत भले आदमी जान पड़े। आखिर श्रमणको छोड़कर सेठजीने गाड़ी आगे बढ़वा दी।

× × × ×

(२)

श्रमण नारद पहुँचे किसानके पास। उसे नमस्कार किया और गाड़ीको ठीक करनेमें उसकी पूरी सहायता की। भीगे और सूखे चावलोंको अलग करना शुरू किया। दोनोंकी मेहनतसे काम जल्दी होने लगा। किसानने सोचा-'भाग्य प्रबल होनेके कारण कोई अदृश्य देव ही श्रमणका रूप लेकर मेरी सहायता करने आ पहुँचे हों तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। ऐसी अनपेक्षित सहायता मिलनेसे काम कितनी जल्दी होने लगा है, यह देखकर मुझे भी

दूसरा सारा द्रव्य, जो मैंने लूटा था, वह सब यहीं करीबकी गुफामें गड़ा हुआ है। वे यहाँ आकर ले जायँ। मेरे जिन दो साथियोंको उस गड़े हुए धनका पता था, वे अब मर चुके हैं। इसलिये अब वह धन सुरक्षित है।' मैं चाहता हूँ कि मरते-मरते भी मैं कुछ ऐसा काम करता जाऊँ, जिससे मेरे पापोंका बोझ कुछ हल्का हो जाय। मेरी मानसिक मलिनता भी इस तरह धुलकर स्वच्छ हो जायगी और मोक्षके मार्गकी ओर जानेका कोई वास्तविक अवलम्बन भी मुझे मिल ही जायगा।'' यों कहकर गुफाकी जगहका सही पता बताते हुए श्रमणकी गोदमें ही महादत्तने अपनी जीवनयात्रा समाप्त कर दी।

(७)

श्रमण महात्माने कौशाम्बीमें जाकर पाण्डु जौहरीको सारी बातें बता दीं। पाण्डु तुरंत ही कुछ सिपाहियोंको साथ लेकर गुफापर पहुँचे। गुफामें जाकर वहाँ अपने गड़े हुए सारे धनको बाहर निकाला। फिर उन्होंने महादत्त और दूसरे डाकुओंकी लाशोंका सम्मानपूर्वक अग्निसंस्कार करवाया। उस समय महादत्तकी चिताके आगे खड़े होकर पान्थक श्रमणने निम्नलिखित उपदेश दिया—

'हम स्वयं ही बुरे काम करते हैं और स्वयं ही उन बुरे कामोंका फल भोगते हैं। इसलिये हमें स्वयं ही इस बुराईको दूर करके स्वयं ही शुद्ध होना चाहिये। पवित्रता और अपवित्रता दोनों अपने ही हाथमें हैं। दूसरा कोई [illegible] पवित्र नहीं बना सकता। हमें स्वयं ही पवित्रता [illegible] प्रयत्न करना होगा। बुद्धभगवान्का भी यही [illegible]

[illegible] सुझे देवताके बनाये नहीं हैं,

[illegible] हमारे [illegible] ही हैं। मोक्षके गर्भकी भाँति [illegible] थी। लगातार [illegible] और [illegible] है और [illegible] प्रकाश [illegible] है। इसमें हमारे [illegible] सुहावना लगता था। [illegible] हरे-हरे पत्ते पवनकी [illegible] प्रकृतिदेवीने अपूर्व शोभा धारण [illegible]

हमारे कर्मोंके भीतर ही मोक्ष-प्राप्तिका बीज छिपा हुआ है।'

पाण्डु तमाम धनको कौशाम्बी ले आये। वहाँ पहुँचकर वे बड़ी सावधानीके साथ धनका सदुपयोग करने लगे। पैसेकी छूट होनेसे व्यापार भी खूब बढ़ गया। उस [illegible] कमाईको भी वे उदारतापूर्वक सत्कार्यमें ही व्यय करने लगे।

जब उनकी वृद्धावस्था आयी और आयुके दिन पूरे होते दिखायी दिये, तब उन्होंने अपनी सभी संतानोंको बुलाकर कहा—''मेरे प्यारे बच्चो! निराश होकर कभी भी किसी भी अच्छे कामको छोड़ मत देना। यदि किसी कार्यमें तुम्हें सफलता न मिले तो उसके लिये किसी दूसरे पर दोष न मँढ़ना। हमें अपनी निष्फलता या दुःखके कारणको अपने ही कामोंमें ढूँढ़ निकालना चाहिये; क्योंकि वह कारण इन्हींमें छिपा है। उस कारणको दूर करना चाहिये। यदि तुम अभिमान या अहंकारके पर्देको हटा दोगे तो तुम्हें अपने जीवनमें ही स्थित अपनी निष्फलता और कठिनाइयोंके कारणोंका पता अपने-आप ही लग जायगा और साथ-ही-साथ उनसे छूटनेका मार्ग भी दीखने लगेगा। दुःख-नाशका उपाय भी हमारे हाथमें है। तुम्हारी आँखोंके सामने मायाका पर्दा न पड़ जाय, इसका खयाल सदा रखना और मेरे जीवनमें जो [illegible] सिद्ध हुआ है, उसका सदा स्मरण करना। वह [illegible] यह है—

'जो दूसरोंको दुःख देता है, वह अपने-आपको दुःख पहुँचाता है और जो दूसरोंका भला करता है, वह अपना ही भला करता है।' ऐसा मानना।

'देहकी ममताका पर्दा दूर होते ही स्वाभाविक मार्ग [illegible]

---

* [illegible]

नालेके पास पहुँची । आगे एक बड़ी बैलगाड़ी थी; इससे सेठकी गाड़ी वहाँसे आगे नहीं बढ़ सकी । वहां रुक गयी ।

वह बैलगाड़ी देवल नामक एक किसानकी थी । उसमें चावलके बोरे भरे थे और वह वाराणसी जा रही थी । संध्यासे पहले ही देवलको वाराणसी पहुँचना था, पर इस नालेपर आते ही गाड़ीके जुएकी कील निकल गयी और एक पहिया अलग हो गया । अब क्या हो ? देवल बेचारा अकेला था । उसने बहुत माथा-पच्ची की; परंतु गाड़ी चल नहीं पायी ।

सेठजीने देखा—यह बैलगाड़ी रास्ता रोके खड़ी है । उन्हें देर हो रही थी । सेठजीको गुस्सा आ गया और उन्होंने नौकरको आदेश दिया—'चल, जल्दी कर; उतर नीचे । हमलोग कबतक खड़े रहेंगे ? चावलोंके बोरोंको नीचे फेंककर गाड़ीको एक किनारे हटाकर अपनी गाड़ी चला ।'

आदेश सुनते ही किसानने गिड़गिड़ाकर कहा—'सेठजी ! मैं एक गरीब किसान हूँ । दया करो । कुछ देर रुक जाओ । चावलके बोरे नीचे गिरा दिये जायँगे तो मुझे बड़ा नुकसान होगा । आप देख रहे हैं, बरसातके कारण कितना भारी कीचड़ हो रहा है । सब चावल सड़ जायँगे । कृपा करो । मैं अभी पहिया चढ़ाकर, गाड़ी आगे बढ़ाकर किनारे किये देता हूँ । फिर आप अपनी गाड़ीको खुशीसे आगे ले जाइयेगा ।'

परंतु सेठने किसानकी प्रार्थनापर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया । बल्कि और भी रोषमें भरकर नौकरको डाँटा । नौकरने तुरंत सेठजीकी आज्ञाका पालन किया । चावलके बोरे नीचे फेंक दिये और गाड़ीको हटाकर अपनी गाड़ीको आगे निकाल लिया ।

'अरे, इस संसारमें गरीबका सहायक कोई नहीं है ।' अपने नगण्य लाभके लिये दूसरेका सर्वनाश करनेवाले धन-मदमत्तोंकी उस समय भी कमी न थी । गरीबोंके रक्षक बननेके बजाय उनके भक्षक बननेवाले अमीरोंसे यह जगत् न तो कभी खाली था और न होगा ही । हाँ, उस समय बौद्ध-धर्मके साधुओंका दयामय हाथ गरीबोंकी सहायताके लिये सदा तत्पर रहता था । वे लोग धार्मिक विवादोंमें व्यर्थ न पड़कर मनुष्यमात्रके साधारण हितकी चिन्तामें निरन्तर लगे रहते थे । वे लोग अपने मन, वचन और तनका उपयोग मुख्यतः परोपकारके कार्यमें ही किया करते थे ।

सेठजीकी गाड़ी ज्यों ही आगे बढ़ने लगी कि उसी समय श्रमण नारद गाड़ीमेंसे कूद पड़े और सेठजीसे बोले—'सेठजी ! क्षमा कीजियेगा । अब मैं आपके साथ गाड़ीमें नहीं चल सकूँगा । आपने विवेकपूर्वक मुझे एक घण्टे अपने साथ गाड़ीमें बैठाया, इससे अब मेरी थकावट दूर हो चुकी है । फिर भी मैं आपके साथ चलता, किंतु अब मेरे मनमें आपके उपकारका बदला चुकानेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी है और बदला उतारनेका अच्छा अवसर भी मिल गया है ।'

सेठजीने कहा—'आप गाड़ीसे उतर जायँगे तो इससे उपकारका बदला किस तरह और किसके प्रति चुकायँगे ?'

'सेठजी'—श्रमणने कहा । 'जिस किसानकी बैलगाड़ीको उलटाकर हम आगे बढ़े हैं, वह किसान आपका बहुत निकटका सम्बन्धी है । मैं उसे आपके किसी पूर्वजका अवतार मानता हूँ । इसलिये आपके उपकारका बदला उसकी सहायता करके चुकानेके लिये उस ओर जा रहा हूँ । उसे जो लाभ होगा, वह लाभ आपको ही हुआ समझिये । इस किसानके भाग्यके साथ आपकी भलाईका बहुत गहरा सम्बन्ध है । आपने उसे जो कष्ट दिया है, मुझे लगता है कि इससे आपका बहुत नुकसान हुआ है । इसलिये मेरा यह कर्तव्य है कि आपकी भलाई करनेके उद्देश्यसे तथा इस नुकसानसे आपको बचानेके लिये मैं यथाशक्ति उसकी सहायता करूँ ।'

सेठने श्रमणकी इस मार्मिक उक्तिपर कोई ध्यान नहीं दिया । उन्हें वे व्यवहारमें अकुशल बुद्धिवाले, बहुत भले आदमी जान पड़े । आखिर श्रमणको छोड़कर सेठजीने गाड़ी आगे बढ़वा दी ।

× × × ×

(२)

श्रमण नारद पहुँचे किसानके पास । उसे नमस्कार किया और गाड़ीको ठीक करनेमें उसकी पूरी सहायता की । भीगे और सूखे चावलोंको अलग करना शुरू किया । दोनोंकी मेहनतसे काम जल्दी होने लगा । किसानने सोचा-'भाग्य प्रबल होनेके कारण कोई अदृश्य देव ही श्रमणका रूप लेकर मेरी सहायता करने आ पहुँचे हों तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं । ऐसी अनपेक्षित सहायता मिलनेमें काम कितनी जल्दी होने लगा है, यह देखकर मुझे भी आश्चर्य

होता है ।' डरते-डरते किसानने पूछा—'महाराज ! जहाँ-तक मुझे याद है, मैंने इन सेठजीका कुछ भी नहीं बिगाड़ा था । फिर भी, बिना कारण उन्होंने मेरा इतना नुकसान क्यों किया ? क्या कारण है इसका ?'

श्रमण-भाई ! आज जो कुछ भी तुम भोग रहे हो, वह तुम्हारे पूर्वकर्मका ही फल है ।

किसान-कर्म क्या है महाराज ?

श्रमण-मनुष्यके द्वारा स्वयं किये हुए कार्य ही उसका 'कर्म' है । अनेक जन्मोंके कर्मोंकी एक माला है । इस मालामें विविध कर्मरूपी मनके हैं । वर्तमान कार्यों एवं विचारोंसे इसमें परिवर्तन भी होते हैं । हमलोगोंने जो कुछ कर्म पूर्वमें किये हैं, उन्हींका फल इस जीवनमें भोग रहे हैं और इस जन्ममें इस समय जो कर्म कर रहे हैं, उनका फल अगले जन्ममें भोगेंगे ।

किसान-ऐसा होगा; किंतु ऐसे घमंडी और दुष्ट मनुष्योंके लिये, जो हमारे-जैसे निरपराधियोंको हैरान करते हैं, क्या किया जाय ?

श्रमण-भाई ! मेरी समझसे तो तुम्हारे विचार भी लगभग उस सेठके विचारोंके समान ही हैं । जिन कर्मोंके फलस्वरूप वह जौहरी और तुम किसान बने हो, ऊपरी दृष्टिसे देखा जाय तो उनमें बड़ा भेद दिखायी देता है, किंतु यदि हम गहराईसे विचार करेंगे तो बहुत अन्तर नहीं दिखायी देगा । मानव-स्वभावके अभ्यासके कारण मैं कहता हूँ कि यदि तुम उस जौहरीकी जगह होते, तुम्हारे पास भी उसके नौकर-जैसा बलवान् नौकर होता और तुम्हारी गाड़ी रास्तेमें उसकी गाड़ीसे रुकती तो तुमने भी वैसा बर्ताव किया होता, जैसा कि सेठने तुम्हारे साथ किया है । उसके पापकर्मोंका सत्यानाश हो जायगा—ऐसा विचार तुम्हारे मनमें भी उत्पन्न न होता और किसीका बुरा करनेपर हमारा बुरा होगा, उस समय इस विचारको तुम भी भूल जाते ।

किसान-महाराज ! आपका कहना सत्य है । उस परिस्थितिमें मैं भी वैसा ही व्यवहार करता; किंतु अब तो मुझे आपका समागम प्राप्त हो गया है । आपने बिना किसी स्वार्थके मेरी सहायता की है । आपकी सहायतासे ही मैं अपने मालकी रक्षा कर सका हूँ और गाड़ी चला सका हूँ । अब मैं आपका उदाहरण सदा सामने रखकर अपने मानव बन्धुओंका कल्याण करूँगा ।

किसानकी बैलगाड़ी दुरुस्त हो गयी । कुछ दूर चलते ही दोनों बैल चौंककर रुक गये । किसानने पुकारा—'अरे महाराज ! सामने यह साँप-जैसा क्या पड़ा है ?' श्रमणने ध्यानसे देखा तो कोई थैली-जैसी चीज दिखायी दी । समीप जाकर देखा तो सोनेकी मोहरोंसे भरी हुई थैली ही थी । उनको लगा कि 'अन्य किसीकी न होकर यह थैली उन सेठकी ही है ।' उन्होंने वह थैली उठाकर किसान देवलको देते हुए कहा—'काशीमें जाकर उन सेठका पता लगाना और उन्हें यह थैली ज्यों-की-त्यों दे देना । उनका नाम पाण्डु जौहरी है और उनके नौकरका नाम महादत्त है । तुम्हारे ऐसा करनेपर उन्हें अपने किये हुए अन्यायके लिये पश्चात्ताप होगा । थैली देकर उनसे कहना कि 'आपने मेरे साथ जो कुछ बर्ताव किया था, उसको लेकर मेरे मनमें अब कुछ भी नहीं है । मैं आपको क्षमा करता हूँ और चाहता हूँ कि आपको अपने व्यापारमें सच्ची सफलता मिले ।'

'तुम्हारा भाग्य उनके भाग्यसे जुड़ा हुआ है । ज्यों-ज्यों उनकी उन्नति होगी, त्यों-ही-त्यों तुम्हारा भाग्य भी खुलेगा ।'

इतना कहकर 'परोपकारकी प्रतिमा' दीर्घदृष्टि वे श्रमण महाशय वहाँ एक पलक भी न ठहरकर अपने रास्ते चल दिये । रास्तेमें विचार करने लगे—'यदि वे जौहरी फिर कभी मुझे मिलेंगे तो मैं यथाशक्ति उनका भला करनेका प्रयत्न करूँगा । उपदेश देकर उन्हें सच्चा मानव बनाऊँगा ।'

(२)

वाराणसीमें मल्लिक नामके एक व्यापारी थे । वे पाण्डु जौहरीके आढ़तिया थे । पाण्डु वाराणसी आकर उनसे मिले । जौहरीके मिलते ही मल्लिक रो पड़े और पाण्डुके पूछनेपर उन्होंने अपनी कठिनाई बतायी—

मल्लिक-मित्र ! मैं एक महान् संकटमें आ पड़ा हूँ । मुझे डर है कि कहीं मेरा आजसे व्यापारी नाता टूट न जाय । मैंने राजाको उनके अपने उत्सवोंके लिये बढ़िया चावल देनेका वचन दे रखा है । कल उसकी मुद्दत पूरी होती है । वचनके अनुसार कल प्रातःकाल मुझे उनको चावल देना ही चाहिये । मैं क्या करूँ ? इस समय मेरे पास चावलका एक दाना भी नहीं है । दूसरे कहींसे मिलनेकी भी आशा नहीं है; क्योंकि यहाँ मेरा प्रतिस्पर्धी एक बड़ा व्यापारी है । उसे न जाने कैसे इस बातका पता चल गया कि

राज-कोठारीसे मैंने चावलके बायदेका व्यापार किया है। यह बात जानते ही उसने मुँहमाँगे दाम देकर, जितने अच्छे चावल बस्तीमें थे, सब खरीद लिये हैं और ऐसा जान पड़ता है कि उसने कुछ रिश्वत देकर कोठारीको भी अपने वशमें कर लिया हो। कल मेरी क्या हालत होगी—इसकी मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। मेरी इज्जत बचनी कठिन है। मैं तो मरा जा रहा हूँ। भाई! यदि विधाता मेरी सहायता करें और कहींसे बढ़िया चावलकी एकाध गाड़ी मिल जाय तो मैं बच सकता हूँ। अन्यथा, मेरी तो मौत ही हुई समझो।

मल्लिककी बातें सुनते-सुनते पाण्डु एकाएक चौंक उठे। उन्हें फौरन ही गाड़ीमें अन्य चीजोंके साथ रक्खी हुई अपनी थैलीका स्मरण हो आया और वे तुरंत ही दौड़े हुए र गये। सारी चीजें, कपड़े-लत्ते छान मारे। गाड़ीकी पूरी जाँच की; किंतु कहीं भी थैली नहीं मिली। उन्हें उसने नौकर महादत्तपर संदेह हुआ। पुलिसको फौरन ही खबर दी गयी और पुलिसने आकर गरीब निर्दोष सेवक बेचारे महादत्तको गिरफ्तार कर लिया। फिर क्या था! निरपराधीको अपराधी साबित करनेवाली यमदूत-सी पुलिसने चोरीका अपराध स्वीकार कर लेनेके लिये महादत्तको खूब पीटा। महादत्त जोर-जोरसे रोने लगा। गिड़गिड़ाकर बोला—'अरे! मैं बिल्कुल निरपराध हूँ। मैं सच कहता हूँ कि मैंने थैली नहीं चुरायी। मुझपर दया करो। सेठके कहनेसे मैंने उस बेचारे गरीब किसानको रास्तेमें बहुत सताया था। मुझे उसी पापका यह फल मिल रहा है। हे भाई किसान! तू तो जगत्का पिता (किसान) है। मैंने तुझे बिना कारण सताया है। सचमुच मुझे यह दण्ड मिलना ही चाहिये।'

इस तरह महादत्त पश्चात्ताप करने लगा; किंतु पुलिसको उसकी बातोंपर ध्यान देनेकी फुरसत ही कहाँ थी। उसका यह काम नहीं, उसका काम तो था—उसे बुरी तरहसे पीटना ही।

इधर पुलिस महादत्तको बुरी तरह मार रही थी। इसी बीच देवल किसान वहाँ आ पहुँचा और आते ही उसने उस जौहरीके सामने मोहरोंकी थैली रख दी। सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। पाण्डु तो गद्गद हो गये। जिन्होंने जिस आदमीको विपत्तिमें डाला था, उसी आदमीने आकर आज उनको एक महान् विपत्तिसे बचा लिया। यह देखकर उन्हें बहुत ही लज्जित होना पड़ा। उन्होंने बड़ा पश्चात्ताप किया और देवलसे क्षमा माँगी। महानुभाव श्रमणके सङ्गसे सदाके सरल-हृदय किसानका हृदय उदार हो गया था। उसने अपने सच्चे हृदयसे उन्हें क्षमा दे दी और उनके अभ्युदयकी इच्छा की।

महादत्त छोड़ दिया गया। उसे अपने सेठपर बड़ा गुस्सा आ रहा था। देखते-ही-देखते वह कहीं दूर चला गया, एक पलके लिये भी वहाँ नहीं रुका।

मल्लिकको जब इस बातका पता चला कि देवलके पास बढ़िया—अच्छे किस्मके एक गाड़ी चावल हैं, तब उसने मुँहमाँगे पैसे देकर सबके सब चावल खरीद लिये। इस तरह उसके वचन तथा मानकी रक्षा हो गयी। राजाके कोठारमें समयपर चावल पहुँच गये। इधर, देवलने कभी स्वप्नमें भी, उसे चावलकी इतनी बड़ी कीमत मिलेगी, यह आशा नहीं की थी। वह तो बेहद खुश हो गया और तुरंत ही उसने अपने गाँवका रास्ता पकड़ा।

अब पाण्डु "यह विचार करने लगे कि "यदि वह देवल यहाँपर न आया होता तो मेरी और मल्लिककी क्या स्थिति होती! वह कितना ईमानदार है! यह श्रमण महाशयके समागमका ही परिणाम है। लोहेको सुवर्ण बनानेकी शक्ति 'पारस'के सिवा और किसके पास हो सकती है?" पाण्डुका हृदय रो उठा। महात्माजीके दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठा जाग उठी उनके मनमें और वे फौरन ही उनकी खोजमें निकल पड़े तथा विहारोंमें पूछ-ताछ करते-करते वे अन्तमें उनके पास जा पहुँचे।

कृतज्ञतापूर्ण अन्तःकरणसे उन्होंने श्रमणको साष्टाङ्ग-दण्डवत् प्रणाम किया। व्यापारीका दक्ष और कठोर हृदय भी कुसुम-कोमल महात्माजीके दर्शनसे कोमल बन गया। वे कुछ भी बोल न सके। उनका हृदय भर आया। महात्माजी उन्हें आश्वासन देते हुए समझाने लगे।

श्रमण—सेठजी! देखा न, कर्मकी रचना कितनी गहन है!

पाण्डु—महानुभाव! मेरी तो समझमें कुछ नहीं आता।

श्रमण—अभी आप यह बात नहीं समझ सकेंगे। साधारण लोग इसका मर्म नहीं समझ सकते। इसे समझनेके लिये जब आपके मनमें रुचि उत्पन्न होगी और उत्कण्ठा बढ़ेगी, तब यह बात अपने-आप ही समझमें आ जायगी। किंतु इतना अवश्य याद रखियेगा कि जब कभी दूसरोंको दुःख पहुँचाने-

का मन हो। पर पहले अपने-आपसे यह पूछना चाहिये कि 'ऐसा ही दुःख कोई मुझको दे तो मेरे मनपर उसका क्या असर होगा ? क्या मैं उसको सहन कर सकूँगा ?' यदि तुम सहन करनेमें असमर्थ हो तो फिर दूसरेको दुःख पहुँचानेकी वृत्ति क्यों हो ? ऐसी वृत्ति हो तो उसे तुरन्त दबा देना चाहिये। इसी तरह दूसरा यदि कोई हमारी सेवा करता है तो वह हमें कितनी अच्छी लगती है। ठीक उसी तरह, हमारी सेवा भी अन्यको अच्छी लगती है—यह दृढ़ निश्चय रखें। दूसरेकी सेवा करनेका एक भी अवसर हाथसे नहीं खोना चाहिये। आज हम जिस सुकृतके बीज बोयेंगे तो उसका अच्छा फल हमें कालान्तरमें अवश्य मिलेगा, यह विश्वास रखना।

पाण्डु—महाराज ! आपकी अमृतवाणी सुनते-सुनते मेरे मनको तृप्ति नहीं मिलती। मेरा चरित्र उत्कृष्ट बने और मन दृढ़ रहे। इसके लिये कुछ और सुनाइये। मैं कर्मकी गहन गतिको समझना चाहता हूँ।

श्रमण—अच्छा, तो सुनो ! मैं आपको कर्मभेदकी कुंजी बता रहा हूँ। मेरे और आपके बीच एक पर्दा पड़ा है। इस पर्देको 'माया' कहते हैं। इस मायारूपी पर्देके कारण आप मुझको और मैं आपको पृथक्-पृथक् समझ रहे हैं। इस पर्देके कारण ही तो मनुष्य सत्यको नहीं देख पाता और पापके कुएँमें जा गिरता है। चूँकि आपकी आँखोंके आगे यह मायाका पर्दा पड़ा हुआ है, इसीसे आप अन्य अपने मानव-बन्धुओंके साथ आपका कितना निकट सम्बन्ध है, उसे जान नहीं सकते। सच पूछा जाय तो एक शरीरके भिन्न-भिन्न अवयवोंका एक दूसरेके साथ जैसा प्रगाढ़ सम्बन्ध है, वैसा ही, वरं उससे भी अधिक प्रगाढ़ सम्बन्ध मानव-मानवके बीच है। इस स्थितिको बहुत कम लोग समझ पाते हैं। इस सत्यको समझकर इसके अनुसार बर्ताव करना—यही तो मानव-जीवनका कर्तव्य है। इस सत्यकी प्राप्तिके लिये मैं आपको तीन मन्त्र दे रहा हूँ। इन्हें आप अपने हृदयमें लिख लीजिये—

(१) दूसरोंको दुःख पहुँचानेवाला स्वयं ही अपनेको दुःख देनेवाले दुःखके बीज बोता है।

(२) दूसरोंको सुख पहुँचानेवाला अपने लिये सुखके बीज बोता है।

(३) समस्त मानव-जाति एक ही है। इसमें भिन्नताका विचार भ्रममात्र है।

—इन तीन बातोंपर गहराईसे विचार करते रहिये—उनकी उपासना करते रहिये—आपको स्वर्गके दर्शन अवश्य होंगे।

पाण्डु—महाराज ! आपके शब्दोंका मेरे हृदयपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। आपके वचन तो आपके जीवनका प्रतिबिम्ब हैं। मैंने वाराणसी आते समय एक [illegible] लिये आपको अपनी गाड़ीमें बैठा लिया था। इसमें मेरा एक पाईका भी खर्च नहीं हुआ। फिर भी कितना महान् बदला ! प्रभो ! मुझपर आपका महान् उपकार है। आपने ही तो देवलको मोहरें देनेके लिये मेरे पास भेजा था। यदि वे मोहरें मुझे प्राप्त न हुई होतीं तो मैं सौदा न कर पाता। आपकी दीर्घदृष्टि है। मैं किस मुखसे तारीफ करूँ ? देवलको सहायता देकर उसे आपने ठीक ही वाराणसी भेज दिया, जिससे मेरे मित्र मल्लिकका भी लाभ हो गया; उसकी इज्जत बच गयी। मेरे सेवक महादत्तकी भी रक्षा हुई, नहीं तो, पता नहीं, उस बेचारेकी क्या दुर्दशा होती।

महाराज ! जिस तरह आप सत्यके दर्शन करते हैं, ठीक उसी तरह मानवमात्र करने लगे तो सारा जगत् कितना सुखी हो जाय। असंख्य पाप रुक जायँ और सर्वत्र पुण्य-प्रणाली प्रचलित हो जाय। महाराज ! संतोंकी सेवा करनेकी इच्छा मेरे मनमें जाग्रत् हुई है। कौशाम्बीमें एक विहार बनवा दूँ, जहाँपर आप-जैसे श्रमण रहें और लोगोंको सन्मार्गपर चलावें।

(४)

कौशाम्बीमें पाण्डु जौहरीका विहार तैयार हो चुका है। इसमें सैकड़ों विद्वान् और दयामूर्ति श्रमण निवास करते हैं। अल्प समयमें ही इस विहारकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी। दूर रहनेवाले धर्मपिपासु लोग भी यहाँ आकर उपदेशामृतका पान करके अपनी तृष्णाको शान्त करने लगे।

पाण्डु जौहरी भी एक सुप्रसिद्ध जौहरी बन गये और उनकी यशोगाथा दूर-दूरतक सुनायी देने लगी।

× × ×

कौशाम्बीके समीप ही एक राजाकी राजधानी थी। एक दिन राजाने अपने कोषाध्यक्षको बुलाकर आदेश दिया कि मुझे एक ऐसा सुशोभित मुकुट बनवाना है, जैसा [illegible]

संसारमें कहीं भी न देखा गया हो। इस मुकुटमें बहुमूल्य रत्न जड़े हों। ऐसी मेरी इच्छा है। पाण्डु जौहरीके सिवा इतना बड़ा काम कोई भी दूसरा नहीं कर सकता। इसलिये शीघ्र ही पाण्डु जौहरीको ऐसा मुकुट बनवा देनेके लिये कहला दो।' राजाके आदेशानुसार कोषाध्यक्षने पाण्डु जौहरीको सूचित कर दिया।

निश्चित समयपर मुकुट तैयार हो गया। इसके अतिरिक्त भी, पाण्डु जौहरीने अपनी सारी पूँजी लगाकर हीरे-माणिक और सोने-चाँदीके बहुत-से आभूषण तथा अन्यान्य चीजोंके बढ़िया नमूने बनवाये। ये सभी चीजें अपने साथ लेकर वे राजधानीकी ओर निकल पड़े। पंद्रह-बीस बलवान् रक्षक अपने साथ ले लिये और खुशी तथा सावधानीके साथ आगे बढ़ने लगे। उन्हें विश्वास था कि उनकी सारी चीजें राजाके यहाँ खप जायँगी और अच्छी कमाई एवं कीर्ति बढ़ेगी। किंतु जब वे एक घने जंगलमेंसे गुजर रहे थे, तब उन्हें डाकुओंका एक दल मिला। इस दलमें पचास-साठ डाकू थे। उन डाकुओंने जौहरीको लूट लिया। जौहरीके साथ आये हुए रक्षकोंने बहादुरीके साथ सामना किया, पर आखिर डाकुओंकी ही जीत हुई और वे जौहरीकी तमाम चीजें लेकर चम्पत हो गये!

सब समाप्त! एक क्षण पहलेके लक्षाधिपति जौहरी बिल्कुल कंगाल स्थितिमें आ गये। उनकी सारी आशाएँ धूलमें मिल गयीं। वे कहींके भी न रहे। अब उन्हें अपने अतीतके पापोंके लिये बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। जवानीमें किसका कितना बुरा किया था, सब सामने आ गया। जो बोया था, वही फल गया। उनकी आँखोंके आगेका पर्दा दूर हो गया। कर्मकी गतिका अभिप्राय जैसा, जितना इस समय समझमें आ रहा था, वैसा, उतना पहले कभी नहीं आया था। अब उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया। उनके हृदयमें दयाका स्रोत उमड़ने लगा। पश्चात्तापकी अग्निसे मानस पवित्र हो गया।

पाण्डुको आज अपनी निर्धन परिस्थितिका कोई दुःख नहीं हो रहा है। दुःख है तो केवल इतना ही है कि धनके द्वारा जो दूसरोंकी भलाई कर सकते थे और श्रमणोंकी सेवा करके उनके द्वारा धर्म-प्रचारका जो कार्य हो रहा था, उसमें रुकावट आ गयी!

(५)

कौशाम्बी नगरीके पास एक जंगल है। इसी जंगलमें रातमें डाकुओंने बेचारे पाण्डुको लूट लिया था। उसी रास्तेसे आज एक बौद्ध साधु जा रहे थे। वे तो अपने ही विचारोंमें मस्त थे। हाथोंमें एक कमण्डलु और एक छोटी-सी गठरी थी, जिसमें कुछ हस्तलिखित पुस्तकें थीं। गठरीके ऊपर एक बहुमूल्य वस्त्र बँधा था। किसी श्रद्धालुने ग्रन्थमहिमासे आकर्षित होकर पूज्यभावसे गठरी बाँधनेके लिये उन्हें यह कपड़ा दिया हो, ऐसा लगता था। यही बहुमूल्य वस्त्र साधुके लिये विपत्तिका कारण बन गया। डाकुओंने दूरसे ही इस गठरीको देखा और 'बहुमूल्य वस्त्रमें अवश्य कोई कीमती चीजें छिपी होंगी'—यों समझकर वे उस साधुपर टूट पड़े। जब उन्होंने गठरी खोलकर देखी और उसमें केवल कुछ कागज ही निकले, तब तो उनके क्रोधका पारा और भी चढ़ गया। उन्होंने मिलकर साधुको घूँसोंसे मार-मारकर गिरा दिया और यों अपनी नीचताका प्रदर्शन करके चले गये।

साधु अत्यन्त पीड़ासे कातर था। उस रातको वहाँसे आगे नहीं बढ़ सका। सुबह होनेपर बड़ी कठिनतासे आगे बढ़नेका प्रयत्न किया। कुछ ही आगे बढ़ा होगा कि उसे समीपकी झाड़ीमें शोरगुल और हथियारोंकी खड़खड़ाहट सुनायी दी। साधु धीरे-धीरे वहाँ जा पहुँचा। पहुँचते ही देखा कि पिछली रातके जिस डाकुओंके दलने उसे लूट-मारा था, उसी दलके लोग आपसमें लड़ रहे थे। इनमेंसे एक डाकू बड़ा बलवान् था। जैसे शिकारी कुत्तोंसे घिरा हुआ सिंह गुस्सेमें आकर उनपर टूट पड़ता है, वैसे ही वह बलवान् डाकू उन सब डाकुओंको मार रहा था। किंतु वह अकेला था, जब कि विरोधियोंकी संख्या बहुत अधिक थी। दस-बारह आदमियोंको उसने जमीनपर गिरा दिया; किंतु आखिर वह भी घायल होकर जमीनपर गिर पड़ा। उसके शरीरपर बहुत चोटें थीं। उसे वहींपर छोड़कर जीवित डाकू भाग गये।

श्रमणने समीप आकर देखा तो दस-पंद्रह लाशें पड़ी थीं। इनमेंसे केवल एक वही बहादुर डाकू जीवित था, जो अपने जीवनकी आखिरी साँस ले रहा था। साधुका हृदय भर आया। इस निरर्थक हत्याकाण्डसे उसे बड़ा दुःख हुआ। करीब ही एक निर्मल पानीका झरना बह रहा था, उसमेंसे अपने कमण्डलुमें ताजा जल भरकर साधु ले आया और उस डाकूकी आँखोंपर थोड़ा-थोड़ा छिड़कना शुरू किया। डाकूकी आँखें

दूसरा सारा द्रव्य, जो मैंने लूटा था, वह सब यहीं करीबकी गुफामें गड़ा हुआ है। वे यहाँ आकर ले जायँ। मेरे जिन दो साथियोंको उस गड़े हुए धनका पता था, वे अब मर चुके हैं। इसलिये अब वह धन सुरक्षित है।' मैं चाहता हूँ कि मरते-मरते भी मैं कुछ ऐसा काम करता जाऊँ, जिससे मेरे पापोंका बोझ कुछ हल्का हो जाय। मेरी मानसिक मलिनता भी इस तरह धुलकर स्वच्छ हो जायगी और मोक्षके मार्गकी ओर जानेका कोई वास्तविक अवलम्बन भी मुझे मिल ही जायगा।" यों कहकर गुफाकी जगहका सही पता बताते हुए श्रमणकी गोदमें ही महादत्तने अपनी जीवनयात्रा समाप्त कर दी।

(७)

श्रमण महात्माने कौशाम्बीमें जाकर पाण्डु जौहरीको सारी बातें बता दीं। पाण्डु तुरंत ही कुछ सिपाहियोंको साथ लेकर गुफापर पहुँचे। गुफामें जाकर वहाँ अपने गड़े हुए सारे धनको बाहर निकाला। फिर उन्होंने महादत्त और दूसरे डाकुओंकी लाशोंका सम्मानपूर्वक अग्निसंस्कार करवाया। उस समय महादत्तकी चिताके आगे खड़े होकर पान्थक श्रमणने निम्नलिखित उपदेश दिया—

'हम स्वयं ही बुरे काम करते हैं और स्वयं ही उन बुरे कामोंका फल भोगते हैं। इसलिये हमें स्वयं ही इस बुराईको दूर करके स्वयं ही शुद्ध होना चाहिये। पवित्रता और अपवित्रता दोनों अपने ही हाथमें हैं। दूसरा कोई भी हमें पवित्र नहीं बना सकता। हमें स्वयं ही पवित्रता पानेके लिये प्रयत्न करना होगा। बुद्धभगवान्‌का भी यही उपदेश है।

'हमारे कर्म किसी दूसरे देवताके बनाये नहीं हैं, उनके रचयिता हम स्वयं ही हैं। माताके गर्भकी भाँति हम अपने ही कर्मरूपी गर्भस्थानमें जन्म लेते हैं और वे ही कर्म हमें चारों ओरसे घेरे रहते हैं। इनमें हमारे जो बुरे कर्म होते हैं, वे हमारे लिये अभिशापरूप सिद्ध होते हैं और अच्छे कर्म आशीर्वादरूप बनते हैं। इस तरह हमारे कर्मोंके भीतर ही मोक्ष-प्राप्तिका बीज छिपा हुआ है।'

पाण्डु तमाम धनको कौशाम्बी ले आये। वहाँ पहुँचकर वे बड़ी सावधानीके साथ धनका सदुपयोग करने लगे। पैसेकी छूट होनेसे व्यापार भी खूब बढ़ गया। उस व्यापारकी कमाईको भी वे उदारतापूर्वक सत्कार्यमें ही व्यय करने लगे।

जब उनकी वृद्धावस्था आयी और आयुके दिन पूरे होते दिखायी दिये, तब उन्होंने अपनी सभी संतानोंको बुलाकर कहा—"मेरे प्यारे बच्चो! निराश होकर कभी भी किसी भी अच्छे कामको छोड़ मत देना। यदि किसी कार्यमें तुम्हें सफलता न मिले तो उसके लिये किसी दूसरे पर दोष न मढ़ना। हमें अपनी निष्फलता या दुःखके कारणको अपने ही कामोंमें ढूँढ़ निकालना चाहिये; क्योंकि वह कारण इन्हींमें छिपा है। उस कारणको दूर करना चाहिये। यदि तुम अभिमान या अहंकारके पर्देको हटा दोगे तो तुम्हें अपने जीवनमें ही स्थित अपनी निष्फलता और कठिनाइयोंके कारणोंका पता अपने-आप ही लग जायगा और साथ-ही-साथ उनसे छूटनेका मार्ग भी दीखने लगेगा। दुःख-नाशका उपाय भी हमारे हाथमें है। तुम्हारी आँखोंके सामने मायाका पर्दा न पड़ जाय, इसका ख़याल सदा रखना और मेरे जीवनमें जो वचन अक्षरशः सिद्ध हुआ है, उसका सदा स्मरण करना। वह वचन यह है—

'जो दूसरोंको दुःख देता है, वह अपने-आपको दुःख पहुँचाता है और जो दूसरोंका भला करता है, वह अपना ही भला करता है।' ऐसा मानना।

'देहकी ममताका पर्दा दूर होते ही सत्यासत्यका मार्ग मिल जाता है।'

"यदि तुम मेरे इन वचनोंको याद रखकर इनके अनुसार जीवन बनाओगे तो मृत्युके समय भी तुम अच्छे कर्मोंके छायामें रहोगे और तुम्हारा जीवात्मा तुम्हारे शुभ कर्मोंसे अमर बन जायगा।"

सुन्दर परलोककी बात

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

कौन जानता है कि मरनेपर क्या होगा !
मृत्युके पर्देके उस पार न जाने क्या है ! कैसा है !
उस रहस्यमय अवगुण्ठनको किसने खोल पाया है !

अनिश्चितताके उस महासागरमें डुबकी लगानेपर कहाँ ठिकाना लगेगा—इसे कौन जानता है !

इत ते सब ही जावहीं भार लदाय लदाय ।
उत ते कोउ न आवई·················॥

पर हताश होनेकी बात नहीं ।
कुछ प्रमाण 'उत ते' आनेवालोंके भी मिले हैं ।

रहस्यका भेद जाननेके लिये मानवकी जिज्ञासा अनादिकालसे सचेष्ट रही है । जीवनके साथ लगी हुई अनिवार्य मृत्युकी ओर मानव कबतक आँख मूँदे बैठा रहता !

हमारे वेद, उपनिषद्, योगशास्त्र, पुराण आदिमें तो स्थान-स्थानपर जीवन और मृत्युके रहस्यका विशद विवेचन मिलता ही है, विश्वके भिन्न-भिन्न धर्मोंमें भी इसपर कुछ-न-कुछ चर्चा मिलती है । पर आजके संशयशील मानवने भी इस दिशामें कदम उठाया है । मृत्युके उपरान्त जीवनकी खोजके लिये विश्वके विभिन्न अञ्चलोंमें जो कार्य हुआ है, हो रहा है, उसे उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता । इस विषयमें हुई अनेक शोधें प्रकाशमें भी आ चुकी हैं । मरणोत्तर जीवन, परलोक और पुनर्जन्मपर पर्याप्त साहित्य भी उपलब्ध है ।

इस सम्बन्धमें प्रामाणिक विवरण प्राप्त करनेके लिये मानसशास्त्री, परामनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक अनेक वर्षोंसे प्रयत्नशील हैं । निम्नलिखित कुछ पुस्तकोंसे इन बातोंकी अच्छी जानकारी प्राप्त की जा सकती है—

लेखकोंके नाम	पुस्तकोंके नाम
१. Dr. D. D. S. Clark	Psychiatry Today
डा० डी० डी० एस० क्लार्क	साइकिएट्री टुडे
२. Harry Price	Fifty Years of Psychical Research
हैरी प्राइस	फिफ्टी ईयर्स ऑव साइकिकल रिसर्च
३. Dr. Richet	Thirty Years of Psychical Research
डा० रिचेट	थर्टी ईयर्स ऑव साइकिकल रिसर्च
४. Dr. J. B. Ryne	Extra-sensory Perception
डा० जे० बी० राइन	एक्स्ट्रा-सेंसरी परसेप्शन
	New Frontiers of Mind
	न्यू फ्रन्टियर्स ऑव माइंड
	The Reach of Mind
	दि रीच ऑव माइंड
	The World of Mind
	दि वर्ल्ड ऑव माइंड
५. William James	Varieties of Religious Experience
विलियम जेम्स	वेराइटीज़ ऑव रेलीजस एक्सपीरियन्स
६. Professor Pratt	Religious Consciousness
प्रो० प्रेट	रेलीजस कांशसनेस
७. F. W. Wyres	Human Personality and Its Survival
एफ० डब्लू० वायर्स	ह्यूमन पर्सनैलिटी ऐण्ड इट्स सर्वाइवल
८. Dr. Hudson	Law of Psychical Phenomena
डा० हडसन	लॉ ऑव साइकिकल फेनोमेना
९. Kanga	Lives of Alien Incarnation,
कांगा	लाइव्ज ऑव एलियन इन्कार्नेशन
	Fact or Fallacy where Theosophy and Science Meet
	फैक्ट ऑर फैलेसी हेयर थियॉसॉफी ऐण्ड साइन्स मीट
१०. Theosophical Publication	The other side of Death
थियासॉफिकल पब्लिकेशन	दि अदर साइड ऑव डेथ

११. Bishop Leadbeater	Chakras; Clairvoyance; Invisible Helpers and Man; Whence, How & Whither
बिशप लेडबीटर	चक्रज, क्लेयरवायन्स; इन्विज़-बल हेल्पर्स ऐण्ड मैन; ह्वेन्स, हाउ ऐण्ड ह्विदर
१२. Butler	Exploring the Psychic World
बटलर	एक्सप्लोरिंग दि साइकिक वर्ल्ड
१३. Oliver Lodge	Survival of Man
ऑलिवर लॉज	सर्वाइवल ऑव मैन
१४. J. C. Bose	Response in the Living and Non-living
जे० सी० बोस	रिस्पॉन्स इन दि लिविंग ऐंड नॉनलिविंग
१५. Dr. Krafford	Reality of Psychic Phenomena
डा० क्रैफर्ड	रियेलिटी ऑव साइकिक फेनोमिना
१६. S. Desmond	You can speak with the Dead
एस० डेसमाण्ड	यू कैन स्पीक विथ दि डेड
	The Incarnation for Every man
	दि इन्कार्नेशन फॉर एवरी मैन
	We do not die
	वी डू नॉट डाइ
	World Birth
	वर्ल्ड बर्थ
	How you live when you die
	हाउ यू लिव ह्वेन यू डाइ!
१७. Randell	The Dead have never Died
रैण्डेल	दि डेड है। नेवर डाइड
१८. Sir Arthur Edlington	Science and The Unseen World
सर आर्थर एडिंग्टन	साइन्स ऐण्ड दि अनसीन वर्ल्ड

१९. Aurobindo Ghosh	The Problem of Rebirth
अरविन्द घोष	दि प्राब्लेम ऑव रीबर्थ
२०. Vishnu Mahadev Bhatt	Yogic Powers and God-Realization
विष्णु महादेव भट्ट	योगिक पावर्स ऐण्ड गॉड रियलाइजेशन
२१. Arthur Findlay	On the Edge of the Etheric
आर्थर फिण्डले	ऑन दि एज ऑव दि एथेरिक
२२. William Cooks	Researches in Spiritualism
विलियम कुक्स	रिसर्चेज इन स्पिरिचुअलिज्म
२३. Simeon Edmunds	Spiritualism: a Critical Survey
साइमन एडमंड्स	स्पिरिचुअलिज्म: ए क्रिटिकल सर्वे
	Miracles of the Mind
	मिरेकल्स ऑव दि माइंड
	Spirit Photography
	स्पिरिट फोटोग्राफी
२४. F. W. H. Myers	Human Personality and Its Survival of Bodily Death
एफ० डब्लू० एच० मायर्स	ह्यूमन पर्सनैलिटी ऐण्ड इट्स सर्वाइवल ऑव बॉडिली डेथ
२५. Frank Podmore	Modern Spiritualism
फ्रैंक पॉडमोर	माडर्न स्पिरिचुअलिज्म
२६. Sir William Crookes	Researches in the Phenomena of Spiritualism
सर विलियम क्रुक्स	रिसर्चेज इन दि फेनोमिना ऑव स्पिरिचुअलिज्म
२७. J. Arthur Hill	Spiritualism: Its History, Phenomena and Doctrine
जे० आर्थर हिल	स्पिरिचुअलिज्म: इट्स हिस्ट्री, फेनोमिना ऐण्ड डॉक्ट्रिन
२८. Antony Flew	A New Approach to Psychical Research
एंटनी फ्लू	एन्यू एप्रोच टु साइकिकल रिसर्च
२९. Sir William Fletcher Barrett	Psychical Research
सर विलियम फ्लेचर बैरेट	साइकिकल रिसर्च

१०. Hereward-Carrington हियरवार्ड कैरिंटन	The Psychical Phenomena of Spiritualism दि साइकिकल फेनोमेना ऑव स्पिरिच्युएलिज्म	
११. Joseph MacCabe जोसेफ मैकुकैब	Spiritualism: a Popular History from 1847 स्पिरिच्युएलिज्मः ए पोपुलर हिस्ट्री फ्रॉम १८४७	
१२. Charles Richet चार्लस रिचेट	Traite de Metapsychique ट्रेटे द मेटासाइकिक	
१३. S. G. Soal एस० जी० सोल	My Thirty Years of Psychical Research माइ थर्टी ईयर्स ऑव साइकिकल रिसर्च	
१४. Dion Fortune डियॉं फोरच्यून	Psychic Self-Defence साइकिक सेल्फ-डिफेंस	
१५. B. Abdy Collins, C. I. E. बी० एब्डी कॉलिन्स, सी० आई० ई०	The Death is not the End दि डेथ इज़ नॉट दि एण्ड	
१६. T. R. Ganapathiramier टी० आर० गणपथिरामियर	The Life After Death दि लाइफ आफ्टर डेथ	
	Conquest of Death, its Fears कान्केस्ट ऑव डेथ, इट्स फीयर्स	
१७. Chamanlal चमनलाल	Mysteries of Life and Death मिस्टेरीज ऑव लाइफ एंड डेथ	
१८. Sir Colin Garbett K. C. I. E., C. S. I., C. M. G. सर कॉलिन गारबेट, के० सी० आई० ई०, सी० एस० आई०, सी० एम० जी०	The Ringing Radiance दि रिंगिंग रैडियेन्स	
१९. Kenneth Richmond केनेथ रिचमंड	Evidence of Identity एविडेंस ऑव आइडेंटिटी	
२०. W. H. Salter	Ghosts And Apparitions	
४१. H. F. Saltmarsh एच० एफ० साल्टमार्श	Foreknowledge फोरनॉलेज	
	Evidence of Personal Survival from Cross Correspondences एविडेंस ऑव पर्सनल सर्वाइवल फ्रॉम क्रॉस कॉरेसपाण्डेन्सेज	
४२. Zoe Richmond ज़ू, रिचमण्ड	Evidence of Purpose एविडेंस ऑव परपस	
४३. C. K. Shaw सी० के० शा	Yes, We do Survive येस, वी डू सर्वाइव	
४४. Robert Crookall रावर्ट क्रूकल	More Astral Projections मोर ऐस्ट्रल प्रोजेक्शन्स	

× × ×

मृत्युके उपरान्त जो जीवन है, उसकी शोध बहुत ही मनोरञ्जक है। 'इन्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट फॉर साइकिकल रिसर्च'के संस्थापक और 'साइकिकल लीग' के अध्यक्ष श्रीशा डेसमण्डने 'हाउ यू लिव व्हेन यू डाइ' (मृत्युके उपरान्त आप कैसे रहते हैं!) पुस्तकमें उसका अत्यन्त ही आकर्षक वर्णन किया है। आइये, हम उसकी हल्की-सी झाँकी करें।

× × ×

श्रीशा डेसमण्डके एक मित्र थे—नाटककार। 'जान ब्लेक' मान लीजिये उनका नाम। उनकी बीबी नहीं चाहती उनका नाम प्रकट करना। हाँ, तो ब्लेक साहब 'परलोक' आदिमें कोई विश्वास नहीं करते थे। डेसमण्डसे बात होती तो वे हँसीमें उड़ा देते। कहते, 'क्या बेकारकी बातें करते हो? कहाँ है, क्या है परलोक......!'

ब्लेकके एक प्रसिद्ध नाटकका फिल्म बना।

एक दिन ब्लेक लन्दनके किसी क्लबमें हाथ धो रहे थे कि उनपर गृध्रसी (लम्बेगो-Lumbago) का हमला हो गया। बादमें सुना कि ब्लेक साहबका देहान्त हो गया।

× × ×

ब्लेक साहबका शरीर बिस्तरपर पड़ा है।

उनकी सुन्दरी पत्नी बगलमें खड़ी रो रही है। विलाप कर रही है। ब्लेकको आश्चर्य हो रहा है—यह सब क्या तमाशा है। पत्नीसे कहता है—'डोडो, डार्लिंग! क्या बात है! क्यों रो रही हो! मैं तो बिल्कुल ठीक हूँ।'......'

वह उस समय भी विमानमें थी। हवा बह रही थी और ऊपर था खुला आकाश। वह सोचती है—'पर यह शरीर तो मेरा ही है—मेरीका। तो क्या मैं मर गयी? पर, मैं तो जीवित हूँ। मुझे अपने मित्र आर्थरसे मिलना चाहिये। कितनी बातें कहनी हैं उससे।' और इतना सोचते ही वह आ पहुँची आर्थरके पास।

वह आर्थरको देख रही थी, उसकी बातें सुन रही थी। इतना ही नहीं, आर्थरने भी स्पष्ट रूपसे मेरीकी बातें सुनीं।

'फिर मिलेंगे'—कहकर मेरी वहाँसे विदा हुई।

× × ×

श्री डेसमण्डने अपने 'मृत' पुत्र—जॉनके साथ हुई अपनी मुलाकातका भी वर्णन किया है। उन्होंने कई बार उससे भेंट की। २९ दिसम्बर १९३३ को कितने ही लोगोंके समक्ष जॉनने आकर डेसमण्डका हाथ और घुटना छूकर बड़े प्रेमसे कहा—'फादर, आई लव यू!' (पिताजी, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।)

× × ×

श्री डेसमण्डका ही नहीं, परलोकविद्यासे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक लोगोंका कहना है कि 'मरकर भी मनुष्य मरता नहीं। शरीर छूट जाता है, पर आत्मा अमर है। मृत्युके उपरान्त जीव परलोकमें मस्तीसे भ्रमण करता है।' और कैसा सुन्दर है—परलोक? शरीरकी आधि-व्याधिका वहाँ कोई पता नहीं। न कोई रोग है, न कोई बीमारी। न कोई चिन्ता, न कोई परेशानी। पैसेकी वहाँ कोई जरूरत नहीं। न कोई लेन-देन, न कोई खरीद-बिक्री, न कोई सौदेबाजी। न कोई दूकान, न कोई व्यापारी। इच्छाएँ मनमें आते ही पूरी हो जाती हैं वहाँ। ऐसा लगता है, मानो कल्पवृक्षके नीचे ही बैठे हैं सब लोग।

जो इच्छा की, वह तत्काल पूरी हो जाती है।

जिससे मिलना है, इच्छा करते ही उसके पास मौजूद।

आगसे, पानीसे, पत्थरसे, लोहेसे, पहाड़से बिना किसी अड़चनके आत्मा पार चला जाता है। उसके मार्गमें कहीं कोई बाधा ही नहीं आती। परलोकमें न कोई राजनीति है, न कोई दलबंदी। न युद्ध है, न अशान्ति। पुरुष और स्त्री—सब वहाँ समान हैं।

सर्वत्र प्रेम और आनन्दका साम्राज्य है। मस्ती और मौजसे भरा जीवन है। आनन्द-कानन है। रंग बिरंगे पुष्प हैं, संगीत है और क्या नहीं है?

हाँ, जो लोग जगत्के मायाजालसे बहुत बँधे रहते हैं, रुपये-पैसेसे बहुत बँधे रहते हैं, राग-द्वेषके चक्करमें अपनेको डुबाये रखते हैं—वे जब परलोक पहुँचते हैं तो कुछ दिनोंतक परेशान रहते हैं, रोते-झींकते और कुढ़ते रहते हैं—परंतु कुछ उदार और दयालु आत्मा उनके पास आकर उन्हें ढाढस देते हैं, उन्हें समझाते हैं, उन्हें रास्ता दिखाते हैं। तब धीरे-धीरे उनके जीकी जलन दूर होती है और वे भी तब स्वस्थ और प्रसन्न जीवन बिताने लगते हैं।

परलोकका शरीर ईथर (ether) का बना होता है। स्वाद, स्पर्श और गन्धसे उसका कोई वास्ता नहीं रहता। बेतारके तारकी भाँति सारे समाचार उसे मिलते रहते हैं। जिससे जब चाहिये मिलिये, भेंट कीजिये। जब चाहिये पृथ्वीके लोगोंसे मिलिये, जब चाहे परलोकवासियोंसे। जिन्हें इस जगत्से बहुत मोह होता है, ऐसे जीव पुनर्जन्म लेकर फिर इस पृथ्वीतलपर चले आते हैं।

× × ×

मतलब?

परलोक कोई हौआ नहीं।

परलोक कोई कष्ट और यन्त्रणाका आगार नहीं। परलोक कोई भयोत्पादक स्थान नहीं। परलोकमें दुनियाकी कोई झंझट नहीं। वही हाल है—

'यानी गम बहुत से आये,

गुमद हुई आराम किया!'

हमारे सभी मृत सगे सम्बन्धी परलोकमें हमसे मिल जाते हैं। हमारी सारी इच्छाएँ वहाँ आनन फानन पूरी हो जाती हैं। सर्वत्र प्रेम, आनन्द और रंगोंकी मधुरिमा लहराती दीख रही है। आत्माकी अमरताका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। [illegible] आनन्द स्वरूपका प्रत्यक्ष भान होता है। फिर परलोकके नामसे डर और भयभीत होनेका प्रश्न ही कहाँ उठता है?

सचमुच, कैसा सुन्दर है इहलोक,

कैसा सुन्दर है परलोक!

एतेषां संनिकर्षात् तु यदग्निपरितापजम् ।
तथोग्रगन्धजं चापि दुःखं नरकसम्भवम् ॥
क्षुत्पिपासाभवं दुःखं यच्च मूर्च्छाप्रदं महत् ।
एतेषां त्राणदानं तु मन्ये स्वर्गसुखात् परम् ॥
प्राप्स्यन्त्यार्त्ता यदि सुखं बहवो दुःखिते मयि ।
किं नु प्राप्तं मया न स्यात् तस्मात् त्वं व्रज माचिरम् ॥

(मार्कण्डेयपुराण १५ । ६१–६५)

राजा आग्रहपूर्वक रुक गये, तब उन्हें लेनेके लिये स्वयं धर्मराज और इन्द्र वहाँ पहुँचे । धर्मराजने विमानपर सवार होकर उन्हें स्वर्ग चलनेके लिये कहा । पर राजाने कह दिया कि 'ये दुखी जीव मुझे लक्ष्य करके त्राहि-त्राहि पुकार रहे हैं । अतः मैं नहीं जाऊँगा । आपलोग जानते हीं तो देवराज इन्द्र और धर्मराज ! बताइये मेरे कितने पुण्य हैं । (जिनसे इनको सुख मिल सके) ।'

धर्मने कहा—जैसे समुद्रके जलबिन्दु, आकाशके तारे, वर्षाकी धाराएँ, गङ्गाजीके बालुका-कण या गङ्गाजलकी बूँदें असंख्य हैं, वैसे ही तुम्हारे पुण्य भी असंख्य हैं और आज तो इन नारकी जीवोंपर कृपा करनेसे तुम्हारे पुण्य लाखों गुने और बढ़ गये हैं ।

राजाने कहा—मेरे समीप आनेसे इन दुखी जीवोंको यदि उच्च पद नहीं मिला तो फिर क्या हुआ ! मेरे जो कुछ भी पुण्य हैं, उनके द्वारा ये यातनामें पड़े हुए पापी जीव नरकसे छुटकारा पा जायँ ।

अब तो नारकी जीव मुक्त होने लगे । इन्द्रने कहा— 'राजन् ! इस तुम्हारी उदारताने तो तुमको और भी ऊँचे स्थानपर पहुँचा दिया है । देखो, ये सब पापी प्राणी नरकसे मुक्त हो गये ।'

उधर पापी नरकमुक्त हुए, इधर राजापर पुष्पवर्षा होने लगी । स्वयं भगवान् विष्णु प्रकट हो गये और उन्हें विमानमें बैठाकर दिव्य धाममें ले गये ।*

ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः ।
विमानं चाधिरोप्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः ॥

(मार्कण्डेयपुराण १५ । ७८)

श्राद्धकी अनिवार्य आवश्यकता

मृतात्माके लिये तर्पण, श्राद्ध आदि अवश्य करने चाहिये । प्रतिदिन ही तर्पण तथा बलिवैश्वदेवके अङ्ग-रूप श्राद्ध अवश्य करना चाहिये । वैसे आश्विन कृष्ण पक्षमें मृतककी निधन-तिथिको तथा जिस मासमें जिस तिथिको मृत्यु हुई थी, उसी मासकी उस तिथिके दिन प्रतिवर्ष अपनी शक्तिके अनुसार श्रद्धापूर्वक श्राद्ध अवश्य करना चाहिये । यदि मृतात्मा यमलोकके प्रेतविभाग या पितृविभागमें है, तब तो उसकी भयानक भूखमें इससे बड़ी तृप्ति मिलेगी । देवलोकमें चला गया है या किसी स्थूलशरीरको प्राप्त हो गया है तो वहाँ भी उस देहके अनुरूप तृप्तिकारक वस्तुके रूपमें परिणत होकर वह उसे मिल जायगा । जीव जहाँ भी होता है, वहीं उसको उसके अनुरूप होकर वह वस्तु मिल जाती है, वैसे ही जैसे सुदूर देशमें भारतसे प्रेषित रुपये, प्रेषणविभागद्वारा वहाँ भेज दिये जाते हैं और वहाँके प्रचलित सिक्केके रूपमें (जैसे भारतका रुपया अमेरिकामें डालरके रूपमें मिल जाता है, वैसे ही) जिनके नाम भेजे गये हैं, उनको मिल जाते हैं ।

श्राद्धके अतिरिक्त समय-समयपर मृतकके लिये अन्नदान, जलदान और वस्त्रदान तो यथाशक्ति करते ही रहना चाहिये ।

ऐसा कहा जाता है कि गयाश्राद्ध करनेपर या अमुक तीर्थमें पिण्ड देनेपर उसके लिये श्राद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं रहती; क्योंकि वह प्राणी मुक्त हो जाता है । यह सत्य भी हो सकता है । परंतु यदि कदाचित् किसी कारणवश वह मुक्त न हुआ हो तो श्राद्ध न करनेसे वह आत्मा अतृप्त, दुखी रह जाता है तथा हम कर्तव्यसे च्युत होते हैं । अतएव गयाश्राद्ध या तीर्थमें विशेष पिण्डदान देनेके बाद भी श्राद्ध तो करते ही रहना चाहिये ।

जिसके लिये श्राद्ध किया जाता है, कदाचित् वह मुक्त हो गया तो यहाँ किया हुआ श्राद्धकर्मरूपी पुण्य, वैसे ही कर्ताके पास लौट आता है, जैसे किसीके नाम मनीआर्डर या बीमा भेजे जानेपर उसके मृत हो जाने या न मिलनेपर भेजनेवालेके पास वापस लौट आता है । अतएव हर हालतमें श्राद्धकर्म करना ही चाहिये ।

मृतकके लिये श्राद्ध अनिवार्य आवश्यकता है ।

* यह कथा पद्मपुराणमें भी आयी है ।

प्रह्लादका पूर्वजन्म

[पृष्ठ ४१८

देवर्षि नारदके पूर्वजन्म

[पृष्ठ ४१८

विपश्चित्‌से नारकी प्राणियोंकी पुकार [पृष्ठ ६६८

विपश्चित्‌से धर्मराज और इन्द्रकी बातचीत [पृष्ठ

विपश्चित् भगवान् विष्णुके साथ विमानमें [पृष्ठ

स्वाभाविकरूपसे ही उसका दर्शन अथवा अनुभव क्यों नहीं होना चाहिये !

अब हम इस सम्बन्धमें यथार्थ कारणकी खोजके लिये लोकव्यवहारके स्वाभाविक नियमोंकी ओर दृष्टि ले जाना उचित समझते हैं।

संसारमें देखा जाता है कि कोई वस्तु सामने उपस्थित होते हुए भी जब हम उसे देख नहीं पाते, तो अवश्य ही उस वस्तुके और हमारे बीच कोई आवरण होता है। उसीके कारण सामने उपस्थित रहते हुए भी हम उस वस्तुको देख नहीं पाते। अतएव ऐसी ही कोई बात हमारे और सर्वव्यापी परमात्माके बीच भी सम्भव हो सकती है, जिसके कारण उस परमात्माके जगत्के कण-कणमें व्याप्त होते हुए भी सर्वसाधारणको उसका दर्शन अथवा अनुभव नहीं हो पाता।

अब यह आवरण भी संसारमें कितने प्रकारके हो सकते हैं, इस बातकी ओर ध्यान ले जाना भी आवश्यक होगा; क्योंकि इसीके सहारे हम अपने और सर्वव्यापी परमात्माके बीच आवरणकी खोज कर सकेंगे।

साधारणरूपसे एक आवरण होता है—दीवार-जैसा। इसमें दीवारके बीचमें होनेके कारण, उस पारकी वस्तु सामने उपस्थित होते हुए भी हमें दिखायी नहीं देती। पर हमारे और सर्वव्यापी परमात्माके बीच इस तरहका कोई पर्दा नहीं है; क्योंकि यदि ऐसा कोई पर्दा हो, तो वह सर्वव्यापी प्रभु उस पर्देमें भी तो व्याप्त है; अतएव उस पर्देपर ही उसका दर्शन अथवा अनुभव बिना किसी प्रयत्नविशेषके स्वाभाविकरूपमें ही सम्भव होना चाहिये।

दूसरा एक प्रकारका पर्दा अभ्यास अथवा निर्माण-कलाके द्वारा सामने उपस्थित होनेवाले चमत्कारों अथवा आविष्कारोंके सम्बन्धमें देखा जाता है। जैसे शीतोष्णका यथाधारणरूपसे सहन कर लेना, पहाड़की चोटियोंपर सुगमताके साथ चढ़ जाना, नेत्र बंद करनेपर अनेक प्रकारके दृश्य सामने उपस्थित होना, कान बंद करनेपर अनेक प्रकारके शब्द सुनायी देना, शब्दभेदी बाण चलाना, इत्यादि; ऐसे ही कई वस्तुओंके युक्तिपूर्वक संयोग और संयमके द्वारा रेलके इंजन, तार, मोटर, वायुयान, सिनेमा, रेडियो आदि आविष्कारोंका सामने आ जाना। इन चमत्कारों, अथवा आविष्कारोंकी सम्भावना निश्चित होनेपर भी, उनकी प्रत्यक्षतामें अभ्यासके अभाव अथवा निर्माण-कलाके अज्ञानका ही पर्दा रहता है, जिसके कारण सामान्य-रूपसे उनकी प्रत्यक्षता सम्भव नहीं हो पाती। पर हमारे और सर्वव्यापी परमात्माके बीच इस प्रकारका कोई आवरण भी सम्भव नहीं है; क्योंकि परमात्मा किसी प्रकारके अभ्यास अथवा निर्माणका परिणाम न होकर नित्य सच्चिदानन्दघन, सबका प्रभु, जैसा वह है वैसा ही नित्य एकरस रहनेवाला, भगवान् है और सभी प्रकारके अभ्यासों और निर्माण-कौशलोंके पीछे मौलिकरूपसे उसका ही नियन्त्रण छिपा हुआ है। भौतिक विज्ञानके आविष्कारोंमें भी वैज्ञानिक विशेषज्ञ प्रकृतिके नियमोंका निर्माण नहीं करते; किंतु ज्ञात अथवा अज्ञातरूपसे प्रकृतिके अन्तर्गत उस सर्वव्यापी परमात्माद्वारा नियन्त्रित नियमोंको ही खोजते और किसी सीमातक उनकी सूक्ष्मतातक पहुँच पाते हैं।

एक और विचित्र प्रकारका पर्दा होता है—बाजीगर नटके इन्द्रजालका। बाजीगर नट एक जन-समूहके बीच उपस्थित होकर जादूके द्वारा अनेक प्रकारके आश्चर्यजनक दृश्य दिखाता है, जो वास्तवमें उस रूपमें सत्य न होकर केवल जादूके प्रभावसे उस रूपमें दर्शकोंको दिखायी पड़ते हैं। इसे प्रायः नजरबंदीका खेल कहा जाता है। इस जादू अथवा नजरबंदीके पर्देमें विचित्रता यह होती है कि वास्तवमें उस स्थलपर हर एक वस्तु अपनी जगहपर जैसी-की-तैसी बनी रहते हुए भी दर्शकोंको दिखायी दूसरे रूपमें पड़ती है और जादूका प्रभाव हटा लेनेपर फिर पूर्ववत् जैसी-की-तैसी दिखायी पड़ने लगती है। उदाहरणके लिये जैसे बाजीगर नट जादूके द्वारा रुपयेके ढेर दिखा देता है। पर वास्तवमें वहाँ रुपये न होकर केवल जादूके प्रभावसे रुपयेके ढेर दिखायी पड़ते हैं। उन जादूके रुपयोंसे कोई व्यापार नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता, तो बाजीगर नट इस प्रकार रुपयोंके ढेर पैदाकर स्वयं बहुत बड़ा धनी बन जाता और पैसेकी लालचमें सड़कोंपर अथवा द्वार-द्वार जादूका खेल दिखाते फिरनेकी उसे आवश्यकता न होती। इसी प्रकार बाजीगर नट शरीरको टुकड़े-टुकड़े कटा हुआ दिखाकर पुनः जादूका प्रभाव हटाकर, शरीरको फिर पूर्ववत् जैसा-का-तैसा दिखा देता है। वास्तवमें शरीर कटा नहीं; किंतु केवल जादूके प्रभावसे कटा हुआ दिखा दिया गया था। तुलसीकृत रामचरितमानसमें, अंगद-रावण-

सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्माऽऽत्मयोनिना ।
प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥

भगवान् ब्रह्माको अपनेसे उत्पन्न करके उन्हें आदेश देते हैं कि 'हे ब्रह्माजी ! तुम स्वयम्भू, सर्ववेदमय, अपने-आपसे ही मुझमें लीन हुई सम्पूर्ण प्रजाको पूर्वके समान रचना करो ।' और भी—

कदाचिद्‌ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् ।
कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान् समवेतान् यथा पुरा ॥

(श्रीमद्भा० ३ । १२ । ३४)

'ब्रह्माने विचार किया कि मैं पहलेके ही समान सब लोकोंकी रचना किस प्रकार करूँ । उस समय उनके चार मुखोंसे चार वेद प्रकट हुए ।' और भी भगवान्‌का साक्षात्कार कर लेनेके पश्चात् ब्रह्माद्वारा विश्व-सृजनके सम्बन्धमें निम्नलिखित श्लोक आया है—

अन्तर्हितेन्द्रियार्थाय हरये विहिताञ्जलिः ।
सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥

(श्रीमद्भा० २ । ९ । ३८)

'ब्रह्माने अन्तर्धान हुए हरिको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पूर्ववत् इस विश्वको रचा ।'

उपर्युक्त श्लोकोंमें आये रेखाङ्कित यथापूर्व, यथापुरा और पूर्ववत् शब्द इस सम्बन्धमें विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य हैं ।

इस प्रकार महाप्रलयमें जब सारी सृष्टि परमात्मामें लय हो जाती है, उस समय वह परमात्मा अपनेमें लय हुई सृष्टिके सहित एक रहते हैं; यही 'एकोऽहं बहु स्याम ।'में 'एकोऽहं' का तात्पर्य है । फिर उस एकसे बहुत हो जानेका संकल्प होनेपर उस अपनेमें लीन सृष्टिको ही पूर्वकी भाँति पुनः प्रकट कर देते हैं, यही 'बहु स्याम' का अभिप्राय है । अब इस सृष्टि अथवा जगत्-प्रपञ्चकी परमात्मासे पृथक् कोई स्वतन्त्र सत्ता न होकर, उनके अङ्गविशेषके रूपमें नित्य स्थित रहते हुए, उन परमात्माके ही संकल्पसे रचनाकालमें, उनसे ही इसका केवल आविर्भाव और प्रलयकालमें उनमें ही तिरोभावमात्र होता रहता है। यह संसार जड-चेतनात्मक होनेसे इसे 'चिदचित् प्रकृति' भी कहा जाता है । यह चिदचित् प्रकृति अथवा जगत् यद्यपि उपर्युक्त दृष्टिसे परमात्मासे पृथक् न होकर उनका अङ्ग ही है; फिर भी इसकी अपनी एक विचित्र विशेषता है । वह विशेषता यह कि इस चिदचित् प्रकृतिमें परिवर्तन अथवा विकृति भी सम्भव है, पर इसके परिवर्तन अथवा विकृतिसे, परमात्माके स्वरूप और उनकी नित्य एक-रसता और निर्विकारतामें कोई अन्तर नहीं आता । मनुष्यके शरीरमें बालोंके दृष्टान्तसे इस बातको सुगमताके साथ समझा जा सकता है । वह इस प्रकार कि जैसे शरीरमें सिरके अथवा अन्य स्थलके बाल भी हैं तो शरीरका ही भाग; पर जैसे शरीरके किसी भागपर त्वचामें किसी प्रकारकी चोट अथवा आघातसे शरीरमें जख्म अथवा पीड़ा उत्पन्न होकर वह भाग विकृत हो जाता है; उस प्रकार बालोंमें किसी प्रकारकी चोट अथवा दबाव पड़नेपर भी उनमें कोई विकृति नहीं आती; सिरके बालोंको अनेक प्रकारसे ऐंठिये, गुहिये, गाँठ लगाइये, कंघीसे उन्हें छेड़कर इधर-उधर कीजिये; पर उससे शरीरमें कोई आघात अथवा विकृति नहीं आती; किंतु इस प्रकार बालोंको छेड़कर उनमें अनेक प्रकारके गठन अथवा रूप-परिवर्तनसे शरीरके सौन्दर्य और शृङ्गारमें ही एक विशेषता उत्पन्न होती है । इसी प्रकार उपर्युक्त कथनके अनुसार परमात्मामें ही उसके अङ्गरूपमें स्थित चिदचित् प्रकृति अथवा संसारके परिणामी और परिवर्तन-शील होनेसे भी, उस नित्य एकरस परमात्माके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं आता; प्रत्युत वेदान्तदर्शनके 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ।' (२ । १ । ३३) सूत्रके अनुसार उस प्रभुमें बिना किसी विकारके केवल लीलाके रूपमें, उनके द्वारा इस सृष्टि-व्यापारका अवकाश प्राप्त होता है । इस दृष्टिसे ब्रह्मको चिदचिद्विशिष्ट भी कहा जाता है । पर इस चिदचित् प्रकृतिकी ब्रह्मसे पृथक् कोई स्वतन्त्र सत्ता न होकर, शरीरमें रोम और नखके समान यह उस परमात्मामें ही स्थित है। इसलिये इससे ब्रह्मके अद्वैत होनेमें भी कोई बाधा नहीं उपस्थित होती ।

अब जैसे नटके द्वारा उपस्थित किये हुए जादूके दृश्योंको देखनेवाले अज्ञ बालक तो उन दृश्योंको सत्य ही मानकर भ्रमित रहते हैं; पर जिन प्रौढ़ लोगोंको जादूका ज्ञान हो जाता है, वे उन जादूके दृश्योंसे भ्रमित, चकित और मोहित न होकर, उन्हें जादूका खेल समझकर सचेत और सावधान रहते हैं; यद्यपि दृश्य तो उनके सामने भी वही रहते हैं । इसी प्रकार शास्त्र और सत्संगद्वारा जिनको इतना पता हो जाता है कि यह संसार मायाद्वारा उत्पन्न

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ ॥
(बालकाण्ड ११६)

उपर्युक्त त्रिपाद्विभूति अथवा पर विभूतिको उपनिषदोंमें दिव्य ब्रह्मपुर, परव्योम, विष्णुपरमपद इत्यादि अनेक नामोंसे व्यक्त किया गया है, जिसमें उस परम पुरुष परमात्माका निवास सूचित किया गया है। यथा—

मुण्डकोपनिषद्, मु० २। खं० २।७ में—

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि ।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ॥

'यः सर्वज्ञः=जो सर्वज्ञ; सर्ववित्=सब ओरसे सब कुछ जाननेवाला है; यस्य=जिसकी; भुवि=जगत्में; एषः=यह; महिमा=महिमा है; एषः हि आत्मा=यह ही सबका आत्मा (परमात्मा); दिव्ये व्योम्नि ब्रह्मपुरे=दिव्य आकाश, ब्रह्मपुरमें प्रतिष्ठित है।'

और भी—मुण्डकोपनिषद्, मु० २, खं० २। ९ में—

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥

तत्=वह; विरजम्=निर्मल; निष्कलम्=अवयवरहित; ब्रह्म=ब्रह्म; हिरण्मये परे कोशे=प्रकाशमय परमकोश (परव्योम) में प्रतिष्ठित है; तत्=वह; शुभ्रं=विशुद्ध; ज्योतिषां ज्योतिः=ज्योतियोंकी भी ज्योति है; यत्=जिसको; आत्मविदः=आत्मज्ञानी; विदुः=जानते हैं।'

इस परमपद अथवा परमधाममें न सूर्य प्रकाश करता है, न चन्द्रमा, न अग्नि; तात्पर्य यह कि वह स्वयं प्रकाशमान है। इस सम्बन्धमें प्रमाणके लिये श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १५, श्लोक ६, प्रस्तुत निबन्धके आरम्भमें ही दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त उपनिषद्में भी यही बात स्पष्ट है। यथा—मुण्डकोपनिषद् में—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥
(२। २। १०)

'तत्र=वहाँ; न सूर्यः भाति=न सूर्य प्रकाश करता है; न चन्द्रतारकम्=न चन्द्रमा और नक्षत्र ही प्रकाश करते हैं; न इमाः विद्युतः भान्ति=न ये बिजलियाँ ही वहाँ प्रकाश करती हैं; अयं अग्निः कुतः=फिर इस (लौकिक) अग्निकी तो बात ही क्या है ? तात्पर्य यह कि तो फिर यह लौकिक अग्नि वहाँ क्या प्रकाश करेगी ? (कारण कि); तम् भान्तम् एव=उसके प्रकाश करते हुए ही (उसके प्रकाशसे); सर्वम्=ऊपर कहे हुए सूर्य, चन्द्रमा आदि सब प्रकाशित होते हैं। तस्य भासा=उसीके प्रकाशसे; इदं सर्वम्=यह सम्पूर्ण विश्व—जगत्; विभाति=प्रकाशित होता है।

यह त्रिपाद्-विभूति, दिव्य परव्योम अथवा परमधाम उन परब्रह्म परमात्मासे भिन्न कोई अन्य तत्त्व न होकर, उन्हींका प्रकाश, उन्हींका रूप, शुद्ध ब्रह्म ही है। केवल संसारी कर्मबन्धन और आवागमनके चक्रसे मुक्त आत्माओंके उसमें प्रवेश और निवासके सम्बन्धसे उसे परमधाम, ब्रह्मपुर आदि (स्थानसूचक) शब्दोंसे व्यक्त किया गया है। दृष्टान्तके लिये, जैसे सूर्य अपनी किरणोंके प्रकाशके बीच रहता है; वह किरणोंका प्रकाश, सूर्यसे भिन्न कोई पदार्थ न होकर सूर्यका ही रूप है; ऐसे ही परमधामके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये।

कर्मोंके भोगपर्यन्त जीव इस एकपाद्-विभूति संसारमें अनेक शरीर धारण करते हुए, आवागमनके चक्रमें जन्म-मरणको प्राप्त होते रहते हैं। पर ज्ञान और भक्तिकी साधनाद्वारा कर्मबन्धनसे मुक्त होनेपर फिर वे इस संसारमें जन्म नहीं धारण करते। अब ऐसी स्थितिमें वे मुक्तात्मा कहाँ तो रहेंगे ? वही है यह 'परमपद' अथवा 'भगवान्का परमधाम', जहाँ कर्मबन्धनसे मुक्त जीव, अपने सहज आत्मस्वरूपको प्राप्त होकर स्वयं ब्रह्ममें निवास करते हैं।

इस प्रकार परमात्माका सर्वव्यापकत्व तो इस एकपाद्-विभूति, विश्व-जगत् तक ही सीमित है, कारण कि व्यापक शब्द कहते ही, व्यापक और व्याप्य दोकी कल्पना सामने आ जाती है और इस प्रकारका द्वैत इस मायिक जगत्में ही सम्भव है। यहाँ जगत् व्याप्य और परमात्मा व्यापक है। यह व्याप्य और व्यापकका द्वैत, परमपद अथवा परमधाममें नहीं होता। वहाँ तो एक अद्वितीय शुद्ध ब्रह्म ही है; वही धाम भी है और वही धामी भी है। द्वैतरूप मायाका आवरण वहाँ नहीं है।

पर उस दिव्य परमधाममें त्रिगुणात्मिका मायाका व्यापार न होते हुए भी एक अलौकिक विचित्रता यह है

भगवान्का खेल है, वे इसमें मोहित और भ्रमित न होकर, इसे भगवान्के ऐश्वर्यके रूपमें ही देखते हैं।

अब जैसे पर्दा मोटा और घना होनेपर उस पारकी वस्तु बिल्कुल नहीं दिखायी देती; पर किन्हीं उपायोंद्वारा पर्देके हल्का और झीना हो जानेपर कुछ दिखायी देने लगती है; और इस प्रकार विशेष उपायोंद्वारा पर्दा जितना-जितना हल्का और झीना होता जाता है, उतना ही पारकी वस्तु अधिक स्पष्टरूपमें दिखायी देने लगती है। इसी प्रकार भक्ति, योग और ज्ञानकी गम्भीर साधनाद्वारा, मायाका आवरण भी हल्का पड़ता जाता है और इस प्रकार उपासनाके द्वारा जितना यह मायाका आवरण हल्का पड़ता जाता है, उतना-ही-उतना इस मायिक जगत्के पीछे सर्वव्यापी ब्रह्मकी सत्ता भी झलकने लगती है। इस प्रकार अनेक भक्ति और अध्यात्म-पथके साधकों तथा महापुरुषोंको शरीर रहते इस मानव-जीवनमें ही परमात्माका साक्षात्कार अथवा अनुभव होने लगता है। पर इस जगत्-प्रपञ्चकी उत्पत्ति ही मायाद्वारा हुई है; अतः इस जगत्में वह साक्षात्कार अथवा अनुभव कितना भी स्पष्ट क्यों न हो, पर उसमें कुछ-न-कुछ प्रकृति अथवा मायाका आवरण रहता ही है। अब इस स्थलपर स्वाभाविकरूपमें ही एक प्रश्न उठता है कि शास्त्र तथा अनुभवी संत-महात्माओंके वाक्योंमें भगवान्को जीवके सच्चे स्वामी, पिता, माता, सखा, प्रियतम—कहकर अतिशय निकटका सम्बन्ध सूचित किया गया है। तब इस प्रकारकी आत्मीयता और इतना घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी वे प्रभु साधक जीवात्माके लिये भी सदा पर्देमें ही रहें; प्रत्यक्ष निरावरण और स्थायीरूपमें उनका संयोग कभी सम्भव ही न हो; यह भी कहाँतक युक्तिसंगत कहा जा सकता है। साथ ही दूसरी समस्या यह भी है कि यह प्राकृत शरीर तो कर्मोंसे उत्पन्न होता है और प्रारब्ध-भोगतक ही रहता है। इस संसारमें आवागमन और शरीरोंकी प्राप्ति कर्मोंके द्वारा होती है; पर ज्ञान और भक्तिकी साधनाके द्वारा कर्म-बन्धन समाप्त हो जानेपर, इस संसारमें शरीर-धारण करनेका अवकाश ही नहीं रहता; अतः उस स्थितिमें वह मुक्त जीवात्मा कहाँ रहेगा?

यद्यपि सामान्यरूपसे लोगोंका ज्ञान प्रायः परमात्माके सर्वव्यापकत्वके गौरवतक ही सीमित रहकर, वे इतनेसे ही उसे सर्वदेशी मानते हैं; पर वास्तवमें उस परब्रह्म परमात्माकी महिमा इतने तक ही सीमित न होकर, वह इस सर्वव्यापकत्वसे भी बहुत महान् है। इस बातका संकेत श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने स्वयं अर्जुनके प्रति किया है। यथा—

> अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
> विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥
> (१०।४२)

भगवान् कहते हैं—'अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तुम्हारा क्या प्रयोजन? (सारांश रूपमें यह कि) मैं इस सम्पूर्ण जगत्को अपने एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूँ।'

अब भगवान्के इस कथनके अनुसार उपर्युक्त समस्याओंके समाधानके सम्बन्धमें श्रुति-वाक्योंकी ओर ध्यान दीजिये।

परमात्माकी इस महिमाकी स्पष्ट घोषणा वेदोंमें भी की गयी है। वहाँ परमात्माको चतुष्पाद् कहकर, उनके एक पादमें उत्पत्ति, पालन और संहारके व्यापारवाला यह सारा विश्व जगत् और इससे परे तीन पाद अमृत, शुद्ध ब्रह्म, प्रकृतिपार दिव्य विभूतिमें कहा गया है। यथा—

'सोऽयमात्मा चतुष्पात्। पादोऽस्य सर्वभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।' और भी पुरुषसूक्तमें—

> एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
> पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥
> (ऋग्वेद १०।९०।३)

पुरुषसूक्तकी उपर्युक्त श्रुतिमें परमात्माकी उक्त महिमाका संकेत करते हुए उसी स्थलपर आगेकी निम्नलिखित श्रुतिमें 'त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः' उस परम पुरुष परमात्माको त्रिपादसे भी ऊर्ध्व अर्थात् एकपाद और त्रिपाद दोनों विभूतियोंका स्वामी, अधिष्ठातृदेव अर्थात् उभय विभूतिनायक सूचित किया गया है। यथा—

> त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
> ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि॥
> (ऋग्वेद १०।९०।४)

तुलसीकृत रामचरितमानसमें भी बालकाण्डके अन्तर्गत मानस-प्रतिपाद्य भगवान् श्रीरामको शंकरजीके वाक्योंमें 'परावरनाथ' (पर अर्थात् त्रिपाद्विभूति, अवर अर्थात् अपर, एकपाद्-विभूति) इस प्रकार दोनों विभूतियोंके नाथ कहा गया है। यथा—

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ ॥

(बालकाण्ड ११६)

उपर्युक्त त्रिपाद्विभूति अथवा पर विभूतिको उपनिषदोंमें दिव्य ब्रह्मपुर, परव्योम, विष्णुपरमपद इत्यादि अनेक नामोंसे व्यक्त किया गया है, जिनमें उस परम पुरुष परमात्माका निवास सूचित किया गया है। यथा—

मुण्डकोपनिषद्, मु० २। खं० २। ७ में—

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ॥

'यः सर्वज्ञः=जो सर्वज्ञ; सर्ववित्=सब ओरसे सब कुछ जाननेवाला है; यस्य=जिसकी; भुवि=जगत्में; एषः=यह; महिमा=महिमा है; एषः हि आत्मा=यह ही सबका आत्मा (परमात्मा); दिव्ये व्योम्नि ब्रह्मपुरे=दिव्य आकाश, ब्रह्मपुरमें प्रतिष्ठित है।'

और भी—मुण्डकोपनिषद्, मु० २, खं० २। ९ में—

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥

तत्=वह; विरजम्=निर्मल; निष्कलम्=अवयवरहित; ब्रह्म=ब्रह्म; हिरण्मये परे कोशे=प्रकाशमय परमकोश (परव्योम) में प्रतिष्ठित है; तत्=वह; शुभ्रम्=विशुद्ध; ज्योतिषां ज्योतिः=ज्योतियोंकी भी ज्योति है; यत्=जिसको; आत्मविदः=आत्मज्ञानी; विदुः=जानते हैं।'

उस परमपद अथवा परमधाममें न सूर्य प्रकाश करता है, न चन्द्रमा, न अग्नि; तात्पर्य यह कि वह स्वयं प्रकाशमान है। इस सम्बन्धमें प्रमाणके लिये श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय १५, श्लोक ६, प्रस्तुत निबन्धके आरम्भमें ही दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त उपनिषद्में भी यही बात स्पष्ट है। यथा—मुण्डकोपनिषद् में—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

(२। २। १०)

'तत्र=वहाँ; न सूर्यः भाति=न सूर्य प्रकाश करता है; न चन्द्रतारकम्=न चन्द्रमा और नक्षत्र ही प्रकाश करते हैं; न इमाः विद्युतः भान्ति=न ये बिजलियाँ ही वहाँ प्रकाश करती हैं; अयं अग्निः कुतः=फिर इस (लौकिक) अग्निकी तो बात ही क्या है ? तात्पर्य यह कि तो फिर यह लौकिक अग्नि वहाँ क्या प्रकाश करेगी ? (कारण कि); तम् भान्तम् एव=उसके प्रकाश करते हुए ही (उसके प्रकाशसे); सर्वम्=ऊपर कहे हुए सूर्य, चन्द्रमा आदि सब प्रकाशित होते हैं। तस्य भासा=उसीके प्रकाशसे; इदं सर्वम्=यह सम्पूर्ण विश्व—जगत्; विभाति=प्रकाशित होता है।

यह त्रिपाद्-विभूति, दिव्य परव्योम अथवा परमधाम उन परब्रह्म परमात्मासे भिन्न कोई अन्य तत्त्व न होकर, उन्हींका प्रकाश, उन्हींका रूप, शुद्ध ब्रह्म ही है। केवल संसारी कर्मबन्धन और आवागमनके चक्रसे मुक्त आत्माओंके उसमें प्रवेश और निवासके सम्बन्धसे उसे परमधाम, ब्रह्मपुर आदि (स्थानमूलक) शब्दोंसे व्यक्त किया गया है। दृष्टान्तके लिये, जैसे सूर्य अपनी किरणोंके प्रकाशके *बीच रहता है; वह किरणोंका प्रकाश*, सूर्यसे भिन्न कोई पदार्थ न होकर सूर्यका ही रूप है; ऐसे ही परमधामके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये।

क्योंकि भोगपर्यन्त जीव इस एकपाद्-विभूति संसारमें अनेक शरीर धारण करते हुए, आवागमनके चक्रमें जन्म-मरणको प्राप्त होते रहते हैं। पर ज्ञान और भक्तिकी साधनाद्वारा कर्मबन्धनसे मुक्त होनेपर फिर वे इस संसारमें जन्म नहीं धारण करते। अब ऐसी स्थितिमें वे मुक्तात्मा कहाँ तो रहेंगे ? वही है यह 'परमपद' अथवा 'भगवान्का परमधाम', जहाँ कर्मबन्धनसे मुक्त जीव, अपने सहज आत्मस्वरूपको प्राप्त होकर स्वयं ब्रह्ममें निवास करते हैं।

इस प्रकार परमात्माका सर्वव्यापकत्व तो इस एकपाद्-विभूति, विश्व-जगत् तक ही सीमित है; कारण कि व्यापक शब्द कहते ही, व्यापक और व्याप्य दोकी कल्पना सामने आ जाती है और इस प्रकारका द्वैत इस मायिक जगत्में ही सम्भव है। यहाँ जगत् व्याप्य और परमात्मा व्यापक है। यह व्याप्य और व्यापकका द्वैत, परमपद अथवा परमधाममें नहीं होता। वहाँ तो एक अद्वितीय शुद्ध ब्रह्म ही है; वही धाम भी है और वही धामी भी है। द्वैतरूप मायाका आवरण वहाँ नहीं है।

पर उस दिव्य परमधाममें *त्रिगुणात्मिका मायाका* व्यापार न होते हुए भी एक अलौकिक विचित्रता यह है

कि उपासनाके विभिन्न दृष्टिकोणोंके अनुसार, वहाँ मुक्तात्माओंको उस ब्रह्म अथवा परमात्माकी प्राप्ति विभिन्न रूपोंमें होती है। कुछ आत्मा ज्ञानमार्गकी साधना-द्वारा, ब्रह्मरूपी आनन्दसागरमें नमकके ढेलेके समान अपने शुद्ध अहंको विलीन करके 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'की चरितार्थताको प्राप्त करते हैं; इसे 'कैवल्य मोक्ष' कहा जाता है; जैसा कि श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्डमें ज्ञानमार्गकी साधनाकी सिद्धिका संकेत करते हुए कहा गया है—

जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥

पर जिन आत्माओंमें भगवान्‌के प्रति स्वामी, सखा, प्रियतम आदि सम्बन्धोंमें रागात्मिका भक्तिके संस्कार तीव्र और प्रबल होते हैं, उन भगवत्प्रेमभक्तिपरायण मुक्त आत्माओंको तो उस परमधाममें भी उन सच्चिदानन्दघन स्वरूप परब्रह्म परमात्माके साथ प्रेममय दिव्य अप्राकृत नित्यलीला और नित्यविहारमें ही प्रवेश प्राप्त होता है। वही उनकी उपासनाका चरम लक्ष्य होता है।

कैवल्यमोक्षके अतिरिक्त, ज्ञानद्वारा कर्मबन्धसे मुक्त हो अपने सहज आत्मस्वरूपको प्राप्त कर लेनेपर भी, भक्तिपरायण आत्माओंके सम्बन्धमें सगुण साकार उपासनाके समान ही एक अद्वितीय निर्गुण निराकार शुद्ध ब्रह्ममें भी लीला और विहारकी सम्भावनापर एक विशिष्ट प्रकारके अद्वैतवादी वेदान्तियोंमें भी भावना देखी जाती है और उनके विचारसे उस अद्वितीय शुद्ध ब्रह्ममें यह बात एक असम्भव कल्पना है। पर तथ्यको समझनेके लिये, इस सम्बन्धमें बहुत जल्दी निर्णय न लेकर कुछ गहराईमें चलना अपेक्षित है। एक अद्वितीय शुद्ध ब्रह्मका यह अर्थ नहीं कि वह निर्गुण निराकार ब्रह्म केवल आकाश-जैसा कोई शून्य मात्र है; किंतु वह सच्चिदानन्दघन सब ओरसे परिपूर्ण है। इस तथ्यके स्पष्टीकरणके लिये अब हम कुछ मार्मिक बातें पाठकोंके समक्ष उपस्थित करते हैं। इस सम्बन्धमें श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ११में भगवान्‌ने स्वयं अर्जुनके प्रति स्पष्टरूपमें संकेत किया है; पर प्रवाहमें उस सूक्ष्मताकी ओर प्रायः गीताके विद्वानोंकी दृष्टि नहीं जाती। अतः पहले उस प्रसंगपर ही कुछ गहराईके साथ दृष्टिपात कीजिये।

इस प्रसंगमें भगवान्‌के प्रति उनका ऐश्वर्य-रूप देखनेकी इच्छा प्रकट करते हुए अर्जुनने निम्नलिखित वाक्य कहे—

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम॥
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्॥
(गीता ११। ३-४)

'हे परमेश्वर! आप अपनेको जैसा कहते हैं, यह इस प्रकार ठीक ही है। पर हे पुरुषोत्तम! आपके उस ऐश्वर्य-रूपको मैं देखना चाहता हूँ। प्रभो! वह आपका रूप मेरेद्वारा देखा जा सकता है, ऐसा यदि आप मानते हैं तो हे योगेश्वर! आप अपने उस अविनाशी ऐश्वर्य-रूपका मुझे दर्शन कराइये।'

उपर्युक्त श्लोकोंमें अर्जुनकी ओरसे उस ऐश्वर्य-रूपके लिये रेखाङ्कित 'रूपं' और 'तद्' एक वचनका ही प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट है कि अर्जुनने भगवान्‌का ऐश्वर्य-रूप कोई एक *ही समझ रक्खा था*, पर उसके उत्तरमें, आगेके श्लोकमें भगवान्‌ने एक ही ऐश्वर्य-रूप दिखाना न कहकर सैकड़ों-हजारों ऐश्वर्य-रूप देखनेके लिये उन्हें आमन्त्रित और सावधान किया। यथा—

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥
(गीता ११। ५)

'हे पार्थ! मेरे सैकड़ों, सहस्रों, नाना प्रकार, नाना वर्ण और आकृतिवाले दिव्य रूपोंको देखो।'

इस श्लोकमें भगवान्‌की ओरसे 'रूपाणि' बहुवचन शब्द साथ ही 'शतशः' और 'सहस्रशः' शब्दोंका प्रयोग स्पष्ट है, साथ ही उन रूपोंके विशेषणोंमें भी 'नानाविधानि', 'दिव्यानि' आदि बहुवचन शब्द ही प्रयुक्त हुए हैं। इससे भगवान्‌के श्रीमुखवचनसे उनका कोई एक ही ऐश्वर्य-रूप न होकर, उनके ऐश्वर्य-रूप भी असंख्य और नाना प्रकारके हैं, यह स्पष्ट है।

पर अपने सैकड़ों-सहस्रों ऐश्वर्य-रूप देखनेके लिये *अर्जुनको आमन्त्रित और सावधान* करते हुए भी भगवान्‌ने पहले यह एक रूप दिखाया, जिस एक रूपको ही देखकर अर्जुन भयसे काँप गये, फिर आगे दूसरे ऐश्वर्य-रूपको देखनेके लिये उनकी प्रवृत्ति ही नहीं हुई; प्रत्युत उन्होंने शीघ्र ही भगवान्‌के प्रति पूर्ववत् शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज सौम्य मानुषरूपमें ही दर्शन देनेकी प्रार्थना की।

अतएव फिर भगवान्‌की ओरसे दूसरे ऐश्वर्य-रूपोंको प्रकट करनेका अवकाश ही नहीं रहा। अब अपने असंख्य ऐश्वर्य-रूपोंमें भगवान्‌ने पहले ही अर्जुनको अपना कौन-सा ऐश्वर्य-रूप दिखाया ? इस बातको भी अर्जुनके पूछनेपर उसी प्रसंगमें स्पष्ट कर दिया है। यथा—

> आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
> नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
> विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
> न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्॥
> (गीता ११। ३१)

अर्जुन भगवान्‌के प्रति कहते हैं—'मेरे प्रति कहिये कि उग्ररूपवाले आप कौन हैं ? देवोंमें श्रेष्ठ ! आपको नमस्कार है; आप प्रसन्न होइये। आदिस्वरूप आपको जानना चाहता हूँ; क्योंकि आपकी प्रवृत्तिको मैं नहीं जानता।' इसके उत्तरमें अगले श्लोकमें भगवान् अपने उस उग्र ऐश्वर्य-रूपका परिचय देते हैं। यथा—

> कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो
> लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
> ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
> येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥
> (गीता ११। ३२)

'लोकोंका नाश करनेवाला, वृद्धिको प्राप्त हुआ मैं काल हूँ। इस समय इन लोकों (लोगों) का संहार करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित हुए योद्धालोग हैं, वे सब तुम्हारे बिना भी नहीं रहेंगे; अर्थात् तुम्हारे युद्ध न करनेपर भी इन सबका संहार होगा।'

अब अपने सैकड़ों-हजारों असंख्य ऐश्वर्य-रूपोंमें भगवान्‌ने अर्जुनको पहले यही उग्र रूप क्यों दिखाया ! इसका कारण भी अर्जुनको युद्धके लिये शीघ्र तैयार हो जानेको प्रेरित करना ही था। यह भी उसी स्थलपर आगेके श्लोकमें स्पष्ट हो जाता है। यथा—

> तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
> जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
> मयैवैते निहताः पूर्वमेव
> निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥
> (गीता ११। ३३)

भगवान् अर्जुनके प्रति कहते हैं—'इसलिये तुम उठो, यशको प्राप्त करो और शत्रुओंको जीतकर धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यका भोग करो। ये सब योद्धा पहलेसे ही मेरे-द्वारा मारे जा चुके हैं। हे सव्यसाचिन् ! तुम तो केवल निमित्तमात्र हो जाओ।' अब भगवान्‌के द्वारा इतनी स्पष्टोक्तिपर भी, यदि उनके सैकड़ों-हजारों, असंख्य ऐश्वर्य-रूप न मान करके, अर्जुनको दिखाये हुए उस एक उग्र रूपको ही भगवान्‌का समग्र विश्वविराट् रूप माना जाय तो उसमें विश्वमें उपस्थित होनेवाले सभी समयके दृश्य एक साथ उपस्थित होने चाहिये। उदाहरणके लिये जैसे महाभारतके योद्धाओंके संहारका जो दृश्य उस विश्वरूपमें अर्जुनको दिखाया गया, वह तो अभी बाहर कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिपर घटित नहीं हुआ था। अभी तो वे सभी योद्धा युद्धके लिये तत्पर बिल्कुल जीवितरूपमें उस युद्धभूमिपर विद्यमान ही थे; अतएव उन सबके रणक्षेत्रमें उपस्थित होनेका दृश्य भी भगवान्‌के इस विश्वरूपके अन्तर्गत दिखायी पड़ना चाहिये। ऐसे ही, आजन्म ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा करते हुए भीष्मपितामहका रूप, अर्जुन आदि शिष्यवर्गको धनुर्विद्याकी शिक्षा देते हुए द्रोणाचार्यका दृश्य, युद्धके पूर्व उपस्थित होनेवाले अन्य अनेक दृश्य भी तो उस विश्वरूपमें उपस्थित होने चाहिये; पर ऐसा नहीं है। अतएव सामान्य बुद्धिद्वारा विचार करनेपर भी यही स्पष्ट होता है कि भगवान्‌के ऐश्वर्य-रूप केवल एक ही न होकर असंख्य हैं; उनमेंसे महाभारतके विनाशके क्षणोंका यह एक ही ऐश्वर्य-रूप था, जिसमें निकट भविष्यके घमासान युद्धमें अनेक योद्धाओंके संहारका दृश्य ही मुख्यरूपसे अर्जुनके द्वारा देखा गया।

अब इस एक ऐश्वर्य-रूपके अतिरिक्त भगवान्‌के और कौनसे सैकड़ों-हजारों असंख्य ऐश्वर्य-रूप हो सकते हैं ? इस सम्बन्धमें कुछ स्पष्टीकरण करनेके पूर्व प्रस्तुत विषयको समझनेके लिये एक विशेष मर्मकी ओर ध्यान दे जाना आवश्यक है। वह यह कि भगवान्‌के उस उग्र ऐश्वर्य-रूपमें अर्जुनने विनाशके अनेक भयावने और बीभत्स दृश्य देखे। पर वे सारे दृश्य कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें घटित होनेसे पूर्व ही उन्होंने भगवान्‌में देखे। इससे यह संकेत मिलता है कि इस विश्व-जगत्‌में वर्तमानमें उपस्थित, भूतकालमें हुए, ऐसे ही भविष्यमें होनेवाले सारे ही दृश्य भगवान्‌में एक साथ ही अव्यक्तरूपमें उपस्थित रहते हैं; और उनमेंसे कोई भी दृश्य, वे अपने भक्तोंको जब चाहें, अपनेमें ही

दिखा सकते हैं। इस सम्भावनाको भी हम पूर्वोक्त नटके जादूके दृश्योंके दृष्टान्तद्वारा ही समझ सकते हैं। वह इस प्रकार कि बाजीगर नट अपने जादूके द्वारा जितने भी दृश्य बाहर समाजके समक्ष उपस्थित करता है, वे सारे दृश्य उसके अन्तःकरणमें अव्यक्तरूपसे एक साथ ही उपस्थित रहते हैं; तभी बाहर समाजको दिखानेका संकल्प होनेपर उनमेंसे किसी दृश्यको वह जादूके द्वारा बाहर उपस्थित कर देता है। इसी स्थलपर एक बात और समझ लेनी चाहिये। वह यह कि जादूके द्वारा बाहर उपस्थित किये हुए दृश्य तो सचमुच मिथ्या ही होते हैं; पर वही सारे दृश्य नटके अन्तःकरणमें मिथ्या नहीं होते; वहाँ तो वे सारे दृश्य अव्यक्तरूपमें यथार्थमें ही उपस्थित रहते हैं; केवल उन्हें यथासमय बाहर प्रकट कर देनेकी बात शेष रहती है। इसी प्रकार इस त्रिगुणात्मक जगत्में भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालके सारे दृश्य इस सृष्टिके रूपमें अवश्य ही मिथ्या, नश्वर और परिवर्तनशील होते हैं; पर भगवान्में वे सारे दृश्य अव्यक्तरूपमें एक साथ ही उपस्थित रहते हैं; वहाँ उन्हें मिथ्या नहीं कहा जा सकता; हाँ, उन्हें सृष्टिके रूपमें बाहर प्रकट कर देनेकी ही बात शेष रहती है।

अब इसी स्थलपर एक और बात समझ लेनेकी है कि शिष्य और सेवकके रूपमें बाजीगर नटके साथ रहकर, उसे संतुष्ट और प्रसन्न कर लेनेपर उन जादूके दृश्योंके बाहर उपस्थित होनेके पूर्व भी, उस नटकी कृपासे कलात्मक ज्ञान और अनुभवके द्वारा वे सारे दृश्य देखे और समझे जा सकते हैं; जैसे कि नटके सेवक जमूराके सम्बन्धमें समझा जा सकता है; उसी प्रकार इस त्रिगुणात्मक जगत्में उपस्थित होनेवाले किन्हीं दृश्योंको बाहर घटित होनेके पूर्व भी भगवान् अपनी कृपासे भक्तोंको अपनेमें ही दिखा सकते हैं। इसी प्रकार महाभारतकी विनाशकी उपर्युक्त घटनाओंके बाहर कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें घटित होनेसे पूर्व ही भगवान्ने उन दृश्योंको अर्जुनको अपनेमें ही दिखा दिया।

अब इसी रहस्यको भगवान्की महिमारूप इस विश्व-जगत्की विशालता और अनन्तताके व्यापक दृष्टिकोणके अनुसार देखिये। यह विश्व-जगत् परमात्मासे ही उत्पन्न हुआ है। साथ ही वह परमात्मा अथवा ब्रह्म इस जगत्के कण-कणमें व्याप्त है। इस कारण जैसे जीवात्माके शरीरमें उपस्थित रहनेसे शरीरको जीवात्माके माध्यम अथवा रूपके स्थानमें लक्ष्य करके ही सारा लोक-व्यवहार चलता है, उसी प्रकार इस जगत्में परमात्माके व्याप्त होनेसे इसे उन भगवान्का विराटरूप कहा जाता है। साथ ही यह विश्व-जगत् परिवर्तनशील है; और क्षण-क्षण परिवर्तनको प्राप्त होता रहता है। अतएव क्षण-क्षणके इस परिवर्तनके कारण इस विश्व-जगत् अथवा विराट्के क्षण-क्षणके विभिन्न रूप भी असंख्य हो जाते हैं। उपर्युक्त कथनके अनुसार बाजीगर नटके अन्तःकरणमें जादूके दृश्योंके समान इस विश्वके सारे ही दृश्य अव्यक्तरूपमें भगवान्में उपस्थित रहनेसे, क्षण-क्षणमें परिवर्तनको प्राप्त होनेवाले इस जगत्के वे असंख्य विराट्रूप भी उनमें उपस्थित रहते हैं। हाँ, एक बात अवश्य है कि इस त्रिगुणात्मक मायिक जगत्में विश्वके वे क्षण-क्षणके असंख्य रूप एक ही साथ नहीं उपस्थित होते; किन्तु एकके पश्चात् दूसरा रूप, इस प्रकार बदलते जाते हैं। परब्रह्म, परमात्मा अथवा भगवान्में, विराट् जगत्के क्षण-क्षणके वे सारे ही रूप अव्यक्तरूपमें एक साथ ही उपस्थित रहते हैं और विश्वके उन असंख्य रूपोंमें भगवान् जब चाहें, कोई भी रूप अपने भक्तोंको अपनेमें दिखा सकते हैं। यह विश्व-जगत् भगवान्की महिमा अथवा ऐश्वर्य होनेके कारण, अपने जिन रूपोंमें भगवान् इस विश्व-जगत्के उन रूपोंका प्रदर्शन करते हुए भक्तके सामने उपस्थित होते हैं, उन रूपोंको ही भगवान्का 'ऐश्वर्य-रूप' कहा जाता है। यही भगवान्के सैकड़ों-हजारों असंख्य ऐश्वर्य-रूप हैं; जिनका संकेत भगवान्के द्वारा अर्जुनके प्रति पाया जाता है।

अब भगवान्के द्वारा अर्जुनको दिखाये गये उग्र ऐश्वर्य-रूपके सहारे ही उनके उपर्युक्त ऐश्वर्य-रूपोंके सम्बन्धमें एक और मर्मकी बात समझ लेनेकी है। वह यह कि अर्जुनने भगवान्के उस ऐश्वर्य-रूपमें बहुत-से भीषण और भयावने, रोमाञ्चकारी दृश्य भी देखे; जैसे, भीष्म, द्रोण, कर्ण और अपने पक्षके योद्धाओंको भी भगवान्के उस उग्र रूपके विकराल दाढ़ोंवाले भयानक मुखोंमें प्रवेश करते और कई एकको चूर्ण हुए सिरोंसहित दाँतोंके बीचमें लगे हुए देखा। सम्पूर्ण मनुष्य-वीरोंको प्रज्वलित मुखोंद्वारा ग्रसन करते और सब ओरसे चाटते हुए देखा; इत्यादि। परंतु इस स्थलपर ध्यानपूर्वक देखिये तो कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें घमासान युद्ध आरम्भ हो जानेपर, जब सैकड़ों-हजारों योद्धा

अथवा मृत होकर धराशायी हुए होंगे, उन समय उस युद्ध-भूमिकी क्या दशा हुई होगी ? कितने रक्तपात, कितने मृतक शरीरोंके जमाव, कितने बीभत्स, भयावने और घृणास्पद दृश्योंसे वह भूमि कितनी विकृत, घृणास्पद और अपवित्र हो गयी होगी; और युद्धकी समाप्तिपर भी उसकी शुद्धताके उपायोंमें कितना समय लगा होगा; पर भगवान्के द्वारा अर्जुनको दिखाये हुए उस उग्र ऐश्वर्य-रूपमें उपर्युक्त घोर बीभत्स, भयावने और घृणास्पद दृश्य उपस्थित होते हुए भी, उस रूपको अन्तर्धान कर लेनेपर कुरुक्षेत्रकी रणभूमिकी तरह क्या वहाँपर भी कोई बीभत्स और घृणास्पद वातावरण उपस्थित रहा ? कदापि नहीं ।

अतः यह स्पष्ट है कि भगवान्के उस ऐश्वर्य-रूपमें भी बीभत्स, भयावने और घृणास्पद दृश्य, संसारके समान ही दीखते हुए भी, उनका वह रूप स्वरूपतः दिव्य, अप्राकृत और त्रिगुणके विकारोंसे रहित था । यही बात उनके पूर्वोक्त असंख्य ऐश्वर्य-रूपोंके सम्बन्धमें भी समझनी चाहिये । इस प्रकार मायाद्वारा रचित त्रिगुणात्मक जगत्‌के क्षण-क्षणमें बदलते हुए, असंख्य विराटोंको अपनेमें लक्ष्य करनेवाले भगवान्के ऐश्वर्य-रूपको 'विराट्मय ऐश्वर्य-रूप' कहा जाता है, जिसका संकेत तुलसीकृत रामचरितमानसमें बालकाण्डके अन्तर्गत धनुर्यज्ञके प्रसंगमें आया है । यथा—

बिदुषन्ह प्रभु बिराट मय दीसा । बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥

भगवान्ने जिस प्रकार अर्जुनको अपने एक ऐश्वर्य-रूपका दर्शन कराया, वैसे ही ऐश्वर्य-रूप दिखानेके अन्य अनेक प्रसंग भी आर्ष-ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं; जैसे तुलसीकृत रामचरितमानस, बालकाण्डमें भगवान् श्रीरामकी शिशु-लीलाके अन्तर्गत कौसल्याको और उत्तरकाण्डमें काकभुशुण्डिको तथा श्रीमद्भागवतमें यशोदाको । पर उन ऐश्वर्य-रूपोंमें, गीतामें अर्जुनको दिखाये गये ऐश्वर्य-रूपसे तथा परस्पर भी बहुत कुछ वैभिन्न्य पाया जाता है; इससे भी भगवान्के ऐश्वर्य-रूपोंका बहुसंख्यक अनेक प्रकारके होना स्पष्ट है ।

इस प्रकार ये सारे ही ऐश्वर्य-रूप अव्यक्तरूपसे उन सच्चिदानन्द ब्रह्ममें ही स्थित हैं। उन्हें प्रकृति अथवा माया नहीं कहा जा सकता; न उनपर प्रकृति अथवा मायाका आवरण ही होता है । इस प्रकार प्रकृतिपार, विराट् विभूति, परमपद अथवा परमधाममें भी वह निर्गुण, निराकार, गुणातीत, अद्वितीय ब्रह्म केवल आकाशवत् शून्य न होकर 'परिपूर्ण', अर्थात् अनन्त दिव्य, अप्राकृत गुणों एवं लीलाओंका केन्द्र है ।

यहाँतक तो हुई भगवान्के ऐश्वर्य-रूपोंकी बात; अब प्रेमाभक्तिपरक माधुर्य-उपासनाके दृष्टिकोणसे भी इसी रहस्यका अवलोकन कीजिये ।

वैसे उपर्युक्त विवेचनके अनुसार वह सच्चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्म ही इस अखिल विश्व-जगत्‌का निवासस्थान है और इसकी उत्पत्ति भी उस ब्रह्मसे ही होती है; जैसा कि ब्रह्मसूत्रमें ही 'जन्माद्यस्य यतः ।' प्रसिद्ध है; फिर भी प्रेमभक्तिपरक माधुर्य-उपासकोंके लिये तो वे परब्रह्म परमात्मा माता, पिता, स्वामी, सखा, प्रियतम आदि प्रेम-सम्बन्धोंमें अनन्य आसक्ति और अनुरक्तिका ही केन्द्र बन जाते हैं; अर्थात् जैसे संसारी विषयासक्त जीव विविध लौकिक सम्बन्धों और इन्द्रिय-विषयोंमें आसक्त रहते हैं, उसी प्रकार माधुर्य-उपासकोंका अन्तःकरण सब प्रकारसे उन सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान्के दिव्य गुणोंमें ही आसक्त रहता है; और इस प्रकार उन परम प्रियतमका निरन्तर संयोग ही उनकी साधनाका चरम लक्ष्य रहता है । विचार करनेकी बात यह है कि उनका कर्मबन्धन तो भगवान्को आत्मसमर्पण कर देनेके साथ ही समाप्त हो जाता है; तब फिर सामान्यतः कर्मसे उत्पन्न होनेवाले इस प्राकृत शरीरके धारण करनेका उनके लिये अवकाश ही कहाँ रह जाता है ? और फिर ऐसी स्थितिमें भगवान्के परमधामके अतिरिक्त उनका निवास और कहाँ हो सकता है ? साथ ही भगवान्के प्रति प्रेमभक्तिके रसास्वादनके बिना उनके लिये केवल कैवल्यमोक्ष भी संतोषप्रद नहीं होगा । अतः प्रेमभक्तिके ऐसे नैष्ठिक उपासकोंके लिये ही उन परब्रह्मके अलौकिक सामर्थ्य और उनकी अलौकिक विशेषताके सम्बन्धमें उपनिषद्ने निम्नलिखित घोषणा की है । यथा—

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३ । १७)

'सर्व-इन्द्रियोंसे रहित होते हुए भी वह परब्रह्म सर्व-इन्द्रियगुणोंके आभासमें युक्त है । वह सबका प्रभु, ईश्वर और सबका महान् आश्रय (शरण देनेवाला) है ।'

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ११ श्लोक ५४में स्वयं भगवान्ने भी अर्जुनके प्रति यही घोषणा और भी स्पष्ट शब्दोंमें की है । यथा—

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥

'यह परब्रह्म सर्व-इन्द्रियगुणोंके आभाससे युक्त है; यद्यपि वह सर्व-इन्द्रियोंसे रहित है। वह स्वयं अनासक्त है। तात्पर्य यह है कि उसमें जो इन्द्रियगुणोंका आभास है, उसमें वह स्वयं अपने सुखके लिये आसक्त नहीं है। पर वह सबका भरण करनेवाला अर्थात् अपने प्रति संयोग और लीलाके आनन्दकी तीव्र उत्कण्ठावाले, सभी प्रेमभक्ति-परायण उपासकोंके उस चरम लक्ष्यको पूर्ण करनेवाला है। इस प्रकार वह सच्चिदानन्द, रसरूप, परब्रह्म परमात्मा अपने लिये अनासक्त और निर्गुण होते हुए भी, प्रेमभक्ति-परायण आत्माओंको अपने दिव्य संयोग और लीला-विहारका आनन्द देनेके लिये गुणोंका भोक्ता भी है। यह उसकी अलौकिक सामर्थ्य और सर्वशक्तिमत्ता है।'

सर्व-इन्द्रियोंसे रहित होते हुए भी उस परब्रह्ममें सर्व-इन्द्रियगुणोंके व्यापारकी अपार अलौकिक दिव्य शक्ति और सामर्थ्यको अन्य श्रुतियोंमें भी व्यक्त किया गया है। यथा—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३। १९)

'वह परमात्मा हाथ-पैरोंसे रहित होते हुए भी समस्त वस्तुओंको ग्रहण करनेवाला तथा वेगपूर्वक सर्वत्र गमन करनेवाला है। नेत्रोंके विना भी वह सब कुछ देखता है, कानोंके विना भी वह सब कुछ सुनता है। वह समस्त जाननेवाली वस्तुओंको जानता है; पर उसको कोई नहीं जानता। अर्थात् उसका कोई पार नहीं पाता। उस परमात्माको महान् आदिपुरुष कहा जाता है।'

तुलसीकृत रामचरितमानसमें भी बालकाण्डके अन्तर्गत यही बात स्पष्ट है। यथा—बालकाण्ड ११७। ३-४ में—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥

इस प्रकार इस एकपाद्-विभूति जगत्के कण-कणमें व्याप्त होते हुए भी प्रकृतिपार त्रिपाद्-विभूति उस परब्रह्म परमात्माका निज धाम है। वहाँ व्यापक-व्याप्यका द्वैत न होकर इस परमधाममें वह अद्वितीय परब्रह्म मुक्तात्माओंमें विना किसी व्यवधान (आवरण) के सतत प्रत्यक्ष रहता है। कैवल्यमोक्षके नैष्ठिक वहाँ अपने अहंको विलीन करके, सहज आत्मस्वरूपको प्राप्तकर 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' की चरितार्थताको प्राप्तकर ब्रह्मरूप हो जाते हैं। पर प्रेमभक्तिके नैष्ठिक माधुर्य-उपासक उस परमधाममें उसी सहज-स्वरूपमें स्थित हो, देही-देहविभागरहित दिव्य मङ्गल विग्रहको प्राप्तकर, उस सत्-चित्-आनन्दघन, रसरूप, प्रेमस्वरूप, आनन्दस्वरूप, प्रकाशस्वरूप, परमात्माके साथ स्वामी, सखा, प्रियतम आदि नित्य सम्बन्धोंमें उनके समस्त ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, प्रकाश, प्रेम, आनन्द आदि दिव्य गुणोंका रसास्वादन करते हुए, अपने परम-लक्ष्य भगवान्के साथ नित्य लीला-विहारको प्राप्त होते हैं। उपासनाके दृष्टिकोणसे उस नित्य लीला-विहारके अन्तर्गत भाविक उपासकगण साकेत, गोलोक, वैकुण्ठ आदि अपने इष्ट धामोंका भी लक्ष्य रखते हैं; यह भी उस अखिल विश्व विराट्मय परब्रह्ममें कोई असम्भव बात न होकर उनकी उपस्थिति भी उस अनन्त दिव्य लीलामय परमधाममें स्वाभाविकरूपसे है ही।

एक बात और समझ लेनेकी है। वह यह कि उस त्रिपाद्-विभूति, परमधामके सम्बन्धमें धाम और ब्रह्मपुर-जैसे स्थान-सूचक शब्दोंके प्रयोगसे कहीं यह भ्रम न हो जाय कि वह परमधाम इस प्रकृति-मण्डलके किसी विशाल देश अथवा महाद्वीप-जैसा कोई विस्तृत और विशाल स्थानविशेष ही होगा। किंतु वह कहीं बाहर न होकर प्रकृतिके स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों आवरणोंके पार एवं जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंसे विलक्षण तुरीयरूप, देश और कालकी सीमासे परे, घटके पार एक अध्यात्म है और ध्यानकी गम्भीर एकाग्रतासे उसके समाधिकी स्थितिमें उपलब्ध अध्यात्मज्ञानके द्वारा ही अनुभवगम्य है। इसीका संकेत तुलसीकृत विनयपत्रिकाके अन्तर्गत भक्तिकी अलौकिक महिमासे सम्बन्धित एक पदके अन्तिम भागमें किया गया है। यथा—

रघुपति-भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई॥

× × ×

सकल दृस्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत बियोगी॥
सोक मोह भय हरष दिवस-निसि देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं॥
(पद १६७)

इस प्रकार उपर्युक्त विस्तृत विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि परम पुरुष, परमात्माके इस एकपाद् विश्व-जगत्‌के कण-कणमें सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी, प्रकृतिपार उनके परमधामकी मान्यता श्रुति, पुराण एवं अन्य सद्ग्रन्थोंके प्रमाणके साथ-ही-साथ सात्त्विक तर्ककी दृष्टिसे भी सर्वथा युक्तिसङ्गत है।

अब अन्तमें प्रस्तुत विषयसे ही सम्बन्धित उपनिषद्‌के एक प्रसिद्ध मन्त्रको स्पष्टीकरणके सहित उपस्थित कर निबन्धको समाप्त किया जाता है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

परमधामके संदर्भमें, इस मन्त्रमें 'अदः' शब्दसे त्रिपाद्-विभूति परमधाम और 'इदम्' शब्दसे एकपाद्-विभूति विश्व-जगत्‌का लक्ष्य मानकर अर्थ करनेसे मन्त्रका तात्पर्यार्थ बहुत स्वाभाविकरूपमें सामने आ जाता है।

यथा—

ॐ; पूर्णमदः, अर्थात् वह त्रिपाद्ब्रह्म, परमपद अथवा परमधाम, शून्य न होकर सच्चिदानन्दघन परमात्माके ऐश्वर्य, माधुर्य, आकाश, सौन्दर्य, प्रेम, आनन्द आदि दिव्य गुणोंके वैभवसे 'पूर्ण' अर्थात् भरा हुआ है।

पूर्णमिदं, अर्थात् यह एकपाद्, विश्व-जगत् भी, अनेक प्रकारकी विचित्र त्रिगुणात्मिका सृष्टि और उसके कण-कणमें परमात्माकी व्याप्तिसे पूर्ण अर्थात् भरपूर है।

पूर्णात्पूर्णमुदच्यते, अर्थात् पूर्वोक्त पूर्णत्रिपाद् शुद्ध ब्रह्म, अथवा परमधामसे ही यह द्वितीय पूर्ण एकपाद् विश्व-जगत् भी पूर्ण अर्थात् भरपूर है; ऐसा कहा जाता है।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। अर्थात् पूर्वोक्त पूर्ण, त्रिपाद् ब्रह्म अथवा परमधामके अर्थात् उससे उत्पन्न पूर्ण, विश्व-जगत्‌को निकाल लेने, तात्पर्य यह कि सृष्टिके रूपमें पृथक्‌रूपमें प्रकट कर देनेपर भी, वह त्रिपाद्ब्रह्म अथवा परमधाम, पूर्ण ही अर्थात् कुछ कम न होकर पूर्ववत् सम्पन्न और भरपूर ही बचा रहता है।

भगवत्तत्त्व एक है

निर्गुण निराकार हैं वे ही निर्विशेष वे ही पर-तत्त्व।
वही सगुण हैं निराकार सविशेष सृष्टि-संचालक तत्त्व॥
वही सगुण साकार दिव्य लीलामय शुद्धसत्त्व भगवान।
अगुण सगुण साकार सभी हैं एक अभिन्न रूप सुमहान॥

कैवल्य मोक्ष और परमधामके अधिकारी

निर्गुण निराकारके साधक पाते हैं 'कैवल्य' महान।
होते लीन ब्रह्ममें तत्क्षण क्षारोदधिमें लवण-समान॥
पर 'कैवल्य' नहीं दे पाता जिन प्रेमी भक्तोंको तोष।
मुक्त भक्त वे 'परमधाम'में जाकर पाते हैं परितोष॥

परलोकको सुधारनेके उपाय

(लेखिका—श्रीमती हेमवती देवीजी शर्मा)

परलोकको सुधारनेके लिये मनुष्यको गीतोक्त दैवी सम्पत्तिका आश्रय लेना चाहिये। दैवी-सम्पत्तिके आश्रयसे मनुष्यका स्वभाव देवताके सदृश बन जाता है, जिससे वह सर्वदा-सभीमें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की दृष्टि रखता है। ऐसा व्यक्ति सर्वदा, सभीके लिये हित-चिन्तनमें तत्पर रहता है और स्वप्नमें भी किसीके अनिष्टका चिन्तन नहीं करता। वह सर्वत्र ईश्वरकी व्यापकता और सभीमें ईश्वरका अस्तित्व समझता है। वह ईश्वरमें विश्वास और धर्ममें श्रद्धा-विश्वास रखता है। वह सभीमें समभाव और सुहृद्भाव रखता है, सभीके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझता है। वह सर्वदा परोपकारमें तत्पर रहता हुआ परमात्म-चिन्तनमें संलग्न रहता है। वह अपने पिता, माता एवं गुरुजनोंमें श्रद्धा-भक्ति रखता हुआ उनकी सेवा-शुश्रूषा करता है। वह इहलोककी तरह परलोकमें पूर्ण विश्वास रखता है। इस प्रकार जो लोग दैवी-गुणोंसे सम्पन्न रहते हैं, वे ही अपना इहलोक और परलोक दोनों सुधार लेते हैं। परलोकको सुधारनेके लिये बहुत-से उपाय हैं, जिनमेंसे कुछ उपाय लिखे जाते हैं। इनके पालन करनेसे अवश्य ही परलोकमें सुधार हो सकता है।

१–इहलोककी तरह परलोकको भी मानना चाहिये।

२–अच्छे और बुरे कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है, विश्वास रखना चाहिये।

३–अपने पितरोंका श्राद्ध और तर्पण सदा करना चाहिये।

४–वेद और वेदोक्त कर्मोंमें श्रद्धा-विश्वास करना चाहिये।

५–पर-निन्दा और पर-हानिसे सर्वदा बचना चाहिये।

६–परद्रव्य और पराये हकसे सदा बचना चाहिये।

७–गीता, रामायण और श्रीमद्भागवतका अध्ययन—इनकी कथा सुननी चाहिये।

८–महापुरुषोंके चरित्र प्रतिदिन सुनने चाहिये और तदनुसार अपने चरित्रको बनाना चाहिये।

९–अपने-अपने बालकोंको ऐतिहासिक, पौराणिक और धार्मिक कथाएँ सुनानी चाहिये, जिनसे उनका चरित्र उज्ज्वल हो।

१०–अपना रहन-सहन, खान-पान सादगीसे परिपूर्ण और सात्त्विक होना चाहिये।

११–जो मनुष्य जिस आश्रममें रहे, वह उसके अनुरूप रहे और उसको उस आश्रमकी मर्यादाका पालन पूर्णतया करना चाहिये।

१२–प्रत्येक जातिको अपनी जातिके अनुसार धर्मका पालन करना चाहिये।

१३–अपने किये हुए धर्मकी और अपने किये हुए दानकी प्रशंसा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दूसरेसे सुननी चाहिये।

१४–आत्मस्तुति या आत्मप्रशंसा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दूसरेसे सुननी चाहिये।

१५–अपने आत्माको सब प्रकार उन्नतिशील बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

१६–पुरुषको परस्त्री और स्त्रीको परपुरुषसे सर्वदा बचना चाहिये।

१७–वेदादि सच्छास्त्रोंकी निन्दा, गुरुजनोंकी निन्दा, ब्राह्मणोंकी निन्दा, साधु-महात्माओंकी निन्दा, धार्मिकोंकी निन्दा और देवी-देवताओंकी निन्दा न तो स्वयं करनी चाहिये और न दूसरोंसे सुननी चाहिये।

१८–मनसा-वाचा-कर्मणा—किसीके आत्माको कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये।

१९–धर्म करनेसे उत्तम लोककी प्राप्ति और अधर्म करनेसे अधम लोककी प्राप्ति होती है, इसमें विश्वास रखना चाहिये।

२०–धर्माचरणसे समस्त दुःखोंकी निवृत्ति होकर सुखकी प्राप्ति होती है, यह निश्चित समझना चाहिये।

२१–परमात्माकी सर्वव्यापकतापर पूर्ण विश्वास करना चाहिये।

२२–परमात्मा सबके शुभाशुभ कर्मोंको देखते हैं और तदनुसार वे सबको उचितानुचित दण्ड देते हैं, ऐसा विश्वास करना चाहिये।

२३–परमात्माकी कृपाके बिना कोई भी मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता, ऐसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिये।

२४–परमात्माकी कृपासे ही प्रत्येक मनुष्यको संतति, धन, विद्या, बल, आरोग्य आदि सुखोंकी प्राप्ति होती है, यह विश्वास होना चाहिये।

२५–परमात्मा ही सर्वविध पूर्णतासे परिपूर्ण कहे गये हैं। अतः परमात्माकी कृपासे ही मनुष्य पूर्णताको प्राप्त कर सकता है, यह दृढ़ निश्चय रखना चाहिये।

२६–परमात्माकी भक्तिसे ही मनुष्य सर्वगुणसम्पन्न हो सकता है, इस बातको कभी भी नहीं भूलना चाहिये।

२७–परमात्माको ही समस्त संसारका कर्ता, धर्ता और संहर्ता समझना चाहिये।

२८–परमात्माको ही सबका रक्षक और पालक समझना चाहिये।

२९–परमात्माको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये।

३०–सत्य ही परमात्माका असली स्वरूप है। अतः सत्यस्वरूप परमात्माका अथवा परमात्मस्वरूप सत्यका कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिये।

३१–पुरुषको अपने माता, पिता और गुरुको ईश्वरका स्वरूप समझना चाहिये और स्त्रीको अपने पतिको ईश्वरका स्वरूप समझना चाहिये।

३२–अपने गुणोंकी प्रशंसा और आत्माभिमान नहीं करना चाहिये।

३३–किसी भी जीवकी हिंसा कभी नहीं करनी चाहिये। जीव-हिंसाको महापाप समझना चाहिये।

३४–परमात्माकी भक्तिसे कभी भी विमुख नहीं होना चाहिये।

३५–प्राणिमात्रसे अपने परिवारकी तरह प्रेम करना चाहिये।

३६–ज्ञानका सम्पादन करना चाहिये। ज्ञानसे ही मुक्तिकी प्राप्ति होती है। ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती, यह विश्वास रखना चाहिये।

३७–ज्ञानसे ही भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपका परिचय मिलता है। अतः ज्ञान-सम्पादनार्थ सर्वदा प्रयत्नशील होना चाहिये।

३८–अपनी मातासे भी बढ़कर सबका कल्याण करनेवाली गोमाता है। अतः गोमाताकी सेवा और रक्षा सर्वदा करनी चाहिये।

३९–साधु, संत, महात्मा और विद्वान्‌का सर्वदा आदर करना चाहिये।

४०–सन्ध्योपासन, पञ्चमहायज्ञ, तीर्थयात्रा और अतिथि-सेवा सदा करनी चाहिये।

४१–भगवत्सेवार्थ धनिकोंको द्रव्यदान, श्रमिकोंको श्रमदान, विद्वानोंको विद्यादान और बलवानोंको बलदान करना चाहिये।

४२–अपनेसे सभीको श्रेष्ठ समझना चाहिये।

४३–दूसरे किसीका भी, भूलकर भी अपमान नहीं करना चाहिये।

४४–दूसरोंका दोष न देखकर अपना दोष देखना चाहिये।

४५–सबको सर्वदा सद्भाव और परोपकार-सम्पन्न होना चाहिये।

४६–अपने अमूल्य समयको सर्वदा प्रभु-भक्ति और सत्सङ्गमें लगाना चाहिये।

४७–सर्वदा मिथ्या-अभिमान और मिथ्या-प्रपञ्चोंसे बचना चाहिये।

४८–बड़ी-से-बड़ी आपत्ति आनेपर भी धैर्यका त्याग नहीं करना चाहिये।

४९–मानव-जीवन बार-बार नहीं मिलता। अतः इस अमूल्य जीवनका सर्वदा सदुपयोग करना चाहिये।

५०–प्रभुको सदा स्मरण रखना चाहिये।

कर्मफलकी ईश्वरीय वैज्ञानिक विधिव्यवस्था

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी गौतम, सम्पादक 'युग-संस्कृति')

कर्मका अभिप्राय और नियम

कर्मका अर्थ है, जो किया जाय—क्रिया, उसकी परम्परा, नियम, जिसमें कार्य अपने कारणके पीछे चलता है । देवी-भागवत (१।५।७४) में भी कहा है—'बिना कारणके कार्यका होना कैसे सम्भव हो सकता है ?' कार्य और कारणका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । मनुष्यके पुराने विचार जब साकाररूप धारण कर लेते हैं तो वे कर्म कहलाने लगते हैं । इसके साथ वर्तमान, भूत और भविष्य जुड़ा रहता है । प्रत्येक कर्मकी ये तीनों अवस्थाएँ होती हैं ।

सृष्टिकी रचनाके गम्भीर अध्ययनसे ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संचालन निश्चित नियमोंपर आधारित है, जिन्हें बदला नहीं जा सकता, अल्पज्ञताके कारण उन नियमोंको हम नहीं जानते और हानि उठाते हैं, उनके ज्ञान और पालनसे हम शक्ति प्राप्त करते हैं ।

प्राकृतिक नियमोंका पालन करना ही प्रकृतिकी शक्तियों-को अपने वशमें करना है । नियमोंका पालन करनेवाला प्रकृतिको अपने अनुकूल बना लेता है और प्रतिकूल परिस्थितियोंको टाल सकता है । इसलिये चतुर व्यक्ति शक्तियोंका अध्ययन करता है । अनुकूल नियमोंका पालन करके वह शक्तियोंका सृजन करता है, विरोधी धाराको वह दबा देता है । जिस तरह दो रसायनोंको मिलानेसे एक दूसरा निश्चित रसायन बन जाता है, इसी तरह प्रकृतिके व्यवस्थित नियमोंकी अनुकूल धाराके अनुसार चलनेसे निश्चित परिणाम ही निकलते हैं, जिनका हमें पूर्वज्ञान होता है । इसलिये प्रतिकूल फलके उपस्थित होनेपर दैवयोगसे कहना या भाग्यपर दोषारोपण करना अज्ञानताके चिह्न हैं । जिस तरह दो और दो चार होते हैं, उसी तरह कर्मोंके निश्चित फल हमारे सामने आते हैं—भले ही उनके साकाररूप लेनेमें कुछ देर लग जाय । लोकमें हम दो विरोधी धाराएँ चलती देखते हैं—एक शक्तिकी और दूसरी अशक्तिकी । एक पंक्तिमें धनवान् खड़े हैं, दूसरीमें धनहीन; कुछके विशाल भवन खड़े हैं, कुछको झोंपड़ी भी प्राप्त नहीं है । जगत्के ऐश्वर्य पाकर भी उन्हें निरन्तर मानसिक अशान्ति रहती है और बहुत-से लोग उनसे विहीन होकर भी संतुष्ट रहते हैं । रोगोंसे कराहने और भाग्यको कोसनेवालोंको भी देखा जा सकता है । समाजका अभिशाप सहनकर हड्डियोंका ढाँचा बननेवालोंकी भी कमी नहीं है । परिस्थितियोंका रोना रोने-वाले और दुःखों तथा चिन्ताओंकी दावानलमें जलनेवालोंका भी अभाव नहीं है ।

जो ज्ञानी हैं, वे जानते हैं कि जो भी दुःख या सुखके दृश्य हमारे सामने आ रहे हैं, उस प्रत्येक चित्रके पीछे उसका कारण निहित है । बिना कारणके कार्य सम्भव नहीं है । प्रकृति किसीका पक्षपात नहीं करती और न किसीका विरोध ही करती है; वह तो समताकी देवी है । उसके राज्यमें जो जैसा कार्य करता है, उसे वह वैसा ही फल देती है । जो नियम-व्यवस्था जानकर उसके अनुसार चलता है, उसे वह सुख देती है और नियम-भङ्ग करनेवालेको दुःख । फिर दुःख आनेपर रोना कैसा ? दुःख आनेपर यह जानना चाहिये कि अवश्य हमने किसी प्राकृतिक नियमका उल्लङ्घन किया है । उसकी खोज करके उसका पालन करना आरम्भ कर देना चाहिये । वह दुःख सुखमें परिणत हो जायगा । प्रकृति उस व्यक्तिके लिये आज्ञाकारी सेवकका कार्य करती है, जो नियमोंका पालन करता है । वही शक्ति और सिद्धिके साम्राज्यका स्वामी बन पाता है, धन और वैभव, ऐश्वर्य भी उसे ही प्राप्त होते हैं, परिस्थितियाँ उसके आज्ञा-पालनकी प्रतीक्षा करती हैं, सफलता उसके स्वागतके लिये सदैव आरतीका थाल लिये खड़ी रहती है । अतः विकासका उत्तम सूत्र है—प्रकृतिके नियमोंका पालन करना । इसीसे सुख-शान्ति और शक्तिकी प्राप्ति सम्भव है । देवीभागवतमें कहा है—'ब्रह्मादि सभी इस नियमके वशमें हैं ।' (४।२।८) । इसीसे संसारका सुव्यवस्थित संचालन हो रहा है ।

कर्मफल और उसका नियन्त्रण

मनुष्य जैसे कार्य करता है, वैसे ही वह फल पाता है । बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४।५) का मत है कि 'मनुष्यकी जैसी इच्छा होती है, वैसे ही उसके विचार बनते हैं । विचारोंके अनुसार ही उसके कर्म होते हैं । कर्मोंके अनुसार ही वह फल पाता है ।' महाभारत, शान्तिपर्व (२०१।२१)

में इसी तथ्यका समर्थन किया है—'कर्मफलमें आसक्त व्यक्ति जैसे कर्म करता है, वैसे ही शुभ और अशुभ फलोंको वह भोगता है।' इसलिये महाभारत, शान्तिपर्व (२९१। १२) में प्रेरणा दी है कि 'बीजके बिना किसी वस्तुकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। सत्कर्मके बिना सुखकी उपलब्धि नहीं हो सकती। मनुष्य अच्छे कार्य करके ही परलोकमें सुख प्राप्त करता है।' परंतु गीता (५। १२) के अनुसार 'जब वह कर्मफलमें आसक्त हो जाता है तो बन्धनमें पड़ जाता है।'

कर्मोंकी जड़ विचारोंमें है और विचारोंका मूल मनमें है। कर्मोंकी रचना मनसे ही होती है। वही इनकी रचना करनेवाला है और वही इनका नियामक है। जैसे ब्रह्मा सृष्टिकी रचना करता है, वैसे ही मन विचारोंको बनाता है। मनुष्य जैसे विचार करता है, वह उसी धारामें बहता है, वैसा ही बन जाता है। छान्दोग्योपनिषद् (३। १४। १) में कहा है—'मनुष्यका निर्माण उसके अपने विचारोंके अनुसार ही होता है।' क्षुद्र या महान्, पापी या सत्कर्मी, संत या डाकू बनना उन्हींके अधिकारमें है। इनमें अपार शक्ति है। यह व्यक्तिको निम्न परिस्थितियोंसे विकासकी उच्चतम अवस्थामें पहुँचानेमें समर्थ है। देवीभागवत (९। २७। १८-२०) में कहा है—'जीव अपने शुभकर्मोंकी सहायतासे इन्द्रपद प्राप्त कर सकता है, वह हरिका सेवक हो सकता है, आवागमनके चक्रसे मुक्त हो सकता है, समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करता हुआ अमरत्वपदतक पहुँच जाता है, सालोक्य मुक्तिका अधिकारी बन सकता है और वह देवता, राजा, शिव, गणेश और जो कुछ भी चाहे, वही बन सकता है। मनको अपूर्व शक्तियोंसे विभूषित किया गया है; परंतु उन शक्तियोंका लाभ मनुष्य तभी उठा सकता है, जब उसे प्रकृतिके नियमोंके अनुकूल चलाया जाय। यदि वह स्वच्छन्द होकर अपनी मनमानी करने लगे तो मनुष्यको नाना प्रकारके दुःखोंकी अग्निमें जलना पड़ता है, चारों ओरसे निराशाके बादल उमड़ने लगते हैं और वह अज्ञानान्धकारमें ठोकरें खाता है। जिस तरह भूत-प्रेतको वशमें करके उनसे इच्छानुसार कार्य कराये जाते हैं, उसी तरह मनको भी प्रकृतिके व्यवस्थित नियमोंके अनुसार चलाकर ही उसकी अपार सामर्थ्यका अनुकूल लाभ उठाया जा सकता है। इस तरहसे अपने भविष्यका निर्माण स्वयं किया जा सकता है और कर्मफलका नियमन भी किया जा सकता है।

दुःखको गले लगानेसे सुखका द्वार खुलता है—

दुःख आनेपर रोना-पीटना हमारी अज्ञानताका परिचायक है। इसका स्पष्ट अभिप्राय है—प्रकृतिके नियमोंकी जानकारीका अभाव। कोई भी दुःख बिना कारणके नहीं आ सकता, जैसे कोई भी पेड़ बिना बीजके नहीं उग सकता। कारणकी खोज किये बिना दैवको कोसना, भाग्यको फूटा बताना और नास्तिकताकी भावनाओंको उद्दीप्त करना अज्ञानताके प्रदर्शनके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो भी बुरा कार्य किया गया है, प्रकृति उसका बुरा फल अवश्य देगी। यह उसका नियम है। उसके चरणोंमें गिड़गिड़ानेवालेपर वह क्षमा नहीं करती। उसका स्पष्ट निर्देश है कि पिछले कर्मोंके फलोंको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करो और आगामी जीवनको नियमबद्ध करो। यही सुखका राजमार्ग है। जो आदेशका पालन नहीं करते हैं, वे अपने दुःखोंको और बढ़ाते हैं। प्रकृति हमारी शत्रु नहीं है। हमें दुःख देनेमें उसे प्रसन्नता नहीं होती। सभी प्राणी उसके लिये समान हैं। जो मार्गसे भटक गये हैं, उनके सुधारका कार्य ही उसे सौंपा गया है। बुरे कार्यका परिणाम सामने आनेसे उसके कारणकी जड़ कट जाती है। प्रकृति हमारे स्थायी सुखकी उत्तम व्यवस्थापिका है। वह हमारे दुःखोंके कारणोंको ही नष्ट करनेका प्रयत्न करती है; परंतु हम अज्ञानतावश उसे नहीं समझते और कृतज्ञताकी भावना व्यक्त करनेके स्थानपर उसे दुःख देनेके लिये कोसते हैं और उसे अपनी विरोधी और शत्रु घोषित कर देते हैं। क्या विडम्बना है! अपने हितैषीको हम अपना शत्रु समझने लगते हैं और कृतघ्नताकी पापमयी भावनाएँ उपज पड़ती हैं, जिनका दुष्परिणाम फिर हमें और भुगतना पड़ता है। नियम तो यही है कि जिसने हमारे प्रति उपकार किया है, हम उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करें और वैसा ही उपकारी कार्य उसके प्रति करनेका प्रयत्न करें, तभी संतुलनसे हमें शान्ति मिल सकती है। हम एक व्यक्तिसे लेते-ही-लेते रहें और दें नहीं, तो ऋण बढ़ता ही रहेगा। उसको देते रहनेसे ही दोनों पलड़े बराबर रहेंगे। हम इसके विपरीत कार्य करते हैं, इससे दुःखोंका बढ़ना स्वाभाविक ही है।

प्रकृति हमारे सुधारका निरन्तर प्रयत्न करती है और कार्य-कारणके संतुलनको बनाये रखना चाहती है; परंतु हम उस संतुलनको निरन्तर बिगाड़ते रहते हैं। दुःख उस संतुलनको

बनाये रखनेके लिये ही आते हैं। जब उन्हें स्वीकार नहीं किया जाता है और असंतोष, क्लेश, चिन्ताकी अग्नि प्रज्वलित की जाती है तो इसका परिणाम यह होता है कि पहले कर्मके परिणामका निपटारा तो हुआ नहीं, दूसरा और उपज पड़ा। पहले ऋणको उतारा नहीं गया, दूसरा और आ गया। यह दुःख कम होनेके नहीं, बढ़नेके लक्षण हैं। दुःखोंको कम करनेकी कला यही है कि उन्हें प्रसन्नतापूर्वक भोगा जाय। यह तो निश्चित है कि उन्हें टाला नहीं जा सकता। वे आयेंगे ही। उन्हें धीर-वीर पुरुषकी तरह सहन करना चाहिये। उनसे डरना नहीं चाहिये, वरं वीरतासे उनका प्रेमालिङ्गन करना चाहिये। दुःख तो अपनी संतान हैं। अपनी संतान यदि प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दें तो क्या उनको शत्रु समझ लिया जाता है? उनके दुष्कर्मोंको सहन ही किया जाता है। दुःखोंको भी हमने स्वयं उपजाया है और स्वयं ही अपने पास बुलाया है। निमन्त्रित व्यक्तिके साथ बुरा व्यवहार नहीं किया जाता। वह बुरा हो तो भी उसका सम्मान किया जाता है। वस्तुतः दुःखोंका ऊपरी रूप अवश्य भयावना होता है, परंतु उनका परिणाम सदैव सुखदायी सिद्ध होता है।

एक तो वे भोगोंका निपटारा करने आते हैं और हमें सुख-शान्तिके मार्गपर लाकर खड़ा कर देते हैं और दूसरे वे हमें संघर्षके लिये प्रेरित करते हैं, जिससे हमारी शक्तियोंका विकास होता है, प्रगतिके लिये बंद द्वार हमारे स्वागतके लिये खुल जाते हैं। दुःखके अभावमें व्यक्ति सुखमें लिप्त होकर विलासी, आलसी और निकम्मा हो जाता है। उसकी शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं, जिससे सफलताके खुले द्वार बंद हो जाते हैं। शक्तिके अभावमें चारों ओरसे विरोधी धाराओंके आक्रमण होने लगते हैं और जीवन एक दुःखागार बन जाता है। यह सब प्रकृतिके नियमोंके अनुसार न चलनेका ही परिणाम है। यदि दुःखोंको अभिशाप नहीं, वरदान माना जाय, यदि उन्हें ईश्वरीय कोपके बजाय ईश्वरीय कृपा समझा जाय तो मनका यह परिवर्तित दृष्टिकोण दुःखको दुःख अनुभव नहीं होने देगा। यह सदैव उनके स्वागतके लिये तैयार रहेगा तो पहाड़-जैसे दिखायी देनेवाले दुःख राईके समान हो जायँगे। दुःखोंमें हँसना आ सकता है। उन्हें झेलते हुए प्रसन्न रहना सीखना है। इसलिये दुःख सहते हैं, झेलनेसे वे कम होते हैं और उनके कारणका नाश होता है। अतः सुलझा हुआ दृष्टिकोण अपनानेमें ही बुद्धिमानी है और यही सत्य-जीवन जीनेकी कला है। जो व्यक्ति इस कलाको जान जाते हैं, वे दुःखोंको अपना मित्र और साथी समझते हैं। डरनेवालोंको वे भूत लगते हैं। उन्हें मित्र बनानेमें ही हमें लाभ है। शत्रु तो सदैव विनाशकी ही सोचता है। अतः दुःखको अपना सहयोगी समझना ही जीवनकी उत्तम नीति है।

कर्मफल प्राकृतिक नियमोंपर आधारित है

कर्म-व्यवस्थामें प्रकृतिका गहरा हाथ है। वही इस पेचीदी व्यवस्थाको निष्पक्ष रीतिसे सम्पन्न करती है। शक्तिके लिये सिद्धान्तसे इस प्रक्रियाका जो सुसंचालन होता है, वह इस प्रकार है। विश्वमें प्रत्येक कार्यकी प्रतिक्रिया होती है। दीवालपर एक गेंदको हम जितनी शक्तिसे फेंकते हैं, उतनी ही शक्तिसे वह लौटकर आती है। गेंदका फेंकना क्रिया है और लौटकर आना उसकी प्रतिक्रिया है। पहाड़के नीचे या गुम्बदमें खड़े होकर हम आवाज देते हैं तो वह आवाज लौटकर आती है। आवाज देना क्रिया और उसका लौटकर आना प्रतिक्रिया है। पृथ्वीपर हम पैर रखते हैं, इससे दबाव पड़ता है, यह क्रिया है। पृथ्वी अपनी शक्तिसे पैरको ऊपर उठानेका प्रयत्न करती है, यह प्रतिक्रिया है। चूँकि ये दोनों शक्तियाँ समान होती हैं, इसलिये दोनों ओरके स्पष्ट दबावका पता नहीं चलता। यदि उनमें थोड़ी भी असमानता हो तो यह प्रतीत होने लगे। पैरका दबाव अधिक हो तो वह पृथ्वीमें उसी अनुपातसे धँस जायगा। जो भूमि पैरके दबावको उसी अनुपातसे वापस नहीं करती है, वहाँ पैरको भूमि नीचे आनेकी आज्ञा देती है। प्रकृतिका कार्य शक्तिका संतुलन बनाये रखना है।

एक व्यक्तिने दूसरेको गोली मार दी, एकने दूसरेका धन अपहरण कर लिया, एकने दूसरेके मकानमें आग लगा दी आदि। इन क्रियाओंसे विश्वकी शक्तियोंमें असमानता उत्पन्न हो गयी। प्राकृतिक कानून बना रहता है। ईश्वरकी ओरसे बना हुआ यह प्रमुख कार्य है। यह हर क्रियाकी प्रतिक्रिया की बात समताको स्थिर रखती है। जिस व्यक्तिने गोली मारी, गाली दी, धन अपहरण किया या आग लगायी, इन क्रियाओंकी प्रतिक्रियाओंको आकार-प्रकारमें आकर ही

विश्वकी शक्तियोंमें समता स्थापित हो सकती है। प्रतिक्रियाके समय और आकारमें अन्तर हो सकता है; परंतु प्रकृतिके साम्राज्यमें यह नहीं हो सकता कि किसी क्रिया-की प्रतिक्रिया न हो। कर्म एक क्रिया है, फल उसकी प्रतिक्रिया है। यदि प्रकृतिके नियम निश्चित और अटल हैं तो कर्म और कर्मफलकी व्यवस्था भी स्वाभाविक और प्राकृतिक नियमोंके आधारपर अवस्थित है। इन नियमोंको बदलना किसी व्यक्ति-विशेषकी सामर्थ्यके बाहर है। इसीलिये कहा जाता है कि कर्मकी गति टाली नहीं जा सकती। जो भले या बुरे कर्म हमने किये हैं, उनका अच्छा या बुरा परिणाम हमें भुगतना ही पड़ेगा। इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

अन्तर्मनद्वारा कर्मोंका सूक्ष्म चित्रण

हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें प्राणियोंकी ८४ लाख योनियोंका वर्णन आता है। प्रत्येक प्राणी प्रतिदिन अनेक कर्म करता है। कुछ कर्म स्पष्ट और व्यक्त होते हैं, कुछ गुप्तरूपसे एकान्त स्थानपर किये होते हैं। कुछ मानसिकरूपसे होते हैं। इन सभी कर्मोंकी प्रतिक्रियाओंकी व्यवस्था प्रकृति कैसे करती होगी, यह भी एक उलझनभरी समस्या है। इसको बड़ी चतुराईसे सुलझाया गया है।

हमारे शरीरके संचालनके लिये विभिन्न प्रकारके यन्त्र लगाये गये हैं। कुछ स्थूल हैं और कुछ सूक्ष्म। फेफड़े, हृदय, यकृत, आँतें आदि स्थूल हैं। मन सूक्ष्म है। मनके दो प्रकार होते हैं—एक बाहरी मन और दूसरा अन्तर्मन। आधुनिक मनो-वैज्ञानिकोंका कहना है कि 'जो कार्य भी हम करते हैं, उसका सूक्ष्म चित्रण हमारे अन्तर्मनमें हो जाता है।' इस चित्रणको आध्यात्मिक भाषामें रेखाएँ कहा जाता है। इस सिद्धान्तके प्रबल समर्थक हैं—विश्वप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ० फ्रायड। अन्तर्मनपर हुए चित्रणको ही भाग्य-रेखाएँ कहा जाता है। वैज्ञानिकोंने इन रेखाओंका गहन अध्ययन किया है। डा० योवन्स इसमें अग्रणी रहे हैं। उन्होंने अपने अनुसंधान-के फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला कि 'जब मस्तिष्कके भूरे चर्बीदार पदार्थको सूक्ष्मदर्शक यन्त्रोंसे देखा गया तो उसके एक-एक परमाणुपर असंख्य रेखाएँ अङ्कित हुई मिलीं। ये रेखाएँ क्रियाशील प्राणियोंमें अधिक और क्रियाशून्य प्राणियोंमें कम देखी गयीं।' विशेषज्ञोंका कहना है कि यही रेखाएँ उपयुक्त समयपर कर्मोंका साकार रूप धारण करती रहती हैं। इसे ही कर्मफल कहते हैं।

रेखाएँ कर्मोंका साकार रूप कैसे धारण कर सकती हैं, इस समस्याको आधुनिक विज्ञानने अनेक आविष्कारोंद्वारा सिद्ध कर दिया है। ग्रामोफोनके अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जायगा। गाने-बजानेको विशेष यन्त्रोंकी सहायतासे रिकार्डमें भर लिया जाता है। यह ध्वनि रेखाओंके रूपमें ही होती है। इन ध्वनियोंका रेखाओंके रूपमें चित्रण सुरक्षित रहता है। जब भी चाहे, एक निर्दोष विधिसे सुईके आघातसे उसी ध्वनिको साकार रूप दे दिया जाता है। इसी तरहसे प्रत्येक शारीरिक एवं मानसिक कार्यका सूक्ष्म चित्रण अन्तर्मनके परमाणुओंपर होता रहता है और उपयुक्त अवसर पाकर आघात लगनेसे वह प्रकट हो जाता है। यह प्रकट होना उस क्रियाकी प्रतिक्रियाका स्थूलरूप है।

चित्रगुप्तकी निष्पक्ष कर्तव्यभावना

कर्मोंका सूक्ष्म रेखाङ्कन स्वचालित यन्त्रद्वारा ही अपने-आप होता रहता है। इन प्रतिक्रियाको समझानेके लिये चित्रगुप्तरूपी देवताका नाम रक्खा गया है कि वे प्राणियोंके सभी कर्मोंको निरन्तर बहीमें लिखते रहते हैं और मृत्युके पश्चात् जब प्राणीको यमराजके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो चित्रगुप्त ही उसके भले-बुरे कार्योंका लेखा-जोखा बताते हैं; उसीके अनुसार उसे फल मिलता है। यह चित्रगुप्त वास्तवमें हमारा अन्तर्मन—गुप्त मन ही है, जो निरन्तर हमारे कार्योंके चित्र लेता रहता है और उन्हें सुरक्षित रखता है। उपयुक्त समय आनेपर उन्हें प्रकट कर देता है।

इस गुप्त मनको 'ईश्वरीय शक्ति'की संज्ञा दी गयी है। यह सत्यनिष्ठ जजके समान है। यह किसीका पक्षपात नहीं करता। निष्पक्षरूपसे हर कार्यके चित्र लेते रहकर सुरक्षित रखते रहना ही इसका कार्य है। इन चित्रोंमें कोई परिवर्तन करनेकी सामर्थ्य किसीमें भी नहीं है। वहाँतक पहुँचका अधिकार किसीको भी नहीं दिया गया है। बाहरी मन तो तर्क-वितर्क करता है, झूठको सत्य और सत्यको झूठ सिद्ध करता रहता है। यदि उसे यह व्यवस्था दी जाती तो निश्चयरूपसे कार्योंमें शिथिलता आ जाती। बाहरी मन पुण्योंको तो बढ़ा-चढ़ाकर दिखाता; परंतु पापोंको बिल्कुल दर्ज न करता। इससे ईश्वरीय न्याय खण्डित हो जाता और प्रकृतिका संतुलन बिगड़ जाता। परंतु ऐसा हुआ नहीं।

जगत्में तो पुलिस जिस मुकदमेको जैसे प्रस्तुत करे, जज उसे वैसे ही ग्रहण करता है। परंतु प्रकृतिका जज दोनों कार्योंको स्वयं करता है। इसलिये कर्मोंका विकृत रूप उपस्थित होनेका प्रश्न ही नहीं उठता। उनका विशुद्ध रूप ही सामने आता है। यह अन्तश्चेतनाका निष्पक्षभावसे सभी कर्मोंके समाचार अपनी लिपिमें लिखते रहनेका कार्य ही प्रकृतिकी प्रतिक्रियाओंको वास्तविक रूपमें व्यक्त करनेमें सहायक होता है।

असंख्य क्रियाओंको कैसे लिपिबद्ध किया जाता है, इसकी भी व्यवस्था कर दी गयी है। यह प्राकृतिक नियम है कि स्थूल वस्तुओंके लिये स्थानकी अपेक्षा रहती है। सूक्ष्म इस सीमाके बाहर है। लाखों विचार और भावनाएँ हमारे मनमें रहती हैं, समय पाकर वे उभर भी आती हैं। यदि उन्हें निवासके लिये स्थानकी आवश्यकता रहती तो मनमें उनका समा सकना सम्भव न था; परंतु यदि लाखों विचार और आ जायँ तो भी वहाँ समानेकी गुंजायश रहती है। चित्रगुप्तके खींचे हुए चित्र सूक्ष्म होते हैं। इसलिये सूक्ष्म-चित्रणके लिये स्थानकी कमीका कोई प्रश्न नहीं उठता।

सूक्ष्म भावनाओंका मूल्याङ्कन

चित्रगुप्तके दरबारमें स्थूल क्रियाओंका महत्त्व नहीं है। वहाँ तो सूक्ष्म भावनाओंकी जाँच होती है। गुप्त मन एक ऐसा यन्त्र है, जो भावनाओंकी मार-तोल करके ही अपना फैसला लिखता है। दान यश, कीर्ति और किसी अन्य स्वार्थके लिये भी दिया जा सकता है और विशुद्ध परमार्थ-भावनासे भी। सेवा दिखावेके लिये भी की जाती है और पवित्र भावनासे भी। धर्मप्रचारकमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों छिपे रहते हैं। किसीको सहयोग देनेमें दोनों भावनाएँ कार्य करती हैं। संसार तो बाहर रूपरेखाका मूल्याङ्कन करता है। एक लाख रुपया दान देनेवाले सेठकी कीर्ति चारों ओर फैल जायगी, बड़े-बड़े धर्मध्वजियोंको जनता भरपूर सम्मान देती है; परंतु उनके अन्तर्मनमें झाँककर देखनेकी क्षमता किसीमें नहीं है, ताकि उनकी भावनाओंकी जाँच कर सके। यह कार्य केवल गुप्त मन ही कर सकता है। उसके सामने स्थूल क्रियाका महत्त्व नहीं है। वह उन भावनाओंको श्रेष्ठ समझता है; भले ही स्थूलरूपसे उस क्रियाका कोई विशेष महत्त्व न हो। जैसे किसी बुढ़ियाने अपनी समस्त सम्पत्ति दस रुपये दानमें दे दिये हों। दस रुपयेके दानका कोई विशेष महत्त्व नहीं है; परंतु जिस त्याग-भावनासे उसने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है, ईश्वरके दरबारमें इसीका मूल्य अधिक लगाया जाता है और इसकी जिम्मेदारी गुप्त मनको सौंपी गयी है, जो निष्पक्षभावसे दिन-रात इस कार्यको करता रहता है। इसमें भूल-चूककी कुछ भी सम्भावना नहीं है। इन बाह्य-क्रियाओंसे स्थूल-नेत्रोंको तो धोखा दिया जा सकता है; परंतु दिव्यदृष्टिकी महान् शक्तियोंसे सम्पन्न मनकी आँखोंमें धूल नहीं डाली जा सकती। यहाँ स्थूल, सूक्ष्म, गुप्त या मानसिक जैसे भी हम कार्य करते हैं, उनको उसी रूपमें, उसी तरह लिख लिये जानेकी व्यवस्था है। अतः इस सुव्यवस्थाके अनुसार प्राणीकी समस्त क्रियाओंका सूक्ष्म रेखाङ्कन होता रहता है और प्रकृतिके संतुलनको बनाये रखनेके लिये प्रतिक्रियारूपमें आघात लगनेपर उपयुक्त अवसर पाकर यह साकाररूपमें प्रकट होती रहती है। कर्मफलकी ये समस्त प्रक्रियाएँ वैज्ञानिक रीतिसे स्वयमेव संचालित होती रहती हैं।

मानवको उद्बोधन

अरे अज्ञानी मानव! अमर आत्माका निषेध करनेवाले ग्रन्थोंका आधार लेकर तुम पथ-भ्रष्ट हो गये हो। अब इस मोह-निद्रासे जग जाओ। अपने नेत्र खोलो। तुमने तो अपने लिये नरकमें स्थान सुरक्षित कर लिया है और उस अन्धतम प्रदेशमें जानेके लिये सीधा पासपथ प्राप्त कर लिया है। स्वर्गद्वार बंद करनेवाले निकृष्ट ग्रन्थोंके पढ़नेसे ऐसा हुआ है। इन्हें अग्निको भेंट कर दो तथा गीता एवं उपनिषदोंको पढ़ो। नियमित जप, कीर्तन तथा ध्यान करो और इस भाँति अपने बुरे संस्कारोंको आमूल नष्ट कर डालो। तभी तुम विनाशसे सुरक्षित रह सकोगे। —स्वामी शिवानन्द सरस्वती*

---

* 'डिवाइन लाइफ सोसायटी' ऋषिकेशके 'मरणोत्तर जीवन और पुनर्जन्म' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थसे सहर्ष उद्धृत।

पापोंके अनुसार नारकीय गति

जीवको माताके गर्भमें अनेक जन्मोंकी बातें याद आती हैं, जिससे व्यथित होकर वह इधर-उधर फिरता और निर्वेद (खेद) को प्राप्त होता है। अपने मनमें सोचता है—'अब इस उदरसे छुटकारा पानेपर मैं फिर ऐसा कार्य नहीं करूँगा, बल्कि इस बातके लिये चेष्टा करूँगा कि मुझे फिर गर्भके भीतर न आना पड़े।' सैकड़ों जन्मोंके दुःखोंका स्मरण करके वह इसी प्रकार चिन्ता करता है। तत्पश्चात् कालक्रमसे वह अधोमुख जीव जब नवें या दसवें महीनेका होता है, तब उसका जन्म हो जाता है। गर्भसे निकलते समय वह प्राजापत्य वायुसे पीड़ित होता है और मन-ही-मन दुःखसे व्यथित हो रोते हुए गर्भसे बाहर आता है। तदनन्तर वह जीव पहले तो बाल्यावस्थाको प्राप्त होता है, फिर क्रमशः कौमारावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्थामें प्रवेश करता है। इसके बाद मृत्युको प्राप्त होता और मृत्युके बाद फिर जन्म लेता है। इस प्रकार इस संसारचक्रमें वह घटीयन्त्र (रहट) की भाँति घूमता रहता है। कभी स्वर्गमें जाता है, कभी नरकमें। कभी इस संसारमें पुनः जन्म लेकर अपने कर्मोंको भोगता है, कभी कर्मोंका भोग समाप्त होनेपर थोड़े ही समयमें मरकर परलोकमें चला जाता है। कभी स्वर्ग और नरकको प्रायः भोग चुकनेके बाद थोड़ेसे शुभाशुभ कर्म शेष रहनेपर फिर इस संसारमें जन्म लेता है—

नारकी जीव घोर दुःखदायी नरकोंमें गिराये जाते हैं। पुण्यवान् स्वर्गमें जाते हैं। स्वर्गमें पहुँचनेके बादसे ही मनमें इस बातकी चिन्ता बनी रहती है कि पुण्यक्षय होनेपर हमें यहाँसे नीचे गिरना पड़ेगा। साथ ही नरकमें पड़े हुए जीवोंको देखकर महान् दुःख होता है कि कभी हमें भी ऐसी ही दुर्गति भोगनी पड़ेगी।

यमराजके आदेशानुसार पापी जीव यातना-शरीर प्राप्त करके विविध नरकोंमें गिराये जाते हैं। फिर, विभिन्न दुःखद योनियोंमें भेजे जाते हैं। उनका कुछ विवरण यह है—

एक भयानक नरकका नाम है—'रौरव'। इस रौरव नरककी लंबाई-चौड़ाई दो हजार योजनकी है। यह एक गड्ढेके रूपमें है। यह नरक अत्यन्त दुस्तर है। इसमें भूमिके बराबरतक अङ्गारोंके ढेर बिछे हैं। इसके भीतरकी भूमि दहकते हुए अङ्गारोंसे बहुत तपी होती है। सारा नरक तीव्र वेगसे प्रज्वलित होता रहता है। यमराजके दूत पापी प्राणीको इसीके भीतर डाल देते हैं। वह धधकती आगमें जब जलने लगता है, तब इधर-उधर दौड़ता है; किंतु पग-पगपर उसके पैर जल-भुनकर राख होते रहते हैं। वह दिन रातमें कभी एक बार पैर उठाने और रखनेमें समर्थ होता है। इस प्रकार सहस्रों योजन पार करनेपर वह इस नरकसे छुटकारा पाता है।

(यातना-देह उस देहको कहते हैं, जो नरककी पीड़ा भुगतानेको दिया जाता है। इसमें जलने-कटने आदिकी भयानक पीड़ा होती है, पर यह जल या कटकर नष्ट नहीं होता। पीड़ा भोगनेके लिये ज्यों-का-त्यों बना रहता है।)

अब 'महारौरव'का वर्णन सुनिये—इसका विस्तार सब ओरसे बारह हजार योजन है। वहाँकी भूमि ताँबेकी है, जिसके नीचे आग धधकती रहती है। उसकी आँचसे तपकर वह सारी ताम्रमयी भूमि चमकती हुई बिजलीके समान ज्योतिर्मयी दिखायी देती है। उसकी ओर देखना और स्पर्श आदि करना अत्यन्त भयंकर है। यमराजके दूत हाथ और पैर बाँधकर पापी जीवको उसके भीतर डाल देते हैं और वह लोटता हुआ आगे बढ़ता है। मार्गमें कौवे, बगुले, बिच्छू, मच्छर और गिद्ध उसे जल्दी-जल्दी नोच खाते हैं। उसमें जलते समय वह व्याकुल हो-होकर छटपटाता है और बारंबार 'अरे बाप! अरे मैया! हाय मैया! हा तात!' आदिकी रट लगाता हुआ करुण क्रन्दन करता है, किंतु उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। इस प्रकार उसमें पड़े हुए जीव, जिन्होंने दूषित बुद्धिके कारण पाप किये हैं, दस करोड़ वर्ष बीतनेपर उससे छुटकारा पाते हैं।

इसके सिवा 'तम' नामक एक दूसरा नरक है, जहाँ स्वभावसे ही कड़ाकेकी सर्दी पड़ती है। उसका विस्तार भी महारौरवके ही बराबर है; किंतु वह घोर अन्धकारसे आच्छादित रहता है। वहाँ पापी मनुष्य सर्दीसे कष्ट पाकर भयानक अन्धकारमें दौड़ते हैं और एक-दूसरेसे भिड़कर लिपटे रहते हैं। जाड़ेके कष्टसे काँपकर कटकटाते हुए उनके दाँत टूट जाते हैं। भूख-प्यास भी वहाँ बड़े जोरकी लगती है। इसी प्रकार अन्यान्य उपद्रव भी होते रहते हैं। ओलोंके साथ बहनेवाली भयंकर वायु शरीरमें लगकर हड्डियोंको चूर्ण किये देती है और उनसे जो मज्जा तथा रक्त गिरता है, उसीको वे भूखातुर प्राणी खाते हैं। एक-दूसरेके शरीरसे

गलकर वे परस्पर रक्त चाटा करते हैं । इस प्रकार जबतक पापोंका भोग समाप्त नहीं हो जाता, तबतक वहाँ भी मनुष्योंको अन्धकारमें महान् कष्ट भोगना पड़ता है ।

इससे भिन्न एक 'निकृन्तन' नामक नरक है । उसमें कुम्हारकी चाकके समान बहुतसे चक्र निरन्तर घूमते रहते हैं । यमराजके दूत पापी जीवोंको उन चक्रोंपर चढ़ा देते और अपनी अंगुलियोंमें कालसूत्र लेकर, उसीके द्वारा उनके पैरसे लेकर मस्तकतक प्रत्येक अङ्ग काटा करते हैं । फिर भी उन पापियोंके प्राण नहीं निकलते । उनके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं, किंतु फिर वे जुड़कर एक हो जाते हैं । इस प्रकार पापी जीव हजारों वर्षोंतक वहाँ काटे जाते हैं । यह यातना उन्हें तबतक दी जाती है, जबतक कि उनके सारे पापोंका नाश नहीं हो जाता ।

अब 'अप्रतिष्ठ' नामक नरकका वर्णन सुनिये, जिसमें पड़े हुए जीवोंको असह्य दुःखका अनुभव करना पड़ता है । वहाँ भी वे ही कुलालचक्र होते हैं । साथ ही दूसरी ओर घटीयन्त्र भी बने होते हैं, जो पापी मनुष्योंको दुःख पहुँचानेके लिये बनाये गये हैं । वहाँ कुछ मनुष्य उन चक्रोंपर चढ़ाकर घुमाये जाते हैं । हजारों वर्षोंतक उन्हें बीचमें विश्राम नहीं मिलता । इसी प्रकार दूसरे पापी घटीयन्त्रोंमें बाँध दिये जाते हैं; ठीक उसी तरह, जैसे रहटमें छोटे-छोटे घड़े बँधे होते हैं । वहाँ बँधे हुए मनुष्य उन यन्त्रोंके साथमें जब घूमने लगते हैं तो बारंबार रक्त वमन करते हैं । उनके मुखसे लार गिरती है और नेत्रोंसे अश्रु झरते रहते हैं । उस समय उन्हें इतना दुःख होता है, जो जीवमात्रके लिये असह्य है ।

अब 'असिपत्रवन' नामक अन्य नरकका वर्णन सुनिये । वहाँ एक हजार योजनतककी भूमि प्रज्वलित अग्निसे आच्छादित रहती है तथा ऊपरसे सूर्यकी अत्यन्त भयंकर एवं प्रचण्ड किरणें ताप देती हैं, जिनसे उस नरकमें निवास करनेवाले जीव सदा संतप्त होते रहते हैं । उसके बीचमें एक बहुत ही सुन्दर वन है, जिसके पत्ते चिकने जान पड़ते हैं; किंतु वे सभी पत्ते तलवारकी तीखी धारके समान हैं । उस वनमें बड़े बलवान् कुत्ते भूँकते रहते हैं, जो दस हजारकी संख्यामें सुशोभित होते हैं । उनके मुख और दाढ़ें बड़ी-बड़ी होती हैं । वे व्याघ्रोंके समान भयानक प्रतीत होते हैं । वहाँकी भूमिपर जो आग बिछी होती है, उससे जब दोनों पैर जलने लगते हैं, तब वहाँ गये हुए पापी जीव 'हाय माता ! हाय पिता !' आदि कहते हुए अत्यन्त दुःखित होकर कराहने लगते हैं । उस समय तीव्र पिपासाके कारण उन्हें बड़ी पीड़ा होती है, फिर अपने सामने शीतल छायासे युक्त असिपत्रवनको देखकर वे प्राणी विश्रामकी इच्छासे वहाँ जाते हैं । उनके वहाँ पहुँचनेपर बड़े जोरकी हवा चलती है, जिससे उनके ऊपर तलवारके समान तीखे पत्ते गिरने लगते हैं । उनसे आहत होकर वे पृथ्वीपर पड़े हुए अङ्गारोंके ढेरमें गिर पड़ते हैं । वह आग अपनी लपटोंसे सर्वत्र व्याप्त हो सम्पूर्ण भूतलको चाटती हुई-सी जान पड़ती है । इसी समय अत्यन्त भयानक कुत्ते वहाँ तुरंत ही दौड़ते हुए आते हैं और रोते हुए पापियोंके सब अङ्गोंको टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं ।

अब इससे भी अत्यन्त भयंकर 'तप्तकुम्भ' नामक नरक है । वहाँ चारों ओर आगकी लपटोंसे घिरे हुए बहुत-से लोहेके घड़े मौजूद हैं, जो खूब तपे होते हैं । उनमेंसे किन्हींमें तो प्रज्वलित अग्निकी आँचसे खौलता हुआ तेल भरा रहता है और किन्हींमें तपाये हुए लोहेका चूर्ण होता है । यमराजके दूत पापी मनुष्योंको उनका मुँह नीचे करके उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं । वहाँ पड़ते ही उनके शरीर टूट-फूट जाते हैं । शरीरकी मज्जाका भाग गलकर पानी हो जाता है । कपाल और नेत्रोंकी हड्डियाँ चटचटकर फूटने लगती हैं । भयानक गृध्र उनके अङ्गोंको नोच-नोचकर टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं और फिर उन टुकड़ोंको उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं । वहाँ वे सभी टुकड़े सीझकर तेलमें मिल जाते हैं । मस्तक, शरीर, स्नायु, मांस, त्वचा और हड्डियाँ—सभी गल जाती हैं । तदनन्तर यमराजके दूत करछुलसे उलट-पुलटकर खौलते हुए तेलमें उन पापियोंको अच्छी तरह मथते हैं ।

पौंसलेपर पानी पीनेको जाती हुई गौओंको जो वहाँ जानेसे रोक देता है और वे प्यासी रह जाती हैं, इससे उसको भयंकर नरकमें जाना पड़ता है, जो भयानक कराहें निकलती रहनेके कारण घोर दुःखदायी होता है । उसमें लोहेकी-सी चोंचवाले पक्षी रहते हैं, जो पापियोंको चोंचसे नोचा करते हैं । वहाँ पापियोंके शरीरको कोल्हूमें पेरनेके लिये उनके मुखसे रक्तकी धारा बहने लगती है, जिससे रक्त-कीचड़ जमा रहता है । तलवारका और तप्तकुम्भ नरकोंमें उसे संतप्त किया जाता है ।

जो नीच मनुष्य काम और लोभके वशीभूत हो, दूषित दृष्टि एवं कलुषित चित्तसे परायी स्त्री और पराये धनपर आँखें गड़ाते हैं, उनकी दोनों आँखोंको ये वज्रतुल्य चोंचवाले पक्षी निकाल लेते हैं और पुनः-पुनः इनके नये नेत्र उत्पन्न हो जाते हैं। इन पापी मनुष्योंने जितने निमेषतक पापपूर्ण दृष्टिपात किया है, उतने ही हजार वर्षोंतक ये नेत्रकी पीड़ा भोगते हैं। जिन लोगोंने असत्-शास्त्रका उपदेश किया है तथा किसीको बुरी सलाह दी है, जिन्होंने शास्त्रका उलटा अर्थ लगाया है, मुँहसे झूठी बातें निकाली हैं तथा वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुकी निन्दा की है, उन्हींकी जिह्वाको ये वज्रतुल्य चोंचवाले भयंकर पक्षी उखाड़ते हैं और वह जिह्वा नयी-नयी उत्पन्न होती रहती है। जितने निमेषतक उनके द्वारा जिह्वाजनित पाप हुआ होता है, उतने वर्षोंतक उन्हें यह कष्ट भोगना पड़ता है। जो नराधम दो मित्रोंमें फूट डालते हैं; पिता-पुत्रमें, स्वजनोंमें, यजमान और पुरोहितमें, माता और पुत्रमें, सङ्गी-साथियोंमें तथा पति और पत्नीमें वैर करवा देते हैं, वे ही ये आरेसे चीरे जा रहे हैं। आप इनकी दुर्गति देखिये। जो दूसरोंको ताप देते, उनकी प्रसन्नतामें बाधा पहुँचाते, पंखे, हवादार स्थान, चन्दन और खसकी टट्टी आदिका अपहरण करते हैं तथा निर्दोष व्यक्तियोंको भी प्राणान्तक कष्ट पहुँचाते हैं, वे ही ये अधम पापी हैं, जो तपायी हुई बालूमें पड़कर कष्ट भोगते हैं। जो अपनी अनुचित बातोंसे साधु पुरुषोंके मर्मपर आघात पहुँचाता है, उसको ये पक्षी अत्यन्त पीड़ा देते हैं। इन्हें ऐसा करनेसे कोई रोक नहीं सकता। जो झूठी बातें कहकर और विपरीत धारणा बनाकर किसीकी चुगली खाते हैं, उनकी जिह्वाके इस प्रकार तेज किये हुए छूरोंसे दो टुकड़े कर दिये जाते हैं।

जिन्होंने उद्दण्डतावश माता, पिता तथा गुरुजनोंका अनादर किया है, वे ही यहाँ पीब, विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए गड्ढोंमें नीचे मुख करके डुबाये जा रहे हैं। जो लोग देवता, अतिथि, अन्यान्य प्राणी, भृत्यवर्ग, अभ्यागत, पितर, अग्नि तथा पक्षियोंको अन्नका भाग दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं, वे ही दुष्ट यहाँ पीब और गोंद चाटकर रहते हैं। उनका शरीर तो पहाड़के समान विशाल होता है, किंतु मुख सूईकी नोकके बराबर रहता है। जो लोग पङ्क्तिमें बिठाकर भोजनमें भेद करते हैं, उन्हें यहाँ विष्ठा खाकर रहना पड़ता है। जो लोग एक समुदायमें साथ-साथ आये हुए अर्थार्थी मनुष्यको निर्धन जानकर छोड़ देते और अकेले अपना अन्न भोजन करते हैं, वे ही यहाँ थूक और खखार भोजन करते हैं। जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक जूठे मुँह होकर भी सूर्य-चन्द्रमा और तारोंपर दृष्टिपात किया है, उनकी आँखोंमें आग रखकर यमराजके दूत उसे धौंकते हैं। गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण, ज्येष्ठ भ्राता, पिता, बहिन, कुटुम्बकी स्त्री, गुरु तथा बड़े-बूढ़ोंका जो जान-बूझकर पैरोंसे स्पर्श करते हैं, उनके दोनों पैर यहाँ आगमें तपायी हुई लोहेकी बेड़ियोंसे जकड़ दिये जाते हैं और उन्हें अङ्गारोंके ढेरमें खड़ा कर दिया जाता है। उसमें उनके पैरसे लेकर घुटनेतकका भाग जलता रहता है। जो नराधम अपने कानोंसे गुरु, देवता, द्विज और वेदोंकी निन्दा सुनते हैं और उसे सुनकर प्रसन्न होते हैं, उन पापियोंके कानोंमें ये यमराजके दूत आगमें तपायी हुई लोहेकी कीलें ठोंक देते हैं। जो लोग क्रोध और लोभके वशमें होकर पौंसले, देवमन्दिर, ब्राह्मणके घर तथा देवालयके सभाभवन तुड़वाकर नष्ट करा देते हैं, उनके यहाँ आनेपर ये अत्यन्त कठोर स्वभाववाले यमदूत इन तीखे शस्त्रोंसे शरीरकी खाल उधेड़ लेते हैं। उनके चीखने-चिल्लानेपर भी ये दया नहीं करते। जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण तथा सूर्यकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करते हैं, उनकी आँतोंको कौए गुदामार्गसे खींचते हैं। जो किसी एकको कन्या देकर फिर दूसरेके साथ उसका विवाह कर देता है, उसके शरीरमें बहुत-से घाव करके उसे खारे पानीकी नदीमें बहा दिया जाता है। जो मनुष्य दुर्भिक्ष अथवा संकटकालमें अपने पुत्र, भृत्य, पत्नी आदि तथा बन्धुवर्गको अकिंचन जानकर भी त्याग देता और केवल अपना पेट पालनेमें लग जाता है, वह भी जब इस लोकमें आता है तो यमराजके दूत भूख लगनेपर उसके मुखमें उसके ही शरीरका मांस नोचकर डाल देते हैं और वही उसे खाना पड़ता है। जो अपनी शरणमें आये हुए तथा अपनी ही दी हुई वृत्तिसे जीविका चलानेवाले मनुष्योंको लोभवश त्याग देता है, वह भी यमदूतोंद्वारा इसी प्रकार कोल्हूमें पेरे जानेके कारण यन्त्रणा भोगता है। जो मनुष्य अपने जीवनभरके किये हुए पुण्यको धनके लोभसे बेच डालते हैं, वे इन्हीं पापियोंकी तरह चक्कियोंमें पीसे जाते हैं। किसीकी धरोहर हड़प लेनेवाले लोगोंके सब अङ्ग रस्सियोंसे बाँध दिये जाते हैं और उन्हें दिन-रात कीड़े, बिच्छू तथा सर्प काटते-खाते रहते हैं।

इसमें लोहेके बड़े-बड़े काँटोंसे भरा हुआ सेमरका विशाल वृक्ष है। इसपर चढ़ाये हुए पापियोंके सब अङ्ग विदीर्ण हो जाते हैं और अधिक मात्रामें गिरते हुए खूनसे वे लथपथ रहते हैं। नरश्रेष्ठ! परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करनेवाले लोग यमराजके दूतोंद्वारा घरियामें रखकर गलाये जाते हैं। जो उद्दण्ड मनुष्य गुरुको नीचे बिठाकर और स्वयं ऊँचे आसनपर बैठकर अध्ययन करता अथवा शिल्पकलाकी शिक्षा ग्रहण करता है, वह इसी प्रकार अपने मस्तकपर शिलाका भारी भार ढोता हुआ क्लेश पाता है। यमलोकके मार्गमें वह अत्यन्त पीड़ित एवं भूखसे दुर्बल रहता है और उसका मस्तक दिन-रात बोझ ढोनेकी पीड़ासे व्यथित होता रहता है। जिन्होंने जलमें मूत्र, थूक और विष्ठाका त्याग किया है, वे ही लोग इस समय थूक, विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए दुर्गन्धयुक्त नरकमें पड़े हैं। ये लोग जो भूखसे व्याकुल होनेपर एक-दूसरेका मांस खा रहे हैं, इन्होंने पूर्वकालमें अतिथियोंको भोजन दिये बिना ही भोजन किया है। जिन लोगोंने अग्निहोत्री होकर भी वेदों और वैदिक अग्नियोंका परित्याग किया है, वे ही ये पर्वतोंकी चोटीसे बारंबार नीचे गिराये जाते हैं। पतितोंका दिया हुआ दान लेने, उनका यज्ञ कराने तथा प्रतिदिन उनकी सेवामें रहनेसे मनुष्य पत्थरके भीतर कीड़ा होकर सदा निवास करता है। जो कुटुम्बके लोगों, मित्रों तथा अतिथिके देखते-देखते अकेले ही मिठाई उड़ाता है, उसे यहाँ जलते हुए अङ्गारे चबाने पड़ते हैं। पीठ-पीछे बुराई करनेवाले पापी लोगोंकी पीठका मांस भयंकर भेड़िये प्रतिदिन खाया करते हैं।

उपकार करनेवाले लोगोंके साथ कृतघ्नता करनेवाले भूखसे व्याकुल तथा अन्धे, बहरे और गूँगे होकर भटकते हैं। मित्रोंकी बुराई करनेवाले तप्तकुम्भ नरकमें गिराये जाते हैं। इसके बाद चक्कियोंमें पीसे जाते, फिर तपायी हुई बालूमें भूने जाते हैं। उसके बाद कोल्हूमें पेरे जाते हैं। तत्पश्चात् असिपत्रवनमें यातना दी जाती है। फिर आरेसे वह चीरा जाता है। तदनन्तर कालसूत्रसे काटा जाता है। इसके बाद और भी बहुत सी यातनाएँ इसे भोगनी पड़ती हैं। सुवर्णकी चोरी करनेवाले, ब्रह्महत्यारे, शराबी तथा गुरुपत्नीगामी—ये चारों प्रकारके महापापी नीचे और ऊपर धधकती हुई आगके बीचमें झोंककर सब ओरसे जलाये जाते हैं। इस अवस्थामें उन्हें कई हजार वर्षोंतक रहना पड़ता है। तदनन्तर वे मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होते तथा कोढ़ एवं यक्ष्मा आदि रोगोंसे युक्त रहते हैं। वे मरनेके बाद फिर नरकमें जाते हैं और पुनः उसी प्रकार नरकसे लौटनेपर रोगयुक्त जन्म धारण करते हैं। इस प्रकार कल्पके अन्ततक उनके आवागमनका यह चक्र चलता रहता है। गौकी हत्या करनेवाला मनुष्य तीन जन्मोंतक नीच-से-नीच नरकोंमें पड़ता है। अन्य सभी उपपातकोंका फल भी ऐसा ही निश्चय किया गया है। नरकसे निकले हुए पापी जिन जिन पापोंके कारण जिन-जिन योनियोंमें जन्म लेते हैं, उनका कुछ विवरण इस प्रकार है—

पतितसे दान लेनेपर ब्राह्मण गदहेकी योनिमें जाता है। पतितका यज्ञ करानेवाला द्विज नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है। अपने गुरुके साथ छल करनेपर उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है तथा गुरुकी पत्नी और उनके धनको मन-ही-मन लेनेकी इच्छा होनेपर भी उसे निःसंदेह यही दण्ड मिलता है। माता-पिताका अपमान करनेवाला मनुष्य उनके प्रति कटुवचन कहनेसे मैनाकी योनिमें जन्म लेता है। भाईकी स्त्रीका अपमान करनेवाला कबूतर होता है और उसे पीड़ा देनेवाला मनुष्य कछुएकी योनिमें जन्म लेता है। जो मालिकका अन्न तो खाता है, किंतु उसका अभीष्ट साधन नहीं करता, वह मोहाच्छन्न मनुष्य मरनेके बाद वानर होता है। धरोहर हड़पनेवाला मनुष्य नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है और दूसरोंका दोष देखनेवाला पुरुष नरकसे निकलकर राक्षस होता है। विश्वासघाती मनुष्यको मछलीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य धान, जौ, तिल, उड़द, कुलथी, सरसों, चना, मटर, कलमी धान, मूँग, गेहूँ, तीसी तथा दूसरे-दूसरे अनाजोंकी चोरी करता है, वह नेवलेके समान बड़े मुँहवाला चूहा होता है। परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य भयंकर भेड़िया होता है। उसके बाद क्रमशः कुत्ता, सियार, बगुला, गिद्ध, साँप, सूअर तथा कौएकी योनिमें जन्म लेता है।

यज्ञ, दान और विवाहमें विघ्न डालनेवाला तथा कन्याका दुबारा दान करनेवाला पुरुष कीड़ा होता है। जो देवता, पितर और ब्राह्मणोंको दिये बिना ही अन्न भोजन करता है, वह नरकसे निकलनेपर कौआ होता है। जो पिताके समान पूजनीय बड़े भाईका अपमान करता है, वह नरकसे निकलनेपर क्रौञ्च पक्षीकी योनिमें जन्म लेता है। ब्राह्मणी स्त्रीके साथ सहवास करनेवाला शूद्र भी कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। यदि उससे ब्राह्मणीके गर्भसे संतान उत्पन्न कर

दी हो तो वह काठके भीतर रहनेवाला कीड़ा होता है। उसके बाद क्रमशः सूअर, कृमि, विष्ठाका कीड़ा और चण्डाल होता है। जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ एवं कृतघ्न होता है, वह नरकसे निकलनेपर कृमि, कीट, पतंग, बिच्छू, मछली, कौआ, कछुआ और चाण्डाल होता है। शस्त्रहीन पुरुषकी हत्या करनेवाला मनुष्य गदहा होता है। स्त्री और बालकोंकी हत्या करनेवालेका कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। भोजनकी चोरी करनेमे मक्खीकी योनिमें जाना पड़ता है। साधारण अन्न चुरानेवाला मनुष्य नरकसे छूटनेपर बिल्लीकी योनिमें जन्म लेता है। तिलचूर्णमिश्रित अन्नका अपहरण करनेसे मनुष्यको चूहेकी योनिमें जाना पड़ता है। घी चुरानेवाला नेवला होता है। नमककी चोरी करनेपर जलकागकी और दही चुरानेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। दूधकी चोरी करनेसे बगुलेकी योनि मिलती है। जो तेल चुराता है, वह तेल पीनेवाला कीड़ा होता है। मधु चुरानेवाला मनुष्य डाँस और पूआ चुरानेवाला चींटी होता है। हविष्यान्नकी चोरी करनेवाला बिसतुइया होता है।

लोहा चुरानेवाला पापात्मा कौआ होता है। काँसेका अपहरण करनेसे हारीत (हरियल) पक्षीकी योनि मिलती है और चाँदीका बर्तन चुरानेसे कबूतर होना पड़ता है। सुवर्णका पात्र चुरानेवाला मनुष्य कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। रेशमी वस्त्रकी चोरी करनेपर चकवेकी योनि मिलती है तथा रेशमका कीड़ा भी होना पड़ता है। हरिणके रोएँसे बना हुआ वस्त्र, महीन वस्त्र, भेड़ और बकरीके रोएँसे बना हुआ वस्त्र तथा पाटम्बर चुरानेपर तोतेकी योनि मिलती है। रूईका बना हुआ वस्त्र चुरानेसे क्रौंच और अग्निके अपहरणसे बगुला अथवा गदहा होना पड़ता है। अङ्गराग और पत्तियोंका साग चुरानेवाला मोर होता है। लाल वस्त्रकी चोरी करनेवालेको चकवेकी योनि मिलती है। उत्तम सुगन्धयुक्त पदार्थोंकी चोरी करनेपर छछूंदर और वस्त्रका अपहरण करनेपर खरगोशकी योनिमें जाना पड़ता है। फल चुरानेवाला नपुंसक और काठकी चोरी करनेवाला घुन होता है। फूल चुरानेवाला दरिद्र और वाहनका अपहरण करनेवाला पङ्गु होता है। साग चुरानेवाला हारीत और पानीकी चोरी करनेवाला पपीहा होता है। जो भूमिका अपहरण करता है, वह अत्यन्त भयंकर रौरव आदि नरकोंमें जाकर वहाँसे लौटनेके बाद क्रमशः तृण, झाड़ी, लता, बेल और बाँसका वृक्ष होता है। फिर थोड़ा-सा पाप शेष रहनेपर वह मनुष्यकी योनिमें आता है। जो बैलके अण्डकोषका छेदन करता है, वह नपुंसक होता है और इसी रूपमें इक्कीस जन्म बितानेके पश्चात् वह क्रमशः कृमि, कीट, पतङ्ग, पक्षी, जलचर जीव तथा मृग होता है। इसके बाद बैलका शरीर धारण करनेके बाद चाण्डाल और डोम आदि घृणित योनियोंमें जन्म लेता है। मनुष्य-योनिमें वह पङ्गु, अन्धा, बहरा, कोढ़ी, राजयक्ष्मासे पीड़ित तथा मुख, नेत्र एवं गुदाके रोगोंसे ग्रस्त रहता है। इतना ही नहीं, उसे मिरगीका भी रोग होता है तथा वह शूद्रकी योनिमें भी जन्म लेता है। गाय और सोनेकी चोरी करनेवालोंकी दुर्गतिका भी यही क्रम है। गुरुको दक्षिणा न देकर उनकी विद्याका अपहरण करनेवाले छात्र भी इसी गतिको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य किसी दूसरेकी स्त्रीको लाकर दूसरेको देता है, वह मूर्ख नरककी यातनाओंसे छूटनेपर नपुंसक होता है। जो मनुष्य अग्निको प्रज्वलित किये बिना ही उसमें हवन करता है, वह अजीर्णताके रोगसे पीड़ित एवं मन्दाग्निकी बीमारीसे युक्त होता है। (मार्कण्डेयपुराणके आधारपर)

रूमीकी आकाङ्क्षा

"मैं (पाषाणादि) स्थावरदेहमें मरकर उद्भिज्ज (पेड़-पौधा) बना; उद्भिज्ज देहमें मरकर पशुके रूपमें प्रकट हुआ; पशुदेहमें मरकर मनुष्य बना। तब फिर मैं किससे डरूँगा? मरकर मैंने कब नीची गति प्राप्त की? इसके बाद मैं मरकर देव-देह प्राप्त करूँगा। वहाँसे भी आगे बढ़नेकी आशा करूँगा। तदनन्तर 'उसकी मुख-शोभा'के अतिरिक्त अन्य सब चीजें नष्ट हो जायँगी। मैं देवताओंसे भी आगे बढ़ जाऊँगा। वाणी उस स्थितिका वर्णन नहीं कर सकती। मन उसका चिन्तन नहीं कर सकता।

(जलालुद्दीन रूमी—'मसनवी')

भगवान् कालस्वरूप

(लेखक—श्रीपरशुरामजी पाण्डेय बी० ए०)

भगवान् समस्त प्राणियोंके नियामक हैं। उनकी लीला एवं उनके संकल्पोंका रहस्य जीव किसी साधनसे नहीं जान सकता। भगवत्कृपासे ही जीव उनके सम्बन्धमें यत्किञ्चित् जान पाता है। भगवान् अप्रमेय हैं। कालोंके भी काल हैं। उनकी प्रत्येक लीला अलौकिक होती है। भगवान् मन-वाणीके विषय नहीं हैं। फिर भी यथाशक्ति कवियों, भक्तों एवं प्रेमियोंने उनका गुणानुवाद किया है। वेदोंने 'नेति-नेति' कहकर भगवान्‌के गुणों एवं लीलाओंका वर्णन किया है। भगवान् ब्रह्मारूपमें संसारकी सृष्टि करते हैं, विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं रुद्ररूपसे संहार करते हैं। यहाँपर उनके इसी संहारकारी रूपका—कालस्वरूपका किंचित् दिग्दर्शन कराया जाता है।

भगवान्‌में सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य आदि अनेकानेक गुण हैं।

> ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
> ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥
>
> (विष्णुपुराण ६ । ५ । ७४)

सभी गुणोंके निवास-स्थान भगवान् ही हैं। भगवान्‌ने अपनी लीला-हेतु ही सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की है। उनके लिये सृष्टि, पालन एवं संहार—तीनों ही प्रकारकी लीलाएँ समान हैं। जिस प्रकार बालक मिट्टीका घरौंदा बनाते हैं, उससे खेलते हैं और अन्तमें उसे नष्ट कर देते हैं; उन्हें तीनों ही क्रियाओंमें बराबर आनन्द आता है। उसी प्रकार ये भगवान्‌की तीनों लीलाएँ हैं। भगवान् मङ्गलमय हैं। उनकी हरएक लीला मङ्गलमयी है। अतएव उनकी संहारकारी लीलामें भी मङ्गल सुगन्धसे भरा हुआ है। (वास्तवमें ये लीलामय ही लीला भी बनते हैं।)

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवान्‌ने अपने प्रिय सखा अर्जुनको अपने विराट्स्वरूपका दर्शन कराया था, उसमें भगवान्‌ने अपने कालस्वरूपका दिग्दर्शन कराया—

> कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
> लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
> ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
> येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥
>
> (गीता ११ । ३२)

श्रीभगवान् बोले—'मैं लोकोंका नाश करनेवाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिये जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करनेपर भी इन सबका नाश हो जायगा।'

दसवें अध्यायमें भगवान्‌ने अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हुए बतलाया कि 'गणना करनेवालोंमें मैं काल हूँ, अक्षरोंमें अकार, समासोंमें द्वन्द्व तथा अक्षयकाल अर्थात् कालका भी महाकाल मैं ही हूँ—'अहमेवाक्षयः कालो'।'

भगवान् पृथ्वीका भार कालस्वरूप होकर ही उतारा करते हैं। भगवान् सत्य-संकल्प हैं। जीवके संकल्पकी सफलता भगवदिच्छापर है। भगवान् लोकमें अपनी इच्छाके विपरीत भी कार्य करते देखे जाते हैं; परंतु उन्हें उसमें सफलता नहीं मिलती। उदाहरणार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण लोकसंग्रहके निमित्त पाण्डवोंके दूत बनकर हस्तिनापुर गये। दुर्योधनादि कौरवोंको समझानेका प्रयास किया, परंतु दुर्योधन संधि करनेको तैयार नहीं हुआ। त्रिभुवनमें कौन ऐसा कार्य है, जिसे भगवान् करना चाहें और उसमें सफलता न मिले। परंतु भगवान्‌की इच्छा इससे विपरीत थी। भगवान् युद्धद्वारा भू-भार उतारना चाहते थे। हुआ भी ऐसा ही। १८ अक्षौहिणी सेनामें पाण्डव पक्षमें—भगवान् श्यामसुन्दर, पाँचों पाण्डव एवं सात्यकि तथा कौरव पक्षमें—कृपाचार्य, कृतवर्मा एवं अश्वत्थामाके अतिरिक्त सभी काल भगवान्‌के मुखमें चले गये। भगवान्‌के कालस्वरूपका दर्शन कर अर्जुनके सदृश भगवद्भक्त भी सशङ्कित होकर धैर्य एवं शान्तिको खो देते हैं तो फिर दुर्बुद्धि जिन्हें तो कहना ही क्या है।

महाभारत-युद्धके पश्चात् पृथ्वीका भार हल्का हो गया था और सभी लोग यही सोचते भी थे; परंतु भगवान्‌ने सोचा कि 'यद्यपि लोगोंकी दृष्टिमें भू-भार उतर गया है, लेकिन मेरे विचारसे अभी पूर्णरूपसे पृथ्वीका भार हल्का नहीं हुआ है; क्योंकि अभी ये यदुवंशी बचे हुए हैं। ये मेरे आश्रित हैं, अतः इनको कोई पराजित भी नहीं कर सकता। अब मुझे ही किसी प्रकारसे इन्हें नष्ट करना है।'

स्वामीका अन्न खाकर उसका काम न करनेवालोंकी गति [पृष्ठ ६६२]

पर-स्त्रीगामियोंकी गति [पृष्ठ ६६२]

कृतघ्न आदिकी गति [पृष्ठ ६६१]

भोजनादिकी चोरी करनेवालोंकी गति [पृष्ठ ६६१]

ऐसा विचारकर भगवान्ने ब्राह्मणोंके शापके बहाने यदुवंशियोंमें ही फूट डालकर उन्हें कालके हवाले कर दिया। भगवान्ने श्रीमद्भागवतमें कहा है—

अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम्।
गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः॥
(११। १६। १०)

'गतिशील पदार्थोंमें मैं गति हूँ। अपने अधीन करनेवालोंमें मैं काल हूँ। गुणोंमें मैं उनकी मूलस्वरूपा साम्यावस्था हूँ और जितने भी गुणवान् पदार्थ हैं, उनमें उनका स्वाभाविक गुण हूँ।'

भगवान् कालके भी आधार हैं—महाकाल। भगवान्के समान तो कोई है ही नहीं, फिर उनसे बढ़कर कौन हो सकता है? भगवान् स्वयं ही प्रकृति, पुरुष और दोनोंके संयोग-वियोगके हेतु काल हैं। रामचरितमानसमें माल्यवन्त राक्षसराज रावणको सचेत करते हुए भगवान्के काल-स्वरूपका बोध कराता है—

कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध॥
(लंकाकाण्ड ४८ ख)

इसी प्रकार भगवान्के अन्य स्वरूपोंके साथ-साथ भगवान्के कालस्वरूपका वर्णन सभी शास्त्रों, पुराणों, महाभारत एवं रामचरितमानसके अनेकानेक स्थलोंपर आता है। यदि मनुष्य भगवान्के कालस्वरूपका स्मरण करता रहे तो वह बहुत-सी बुराइयोंसे बच सकता है तथा उसका निश्चित ही कल्याण हो सकता है। कंसने भगवान्के इसी स्वरूपका स्मरण करते हुए भगवत्प्राप्ति की। वह चौबीस घंटे—उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते, काम करते, विचार करते समय उन्हीं भगवान्का चिन्तन करता था। उसने भगवान्का स्मरण प्रेमसे नहीं, वैरसे ही किया, परंतु उसका कल्याण हो गया। नारायणभक्तने कहा है—

दो बातन कौं भूल मत, जो चाहै कल्यान।
'नारायन' एक मौत को, दूजे श्रीभगवान॥

सुकरात और परलोक

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

'मुझे राज्यके विशेष सम्मानित व्यक्तियों और कतिपय हितचिन्तकोंकी तरह जन-कोषसे खर्च देकर नगर-भवनमें भोजन करनेका अधिकार प्राप्त होना चाहिये।'

प्राण-दण्ड सुन लेनेके बाद उसके स्थानपर दूसरे दण्डका प्रस्ताव रखनेकी आज्ञा मिलनेपर सुकरातने इतनी तिक्त बात कह दी। इसका कारण यही था कि उन्हें अपने शरीरका तनिक भी मोह नहीं था। वे अच्छी प्रकार समझते थे और उनका दृढ़ विश्वास था कि आत्मा अनश्वर एवं अमर है। भौतिक देहके नष्ट हो जानेपर उसकी स्थितिमें कोई अन्तर नहीं होता। वे प्रायः कहा करते कि 'तुम्हें इस बातसे लज्जा नहीं आती कि तुम केवल धन, यश और सम्मानका अर्जन करनेमें ही व्यस्त हो तथा ज्ञान, सत्य और आत्माकी पूर्णताके लिये प्रयत्नशील होनेकी तुम्हें तनिक भी चिन्ता नहीं है!'

न्यायालयमें अपने भाषणके अन्तमें सुकरातने अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें जन-समाजसे प्रार्थना की कि 'जब मेरे पुत्र सयाने हो जायँ तो उन्हें भी दण्ड देना तथा उन्हें भी इसी प्रकार हैरान करना जैसा कि मैं दूसरोंको करता रहा हूँ, जब कि आप उन्हें सम्पत्ति-संग्रहमें संलग्न पायें तथा विशुद्ध आचरणसे बढ़कर अन्य किसी प्रकारकी चेष्टा करते देखें। इतना ही नहीं, यदि वे यह समझ बैठें कि वे अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं, जब वास्तवमें वे इस योग्य न हों तो अवश्य ही आप लोग उन्हें प्रताड़ित करें जैसा कि मैं आप लोगोंको करता आया हूँ। आप उन्हें बेशक इस बातका उलाहना दें कि उन्हें कर्तव्यको पहचानना चाहिये और अपनेको बड़ा नहीं समझना चाहिये, वास्तवमें वे निरे अयोग्य ही हों।'

सुकरात दृढ़तासे कहते कि ''हर व्यक्तिकी विशेषताके पीछे छिपे 'अविशेष' को देखनेका प्रयत्न किया जाय तो मानव-जीवनके शाश्वत सत्यको ढूँढ़ा जा सकता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे राग-द्वेष, वेश-भूषा, आचार-विचारमें कितना ही भिन्न हो, सब व्यक्तियोंमें एक ही समान तत्त्व विद्यमान है, जो कि उनके विशेषणोंके आडम्बरोंसे आवृत रहता है, किंतु उसे ढूँढ़ा जा सकता है। यह 'समानता तत्त्व' मानवका आत्मा है। इसे जानना ही मानव-जीवनके शाश्वत सत्यको जान लेना है।''

स्वामीका अन्न खाकर उसका काम न करनेवालोंकी गति [पृष्ठ ६६२]

पर-स्त्रीगामियोंकी गति [पृष्ठ ६६२]

कृतघ्न आदिकी गति [पृष्ठ ६६३]

भोजनादिकी चोरी करनेवालोंकी गति [पृष्ठ ६६१]

होकर जाना नहीं पड़ता ? बड़ेसे छोटे और छोटेसे बड़े होनेमें वस्तुको घटना और बढ़ना पड़ता है और हम कहते हैं कि वह घटती या बढ़ती है । क्या हम यह नहीं कहते ?

सीविस-हाँ, यह ठीक है ।

सुकरात-और इसी तरह फिर विभाग और जोड़ है, सर्दी और गरमी है । असलमें हम इस नियमको इतने लंबे-चौड़े शब्दोंमें नहीं कहते, तथापि क्या यह नियम विश्वव्यापी नहीं है कि विरुद्ध विरुद्धहीसे उत्पन्न होते हैं और एक दशासे दूसरी दशामें जाते समय उसे उत्पन्न होनेकी अवस्थामें होकर जाना होता है ?

सीविस-हाँ, ऐसा ही होता है ।

सुकरात-अच्छा, तो जिस तरह जाग्रत्-अवस्थाकी उलटी अवस्था निद्रावस्था है, क्या वैसे ही जीवनकी भी कोई उलटी अवस्था है ?

सीविस-अवश्य है ।

सुकरात-वह क्या है ?

सीविस-मृत्यु ।

सुकरात-तब यदि जीवन और मृत्यु दोनों एक दूसरेके उलटे हैं, तो वे एक दूसरेसे उत्पन्न होते हैं । ये अवस्था दो (भिन्न अवस्था) हैं और इन दोनों अवस्थाओंके बीचमें दो उत्पन्न होनेकी अवस्थाएँ हैं । ऐसा है कि नहीं ?

सीविस-निस्संदेह ।

सुकरात-अब मैं अभी कहे हुए दो विरुद्ध जोड़ोंमेंसे एक विरुद्ध जोड़ और उसके उत्पन्न होनेकी अवस्थाका वर्णन करूँगा और तुम मुझे दूसरे जोड़को समझाना । नींदका उलटा है जागना । नींदसे ही जाग्रत्-अवस्था उत्पन्न होती है । उसके उत्पन्न होनेकी रीति इस प्रकार है कि पहले सोना, फिर जागना । अब समझ गये ?

सीविस-अच्छी तरहसे ।

सुकरात-अब तुम हमसे जीवन और मृत्युके विषयमें कहो । जीवन मृत्युका उलटा है कि नहीं ?

सीविस-हाँ । है ।

सुकरात-तो एक-दूसरेसे उत्पन्न होते हैं ?

सीविस-हाँ ।

सुकरात-तो जीवितसे क्या उत्पन्न होता है ?

सीविस-मरा हुआ ।

सुकरात-और मरे हुएसे क्या उत्पन्न होता है ?

सीविस-हमको अवश्य यह कहना होगा कि मरे हुएसे जीवित उत्पन्न होता है ।

सुकरात-तो सीविस ! जीवित वस्तु और जीवित मनुष्य मरी हुई वस्तु और मरे हुए मनुष्योंसे उत्पन्न होते हैं ?

सीविस-यह साफ जाहिर है ।

सुकरात-तो हमारा आत्मा दूसरे लोकमें (मृत्युके बाद) वर्तमान रहता है ?

सीविस-मालूम तो ऐसा ही पड़ता है ।

सुकरात-अच्छा, तो इन उत्पन्न होनेवाली अवस्थाओंमेंसे मैं समझता हूँ कि एक अर्थात् मृत्यु अवश्यम्भावी है ।

सीविस-अवश्य ।

सुकरात-तो अब हमें किस पथका अनुसरण करना चाहिये ? क्या हम (इस अवश्यम्भावी अवस्था) मृत्युके विरुद्ध नियमानुसार कोई उलटी अवस्था नियत नहीं कर सकते ? अथवा प्रकृति इस स्थानपर अपूर्ण है ? क्या मरनेका कुछ उलटा नहीं है ?

सीविस-अवश्य कुछ होना चाहिये ।

सुकरात-और वह क्या होना चाहिये ?

सीविस-पुनर्जीवन ।

सुकरात-और यदि पुनर्जीवन कोई वस्तु है तो यह मृत्युसे जीवनका उत्पन्न होना है ?

सीविस-अवश्य ।

इसी प्रकार अनेक प्रमाणों एवं अकाट्य तर्कोंसे वे सिद्ध कर देते हैं कि 'आत्मा अमर और अविनाशी है और अवश्य ही हमारे आत्मा परलोकमें विद्यमान रहेंगे ।'

इस प्रकार महान् दार्शनिक सुकरात स्वीकार करते हैं और जगत्को बताते हैं कि 'मरे हुए फिरसे जीवित होते हैं और मरे हुओंके आत्माका अस्तित्व नष्ट नहीं हो जाता । पुण्यात्मा (सज्जन) मनुष्यका आत्मा इस स्थितिकालमें सुखसे रहता है और पापोंका आत्मा दुःख भोगता है ।'

सुकरात कहते हैं कि 'परलोकमें सुखसे, शान्तिपूर्वक रहनेके लिये सच्चा दार्शनिक सदा संयमसे रहता है और शारीरिक सुखोंसे दूर भागता है और कभी भी अपनेसे

सुकरात प्रायः अपने मिलनेवालों और नगर-निवासियोंसे बार-बार आग्रह करते कि उन्हें आत्मज्ञानके लिये सम्पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये । उन्होंने स्वयं कहा है—'मैं तुममेसे हर एकके पास जाकर यही अनुरोध करता हूँ कि पहले अपने आत्माको उन्नत और पवित्र करो; फिर संसारी बातों, धन आदिपर ध्यान दो ।'

वे आगे और बल देकर कहते कि 'तुम्हें अपने बारेमें तबतक चिन्ता नहीं करनी चाहिये, जबतक कि तुम अपने आत्माकी चिन्तासे निवृत्त न हो जाओ और जबतक कि अपनेको तुम भरसक बुद्धिमान् और परिपूर्ण न बना लो ।'

ज्ञान-प्राप्त करनेके लिये मृत्युसे नहीं डरना चाहिये। सुकरात कहा करते—'जो व्यक्ति मरनेसे डरता है, वह ज्ञान-का प्रेमी नहीं है, किंतु अपने शरीरका प्रेमी है। वह कदाचित् धन या नामका या दोनोंका ही प्रेमी है ।'

× × ×

'मैं समझता हूँ कि शरीरके साथ अत्यन्ताधिक रहनेसे और उसके लिये अधिक चिन्ता करनेसे उसका स्वभाव शारीरिक हो जाता है । वह उसमें बिंध जाता है ।'

मृत्यु डरनेकी वस्तु नहीं, वह तो थके यात्रीको विश्राम देनेके लिये आती है । वह शान्ति एवं सुख देनेवाली है । सुकरात कहते हैं—'जब हम मृत्युका भय करते हैं, तब हम अपनेको उससे डरनेके लिये बुद्धिमान् समझते हैं; किंतु वास्तवमें हम मृत्युके बारेमें कुछ नहीं जानते; क्योंकि मनुष्यके लिये सबसे भलाई मृत्यु ही है । किंतु वे उससे डरते हैं और यह समझते हैं कि मानो मृत्यु ही सबसे बड़ी विपत्ति है और यह समझना कि मृत्यु भयंकर विपत्ति है, क्या लज्जाजनक मूर्खतासे कम है ?'

सुकरातकी तर्कबुद्धि अत्यन्त विलक्षण थी । संसारमें जन्म लेनेवाले प्राणीकी मृत्यु निश्चित है और मृत्युके अनन्तर कालान्तरमें पुनर्जीवन प्राप्त होता है । इस विषयको कारागारमें उन्होंने अपने प्रिय शिष्य सीबिसको प्रमाणोंद्वारा बताया था । उन्हींके शब्दोंमें—

सुकरात—आत्मा मृत्युके बाद दूसरे लोकमें रहता है या नहीं, इस प्रश्नपर हमें इस भाँति विचार करना चाहिये । यह एक पुराना विश्वास है कि मृत्युके बाद आत्मा दूसरे लोकमें रहता है और लौटकर मरे हुए शरीरसे वह फिर उत्पन्न होगा। किंतु यदि यह सत्य हो कि मरे हुएसे जीवित पैदा होते हैं तो हमारा आत्मा मरनेके बाद अवश्य दूसरे लोकमें रहता है, नहीं तो वह फिर उत्पन्न न होता । यदि हम यह प्रमाणित कर सकें कि मरे हुएसे जीवित उत्पन्न होता है तो हमारा कथन प्रमाणित हो जायगा; किंतु यदि हम ऐसा न कर सकेंगे तो हम किसी दूसरे तर्कका आश्रय ग्रहण करेंगे ।

सीबिस—यह ठीक है ।

सुकरात—इस बातको हल करनेकी सबसे सरल रीति यह है कि हम इस बातको देखें कि केवल मनुष्य ही नहीं, किंतु सारे जीव और वृक्षके ऊपर जो कि उत्पन्न होनेवाली वस्तु हैं, यह सिद्धान्त लागू है या नहीं ? क्या वह वस्तु, जिसकी विपरीत (विरुद्ध) भी कोई वस्तु है, अपनी विपरीत वस्तुसे उत्पन्न होती है या नहीं ? विरुद्ध या विपरीत कहनेसे मेरा मतलब ऐसी चीजोंसे है—जैसे माननीय और नीच, न्यायी और अन्यायी आदि । अब हमें यह देखना चाहिये कि क्या यह आवश्यक है कि ऐसी वस्तु अपनी वस्तुहीसे उत्पन्न हो ? उदाहरणके लिये जो वस्तु बड़ी हो जाती है, वह पहले अवश्य ही छोटी रहती है और पीछे बड़ी होती है ।

सीबिस—हाँ ।

सुकरात—और यदि कोई वस्तु छोटी हो जाती है तो पहले वह बड़ी रहती है और तब छोटी होती है ।

सीबिस—हाँ, यह ठीक है ।

सुकरात—और फिर जो अधिक कमजोर होता है, वह पहले अधिक शक्तिशाली होता है और जो अधिक तेज हो जाता है, वह अवश्य ही पहले धीमा होगा ।

सीबिस—निस्संदेह ।

सुकरात—फिर बुराई भलाईसे उत्पन्न होती है और अधिक न्याय अधिक अन्यायसे उत्पन्न होता है ।

सीबिस—ठीक है ।

सुकरात—तो यह स्पष्ट है कि सब वस्तु अपने विरुद्धसे उत्पन्न होती है ।

सीबिस—बहुत ठीक ।

सुकरात—और प्रत्येक विरुद्ध वस्तु, जब एक दशासे दूसरी दशामें पहुँचती है और फिर उस दशासे अपनी पहली दशामें पहुँचती है, तब क्या उसे दो अवस्थाओंसे

होकर जाना नहीं पड़ता ? बड़ेसे छोटे और छोटेसे बड़े होनेमें वस्तुको घटना और बढ़ना पड़ता है और हम कहते हैं कि यह घटती या बढ़ती है। क्या हम यह नहीं कहते ?

सीबिस-हाँ, यह ठीक है।

सुकरात-और इसी तरह फिर विभाग और जोड़ है, सर्दी और गरमी है। असलमें हम इस नियमको इतने लंबे-चौड़े शब्दोंमें नहीं कहते, तथापि क्या यह नियम विश्वव्यापी नहीं है कि विरुद्ध विरुद्धहीसे उत्पन्न होते हैं और एक दशासे दूसरी दशामें जाते समय उसे उत्पन्न होनेकी अवस्थामें होकर जाना होता है ?

सीबिस-हाँ, ऐसा ही होता है।

सुकरात-अच्छा, तो जिस तरह जाग्रत्-अवस्थाकी उलटी अवस्था निद्रावस्था है, क्या वैसे ही जीवनकी भी कोई उलटी अवस्था है ?

सीबिस-अवश्य है।

सुकरात-वह क्या है ?

सीबिस-मृत्यु।

सुकरात-तब यदि जीवन और मृत्यु दोनों एक दूसरेके उलटे हैं, तो ये एक दूसरेसे उत्पन्न होते हैं। ये अवस्था दो (भिन्न अवस्था) हैं और इन दोनों अवस्थाओंके बीचमें दो उत्पन्न होनेकी अवस्थाएँ हैं। ऐसा है कि नहीं ?

सीबिस-निस्संदेह।

सुकरात-अब मैं अभी कहे हुए दो विरुद्ध जोड़ोंमेंसे एक विरुद्ध जोड़ और उसके उत्पन्न होनेकी अवस्थाका वर्णन करूँगा और तुम मुझे दूसरे जोड़को समझाना। नींदका उलटा है जागना। नींदसे ही जाग्रत्-अवस्था उत्पन्न होती है। उसके उत्पन्न होनेकी रीति इस प्रकार है कि पहले सोना, फिर जागना। अब समझ गये ?

सीबिस-अच्छी तरहसे।

सुकरात-अब तुम हमसे जीवन और मृत्युके विषयमें कहो। जीवन मृत्युका उलटा है कि नहीं ?

सीबिस-हाँ। है।

सुकरात-तो एक-दूसरेसे उत्पन्न होते हैं ?

सीबिस-हाँ।

सुकरात-तो जीवितसे क्या उत्पन्न होता है ?

सीबिस-मरा हुआ।

सुकरात-और मरे हुएसे क्या उत्पन्न होता है ?

सीबिस-हमको अवश्य यह कहना होगा कि मरे हुएसे जीवित उत्पन्न होता है।

सुकरात-तो सीबिस ! जीवित वस्तु और जीवित मनुष्य मरी हुई वस्तु और मरे हुए मनुष्योंसे उत्पन्न होते हैं ?

सीबिस-यह साफ जाहिर है।

सुकरात-तो हमारा आत्मा दूसरे लोकमें (मृत्युके बाद) वर्तमान रहता है ?

सीबिस-मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।

सुकरात-अच्छा, तो इन उत्पन्न होनेवाली अवस्थाओंमेंसे मैं समझता हूँ कि एक अर्थात् मृत्यु अवश्यम्भावी है।

सीबिस-अवश्य।

सुकरात-तो अब हमें किस पथका अनुसरण करना चाहिये ? क्या हम (इस अवश्यम्भावी अवस्था) मृत्युके विरुद्ध नियमानुसार कोई उलटी अवस्था नियत नहीं कर सकते ? अथवा प्रकृति इस स्थानपर अपूर्ण है ? क्या मरनेका कुछ उलटा नहीं है ?

सीबिस-अवश्य कुछ होना चाहिये !

सुकरात-और वह क्या होना चाहिये ?

सीबिस-पुनर्जीवन।

सुकरात-और यदि पुनर्जीवन कोई वस्तु है तो यह मृत्युसे जीवनका उत्पन्न होना है ?

सीबिस-अवश्य।

इसी प्रकार अनेक प्रमाणों एवं अकाट्य तर्कोंसे वे सिद्ध कर देते हैं कि 'आत्मा अमर और अविनाशी है और अवश्य ही हमारे आत्मा परलोकमें विद्यमान रहेंगे।'

इस प्रकार महान् दार्शनिक सुकरात स्वीकार करते हैं और जगत्‌को बताते हैं कि 'मरे हुए फिरसे जीवित होते हैं और मरे हुओंके आत्माका अस्तित्व नष्ट नहीं हो जाता। पुण्यात्मा (सज्जन) मनुष्यका आत्मा इस स्थितिकालमें सुखसे रहता है और पापीका आत्मा दुःख भोगता है।'

सुकरात कहते हैं कि 'परलोकमें सुखसे, शान्तिपूर्वक रहनेके लिये सच्चा दार्शनिक सदा संयमसे रहता है और शारीरिक सुखोंसे दूर भागता है और कभी भी अपनेको

सुखोंमें मग्न नहीं होने देता। वह अपनी सम्पत्तिकी बर्बादी या अपनी दरिद्रतासे नहीं डरता, जैसा कि जन-समुदाय डरा करता है और न वह शक्ति या मान-प्रतिष्ठाके भूखे लोगोंकी तरह दुष्टोंके अनादर या अपमानसे ही डरता है।'

सुकरात मनुष्यके आत्यन्तिक मङ्गलके लिये, उसमें शुद्ध सत्त्वगुणोंको भरनेके लिये प्राणपणसे प्रयत्न करते थे। वे चाहते थे कि मनुष्यके जीवनमें दम्भका लेश भी न हो। वे अन्तर्बाह्य सदा स्वच्छ और पावन रहे—जीवनान्त ज्ञानकी गवेषणामें संलग्न रहे। वे कहते हैं—

'यदि हम शरीरकी आवश्यकताएँ मात्र पूरी कर दिया करें और उसकी आदतोंसे अपनेको अपवित्र न होने दें, तो जीवनमें हम ज्ञानके बहुत पास पहुँच जायँगे। हमें उससे (शरीरसे) बचकर जहाँतक हो सके, वहाँतक पवित्र रहना चाहिये, जबतक कि ईश्वर हमें इससे (शरीररूपी बन्धनसे) न छुड़ा दे। और जब इस तरहसे हम पवित्र हो जायँगे और शरीरकी मूर्खताओंसे सम्बन्ध न रखेंगे, तो हम (परलोकमें) पवित्रात्माओंके साथ निवास करेंगे और हम स्वयं पवित्र बातोंको जान जायँगे; और सम्भव है कि वे पवित्र बातें ही 'सत्य' (ज्ञान) हों; क्योंकि मुझे विश्वास है कि अपवित्र वस्तु पवित्र वस्तुको नहीं पा सकती।'

परलोक एवं पुनर्जन्मविषयक विचारधारा

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत)

[पृष्ठ-संख्या १६७ से आगे]

(ज) क्या परलोकमें जानेसे पुनर्जन्ममें अनुपपत्ति आती है ?

कई व्यक्तियोंका यह विचार होता है कि "पुनर्जन्म-सिद्धान्तके आधारपर स्वर्ग-नरक आदि लोकविशेषोंकी आवश्यकता ही नहीं रहती। पुण्य-पापकर्मोंके फलस्वरूप स्वर्ग-नरककी प्राप्ति बतायी जाती है, वह आत्माके जन्म-जन्मान्तरोंमें शरीरके धारण करनेसे भाँति-भाँतिकी योनियोंमें यहीं प्राप्त हो जाती है; उनकी परलोकमें स्थिति नहीं होती। 'स्वर्ग'का अर्थ 'सुख' है और 'नरक'का अर्थ 'दुःख' है। 'लोक'का अर्थ 'शरीर' है। ये लोक हमारे शरीर ही हैं, जो आत्माको अपने कर्मानुसार प्राप्त होते हैं। यदि स्वर्ग-नरक आदि लोक-विशेषोंमें जीवका गमन माना जाय; तब यह पुनर्जन्म किसका होता है? पुनर्जन्म और स्वर्गादि-लोककी प्राप्ति—ये दो सिद्धान्त इकट्ठे नहीं रह सकते। जो मुसल्मान आदि सम्प्रदाय पुनर्जन्म (आवागमन) में विश्वास नहीं रखते, उनके मतमें तो स्वर्ग (बिहिश्त), नरक (दोज़ख) अपनी सत्ता रखते हैं; परंतु आवागमनरूप पुनर्जन्म माननेवाले हिंदुओंके लिये स्वर्ग-नरकादि परलोकमें जानेकी बात ही हास्यास्पद है। इसलिये परलोकगत जीवोंके लिये पिण्डदान-श्राद्ध-तर्पण आदि कर्म भी व्यर्थ हैं।

"जब कि जीव मरणके बाद तत्काल ही पुनर्जन्मको ग्रहण कर लेता है, जैसे कि बृहदारण्यकोपनिषद् (४।४) में 'तृणजलौका' न्यायसे स्पष्ट कर दिया गया है। जैसे जोंक जलमें तृणके अन्तमें पहुँचकर दूसरे तृणपर जाती हुई, पहले तिनकेको तब छोड़ती है, जब वह दूसरे तिनकेपर पाँव जमा लेती है, इस प्रकार जीवात्मा भी एक शरीरको छोड़कर तत्काल ही दूसरे शरीरको धारण कर लेता है।

(ख) इसलिये महाभारतमें भी कहा है—

आयुषोऽन्ते प्रहायेदं क्षीणप्रायं कलेवरम्।
सम्भवत्येव युगपद् योनौ नास्त्यन्तरा भवः॥
(वनपर्व १८३।७७)

'मरनेपर जीव तत्क्षण ही अन्य योनिमें चला जाता है; क्षणके लिये भी जीव असंसारी (बिना शरीरके) नहीं रहता।'

(ग) भगवद्गीतामें भी यही कहा है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(२।२२)

यहाँपर पुराने वस्त्रके त्याग तथा नये वस्त्रके पहननेके दृष्टान्तसे जीवात्मा इस शरीरको छोड़नेके बाद ही

सद्यः पुनर्जन्म ग्रहण कर लेता है, तब उसके लिये मृतक श्राद्धादि व्यर्थ है।

"जीवके इस शरीरको छोड़नेपर उसका सारा सांसारिक सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। पुनर्जन्म होनेपर पितरोंके नामसे दी हुई सामग्री हमारे पास नहीं आती। हम भी किसीके पितर होंगे ही। इस प्रकार स्वर्ग-नरक आदिकी भाँति मृतक श्राद्ध-तर्पण आदिका भी पुनर्जन्म-सिद्धान्तके साथ कुछ भी सामञ्जस्य नहीं बैठता।"

यह एक विचारणीय आवश्यक विषय है। इसपर भी हम विचार करना चाहते हैं। इसमें यह ध्यान देना चाहिये कि—परलोकादि विषय प्रत्यक्ष नहीं हैं, किंतु परोक्ष हैं; तब परोक्षविषयमें युक्तियोंकी भला गति कैसे हो सकती है? उसमें तो, वेदादि शास्त्रोंका ही प्रामाण्य होगा। देखे हुए चन्द्रमाको माननेवाले चार्वाक हुआ करते हैं। उनकी वाणियाँ आपात-मनोहर हुआ करती हैं; वस्तुतः तो निरर्थक ही होती हैं।

यह हमारा पृथ्वीलोक 'इहलोक' वा 'अयं लोकः' कहा जाता है; परंतु स्वर्गादि लोक तो 'परलोक' या 'असौ लोकः' इत्यादि शब्दोंसे कहा जाता है। पहले कहा जा चुका है कि—'अदस्' शब्दका प्रयोग 'दूरस्थित' के लिये आता है और 'इदम्' शब्द निकटके लिये आता है। अतएव 'पृथिवीलोक' के लिये हम 'अयं लोकः' कहते हैं; और स्वर्गादिको 'असौ लोकः' कहते हैं। वे इस लोकसे भिन्न एवं दूर सिद्ध होते हैं; इस विषयमें 'घ' भागके 'उ' आदि विभागमें हम प्रमाण दे चुके हैं।

'तस्माद् लोकात् पुनरेति अस्मै लोकाय कर्मणे।'

(शतपथ १४।७।२।८)

यही वचन बृहदारण्यक उपनिषद् (४।४।६)में भी आता है। यहाँ 'तद्' शब्दसे 'परलोक' स्वर्गादि इष्ट है। उससे वापस इस लोकमें फिर कर्म करनेके लिये आना या पुनर्जन्म लेना कहा है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि परलोक भोगस्थान है। उसमें प्राप्त हुए 'भोगयोनि' होते हैं; वहाँ कर्म करना फलजनक नहीं होता। इस लोकको 'कर्मस्थान' कहा गया है। तब जो व्यक्ति परलोक जानेपर फिर उसके इस लोकमें आवागमनमें अनुपपत्ति मानते हैं, वे भ्रान्त सिद्ध होते हैं। अधिकतया भोग तो स्वर्गादि लोकमें हो जाता है। शेष बचे हुएसे हम यहाँ आते हैं, उनका फल भी प्राप्त करते हैं और नवीन कर्म भी करते हैं। हाँ, जब जीव मुक्तिलोकमें जाता है; उस समय कोई भी कर्म शेष न रह जानेसे उसका फिर इस लोकमें भी कर्मबद्ध आगमन नहीं होता।

ईसाई और मुसलमान मरे हुओंकी कब्रमें स्थिति मानते हैं; उनका पुनर्जन्म नहीं मानते। पर वे भी 'कयामत' के समय पुनः परमात्माके द्वारा मरे हुओंका जीवन मानकर पुनर्जन्म-सा मानते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि—परलोक इस लोकसे भिन्न है। हमें रातको जो तारामण्डल दीखता है, यही स्वर्गलोक-का परलोक हुआ करता है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कहा है—'देवगृहा वै नक्षत्राणि' (१।५।२।६) यहाँ तारा-मण्डलको देवताओंका स्थान कहा है। वहीं कहा गया है—'यो वा इह यजेत। अमुं स लोकं नक्षते, तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्' (१।५।२।५) यहाँ पृथिवीलोकमें यज्ञ करनेवालोंका परलोकमें तारामण्डलमें जाना कहा है। कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयसंहितामें कहा है—'सुकृतां वा एतानि ज्योतींषि यन्नक्षत्राणि।' (५।४।१।३) यहाँ तारा-मण्डलको यज्ञ करके परलोकमें गये हुओंकी ज्योति बताया गया है।

न्यायदर्शनके वात्स्यायनभाष्यमें भी कहा है—'नित्यः खलु अयमात्मा। यस्माद् एकस्मिन् शरीरे धर्मं चरित्वा कायभेदाद् (मरणे सति) स्वर्गे देवेषु उपपद्यते। अधर्मं चरित्वा देहभेदाद् (मृत्यौ) नरकेषु उपपद्यते।' (३।२।४१) यहाँ भी स्वर्गादि लोक तथा उसमें देवता माने गये हैं। 'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।' (भगवद्गीता ९।२१) यहाँपर देवताओंका स्वर्गलोक भोगकर फिर मनुष्यलोकमें आना कहा है।

वेदान्तदर्शनके शाङ्करभाष्यमें कहा है—'लोक' शब्दश्च प्राणिनां भोगायतनेषु भाष्यते—'मनुष्यलोकः, पितृलोकः, देवलोकः।' (४।३।४) अर्थात् लोकका अर्थ है कि—प्राणियोंको जिस लोकमें सुख-दुःखका फल मिले। 'पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः।' (अथर्ववेद सं० १२।२।४५) यहाँपर मृतकोंका 'पितृलोक'में जाना कहा है।

आर्यसमाजके प्रवर्तक श्रीस्वामी दयानन्दजी भी ग्रह-नक्षत्रमण्डलमें पुरुषोंकी स्थिति मानते हैं। देखिये, उनका उद्धरण—

प्रश्न—सूर्य, चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं; और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं ?

(उत्तर—) ये सब भूगोललोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती है········जब पृथ्वीके समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं, पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजाके होनेमें क्या संदेह ?········(प्रश्न—जैसे इस देशमें मनुष्यादि सृष्टिकी आकृति अवयव है, वैसे ही अन्य लोकोंमें भी होंगी, वा विपरीत ? (उत्तर—) कुछ-कुछ आकृतिमें भेद होना भी सम्भव है········(सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लासके अन्तमें)।

वेदान्तदर्शन शाङ्करभाष्यमें कहा है—'सम्पतन्ति अनेन अस्माद् लोकाद् अमुं लोकं फलोपभोगाय।' (३ । १ । ८) यहाँपर आर्यसमाजके श्रीतुलसीरामजीके भाष्यका सारांश यह है कि—'इष्टापूर्त आदि उत्तम कर्मके करनेवाले चन्द्रलोक आदि उत्तम लोकोंमें फल भोगकर कुछ बचा अवशिष्ट कर्म अपने साथ लाकर इस लोकमें उत्तमयोनिमें जन्म लेते हैं।' वहीं ३ । १ । १२ शाङ्करभाष्यमें भी कहा है—'ये वै केचिद् अधिकृता अस्माल्लोकात् प्रयन्ति, चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति।' यहाँ भी वही बात कही है। मृतकोंका चन्द्रलोकमें जाना कहा है।

'विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति' (सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय, त्रिप्रश्नवासना १३ श्लोक) यहाँ पितरोंका चन्द्रलोकपर रहना कहा है। जब ऐसा है, तब मृत पितर लोग विशेष शक्तिशाली होनेसे हमसे दिये हुए श्राद्ध-पिण्ड-दानादिको अपनी आकर्षण-शक्तिसे खींच लेते हैं।*

तृणजलौका-न्याय

अब इस न्यायपर भी विचार करना चाहिये। बृहदारण्यक उपनिषद्में यह वचन है—'तद् यथा तृणजलायुका तृणस्य अन्तं गत्वा अन्यमाक्रममाक्रम्य आत्मानम् उपसंहरति, एवमेव अयमात्मा इदं शरीरं निहत्य अविद्यां गमयित्वा अन्यमाक्रममाक्रम्य आत्मानं उपसंहरति।' (४ । ४ । ३)

उक्त वचनमें मृत्युके बाद जो देह तैयार होता है, वह पारलौकिक सूक्ष्मदेह ही होता है, चाहे वह देवलोकका देह हो, चाहे पितृलोक या गन्धर्वलोकका। इसलिये पहले स्थान 'शरीर' लिखा है, दूसरे स्थान 'शरीर' न लिखकर 'अक्रम' ही लिखा है। वह भी 'पुनर्जन्म'रूप है। मृत्युके बाद जीवका इस लोकमें पुनर्जन्म तत्क्षण नहीं होता। स्वा० दयानन्दजी भी 'सविता प्रथमेऽहन्'················ (यजुर्वेदभाष्य ३९ । ६) इस मन्त्रसे कमसे-कम बारह दिनके बाद जीवका पुनर्जन्म मानते हैं। तब जीव इतने दिनोंतक जहाँपर सूक्ष्मशरीरसे रहता है, वही 'परलोक' कहा जाता है। स्वामी दयानन्दजीने उसका नाम संस्कारविधि (अन्त्येष्टिके आरम्भमें) 'यमालय' माना है। यमालय वे अन्तरिक्ष (आकाश) में मानते हैं। तब वह जीव उपनिषदोंके अनुसार बादलोंमें, फिर वृष्टिके साथ वनस्पतियोंमें, फिर सब्जियोंके साथ पुरुषके शुक्रमें और शुक्रके साथ स्त्रीके गर्भाशयमें प्रवेश करके उसीसे दसवें महीने उत्पन्न होता है। तब वहाँ 'तृणजलायुका' न्यायका संघटन नहीं हो सकता। मरनेके बाद पारलौकिक सूक्ष्मदेह तो तत्काल ही मिल जाता है, जो परलोकमें स्थिति करानेवाला होता है। वह 'पितृदेह' भी हो सकता है, 'प्रेतदेह' भी हो सकता है और 'देवदेह' भी हो सकता है। अतः उक्त बृहदारण्यकका उपस्थित वचन उसीमें समन्वित होता है। यह वचन मनुष्य या पशुके देहसे विलक्षण सूक्ष्मदेहोंके लिये है। उसीकी स्पष्टता करनेवाला बृहदारण्यकका वचन उक्त वचनके आगे मिलता है, जिससे हमारा कथन स्पष्ट हो जाता है। वह है—

'तद् यथा पेशस्कारी पेशसो मात्रामुपादाय अन्यद् नवतरं कल्याणतरं रूपं तनुते एवमेव अयमात्मा इदं शरीरं निहत्य अविद्यां गमयित्वा अन्यद् नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते—पित्र्यं वा, गान्धर्वं वा, दैवं वा, प्राजापत्यं वा, ब्राह्मं वा अन्येषां वा भूतानाम्।' (४ । ४ । ४)

'जैसे सुनार सोना लेकर उसे ठोक-पीटकर उसका अन्य नया सुन्दर रूप कर दिया करता है, इसी प्रकार आत्मा इस शरीरको समाप्त करके नया कल्याणतर रूप बना लिया करता है। वह पितरोंका, या गन्धर्वोंका, या देवोंका, या प्रजापतिका, या ब्रह्माका, या अन्य भूत प्रेत आदिका

---

* इस विषयमें आर्यसमाजके विद्वान् श्रीरघुनन्दनशर्माजीकी 'वैदिक सम्पत्ति' (प्र० सं०) के पृ० ३७१। ३७२ पृष्ठमें तथा हमारे 'श्रीसनातनधर्मालोक' पञ्चम पुष्पके ६८१। ६८४ पृष्ठमें देखा जा सकता है। इसलिये श्राद्धादि कर्म भी व्यर्थ नहीं है। इस विषयमें 'श्रीसनातनधर्मालोक' चतुर्थ पुष्पमें पृ० ३३०–३४४ तथा यहीं 'परलोकसिद्धि' विषयमें ३४५–३५६ पृष्ठमें देखना चाहिये।

है।' ये सब शरीर सूक्ष्म होते हैं। अतः पृथ्वीलोकमें नहीं रह सकते; किंतु परलोकमें रहते हैं। वहाँसे पतन होनेपर फिर मनुष्यलोकमें स्थूलशरीर धारण करते हैं। पहला 'सूक्ष्म पुनर्जन्म' था और यह 'स्थूल पुनर्जन्म' हो जाता है।

इससे मृतकोंकी जब पितृलोकमें प्राप्ति भी सूचित हो गयी, तब पितृ-शरीरवश उनके लिये मृतक पितृ-श्राद्ध भी प्रयोजनीय सिद्ध हो गया। पितृलोकका वर्णन यजुर्वेद-शतपथ ब्राह्मण (१४।४।३।२४; ३।७।१।२५) में स्पष्ट है। पितृ, गन्धर्व, देवता, प्रजापति—ये मनुष्ययोनिसे उन्नत योनियाँ होती हैं, जिनका वर्णन और पृथक्-पृथक् आनन्दकी मात्रा बृहदारण्यक उपनिषद् (४।३।३३) में तथा तैत्तिरीयोपनिषद् (ब्रह्मानन्दवल्ली अष्टम अनुवाक) में स्पष्ट है। इनके लिये भी पिण्डदान आदिका शास्त्रोंमें विधान है।

इससे स्पष्ट हो गया कि जीव मृत्युके बाद साधारण रूपसे पारलौकिक विविध लोकोंमें स्थित होकर, वहाँका आनन्द अनुभूत करके, तब अवशिष्ट कर्मोंसे फिर इस मर्त्यलोकमें पुनर्जन्म प्राप्त करनेके लिये गर्भमें आता है। इससे पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें कुछ भी बाधा नहीं पड़ती। यह बात वेद एवं उपनिषद्की शिक्षाके अनुकूल है। इसमें स्वर्ग-नरक आदि वादकी भी अनुकूलता हो जाती है। पितृलोक-प्राप्तिमें पितृयज्ञरूप पितृश्राद्ध उसमें सहायक होनेसे उपयोगी ही होता है। अथवा यदि जीव तत्काल ही मनुष्य-शरीर भी ग्रहण कर ले, तब उस समय भी श्राद्धादि कर्मकी व्यर्थता नहीं होती। उस समय नित्य पितर, वसु, रुद्र और आदित्य उसका फल उस जीवको मनीआर्डरकी भाँति मनुष्यलोकमें भिजवा दिया करते हैं; अथवा यदि जीव मुक्तिलोकमें गया हुआ हो, तब श्राद्ध वहाँ नहीं पहुँचता; वह श्राद्धकर्ताको ही पुनः प्राप्त हो जाता है।* हमें जो भोजन प्राप्त हो गया है, इसे हम नहीं जान पाते कि यह हमारे कर्मोंका हमें प्राप्त हो रहा है, या हमारे पुत्रादिद्वारा दिये गये श्राद्धके फलरूपमें हमें प्राप्त हो रहा है। अथवा हम अकालके मुखमें आ पड़ें तो यह भी सम्भव हो सकता है कि—हमारे लिये हमारे गतजन्मके पुत्रादि श्राद्धकर्म नहीं करते रहे हों।

* इस विषयमें 'श्रीसनातनधर्मालोक' के चतुर्थ तथा पञ्चम पुष्प देखने चाहिये।

(ख) महाभारतका जो वचन पहले दिया गया है, उसके साथवाले पद्योंको मिलाकर अर्थ करनेसे तब स्पष्टता होती है। वह यह है—

एषा तावदबुद्धीनां गतिरुक्ता युधिष्ठिर।
अतः परं ज्ञानवतां निबोध गतिमुत्तमाम्॥
(महाभारत, वन० १८३। ८०)

अर्थात् साधारण गति तो मूर्खोंकी होती है; पर ज्ञानियोंकी गति यह होती है—

'कर्मभूमिमिमां प्राप्य पुनर्यान्ति सुरालयम्।'
(महाभारत, ३। १८३। ८५)

यहाँ कर्मभूमि इस मनुष्यलोकमें स्थित ज्ञानियोंकी देवलोक स्वर्गलोकमें प्राप्ति भी कही गयी है। आगे वहाँ 'तेषामयं चैव परश्च लोकः।' (९१) 'स्वर्गं परं पुण्यकृतां निवासं क्रमेण सम्प्राप्स्यथ कर्मभिः स्वैः।' (९६) यहाँ मनुष्यलोक तथा स्वर्गलोकका प्राप्त करना कहा है।

(ग) 'वासांसि जीर्णानि' इस गीताके पद्यमें भी कहा है—

'तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।'
(२। २२)

यहाँ नये शरीरोंमें बहुवचन होनेसे पितर आदि शरीरोंकी प्राप्ति सूचित की गयी है। वे भी लोकान्तरके शरीर ही कहे जाते हैं। जैसे कि न्यायदर्शनमें कहा गया है—

'तत्र मानुषं शरीरं पार्थिवम्।'' आप्य तैजसवायव्यानि लोकान्तरे शरीराणि' (३। १। २८)। हाँ, उनमें पार्थिव तत्त्वकी अल्पता तथा जल, तेज, वायु तत्त्वोंकी मुख्यता होनेसे वे शरीर मनुष्य-शरीरकी अपेक्षा सूक्ष्म हुआ करते हैं। तभी तो भगवद्गीतामें भी कहा है—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥
(९। २५)

यहाँपर जीवकी देव, पितर, प्रेत आदि लोकोंकी प्राप्ति कही है।

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥
(१७। ४)

यहाँ भी पूर्ववचनकी स्पष्टता है । वेदमें भी इस विषयमें स्पष्टता है—

'पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।'
(अथर्व० १२ । २ । ४५)

'अधा मृताः पितृषु सम्भवन्तु ।'
(अथर्व० १८ । ४ । ४८)

इन मन्त्रोंमें मृतकोंकी पितृलोकमें प्राप्ति सूचित की गयी है । मृतकोंका श्राद्ध भी वेदमें सूचित किया गया है । जैसे कि—

'जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।'
(ऋग्वेदसं० १ । १६४ । ३०)

यहाँपर श्रीसायणाचार्यने व्याख्या की है—

'मृतस्य शरीरस्य सम्बन्धी जीवः मर्त्येन—मरणधर्मकेन शरीरेण सयोनिः पूर्वं समानोत्पत्तिस्थानः । यद्यपि जीवस्य न जन्मास्ति, तथापि वपुषस्तत्सद्भावात् तत्सम्बन्धेन उपचर्यते । तदेवाह अमर्त्यः—अमरणस्वभावः । 'जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते, न जीवो म्रियते ।' (छान्दोग्योपनिषद् ६ । ११ । ३) इति श्रुतेः । उक्तस्वभावो जीवः स्वधाभिः चरति—पुत्रकृतैः स्वधाकारपूर्वकदत्तैः अन्नैः चरति—वर्तते इत्यर्थः ।'

'मृतकका जीव जिसका पहले शरीरसम्बन्धसे जन्म उपचारमात्रसे कहा जाता है; वस्तुतः अमरणस्वभाववाला जीव पुत्रसे दिये हुए स्वधान्न (श्राद्ध) से तृप्त हो जाता है ।'

फलतः जीवके परलोक प्राप्त होनेपर भी पुनर्जन्मवादमें कोई भी अनुपपत्ति नहीं आती । परलोकमें फल अनुभव करके जीव अवशिष्ट कर्मवश फिर मनुष्यलोकमें वापिस आता है ।

(ग) क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति

कर्मवश जीव स्वर्गादि परलोकमें जाता है और वहाँ सुख दुःखका अनुभव करके तब मनुष्यलोकमें पुनर्जन्म लेता है । उसमें कारण यह है कि स्वर्गादि स्थान भोगस्थान हैं । उनमें इस लोकमें किये हुए कर्मोंके भोगार्थ जीव जाता है । वहाँ वह कर्म करनेमें समर्थ नहीं होता । इसलिये स्वर्गमें गये हुए जीव 'देवयोनि' बने हुए 'भोगयोनि' ही माने जाते हैं । तब कर्मफलकी समाप्तिमें थोड़े शेष कर्मोंको लिये जीव पुनः कर्म करनेके लिये इस लोकमें आता है और मनुष्य बनता है । मनुष्य 'कर्मयोनि' माना जाता है ।

कर्मफल भोगकर स्वर्गसे गिरकर इस लोकमें आना भगवद्गीतामें भी कहा है—'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।' (९ । २१) इससे पूर्व वहीं कहा है—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥
(९ । २०)

यह आशय है कि 'जीव यज्ञादि-कर्मोंसे स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं । वहाँ देवता बनकर दिव्य भोगोंको भोगते हैं । फिर पुण्यके समाप्त हो जानेपर स्वर्गसे गिरकर इस मनुष्यलोकको प्राप्त होते हैं ।' यही बात उपनिषदोंमें भी कही है—

'तद् यथा इह कर्मजितो लोकः क्षीयते, एवमेव अमुत्र [परलोके] पुण्यजितो लोकः [स्वर्गः] क्षीयते ।' (छान्दोग्य० ८ । १ । ६) । यहाँ स्वर्गकी क्षीणताका तात्पर्य स्वर्गसे गिरकर फिर मनुष्यलोकमें पुनर्जन्म लेनेमें है ।

इसी प्रकारका वचन मुण्डकोपनिषद्में भी मिलता है—

'इष्टापूर्तं (यज्ञादिकं) मन्यमाना वरिष्ठं......यज्ञादिभिः (प्राप्तस्य) नाकस्य [स्वर्गलोकस्य] पृष्ठे ते [जीवाः] सुकृते [पुण्यलभ्ये] अनुभूत्वा इमं [मानुषम्] लोकं हीनतरं वा विशन्ति ।' (१ । २ । १०)

यहाँ भी कर्मयोनि मनुष्योंके फलभोगके लिये स्वर्गगमन कहा है; तब वे भोगयोनि देव होकर, कर्म समाप्त हो जानेपर स्वर्गलोकसे गिरकर फिर इस मनुष्यलोकमें आ जाते हैं और कर्मयोनि होकर कर्ममें प्रवृत्त हो जाते हैं । यही बृहदारण्यक उपनिषद्में भी कहा है—

'प्राप्य अन्तं कर्मणः [स्वर्गलोकमें कर्मफल प्राप्त करके] तस्य यत् किंच [कर्म] इह [इस मनुष्यलोकमें] करोति अयम् [कर्मयोनिर्मनुष्यः]; तस्मात् [स्वर्गात्] लोकात् पुनरेति अस्मै लोकाय [अस्मिन् मनुष्यलोके] कर्मणे [कर्म कृतम्]' (४ । ४ । ६)

यहाँ भी पूर्व-जैसा भाव है । स्वर्गलोकमें देवता बनता है—

'दिवि देवाः' (अथर्ववेदसं० ११ । ७ । २३)। 'देवा वै नाकसदः' (शतपथ ब्रा० ८ । ६ । १ । १ । 'द्यौर्वै

देवानामायतनम्' (शत० १४ । ३ । २ । ८) । स्वर्ग जब परलोक है, इस लोकसे भिन्न है, तब स्वर्ग 'सुख'का पर्याय-वाचक नहीं—'एतत् स्वर्गसुखं विप्र लोका नानाविधास्तथा ।' (महा०, वन० २६१ । २७) यहाँ स्वर्गका सुख कहा है । यदि स्वर्ग 'सुख'का पर्यायवाचक होता, तो 'स्वर्ग-सुखम्' में पुनरुक्ति या व्यर्थता होती । 'न स्वर्गेण सुखेन वा' (महा०, वन० २६१ । ४२) यहाँ भी स्वर्ग और सुख दोनोंको भिन्न-भिन्न बताया गया है; अतः स्वर्गलोक इस लोकसे भिन्न ही सिद्ध हुआ । इसलिये अथर्ववेद-संहितामें—

'पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहम्, अन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् । दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ।' (४ । १४ । ३)

यहाँ द्युलोक, जिसके पृष्ठपर स्वर्गलोक है, पृथिवीलोकसे भिन्न माना गया है । उसीमें देवता रहते हैं । इससे सिद्ध होता है—मनुष्य 'कर्मयोनि' है और देवता केवल 'भोगयोनि' । यदि देवता भी कर्मयोनि होते तो उन्हें कर्म करनेके लिये फिर इस लोकमें आना न पड़ता ।

कर्मोका फल जो स्वर्ग कहा है, उसमें 'कर्म' यज्ञादि समझना चाहिये । इसी कारण वेदमें कहा है—'यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्' (अथर्ववेद-सं० १८ । ४ । २) (ईजानाः—यज्ञ करते हुए) । 'स्वर्गकामो यजेत'—यह वचन भी दर्शनोंमें सुप्रसिद्ध है । तब यज्ञके कर्म होनेसे और कर्मोंके सीमित होनेसे उससे प्राप्त स्वर्गके भी सीमिततावश क्षयी होनेसे 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।'—यह पूर्वोक्त गीता-वचन संगत हो जाता है । 'गतागतं कामकामा लभन्ते ।' (गीता ९ । २१)—इस वचनमें 'गमनागमन' कहनेसे 'पुनर्जन्म' भी सिद्ध हो गया ।

इससे यह भी सिद्ध हो गया कि 'काम' ही कर्म है; काम न होनेपर कर्म भी 'अकर्म' होता है । कामना न होनेपर कर्म न रह जानेसे 'मुक्ति' कही गयी है । कामना होनेपर कर्म रह जानेसे उन कर्मोंके क्षयी तथा सीमित होनेसे स्वर्ग भी क्षयी होता है । कामनाके अभावमें अभावके नित्य होनेसे कर्माभावसे होनेवाली मुक्ति भी नित्य हुआ करती है ।

तब मुक्ति हो जानेपर तो पुनर्जन्ममें अवश्य अन्तराय हुआ करता है, परंतु स्वर्गादि परलोक प्राप्त होनेपर पुनर्जन्म स्वतः सिद्ध है; उसमें कोई बाधा नहीं पड़ती; क्योंकि उसमें मुक्तिकी भाँति सदाके लिये निवास नहीं रहता; अतः इस विषयमें जो कि कई व्यक्तियोंको संदेह हुआ करता है, उसका कारण यह है कि उन्होंने स्वर्ग-नरकमें भी जीवका मुक्तिकी भाँति सदा निवास मान रक्खा है; पर वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है । मुक्तिको छोड़कर अन्य लोक-लोकान्तरोंमें जानेसे तो पुनर्जन्मकी सिद्धि हुआ करती है । पर मुक्ति परम कठिन है, प्रत्येकको प्राप्त नहीं हो सकती; अतः पुनर्जन्म सर्वसाधारण है । पुनर्जन्मवाद एवं स्वर्ग-नरकादि माननेसे ही पुरुषोंको पुण्यके लिये प्रोत्साहन तथा पापसे घृणा-भीति उत्पन्न होगी; पर नास्तिकतावाद माननेसे तो पापकी भारी वृद्धि होगी; उसीसे संसारमें अव्यवस्था फैलेगी । इसीलिये लोगोंका कल्याण मानकर 'कल्याण'ने 'पुनर्जन्म'में वास्तविकता बताकर जगत्में व्यवस्था लानेका अनुकरणीय प्रयास किया है । पुनर्जन्मकी घटनाएँ आये दिन समाचारपत्रोंमें निकला करती हैं । उनमें अनुसंधानसे सत्यता सिद्ध हुई है; अतः पुनर्जन्मवाद जहाँ शास्त्रीय है । वहाँ प्रत्यक्ष सिद्ध भी है ।

(ञ) परलोकविद्या

हिंदुओंद्वारा मृतकोंका श्राद्ध-तर्पण देखकर वैदेशिक वैज्ञानिकोंका इधर ध्यान गया । उन्होंने उसका परीक्षण प्रारम्भ कर दिया । उससे उन्हें प्रतीत हुआ कि मरा हुआ व्यक्ति अभावको प्राप्त नहीं हो जाता, किंतु मरनेके बाद उसकी स्थिति परलोकमें हो जाती है । उत्तम माध्यमद्वारा हम उससे सम्बन्ध करके उससे लाभ ले सकते हैं । हमारे भारतीय पुरुषोंका भी इधर ध्यान गया और इसमें उन्होंने भी पर्याप्त सफलता प्राप्त कर ली । वैदेशिक लोग सब परीक्षणोंमें अपना ही दृष्टिकोण रखते हैं । उन्हें ऐसा आभास हुआ कि मृतकका जीव सदा परलोकमें ही रहता है; उसका इस लोकमें पुनर्जन्म नहीं होता । पर पुनः-पुनः अवगाहनसे कई वैदेशिक भी अब परलोकगतका इस लोकमें 'पुनर्जन्म' भी मानने लग गये हैं ।

सबकी शैलियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं । वैदेशिकोंने मृतकोंके आकर्षणार्थ अपने ढंगके उपाय जारी किये । हमारे पूर्वजोंने कुश, मधु, तिल, गङ्गाजल, तुलसीपत्र, चावलोंके पिण्ड आदिका मृतकोंके जीवके आकर्षणार्थ उपयोग कर रक्खा है । अब इनका भी यन्त्र बनाकर निरीक्षण-परीक्षण करना चाहिये । हमारे पूर्वजोंकी प्रायः सभी बातें परीक्षण निरीक्षण करनेपर सत्य सिद्ध हुई हैं ।

अब इस परलोकविद्याका अपलाप नहीं किया जा सकता। अभिज्ञजन इसमें उद्यत हो रहे हैं। इस विद्यासे कई लाभ होनेकी सम्भावना है। वह यह कि हम स्थूल-शरीरी होनेसे सीमित शक्तिवाले हैं; पर मृतक पुरुष स्थूल-शरीर छूट जानेसे पारलौकिक दिव्य सूक्ष्मशरीर मिलनेसे अलौकिक शक्तिशाली होते हैं। उनसे सम्बन्ध स्थापित करके हम उस लोकोत्तर शक्तिका लाभ उठा सकते हैं। घड़ेमें ढके दीपककी प्रकाशन-शक्ति सीमित होती है। घड़ेसे बाहर ठहरे दीपककी प्रकाशन-शक्ति अधिक रहा करती है। हम भी स्थूल शरीराच्छन्न होनेसे उस घड़ेमें रक्खे दीपककी तरह हैं और परलोकप्राप्त पुरुष उसके अपवाद हैं। आत्माके न्यायादि शास्त्रसम्मत विभुत्वका यही उपयोग ले सकते हैं।

मान लीजिये कि एक व्यक्ति बहुत बीमार है। हम उसका उपचार करके भी उसे स्वस्थ नहीं कर सके। उस समय यदि हम परलोकस्थ आत्मासे सम्बन्ध करके उससे उसकी दवाइयाँ पूछें, तो अधिक ज्ञानशाली होनेसे उनसे बतायी गयी दवाइयाँ सम्भवतः उस बीमारके लिये हितकारक सिद्ध होंगी। इस प्रकारकी परलोकस्थ आत्माओंसे बतायी गयी दवाइयाँ प्रायः सफल सिद्ध भी हो चुकी हैं।

जब परलोकप्राप्तके हस्ताक्षर मिल जाते हुए देखे गये हैं; उनकी बतायी गुप्तधन गड़नेकी बातें मिल गयी हैं; उनके छाया-चित्र गृहीत हो जाते हैं; तो इस विद्यामें उन्नति करके हम कई लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस विषयमें श्रद्धा करनेसे 'श्रद्धया सत्यमाप्यते।' (यजुर्वेद १९ । ३०) 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।' (गीता ४ । ३९) हमें सत्य एवं ज्ञानकी प्राप्ति होगी। हमारे प्राचीन लोग भी मृतक व्यक्तिका परलोकमें निवास और उसका आह्वान भी मानते थे। लङ्का-विजयके बाद अग्नि-शुद्धिके समय परलोकसे आये हुए राजा दशरथने भी सीताकी शुद्धिमें साक्षी दी थी।

इस विषयमें यह एक बड़ा लाभ मिलेगा कि फिर 'मृत्युभय' छूट जायगा। अन्य लाभ यह होगा कि हमारा मृतक-सम्बन्धी, जिसे हम सदाके लिये बिछुड़ गया समझते हैं, फिर हम उसे अपने निकट पायेंगे। फिर मृतकका श्राद्ध-तर्पण भी प्रत्यक्षानुगृहीत हो जायगा। इस परलोकविद्याकी उन्नति हो जानेपर हम स्वर्गीय देवताओंसे भी बातचीत कर सकेंगे।

कई धार्मिक प्राचीन बातें वर्तमानमें प्रचलित न होनेसे बुद्धयग्राह्य मालूम पड़ती हैं, पर हमारे ऋषि-मुनि बहुज्ञ थे। उनकी बातें अब विज्ञान-सिद्ध सिद्ध हो रही हैं।

हमारी अपेक्षा पितरोंमें अधिक शक्ति रहती है। उनकी अपेक्षा देवताओंमें अधिक शक्ति होती है। देवता-विषय बहुत जटिल है, यह ठीक है। आरम्भमें पितृ-विषय भी बहुत जटिल था। पितरोंका आह्वान तथा आकर्षण एवं उनका यहाँ आगमन और संवाद तथा उनसे हमारा संरक्षण होता है—यह बात बहुत लोग नहीं मानते थे। इतिहास-पुराणमें मृतक दशरथ आदिका इस लोकमें आनेका वर्णन आता है। योगदर्शनके व्यासभाष्यमें भी 'पितॄन् अतीतान् अकस्मात् पश्यति।' (३ । २२) में भी यह संकेत आया है। अनुसंधाता लोगोंकी गवेषणाओंसे यह विषय समूल सिद्ध हो रहा है। बहुत कुछ सफलता भी इस विषयमें प्राप्त हो चुकी है; तब आगे अनुसंधाताओंका देवतावादकी ओर भी ध्यान बढ़ेगा।

शास्त्रानुसार पितृगण चन्द्रलोकके पृष्ठपर रहते हैं। चन्द्रग्रहकी कक्षा सब ग्रहोंसे नीचे और भूमण्डलके निकट है। तभी भूमण्डलके निवासी उसके साथके ठहरे चन्द्रलोकके पृष्ठपर रहनेवाले पितरोंका यथाशक्ति आह्वान या आकर्षण करनेमें शीघ्र सफल हो गये हैं।

वेदमें भी 'आ यन्तु नः पितरः' (यजु० १९ । ५८) इत्यादि मन्त्रोंसे पितरोंका आह्वान तथा 'अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तः।' से तृप्ति 'अधि ब्रुवन्तु' से पितरोंका हमें उपदेश वा संवाद, 'ते अवन्तु अस्मान्' से हमारी पितरोंद्वारा 'पान्ति रक्षन्ति इति पितरः' इस व्युत्पत्तिसे हमारे किसी बीमार आदिके स्वास्थ्यकी (उत्तम औषधि बताकर) रक्षा करना प्रसिद्ध है।

पितरोंके आकर्षणपर आर्यसमाजी विद्वान् श्रीरघुनन्दन शर्माने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वैदिक-सम्पत्ति' (प्र० सं०) के ३७१ पृष्ठपर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—

'प्रश्न यह है कि चन्द्रलोकसे जीवोंको किस प्रकार खींचा जाय। जीवोंके खींचनेका वही तरीका है, जो सूर्यकान्तमणिके द्वारा सूर्यताप खींचनेमें और चन्द्रकान्तमणिके द्वारा चान्द्र-जलके खींचनेमें प्रयुक्त किया जाता है। जिस प्रकार चन्द्र-कान्तके प्रयोगसे चान्द्रजलकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार चान्द्र-पदार्थोंको एकत्रित करनेसे चान्द्रवीर्य भी आकर्षित होता है। चान्द्रवीर्यमें ही जीव रहते हैं; इसलिये उन

पदार्थोंमें खिंच आते हैं, जो चन्द्राकर्षणके लिये विधिसे एकत्रित किये जाते हैं। वे पदार्थ—दूध, घृत, चावल, मधु, तिल, रजतपात्र, कुश [तुलसीदल] और जल हैं। यह प्रक्रिया शरत्पूर्णिमाके दिन लोग करते हैं; परंतु विधि-पूर्वक क्रिया तो पितृश्राद्धके समय ही होती है। पितृश्राद्ध अपराह्णके समय होता है। उसमें दूध, घृत, मधु, कुश आदि सभी पदार्थ रक्खे जाते हैं। पितरोंका प्रतिनिधि पुत्र अथवा पौत्र भी उन पदार्थोंको छूता हुआ वहींपर बैठता है। इसलिये यह सब हवि आदि सामग्री उसी प्रकारका यन्त्र बन जाती है, जिस प्रकार चन्द्रमणि। इसीमें पितर खिंचकर आते हैं—

'परा यात पितरः सोम्यासः।'

(अथर्ववेद १८ । ४ । ६३)

भूमण्डलके निकट होनेसे ही वैज्ञानिक लोग भी राकेट आदिसे चन्द्रलोककी यात्रा करनेकी चेष्टा करते हैं, पर देवता द्युलोकके अन्य विभागोंमें रहा करते हैं। वे पितरोंकी अपेक्षा हमसे बहुत दूर हैं। हमारा एक मास पितरोंका दिन-रात होता है। हमारा एक वर्ष देवताओंका दिन-रात होता है। परंतु यदि हमारा विज्ञान बढ़ता गया तो हम पितरोंकी भाँति देवताओंके भी निकट हो जायँगे। कुन्तीको दुर्वासा मुनिसे दिये हुए मन्त्रोंसे सूर्य, यम, वायु, इन्द्र, अश्विनी-कुमार—ये देवता आये थे, यह प्रसिद्ध ही है।

पुराण-इतिहासमें भी जो देवताओंका भूलोकमें आना बताया गया है, वह इसी बातको सिद्ध करता है कि हमारे पूर्वजोंको देवताओंको बुलानेकी विद्या भी ज्ञात थी। हमारे राजा दशरथ आदि रथोंद्वारा देवलोकमें भी जाया करते थे। अब यदि प्रयत्नसे पितृवाद कुछ सुलझ गया है; तब समयपर देवतावाद भी सुलझ जायगा।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथि-भिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्तु अस्मान्। (यजुर्वेद-सं० १९। ५८)

—इस मन्त्रसे मालूम होता है कि पितरोंको स्वधासे तृप्त करनेका विचार करनेसे ही वे हमारे आह्वानपर हमारे यहाँ आते हैं और वे हमसे संवाद करते हैं और हमें उत्तम उपाय बताकर 'पितृ' नामको (पाति रक्षति इति) सार्थक करते हुए हमारी रक्षा भी करते हैं। इस अवसरपर माध्यम भी उत्तम होना चाहिये। श्राद्ध भी पूर्व समयमें उन्हीं माध्यमोंके प्रयोगकर्ता वैज्ञानिक ब्राह्मणोंको खिलाया जाता था। श्राद्धविधिके अनुसार सुचरित्र, वेदादि शास्त्रोंका विद्वान्, बहुभाषाप्रवीण, पितृकर्मनिष्णात ब्राह्मण माध्यम रक्खा जाय। इस कर्ममें मृतकके पुत्र, पौत्र वा प्रपौत्रका सम्पर्क अवश्य होना चाहिये। उन्हें श्रद्धालु भी होना चाहिये।

पितरोंके आह्वानके समय अमावास्या आदि तिथिका नियम, अपराह्णकाल, यज्ञोपवीतके दक्षिण स्कन्धमें करनेका नियम, तिल, घृत, मधु, तुलसीदल, गङ्गाजलयुक्त ओदनका तथा रजतपात्रका उपयोग भी शास्त्रानुकूल अनुसृत किया जाना चाहिये। हाँ, आश्विनके दिनोंमें मृतककी मृत-तिथिके अनुसार भी पितरोंका आह्वान हो सकता है, अथवा क्षयाहवाले दिन भी मृतकका आह्वान हो सकता है। उसका कारण यह है कि पितृलोक चन्द्रलोकपर है। आश्विनके दिनोंमें चन्द्रमा अन्य मासोंकी अपेक्षा पृथिवीके अधिक निकट होता है, इसलिये उसकी आकर्षण-शक्तिका प्रभाव पृथिवी तथा उसमें स्थित देहधारियोंपर विशेष रूपसे पड़ता है। तब चन्द्रलोकस्थित पितरोंका भी हमसे सम्बन्ध होकर परस्पर आदान-प्रदान होता है। क्षयाहकी तिथिमें वे पितर सीधे उसी मार्गमें होते हैं; क्योंकि तिथि चन्द्रगतिके अनुसार हुआ करती है और उस स्थितिमें वे पितर उसी मार्गमें हुआ करते हैं, जिस तिथिमें वे मृत्यु प्राप्त करके उस स्थानमें प्राप्त हुए थे।

कृष्णपक्षमें पितरोंके आह्वानका कारण यह होता है कि उस समय सूर्य उनके निकट होनेसे वह उनका दिन होता है, अमावास्या उनका मध्याह्न होती है। जब पितरोंका निद्रा-समय हो, (शुक्लपक्षकी दशमीसे कृष्णपक्षकी सप्तमीतक) उस समय पितरोंका आह्वान नहीं करना चाहिये; क्योंकि उस समय वे बिना आश्विनमासके अन्य मासमें संवाद नहीं करना चाहते, उस समय कई अन्य भूत-प्रेतादि ही हमसे संवाद कर रहे हों, यह सम्भव होता है। तीन पीढ़ीसे अधिकके पितरोंको भी संवादके लिये नहीं बुलाना चाहिये; क्योंकि वे उस समय चन्द्रलोकसे ऊपरके लोकमें चले जाते हैं। पितृकोटिमें न रहकर देवकोटिमें चले जाते हैं। उन्हें बुलानेके लिये शास्त्रीय अन्य उपाय करने पड़ेंगे। कई मृतक तो आरम्भमें ही पितृकोटिमें न जाकर परलोकके निम्नस्तर नरकादि लोकोंमें अथवा भूत-प्रेतादि योनिमें चले जाते हैं, जहाँ उन्हें बहुत अशान्ति रहती है।

हमारे पूर्वज जिस बातको आध्यात्मिक प्रकारसे तथा मन्त्रशक्तिसे करते थे, पाश्चात्य वैज्ञानिक उसी बातको

आधिभौतिक प्रकारसे तथा यन्त्रशक्तिसे करते हैं। पहले प्रकारका अवलम्बन करनेपर शास्त्रोंपर दृढ़ निष्ठा बनी रहती है, श्रद्धा-विश्वास बना रहता है, आस्तिकता बनी रहती है। अतः हमें इधर प्रवृत्ति करनी चाहिये।

फलतः परलोकविद्या अवश्य है, पुनर्जन्म भी अवश्य है। यह सब सुकर्म-दुष्कर्मके फल हैं। जो इन वादोंपर हृदयसे आस्था रखते हैं; वे असत्य, कपट, चोरी, ठगी, बेईमानी आदि दुष्कृत्य नहीं करते; पर परलोकसे डरनेवाले लोग, पुनर्जन्म और परलोक एवं कर्मफलमें विश्वास रखनेवाले, धर्मपरायण, निर्लोभ, प्रायः निःस्वार्थ, परोपकार-परायण, पुण्यनिरत रहा करते हैं। आजकल कई लोग आडम्बरसे तो 'पुनर्जन्म' मानते हैं; पर वेद-शास्त्रादिमें छल, अर्थका अनर्थ आदि करके, स्वविरुद्ध शास्त्रीय सिद्धान्तोंमें प्रक्षेप बताकर ऋषि-मुनियोंके अनभीष्ट अर्थ करके परमेश्वर व परलोकसे डर नहीं रखते, उन्हींके लाभार्थ 'कल्याण' ने इस विशेषाङ्कसे जनताकी सेवा की है। आशा है जनता भी इसका प्रचार करके हिंदू-धर्मको गौरवमय पद प्रदान करनेमें कुछ भी उठा नहीं रखेगी। यह विषय हमारे 'श्रीसनातनधर्मालोक ग्रन्थमाला' के विभिन्न पुष्पोंमें देखना चाहिये।*

(जन्माष्टमी सं० २०२५)

पुनर्जन्मः एक दार्शनिक विवेचन

(लेखक—पण्डित श्रीजनार्दनजी मिश्र, पङ्कज, शास्त्री)

[पृष्ठ २०० से आगे]

कई नास्तिकोंका कहना है कि 'जबतक शरीर है, तभीतक इसमें चेतन आत्माकी प्रतीति होती है, शरीरके जला या दफना दिये जानेपर आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है; अतः शरीरसे भिन्न आत्मा नहीं है। अतएव मरणके पश्चात् परलोककी यात्रा अथवा ब्रह्मलोकादिमें पहुँचकर मुक्त हो जानेकी बातें असंगत हैं।' (चार्वाक दर्शन) उनके कथनका वेदान्तने युक्तियुक्त खण्डन किया है। शरीर ही आत्मा है और पुनर्जन्म नहीं होता—यह कथन ठीक नहीं, गुमराह करनेवाला है। किंतु शरीरसे भिन्न, शरीर आदि पञ्चभूतों तथा उनके कार्योंको जाननेवाला, द्रष्टा या साक्षी आत्मा अवश्य है। सांख्योक्त सूत्र—'देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ।' से यह सिद्ध होता है; क्योंकि मृत्युकालमें शरीर हमारे-आपके सामने निश्चेष्ट पड़ा रहता है, तो भी उसमें सब पदार्थोंको जाननेवाला चेतन आत्मा नहीं रहता। अतः जिस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि शरीरके रहते हुए भी उसमें जीवात्मा नहीं रहता, इसी प्रकार यह भी मान लेना होगा कि शरीरके न रहनेपर भी आत्मा रहता है। वह इस स्थूलशरीरमें नहीं तो अन्य (सूक्ष्म व लिङ्ग) शरीरमें रहता है। अतः दर्शन-शास्त्रका यह कथन कि लिङ्गनाश होनेपर ही मुक्ति होती है—कितना सारगर्भित एवं रहस्यमय है, यह विद्वानोंके चिन्तनका ही विषय है। अथच मृत्युके बाद भी आत्माका अभाव नहीं होता। असत्का भाव नहीं और सत्का अभाव नहीं—इस न्यायसे 'यह कथन सर्वथा युक्तिविरुद्ध है कि "स्थूलशरीरसे भिन्न आत्मा नहीं है।' यदि इस शरीरसे पृथक् चेतन आत्मा नहीं होता तो वह अपने तथा दूसरे शरीरोंको नहीं जान सकता; क्योंकि घटादि जड पदार्थोंमें एक-दूसरेको या अपने-आपको जाननेकी शक्ति नहीं है। अतएव जिस प्रकार सबका ज्ञाता होनेके कारण ज्ञातारूपमें आत्माकी उपलब्धि प्रत्यक्ष है, उसी प्रकार शरीरका ज्ञाता होनेके कारण इस ज्ञेय शरीरसे उसका भिन्न-पृथक् होना भी प्रत्यक्ष है।

कहना नहीं होगा कि गौतमादि तार्किकोंने अपुनर्जन्मवादी नास्तिक दर्शनों तथा बाइबिल और कुरानादिको ईंटका जवाब पत्थरसे दिया है। इनकी युक्तियाँ बड़ी प्रबल और अकाट्य हैं। न्यायदर्शनमें स्पष्ट लिखा है—

'पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः।'

(न्या० सू० ३।१।१९)

* 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाके दस पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं; तृतीय पुष्प अब नहीं मिलता। इनके मँगानेका पता 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमाला कार्यालय, १ बी० १९ लाजपतनगर फर्स्ट (नई दिल्ली १४)। इस पतेसे मँगाना चाहिये। इससे धर्मसम्बन्धी सब शङ्काओंका समाधान हो जाता है।

यहाँ एक प्रश्न उठाकर उत्तर देनेकी चेष्टा की गयी है कि नवजात शिशुओंके मुखपर जो आनन्द, भय और शोकके चिह्न देखनेमें आते हैं, उनका क्या कारण है? ऊपरके सूत्रकी व्याख्या करते समय दिग्गज तार्किक वाचस्पति मिश्रजी कहते हैं—

'अभिप्रेतविषयप्रार्थनाप्राप्तौ सुखानुभवो हर्षः। अनिष्टविषयसाधनोपनिपाते तज्जिहासोर्हानाशक्यता भयम्। इष्टवियोगे सति तत्प्राप्त्यशक्यप्रार्थना शोकः। तदनुभवः सम्प्रतिपत्तिः। प्रत्यक्षबुद्धिनिरोधे तदनुसंधानविषयः स्मृतिः। अनुबन्धो भावनास्मृतिहेतुः संस्कारः।'

(न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका)

भावार्थ—"अभीष्ट विषयकी पूर्ति होनेपर 'हर्ष' होता है। अनिष्ट विषयकी उपस्थिति हो जानेपर उसे दूर करनेकी इच्छा होनेपर भी दूर नहीं कर सकनेपर 'भय' होता है। इष्टके वियोगसे 'शोक' होता है। इन्हींका प्रत्यक्ष अनुभव 'सम्प्रतिपत्ति' कहलाता है। अतीत अनुभवके अनुसंधानको 'स्मृति' कहते हैं और स्मृतिका कारणस्वरूप संस्कार ही 'अनुबन्ध' कहलाता है।"

अब स्पष्ट समझ लीजिये कि हर्ष, भय, शोककी उत्पत्तिका कोई-न-कोई कारण तो होगा ही। अथच सद्योजात शिशुकी मुखाकृतिपर प्रकट और लुप्त होनेवाले हर्ष, भय, शोकादि विकारोंका एकमात्र कारण पूर्वजन्मका अभ्यास ही है। यह पूर्वस्मृति एवं तज्जन्य संस्कार ही है, जिससे बालखिल्यों (छोटे-छोटे बच्चों) के मुखपर हर्ष, भय और शोकके लक्षण उदित होते रहते हैं।

बहुत सम्भव है, अपुनर्जन्मवादी यहाँ एक शङ्का खड़ी कर दें और अपनी दलीलमें कह दें कि 'बच्चोंका यह हँसना, रोना, किलकारियाँ भरना आदि प्राकृतिक हैं। जिस प्रकार कमल तालाबमें मुसकरा उठते हैं और संध्या समय सम्पुटित हो जाते हैं, अथच इसे क्यों न 'आकस्मिकवाद' मान लिया जाय?' उपर्युक्त आक्षेपके उत्तरमें न्याय-सूत्रकारने अपना दूसरा सूत्र सामने रख दिया है—

'नोष्णशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मकविकाराणाम्।'

(न्या० सू० ३।१।२१)

कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि कमलके विकास तथा संकोचवाले इस उदाहरणसे भी 'आकस्मिकवाद' की सिद्धि नहीं होती। इसलिये कि पञ्चभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश) से बनी वस्तुओंमें जो विकार भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, उनके कारण ग्रीष्म, वर्षा तथा शीत हैं। विशेष कारणके बिना उनकी उत्पत्ति सम्भव नहीं। अथच शिशुके मुखपर जो भिन्न-भिन्न विकार या लक्षण परिलक्षित होते हैं, उनके लिये कुछ-न-कुछ कारण तो मानना ही पड़ेगा। यही विशेष कारण 'पूर्वजन्माभ्यास' है। यही कारण है कि जन्म लेते ही शिशुकी जननीके स्तन्यपानकी ओर प्राकृतिक प्रवृत्ति जग जाती है। लिखा भी है—

'प्रेत्याऽऽहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्।'

(न्या० सू० ३।१।२२)

अर्थात् 'सद्योजात शिशुको माताका स्तन चूसना बतलानेवाला गुरु उसका पूर्वजन्मका अभ्यास ही है।' ऊपरके सूत्रका भाष्य करते हुए वात्स्यायनने लिखा है—

'जातमात्रस्य वत्सस्य प्रवृत्तिलिङ्गः स्तन्याभिलाषो गृह्यते। स च नान्तरेणाहाराभ्यासम्।' 'तेनानुमीयते भूतपूर्वं शरीरं यत्रानेनाहारोऽभ्यस्त इति। स खल्वयमात्मा पूर्वशरीरात् प्रेत्य शरीरान्तरमापन्नः क्षुत्पीडितः पूर्वाभ्यस्तमाहारमनुस्मरन् स्तन्यमभिलषति।' (वा० भा०)

भावार्थ—'जन्म लेते ही बच्चेमें माताके स्तनोंको चूस-चूसकर दूध पीनेकी प्रवृत्ति देखी जाती है। दुग्धपान (भोजन) की ऐसी अभिलाषा पूर्वाभ्यासके बिना कदापि सम्भव नहीं। इसीसे अनुमान होता है कि वही आत्मा एक शरीरसे दूसरे शरीरमें आकर पूर्वाभ्याससे प्रेरित भूख लगनेपर दूध पीनेमें प्रवृत्त होता है।'

नास्तिकवादने आगे चलकर फिर दूसरा आक्षेप किया है। उसका कहना सम्भवतः यदि ऐसा हो—

'अयसोऽयस्कान्ताभिगमनवत्तदुपसर्पणम्।'

(न्यायसूत्र ३।१।२३)

अर्थात् 'जिस प्रकार लोहा स्वभावतः (बिना किसी अभ्यासके) चुम्बककी ओर खिंच जाता है, उसी प्रकार शिशु भी स्वभावतः (न कि पूर्वाभ्यासवशतः) दुग्धपानकी ओर प्रवृत्त होता है।'

इस युक्तिका उत्तर नैयायिक गौतमने जिस प्रबल युक्तिसे दिया है, वह विचारणीय है।

'नान्यत्र प्रवृत्त्यभावात्।' (न्या० सू० ३।१।२४)

—वस्तुतः ऐसा आक्षेप निःसार है—तथ्यहीन है। इसलिये कि लोहा चुम्बकसे आकृष्ट होता है, अन्य वस्तुओंमें नहीं। इससे तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि कारण-कार्यका सम्बन्ध नियमित है—विनिश्चित है और उसमें अन्यथा भी नहीं हो सकता। माताके स्तनोंको चूसनेवाले बालकका स्तन्यपान सकारण है—आकस्मिक नहीं। न्यायसूत्रमें महर्षि गौतमने प्रमेयोंके अन्तर्गत बारह पदार्थोंके नाम दिये हैं। जैसे—आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म), फल, दुःख और अपवर्ग। प्रेत्यभावका अर्थ है—

'प्रेत्य मृत्वा भावो जननम् इति प्रेत्यभावः।'

"मृत्युके पश्चात् पुनः जन्म लेना ही 'प्रेत्यभाव' है।" अर्थात् प्रेत्यभाव पुनर्जन्मका ही पर्याय है। 'तर्कदीपिका'में लिखा है—

'मरणोत्तरं जन्म प्रेत्यभावः।' अर्थात् मृत्युके अनन्तर जन्म लेना ही 'प्रेत्यभाव' है। न्यायसूत्र (१।१।१९) में सूत्रकारने कहा है—'पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः।'—अर्थात् मरणके उपरान्त पुनः उत्पन्न होना ही 'प्रेत्यभाव' है। वात्स्यायनके भाष्यानुसार—'उत्पन्नस्य सम्बद्धस्य सम्बन्धस्तु देहेन्द्रियमनोबुद्धिवेदनाभिः, पुनरुत्पत्तिः पुनर्देहादिभिः सम्बन्धः।'

शरीरान्तरके साथ ही-साथ इन्द्रिय, मन, बुद्धि और संस्कारोंसे युक्त होना ही 'प्रेत्यभाव' है।

श्रीमद्भगवद्गीताके १५वें अध्यायमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका वचन है—

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

अर्थात् 'जब यह जीवात्मा शरीर धारण करता है और जब इसे छोड़ देता है, यह इन्हें इस प्रकार ले जाता है जैसे वायु अपने साथ गन्ध लिये जाती है।' कहना नहीं होगा कि वायुका एक दूसरा नाम 'गन्धवह' भी है। उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर शरीरान्तर धारण करनेवाला यह जीव भी कान, आँख, स्पर्श, रसना (जीभ), घ्राण (नाक) तथा छठे मनकी सूक्ष्मशक्तियों साथ लेकर चलता है और उनके द्वारा विषयोंका उपसेवन करता है।

न्याय तथा अपर दार्शनिक ग्रन्थोंके मतानुसार मृत्युसे स्थूलशरीरका अवसान तो हो जाता है; आत्माका विनाश नहीं होता। हाँ, प्राचीन शरीरके साथ अवश्य उसका सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। तदनन्तर नवीन देह धारण करना ही 'प्रेत्यभाव' अथवा 'पुनर्जन्म' है। पुनर्जन्मकी पुष्टिके लिये न्यायसूत्रकारने एक-से-एक बढ़कर युक्तियोंका सहारा लिया है। उनका एक सूत्र है—

'वीतरागजन्माऽदर्शनात्।' (न्या० सू० ३।१।२५)

इसका अभिप्राय यह है कि 'वीतरागपुरुषका जन्म नहीं होता।' इससे सिद्ध हो जाता है कि रागी या रागयुक्त पुरुषका ही पुनर्जन्म होता है। राग क्या है? पूर्वानुभूत विषयोंका चिन्तन। और यही चिन्तन रागका कारण है। पूर्वजन्ममें अनुभूत भोग-विषयोंको याद करके ही जीव पुनः पुनरपि विषयोंमें आसक्त होता है और पूर्ववत् आचरण करने लगता है। बस, जन्मना कर्म तथा कर्मणा जन्मका ताँता लग जाता है।

ऐसी अवस्थामें 'योगभ्रष्ट—अपरिपक्वकषाय पुरुषोंको भी 'पुनर्जन्म' लेना पड़ जाता है। गीतामें अर्जुनका प्रश्न है कि 'योगसे विचलित तथा अप्राप्त योग-संसिद्धि पुरुषोंकी क्या गति होती है?' धनञ्जयकी इस शङ्काके उत्तरमें (गीता ६।४०-४१) भगवान् हृषीकेशने कहा है कि 'ये योग-विचलित पुण्यात्माओंके लिये सुरक्षित लोकोंमें अनेक वर्षोतक वास करके पुनः पवित्र ब्राह्मण अथवा राजकुलमें जन्म लेते हैं।'

गीतामें एक बात बड़े मार्केकी है। भगवान्ने अर्जुनसे कहा है कि 'हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत-से—न जाने कितने जन्म इससे पूर्व भी हो चुके हैं। मुझे तो वे सभी जन्म याद हैं, लेकिन तुझे एक भी याद नहीं।' (गीता ४।५) यहाँ यह शङ्का स्वाभाविक है कि अपने विगत जन्मोंका स्मरण सभीको क्यों नहीं रहता? इस शङ्काके निराकरणके लिये दिग्गज तार्किक वाचस्पति मिश्रने अपनी 'न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका'में लिखा है कि 'पूर्वाभ्याससे ही जीवनका स्मृति-संस्कार बनता है—यह एक अनुमान-सिद्ध बात है।' किसी भी शिशुमें पूर्वसंस्कारजनित प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है, उसीसे उसके पूर्वजन्मका अनुमान होता है। फिर क्या कारण है कि उसे पूर्वजन्मकी बातोंकी याद नहीं रह जाती? इसका उत्तर यही है कि 'अदृष्टका परिपाक जितना संस्कार उद्बोधित करता (जगाता) है, उतनी ही स्मृति उद्बुद्ध हो सकती है।' ऐसा कोई नियम नहीं है कि एक बात यदि स्मृति-पटलपर अङ्कित हो जाय

तो सारी बातें भी अङ्कित ही हो जायँगी। शरीरान्तर-प्राप्ति होनेपर केवल प्रबलतम संस्कार ही सूक्ष्मरूपसे पुनरुत्पन्न होता है।

इस विषयमें पातञ्जलयोगदर्शनमें एक सूत्र आया है—

'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्।'

(योगदर्शन, विभू० पाद, सू० १८)

भावार्थ—'संस्कारके साक्षात् करनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान होता है।' संस्कार दो प्रकारके होते हैं–(१) एक स्मृतिके बीजरूपसे रहते हैं, जो स्मृति और क्लेशोंके कारण हैं। (२) विपाकके कारण वासनारूपसे रहते हैं, जो जन्म, आयु, भोग और उनमें सुख-दुःखके कारण होते हैं। वे धर्म और अधर्मरूप हैं। ये सभी संस्कार इस जन्म तथा पिछले जन्मोंमें किये हुए कर्मोंसे बनते हैं तथा ग्रामोफोनकी प्लेटके रेकार्डके समान चित्तमें चित्रित रहते हैं। वे परिणाम, चेष्टा, निरोध, शक्ति, जीवन और धर्मकी भाँति अपरिदृष्ट चित्तके धर्म हैं। उनमें संयम करनेसे योगीको उनका साक्षात् हो जाता है। इससे उसको जिस देश, काल और जिन-जिन निमित्तोंसे वे संस्कार बने हैं, सब स्मरण हो जाते हैं। यही 'पूर्वजन्म-ज्ञान' है। (योगियोंके अतिरिक्त भी बहुत-से शुद्ध संस्कारवाले बालक भी अपने पूर्वजन्मका हाल बतला देते हैं।) जिस प्रकार संस्कारोंके साक्षात् करनेसे अपने पूर्वजन्मका ज्ञान होता है, उसी प्रकार दूसरेके संस्कारोंके साक्षात् करनेसे दूसरेके पूर्वजन्मका ज्ञान होता है। विज्ञानभिक्षुके अनुसार 'पर' अर्थात् भावी जन्मोंका भी इसी भाँति संस्कारके साक्षात् करनेसे ज्ञान हो जाता है। इस क्रममें योगसूत्र-भाष्यकारोंने आवट्य नामक योगीश्वरका योगिराज जैगीषव्यके साथ एक संवाद उपन्यस्त किया है।

'साधनपाद'के ३९वें सूत्र—'अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।' के अनुसार 'अपरिग्रहकी स्थिरतामें भूत तथा भविष्य जन्मका ज्ञान हो जाता है कि इससे पूर्वजन्म क्या था, कैसा था और कहाँ था? और आगे कैसा होगा।'

'आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः।'—अक्षपादके ऊपरके सूत्रसे इतना सिद्ध हो जाता है कि 'मृत्युके बाद प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म) होता है तथा आत्मा नित्य होनेके कारण एकरस रहता है।'

न्यायदर्शनके भाष्यकार वात्स्यायनके मतानुसार प्रेत्यभाव अर्थात् पुनर्जन्मकी अस्वीकृतिमें दो प्रबल दोष उपस्थित होते हैं—

(१) कृतहान—किये हुए कर्मोंके फलोंका अभोग।

(२) अकृताभ्यागम—अकृत अर्थात् नहीं भी किये हुए कर्मोंका भोग। आस्तिक दर्शनोंका सिद्धान्त है—

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'—तदनुसार हमारे जीवनके सुख-दुःख हमारे कर्मोंके ही फल हैं। शुभ कर्मोंके फल शुभावह तथा अशुभके भयावह होते हैं। किंतु यह भी देखनेमें आता है कि इस जीवनमें किये गये बहुत-से कर्मोंके फल हमें इसी जीवनमें नहीं मिलते। अब प्रश्न उठता है कि यदि जन्मान्तर नहीं माना जाय तो इन कृत कर्मोंके फल ही लुप्त हो जाते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि तब तो ऐसा प्रतीत होने लगेगा कि जीवनमें बिना पुण्य या तप किये ही कोई सुख भोग रहा है और बिना पाप किये ही कोई दुःख उठा रहा है। अथच यदि पूर्वजन्मका पचड़ा हटा दिया जाय तो फिर बिना कर्मोंके ही फलभोग मानना पड़ जायगा।

'न्यायवार्तिक तात्पर्यटीका'में वाचस्पति मिश्रजीका कहना है कि 'यदि पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंका अस्तित्व ही नहीं माना जाय और अणु-परमाणुओंके संयोगसे ही शरीरोत्पत्ति मान ली जाय, तब तो इसे मान ही लेना पड़ेगा कि सुख-दुःखका भोग यों ही होता है। तब तो फिर कार्य होता है, परंतु कारणका अभाव है और फल कर्मपर बिल्कुल निर्भर नहीं करता। ऐसी अवस्थामें कर्मफल कोई वस्तु ही नहीं रह जाता। साथ ही शास्त्रीय विधि-निषेध भी महत्त्वहीन और निरर्थक हो जाते हैं। जब मनुष्य बिना शुभ कर्म किये ही सुख भोगता है, तब वह आपातमनोहर वर्जित कर्मको छोड़कर कष्टसाध्य शास्त्रविहित कर्मोंकी ओर क्यों अग्रसर होगा? और तब उस प्राणिद प्राणायामका मूल्य ही क्या रह जाता है? यदि कर्मको निष्फल और जीवनको आकस्मिक मान लिया जाय तो सभी शास्त्र पागल लोगोंके स्वप्न जायँगे—व्यर्थ प्रतीत होने लगेंगे। शास्त्रानुष्ठानके लिये तो गीतामें स्वयं भगवान्‌ने श्रीमुखसे आदेश दिया है—(१६।२३-२४) के अनुसार अर्थात् 'कर्तव्याकर्तव्य-विवेचन'के लिये शास्त्र ही प्रमाण है। अतएव कृतहान और अकृताभ्यागम दोषके परिहारार्थ कर्मानुसार पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मको स्वीकार करना ही पड़ेगा।

अब प्रश्न हो सकता है कि 'जन्म ही क्यों होता है?' इसका समीचीन एवं तर्कसंगत उत्तर न्यायदर्शनने दिया है—

'पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः ।'

(न्या० सू० ३ । २ । ६४)

अर्थात् 'पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंके फलानुबन्धसे ही देहकी उत्पत्ति होती है।' यह शरीर-धारण स्वतन्त्र भूतोंसे नहीं, बल्कि धर्माधर्मरूप अदृष्टकी शक्तिसे प्रेरित पञ्चभूतोंसे होता है। यहाँ भी नास्तिक अड़ंगा लगाते हैं और अपनी लचर दलील पेश करते हैं कि 'जब पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—पञ्चतत्त्वोंसे ही देह बन जाता है तो फिर उसके निमित्त पूर्वजन्मके कर्मोंको मान लेनेकी आवश्यकता ही क्या ? घट (घड़े) की भाँति भौतिक अणु-परमाणुओंके संयोगसे बन जानेवाले शरीरके लिये निमित्त कारण क्यों ?' इस आक्षेपका उत्तर गौतमने निम्नस्थ सूत्रमें दिया है—

'भूतेभ्यो मूर्त्युपादानवत्तदुपादानम् ।'

(न्या० सू० ३ । २ । ६५)

महर्षि वात्स्यायनके भाष्यानुसार भावार्थ यह है—'सिकता (बालू) से कंकड़-पत्थर आदिकी उत्पत्ति कर्मसापेक्ष नहीं। इसलिये कि ये कंकड़-पत्थर अपने-आप भौतिक परमाणुओंके संयोगसे बन जाते हैं। लेकिन गर्भस्थ शरीर केवल शुक्र-शोणितके संयोगसे ही नहीं बन जाता। यहाँ तो पूर्वकर्मको हेतु मानना ही पड़ेगा। इसलिये कि कंकड़-पत्थर वीर्यके बिना ही उत्पन्न हो जाते हैं, किंतु शरीरोत्पत्ति वीर्यसे होती है।'

ऊपरके आक्षेपका खण्डन न्यायसूत्र-भाष्यकार वात्स्यायनने बड़े ही जोरदार शब्दोंमें किया है। वे लिखते हैं—

'विषमश्चायमुपन्यासः। कस्मात् ? निर्बीजा इमा मूर्तयः उत्पद्यन्ते, बीजपूर्विका तु शरीरोत्पत्तिः। सत्त्वस्य गर्भवासानुभवनीयं कर्म पित्रोश्च पुत्रफलानुभवनीये कर्मणी मातुर्गर्भाशये शरीरोत्पत्तिं भूतेभ्यः प्रयोजयन्ति ।'

(३ । २ । ६७ की टीका)

अर्थात् 'यह कैसी उलटी गङ्गा बहाते हो ! सबीज शरीरका दृष्टान्त निर्बीज मिट्टी-कंकड़-पत्थरसे नहीं दिया जा सकता। देहोत्पत्तिके लिये जीवका माताके गर्भमें वास आवश्यक है। अपने माता-पिताके कर्मानुरूप जीवकी सृष्टि गर्भमें होती है। कर्म ही पञ्चभूतोंसे जीवके शरीरकी रचना करवाते हैं।'

शरीरकी रचनाके विषयमें महर्षि गौतमने अपने न्याय-दर्शनमें कहा है कि 'खाया-पीया आहार भी देहकी उत्पत्तिमें कारण है। वात्स्यायनके भाष्यानुसार वही आहार पच जानेपर माताके शरीरमें रस होकर बढ़ता है। उसीके अनुसार गर्भस्थ बीज बढ़कर मांस, ग्रन्थि आदि अनेक रूप धारण करता है। गर्भकी नाड़ीसे उतरकर रस-द्रव्यकी जो वृद्धि होती है, उसीसे गर्भस्थ शरीर पुष्ट होकर प्रसव-योग्य बन जाता है। लेकिन थालीमें सजे-सजाये भोजन-द्रव्यमें ऐसी शक्ति नहीं होती। इससे प्रमाणित होता है कि आमाशयस्थ भोजन ही गर्भ-शरीरकी उत्पत्तिका एकमात्र करण नहीं है। इसलिये कि कर्मकी सहायता लेनी पड़ती है।' (३ । २ । ६८)

अपुनर्जन्मवादी यह आक्षेप कर सकते हैं कि जब स्त्री-पुरुषके रजोवीर्यका संयोग ही गर्भाधानका कारण है, तब फिर पुनर्जन्मका अस्तित्व क्यों माना जाय ? तो इसका खण्डन गौतमके नीचे लिखे सूत्रमें किया गया है—

'प्राप्तौ चानियमात् ।' (न्या० सू० ३ । २ । ६९)

इसपर महर्षि वात्स्यायनका भाष्य कहता है—

'न सर्वदम्पत्योः संयोगो गर्भाधानहेतुर्दृश्यते, तत्रासति कर्मणि न भवति सति च भवति, इति अनुपपन्नो नियमाभाव इति ।'

—अर्थात् 'पति-पत्नीके सभी संयोग गर्भ स्थापित नहीं कर सकते। इससे प्रकट होता है कि शुक्र-शोणितसंयोग ही गर्भाधानका एकमात्र निरपेक्ष कारण नहीं है।' उसके लिये किसी और वस्तुकी अपेक्षा बनी रहती है और वह है 'प्रारब्ध'। प्रारब्धकर्मके अतिरिक्त रजोवीर्यका संयोग गर्भधारण करनेमें किसी प्रकार भी समर्थ नहीं। अथच पञ्च महाभूतोंको देहोत्पत्तिका निरपेक्ष कारण नहीं माना जा सकता। कर्म-सापेक्ष मानना ही युक्तियुक्त होगा। प्रारब्धकर्मानुसार ही देहकी उत्पत्ति और उसमें आत्माका संयोग होता है। गौतमने लिखा है—

'शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं कर्म ।'

(न्या० सू० ३ । २ । ७०)

ऊपरके सूत्रसे स्पष्ट हो जाता है कि यह कर्म ही कारण है कि कोई ब्राह्मण अथवा राजाके कुलमें जन्म लेता है और कोई शूद्रादि नीच कुलमें। कोई शरीरके सर्वावयवोंसे पूर्ण होता है और कोई अपूर्ण या विकलाङ्ग। कोई रोगी तथा कोई नीरोग। इसी प्रकार कोई मेधावी और कोई मन्द। शरीरगत यह

भिन्नता भिन्न-भिन्न प्रारब्ध कर्मोंके फलस्वरूप ही हुआ करती है। अब यदि प्रारब्ध कर्मका अस्तित्व न माना जाय, तब तो सभी आत्माओंको तुल्य (एक समान) मानना होगा। साथ ही पृथ्वी, जल, पावक, पवन और गगन—पञ्चभूतोंका कोई नियामक ही नहीं रह जाता और नियामक न हो तो सभी शरीर एक-से बनेंगे, किंतु यह कथन तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। भिन्न-भिन्न आकार-प्रकारके शारीरिक संस्कार लेकर ही जीव जन्म ग्रहण करते हैं। अथच इस कर्मको ही निमित्त मानना पड़ेगा। यदि प्रारब्धकर्म नहीं माना जाय, तब तो जन्म-विषयक अनियम या अव्यवस्था बनी ही रहेगी। अतः गौतमके निम्नलिखित सूत्रसे—

'एतेनानियमः प्रत्युक्तः।' (न्या० सू० ३ । २ । ७१)

'प्रारब्ध कर्मको निमित्त कारण मान लेनेसे जन्मसम्बन्धी अव्यवस्था अथवा अनियम खण्डित हो जाता है।'

यह सत्य है कि कृतकर्मोंका फल समय पाकर कर्ताके पास स्वयमेव पहुँच जाता है। जिस प्रकार हजारों गौओंको मैदानमें खड़ी कर दीजिये और किसी एकका बछड़ा खोल दीजिये और देखिये कि वह बछड़ा सभी गौओंके बीच ओटमें छिपी-खड़ी अपनी माताके पास पहुँच जाता है कि नहीं।

एक बात और ध्यान देनेकी है। वह यह है कि यदि देहोत्पत्तिमें कर्मको निमित्त नहीं माना जाय और केवल भौतिक तत्त्वों (रजोवीर्य) का संयोग ही एकमात्र कारण मान लिया जाय तो फिर संयोगके नाश अर्थात् मृत्युका क्या कारण हो सकता है? विशेष कारणके बिना तो शरीरकी नित्यता और मृत्युकी अनुपपत्ति (असिद्धि) का एक जबर्दस्त प्रश्न उठ खड़ा होता है। इसी आक्षेपके निराकरणके लिये महर्षि गौतमने निम्नस्थ सूत्र लिखा है—

'नित्यत्वप्रसंगश्च प्रायणानुपपत्तेः।' (न्या० सू० ३ । २ । ७६)

इसके भाष्यमें वात्स्यायनका कहना है कि 'भोगद्वारा कर्माशयका क्षय हो जानेपर एक देहका अन्त हो जाता है। साथ ही दूसरे कर्माशयका फल भोगनेके लिये शरीरान्तर धारण करना पड़ता है। यदि केवल पञ्चभूत ही मृत्युके कारण होते तो फिर मृत्यु क्योंकर होती? इसलिये कि पञ्चभूत नित्य हैं। अथच किसका क्षय होनेपर शरीरान्त होता है?' इससे सिद्ध हुआ कि शरीरकी उत्पत्ति और विनाश कर्माशयपर अवलम्बित हैं। प्रारब्धकर्मके अनुसार ही फल भोगनेके लिये जन्म होता है और कर्माशयका क्षय हो जानेपर शरीरसे आत्मा निकल जाया करता है। अथच जन्म-मरण कर्मसापेक्ष हैं—सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र नहीं।

इस प्रसङ्गमें नैयायिकोंका 'तृणजलौका' न्याय प्रसिद्ध है। इस न्यायका प्रयोग नैयायिक आत्माके एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरमें प्रवेश करते समय दृष्टान्तरूपसे किया करते हैं। श्रीमद्भागवतमहापुराणमें इसका आशय सुस्पष्ट किया गया है कि 'जिस प्रकार घासपर रेंगनेवाली जोंक दूसरी घासपर जाते समय अपना अगला पाँव घासकी किसी पँखुड़ीको आधार बनाकर रख लेती है, तब पिछला पाँव पहली घासपरसे उठाती है, उसी प्रकार जीव शरीरान्तरका आधार लेकर ही पूर्वतन शरीरका त्याग कर देता है।'

सच तो यह है कि मृत्यु पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्मके बीचका प्रवेशद्वार है। यहीं पहुँचकर नैयायिकोंका 'देहली-दीपकन्याय' चरितार्थ होता है।

मनने कभी शान्ति नहीं पायी

कबहुँ मन बिश्राम न मान्यो।
निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो॥
जदपि बिषय-सँग सह्यो दुसह दुख, बिषम जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानतहूँ नहिं जान्यो॥
जनम अनेक किये नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो।
होइ न बिमल बिबेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो॥
निज हित नाथ पिता गुरु-हरिसों हरषि हृदै नहिं आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहिं जनम सिरान्यो॥

—तुलसीदासजी

'पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः ।'

(न्या० सू० ३ । २ । ६४)

अर्थात् 'पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंके फलानुबन्धसे ही देहकी उत्पत्ति होती है।' यह शरीर-धारण स्वतन्त्र भूतोंसे नहीं, बल्कि धर्माधर्मरूप अदृष्टकी शक्तिसे प्रेरित पञ्चभूतोंसे होता है। यहाँ भी नास्तिक अड़ंगा लगाते हैं और अपनी लचर दलील पेश करते हैं कि 'जब पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—पञ्चतत्त्वोंसे ही देह बन जाता है तो फिर उसके निमित्त पूर्वजन्मके कर्मोंको मान लेनेकी आवश्यकता ही क्या ? घट (घड़े) की भाँति भौतिक अणु-परमाणुओंके संयोगसे बन जानेवाले शरीरके लिये निमित्त कारण क्यों ?' इस आक्षेपका उत्तर गौतमने निम्नस्थ सूत्रमें दिया है—

'भूतेभ्यो मूर्त्युपादानवत्तदुपादानम् ।'

(न्या० सू० ३ । २ । ६५)

महर्षि वात्स्यायनके भाष्यानुसार भावार्थ यह है— 'सिकता (बालू) से कंकड़-पत्थर आदिकी उत्पत्ति कर्मसापेक्ष नहीं। इसलिये कि ये कंकड़-पत्थर अपने-आप भौतिक परमाणुओंके संयोगसे बन जाते हैं। लेकिन गर्भस्थ शरीर केवल शुक्र-शोणितके संयोगसे ही नहीं बन जाता। यहाँ तो पूर्वकर्मको हेतु मानना ही पड़ेगा। इसलिये कि कंकड़-पत्थर वीर्यके बिना ही उत्पन्न हो जाते हैं, किंतु शरीरोत्पत्ति वीर्यसे होती है।'

ऊपरके आक्षेपका खण्डन न्यायसूत्र-भाष्यकार वात्स्यायनने बड़े ही जोरदार शब्दोंमें किया है। वे लिखते हैं—

'नियमार्थमुपन्यासः । कस्मात् ? निर्बीजा इमा मूर्तयः उपपद्यन्ते, बीजपूर्विका तु शरीरोत्पत्तिः । सत्त्वस्य गर्भवासानुभवनीयं कर्म पित्रोश्च पुत्रफलानुभवनीये कर्मणी मातुर्गर्भाशये शरीरोत्पत्तिर्भूतेभ्यः प्रयोजयन्ति ।'

(३ । २ । ६७ की टीका)

अर्थात् 'यह कैसी उलटी गङ्गा बहाते हो ! सबीज शरीरका दृष्टान्त निर्बीज मिट्टी-कंकड़-पत्थरसे नहीं दिया जा सकता। देहोत्पत्तिके लिये जीवका माताके गर्भमें वास आवश्यक है। अपने माता-पिताके कर्मानुरूप जीवकी सृष्टि गर्भमें होती है। कर्म ही पञ्चभूतोंसे जीवके शरीरकी रचना करवाते हैं।'

शरीरकी रचनाके विषयमें महर्षि गौतमने अपने न्याय-दर्शनमें कहा है कि 'खाया-पीया आहार भी देहकी उत्पत्तिमें कारण है। वात्स्यायनके भाष्यानुसार वही आहार पच जानेपर माताके शरीरमें रस होकर बढ़ता है। उसीके अनुसार गर्भस्थ बीज बढ़कर मांस, ग्रन्थि आदि अनेक रूप धारण करता है। गर्भकी नाड़ीसे उतरकर रस-द्रव्यकी जो वृद्धि होती है, उसीसे गर्भस्थ शरीर पुष्ट होकर प्रसव-योग्य बन जाता है। लेकिन थालीमें सजे-सजाये भोजन-द्रव्यमें ऐसी शक्ति नहीं होती। इससे प्रमाणित होता है कि आमाशयस्थ भोजन ही गर्भ-शरीरकी उत्पत्तिका एकमात्र कारण नहीं है। इसलिये कि कर्मकी सहायता लेनी पड़ती है।' (३ । २ । ६८)

अपुनर्जन्मवादी यह आक्षेप कर सकते हैं कि जब स्त्री-पुरुषके रजोवीर्यका संयोग ही गर्भाधानका कारण है, तब फिर पुनर्जन्मका अस्तित्व क्यों माना जाय ? तो इसका खण्डन गौतमके नीचे लिखे सूत्रमें किया गया है—

'प्राप्तौ चानियमात् ।'　(न्या० सू० ३ । २ । ६९)

इसपर महर्षि वात्स्यायनका भाष्य कहता है—

'न सर्वदम्पत्योः संयोगो गर्भाधानहेतुर्दृश्यते, तत्रासति कर्मणि न भवति सति च भवति, इति अनुपपन्नो नियमाभाव इति ।'

—अर्थात् 'पति-पत्नीके सभी संयोग गर्भ स्थापित नहीं कर सकते। इससे प्रकट होता है कि शुक्र-शोणित-संयोग ही गर्भाधानका एकमात्र निरपेक्ष कारण नहीं है।' उसके लिये किसी और वस्तुकी अपेक्षा बनी रहती है और वह है 'प्रारब्ध'। प्रारब्धकर्मके अतिरिक्त रजोवीर्यका संयोग गर्भधारण करनेमें किसी प्रकार भी समर्थ नहीं। अथच पञ्च महाभूतोंको देहोत्पत्तिका निरपेक्ष कारण नहीं माना जा सकता। कर्म-सापेक्ष मानना ही युक्तियुक्त होगा। प्रारब्धकर्मानुसार ही देहकी उत्पत्ति और उसमें आत्माका संयोग होता है। गौतमने लिखा है—

'शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं कर्म ।'

(न्या० सू० ३ । २ । ७०)

ऊपरके सूत्रसे स्पष्ट हो जाता है कि यह कर्म ही कारण है कि कोई ब्राह्मण अथवा राजाके कुलमें जन्म लेता है और कोई शूद्रादि नीच कुलमें। कोई शरीरसे सर्वाङ्गोंसे पूर्ण होता है और कोई अपूर्ण या विकलाङ्ग। कोई रोगी तथा कोई नीरोग। इसी प्रकार कोई मेधावी और कोई मन्द। शरीरगत यह

उचित-अनुचित प्रयत्नोंके रूपमें देखनेको मिलता है। किंतु श्रीमद्भागवतमें इस विषयमें स्पष्ट निर्णय दिया गया है कि शरीर स्वरूपतः ही विनश्वर होनेसे उसे अमर बनानेके सारे प्रयत्नोंका निष्फल होना अवश्यम्भावी है—

नहि तत् कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः।
अन्तावत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः॥
(११। २८। ४२)

शरीरका मरणधर्मसे ग्रस्त होना यह कोई गूढ़ रहस्य नहीं है।—'यत्कृतकं तदनित्यम्।' अर्थात् 'जो उत्पन्न होता है वह अनित्य होता है।' इस न्यायसे हम देख सकते हैं कि जब स्वयं यह पृथ्वी, जिसके आधारपर हमारा भौतिक जीवन रहता है और सम्पूर्ण सूर्यादि सृष्टि ही दीर्घकाल अवस्थायी होनेपर भी अन्ततोगत्वा विनश्वर ही है, तब भला इनके आधारपर रहनेवाले क्षुद्र शरीरके विनश्वर होनेमें संदेह ही क्या हो सकता है!

६—मृत्यु मनुष्यकी मित्र है, शत्रु नहीं

यदि हम प्रकृतिमें मृत्युके उद्देश्यको भलीभाँति समझ लें तो हमें यह देखते देर न लगे कि मृत्युका भय अविचारमूलक है; क्योंकि मृत्यु मनुष्यकी हित-शत्रु न होकर उसकी सच्ची हितैषिणी है। इस सम्बन्धमें पहले हमें इस महत्त्वपूर्ण बातको ध्यानमें रखना चाहिये कि मानव-जीवनका मुख्य ध्येय आध्यात्मिक विकास है। आनन्दमय प्रभुके विश्वरचना-रूप लीलाविष्करणका मुख्य ध्येय यही है। प्रकृति माता चराचर सृष्टिको इसी एकमेव ध्येयकी ओर अनवरत रूपसे लिये चली जा रही है। नरसे नारायण बननेमें ही इस विकासकी परिसमाप्ति है। अब चूँकि विकासकी लंबी दौड़में एक शरीर, एक जन्म पर्याप्त नहीं, इसलिये प्रकृतिमाता प्रारब्धकर्मकी समाप्तिके साथ ही एक जन्म, एक शरीरके विकासके योग्य न रहनेकी स्थितिमें दूसरा जन्म और दूसरा शरीर दे देती है। मृत्यु मनुष्यके आध्यात्मिक विकासकी लंबी दौड़में एक आवश्यक विश्रान्ति-स्थल है। इस मृत्युके कारण ही हमारे वर्तमान जीवनका भार हल्का होकर और विकासके अयोग्य पुराने शरीरादि जाकर नया ताजा शरीर मिलता है और नये उत्साह तथा नयी उमंगके साथ विकासकी नयी दौड़ प्रारम्भ होती है। मृत्यु ही जीवको एक योनिसे, एक शरीरसे छुड़ाकर दूसरी योनिमें, दूसरे शरीरमें ले जाती है। मृत्युके अभावमें जीव एक ही योनिमें एक ही शरीरमें बँधा रहे। चौरासी लाख योनियोंमेंसे घूमकर मानवदेहकी प्राप्ति आखिर मृत्युके कारण ही तो हुई है। मृत्युकालमें मरनेवाले मनुष्यकी आँखोंके सामने अँधेरा छाने लगता है। इस अँधेरेके द्वारा मानो प्रकृतिमाता विश्व-रंग-मंचपर चलनेवाले जीवनरूपी महानाटकके एक अङ्कके अन्तमें पर्दा डालना चाहती है। यह पर्दा डालनेकी क्रिया नाटकका दूसरा अङ्क प्रारम्भ होनेसे पहलेकी आवश्यक मध्यवर्ती अवस्था है। फिर पिण्ड-प्राणका वियोग हो जाता है, अर्थात् मृत्यु हो जाती है। तदनन्तर योग्यकालमें प्रारब्ध कर्मानुसार नये पिण्डके साथ प्राणका योग होकर, नये जीवनका और उसके साथ ही विकासकी अगली मंजिलका प्रारम्भ होता है। मनुष्य नया जन्म पाकर नये उत्साह और उमंगके साथ विकासकी ओर चल पड़ता है। मृत्यु होनेपर मनुष्यकी भौतिक सम्पत्ति, पुत्र-परिवारादि जहाँके तहाँ धरे रह जाते हैं। मनुष्यके साथ जाता है—केवल उसका विकास। अपनी विकास-भूमिके अनुसार ही मनुष्य नया शरीर, नया जन्म ग्रहण करता है और अपने विकासके अनुकूल वातावरणमें ही वह जन्म लेता है।

७—ज्ञानी और अज्ञानी पुरुषकी मृत्युमें महान् अन्तर है

आध्यात्मिक विकासकी दृष्टिसे मृत्युके उपर्युक्त आवश्यक संक्रमणकालको विवेकी पुरुष मृत्युके वास्तविक रहस्यसे परिचित होनेके कारण हँसते-खेलते पार कर जाते हैं। वे मृत्युका सहर्ष स्वागत करते हैं। उससे किंचित् भी भयभीत नहीं होते। इसके विपरीत प्राकृत अज्ञजनोंके लिये मृत्यु एक भयावह वस्तु बन जाती है। मृत्युकी कल्पनासे ही इनके मनपर आतङ्क छा जाता है। ऐसे लोगोंको मृत्युके समय अतीव कष्ट होता है; क्योंकि वे प्रकृतिमाताका उद्देश्य न समझनेके कारण उसके साथ सहकार करनेके स्थानपर संघर्ष ठान बैठते हैं। मृत्युकालमें बाह्य जगत् तथा उसके पदार्थोंकी आसक्तिके कारण उनमें और प्रकृतिमें एक तरहकी रस्साकसी शुरू हो जाती है। प्रकृति तो उन्हें उन्हींके विकासके हितमें बाह्य जगत् तथा विकासके अयोग्य शरीरसे छुड़ाना चाहती है और वे उसीके साथ चिपके रहना चाहते हैं। देह-गेहादि पदार्थोंकी आसक्ति जितनी अधिक होती है, उतना ही अधिक कष्ट मनुष्यको मृत्युकालमें होता है। अभयादि शक्तिसे सम्पन्न प्रकृतिके साथ इस संघर्षमें मर्यादित, अल्पशक्ति

जन्म-मृत्यु, अमरत्व, परलोक और पुनर्जन्मका स्वरूप तथा रहस्य

(लेखक—श्रीश्रीराम माधव चिंगले, एम्० ए०)

[पृष्ठ २०६ से आगे]

५–जन्म-मृत्युका यथार्थ तात्त्विक स्वरूप

'देह आत्मा नहीं' यह भारतीय धर्म तथा दर्शनका मुख्य सिद्धान्त या कहिये कि प्राण ही है। इसीलिये इस सिद्धान्तको एक चार्वाक या लोकायत दर्शनके नगण्यसे अपवादको छोड़कर शेष सभी दार्शनिक प्रयत्नपूर्वक सिद्ध करते हैं। देह तो प्रत्यक्षरूपसे जन्म-मृत्यु इत्यादि षड्भाव-विकारोंसे ग्रस्त है। किंतु देहके संदर्भमें भी जन्म और मृत्यु या नाशका अर्थ समझ लेना चाहिये। सत्कार्यवादके सिद्धान्तके अनुसार, जिसे आधुनिक विज्ञानका समर्थन प्राप्त है, किसी भी वस्तुका आत्यन्तिक विनाश नहीं होता—('Nothing is lost'); होता है—रूपान्तरमात्र। 'णश अदर्शने' इस व्युत्पत्तिके अनुसार नाश शब्दका अर्थ है—'दिखायी न देना।' अर्थात् व्यक्त रूपसे अव्यक्तरूप प्राप्त कर लेना। वस्तुका कार्यरूप छोड़कर कारणावस्थामें चला जाना ही उसका नाश है। यही बात 'जन्म' शब्दकी भी है। 'जनी प्रादुर्भावे।'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार जन्म लेनेका अर्थ है—वस्तुका अव्यक्तावस्थाको छोड़कर व्यक्तावस्था प्राप्त कर लेना, कारणावस्थाको छोड़कर कार्यावस्थामें अभिव्यक्त हो जाना।

पुनश्च, स्थूलशरीरकी लौकिक दृष्टिसे मृत्यु भी ऐसी बात नहीं कि एक बार मरनेपर हमें फिर दूसरा शरीर ही न मिले। 'नाभुक्तं क्षीयते कर्म।'—इस कर्मसिद्धान्तके अनुसार एक शरीरके छूटनेपर प्रारब्ध-कर्मानुसार दूसरा शरीर मिलना अवश्यम्भावी है। शरीर तो अज्ञान दशामें मनुष्यको स्वेच्छा या अनिच्छापूर्वक मिलता ही रहता है। यह क्रम तबतक चलता रहता है, जबतक मनुष्य अपना आध्यात्मिक विकास पूर्ण न कर ले, अर्थात् जबतक कि वह तत्त्वज्ञानके द्वारा अपने नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द-स्वरूपका साक्षात्कार न कर ले। अतएव हमें जो प्रयत्न करना है—वह शरीरकी प्राप्तिके लिये नहीं करना है, किंतु 'भव'—'जन्म-मरणके चक्र'से छूटनेके लिये करना है।

श्रीवसिष्ठ महामुनिने योगवासिष्ठमें मृत्यु-विषयक विवेक बहुत ही उत्तमताके साथ किया है। आपके द्वारा की हुई मृत्युकी निम्न व्याख्या विचारणीय है—'देहान्तरार्थं देहस्य संत्यागो मरणं स्मृतम्।' अर्थात् 'दूसरे देहकी प्राप्तिके लिये जो पहले देहका त्याग किया जाता है—वही मरण है।' इसलिये मृत्युसे डरनेका कोई कारण नहीं। मरणभय सर्वथा अविचारितसिद्ध है। इसके अनन्तर श्रीवसिष्ठ महामुनि 'अभ्युपगम न्याय'से मृत्युविषयक एक और विचार उपस्थित करते हैं। यदि मरण आत्यन्तिक नाश हो, तब भी मृत्युसे घबरानेकी कोई बात नहीं; क्योंकि तब तो संसाररूपी रोग ही जड़से कट जाय,—'मृतिरत्यन्तनाशश्चेत्तत्संसारक्षयः।' किंतु यदि मृत्युके कारण नये देहकी प्राप्ति होती हो तो फिर यह शोकका विषय न होकर हर्षका ही विषय होना चाहिये; क्योंकि नयी वस्तुको तो सभी खुशीसे चाहते हैं—'मृतस्य देहलाभश्चेत्तत्र एव तदुत्सवः।' अन्तमें श्रीमहामुनि सिद्धान्त बतलाते हैं कि 'मृत्युका स्वरूप सर्वनाशात्मक नहीं हो सकता। वर्तमान देहविषयक संकल्पका बंद होना और देहान्तर-विषयक संकल्पका स्थिर होना ही मृत्यु है। प्रत्येक जीव देश तथा कालके भेदसे अपनी वासना तथा संस्कारोंके अनुसार किसी-न-किसी देहकी कल्पना करके फिर-फिर उत्पन्न होता रहता है।' ध्यान रहे योगवासिष्ठ दृष्टि-सृष्टिवादका ग्रन्थ है, जो मुख्यतः वेदान्तके मुख्याधिकारीके लिये है। इसी दृष्टिसे यह प्रक्रिया उपस्थित की गयी है।

विचारवान् पुरुष मृत्युके वास्तविक स्वरूपसे परिचित होनेके कारण देहादिके वियोगकी सम्भावनासे यत्किंचित् भी विचलित या उद्विग्न नहीं होते। पञ्चमहाभूतोंसे निर्मित देहको वे पञ्चमहाभूतोंकी वस्तु समझकर मृत्युका सहर्ष स्वागत करते हैं। अज्ञानी मनुष्योंकी स्थिति इससे विपरीत होती है। वे मृत्युके वास्तविक स्वरूप और रहस्यसे अपरिचित होनेके कारण उससे भय खाकर उससे बचनेके हेतु नाना प्रकारके उपायोंका अवलम्ब करते रहते हैं। अज्ञानका प्रभाव कितना प्रबल होता है, इसका प्रत्यक्ष ज्वलन्त उदाहरण हमें मर्त्यदेहको अमर बनानेके हेतु या इस देहकी यौवनरूप क्षणभङ्गुर अवस्था-विशेषको चिरस्थायी रूप देनेके हेतु किये गये अनेकानेक

उचित-अनुचित प्रयत्नोंके रूपमें देखनेको मिलता है। किंतु श्रीमद्भागवतमें इस विषयमें स्पष्ट निर्णय दिया गया है कि शरीर स्वरूपतः ही विनश्वर होनेसे उसे अमर बनानेके सारे प्रयत्नोंका निष्फल होना अवश्यम्भावी है—

> नहि तत् कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः।
> अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः॥
>
> (११।२८।४२)

शरीरका मरणधर्मसे ग्रस्त होना यह कोई गूढ़ रहस्य नहीं है।—'यत्कृतकं तदनित्यम्।' अर्थात् 'जो उत्पन्न होता है वह अनित्य होता है।' इस न्यायसे हम देख सकते हैं कि जब स्वयं यह पृथ्वी, जिसके आधारपर हमारा भौतिक जीवन रहता है और सम्पूर्ण सूर्यादि सृष्टि ही दीर्घकाल अवस्थायी होनेपर भी अन्ततोगत्वा विनश्वर ही है, तब भला इनके आधारपर रहनेवाले क्षुद्र शरीरके विनश्वर होनेमें संदेह ही क्या हो सकता है!

६—मृत्यु मनुष्यकी मित्र है, शत्रु नहीं

यदि हम प्रकृतिमें मृत्युके उद्देश्यको भलीभाँति समझ लें तो हमें यह देखते देर न लगे कि मृत्युका भय अविचारमूलक है; क्योंकि मृत्यु मनुष्यकी हित-शत्रु न होकर उसकी सच्ची हितैषिणी है। इस सम्बन्धमें पहले हमें इस महत्त्वपूर्ण बातको ध्यानमें रखना चाहिये कि मानव-जीवनका मुख्य ध्येय आध्यात्मिक विकास है। आनन्दमय प्रभुके विश्वरचना-रूप लीलाविष्करणका मुख्य ध्येय यही है। प्रकृति माता चराचर सृष्टिको इसी एकमेव ध्येयकी ओर अनवरत रूपसे लिये चली जा रही है। नरसे नारायण बननेमें ही इस विकासकी परिसमाप्ति है। अब चूँकि विकासकी लंबी दौड़में एक शरीर, एक जन्म पर्याप्त नहीं, इसलिये प्रकृतिमाता प्रारब्धकर्मकी समाप्तिके साथ ही एक जन्म, एक शरीरके विकासके योग्य न रहनेकी स्थितिमें दूसरा जन्म और दूसरा शरीर दे देती है। मृत्यु मनुष्यके आध्यात्मिक विकासकी लंबी दौड़में एक आवश्यक विश्रान्ति-स्थल है। इस मृत्युके कारण ही हमारे वर्तमान जीवनका भार हलका होकर और विकासके अयोग्य पुराने शरीरादि जाकर नया ताजा शरीर मिलता है और नये उत्साह तथा नयी उमंगके साथ विकासकी नयी दौड़ प्रारम्भ होती है। मृत्यु ही जीवको एक योनिसे, एक शरीरसे छुड़ाकर दूसरी योनिमें, दूसरे शरीरमें ले जाती है। मृत्युके अभावमें जीव एक ही योनिमें एक ही शरीरमें बँधा रहे। चौरासी लाख योनियोंमेंसे घूमकर मानवदेहकी प्राप्ति आखिर मृत्युके कारण ही तो हुई है। मृत्युकालमें मरनेवाले मनुष्यकी आँखोंके सामने अँधेरा छाने लगता है। इस अँधेरेके द्वारा मानो प्रकृतिमाता विश्व-रंग-मंचपर चलनेवाले जीवनरूपी महानाटकके एक अङ्कके अन्तमें पर्दा डालना चाहती है। यह पर्दा डालनेकी क्रिया नाटकका दूसरा अङ्क प्रारम्भ होनेसे पहलेकी आवश्यक मध्यवर्ती अवस्था है। फिर पिण्ड-प्राणका वियोग हो जाता है, अर्थात् मृत्यु हो जाती है। तदनन्तर योग्यकालमें प्रारब्ध कर्मानुसार नये पिण्डके साथ प्राणका योग होकर, नये जीवनका और उसके साथ ही विकासकी अगली मंजिलका प्रारम्भ होता है। मनुष्य नया जन्म पाकर नये उत्साह और उमंगके साथ विकासकी ओर चल पड़ता है। मृत्यु होनेपर मनुष्यकी भौतिक सम्पत्ति, पुत्र-परिवारादि जहाँके तहाँ धरे रह जाते हैं। मनुष्यके साथ जाता है—केवल उसका विकास। अपनी विकास-भूमिके अनुसार ही मनुष्य नया शरीर, नया जन्म ग्रहण करता है और अपने विकासके अनुकूल वातावरणमें ही वह जन्म लेता है।

७—ज्ञानी और अज्ञानी पुरुषकी मृत्युमें महान् अन्तर है

आध्यात्मिक विकासकी दृष्टिसे मृत्युके उपर्युक्त आवश्यक संक्रमणकालको विवेकी पुरुष मृत्युके वास्तविक रहस्यसे परिचित होनेके कारण हँसते-खेलते पार कर जाते हैं। वे मृत्युका सहर्ष स्वागत करते हैं। उससे किंचित् भी भयभीत नहीं होते। इसके विपरीत प्राकृत अज्ञजनोंके लिये मृत्यु एक भयावह वस्तु बन जाती है। मृत्युकी कल्पनासे ही इनके मनपर आतङ्क छा जाता है। ऐसे लोगोंको मृत्युके समय अतीव कष्ट होता है; क्योंकि वे प्रकृतिमाताका उद्देश्य न समझनेके कारण उसके साथ सहकार करनेके स्थानपर संघर्ष ठान बैठते हैं। मृत्युकालमें बाह्य जगत् तथा उसके पदार्थोंकी आसक्तिके कारण उनमें और प्रकृतिमें एक तरहकी रस्साकशी शुरू हो जाती है। प्रकृति तो उन्हें उन्नतिके विकासके लिये बाह्य जगत् तथा विकासके अयोग्य शरीरसे छुड़ाना चाहती है और वे शरीरके साथ चिपके रहना चाहते हैं। देह-गेहादि पदार्थोंकी आसक्ति जितनी अधिक होती है, उतना ही अधिक कष्ट मनुष्यको मृत्युकालमें होता है। अमरत्वादि दृष्टिसे सम्पन्न प्रकृतिके साथ इस संघर्षसे मर्यादित, भक्तश्रेष्ठ

मानव आखिर कबतक टिक सकता है ! प्रकृति उसकी चेतनाशक्तिको हरण करके उसके जीवनपर पर्दा डाल ही देती है। प्रकृतिके साथ इस खींचातानीके फलस्वरूप ही मृत्युका दुःख महाभयङ्कर हो उठता है। इस प्रकारके संघर्षसे विहीन विवेक और वैराग्यशील मनुष्यकी मृत्यु शान्तिपूर्ण होती है।

८—प्रकृतिमें पूर्वजन्मकी विस्मृति सहेतुक है

पूर्वजन्ममें संदेह करनेवाले प्रायः यह शङ्का उपस्थित किया करते हैं कि यदि हमारा पूर्वजन्म होता तो हमें उसकी स्मृति होनी चाहिये। मृत्युको 'दीर्घ' निद्रा कहा गया है, हम देखते हैं कि प्रतिदिन सोकर उठनेपर हमारी पूर्वकालीन स्मृति बनी रहती है। किंतु हमें पूर्वजन्मकी इस प्रकारकी कोई स्मृति नहीं होती। पूर्वजन्म माननेवालोंकी ओरसे इस शङ्काका समाधान करना आवश्यक है।

उक्त शङ्काका एक समाधान तो यह है कि विशिष्ट परिस्थितिमें व्यक्तिविशेषमें पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ जगती हैं, इसके अनेक उदाहरण हैं। महाकवि कालिदासने पूर्वजन्मकी स्मृतिका निम्न श्लोकमें नितान्त सुन्दर काव्यमय वर्णन किया है—

> रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
>
> पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
>
> तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं-
>
> भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥
>
> (अभिज्ञानशाकुन्तलम् ५।२)

'परामनोविज्ञान'ने इस प्रकारके आश्चर्यजनक उदाहरणोंका सशक्त संकलन और छानबीन की है। यह विज्ञान उत्तरोत्तर प्रगतिपथपर है।

उक्त शङ्काका दूसरा समाधान यह है कि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिकमें आत्यन्तिक साम्य होना आवश्यक नहीं है। आंशिक साम्य अवश्य है। हम देखते हैं कि दीर्घकालतक गहरी नींदसे उठनेपर हम कुछ देरतक निश्चेष्ट स्थितिमें रहते हैं। उस समय पूर्वकालीन कोई स्मृति नहीं जगती। धीरे-धीरे एक-एक स्मृति उद्बोधक निमित्तको पाकर जगती है। मृत्यु तो अत्यन्त दीर्घनिद्रा है, अतएव उससे छूटनेपर यदि पूर्वस्मृतियाँ उद्बोधक निमित्तके अभावमें न जगें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है!

यह साधारण समाधान है। किंतु इस विषयका मुख्य रहस्य यह है कि प्रकृतिमें पूर्वजन्मकी विस्मृति हेतु-पुरस्सर होती है। ध्यान रहे, प्रकृतिमें पुनर्जन्मका मुख्य हेतु है—मनुष्यका आध्यात्मिक विकास। इसके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य नव शरीरको प्राप्त करके नये उत्साह और उमंगोंके साथ अपने नये जन्मकी विकासयात्राका आरम्भ करे। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि उसकी पुरानी, अप्रिय तथा अनावश्यक सब प्रकारकी स्मृतियोंका भार हल्का हो जाय। इस विकासके हेतु जितनी आवश्यक बातें हैं, वे तो पूर्वसंस्कारोंके कारण उद्बुद्ध हो ही जाती हैं, यथा नवजात शिशुमें स्तन्य-पानादिकी सहज प्रवृत्ति, विशिष्ट बातोंमें अभिरुचि तथा प्रवृत्ति, विशिष्ट बातोंसे द्वेष तथा निवृत्ति इत्यादि। यदि मनुष्यकी अतीत अनन्त स्मृतियोंका भार हल्का न हो तो नवीन जन्ममें भी मनुष्य अपने अनन्त जन्मोंकी अनन्त प्रिय, अप्रिय सब तरहकी स्मृतियोंके भारसे दबा रहे और यह भार असह्य होकर उसके विकासमें एक बड़ी बाधा, एक बड़ा रोड़ा बन जाय। हम देखते हैं कि हमारे वर्तमान जन्ममें ही ऐसी अनेक अप्रिय स्मृतियाँ होती हैं जिनके कारण हमें बहुत बेचैनी होती है, हम इन्हें भूल जाना चाहते हैं किंतु भूलते नहीं। किंतु प्रकृति माता मृत्युके अनन्तर इनपर विस्मृतिका परदा डाल देती है। इसका यह अर्थ नहीं कि ये स्मृतियाँ पूरी तरहसे नामशेष हो जाती हैं और कभी जग ही नहीं सकतीं, योगबलसे, तपःसिद्धिसे, भगवद्भक्तिके प्रभावसे या तत्त्वज्ञानके प्रभावसे भी केवल अपने ही नहीं, दूसरोंके भी पूर्वापर जन्मका ज्ञान सम्भव है। ऐसे लोगोंको 'जातिस्मर' कहा गया है। महात्मा जडभरत इसके सुप्रसिद्ध उदाहरण हैं। पातञ्जलयोगदर्शनके दो सूत्र इसी बातको सिद्ध करते हैं—(१)'अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः' (२।३९) 'अपरिग्रहके दृढ होनेपर पूर्वजन्मोंका भलीभाँति ज्ञान हो जाता है।' (२) 'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्' (३।१८) 'संयमद्वारा पूर्वसंस्कारोंको साक्षात् कर लेनेपर पूर्वजन्मोंका ज्ञान हो जाता है।' ध्यान रहे अज्ञान-दशामें साधारण मनुष्यको इसका ज्ञान ही नहीं होता। इसका ज्ञान तो तब होता है, जब ज्ञान या संयमके प्रभावसे मनपर इसका कोई प्रभाव नहीं होता। प्रकृति माताकी इस बुद्धिमत्तापूर्ण योजनाका हमें स्वागत ही करना चाहिये। यदि अज्ञानी मनुष्यको इसका ज्ञान हो जाय तो उसका साधारणरूपसे जीवन-यापन करना ही कठिन हो जाय।

इससे यह सिद्ध होता है कि प्रकृतिमें पूर्वजन्मकी विस्मृति सहेतुक है।

९—अमरत्वका स्वरूप

अमरत्वका विचार करते समय एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि सच्चे अमरत्वमें और किसी भी प्रकारके दीर्घकाल-अवस्थायित्वमें महदन्तर है। यदि अमरत्वसे अभिप्राय केवल दीर्घकालतक बने रहनेसे हो तो ऐसे अमरत्वका न तो व्यावहारिक दृष्टिसे कोई मूल्य हो सकता है और न तात्त्विक दृष्टिसे ही; व्यावहारिक दृष्टिसे किसी भी प्रकारका उपाधिसे ग्रस्त अस्तित्व एक निश्चित अवधिके अनन्तर बजाय सुखके दुःखके लिये ही कारण बन जाय। ऐसा जीवन असह्य भाररूप ही हो जाय। स्वर्गस्थ देवादिको 'अमर' कहा गया है। 'अमर' शब्द 'देव' शब्दका पर्यायवाची है। किंतु देवादिका अमरत्व भी केवल दीर्घकाल-अवस्थायित्वका द्योतक है, न कि तत्त्वज्ञानद्वारा प्राप्य सच्चे अमरत्वका। तात्त्विक दृष्टिसे सच्चा अमरत्व दिक्कालाद्यनवच्छिन्न आत्म-तत्त्ववेत्ताओंको ही प्राप्त हो सकता है।

देवादि भोग-योनि है। पुण्यकर्मोंके संचयद्वारा और स्वर्गस्थ भोगोंकी इच्छाके कारण वह प्राप्त होती है और पुण्यकर्मोंके भोगद्वारा समाप्तिके साथ ही उसकी भी समाप्ति हो जाती है और उन्हें फिर वापिस मृत्युलोकमें ही आना पड़ता है। 'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।' (गीता ९। २१) हमारे शास्त्रकारोंने किसी भी प्रकारकी जन्म-मरण-परम्पराको 'भव' या 'संसार' कहा है। इस घटीयन्त्र-वत् परम्परासे छूटनेमें ही मनुष्यका सच्चा परम पुरुषार्थ है और मनुष्य-जीवनकी सार्थकता है। सच्चा अमरत्व किसी भी प्रकार कालसे घटित न होकर वह सर्वथा कालसे अस्पृष्ट रहता है। आत्माका काल-परिच्छेद नहीं। वेदान्तदर्शनके अनुसार कालका अर्थ है—'ब्रह्म तथा मायाका अनादिकालसे चला आया हुआ सम्बन्ध।' यह सम्बन्ध आध्यासिक होनेसे काल भी आध्यासिक अतएव मिथ्या है। वह अनादि सान्त है। वह 'ज्ञाननिवर्त्य' है। तत्त्वतः आत्मा कालमें नहीं है, काल स्वयं आत्मामें है और वह उसपर अध्यस्त है। इसलिये सच्चा अमरत्व कालसे अघटित, कालसे सर्वथा अस्पृष्ट ही हो सकता है। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द आत्मस्वरूप ही सच्चे अर्थमें अमर है और यही 'अमरत्व'का अर्थ है। उसे छोड़कर अन्य सब काल-सर्पसे ग्रस्त है—'ग्रस्तं कालाहिना जगत्।' अमर आत्मा ही जीवमात्रका सच्चा स्वरूप है। वह नित्य प्राप्त है। अमरत्व कहीं बाहरसे लाना नहीं है; उसके अनुभवमें प्रतिबन्ध करनेवाली अज्ञानमूलक कल्पनाओंको यथार्थ ज्ञानके द्वारा दूर कर देना है। सारा प्रयत्न, शास्त्रोक्त कर्म, उपासना तथा योगादि साधना इत्यादि सब एकमात्र आत्मज्ञानको सम्पादन करनेमें ही चरितार्थ होते हैं। यही सबका अन्तिम प्राप्तव्य है। इसलिये सच्चा अमरत्व मरणोत्तर दशामें प्राप्त होनेवाला न होकर इसी जन्ममें, यथार्थ ज्ञानोदयके साथ ही प्राप्त हो सकता है—

'ज्ञानसमकालमुक्तः कैवल्यं याति हतशोकः।'
'अत्र ब्रह्म समश्नुते॥'

इसीलिये मोक्ष दृष्टफल है, जिसे यथार्थ ज्ञानके द्वारा इसी जीवनमें सभी अधिकारी पुरुष प्राप्त कर सकते हैं और जीवन्मुक्त दशाका अनुभव कर सकते हैं। पाश्चात्त्य तत्त्वचिन्तक भी इस तथ्यसे सहमत हैं। श्रीप्रिंगल पेटिसन कहते हैं—

'अनन्तत्वका अर्थ अनन्त कालावस्थायित्व न होकर कालातीत वस्तुका अनुभव है।' इसीलिये धर्मशास्त्रज्ञ तथा दार्शनिक यह साग्रह प्रतिपादन करते हैं कि 'अनन्त और अमर जीवनका अनुभव मरणोत्तर न होकर यहीं और इसी समय प्राप्त होने योग्य है।' (अमरत्वका विचार पृ० १३४-१३५)

१०—जीवकी मरणोत्तर स्थिति गति

प्रारब्धकर्मकी समाप्तिके साथ ही रोगादि निमित्तको लेकर जीवका सूक्ष्मदेह या लिङ्गशरीर स्थूलशरीरसे पृथक् हो जाता है। इसीको 'पिंड' प्राणका वियोग या 'मृत्यु' कहते हैं। यहींसे जीवकी परलोकयात्रा प्रारम्भ हो जाती है। जैसे जीवकी इहलौकिक अच्छी या बुरी स्थिति उसके कर्मोंपर ही अवलम्बित रहती है, वैसे ही उसकी मरणोत्तर स्थिति भी उसके कर्मोंपर ही अवलम्बित होती है।

'यथाकारी यथाचारी तथा भवति। साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापो भवति। पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन।......अथमय एवायं पुरुष-

यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते यत् कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते ।' (बृ० उपनिषद् ४ । ४ । ५)

'वह (मनुष्य) जैसा करनेवाला और जैसे आचरणवाला होता है, वैसा ही हो जाता है। शुभ कर्म करनेवाला शुभ होता है और पापकर्मा पापी होता है। पुरुष पुण्य कर्मसे पुण्यात्मा होता है और पापकर्मसे पापी होता है। यह पुरुष काममय ही है। वह जैसी कामनावाला होता है, वैसा ही संकल्प करता है; जैसे संकल्पवाला होता है, वैसे ही कर्म करता है और जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है।'

मनुष्यकी शुभाशुभ वासनाओंके अनुसार ही उसके संकल्प बनते हैं और ये ही विशिष्ट प्रकारकी शुभाशुभ योनिमें जन्म ग्रहण करनेके कारण होते हैं। इस विषयमें कठश्रुति भी यही कहती है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥
(२ । २ । ७)

'अपने कर्म और ज्ञानके अनुसार कोई देहधारी शरीरधारणार्थ विशिष्ट योनिको प्राप्त होते हैं और अन्य कोई देहधारी स्थावरभावको प्राप्त होते हैं।'

मनुष्यके यथार्थ या अयथार्थ एवं दूषित ज्ञानके अनुसार अन्तःकरणमें उत्पन्न होनेवाली वासनाएँ, उनकी पूर्तिके लिये किये जानेवाले संकल्प और कर्म इत्यादि होते हैं। यह अनुभवसिद्ध है। इनमेंसे विशिष्ट प्रबल वासनाएँ, जो जीवनकालमें सुप्त या प्रकट रहती हैं, मरनेके समय पूर्वाभ्यासवश जग जाती हैं और ये ही मनुष्यके जन्मान्तरकी नियामक बन जाती हैं—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ८ । ६)

'अन्ते मतिः सा गतिः' का यही अभिप्राय है। 'यथाप्रज्ञं हि सम्भवाः' अर्थात् 'बुद्धिके अनुसार ही जन्म हुआ करते हैं।' इस श्रुतिमें जन्मान्तरका रहस्य सूत्ररूपसे निर्दिष्ट किया गया है। कृतकर्मोंके भोग, वासनाओंका प्राबल्य, विशिष्ट देहकी पूर्तिकी प्रबल इच्छा, विशिष्ट प्रकारकी आसक्ति—इत्यादि सब बातें उपलक्षण तथा यहाँ अभिप्रेत हैं और ये ही जन्मान्तरकी नियामक हैं।

मृत्युके साथ ही जीवको देवयान अथवा पितृयान मार्गसे विभिन्न देवता ले जाते हैं। इसका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीताके आठवें अध्यायमें अच्छी तरह किया गया है। इनमेंसे प्रथम मार्गसे जानेवाले उपासक ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेते हैं। अतएव वे इस मृत्युलोकमें वापस लौटकर नहीं आते। दूसरे मार्गसे जानेवाले पुण्यवान् लोग स्वर्गादि पुण्यलोकोंमें जाकर वहाँके भोग भोगकर वापस इसी लोकमें लौट आते हैं। निषिद्ध पापकर्म करनेवाले नरकमें दुःख भोगकर फिर यहाँ आकर जन्म लेते हैं। जिनके साधारणसे पाप-पुण्य होते हैं, वे इसी लोकमें जन्म लेते हैं। घोर पापी तथा उत्कट वासनादिसे युक्त जीव भूत-पिशाचादि योनिमें जाते हैं। स्थूलशरीरसे रहित होनेके कारण वे सब तरहके मानवोचित भोगोंसे वञ्चित रहते हैं। यह भोग-योनि है। इस प्रकार जीवकी मरणोत्तर स्थिति गतिके विभिन्न प्रकार हैं। हमने इनका संक्षेपमें निर्देश किया है।

११—परलोक है और अवश्य है

परलोक है या नहीं?—यह विवाद्य प्रश्न है; क्योंकि इस विषयमें प्रत्यक्ष प्रमाणकी सम्भावना बहुत ही कम है। वैज्ञानिक अभी अन्य ग्रहोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेमें प्रयत्नशील हैं; किंतु अभीतक वे इस दिशामें सफलता प्राप्त नहीं कर पाये हैं। अतएव शब्द प्रमाण ही इस विषयमें एकमेव महत्त्वपूर्ण प्रमाण है। जो लोग परलोक नहीं मानते, उन्हें हमारे शास्त्रकार उन्हींके हितमें कहते हैं—

संदिग्धे परलोकेऽपि त्याज्यमेवाशुभं बुधैः ।
नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हतः ॥

'परलोक है या नहीं—यह संदेहका विषय होनेपर भी अशुभ कर्मोंका त्याग ही करना चाहिये; क्योंकि यदि परलोक न हो तो शुभ कर्म करनेवाले आस्तिक पुरुष को किसी हानिकी कोई सम्भावना नहीं। किंतु यदि परलोक हो, तो इस सम्भावनाकी ओर ध्यान न देनेवाले नास्तिक की दुर्गति हुए बिना न रहेगी।'

हमारे शास्त्र-ग्रन्थोंमें परलोकको सत्यतः प्रतिपादन करनेवाले अनेकानेक उल्लेख हैं। अनुमानसे भी हम 'परलोक है'—इसी निर्णयपर पहुँच सकते हैं। अन्यथा नहीं।

के राज्यमें इतनी कृपणता नहीं कि उसमें यह छोटा-सा पृथ्वीमण्डल ही एकमात्र लोक हो। हमारे यहाँ परमात्माको 'अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक' कहा गया है। परमात्मा स्वयं अनन्त हैं। उनकी 'अघटितघटनापटीयसी' मायाशक्तिद्वारा निर्मित सृष्टि भी अनन्त और अगणित होनी चाहिये। सारी सृष्टि कर्ममय है। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जीवोंके कर्मोंके अनुसार ही विभिन्न सृष्टियोंकी रचना करते हैं। इसीलिये विभिन्न लोकोंमें तारतम्य होना चाहिये। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। इसलिये जीवोंके कर्म भी त्रिगुणोंके न्यूनाधिक्यसे अनेक प्रकारके हो जाते हैं। ये प्रकार अनन्त हैं। कोई 'शुद्ध सत्त्व-प्रधान' पुण्यलोक हैं, कोई 'दिव्य भोगप्रचुर सुखमय लोक' हैं, तो कोई 'दुःखबहुल लोक' हैं। इसी सृष्टिमें, इसी अवनीतलपर हम स्थावरादिसे लेकर ज्ञानी या भगवद्भक्त अथवा जीवन्मुक्त तत्त्वदर्शी महात्मातक कर्ममूलक अनेक योनियाँ पाते हैं; तो फिर, लोकान्तरमें इस प्रकारके विभेद होनेमें बाधा ही क्या हो सकती है? इन्हें ही हमारे यहाँ ब्रह्मलोक, विष्णुलोक या वैकुण्ठ, शिवलोक, स्वर्गलोक, नरकलोक इत्यादि संज्ञाएँ दी गयी हैं। हमारे यहाँके त्रिकालदर्शी शास्त्रकारोंने तो स्वर्गलोक या नरकलोकसे इस मर्त्यलोकमें आनेवाले मनुष्योंके लक्षण भी बतला रखे हैं। स्वर्गसे लौटे हुए पुरुषोंके लक्षण निम्न श्लोकमें दिये गये हैं—

> स्वर्गच्युतानामिह जीवलोके
> चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे।
> दानप्रसंगो मधुरा हि वाणी
> देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च॥

'स्वर्गलोकसे इस मनुष्य-लोकमें आये हुए पुरुषोंमें चार लक्षण रहते हैं—(१) दानादिमें प्रवृत्ति, (२) मीठे वचन, (३) ईश्वरोपासना, (४) ब्राह्मणोंका भोजनादिद्वारा सत्कार।'

इसके विपरीत नरकादिसे लौटे हुए पामरजनोंके लक्षण निम्न श्लोकमें दिये हुए हैं—

> कार्पण्यवृत्तिः स्वजनस्य निन्दा
> कुचैलता नीचजनेषु संगः।
> अतीव रोषः कटुता च वाचि
> नरस्य चिह्नं नरकागतस्य॥

'कृपणता, आत्मीय जनोंकी निन्दा, दुराचारमें अभिरुचि, नीचजनोंकी संगति, अत्यन्त क्रोध, कड़ुवे वचन—ये हैं नरकलोकसे आये हुओंके लक्षण।

उपर्युक्त लक्षणोंके द्वारा हम अपने स्वयंकी परीक्षा भलीभाँति कर सकते हैं कि हम किस कोटिके जीव हैं। ध्यान रहे, शास्त्र एक प्रकारका दर्पण है, जिसमें हम अपने जीवनका रूप देख सकते हैं और उसमें इष्ट दिशामें परिवर्तन करनेका मार्गदर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं। यह है—संक्षेपमें परलोक-विषयक विचार।

१२—उपसंहार—भारतीय ब्रह्मविद्याका सार-सर्वस्व

नरदेह अत्यन्त दुर्लभ है। यह तीन प्रकारकी गतियोंका द्वार है। एक तो 'देवादि पुण्ययोनि', दूसरी 'स्थावरादि अधम योनि' तथा तीसरी शास्त्रविहित कर्माचरण, भगवदुपासना तथा तत्त्वज्ञानद्वारा 'मोक्षप्राप्ति'। प्रथम द्वार पुनरावर्ती होनेके कारण बुधजनके द्वारा अनादरणीय है। दूसरा घोर पतनका द्योतक होनेके कारण सर्वथा त्याज्य ही है। तीसरा ही मनुष्यमात्रका लक्ष्य होना चाहिये। जो इस दुर्लभ नरदेहको प्राप्त करके आत्मोद्धारके लिये प्रयत्न नहीं करते, उन्हें श्रीमद्भागवतमें 'आत्महा'—'आत्मघाती' कहा गया है। सनत्सुजातीयमें इसे सबसे बड़ा पाप और इसे करनेवालेको 'चोर' और 'आत्मापहारी' कहा गया है—

> योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते।
> किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा॥

ईशोपनिषद्में इन्हें 'आत्महनो जनाः' कहा गया है, इसीलिये भगवान् श्रीमद्भगवद्गीतामें अर्जुनको निमित्त बनाकर मनुष्यमात्रको आदेश देते हैं कि 'वह आत्मोद्धारके लिये प्रयत्न करे और अपने-आपको सब तरहसे अधोगतिसे बचावे।'—

> उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
> (गीता ६।५)

भगवान्ने स्वयं ही यह आश्वासन दे रखा है कि शुभ कर्म करनेवाला कभी अधोगतिको प्राप्त नहीं होता। 'हे पार्थ! आत्मोद्धारके लिये अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करनेवाला कोई भी मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। प्रिय अर्जुन! उस पुरुषका न तो इस लोकमें

न यहाँ होता है और न परलोकमें ही (६।४०)।' इसके विपरीत अशुभ या पाप-कर्म करनेवाला अपने कर्मोंके दुष्परिणामोंसे बच नहीं सकता। जैसे हजार गौओंमें भी बछड़ा ठीक अपनी माँको ढूँढ़ लेता है वैसे ही कृतकर्म अपने कर्ताको ढूँढ़ लेता है और उपयुक्त समयपर उसका फल देता है। मनुष्य पापकर्म हँसते हुए करता है; किंतु रोते हुए उसका फल भोगना पड़ता है—

> हसद्भिः क्रियते कर्म रुदद्भिः परिभुज्यते।
> अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥

इसलिये मनुष्यको अधर्म और पापके भावी दुष्परिणामोंको ध्यानमें रखकर शास्त्रविहित धर्माचरण ही करना चाहिये। योगवासिष्ठकार कहते हैं—

> पापस्य हि भयाल्लोको राम धर्मे प्रवर्तते॥

अपना सच्चा कल्याण चाहनेवालेके लिये उचित है कि वह भौतिक पदार्थोंकी क्षणभङ्गुरता, परलोक, पुनर्जन्म तथा आत्मज्ञानद्वारा मोक्षप्राप्तिकी ओर ध्यान देकर ही सारे कर्म करे। ध्यान रहे, प्रकृतिमाता सबको गिरते-पड़ते विकासकी ओर लिये चली जा रही है। वह मनुष्यको तबतक चैन न लेने देगी, जबतक कि वह अपने आत्मसाक्षात्काररूपी मंजिल—मुकामतक न पहुँच जाय। नदी अन्ततोगत्वा समुद्रमें मिलकर ही विश्रान्ति पा सकती है। विकासकी रेखा सीधी न होकर टेढ़ी-मेढ़ी होती है, किंतु एक-न-एक दिन सबका उद्धार अवश्यम्भावी है। विश्वजन्य सुख-दुःख पर्यवसायी होता है। दुःखके बाद मनुष्यमें विचार-जागृति होती है। विचार-जागृतिके फल विषयोंमें दोषदर्शन होने लगता है। विषय-दोष-दर्शनसे वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्यसे मनुष्य परमार्थपथपर अग्रसर होता है। किसी भी निमित्तसे परमार्थपथपर अग्रसर होनेपर एक-न-एक दिन ब्रह्मज्ञानद्वारा परम पुरुषार्थरूप मोक्षकी प्राप्ति अवश्यम्भावी है। अन्तमें ब्रह्म ही हो जाता है; क्योंकि यही उसका वास्तविक स्वरूप है। अज्ञानकालीन मरणधर्मा मनुष्य ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञानके प्रभावसे नरका नारायण हो जाता है और स्वयं जीवन्मुक्त होकर औरोंको भी अपनी कृपाद्वारा नरसे नारायण बनाता है। प्रारब्धकर्मोंकी समाप्तिके बाद ही यह जीवन्मुक्त महाभाग विदेहमुक्त हो जाता है। उसके प्राणोंका उत्क्रमण नहीं होता। वे अपने मूलरूप परब्रह्म सत्तामें एकीभावसे लीन हो जाते हैं। उसका नरदेहका पाना सार्थक हो जाता है। यही भारतकी महाविद्याका सार-सर्वस्व है।

श्रुतिका सदुपदेश

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। × × × × सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकꣳ सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि। × × × × × × × श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।

(तैत्तिरीय उपनिषद्)

'तुम सत्य बोलो; धर्मका आचरण करो; स्वाध्यायसे कभी न चूको; × × × × तुमको सत्यसे कभी नहीं डिगना चाहिये; धर्मसे नहीं डिगना चाहिये; शुभ कर्मोंसे कभी नहीं चूकना चाहिये; उन्नतिके साधनोंसे कभी नहीं चूकना चाहिये; वेदोंके पढ़ने और पढ़ानेमें कभी भूल नहीं करनी चाहिये; देवकार्य और पितृकार्यसे कभी नहीं चूकना चाहिये।

'तुम माताको देव (ईश्वर) बुद्धि करनेवाले बनो; पिताको देवरूप समझनेवाले होओ; आचार्यको देवरूप समझनेवाले बनो; अतिथिको देवतुल्य समझनेवाले होओ; जो-जो निर्दोष कर्म हैं, उन्हींका तुम्हें सेवन करना चाहिये। दूसरे (दोषयुक्त) कर्मोंका कभी आचरण नहीं करना चाहिये। हमारे आचरणोंमेंसे भी जो-जो अच्छे आचरण हैं, उनका ही तुम्हें सेवन करना चाहिये, दूसरोंका कभी नहीं। श्रद्धापूर्वक देना चाहिये; अश्रद्धासे नहीं देना चाहिये; आर्थिक स्थितिके अनुसार देना चाहिये; लज्जासे देना चाहिये; भयसे भी देना चाहिये; विवेकपूर्वक देना चाहिये।'

कौन कर्मबन्धनसे मुक्त होते तथा स्वर्गको जाते हैं

जो मनुष्य सब प्रकारके बाहरी बनावटी-चिह्नोंसे रहित, सत्य-धर्मके परायण तथा शान्त हैं; जिनके सभी संशय नष्ट हो गये हैं, वे अधर्म या धर्मसे नहीं बँधते। जो प्रलय और उत्पत्तिके तत्त्वज्ञ, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और वीतराग हैं, वे पुरुष कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसीकी हिंसा नहीं करते तथा किसीके प्रति आसक्त नहीं होते, वे कर्म-बन्धनमें नहीं पड़ते। जो प्राणि-संहारसे दूर रहनेवाले, सुशील, दयालु, प्रिय और अप्रियको समान समझनेवाले तथा जितेन्द्रिय हैं, वे भी कर्मोंमें नहीं बँधते। जो सब प्राणियोंपर दया रखते, सब जीवोंके लिये विश्वासपात्र बने रहते और हिंसापूर्ण बर्तावका त्याग कर देते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेवाले हैं। जो पराये धनके प्रति कभी ममता नहीं रखते और परायी स्त्रियोंसे सदा दूर रहते हैं तथा जो धर्मतः प्राप्त अर्थका ही उपभोग करनेवाले हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो परस्त्रियोंके प्रति सदा माता, बहिन और पुत्रीका-सा बर्ताव करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो केवल अपनी ही स्त्रीके प्रति अनुराग रखते, ऋतुकाल आनेपर ही पत्नीके साथ समागम करते तथा विषयसुखोंके उपभोगमें आसक्त नहीं होते, वे ही मनुष्य स्वर्गलोकके यात्री होते हैं। जो अपने सदाचारके कारण परायी स्त्रियोंकी ओरसे सदा आँखें बंद किये रहते हैं, इन्द्रियोंको अपने अधीन रखते और शीलकी सदा रक्षा करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं। यह देवमार्ग है। मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये। विद्वान् पुरुषोंको सदा उसी मार्गका सेवन करना चाहिये, जो वासनाद्वारा निर्मित न हो, जिसमें किसीका भी अपकार न होता हो और जहाँ दान, सत्कर्म, तपस्या, शील, शौच और दयाभावका दर्शन होता हो। स्वर्गमार्गकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इसके विपरीत मार्गका आश्रय नहीं लेना चाहिये।

जो अपने अथवा दूसरेके लिये अधर्मयुक्त बात नहीं कहते और कभी झूठ नहीं बोलते, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो जीविका अथवा धर्मके लिये या स्वेच्छासे ही कभी असत्यभाषण नहीं करते, अपितु स्पष्ट, कोमल, मधुर, पापरहित एवं स्वागतपूर्ण वचन बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो कठोर, कड़वी तथा निष्ठुर बात मुँहसे नहीं निकालते, चुगली नहीं खाते, साधुतासे रहते हैं, कठोर भाषण और परद्रोह त्याग देते हैं तथा सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंके प्रति सम एवं जितेन्द्रिय होते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो शठतासे बात नहीं करते, विरुद्ध कर्मोंको त्याग देते, कोमल वचन बोलते, क्रोध न करके मनोहर विनम्र वाणी मुँहसे निकालते और कुपित होनेपर भी शान्ति धारण करते हैं, वे मानव स्वर्गगामी होते हैं। यह वाणीद्वारा पाला जानेवाला धर्म है। शुभ तथा सत्य गुणोंवाले विद्वान् मनुष्योंको सदा इसका सेवन करना चाहिये।

निर्जन वनमें रक्खे हुए पराये धनपर जब दृष्टि पड़े, उस समय जो मनसे भी उसे लेना नहीं चाहते, वे स्वर्गगामी होते हैं। इसी प्रकार जो परायी स्त्रियोंको एकान्तमें पाकर मनके द्वारा भी कामवश उन्हें नहीं ग्रहण करते; जो शत्रु और मित्रको सदा एकचित्तसे अपनाते, शास्त्रोंका अध्ययन करते, पवित्र एवं सत्यप्रतिज्ञ होते और अपने ही धनसे संतुष्ट रहते हैं; जिनसे दूसरे जीवोंको कभी कष्ट नहीं पहुँचता और जिनके चित्तमें सदा मैत्रीका भाव बना रहता है, जो सब प्राणियोंपर निरन्तर दयाभाव बनाये रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकमें जानेके अधिकारी हैं। जो ज्ञानवान्, क्रियावान्, क्षमावान्, सुहृद्, प्रेमी, धर्माधर्मके ज्ञाता और शुभाशुभ कर्मोंके फलसंग्रहके प्रति उदासीन रहते हैं, जो पापियोंको त्याग देते, देवताओं और द्विजोंकी एवं गौओंकी सेवामें संलग्न रहते और गुरुजनोंके आनेपर खड़े होकर उनका स्वागत-सम्मान करते हैं, वे मानव स्वर्गलोकमें जाते हैं।

जो शुभ कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करता है, प्राणियोंकी हिंसासे सदा दूर रहता है; जो शस्त्र और दण्डका त्याग करके कभी किसीकी हिंसा नहीं करता, न मरवाता है, न मारता है और न मारनेवालेका अनुमोदन ही करता है; जिसका सभी प्राणियोंके प्रति स्नेह है तथा जो अपने और परायेमें समान भाव रखता है, ऐसा पुरुष सदा देवपदको प्राप्त होता है। वह अपने शुभ कर्मोंसे प्राप्त देवोचित सुख-भोगोंका प्रसन्नतापूर्वक उपभोग करता है। वह यदि कभी मनुष्य-लोकमें आता है तो उसकी बड़ी आयु होती है। यह बड़ी आयुवाले सदाचारी एवं पुण्यात्मा मनुष्योंका मार्ग है। जीवोंकी हिंसाका त्याग करनेसे इसकी प्राप्ति होती है।

जो ब्राह्मणका सत्कार करनेवाला तथा दीन-दुखी और आतुर आदिको भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान एवं वस्त्र देनेवाला है। जो यज्ञमण्डप, धर्मशाला, पौसला तथा पुष्करिणी बनवाता है; मन और इन्द्रियोंको वशमें करके शुद्धभावसे नित्य नैमित्तिक आदि कर्म करता है; आसन, शय्या, सवारी, घर, रत्न, धन, खेतीकी उपज तथा खेत आदि वस्तुओंका सदा ही शान्तचित्तसे दान करता है; ऐसा मनुष्य देवलोकमें जन्म लेता है। वहाँ दीर्घकालतक उत्तम भोगोंका उपभोग करते हुए नन्दन आदि वनोंमें प्रसन्नतापूर्वक विहार करता है। वहाँसे च्युत होनेपर वह मनुष्योंके सौभाग्यशाली कुलमें, जो धन-धान्यसे सम्पन्न होता है, जन्म लेता है। वह मानव समस्त मनोवाञ्छित गुणोंसे युक्त, प्रसन्न, प्रचुर भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न एवं धनवान् होता है। जो दानशील महाभाग प्राणी हैं, ब्रह्माजीने उन्हें सर्वप्रिय बतलाया है।

जो न दम्भी है न मानी है; जो देवता और अतिथियोंका पूजक, लोकहितैषी, सबको नमस्कार करनेवाला, मधुरभाषी, सब प्रकारकी चेष्टाओंसे दूसरोंका प्रिय करनेवाला, समस्त प्राणियोंको सदा प्रिय माननेवाला, द्वेषरहित, प्रसन्नमुख, कोमलस्वभाव, सबसे स्वागतपूर्वक स्नेहमय वचन बोलनेवाला, प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला, श्रेष्ठ पुरुषोंका विधिवत् सत्कारपूर्वक पूजन करनेवाला, मार्ग देने योग्य पुरुषोंको मार्ग देनेवाला, गुरुपूजक और अतिथियोंको अन्नका [illegible] अर्पित करनेवाला है, ऐसा पुरुष स्वर्गमें जाता है।

जो सब प्राणियोंको दयापूर्ण दृष्टिसे देखता है। सबके प्रति मैत्रीभाव रखता है; पिताके समान निर्वैर होता है; दयालु होनेके कारण प्राणियोंको न डराता है और न मारता ही है; जिसके हाथ-पैर वशमें होते हैं; जो सम्पूर्ण जीवोंका विश्वासपात्र है; रस्सी, डंडा, ढेला अथवा अस्त्र-शस्त्रोंसे किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाता; शुभ कर्म करता और सबपर दया रखता है—ऐसे शील और आचरणवाला मनुष्य स्वर्गमें जाता है। वहाँ देवताओंकी भाँति वह दिव्य भवनमें सानन्द निवास करता है। वह यदि पुनर्जन्मके पश्चात् मर्त्यलोकमें आता है तो मनुष्योंमें क्लेशरहित एवं निर्भय होता है। वह सुखसे जन्म लेता और अभ्युदयशील होता है। वह सुखका भागी तथा उद्वेगशून्य होता है।

जो लोग वेदवेत्ता, सिद्ध तथा धर्मज्ञ ब्राह्मणोंसे प्रतिदिन शुभाशुभ कर्म पूछते हैं और अशुभका त्याग करके शुभ कर्मका सेवन करते हैं, वे इस लोकमें सुखसे रहते और अन्तमें स्वर्गगामी होते हैं। ऐसे लोग जब फिर कभी मनुष्य-योनिमें आते हैं, तब सुखी तथा बुद्धिमान् होते हैं।

(पद्मपुराणके आधारपर

प्रेमसुधाका भंडार खोल दो

प्रकृति जगत्के भोग सभी हैं अशुचि, अपूर्ण, अनित्य, असार।
दुःखयोनि—सब भाँति शान्ति-सुखहर, अघ-आकर, दोषागार॥
इनमें सुखकी आस्था-आकाङ्क्षा-आशा करना बेकार।
किंतु इन्हींके मोहजालमें फँसा कराह रहा संसार॥
जबतक नहीं हटेगा, पूरा मोहजालका विष-विस्तार।
धधकी नित्य रहेगी ज्वाला, मचा रहेगा हाहाकार॥
प्रभुकी प्रेम-सुधा ही कर सकती, इस ज्वालासे उद्धार।
प्रेम-भास्करके उगते ही हो जाता तमका संहार॥
अतः खोल दो तुरत प्रेमकी सरस सुधाका वर-भण्डार।
पल-पल उसे बहाओ—होगा दिव्य भागवत-सुख साकार॥

सम्मान्य काका कालेलकरजीका स्नेहपूर्ण पत्र

प्रिय सम्पादकजी 'कल्याण' !

परलोक और पुनर्जन्माङ्क निकालनेका आपने सोचा, जिसके लिये आपका अभिनन्दन करना चाहिये । लेकिन दो-सौ-ढाई सौ विषयोंकी सूची देखकर मैं तो घबड़ा गया ।

मैं स्वयं पूर्वजन्म और पुनर्जन्म याने जन्मपरम्परा मानता हूँ । कर्म और कर्मफलके सिद्धान्तपर मेरी असीम श्रद्धा है । 'कर्मके सिद्धान्तको बनाकर भगवान् सो गये हैं' सो भी नहीं । इसलिये तमाम व्यक्तियाँ पूर्वकर्मानुसार कर्म तो करती ही हैं । उपरान्त अपने नव-संकल्पसे प्रेरित होकर भी कर्म करते हैं ।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि जिस तरह स्वयं भगवान्‌का आदि और अन्त हो नहीं सकता, उसी तरह इस विशाल, सनातन सृष्टिका न सर्वप्रथम आदि हो सकता है, न उसका कभी आत्यन्तिक अभाव हो सकता है ।

जन्मान्तरका ज्ञान सर्वज्ञ भगवान्‌को होना ही चाहिये; क्योंकि 'सर्वज्ञ'की व्याख्या ही ऐसी है । लेकिन एक भगवान्‌को छोड़कर दूसरा कोई भी ऋषि, मुनि, संत, महात्मा, योगी, नबी, पयगंबर या अवतारी पुरुष इस तरहके सर्वज्ञ अथवा त्रिकालज्ञ है, ऐसा मानना मेरे लिये कठिन है । हम सब और वे सब, गीताके अर्जुनके ही प्रतिनिधि हैं । ऐतिहासिक कृष्ण भी उसीमें आ गये ।

आपने जो विषय-सूची दी है इसमेंसे बहुतसे विषयोंके बारेमें बचपनसे कमीबेश पढ़ता आया हूँ । बहुत-सी बातें उपयोगी कल्पनाएँ हैं । लेकिन आखरी हैं तो कल्पनाएँ ही । और पुराणोंमें इहलोक-परलोक, विष्णुलोक, गोलोक आदि जो अनेक प्रकारके लोक बताते हैं और उनके इतिहास, भूगोल दिये हैं, इनमेंसे अधिकतर तो केवल ढकोसले ही हैं ।

सनातनी लोग जितने ग्रन्थोंको 'धर्मग्रन्थ' मानते हैं वे सब-के-सब अनुभवकी सच बातें लिखते हैं, ऐसा कोई मान नहीं सकता । बहुत-सी बातें गाँववालोंकी लोककथाओंसे अधिक विश्वसनीय तो हैं नहीं, किंतु आदरणीय भी नहीं हैं । अमुक स्थानपर मरनेसे अथवा अमुक जलाशयमें स्नान करनेसे अथवा फलानी मूर्तिका दर्शन करनेसे मोक्ष मिलता है, पुनर्जन्म नहीं होता । इत्यादि वर्णन कभी-कभी इतने सस्ते हैं कि पढ़कर चिढ़ आती है ।

भोले सनातनी लोग ऐसी बातोंपर अविश्वास भी नहीं कर सकते, और विश्वास करके चलते भी नहीं । लोगोंके आचरणसे ही सिद्ध होता है कि उनके 'विश्वास' पर उनका सचमुच और दृढ़ विश्वास नहीं होता ।

आप जो जानकारी इकठ्ठा करेंगे और असंख्य मान्यताओंका समर्थन भी इकठ्ठा करेंगे, इससे संशोधकोंकी सहूलियत होगी सही । किंतु मुझे डर है कि ज्यादातर कचरेसे भरे हुए समुद्रमेंसे आप करीब-करीब इतना ही बड़ा कचरेवाला समुद्र तैयार करेंगे, जिसमें संशोधनके लिये डुबकी लगाना भी आसान नहीं होगा ।

मैं देखता हूँ कि ऐसा किये बिना आपके लिये चारा ही नहीं था, इसीलिये आपका अभिनन्दन करता हूँ । जो कुछ भी मसाला आप इकठ्ठा करेंगे, उसमेंसे विश्वासपात्र बातें कौन-सी, संशयास्पद कौन-सी और विश्वासपात्र बिल्कुल नहीं, ऐसी कौन-सी इसका वर्गीकरण अगर आप करवा सकें तो धर्मकी और जनताकी सेवा होगी ।

सनातन हिंदूधर्मका विरोध करके अपने-अपने धर्मका प्रचार करनेवाले मतलबी लोगोंके लिये भी आपका संग्रह बहुत मदद कर सकेगा । वह कह सकेंगे कि इतनी-इतनी बेबुनियाद, बेवकूफीभरी और धर्म-विरोधी बातें भारतके करोड़ों सनातनियोंकी विश्वासपात्र बन बैठी हैं । जो हो आपका अभिनन्दन जरूर करता हूँ ।

मेरा यह पत्र आपके विशेषाङ्कमें आप प्रकाशित करें तो मुझे एतराज नहीं है । मैं तो आपको धन्यवाद ही दूँगा । चंद पाठक शायद गालियाँ देंगे तो हर्ज नहीं । किसी भी कारण उन्होंने यह पत्र पढ़ा तो उसकी बातें और उसकी दृष्टि लोगोंके मनमें उगेगी सही ।

आपने भी जन्मपरम्पराके सिद्धान्तको लेकर समाजमें कितनी ठगी चली है, इसका ब्यौरा भी तो माँगा ही है ।

आपका—काका कालेलकर

उत्तरमें नम्र निवेदन

परम सम्मान्य आचार्य काका कालेलकर महोदयको

है । अपनी इस दुर्बलताको त्यागकर हम अपने 'विश्वास'पर सचमुच दृढ़ बनें—सर्वसमर्थ दयामय भगवान्‌से यही प्रार्थना है । अस्तु !

इस अङ्कका सनातन हिंदूधर्मके विरोधी, आलोचना-आक्षेपके व्यसनी मतलबी लोग दुरुपयोग कर सकते हैं। यह सर्वथा सत्य है। पर ऐसा तो प्रत्येक प्रयत्न और पदार्थका ही दुरुपयोग करनेवाले स्वभाववश करते ही हैं, इस भयसे सत्प्रयत्नका त्याग नहीं किया जा सकता ।

फिर, सभी आरम्भ कुछ-न-कुछ दोषयुक्त भी होते ही हैं—सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः । (गीता) इसपर हमारा यह प्रयत्न तो अपनी अल्पज्ञता, अल्पबुद्धिके कारण निश्चय ही त्रुटिपूर्ण है ही । इसमें कहीं कोई अच्छापन है तो उसका सारा श्रेय अनुभवी पुरुषों तथा विचारशील विद्वानोंको है, जिन्होंने अपने विचार प्रकट करनेकी कृपा की है । शेष दोष-त्रुटियाँ तो सारी हमारी हैं ।

आचार्यजीसे सविनय निवेदन है कि वे मेरे इन धृष्टतापूर्ण शब्दोंको स्नेहसे निरीक्षण करें, वात्सल्यपूर्ण हृदयसे सदा शुभ चेतावनी देते रहें और शुभाशीर्वाद दें, जिससे जीवनके शेष श्वास भगवच्चिन्तनमें ही बीतें ।

विनीत—हनुमानप्रसाद पोद्दार
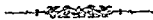
नरकसे बचना हो तो—

कभी न करो किसी भी प्राणीकी हिंसा तन मनसे भूल !
बोलो कभी न व्यर्थ-झूठ-चुगली-छल-परुष-वचन उर-शूल ॥
तन-मन-वाणीसे न चुराओ कभी किसीकी धन-सम्पत्ति ।
नीच स्वार्थ-साधन-हित, डालो नहीं किसीपर दुःख-विपत्ति ॥
पर-नारी पर-पुरुष त्यागकर सेवन करो शुद्ध गृह-धर्म ।
निज-पर धर्मनाशके साधक, करो कभी भी नहीं कुकर्म ॥
अंडे-मांस-मद्यका खाना-पीना कर दो बिल्कुल त्याग ।
तामस वस्तु नशीली जूँठनसे रक्खो परहेज-विराग ॥
माता-पिता-देवता-गुरुका गुरुजनका न करो अपमान ।
सुख पहुँचाओ सबको संतत, मनमें रख श्रद्धा-सम्मान ॥
बुरे संगका, बुरे व्यसनका कभी न रक्खो मनमें मोह ।
क्रोध-लोभको छोड़, करो सब जीवोंपर स्वाभाविक छोह ॥
भोग-वासना त्याग करो श्रीप्रभुचरणोंमें दृढ़ अनुराग ।
बचे रहोगे नरकोंसे तुम, भक्त बनोगे शुचि बड़भाग ॥

दिव्यलोक-स्वर्गमें पहुँचना हो तो—

दया करो तुम जीव मात्रपर, सबको करो स्नेहका दान ।
बोलो—सत्य-मधुर-हितकर-मित, जपो नाम हरिका निर्मान ॥
प्रभुकी सब सम्पत्ति मानकर, करो नित्य पर-हित उपयोग ।
दुःख हरो दुखियोंके, दे निज सुख, रख प्रभुमें मन-संयोग ॥
पालन करो धर्म-वर्णाश्रम, रखकर मनमें शुचि उत्साह ।
धर्म बचाओ, शान्ति दानकर सबका हरण करो उर-दाह ॥
सात्त्विक भोजन करो अहिंसक, छोड़ो सभी जीभके स्वाद ।
लो भगवत्प्रसाद प्रतिदिन तुम, मिट जायँ सब शोक-विषाद ॥
श्रद्धायुक्त सरल सेवासे सुख पहुँचाओ, दो सम्मान ।
गुरुजन-मात-पिता-गुरु-सुरको अपने मनमें ईश्वर जान ॥
नित स्वाध्याय, नित्य हरि-पूजन, करो नित्य सात्त्विक सत्संग ।
क्षमा, त्याग, गो-आतुर-सेवा—सद्गुण बना लो अपने अंग ॥
प्रभु-चरणोंमें रखो निरन्तर तुम अनन्य ममता-अनुराग ।
पहुँचोगे तुम दिव्य स्वर्गमें बनकर हरि-सेवक बड़भाग ॥